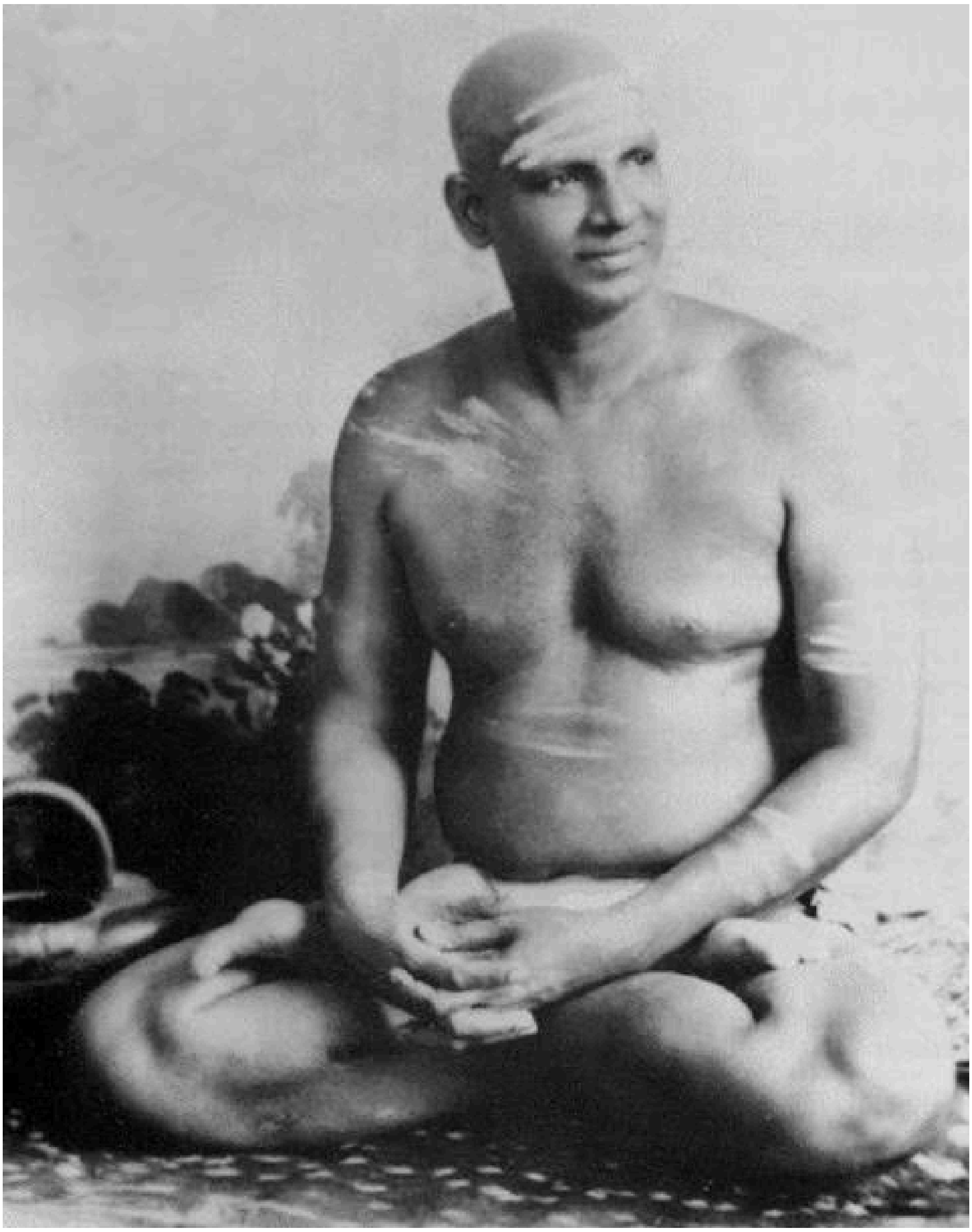
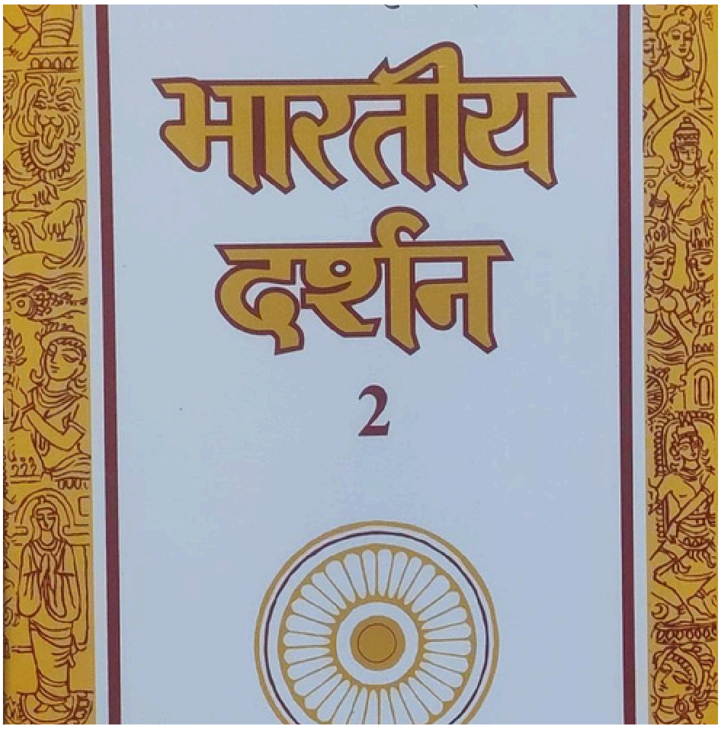



भारतीय
दर्शन
2

भारतीय दर्नश -2

हिन्दू ूधर्-शपुनर्ागशरण काल से वतर्शान तक

(Indian Philosophy का हिन्दी अनुवाद)

डॉ. राधाकृष्णन

रार्पाल

अनुवाद
नन्दककर्ोर गोभभल

स्थापपत 1912

100 वर्षो की श्रे्रेष्ठ प्रकार्न परम्परा

रार्पाल

रू.650

ISBN: 9788170281887

संस्करण : 2024

हिन्दी अनुवाद रार्पाल एण्ड सन््

BHARATIYADARSHAN(Part-2)byDr.S.Radhakrishnan

रुुद्रक : री्.एस. ऑफसेट, हदल्ली

रार्पाल एण्ड सन््

1590, र्दरसा रोड कश्र्ीरी गेट हदल्ली -110006

फोन :011-23869812,23865483,23867791

website:www.rajpalpublishing.com
e-mail: sales@rajpalpublishing.com
www.facebook.com/rajpalandsons



डॉ. सवपशल्ली राधाकृष्णन

प्रस्तावना

पिले ेखण्ड इस शैली रें भी, जर्सका प्रततपाद्य पवर्षय वैहदक र्षड्दर्नश का पववेचन िै, नैं योर्ना तथा पवधध अपनाई िै। इसके अततररक्त, नैं उस भावना को भी अपनाने का प्रयत्न ककया िै र्ो दार्तशनक व्याख्या के भलए उधचत र्ानी गई िै, अथात्श ्प्राचीन लेखकों तथा उनके पवचारों की सुचारु रूप से व्याख्या करके उन्र्ें दर्नश तथा धर्-शसम्बन्धी आर् के पवचारणीय पवर्षयों के सन्दभ शर्ें रखना। वाचस्पतत भर्श्र ने, र्ो हिन्दू ू पवचारधारा के लगभग सभी दर्नशों के टीकाकार िैं, प्रत्येक पर अपनी लेखेनी का जर्स प्रकार प्रयोग ककया िै उससे प्रतीत िोता िै र्ानो वे उनके भसद्धान्तों र्ें भी पवश्वास रखतेिैं। पवचारधारा की उन प्रवृपृयों को र्ो प्राचीन काल र्ें पररपक्वता को पिुँची थीं ंऔर र्ो अनेक दुबोध ग्रंथों र्ें भलपपबद्ध िैं, बुद्धधपूवकश प्रस्तुत करने र्ें यि आवश्यक िो गया कक पवर्ेर्ष दृजष्टकोणों को चुना र्ाए, उन पर बल हदया र्ाए और उनकी आलोचना तक की र्ाए। यि काय,श स्वभावतः यि प्रकट कर देता िै कक र्ेरी अपनी पवचारधारा ककस हदर्ा र्ें चल रिी िै। इस प्रकार के काय शर्ें क्योंकक पववरण-सम्बन्धी अनेक प्रकार के तनणयशों का सर्ावेर् रिता िै, अतः यि आर्ा निींकी र्ा सकती कक यि पुस्तक तनणयश-सम्बन्धी भूलों से र्ुक्त िोगी। ककन्तु नैं, प्रर्ाणों र्ें ककसी प्रकार की उलट-फेर करने से बचते िुए, केवल पवर्षयपरक प्रततपादन का िी प्रयत्न ककया िै।

र् ैंयिाँइस बात को दोिरा देना आवश्यक सर्झता िूँकक र्ेरे पवर्षय-प्रततपादन को सवथशा पूण शन र्ान लेना चाहिए। क्योंकक, लगभग प्रत्येक अध्याय र्ें जर्तनेपवर्षय का प्रततपादन िै, उसके अध्ययन के भलए एक पूणतशया सन्नद्ध पवर्ेर्षज्ञ अपना पूरा र्ीवन लगा देता िै। पवभर्ष्ट दर्नशों के ब्यौरेवार पववेचन के भलए पृथक् तनबन्धों की आवश्यकता िै। र्ेरे काय शका क्षेत्र सीभर्त िै, अथात्श ्पवपवध पवचारधाराओं के आन्दोलनों की, उनकी प्रेरक भावनाओं और उनके पररणार्ों की एक र्ोटी रूपरेखा तैयार करना। भभन्न-भभन्न सम्प्रदायों के अल्प-र्ित्त्व के लेखकों र्ें परस्पर र्ो गौण र्तभेद पाए र्ाते िैं, उनको दर्ानेश ेकी नैं वस्तुतः कोई चेष्टा निींकी िै। र्ैव, र्ाक्त और परवती वैष्णव दर्नशों के सम्बन्ध र्ें, र्ो भारत के दार्तशनक पवकास की अपेक्षा धाभर्कश इततिास से अधधक सम्बन्ध रखते िैं, र्ेरा पववेचन बिुत संक्षक्षप्त तथा सार-नात्र िै। यहद र् ैंप्रकल्पनात्र्क भारतीय पवचारधारा के नाना रूपों की वास्तपवक भावना का एक धचत्र, र्ो भले िी अपयाप्शत िो, अपने पाठकों के सम्र्ुख रख सका तो र्ुझे ेपूण शसन्तोर्ष िो र्ाएगा।

यहद यि खण्ड पिलेकी अपेक्षा कुछ कहठन िै तो र् ैंआर्ा करता िंूंू कक पाठक अनुभव करेंगे ेकक कहठनाई का तनर्ातशा / निींिूँ, बजल्क कुछ सीर्ा तक यि कहठनाई पवर्षयगत िै और गम्भीर पववेचन के कारण िै र्ो पवर्षय के अध्ययन के भलए आवश्यक िै। नैंअनुभव ककया कक तथ्यों के पुंर् को एक ऐसेपवर्द आख्यान र्ें सर्ो कर रखना, जर्से ेपाठक सम्रर् र्ें पडेबबना और बबना उकताए सर्झ सके, एक ऐसा काय शि जर्से ेपिले ेसे र्ापना र्ेरे भलए सम्भव निींथा। र्ैधैथल्य तथा पाजण्डत्याभभर्ान के बीच र्ें से र्ध्यर् र्ाग शका अवलम्बन करके चलने र्ें र् ैंकिा ंुँतक सफल िो सका िूँ, इसका तनणयश पाठक करेंगे। साधारण पाठक के सुभीते के पवचार से अधधक पाररभापर्षक अचवा सन्दभ-शसम्बन्धी वाद-पववाद ऊपर और नीचे कुछ स्थान छोड कर पृथक् रूप से हदए गए िैं।

इस खण्ड के संकलन रें् रुझे पवपवध सम्प्रदायों के संस्कृत के सन्दभों से ि◌ी निीं, बजल्क ड्यूसन और कीथ, धथबीत और गाब,श गंगानाथ झा और पवद्याभूर्षण प्रभृतृत पवद्वानों के लेखों से भी बिुत सिायता भर्ली ि◌ै। र्◌ँ अपनेभत्रों, श्रीयुत बी. सुब्रह्रण्य अय्यर तथा प्रोफेसर रे्.◌े एस. रै्केंरी् का अत्यन्त कृतज्ञ ि◌ूँ क्योंकक इन्ि◌ोंने पुस्तक की पाण्डुभलपप और प्रूरूफ के अनेक भागों को देखने का कष्ट ककया तथा अनेकों रूल्यवान् ◌्सुझाव हदए। प्रोफेसर ए. बेरीडेल कीथ ने प्रूरूफ देखनेकी कृपा की और इनकी सर्ालोचनाओं से पुस्तक को बिुत लाभ ि◌ुआ। रुझे ◌े पुस्तक के प्रधान सम्पादक प्रोफेसर रे्. एच. म्यूरिड को भी ि◌ाहदशक धन्यवाद देना ि◌ै, जर्न्ि◌ोंनेप्रथर् खण्ड के सर्ान ि◌ी, इस खण्ड के भलए भी अपना बिुत सर्य और धचन्तन प्रदान ककया। यहद इनकी उदार सिायता प्राप्त न ि◌ोती तो इस पुस्तक रें् रो् भी त्रुहटया ◌ुँअब रिगई ि◌ैं उनसेकिीं ◌ंअधधक रि र्ातीं।

- राधाकृष्णन

ववषय-सूची

पिला अध्याय

पवर्षय-प्रवेर्

दर्नशर्ास्त्रोंकाप्रादुभ्ावशवेदेंकेसाथ

सम्बन्ध-सूत्र साहित्य-सार्ान्य पवचारधाराएं।

1. दर्नशर्ास्त्रों का प्रादुर्भावश

भारत र्ें िर् बौद्धकाल र्ें दार्तशनक धचन्तन की एक र्िती लिर उर्डती िुई पाते िैं। दर्नशर्ास्त्र की प्रगतत साधारणतः, ककसी ऐततिाभसक परम्परा पर िोनेवाले ककसी प्रबल आर्ोर्ण के कारण िी सम्भव िोती िै, र्बकक र्नुष्य-सर्ार् पीछे लौटने ेको और उन र्ूलभूत प्रश्नों को एक बार कफर उठाने के भलए बाध्य िो र्ाता िै जर्नका सर्ाधान उसके पूवपुशरुर्षों ने प्राचीनतर योर्नाओं के द्वारा ककया था। बौद्ध तथा र्ैन धर्ों के पवप्लव ने, वि पवप्लव अपने-आप र्ें चािे र्ैसा भी था, भारतीय पवचारधारा के क्षेत्र र्ें एक पवर्ेर्ष ऐततिाभसक युग का तनर्ाणश ककया, क्योंकक उसने कट्टरता की पद्धतत को अन्त र्ें उडा कर िी दर् भलया तथा एक सर्ालोचनात्र्क दृजष्टकोण को उत्पन्न करने र्ें सिायता दी। र्िान् ्बौद्ध पवचारकों के भलए तकश िी एक ऐसा र्ुख्य स्त्र्ागार था र्िां ंसावभशौर् खण्डनात्र्क सर्ालोचना के स्त्र्ं गढ़ कर तैयार ककए गए थे। बौद्ध धर् शने र्जस्तष्क को पुराने अवरोधों के कष्टदायक प्रभावों सेर्ुक्त करने र्ें पवरेचन का कार् ककया। वास्तपवक तथा जर्ज्ञासा-भाव से तनकला िुआ संर्यवाद पवश्वास को उसकी स्वाभापवक नींवों पर र्ाने र्ें सिायक िोता िै। नींव को अधधक गिराई र्ें डालनेकी आवश्यकता का िी पररणार् र्िान् ्दार्तशनक िलचल के रूप र्ें प्रकट िुआ, जर्सनेछि दर्नशों को र्न्र् हदया जर्नर्ें काव्य तथा धर् शका स्थान पवश्लेर्षण और र्ुष्क सर्ीक्षा ने ले भलया। रूहढ़वादी सम्प्रदाय अपनेपवचारों को संहिताबद्ध करने तथा उनकी रक्षा के भलए ताककशक प्रर्ाणों का आश्रय लेनेको बाध्य िो गए। दर्नशर्ास्त्र का सर्ीक्षात्र्क पक्ष उतना िी र्ित्त्वपूण शिो गया जर्तना कक अभी तक प्रकल्पनात्र्क पक्ष था। दर्नशकाल से पूव शके दार्तशनक तर्ों द्वारा अखण्ड पवश्व के स्वरूप के सम्बन्ध र्ें कुछ सार्ान्य पवचार तो अवश्य प्राप्त िुए थे, ककन्तु यि अनुभव निीं िो पाया था कक ककसी भी सफल कल्पना का आधार ज्ञान का एक सर्ीक्षात्र्क भसद्धान्त िी िोना चाहिए। सर्ालोचकों नेपवरोधधयों को इस बात के भलए पववर् कर हदया कक वे अपनी प्रकल्पनाओंकी प्रार्ाणणकता ककसी हदव्य ज्ञान के सिारे भसद्ध न करें, बजल्क ऐसी स्वाभापवक पद्धततयों द्वारा भसद्ध करें र्ो र्ीवन और अनुभव पर आधाररत िों। कुछ ऐसेपवश्वासों के भलए, जर्नकी िर् रक्षा करना चािते िैं, िर्ारा र्ापदण्ड भर्धथल निींिोना चाहिए। इस प्रकार आत्र्पवद्या अथात्श ्दर्नश को अब आन्वीक्षककी'[1] अथात्श ्अनुसन्धानरूपी पवज्ञान का सिारा भर्ल गया। दार्तशनक पवचारों का तकश की कसौटी पर इस प्रकार कसा र्ाना स्वभावतः कट्टरतावाहदयों को रुधचकर निींिुआ।[2] श्रद्धालुओं को यि तनश्चय िी तनर्ीव लगा िोगा, न्यायभाष्य, ।: 1, 1, र्नु, 7 43 कौहटल्य (लगभग 300 ई. पू.) का किना िै कक आन्वीक्षककी पवद्याध्ययन की एक अलग

1
िी र्ाखा िै और अन्य तीन र्ाखाओं, त्रयी अथात्श ्वेदों, वाताश अथात्श ्वाणणज्य और दण्डनीतत और रार्नीतत या कूटनीतत के अततररक्त िै (1/2) = . पू. छठी र्ताब्दी, र्बकक इसके पवर्ेर्ष अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गई, भारत र्ें एक र्बद्ध दर्नश-पद्धतत के प्रारम्भ के भलए प्रभसद्ध िै और ई. पू. पिली र्ताब्दी तक आन्वीक्षककी नार् के स्थान पर 'दर्नश' र्बद प्रयुक्त िोनेलगा (देणखए, 'र्िाभारत, र्ाजन्तपव'श, 10/45 : 'भागवतपुराण', 8/14 10)। प्रत्येक जर्ज्ञासा संर्य को लेकर िी प्रारम्भ िोती िै और एक आवश्यकता की पूतत शकरती िै। तुलना कीजर्ए-जर्ज्ञासया सन्दिेप्रयोर्नेसूचयतत ('भार्तत' 1/1, 1)

2 रार्ायण र्ें आन्वीक्षककी को तनजन्दत तनजन्दत र्ाना गया िै, क्योंकक यि र्नुष्यों को धर्र्ास्त्रों की आज्ञाओंसे पवर्ुख करती िै (2/100 / 36) :(र्िाभारत र्ांतत पव,श 180 : 47-49; 246-8)। र्नु के अनुसार, ऐसेव्यजक्तयों का र्ो तकश (िेतुर्ास्त्र)

 क्योंकक अंत:प्रेरणा के स्थान पर अब आलोचनात्रक तकश आ गया था। धचन्तन की उस र्जक्त का स्थान र्ो सीधी

र्ीवन और अनुभव से फूटती ि ै, र्ैसी कक उपतनर्षदों र्ें और आत्र्ा की उस अलौककक र्िनता का स्थान र्ो परब्रह्र् का दर्नश और गान करती ि ै, र्ैसा कक भगवद्गीता र्ें ि ै, कठोर दर्नश ले लेता ि ै। इसके अततररक्त, तकश की कसौटी पर पुरानी र्ान्यताएुँतनश्चय ि ी खरी उतर सकेंगी यि भी तनजश्चत रूप से निींकिा र्ा सकता था। इतनेपर भी उस युग की सवर्शान्य भावना का आग्रि था कक प्रत्येक ऐसी पवचारधारा को र्ो तकश की कसौटी पर खरी उतर सके, 'दर्नश' के नार् सेग्रिण करना चाहिए। इसी कारण उन सभी तकशसम्र्त प्रयासों को र्ो पवश्व के सम्बन्ध र्ें फैली पवभभन्न बबखरी ि ुई धारणाओंको कुछ र्िान् ्व्यापक पवचारों र्ें सर्ेटने ेके भलए ककए गए, दर्नश की संज्ञा दी गई।[3] ये सर्स्त प्रयास ि र्ें सत्य के ककसी-न-ककसी अंर् को अनुभव कराने र्ें सिायक भसद्ध िोते ि ैं। इससे यि पवचार बना कक प्रकट रूप र्ें पृथक् व स्वतन्त्र प्रतीत ि ोते ि ुए भी, ये सब दर्नश वस्तुतः एक ि ी बृित् ्ऐततिाभसक योर्ना के अंग ि ैं। और र्ब तक ि र् इर्न्िें स्वतन्त्र सर्झते ेरिेंगे ेतथा ऐततिाभसक सर्न्वय र्ें इनकी जस्थतत पर ध्यान निीं देंगे, े तब तक ि र् इनकी वास्तपवकता को पूणरूशप से हृदयंगर् निींकर सकते।

2. वेद ों के साथ सम्बन्ध

तकश की कसौटी को स्वीकार कर लेनेपर काल्पतनक र्ान्यताओंके प्रचारकों का पवरोध नरर् पड गया और उससेयि स्पष्ट ि ो गया कक उनका आधार उतना सर्क्त व सुदृढ़ निींथा और उन पवचारधाराओंको दर्नश का नार् देना भी ठीक निीं था। ककन्तु भौततकवाहदयों, संर्यवाहदयों और कततपय बौद्ध धर्ानुशयातययों के पवध्वंसात्रक र्ोर् ने तनश्चयात्रक ज्ञान के आधार को ि ी नष्ट कर हदया। हिन्दू ्र्ानस इस तनर्ेषधात्रक पररणार् को कभी भी र्ांतत सेग्रिण निींकर पाया। र्नुष्य संर्यवादी रि कर र्ीवन-तनवाशि निींकर सकता। तनरे बौद्धधक द्वन्द्व से ि ी कार् निींचल सकता। वाद-पववाद का स्वाद र्ानय की आजत्रक भूख को र्ान्त निीं ं कर सकता। ऐसेरुष्क तकश से कुछ लाभ निींर्ो ि र्ें ककसी सत्य तक न पिुंचा सके। यि असम्भव था कक उपतनर्षदों के ऋपर्षयों र्ैसे ेआत्र्तनष्ठ र्िात्र्ाओं की आर्ाएंऔर र्ित्त्वाकांक्षाएं,ं ताककशक सर्थनश के अभाव र्ें, यों ि ी नष्ट ि ो र्ातीं। और यि भी असंभव था कक र्ताजब्दयों के संघर्ष शऔर धचन्तन से भी र्ानव-सर्स्या के सर्ाधान की हदर्ा र्ें कुछ आगे ेन र्ाता। एकर्ात्र तनरार्ा र्ें ि ी उसका अन्त निींकिया र्ा सकता था। तकश को भी अन्ततोगत्वा श्रद्धा का ि ी आश्रय ढूुँढ़ना पडता ि ै। उपतनर्षदों के ऋपर्ष पपवत्र ज्ञान के भर्क्षणालय के र्िान् ् भर्क्षक ि ैं। वे ि र्ारे आगे ेब्रह्र्ज्ञान व आध्याजत्रक र्ीवन की सुन्दर व्याख्या रखते ि ैं। यहद तनरे तकश से र्ानव यथाथ शसत्य की प्राजप्त निीं कर सकता तो तनश्चय ि ी उसे ेउन ऋपर्षयों के र्िान लेखों की सिायता प्राप्त करनी

द्वारा पचरष्ट ि ोकर वेदों तथा धर्सूशत्रों का अनादर करते ि ैं, बहिष्कार करना चाहिए (2/11) कफर भी गौतर् अपनेधर्सूशत्र (11) र्ें और र्नु (743), रार्ाओं के भलए आन्वीक्षक्षकी के एक पाठ्यिर् का पवधान करते ि ैं। ताककशकों को पवधानसभाओं र्ें सजम्भलत ककया र्ाता था। तकश र्ब धर्शास्त्र का सर्थनश करता ि ै तो उसकी प्रर्ंसा ि ोती ि ै। व्यास का दावा ि ै कक उन्िोंने आन्वीक्षक्षकी द्वारा वेदों की व्यवस्था की (न्यायसूत्रवृपि,1/ 1)।

[3] र्ाधव: सवदशर्नशसंग्रि।

 चाहिए, जर्न्ीिनेआध्याजत्रक ध्रुव सत्य को प्राप्त करनेका दावा ककया िै। इस प्रकार, र्ो कुछ श्रद्धा के द्वारा
स्वीकार ककया गया था उसकी वास्तपवकता को तकश द्वारा भसद्ध करनेके प्रबल प्रयास ककए गए। यि ढंग बुद्धधसंगत न िो, ऐसी बात निीं, क्योंकक दर्नश उस प्रयास का िी दूसूरा नार् िै र्ो र्ानव-सर्ार् के बढ़ते िुए अनुभव की व्याख्या के भलए ककया र्ाता िै। ककन्तु जर्स ख़तरे से िर्ें सावधान रिना िोगा वि यि िै कक किीं ं श्रद्धा को िी दार्तशनक पवज्ञान का पररणार् स्वीकार न कर भलया र्ाए।

सब दर्नशों र्ें छि दर्नश अधधक प्रभसद्ध िुए-र्िपष शगौतर् का 'न्याय', कणाद का 'वैर्ेपषक', कपपल का 'सांख्य', पतंर्भल का 'योग', र्ैभर्तन का 'पूव शर्ीर्ांसा', और बादरायण का 'उिर र्ीर्ांसा' अथवा 'वेदान्त' ।'[4] ये सब वैहदक दर्नश के नार् से र्ाने र्ाते िैं क्योंकक ये वेदों की प्रार्ाणणकता को स्वीकार करते िैं। र्ो दर्नश वेदों की प्रार्ाणणकता को स्वीकार करतिें वे आजस्तक किलातिें, और र्ो उसे ेस्वीकार निीं ंकरतेउर्न्िें नाजस्तक की संज्ञा दी गई िै। ककसी भी दर्नश का आजस्तक या नाजस्तक िोना परर्ात्र्ा के अजस्तत्व को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने पर तनभरश न िोकर वेदों की प्रार्ाणणकता को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने पर तनभरश िै।[5] यितंक कक बौद्ध धर् शके पवभभन्न सम्प्रदायों का भी उद्गर् उपतनर्षदों र्ें िै; यद्यपप उर्न्िें सनातन धर् शर्निीं र्ाना र्ाता िै, क्योंकक वे वेदों की प्रार्ाणणकता को स्वीकार निींकरते।े कुर्ाररल भट्ट, जर्नकी सम्र्तत इन पवषयों र्ें प्रार्ाणणक सर्झी र्ाती िै, स्वीकार करते िैं कक बौद्ध दर्नशों ने उपतनर्षदों से प्रेरणा ली िै, और वे यि युजक्त देते िैं कक इनका उद्देश्य अत्यन्त पवषय-भोग पर रोक-थार् लगाना था। वे यि भी घोर्षणा करते िैं कक ये सब प्रार्ाणणक दर्नश िैं।'[6]

वेद को स्वीकार करने का अथ शयि िै कक आध्याजत्रक अनुभव से इन सब पवषयों र्ें रुष्क तकश की अपेक्षा प्रकार् भर्लता िै। इसका अथ शयि निीं कक वे वेद प्रततपाहदत सब भसद्धान्तों को भी स्वीकार करते िैं, या परर्ात्र्ा के अजस्तत्व र्ें भी पवश्वास रखते िैं। इसका अथ शकेवल र्ीवन के रूल रिस्य के उद्घाटन के भलए गम्भीर प्रयास करना िै, क्योंकक इन सम्प्रदायों ने वेदों की तनदोर्षता तक को सर्ान रूप र्ें स्वीकार निींककया िै। िर् देखतिें कक वैर्ेपषक और न्याय परर्ात्र्ा की सिा को अनुर्ान प्रर्ाण द्वारा िी स्वीकार करते िैं। सांख्य ईश्वरवादी निीं। योग वेद से वस्तुतः स्वतन्त्र िी िै। दोनों र्ीर्ांसा र्ास्त्र अवश्य िी वेदे पर स्पष्ट रूप से तनभरश करते िैं। पूव शर्ीर्ांसा र्ें वणणतश देवता का सार्ान्य पवचार वेदरूलक अवश्य िै, ककन्तु उसे ेपरब्रह्र् के रूप की धचन्ता निीं। उिर र्ीर्ांसा ब्रह्र् के अजस्तत्व को श्रुतत के आधार पर स्वीकार करता िै, ककन्तु उसकी भसद्धध र्ें अनुर्ान प्रर्ाण का भी उपयोग करता िै, और उसकी सम्र्तत र्ें उसका साक्षात्कार ज्ञान व ध्यान द्वारा िो

---

4 िररभद्र अपने'पड्दर्नशसर्ुच्चय' र्ें बौद्ध, नैयातयक, सांख्य, र्ैन, वैर्ेपषक और र्ैभर्नीय दर्नश का पववेचन करता िै (1/3) जर्नदि और रार्ेखर इस र्त से सिर्त िैं।

5 प्रार्ाण्यबुद्धधवेदेर्षु । र्नु का किना िै कक नाजस्तक वि िै र्ो वेदों की तनन्दा करता िै। नाजस्तको वेदतनन्दकः (2/11) | देणखए, 'र्िाभारत', 12/270, 67।

6 'तन्त्रवाततकश', 1 / 3, 2; पृषूठ 81।

 सकता ि। परवती काल के आजस्तक पवचारक सांख्य को सनातन दर्नशर्ास्त्रों के अन्तगतश र्ानने को तैयार निीं ं
थे।'[7]

इस प्रकार वेद की प्रार्ाणणकता र्ानने से इन छः दर्नशों की दार्तशनकता र्ें कोई पवर्ेर्ेष अन्तर निीं ं आता।'[8] श्रुतत और सूतृत का भेद सवपशवहदत ि, और रिं ंदोनों र्ें परस्पर र्तभेद िो वि ुँश्रुतत की िी प्रधानता र्ानी र्ाती ि। श्रुतुत भी अपने-आप र्ें दो भागों र्ें पवभक्त ि, कर्कशाण्ड (संहिता भाग और ब्राह्ण ग्रन्थ) और ज्ञानकाण्ड (उपतनर्षद्)। ज्ञानकाण्ड का र्ित्त्व अधधक ि, यद्यपप इसके अधधकांर् भाग को केवल अथवशाद अथात्श ् अनावश्यक या गौण कथन कि कर एक ओर रख हदया गया ि। इन सबके कारण वेद की प्रार्ाणणकता को बिुत उदार भाव से िी ग्रिण ककया र्ा सकता ि। वेदों की व्याख्या भी व्याख्याकारों की दार्तशनक रुधचयों पर तनभरश करती ि। ताकककशक पवधधयों का प्रयोग करते िुए और युजक्तसंगत सत्यों पर पिुँचते िुए भी, वे प्राचीन र्ंत्रों से उनकी संगतत बनाए रखनेके भलए बराबर उत्सुक रि। उनकी इच्छा बराबर यिी रिी कक उर्न्ें ककसी बबलकुल नवीन पवर्षय का प्रततपादक न सर्झा र्ाए। यद्यपप इससेउनकी स्पष्टवाहदता का कुछ अभाव िी टपकता ि, तो भी इससे इन भसद्धान्तों के प्रचार र्ें सिायता भर्ली जर्न्ें वे सत्य र्ानते ेथे।'[9] भभन्न-भभन्न सम्प्रदायों के सर्ालोचक और टीकाकार अपने-अपनेर्त की पुजष्ट र्ें वेद की सम्र्तत का दावा करते िैं, और रिं ंयि सम्र्तत स्वतः दृजष्ट र्ें निींआती विांबलपूवकश संगतत बैठानेर्ें अपनी पटुता हदखाते िैं। परवती काल के वाद-पववादों के प्रकार् र्ें, ये लोग वेदों की भार्षा र्ें उन पवर्षयों पर भी सम्र्तत ढूंढते ि जर्नका ज्ञान इर्न्ें बिुत िी कर् या बबलकुल निींिाि। वेदों के साधारण पवचार न तो तनजश्चत िी ि और न पवस्तृत रूप से स्पष्ट िी ि। इसीभलए भभन्न-भभन्न सम्प्रदाय वालों को उनके अथों र्ें खींचातानी करने का सुयोग भर्ल र्ाता ि। इसके अततररक्त, वेदों

---

[7] भीर्ाचाय शके 'न्यायकोप' के अनुसार, आजस्तक वि ि र्ो परलोकाद्यजस्तत्ववादी ि और नाजस्तक वेदर्ार्ग्श ् अननुरुन्धानः ि। वे सांख्य और अद्वैत वेदान्त को दूसूरी कोहट र्ें रखते ि। "र्ायावाहदवेदान्त्यपप नाजस्तक एवं पयवशसाने सम्पद्यते।" कुर्ाररल की दृजष्ट र्ें सांख्य, योग, पंचरात्र और पारुुपत दर्नश भी ऐसेिी वेद-पवरोधी ि र्ैसेकक बौद्धदर्नश ('तन्त्रवाततकश', 1 3,4) ।

[8] कीथ ने र्ो कुछ न्याय और वैर्ेपर्षक के पवर्षय र्ें किा ि कक वि अन्य दर्नशों के पवर्षय र्ें भी सत्य ि। "ये दर्नश तनःसन्दे सनातनधर्ी ि और धर्र्शास्त्रों के प्रार्ाण्य को स्वीकार करते िैं, ककन्तु वे र्ीवन की सर्स्याओं के सर्ाधान के भलए र्ानवीय साधनों का आश्रय लेतेिैं और धर्र्शास्त्र केवल सर्स्याओं के उक्त सर्ाधानों को धाभर्कशता का रूप देनेके भलए िी प्रयुक्त िोते िैं। उक्त सर्ाधान न केवल धर्र्शास्त्रों की सिायता के बबना भी तनकलते िैं, बजल्क वे धाभर्कश आज्ञाओंके साथ सार्ंर्स्य रखते िों प्रायः इसर्ें भी सन्दे रिता ि।"
- 'इजण्डयन लॉजर्क एण्ड ऐटोभर्ज्र्', पृष्ठ 3।

[9] गेटे से ेतुलना कीजर्ए "कुछ ऐसे ेअत्यन्त र्ेधावी एवं प्रततभार्ाली व्यजक्त प्रकट िुए जर्न्िोंने इस पवर्षय र्ें तततभलयों की भातुँत, अपनी कोर्ायी अवस्थाओं को भुला कर, उस आवरण को उतार फेंका जर्सके अन्दर रिकर वे पररपक्व िुए थे। अन्य कुछ ऐसेथे र्ो अधधक ईर्ानदार और नम्र थे। उनकी तुलना उन फूलों के साथ की र्ा सकती ि र्ो सौन्दय शके पूण शपवकास को प्राप्त करते िैं, पर अपनेर्ूल को निींछोडतेऔर न अपनेपौधे के तने से िी पृथृक् िोते िैं, बजल्क इसी सम्बन्ध को तनभाते े िुए प्रत्याभर्त फल को पररपक्व अवस्था तक पिुँचाते िैं।"
- र्् शर्ें उद्धृत, 'योरोपपयन चॉट इन द नाईण्टीय सचेंुुएरी', खण्ड 4, पृष्ठ, 134, पादहटप्पणी ।।

भारतीय दर्नश-2 24 की पवर्ालता के कारण भी, ग्रन्थकारों को अपने पवश्वास के अनुसार कोई-सा भाग चुन लेनेसे एक नवीन पवचार
का प्रचार करने के भलए सार्ग्री भर्ल र्ाती ि ै।

इन दर्नशों र्ें पवर्षयों की पवपवधता इसभलए ि ै कक दार्तशनक कल्पनाओंके पीछे धाभर्कश उद्देश्य तछपा ि ै। र्ब्द की तनत्यता का भसद्धान्त दार्तशनक सर्स्या सेअधधक आजस्तकवाद की सर्स्या ि ै, क्योंकक इसका सम्बन्ध वेद की तनदोर्षता के भसद्धान्त से ि ै। ि िर एक वैहदक दर्नश र्ें तकश, र्नोपवज्ञान, तत्त्वज्ञान और धर्श का सजम्श्रण पाया र्ाता ि ै।

3. सूत्र-साहित्य

र्ब वैहदक साहित्य बिुत अधधक बढ़ गया और वैहदक पवर्षय के पवचारकों को अपनेपवचारों को ि िर्बद्ध करने की आवश्यकता अनुभव ि ोनेलगी तब सूत्र-साहित्य की उत्पपि ि ुई। दर्नशों के र्ुख्य-र्ुख्य भसद्धान्त संक्षेप र्ें सूत्रों के रूप र्ें रखे ेगए ि ैं। इर्न्ें, र्ि ाँ ुतक सम्भव ि ो सका छोटे-से-छोटे कलेवर र्ें, र्ंकारहित, ककन्तु वास्तपवक तत्त्व को प्रकट करनेवाले रूप र्ें रखा गया ि ै, जर्सर्ें अनावश्यक व अर्ुद्ध अंर् के भलए कोई स्थान र्निीं ।'[10] सब प्रकार के अनावश्यक पुनरुजक्तदोर्ष से रहित और चुने ि ुए कर्-से-कर् र्ब्दों र्ें इनका तनर्ाणश ककया गया ि ै।'[11] प्राचीन काल के लेखेकों को पवस्तार से भलखने ेका कोई प्रलोभन र्निीं था, क्योंकक वे छपे ि ुए ग्रन्थों की अपेक्षा स्र्ृतत पर अधधक तनभरश करते ेथे। अत्यन्त संक्षक्षप्त रूप र्ें ि ोनेके कारण सूत्रों के पूरे आर्य को बबना टीका की सिायता के सर्झना एक कहठन काय शि ै।

दार्तशनक पवचारों के पवभभन्न क्षेत्रों र्ें पवभभन्न पद्धततयों का पवकास ि ुआ। ककतनी ि ी पीहढ़यों र्ें पवचार एकत्र ि ोते ेगए और अन्त र्ें सूत्रों के रूप र्ें उनका संग्रि ककया गया। सूत्र ककसी एक पवचारक के पररश्रर् का पररणार् र्निीं, न ककसी एक युग र्ें इनका तनर्ाणश ि ुआ ि ै। ये ककतने ि ी और कई पीहढ़यों र्ें बर्टे ि ुए पवचारकों के सतत पररश्रर् का पररणार् ि ैं। सूत्रों का रूप लेने से पूव शउन पवचारों की ककतने ि ी सर्य तक गभरूशप र्ें बढ़ते ेरिने की कल्पना की र्ा सकती ि ै, इसभलए उनके उद्गर् को खोर् तनकालना एक कहठन काय शि ै। आध्याजत्र्क ज्ञान के प्रारम्भ के पवर्षय र्ें तनजश्चत रूप से कुछ भी धारणा बनाना कहठन ि ै। सूत्र ग्रन्थ प्राचीन काल के श्रृंखलाबद्ध प्रयासों का पररणार् ि ैं और इर्न्ें 'एक बबलकुल केन्द्रीय स्थान प्राप्त ि ै, क्योंकक र्िां ंएक ओर ये पुराने साहिजत्यक तनबन्धों का, र्ो ककतनी ि ी पीहढ़यों र्ें भलखे गए ि ोंगे,े सार प्रस्तुत करते ि ैं, यिां ंदूसूरी ओर ये टीकाकारों तथा

---

10 अल्पाक्षरर् ्असजन्दग्धर् ्सारवद् पवश्वतोर्ुखर् ्।
अस्तोर्् ्अनवधंच सत्रंसूत्रपवदो पवदु:॥ (ब्रिासूत्र पर र्ध्व, 1/1, 1) ।

र्यतीथकृशत न्यायसुधा को देणखए, 1 1, 1; भार्ती, 1: 1, 1।

11 इस कथन से ेकक "एक वैय्याकरण यहद आधी र्ात्रा भी बचा सकनेर्ें सफल ि ो सके तो उसे ेवैसी ि ी प्रसन्नता ि ोती ि ै र्ैसी कक पुत्र के उत्पन्न ि ोनेसे ि ोती ि ै।" यि तनहदशष्ट ि ोता ि ै कक र्ब्दों की बचत करना उद्देश्य था।

स्वतन्त्र लेखकों के उस उिरीर बढ़ते ेकाय-शकलाप का रुख्य स्रोत भी िंजर्सकी परम्परा िर्ारे काल तक पिंचती ै और र्ायद कुछ आगे ेभी र्ा सकती ि।"[12] दर्नशों का पवकास सूत्रों के तनर्ाणश से बिुत सर्य पूव शिो गया िोगा। दार्तशनक सूत्रों की सर्स्त रै्ली और भाव से यि प्रतीत िोता ि कक ये लगभग एक िी काल रें् बने िैं।'[13] सूत्रों के तनर्ाणश दर्नशर्ास्त्रों के संस्थापक अथवा उत्पादक न िोकर र्ात्र उनके संग्रिारक िी ि। यिी कारण ि कक दार्तशनक सूत्रों रें् यत्र-तत्र परस्पर पवरोधी प्रकरण पाए र्ाते िैं। और यि भी ध्यान रें् रखना चाहिए कक पवपवध दर्नशर्ास्त्रों का तनर्ाणश साथ-साथ एक िी सर्य रें् िो रिा था और वि सर्य सूत्रों के तनर्ाणश-काल के पूव शका सर्य ि। भर्ले-रुले दार्तशनक सर्ाधानों रें् से दर्नशों के पृथक्करण का सर्य बुद्ध के पश्चात् की प्रारजम्भक र्ताजब्दयों रें् और ईसा के सर्य से पूव शआंका र्ा सकता ि। उस सर्य दार्तशनक पवचारों का आदान-प्रदान पुस्तकों के द्वारा न िोकर रौणखक रूप रें् िोता था। यि सम्भव ि कक रौभलक भर्क्षा की परम्परा टूट र्ाने के बाद कई प्ररुख ग्रन्थ नष्ट िो गए िों और र्ो आर् िरें् उपलब्ध िैं उनके अन्दर बिुत-सी भर्लावट िो गई िो। कुछ अतत प्राचीन प्ररुख सूत्रग्रन्थ, यथा बृिस्पततसूत्र, वैखानससूत्र और भभक्षुसूत्र और ककतना िी दार्तशनक साहित्य आर् िरें् प्राप्त निीं और उसके साथ िी बिुत-सी उपयोगी सार्ग्री भी, र्ो पवभभन्न दर्नशों के कालानुिर् पर प्रकार् डाल सकती थी, आर् लुप्त िो गई ि। रै्क्सरूलर के अनुसार, सूत्रग्रन्थों का तनर्ाणश-काल बुद्ध से लेकर अर्ोक के सर्य तक ि, यद्यपप वे यि स्वीकार करते िैं कक वेदान्त, सांख्य और योग के भलए उससे बिुत पूव शका सर्य हदया र्ा सकता ै। इस र्त की पुजष्ट कौहटल्य के अथर्शास्त्र की साक्षी से िोती ि। उस सर्य तक परम्परागत आन्वीक्षकी अथवा ताककशक पद्धततया ुँरुख्यतः दो सम्प्रदायों, पूव शर्ीर्ांसा और सांख्य रें् बंटी िुई थीं। यद्यपप बौद्धग्रन्थों रें् बिुत िी स्पष्ट उल्लेख ि, तो भी यि किा र्ा सकता ि कक बौद्धसूत्रों रें् षड्दर्नश से उपलब्ध ज्ञान का सर्ावेर् पाया र्ाता ि। बुद्ध के पीछे की प्रारजम्भक र्ताजब्दयों का पवर्द बौद्धधक र्ीवन अनेक सर्ानान्तर धाराओंरें् प्रवाहित िुआ, यद्यपप उन्िें सूत्रों का रूप देनेका कारण पवरोधी दर्नशों की प्रततकिया िी थी। इन दर्नशों रें् अनेक पररवतनश यद्यपप पीछे के भाष्यकारों के िाथों िुए, तो भी इनका श्रेय इनके र्ाहद तनर्ातशाओं को िी हदया र्ाता ि। वेदान्त दर्नश व्यास का किलाता ि, यद्यपप रं्कर, रार्ानुर् और अन्य अनेक भाष्यकारों ने इसरें् भसद्धान्त सम्बन्धी रौभलक पररवतनश ककए िैं। बडे-से-बडेभारतीय पवचारक अपने को प्राचीन पररपाटी का अनुयायी िी र्ानते ेरिे िैं; यद्यपप रूलसूत्रों का भाष्य करते ेसर्य उन्िोंने उनको अधधक उन्नत बना हदया ि। प्रत्येक दर्नश ने अन्य दर्नशों को सार्नेरख कर उन्नतत की ि। वतर्शान सर्य तक भी षड्दर्नशों के पवकास रें् उन्नतत िोती रिी ै। उिरीर भाष्यकार पवरोधधयों के आक्षेपों के सार्ने अपनेपरम्परागत भसद्धान्त की बराबर रक्षा करते ेआए ैं।

प्रत्येक दर्नश के तनर्ाणश की प्रारजम्भक अवस्था रें् दार्तशनक पवचार का एक प्रकार का उबाल-सा आता ि र्ो आगे ेचल कर एक पवर्ेष स्थल पर सूत्ररूप रें् संक्षक्षप्त आकार धारण करता ि। इसके पश्चात् सूत्रों के भाष्यों

---

12 पववीट इण्ट्रोडक्र्न टू र्ांकरभाष्य, पृषठ 12।

13 ककसी-न-ककसी रूप रें् ये दर्नश-पद्धततयों ईसवी सन् से पूव शअवश्य रिी िोंगी। रै्तनयों के प्राचीन धाभर्कश साहित्य रें् वैर्ेपर्षक, बौद्धदर्नश, सांख्य, लोकायत और र्ाजस्ततन्त्र का उल्लेख पाया र्ाता ि। बेपरकृत 'संस्कृत भलटरेचर', पृषठ 236, हटप्पणी 249)। और देणखए, 'लभलतपवस्तर', 12; 'चरकसंहिता', र्िाभारत, नारायणीय पवभाग।

भारतीय दर्नश-2 26 का सर्य आता िै। कफर उन पर हटप्पणणयां, टीकाएं ंएवंसारभूत व्याख्याएं ंआती िैं, जर्नके कारण रौ्भलक

भसद्धान्त र्ें बिुत-सा पररवतनश, सुधार व पवस्तार भी िो र्ाता िै। भाष्य प्रश्निोर के रूप र्ें िोते िैं, क्योंकक उपतनर्षदों के सर्य से िी इस पद्धतत को र्टल पवर्षय को पवर्द रूप र्ें सर्झानेका एकर्ात्र उपयुक्त साधन सर्झा र्ाता रिा िै। इस प्रकार भाष्यकार को पवरोधी पवचारों का उिर देते िुए र्ौभलक भसद्धान्त के सर्थनश का उिर् अवसर प्राप्त िो र्ाता िै और इस पवधध से उन्िींपवचारों की पुनः स्थापना करते िुए अन्यान्य पवचारों की तुलना र्ें उसकी उत्कृष्टता भसद्ध िो र्ाती िै।

4. सार्ान्य पवचारधाराएं

छः के छः दर्नश कुछ र्ौभलक भसद्धान्तों र्ें परस्पर एकर्त िैं।'[14] वेद की प्रार्ाणणकता र्ान्य िोनेसे ध्वतनत िोता िै कक इन सभी दर्नशों का पवकास पवचारधारा के एक िी आहदर् स्रोत से िुआ िै। हिन्दू भर्क्षकों ने

भूतकाल के अपनेपूवपुशरुर्षों से प्राप्त ज्ञान का उपयोग इसभलए भी ककया क्योंकक इस आधार पर व्यक्त ककए गए पवचार सरलता से सर्झ र्ें आ सकते थे। यद्यपप अपवद्या, र्ाया, पुरुर्ष और र्ीव आहद पाररभापर्षक बदों का प्रयोग यि प्रकट करता िै कक पवभभन्न दर्नशों की भार्षा एक सर्ान िै, तो भी इस बात को ध्यान र्ें रखना चाहिए कक उक्त पाररभापर्षक बदों का प्रयोग भभन्न-भभन्न दर्नशों र्ें भभन्न-भभन्न अथों र्ें िुआ िै। पवचारर्ास्त्र के इततिास र्ें प्रायः ऐसा िोता िै कक उन्िीं बदों और पररभार्षाओंका भभन्न-भभन्न सम्प्रदाय वाले अपनेभभन्न-भभन्ने ेअथों र्ें प्रयोग करते िैं। प्रत्येक दर्नश अपनेपवर्ेर्ष भसद्धान्त के प्रततपादन र्ें सवोच्च धाभर्कश पववेचेन की उसी प्रचभलत भार्षा का प्रयोग आवश्यक पररवतनशों के साथ करता िै। इन दर्नशर्ास्त्रों र्ें दार्तशनक पवज्ञान आत्र्चेतन रूप र्ें पवद्यर्ान िै। वेदों र्ें उजल्लणखत अध्यात्र् अनुभवों की ताककशक आलोचना इन ग्रन्थों का पवर्षय िै। ज्ञान की यथाथतशा और उसको प्राप्त करने के साधन प्रत्येक दर्नश का एक र्ुख्य अध्याय िैं। प्रत्येक दार्तशनक योर्ना ज्ञान के सम्बन्ध र्ें अपना स्वतन्त्र भसद्धान्त प्रततपाहदत करती िै, र्ो उस दर्नश के प्रततपाद्य पवर्षय-अध्यात्र्पवद्या-का र्ुख्य भाग िै। अन्तदृजशष्ट, अनुर्ान और वेद-सब दर्नशों को एक सर्ान र्ान्य िैं। युजक्त और तकश को अन्तदृजशष्ट के अधीन िी स्थान हदया गया िै। र्ीवन की पूणतशा का अनुभव केवल तकश द्वारा सम्भव निीं। आत्र्चेतन का स्थान पवश्व र्ें सवोपरर निीं। कोई वस्तुआत्र्चेतना से भी ऊपर िै जर्से े अन्तदृजशष्ट, हदव्य ज्ञान, पवश्वचेतना, और ईश्वरदर्नश आहद नाना संज्ञाए ंदी गई िैं। क्योंकक िर् ठीक-ठीक इसकी व्याख्या निींकर सकते, े इसभलए िर् इसे ेउच्चतर चेतना के नार् से पुकारते िैं। र्ब कभी इस उच्च सिा की झलक र्िारे सार्नेआती िै तो िर् अनुभव करते िैंकक यि एक पपवत्र ज्योतत की सिा िै जर्सका क्षेत्र अधधक ~~नैंप्राचीन दर्नशों का जर्तना िी अधधक~~ अध्ययन ककया, उिना िी र्ें पवज्ञानभभक्षु आहद के इस र्त का अनुयायी िोता

14

गया कक र्षड्दर्नश की परस्पर भभन्नता की पृष्ठभूभर् र्ें एक ऐसे दार्तशनक ज्ञान का भण्डार िै जर्सेर् राष्रीय अथवा सवर्शान्य दर्नश कि सकते िैं, जर्सकी तुलना िर् उस पवर्ाल र्ानसरोवर से कर सकते िैं र्ो यद्यपप सुदूरू प्राचीन काल रूपी हदर्ा र्ें अवजस्थत था तो भी जर्सर्ें से प्रत्येक पवचारक को अपने उपयोग के भलए सार्ग्री प्राप्त करने ेकी अनुज्ञा भर्ली िुई थी।

- रैक्सर्ूलर : 'भसक्स भसस्टम्स ऑफ इजण्डयन कफलातफी', पृष्ठ 17

 पवस्तृत ि ै। जर्स प्रकार 'चेतना' और आत्र्चेतना का भेद परु और र्नुष्य के भेदे को प्रदभर्तश करता ै, उसी

प्रकार आत्र्चेतना और उच्चतर चेतना का भेद र्नुष्य को, रै्सा कक वि ि ै, उस र्नुष्य से भभन्न प्रदभर्तश करता ै रै्सा कक उसे े बनना चाहिए। भारतीय दर्नश का आधार एक ऐसी भावना ि ै रो केवल तकश से ऊपर ि ै, और उसका

यि र्त ि ै कक जर्स संस्कृतत की नींव केवल तकश और पवज्ञान पर िो, उसरें कायक्षशर्ता भले िी िो ककन्तु उससे प्रेरणा निीं ंभर्ल सकती।

सभी वैहदक दर्नश बौद्धों के संर्यवाद के पवरुद्ध िैंऔर एक राश्वत, अजस्थर पररवतनशर्–र् के पवपरीत, एक उद्देश्यपूण शवास्तपवकता और सत्य के पक्ष रें अपना झंडा ऊंचा करते िैं। यि सृजृष्ट-प्रवाि अनाहद ि ै और यि केवल र्न की कल्पनारात्र न िोकर वास्तपवक ि ै और एक उद्देश्य को भलए िुए ि ै। इसी को अनाहद प्रकृतत, राया अथवा पररराणु किा ि ै। उस सिा को जर्सरें नार् और रूप से रहित पवश्व जस्थत ि ै, कोई प्रकृतत, कोई राया और कोई पररराणु नार् से पुकारते िैं।'[15] यि रान भलया गया ि ै कक जर्सका प्रारम्भ ि ै उसका अन्त भी ै। अनेक हिस्सों से भर्ल कर जर्स वस्तु का तनरराणश िुआ ि ै, वि न तो तनत्य िो सकती ि ै और न अपना अजस्तत्व सदा जस्थर रख सकती ि ै। यथाथ शअजस्तत्व अपवभाज्य ि ै। देर् और काल की सीरा रें बधँा िुआ यि र्त् ् वास्तपवक निीं, क्योंकक बनना व बबगडना इसका प्रकृत स्वभाव ि ै। इससे अधधक गिराई रें कुछ ि ै-पररराणु ु और रीवात्राएं, अथवा पुरुर्ष और प्रकृतत, अथवा ब्रह्र।

सभी दर्नश इस रिान् ्पवश्वरूपी प्रवाि के दृजष्टकोण को स्वीकार करते िैं। उत्पपि, जस्थतत और पवनार् का िर् अनन्त काल सेचल रिा ि ै और अनन्त काल तक चलता रिेगा। इस भसद्धान्त का प्रगतत-सम्बन्धी पवश्वास के साथ कोई पवरोध निीं; क्योंकक इसरें सृजृष्ट की गतत के अपनेअजन्तर् लक्ष्य तक अनेक बार पिुँचने और कफर नये भसरे सेप्रारम्भ करने का प्रश्न निींउठता। उत्पपि और पवनार् का तात्पय शयिांपवश्व के नये भसरे से उत्पन्न िोनेऔर सवथशा पवनष्ट िो रानेसेनिीं। नवीन सृजृष्ट पवश्व इततिास का अगला पडाव िोता ि ै, बकक बची िुई सद् और असद् क्षर्ताओं को अपनी पूणतशा तक पिुँचने का अवसर प्राप्त िोता ि ै। इसका तात्पय शयि ि ै कक रानव रातत को नये भसरे से आत्र्दर्नश के अपनेराग शपर आरूढ़ िोनेका अवसर प्राप्त िोता ि ै। यि संसार के युगों का कभी सराप्त न िोनेवाला पवधान ि ै जर्सका कोई आरम्भकाल निीं।

पूव शरीरांसा को छोड, अन्य सभी वैहदक दर्नशों का लक्ष्य रोक्षप्राजप्त के कियात्र्क उपायों को ढूंढ़ तनकालना ि ै। रोक्ष का अथ शइन रास्त्रों के अनुसार ि ै, रीवात्रा का पाप अथवा भूलों से छूट कर अपनेरुद्ध स्वरूप को पिचानना व उसे ेप्राप्त करना। इस अंर् रें सभी दर्नशों का एक िी उद्देश्य ि ै, अथात् श ्पूण शरानभसक सन्तुलन, रीवन की पवर्षर्ताओं और अतनजश्चतताओं, दुःखों और कष्टों से छुटकारा पाना, 'एक ऐसी राजन्त रो

---

[15] पवज्ञानभभक्षु अपनेयोगवाततकश रें बिद्धाभर्ष से उद्धृत करतिैं:
"नार्रूपपवतनरुक्शतं यजस्र्न् ्सजन्तष्ठतेर्गत् ्।
तरािुः प्रकृतत केधचन्रायार्न्ये परे त्वणुर्॥्"

र्ाश्वत बनी रि' जसरें कोई संर्य पवघ्न न डाल सके और पुनर्न्शर् जर्से ेभंग न कर सके। र्ीवनरुजक्त के पवचार को, अथाश्त् ्इसी र्न् रें रुक्त िोनेके भाव को अनेक सम्प्रदायों ने स्वीकार ककया िै।

हिन्दुओं का यि एक रूल पवश्वास िै कक इस पवश्व का संचालन पूणरूशप से ककसी तनयर् के अनुसार िो रिा िै, और तो भी र्ानव को अपनेभाग्य का तनणयश करनेरें पूणतशया स्वतन्त्र रखा गया िै।

र्िरे काय शदूरू से अभी भी िर्ारा पीछा करते िैं, र्ो कुछ िर् पिले ेरिे िैं उसी के अनुसार िर्ारा वतर्शान रूप िै।

सारे दर्नश पुनर्न्शर् एवं पूवर्शन्र् रें आस्था रखते िैं। िर्ारा र्ीवन एक ऐसेर्ाग शपर एक डग िै जर्सकी हदर्ा व लक्ष्य अनन्त रें तनहित िै। इस र्ाग शरें रृतयु अन्त निीं और न िी वि बाधा िै। अधधक-से-अधधक वि नये डगों का प्रारम्भ िै। आत्र्ा का पवकास एक तनरन्तर चलनेवाली प्रकिया िै, यद्यपप भभन्न-भभन्न पडावों पर रृतयुरूपी संस्कार द्वारा बार-बार इसकी लडी टूटती रिती िै।

दर्नश िरें गन्तव्य स्थान के द्वार तक ले र्ाता िै, ककन्तु उसके अन्दर प्रवेर् निींकरा सकता। उसके भलए अन्तदृजशष्ट या आत्र्ज्ञान आवश्यक िै। िर् संसाररूपी अन्धकार रें भटक गए बच्चों के सर्ान िैं, जर्न्िें अपनेअसली रूप का ज्ञान निीं। इसीभलए िर् भयभीत िोते िैं और अपनेचारों ओर व्याप्त दु:ख रें आर्ा को लेकर धचपके िुए िैं। इसीभलए प्रकार् की आवश्यकता िै र्ो िरें वासनाओं से रुक्त करके अपने रुद्ध एवं वास्तपवक स्वरूप का दर्नश कराए और उस अवास्तपवक जस्थतत का भी पररचय दे सके जर्सरें िर् अज्ञानवर् रिे रिे िैं। इस प्रकार के अन्ततनरशीक्षण को र्ोक्ष की प्राजप्त का एकनात्र साथन स्वीकार ककया गया िै, यद्यपप अन्ततनरशीक्षण के उद्देश्य के पवर्षय रें र्तभेद अवश्य िै।'[16] अज्ञान िी बन्धन का कारण िै और इसभलए सत्य का ज्ञान प्राप्त िोनेपर िी उससे रुजक्त भर्ल सकती िै। दर्नशर्ास्त्रों का आदर् शनीततर्ास्त्र की सति से ऊपर उठने का िै। पपवत्रात्र्ा पुरुर्ष की तुलना कर्ल के उस सुन्दर पुष्प से की गई िै र्ो उस पंक से भी अभलप्त रिता िै, जर्ससे ेकक वि उत्पन्न िोता िै। उसके भलए अच्छाई ऐसा लक्ष्य निीं जर्से ेकक प्रयत्नपूवकश प्राप्त करना िोता िै, बजल्क वि अपने-आप रें एक तनजश्चत सत्य िै र्कक पाप व पुण्य इस संसार-चि रें अच्छे व बुरे र्ीवन की ओर ले र्ाते िैं, िर् अपनेसदाचारर्य र्ीवन से ऊपर उठ कर इस संसार से भी छुटकारा पा सकते िैं। सभी दर्नश िरें तन:स्वाथ शप्रेर् और तनष्कार् कर् शकी भर्क्षा देते िैंऔर सदाचार के भलए धचिरुद्धध पर बल देते िैं। भभन्न-भभन्न अनुपातों रें वे वणव्शयवस्था तथा आश्रर्-व्यवस्था के तनयर्ों का पालन करने का आदेर् देते िैं।

भारतीय दर्नश का इततिास, र्ैसा कक िर्ने पवर्षय-प्रवेर्[17] रें बताया िै, अनेक प्रकार की कहठनाइयों से पूण शिै। प्ररुख र्ास्त्रकारों और उनके ग्रन्थों के सर्य के पवर्षय रें संर्यरहित कुछ भी किा निीं र्ा सकता और

---

16 बौद्ध पवचारक धर्कशीतत शभी अपने'न्यायबबन्दु' ु नार्क ग्रंथ का प्रारम्भ इसी कथन से करते िैं कक र्नुष्य को सर्स्त इच्छाओंकी पूतत शसे ेपूव शसम्यक् ज्ञान िोना आवश्यक िै। सम्यगृजूत्रानपूपवकशा सवपुशरुर्षाथीसद्धध

17 भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड।

 ककतने िी सुप्रभसद्ध ग्रन्थकारों की ऐततिाभसकता के पवर्षय र्ें भी बिुत र्तभेद िै, ककतने िी प्रासंधगक ग्रन्थ तो

उपलब्ध निीं िैं और कततपय र्ो प्रकाभर्त िुए िैं उनर्ें से सबका अभी आलोचनात्र्क अध्ययन निीं िुआ िै। िार्ान् ्भारतीय पवचारकों ने भी भारतीय दर्नश की ऐततिाभसक दृजष्ट से छानबीन निींकी िै। र्ाधवाचाय शने अपने सवदशर्नशसंग्रि र्ें सोलि पवभभन्न दर्नशों का पववेचन ककया िै। प्रथर् खण्ड र्ें िर्नेभौततकवादी, बौद्ध और र्ैन पवचारों की चचा शकी िै। इस खण्ड र्ें िर् न्याय, वैर्ेपर्षक, सांख्य, योग, पूव शर्ीर्ांसा और वेदान्त दर्नशों का पववेचन करेंगे। र्ैव भसद्धान्त के चारों सम्प्रदायों और रार्ानुर् व पूणप्रशज्ञ के सम्प्रदायों का आधार वेदान्त सूत्र िैं, और वेभभन्न-भभन्न प्रकार सेउनकी व्याख्या करने का प्रयत्न करते िैं। पाणणतन के र्त का र्ित्त्व दार्तशनक

श ्प्रत्येक
दृजष्ट से बिुत कर् िै। वे र्ब्द की तनत्यता के सम्बन्ध र्ें र्ीर्ांसा के र्त से सिर्त िोकर स्फोट अथात
र्ब्द के अन्तगतश अथ शकी अभभव्यजक्त के अपवभाज्य रूप को स्वीकार करते िैं। वैहदक षड्दर्नशों र्ें वैर्ेपर्षक दर्नश की अधधक प्रततष्ठा निीं ंिै, बकक न्यायदर्नश का तकशपक्ष अधधक प्रचभलत िै और इसके भक्त व अनुयायी पवर्ेर्ष रूप से्बंगाल र्ें बिुत अधधक िैं। योगदर्नश का कियात्र्क प्रयोग बिुत कर् भर्लता िै, बकक पूव श र्ीर्ांसा का हिन्दू ्कानून के साथ तनकट सम्बन्ध िै। सांख्य का प्रचार निींके बराबर िै, बकक वेदान्त अपने भभन्न-भभन्न रूपों र्ें प्रायः सवत्रश छाया िुआ िै। हिन्दू-्पवचारधारा के प्रतीक इन छः दर्नशों के पवर्षय र्ें भलखतेिुए िर् अधधकतर अपना ध्यान प्राचीन र्ास्त्रों, सूत्रों तथा उनके प्रर्ुख भाष्यकारों पर िी केजन्द्रत करेंगे। अवाचशीन काल के प्रायः सभी पवचारकों के आध्याजत्र्क ग्रंथ, कुछेक अपवादों को छोड कर, पयाप्शत र्ात्रा र्ें प्रभावोत्पादक निीं िैं। उनका अध्ययन तो पवस्तृत िै; ककन्तुअवनतत के युग र्ें तनभर्तश िोनेके कारण उनके कृततत्व र्ें टीका-हटप्पणणयों व पुरानी बातों को दोिराने के अततररक्त ककसी नवीन सूर्ब की र्जक्त निीं पाई र्ाती। उनर्ें तर्कशास्त्र को अत्यधधक र्ात्रा र्ें सुपवधाएं दी गई िैं। प्रत्यक्ष को भी रिस्यर्य करके वणनश करने की प्रवृपि, आजस्तकवाद के प्रतत पक्षपात और ताजत्त्वक अनुवरशता के कारण उस पर पवर्ेर्ष ध्यान देना आवश्यक निीं िै।

प्रचभलत प्रथा के अनुसार िी, जर्सके प्रततकूल व्यविार करना व्यथ शिोगा, िर् पिले िेन्याय और वैर्ेपर्षक भसद्धान्त को िी लेंगे, र्ो िर्ें अनुभव के संसार का पवश्लेर्षण प्रदान करते िैं। कफर िर् सांख्य और योग को लेंगे, जर्नर्ें अनुभव का सिसपूण शकल्पनात्र्क वणनश ककया गया िै। इसके बाद अन्त र्ें िर् दोनों र्ीर्ांसा दर्नशों का पववेचन करेंगे, र्जनर्ें यि दर्शन का प्रयत्न ककया गया िै कक श्रुतत के हदव्य ज्ञान और दर्नश के अजन्तर् तनणयशों र्ें परस्पर सार्ंर्स्य िै। पववेचेन का इस प्रकार का िर् ऐततिाभसक कायकशाल की दृजष्ट से भले िी संगत न िो, ककन्तु ताककशक दृजष्ट से पूणतशया संगत िोगा।

दूसूरा अध्याय

न्यायर्ास्त्र का तकशसम्र्त यथाथवशाद

न्याय औरवैर्ेपर्षकन्याय़ कीप्रारजम्भकअवस्थासाहित्य औरइततिासन्यायकाक्षेत्र्-पररभार्षा का स्वरूप-प्रत्यक्ष अथवा अन्तदृजशष्ट - अनुर्ान-प्रर्ाण- पराथानुशर्ान -आगर्न-अनुर्ान-कारण-उपर्ान अथवा तुलना-आप्त प्रर्ाण-ज्ञान के अन्य रूप-तकश और वाद-सूतत-संर्यि्त्वाभास-सत्य अचवा प्रभा-राजन्त-न्याय के प्रर्ाणवाद का सार्ान्य रूल्यांकन-भौततक र्गत्–्र्ीवात्र्ा और उसकी तनयतत र्ीवात्र्ा तथा चेतना से सम्बन्ध के पवर्षय र्ें न्याय के भसद्धान्त पर कुछ आलोचनात्र्क पवचार नीततर्ास्त्र - ब्रह्र्पवद्या-उपसंिार।

1. न्याय और वैर्ेपर्षक

भारतीय पवचारधारा के अन्य दर्नश र्िां ुर्ख्यतया कल्पनापरक िैं, इन अथों र्ें कक वे संसार की अखण्ड रूप र्ें पववेचना करते िैं, विां न्याय और वैर्ेपर्षक पवश्लेर्षणात्र्क दर्नश का प्रततततनधधत्व करते िैं, और साधारण ज्ञान व पवज्ञान का आश्रय लेकेर चलते िैं तथा उनकी उपेक्षा निींकरते। इन दोनों सम्प्रदायों र्ें पवर्ेर्षत्व यि िै कक ये एक ऐसी पवधध का प्रयोग करते िैं जर्सेइनके अनुयायी वैज्ञातनक र्ानतेि।ैं ताककशक र्िंा तथा आलोचनात्र्क पवधध का प्रयोग करके, ये यि दर्ानेश ेका प्रयत्न करते िैं कक बौद्ध पवचारक जर्न पररणार्ों पर पिुँचे वे पररणार् आवश्यक रूप सेअभभर्त निींथे। ये इस बात को भी दर्ानेश ेका प्रयत्न करते िैं कक तकश िर्ें र्ीवन को सदा के भलए नश्वर एवं क्षण-क्षण र्ें पररवतनशर्ील र्ानने के भलए भी बाध्य निींकरता। इन दर्नशों का र्ुख्य उद्देश्य उन संर्यवादी पररणार्ों का तनराकरण करना िै र्ो बौद्धों के प्रत्यक्ष ज्ञानवाद से तनकलते िैं,

श ्

क्योंकक वि बाह्य यथाथ शको र्न के पवचारों र्ें भर्ला देता िै। इनका प्रवास परम्परागत तनष्कर्षों के प्रतत, अथात् अन्तर्गशत् ्र्ें रीवात्र्ा और बाह्य र्गत् ्र्ें प्रकृतत के प्रतत पवश्वास को पुनः दृढ़ करने की ओर िै और ये ऐसा केवल प्रार्ाण्य के आधार पर निीं, बजल्क तकश के आधार पर करते िैं। संर्यवाद का रो प्रवाि बाढ़ की तरि आया उसकी रोकथार् केवल आस्था द्वारा निींकी रा सकती थी, पवर्ेर्षतः र्बकक नाजस्तकों ने उसके दुगु शपर िी आिर्ण करने के भलए इजन्द्रयर्न्य ज्ञान व तकश का आधार ले रखा िो। ऐसेसर्य र्ें रीवन व धर् शके लक्ष्यों की प्राजप्त पवरुद्ध ज्ञान के साधनों व उनकी पवधधयों की गम्भीर रांचं से िी िो सकती िै। धर्शास्त्र एवं इजन्द्रयों द्वारा प्राप्त ककए रानेवालेज्ञान की रो सार्ग्री िर्ारे सम्र्ुख आती िै उसकी ताककशक छानबीन िी का प्राचीन नार् आन्वीक्षक्षकी पवद्या िै।[18] नैयातयक उस सबको सत्य रानता िै रो तकश की कसौटी पर ठीक उतर सकता िै।[19] वात्स्यायन और उद्योतकर इस पवर्षय पर बल देते िैं कक यहद न्यायदर्नश केवल रीवात्र्ा और उसकी र्ुक्त अवस्था के पवर्षय का िी प्रततपादन करता तो उपतनर्षदों से उक्त दर्नश र्ें कोई पवर्ेर्ष भेद न िोता, क्योंकक वे भी इन सर्स्याओं का पववेचन करते िैं। न्यायदर्नश की पवर्ेर्षता यिी िै कक यि आध्याजत्र्क सर्स्याओंका आलोचनात्र्क दृजष्ट से पववेचेन करता िै। वाचस्पतत के अनुसार, न्यायर्ास्त्र का उद्देश्य ज्ञान के पवर्षयों की तकशबुद्धध द्वारा आलोचना और छानवीन करना िै।'[20]

न्याय और वैर्ेपर्षक दोनों िी परम्परागत सार्ान्य दार्तशनक पदाथों, यथा देर्, काल, कारण, भौततक प्रकृतत, र्न, रीवात्र्ा और ज्ञान को लेकर उनके पवर्षय र्ें उधचत अनुसन्धान करके पवश्व की रचना का सर्ाधान करते िैं। तकशसम्र्त तत्त्व-पवभाग इस परम्परा की र्ुख्य पवर्ेर्षता रिी िै। न्याय और वैर्ेपर्षक दोनों िर्: आन्तररक तथा बाह्य र्गत् ्की व्याख्या करते िैं। न्याय अत्यन्त पवस्तार के साथ ज्ञानप्राजप्त की पद्धतत की व्याख्या करता िै और बलपूवकश उस संर्यवाद का युजक्तयुक्त पवरोध करता िै रो कक प्रत्येक पदाथ शकी अतनजश्चतता की घोर्षणा करता िै। वैर्ेपर्षक का र्ुख्य पवर्षय इजन्द्रयर्न्य ज्ञान अथवा अनुभव का पवश्लेर्षण करना िै। यि उन पदाथों के पवर्षय र्ें सार्ान्य धारणाए ुँदेता िै रो या तो प्रत्यक्ष या अनुर्ान अथवा श्रुतत के प्रर्ाण द्वारा राने राते िैं। इस प्रकार का रुख अपनाते िुए यहद न्याय और वैर्ेपर्षक रीवात्र्ाओं को वास्तपवक र्ानने के पवश्वास का सर्थनश करें तो कुछ आश्चय शनिीं। ये रीवात्र्ाए ुँअपनेचारों ओर व्याप्त वस्तुओं के पवधान र्ें परस्पर किया-प्रततकिया र्ें संलग्न िैं।

दोनों दर्नश बिुत सर्य से एक-दूसरे के पूरक र्ाने राते रिे िैं। कभी-कभी यि सुझाया राता िै कक उक्त दोनों दर्नश एक ऐसे उद्गर् से तनकली दो स्वतन्त्र पवचारधाराए ुँिैं जर्सर्ें ज्ञात पदाथों तथा ज्ञान के साधनों का पववेचन ककया गया था। परन्तु, इस पवर्षय पर तनजश्चत रूप से कुछ किना कहठन िै। बाद के ग्रंथकारों ने दोनों

प्रत्यक्षागर्ाभ्यार् ्आक्षक्षप्तरय अन्वीक्षा तया वितश इत्यान्वीक्षक्षकी (न्यायभाष्य, 1/1, 1) । आगेचन कर: 'इसेअन्वीक्षा,

18

अथात्श ्अनुसन्धान किा राता िै, क्योंकक इसका काय शप्रत्यक्ष तथा र्ब्द-प्रर्ाण के आधार पर पिले देखी िुई (ईक्षक्षत) वस्तु का कफर सेईक्षण (अनु-ईक्षण) करना िै' (न्यायभाष्य, 1/1, 1) । तकशर्ास्त्र दूसूरी धारणा का पवज्ञान िै, रै्सा कक अरस्तू का किना िै, यि अतनवाय शरूप से ज्ञान का अपनेसम्बन्ध र्ें धचन्तन करना िै।

19 बुद्धया यद् उपपन्नंतत् ्सव शन्यायर्तर् ्।

20 तुलना कीजए: प्रर्ाणेरचं परीक्षणर् ्(न्यायभाष्य तथा न्यायवाततकश तात्पय शटीका, 1/1, 1) ।

भारतीय दर्नश-2 32 दर्नशों को एक ि सारा्न्य पवचारधारा का अंग स्वीकार ककया ि।'[21] यिांतक कक वात्स्यायन के न्यायभाष्य रे्

दोनों के अन्दर भेद निींककया गया ि। वैरे्पर्षक का उपयोग न्याय के पररभर्ष्ट के रूप रे् िुआ ि।'[22] उद्योतकर के न्यायवाततकश रे् वैरे्पर्षक भसद्धान्तों का उपयोग ककया गया ि। रै्कोबी का किना ि कक 'उक्त दोनों सम्प्रदायों का सजम्श्रण बिुत पिलेआरम्भ िो गया था और उसकी पूतत शउस सर्य िुई लगती ि र्बकक न्यायवाततकश भलखा गया।"[23] ककतने िी न्यायसूत्रों रे् वैरे्पेर्षक के भसद्धांतों की पूवकशल्पना की गई ि। इर्न्िें सेर्ानतन्त्र अथवा संयुक्त दर्नश नार् सेभी पुकारा र्ाता ि, क्योंकक दोनों िी र्ीवात्र्ाओं के अनेक िोने, एक पृथक् ईश्वर की सिा, परर्ाणुरूप र्गत् ्की सिा रे् पवश्वास करते िैं, और बिुत-सी एक रै्सी युजक्तयों का उपयोग करते िैं। यद्यपप इसरे् सन्दिे निींकक उक्त दोनों दर्नश-पद्धततया ुँबिुत प्राचीन काल रे् िी एक साथ भर्ल गई थीं। कफर भी रिं ं एक ने तकश के पवर्षय का प्रततपादन ककया विांदूसूरे ने भौततक र्गत् ्की व्याख्या की। इस प्रकार दोनों रे् भेदे प्रकट िोता ि।[24] र्बकक न्याय तकश द्वारा पदाथों के ज्ञान की प्रकियाओंऔर प्रणाभलयों का वणनश करता ि, वैरे्पर्षक पदाथों की परर्ाणु द्वारा रचना की व्याख्या करता ि जर्सेन्याय ने बबना ककसी तकश के स्वयंभसद्ध स्वीकार कर भलया ि।'[25]

---

[21] देणखए, वरदरार्कृत ताककशकरक्षा, केर्वभर्श्रकृत तकशभार्षा, भर्वाहदत्यकृत सप्तपदाथी, पवश्वनाथकृत भार्षापररच्छेद और भसद्धान्तर्ुक्तावली, अन्नंभट्टकृत तकशसंग्रि और दीपपका, र्गदीर्कृत तकारू्शतृ और लीगाक्षक्ष भास्करकृत तकशकौर्ुदी। बौद्ध पवचारक आयदेशव और िररवर्नश न्याय को वैरे्पर्षक दर्नश से स्वतंत्र निींर्ानते। (उईकृत: वैरे्पर्षक कफलॉसफी, पृष्ठ 45 और 56)

[22] न्यायभाष्य, |: 1 , 4 । वात्स्यायन नेउद्धृत ककया ि। न्यायभाष्य, 2/2 34 रे् वैरे्पर्षक सूत्र, 3. 1, 16; न्यायभाष्य, 3/1 33 और 3 / 1, 6। रे् वैरे्पर्षक सूत्र, 4/1.6 ।

[23] इन्साइक्लोपीडडया ऑफ ररभलर्न एण्ड एधथक्स, खण्ड 2, पृष्ठ 201।

[24] उद्योतकर का किना ि कक 'अन्य पवज्ञानों का कायशप्रर्ाणों के पवर्षय का प्रततपादन करना निीं, यद्यपप वे उन पदाथों का प्रततपादन करते िैं र्ो उनके द्वारा र्ानेगए िैं' (न्यायवाततकश, 1/1, 1)

[25] गावें वैरे्पर्षक को न्याय का पूववशती र्ानता ि (इन्साइक्लोपीडडया ऑफ ररभलर्न एण्ड एधथक्स, खण्ड 12, पृष्ठ 569); और देणखए, कफलॉसफी ऑफ एंभर्यण्ट इजण्डया, पृष्ठ 20; रै्कोबी (र्नरल ऑफ द अरे्ररकन ओररयण्टल सोसाइटी, 31), र्बकक गोल्डस्टकर वैरे्पर्षक को न्याय की एक र्ाखा र्ात्र र्ानता ि। कीथ का झुकाव पूव शर्त की ओर ि। (इजण्डयन लॉजर्क एण्ड ऐटोभर्ज्र्, पृष्ठ 21-22)। यि अधधक तकशसम्र्त ि क्योंकक रूहढ़र्षरक तत्त्व र्ीर्ांसा के पश्चात् ्िी सार्ान्यतः सर्ालोचनात्र्क अनुसन्धान उत्पन्न िोते िैं। न्यायसूत्रों का अधधक िर्बद्ध स्वरूप ि तथा उनर्ें ब्द की तनत्यता, आत्र्ा के स्वरूप और अनुर्ान की प्रकिया की सर्स्याओं पर अधधक ध्यान हदया गया ि, जर्ससे कीथ का पवचार पुष्ट िोता ि। न्यायसूत्रों रे् ईश्वर का स्पष्ट रूप रे् उल्लेख (4/1, 19) उससेकिींअधधक ि र्ो कुछ वैरे्पर्षक नेइस प्रश्न पर किा ि। र्ारीररक कियाओंसे आत्र्ा के अजस्तत्व को भसद्ध करने ेके भलए र्ो युजक्त दी गई ि वि न्याय के र्त की तुलना रे् असंस्कृत ि। न्याय नेर्ानभसक प्रतीतत को आत्र्ा का आधार र्ाना ि। ब्रह्र्सूत्रों रे्, र्ो वैरे्पर्षक भसद्धान्त की सर्ीक्षा करते िैं, (2/2 ,1?-17) न्याय का कोई स्पष्ट उल्लेख न िोनेसेवैरे्पर्षक की प्राचीनता के र्त की पुजष्ट िोती ि। न्याय रे् र्ो 'प्रततन्त्र भसद्धान्त' का उल्लेख ि यहद उसे ेवैरे्पर्षक का संकेत सर्झा र्ाए तो इस र्त की और भी पुजष्ट िो र्ाएगी। वैरे्पर्षक सूत्रों रे् अनुर्ान के आधारों का र्ो अधधक पवस्तृत रूप रे् प्रततपादन ि और ित्वाभासों की अधधक सरल योर्ना ि, उनका र्ित्त्व तनर्ाणश-काल की दृजष्ट से ेकुछ अधधक निीं। िर्ें न्यायसूत्रों तथा वैरे्पर्षक सूत्रों रे् बिुत-सी सर्ानताएं ं भर्लती िैं। न्यायसूत्र 3/1 36; 2:1, 54 1:1, 10, 51, 28, 31, 35; 5: 1,63; 3:1, 71; 3: 2, 65 की िर्: वैरे्पर्षक सूत्र, 41, 8, 72, 20; 3:2, 4:4:2, 3, 4:1, 6-13; 7:2; 4-5; 8: 2, 5, 7: 1, 23 से तुलना कीजए। यहद कुछ वैरे्पर्षक सूत्र न्याय के पवचारों के

न्यायदर्नश को अत्यन्त प्राचीन काल से ि◌ी बिुत प्रततष्ठा के साथ देखा ग्ाता रिा ि◌ै। र्नु ने इसका सर्ावेर् श्रुतुत के अन्दर ककया ि◌ै, याज्ञवल्क्य ने भी इसेवेद के चार अंगों र्ें से एक र्ाना ि◌ै।'[26] हिन्दुओं के पाचुँ प्राचीन पाठ्यपवर्षयों-काव्य (साहित्य), नाटक, लंकार, तकश (न्यायदर्नश) और व्याकरण र्ें न्याय की भी गणना की गई ि◌ै। आगे ◌ेचल कर पवद्याथी ककसी भी पवर्षय के पवर्र्ेर्ष अध्ययन को भले ि◌ी स्वीकार करें, ककन्तु प्रारजम्भक पवर्षयों र्ें तकशर्ास्त्र अवश्य सजम्भलत था, र्ो सर्स्त पाठ्यपवर्षयों का आधार सर्झा र्ाता था। प्रत्येक हिन्दू ◌ू दर्नश न्याय द्वारा प्रततपाहदत र्ौभलक भसद्धांतों को स्वीकार करता ि◌ै। यिांतक कक न्यायदर्नश की आलोचना के भलए भी न्याय की ताककशक पररभार्षाओं का आश्रय लेता ि◌ै। इस दृजष्टकोण से न्याय एक प्रकार से सर्स्त व्यवजस्थत दर्नशपवज्ञान की भूभर्का ि◌ै।'[27]

2. न्याय की प्रारजम्भक अवस्था

आन्वीक्षक्षकी पवद्या का प्रयोग, र्ैसा कक ि◌र् ऊपर देख आए ि◌ैं, अध्यात्र्पवर्षयक सर्स्याओं की ताककशक सर्ीक्षा के भलए ि◌ुआ ि◌ै। साथ ि◌ी, इसका प्रयोग व्यापक अथ शर्ें भी ि◌ुआ ि◌ै, जर्सर्से इसर्ें सांख्य, योग और लोकायि आहद उन सर्स्त व्यवजस्थत प्रयासों का सर्ावेर् ि◌ो र्ाता ि◌ै र्ो दार्तशनक सर्स्याओंको सुलझाने के भलए ककए गए थे। इन पवभभन्न दर्नशों र्ें सर्ान रूप से प्रयुक्त ि◌ोनेवाली ताककशक पद्धतत व आलोचना के स्वरूप की ओर र्ीघ्र ि◌ी ध्यान गया ि◌ै। प्रत्येक पवज्ञान न्याय के नार् से पुकारा र्ा सकता ि◌ै, क्योंकक न्याय का र्ाजब्दक अथ शिै ककसी पवर्षय के भीतर र्ाना अथात् श ◌्उसकी पवश्लेर्षणात्र्क सर्ीक्षा करना। इसभलए ि◌र् न्यायदर्नश को, जर्नर्ें आलोचनात्र्क छानबीन की सार्ान्य योर्ना और पद्धतत का अध्ययन ककया र्ाता ि◌ै, पवज्ञानों का पवज्ञान कि सकर्तैं। र्ीर्ांसकों ने, र्ो केवल श्रुततयों के भाष्यकार ि◌ी निीं थेककन्तु ताककशक भी थे, इस प्रकार के ताककशक अध्ययन को प्रोत्सािन हदया। ि◌ो सकता ि◌ै कक कर्कशाण्ड की आवश्यकताओं के कारण ि◌ी तकशबुद्धध का उदय ि◌ुआ ि◌ो, खासकर तब र्ब कक कर्कशाण्ड की नाना पवधधयों, तनयर्ों तथा उसके फलों की ठीक-ठीक व्याख्या करने की आवश्यकता ि◌ुई। इसीभलए र्जन पवचारकों ने र्ीर्ांसार्ास्त्र की नींव रखी और उसे ◌ेउन्नत ककया उन्िोंने तकशर्ास्त्र की उन्नतत र्ें भी सिायता की।[28] र्ब गौतर् ने अन्य पवचारकों की अपेक्षा ताककशक पक्ष की व्याख्या की ओर पवर्ेर्ष ध्यान हदया तो उनके दृजष्टकोण का आन्वीक्षक्षकी के साथ तादात्म्य ि◌ो गया। इस

िी पररष्कृत रूप लगते ि◌ैं तो इससे केवल इतना ि◌ी पररणार् तनकल सकता ि◌ै कक ये सूत्र न्यायसूत्रों के बाद बने। इससे अधधकांर् वैर्ेर्षक सूत्रों की पूणवशततत्शा पर कुछ असर निींपडता।

26 याज्ञवल्क्य स्र्तृत, 1 / 3 । तुलना कीजर्ए, आत्र्ोतनर्षद्, 2, और पवष्णुपुराण 3/61

27 तुलना कीजर्ए: कौहटल्य (1/2) जर्से न्यायभाष्य 1/1 । र्ें उद्धृत ककया गया ि◌ै।

28 र्ीर्ांसा ग्रंथों के नार्ों यथा र्ाधवकृत न्यायर्ालापवस्तार, पाथसशारधथ भर्श्रकृत न्यायरत्नाकर और आपदेवकृत न्यायप्रकार् से यि स्पष्ट ि◌ै कक न्याय र्ब्द का प्रयोग र्ीर्ांसा के पयायशवाची र्ब्द के रूप र्ें ि◌ोता था। और भी देणखए आपस्तम्बकृत धर्सूत्र, 24, 8, 25, 26, 14, 31

 प्रकार एक पाररभापर्षक ब्दं, रो बिुत प्राचीन काल से सार्ान्य अयों र्ें प्रत्येक व्यवजस्थत दर्नश के भलए प्रयुक्त
िोता था, संकुधचत अथों र्ें प्रयुक्त िोनेलगा।[29]

पूव शकी जर्न श्रृंखलाबद्ध अवस्थाओं र्ें से गुर कर न्यायर्ास्त्र पवकभसत िुआ उनर्ें ताककशक वाद-पववाद का पवर्ेर्ष स्थान िै।'[30] न्याय को कभी-कभी तकशपवद्या और वादपवद्या, अथात्श ्वाद-पववाद सम्बन्धी पवज्ञान का नार् भी हदया गया िै। बिस अथवा वाद बौद्धधक र्ीवन का प्राण िै। सत्य के अन्वेर्षण के भलए इस पवधध का आश्रय लेना आवश्यक िो र्ाता िै। सत्य स्वयंर्ें एक अत्यन्त र्टल पवर्षय िै और इसीभलए बबना पवभभन्न र्जस्तष्कों के सजम्भलत सियोग के सत्य के अन्वेर्षण र्ें सफलता निीं ंभर्लती।'[31] उपतनर्षदों र्ें ऐसी पवद्वत्पररर्षदों का उल्लेख भर्लता िै जनर्ें दार्तशनक पवर्षयों पर वाद-पववाद िोते ेथे।[32] यूनानी तकशर्ास्त्र भी बिुत िद तक सोकफस्ट आन्दोलन सेपवकभसत िुआ जर्सर्ें प्रश्नोिर के रूप र्ें वाद-पववाद िोता था। वाद-पववाद की कला के अभ्यास से िी सोकफस्टों ने न केवल तकश के यथाथ शभसद्धांतों, बजल्क कुतकश और वाक्छल का भी आपवष्कार ककया। प्लेटो के 'डायलौग्स्'् से पता चलता िै कक सुकरात वाद-पववाद की कला का उपयोग सत्य के अन्वेर्षण के भलए करता था। अरस्तू ने अपनी दो पुस्तकों, टॉपपक्स तथा सोकफजस्टकल रेफयूटेन्र्स का प्रयोग पववाद-प्रततयोधगता के र्ागप्रशदर्नश के भलए ककया िै, यद्यपप वि पवरुद्ध तकश को भार्षणकला से पृथक् रखता था और तकश के भसद्धांतों को वाद-पववाद के तनयर्ों से अलग रखता था। इसी प्रकार इसर्ें संदेि निींकक गौतर् के न्यायर्ास्त्र का र्न्र् भी ऐसी िी वाद-पववाद प्रततयोधगताओं अथवा र्ास्त्राथों से िुआ, जर्नका प्रचार रार्दरबारों तथा दार्तशनकों र्ें बराबर था। ऐसे र्ास्त्राथों को तनयर्बद्ध करने के प्रयत्नों से िी तकशर्ास्त्र का पवकास िुआ। अरस्तू के सर्ान गौतर् ने भी तकश के भसद्धांतों को एक व्यवजस्थत रूप हदया, सत्य से असत्य का भेद ककया, और अनेक प्रकार के पवतण्डा व वाक्छल का पवस्तृत पववरण हदया। पिले ेसूत्र र्ें धगनाए गए सोलि पवर्षय र्ास्त्राथ श

---

29 और देणखए, र्नु, 7: 49; गौतर्कृत धर्सूशत्र, 11, रार्ायण, अयोध्याकाण्ड, 100,36, र्िाभारत, र्ाजन्तपव,श 180, 471।

30 पिलेसूत्र र्ें उन पवर्षयों की सूची धगनाई गई िै जर्नका प्रततपाद इस दर्नश र्ें ककया गया िै और ये िैं (1) प्रर्ाण, ज्ञान के साधन; (2) प्रर्ेय, ज्ञान के पवर्षय (3) संर्य, (4) प्रयोर्न; (5) दृष्टान्तः (6) भसद्धान्त, र्ान्य सत्यः (7) अवयव, पराथानुशर्ान के घटक; (8) तकश, अप्रत्यक्ष प्रर्ाण, (9) तनणयश, सत्य का तनश्चयः (10) वाद, बिसः (11) र्ल्प, तनरथकश कथन; (12) पवतण्डा, खण्डनात्र्क सर्ालोचनाः (13) िेत्वाभासः दोर्षपूणशयुजक्तया,ुँ (14) छल; (15) र्ातत, तनरथकश आपपियों और (16) तनग्रिस्थान, दोर्षारोपण के अवसर । पपछलेसात की अपेक्षा पिलेनी अधधक सिी अथों र्ें तकशसम्र्त िैं, क्योंकक पपछलेसातों का काय शअधधकतर रर्ात्र्क ज्ञान का तनपेध िै। ये भूल को भर्टाने के भलए िधथयार का कार् करते िैं, ककन्तु सत्य की प्रत्त्वथापना का काय शउतना निींकरते।

31 सुकरात नेइसका प्रयोग ककया। प्लेटो के ग्रंथ इसके र्ित्त्व को सत्य की प्राजप्त के साघन रूप र्ें दर्तत िैं। अरस्तू का किना िै कक 'कुछ व्यजक्त पवर्षय के एक पिलू को देखतिैं तथा अन्य दूसूरे पिलू को देखते िैं, ककन्तु सब भर्ल कर सब पिलुओं को देख सकते िैं' (पॉभलहटक्स) भर्ल्टन के 'एररयोपैधगहटका' तया भर्ल के 'एसे ेऑन भलबटी' र्ें तनर्ुक्शत पववाद की प्रर्ंसा की गई िै।

32 देणखए, छान्दोग्य उपतनर्षद्, 5/3 1: बृिदारण्यक उपतनर्षद् 6/2 1: प्रश्नोपतनर्षद् । 6। और देणखए, र्नु, 6: 50; 8 269; 12 106; र्िाभारत र्ाजन्तपव,श 180, 47; 246, 18। र्नु, 12: 110-111; पारार्र, 8: 19 और याज्ञवल्क्य, 1/9 तथा पवनयपपटक के पररवार र्ें इन पररर्षदों का ब्यौरा हदया गया िै।

भारतीय दर्नश-2 35 द्वारा ज्ञानप्राजप्त के साधन ि।ै[33] तकशर्ास्त्र पर भलखेगए परवतीकाल के ककतने िी ग्रंथों रे्

वाद-पववाद के तनयर्ों

पर बिस की गई िै।[34] र्ंकक वे सब ग्रंथ पववादसम्बन्धी सर्स्र्ाओंकी ओर तनदेर् करते ि।ैं[35]

र्न्त अधधकारपूवकश किता िै कक यद्यपप गौतर् का न्यायदर्नश तकशर्ास्त्र के पवर्षय को एक सन्तोर्षर्नक रूप रे् उपजस्थत करता िै कफर भी गौतर् से पूव शभी तकशर्ास्त्र पवद्यर्ान था, रै्से ेकक रै्भैर्तन से पूव शर्ीर्ांसा और पाणणतन से पूव शव्याकरण पवद्यर्ान था।'[36] छांदोग्य उपतनर्षद् रे् वाकोवाक्य का[37] वणनश भर्लता िै जर्से ेर्ंकर ने तकशर्ास्त्र'[38] िी बतलाया िै। र्िाभारत रे् भी तकशर्ास्त्र और आन्वीक्षक्षकी का उल्लेखे ि।ै'[39] यिां ंकिा गया िै कक नारद न्यावर्ास्त्र के परायानुशर्ान एवं वैर्ेपर्षक के युतत और न्यास से परररधचत थे। पवश्वनाथ कुछेक पुराणों रे् एक वाक्य उद्धृत करता िै जर्सके अनुसार न्याय की गणना वेदों के उपांगों रे् की गई ि।ै[40] ययापश बौद्धदर्नश रु्ख्यतः बुद्धध पर आधश्रत था तो भी उसके प्राचीन ग्रंथों रे् कोई व्यवजस्थत ताककशक पद्धतत निींभर्लती। केवल तकशपवद्या रे् तनपुण व्यजक्तयों का वणनश भर्लता िै। ब्रह्र्ालसिू रे् तक्की (पवतण्डावादी) और वीर्ांसी[41] का उल्लेख िै। जर्ज्झर्तनकाय रे् आए अनुर्ान सिू इस नार् से यि प्रकट िोता िै कक अनुर्ान ब्द का प्रयोग, र्ायद अनुर्ान-प्रर्ाण के भलए िुआ िै। कथावस्तु रे् पततन्ना (प्रततज्ञा), उपनय, तनग्गिा आहद ब्दों का व्यविार उनके पारररभापर्षक अथो रे् िी िुआ िै।'[42] यर्क परररभार्षाओं के पवभाग और रूपांतर के तनयर्ों सेपरररधचत िै। पततसजम्भदार्ग ब्दों और पदाथों के पवश्लेर्षण का वणनश करता िै।

---

33 और देणखए, न्यावभाष्य, 1: 1, 1।

34 ताककशक रक्षा।

35 कौहटल्य नेबिीस पारररभापर्षक ब्दों का वणनश ककया िै जर्न्िें तंत्रयुक्त संज्ञा दी गई िै। यि सूची चरकसंहिता, भसद्धधस्यान 12 और सुश्रुत संहिता, उत्तरतंत्र 65 रे् भी भर्लती िै। चरकसंहिता के आन्वीक्षक्षकी र्ाग रे् वाद-पववाद के तनयर्ों का पवस्तार के साथ प्रततपादन ककया गया िै (पवर्ानस्थान, 8)

36 डॉक्टर पवद्याभूर्षण का र्त िै कक न्यायसूत्र के रचतयता से पूव शभी अनेक लेखकों का भारतीय न्यायर्ास्त्र रे् योगदान रिा ि।ै इन लेखकों रे् दित्रेय, पुनवसुश, आत्रेय, सुलभा वैराधगनी और अष्टावि का नार् लेते िैं। ('हिस्री ऑफ इजण्डयन लॉजर्क', पृष्ठ 9-17) 1

37 7:1,2।

38 और देणखए, 'सुवान' उपतनर्षद्, 2। कुछ परवती उपतनर्षद् प्रर्ाण ब्द का प्रयोग पारररभापर्षक अथ शरे् करते िैं। देणखए, रै्त्री उपतनर्षद्, 6, 6, 24: नृभृसींितापनी, 8; सवोपतनर्षद्सार, 4; कालाजग्नरुद्रोपतनर्षद्, 7: र्ुजक्तकोपतनर्षद्, १। तैपिरीय आरण्यक रे् सूतृत अथात्श ्धर्र्शास्त्र, प्रत्यक्ष, ऐततह्य अथात्श ्परम्परा और अनुर्ान ज्ञान के चार स्रोत बताए गए िैं। और देणखए रार्ायण, 5 87-23; र्नु, 12: 105। प्राचीन ग्रंथों रे् न्याय की अनेक परररभार्षाएँ भर्लती िैं, यथा तकश (कठोपतनर्षद्, 29; र्नु, 12: 106, र्िाभारत, 2: 153), वाद (र्नु, 6/50 रार्ायण, 13-23 7 53-60), युजक्त (ऐतरेय ब्राह्र्ण, 6 29, रार्ायण, 2: 1, 13), र्त्य (र्िाभारत, 13: 4322), पवतण्डा (र्िाभारत, 2 1310,7 3022; और पाणणनी, 44, 102), छल (र्नु 8/49 रार्ायण, 457, 10), तनणयश (र्िाभारत, 13 7555, 7535), प्रयोर्न (र्नु, 7: 100; र्िाभारत, 1: 5805), प्रर्ाण (र्नु, 2/13 रार्ायण, 2 37, 21; र्िाभारत, 13 5572), प्रर्ेय (रार्ायण, 1:52, 3; र्िाभारतः। 1577 1419) देणखए, पवद्याभूर्षण की 'हिस्री ऑफ इजण्डयन लॉजर्क', पृष्ठ 25।

39 र्िाभारत, 1: 70, 42:12: 210, 221

40 न्यायसूत्रवृपि, । 1,1 ।

41 और देणखए, उदान, 6, 10।

42 और देणखए, पवभंग पृष्ठ 293 से ेलेकर बराबर।

 नेपिपकरण ताककशक भसद्धांत के प्रतत अपनी तनष्ठा प्रकट करता ि ै । भर्भलन्द के प्रश्नों र्ें न्यायदर्नश का वणनश

र्ायद नीतत के नार् सेआया ि।ै'[43] लभलतपवस्तर ने न्यायर्ास्त्र का वणनश ितेुपवद्या के नार् से ककया ि।ै र्ैन आगर्ों ने भी भारतीय न्यायर्ास्त्र की प्राचीनता को प्रर्ाणणत ककया ि।ै आयरशक्षक्षत ने र्ो ईसा की प्रथर् र्ताब्दी र्ें पवद्यर्ान था, अपनेअणुयुोग द्वार र्ें अनुर्ान के तीन पवभाग- पूववशत्, ् र्ेर्षवत् ्और सार्ान्यतोदृष्ट गौतर् के सूत्र के अनुसार िी ककए िैं। आयरशक्षक्षत केवल एक प्राचीन ग्रंथ का संकलनकिाशप्रतीत िोता ि ैजर्सका वणनश

भगवती सूत्र र्ें, ई. पू. तीसरी र्ताब्दी र्ें पाटभलपुत्र र्ें संघंहटत र्ैन भसद्धान्तों र्ें पाया र्ाता ि।ै सम्भवतः अनुर्ान-प्रर्ाण के तीन प्रकारों का भसद्धान्त ई. पू. तीसरी र्ताब्दी से भी पुराना ि।ै

न्यायर्ास्त्र का आरम्भ बौद्धकाल से पूव शिो गया था, यद्यपप उसकी वैज्ञैातनक पववेचेना बौद्धकाल के आरम्भ र्ें और र्ुख्य भसद्धान्तों की स्थापना ई. पू. तीसरी र्ताब्दी से पिले िुई। ककन्तु सूत्र-तनर्ाणश से पूव शके न्याय के ऐततिाभसक पवकास के सम्बन्ध र्ें बिुत कर् सार्ग्री उपलब्ध ि।ै

3. साहित्य और इततिास

न्यायर्ास्त्र का इततिास बीस र्ताजब्दयों र्ें फैला िुआ ि।ै गौतर् का न्यायसूत्र, र्ो पाचुँ अध्यायों र्ें बैटा ि ैजनर्ें से प्रत्येक के दो-दो पररच्छेद िैं, न्यायर्ास्त्र की प्रथर् पाठ्य-पुस्तक ि।ै वात्स्यायन के अनुसार ग्रन्थ उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा की पवधध का अनुसरण करता ि।ै प्रथर् अध्याय र्ें सार्ान्यतः सोलि पवर्षयों का वणनश ि ैजर्न पर अगले ेचार अध्यायों र्ें पवचार ककया गया ि।ै दूसूरे अध्याय र्ें संर्य के रूप का प्रततपादन ि,ै और ितेु प्रार्ाण्य का वणनश ककया गया ि।ै तीसरे अध्याय र्ें आत्र्ा के स्वरूप, भौततक दिे, इजन्द्रयों और उनके पवर्षयों, अभभज्ञान व र्न के पवर्षय र्ें पवचार ककया गया ि।ै चौथे अध्याय र्ें संकल्पर्जक्त, र्ोक, दुःख और उससे छुटकारे के पवर्षय पर पवचार ककया गया ि।ै प्रकरणवर् इस अध्याय र्ें त्रुहट और पूण शव उसके अंर्ों के परस्पर सम्बन्ध का भी वणनश ककया गया ि।ै अंततर् अध्याय र्ें र्ातत, अथात्श ्तनराधार आक्षेपों और तनग्रिस्थान अथात्श

दोर्षारोपण के अवसरों का पववेचन ककया गया ि।ै न्यायसूत्र वैहदक पवचारधारा के तनष्कर्षों को तकशसम्र्त भसद्धान्तों के आधार पर, उसके धाभर्कश एवं दार्तशनक र्तों के साथ र्ोडता ि;ै और इस प्रकार आजस्तक यथाथवशाद का तकश द्वारा सर्थनश करता ि।ै गौतर् के सूत्र, कर्-से-कर् उनर्ें से प्राचीनतर्, ई. पू. तीसरी र्ताब्दी की रचनाए ुँिैं। वि युग आहिकों अथात्श ्दैतनक पाठों, यथा पतंर्भलकृत व्याकरण र्िाभाष्य के नवाहिक का युग था। परन्तु कुछ न्यायसूत्र तनजश्चत रूप से ईसा की र्ृत्यु के पीछे बने िैं।'[44]

43 'सेिइ बुक्स ऑफ द ईस्ट', पृष्ठ 6-7।

44 र्ैकोबी का र्त ि ैकक न्यायसूत्र और न्यायभाष्य लगभग एक िी सर्य के िैं। िो सकता ि ैकक उनके बीच एक पीढ़ी का व्यवधान िो। वि इर्नर्ें दूसूरी र्ताब्दी (ईस्वी), र्बकक र्ून्यवाद का पवकास िुआ, और पाुँचवी र्ताब्दी (ईस्वी) के र्ध्य र्ें रखता ि ैर्बकक पवज्ञानवाद व्यवजस्थत रूप र्ें आया (देणखए र्नरल ऑफ हद अर्ेररकन सोसाइटी 31: 1911, पृष्ठ 2, 13)। उसका पवचार ि ैकक न्यायसूत्र र्ें जर्न बौद्ध पवचारों की आलोचना की गई ि,ै वे नागार्ुनश द्वारा सर्धथतश र्ून्यवाद के पवचार िैं जर्नका सर्य तीसरी र्ताब्दी (ईस्वी) रखा गया ि।ै वे असंग और वसुबन्धु के पवज्ञानवाद के पवचार निीं िैं जर्नका सर्य

चौथी र्ताब्दी (ईस्वी) का र्ध्य र्ाना गया िै। ककन्तु इस र्त को र्ानना कहठन िै। वात्स्यायन और वाचस्पतत दोनों का िी र्त िै कक न्यायसूत्र 4: 2, 26 र्ें पवज्ञानवाद का पवरोध ककया गया िै। िर्ें यि स्वीकार करना पडेगा कक न्यायसूत्र र्ें र्ून्यवाद का खण्डन ककया गया िै। (न्यायसूत्र 4: 1, 40, 41, 48 की िर्: र्ाध्यभर्क काररका 156 और 7: 20 के साथ तथा न्यायसूत्र 4: 1, 34-35 की चन्द्रकाततकृशत 'वृपि' पृष्ठ 64-71 के साथ तुलना कीजए। ककन्तुर्ून्यवाद नागार्ुनश से पिले का िै और वे न्यायर्ास्त्र की पररभार्षाओं से पररधचत िैं तथा परर्ाणुवाद को अस्वीकार करते िैं (न्यायसूत्र 4: 2, 18-24, 31-32 की र्ाध्यभर्क काररका, 7: 34 से तथा न्यायसूत्र 3:2, 11 और 41, 64 की तुलना कीजए)। िर् केवल यिी कि सकते िैं कक न्यायसूत्र नागार्ुनश से ेपिले का िै, अद्यपप र्ाध्यभर्क परम्परा के पश्चात् ्का िै (और देणखए, 'भारतीय दर्नश' खण्ड I, पृष्ठ 591 हटप्पणी यूई 'वैर्ेपर्षक कफलासफी' पृष्ठ 85)। लंकावतार सूत्र र्ें ताककशकों और नैयातयकों का उल्लेख िै। और यहद िर् स्र्रण रखें कक पवश्वपवज्ञान-सम्बन्धी पवचार, जर्नका न्यायसूत्र र्ें खण्डन ककया गया िै, उतने िी पुराने िैं, जर्तना कक प्रारजम्भक बौद्धदर्नश िै, तो र्ैकोबी द्वारा र्ान्य काल, जर्सका सुर्ाली नेभी सर्थनश ककया िै, क्योंकक यि न्यायसूत्र को 300 या 350 ईस्वी का बताता िै, बिुत पीछे का प्रतीत िोता िै (और देणखए यूई वैर्ेपर्षक कफलासफी' पृष्ठ 16)। गाच शका झुकाव इस ओर िै कक न्यायसूत्र पिली र्ताब्दी (ईस्वी) के िैं क्योंकक पंचभर्ख उनसेपररधचत था, जर्सेवि र्बर का सर्कालीन र्ानता िै, र्ो 100 और 300 ईस्वी के र्ध्य कभी िुआ था। गौतर् ब्रह्र्सूत्रों की पररभार्षाओं से (तुलना कीजए न्यायसूत्र 3: 2, 14-16 और ब्राह्र्सूत्र 2: 1, 24) और र्ैभर्तन के पूवशर्ीर्ांसा से (देणखए न्यायसूत्र 2:1, 61, 67; बोडासकृत इण्रोडक्र्न टू तकशसंग्रि) पररधचत िैं। बोडास का र्त िै कक वैर्ेपर्षक सूत्र 41, 4-5 बादरायणकृत परर्ाणुवाद की सर्ालोचना को आगेरखते िैं और वैर्ेपर्षक सूत्र 3: 2,9 (तुलना कीजए न्यायसूत्र, 31, 28-30) का लक्ष्य वेदान्त का यि र्त िै कक आत्र्ा को केवल शुरुतत के द्वारा िी र्ाना र्ाता िै। इसी प्रकार वैर्ेपर्षक सूत्र 4: 2. 2-3 ब्रह्र्सूत्र 2: 2, 21-22 के इस पवचार का पवरोध करता िै कक र्रीर पाचुँ या तीन तत्त्वों के संयोग का पररणार् िै। गौतर् अनेक स्थलों पर बादरायण के िी पवचारों का प्रततपादन करते िैं। देणखए, न्यायसूत्र 4: 1, 64 और 3: 2, 14-16। ब्रह्र्सूत्रों और र्ीर्ांसासूत्रों र्ें न्याय के सम्बन्ध र्ें सीधा कोई उल्लेख निीं, इस पर कभी-कभी बल हदया र्ाता िै। यि संभव िै कक व्यास ने, जर्सेगौतर् का भर्ष्य सर्झा र्ाता िै, न्याय के र्त की आलोचना करना ठीक न सर्झा िो, पवर्ेर्षकर इसभलए कक यि ईश्वर को र्ानने र्ें सिर्त था। कफर कभी-कभी यि भी किा र्ाता िै कक ब्रह्र्सूत्र 2:1, 11-13 न्याय के इस र्त को ठीक निीं र्ानता कक तकश द्वारा ईश्वर की भसद्धध िोनी चाहिए। परर्ाणुवाद और असत्य काय शपाद के भसद्धान्तों की सर्ीक्षा ब्रह्र्सूत्र 22, 10-16 और 2:1, 15-20 र्ें की गई िै। प्राचीन बौद्ध ग्रंथों र्ें ऐसी कोई सार्ग्री निींपाई र्ाती जर्ससे न्यायसूत्र के तनर्ाणशकाल का पता चल सके। कात्यायन (चौथी र्ताब्दी ई. पू.) और पतंर्भल (जर्सका र्िान् ्ग्रंथ लगभग 140 ई. पू. भलखा गया था) न्यायदर्नश से पररधचत थे। देणखए गोल्डस्टकरकृत 'पाणणतन'। भगवान् ्उपवर्ष शसे, जर्नके पवर्षय र्ें किा र्ाता िै कक उन्िोंने दोनों र्ीर्ांसाओं पर टीका भलखी थी, र्बर के उद्धरण यि तनदेर् करते िैं कक उपवर्ष शन्याय के पवचारों से अभभज्ञ थे। िररवर्नश (260 ईस्वी) न्याय के सोलि पवर्षयों से पररधचत िै। अश्वघोर्ष पंचावयव वाले पराथानुशर्ान का प्रयोग करता िै। देणखए यूई 'वैर्ेपर्षक कफलासफी' पृष्ठ 56 और 81। इसभलए िर् यि तनष्कर्ष शतनकाल सकते िैं कक न्यायसूत्र चौथी र्ताब्दी ई. पू. र्ें थे अवश्य, भले िी वे अपने वतशर्ान रूप र्ें न रिे िों। र्िार्िोपाध्याय िरप्रसाद र्ास्त्री का किना िै, "र्ें यि तनश्चय से निीं कि सकता कक न्यायसूत्र वतशर्ान रूप धारण करनेसे पूव शअनेक संर्ोधनों र्ें से न गुर्रे िों।" (र्नल ऑफ एभर्याहटक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 1905, पृष्ठ 178, और देणखए पृष्ठ 245 से ेलेकर)। वाचस्पतत ने'न्यायसूची' तथा 'न्यायसूत्रोधार' र्ें सूत्रों को संग्रि करने ेके दो प्रयत्न ककए, और इस प्रकार न्यायसूत्र की प्रार्ाण्यता के पवर्षय र्ें सन्देि प्रकट ककया। डॉ. पवद्यार्ूर्षण का र्त िै कक गीतर् नेग्रंथ का केवल पिला िी अध्याय भलखा और वि धर्सूशत्र के रचतयता बुद्ध का सर्कालीन था, र्ो भर्थभला र्ें छठी र्ताब्दी ई. पू. र्ें तनवास करता था (देणखए सैिड बुक्स आफ हिन्दूर्् न्यायसूत्र पृष्ठ 5-8 और भण्डारकर कोर्ेर्ोरेर्न वॉल्यूर्, पृष्ठ 161-162)। उनका र्त िै कक गौतर् के असली पवचार ये िैं र्ो 'वरकसहिता' र्ें िैं (पवर्ानस्थान, 8)। न्यायसूत्र और 'चरकसंहिता' र्ें बिुत-सी बातें एक सर्ान िैं ककन्तु यि किा गया िै: "न्याय भसद्धान्तों तथा वैर्ेपर्षक के पदाथों के सम्बन्ध र्ें चरक का उल्लेख न्यायसूत्रों का सर्य तनधारशरत करने र्ें अधधक र्ित्त्व निींरखता, क्योंकक उक्त ग्रंथ र्ें बिुत पररवतनश िुए और उसका रचनाकाल भी अतनजश्चत िै।" ('इजण्डयन लाजर्क एण्ड एटोभर्ज्र्' पृष्ठ 13)।

वात्स्यायन का न्यायभाष्य न्यायसूत्र पर र्ास्त्रीय टीका िै। यि प्रकट िै कक वात्स्यायन गौतर् के तुरन्त

बाद नर्िीं ुंिुआ था, क्योंकक उसके ग्रन्थ र्ें वाततकश के सन्दभ शपाए र्ाते िैं र्ो कक गौतर् के सम्प्रदाय र्ें िुए वाद-पववादों के तनष्कर्षों को सार रूप र्ें रखते िैं। वात्स्यायन ने कुछ सूत्रों की प्रकारान्तर से व्याख्या की िै, जर्ससे े प्रकट िोता िै कक उससेपूव शभी टीकाकार िो गए िैं र्ो उक्त. सब सूत्रों की व्याख्या के पवर्षय र्ें एकर्त नर्िींथे।'[45]
इसके अततररक्त, वात्स्यायन गौतर् को अत्यन्त प्राचीन काल का एक ऋपर्ष र्ानता िै और अपनी र्ान्यता के सर्थनश र्ें पतञ्भल, के र्िाभाष्य, कौहटल्य के अथशर्शास्त्र'[46] और वैर्ेपर्षक सूत्र'[47] से भी उद्धरण देता िै। 'उपायकौर्ल्य' और 'पवग्रिव्यावतनशी' ग्रन्थों का रचतयता नागार्ुनश तनजश्चत रूप र्ें वात्स्यायन से पिले िुआ,
क्योंकक वात्स्यायन ने नागार्ुनश के पवचारों का कर्िीं–कर्िींखण्डन भी ककया िै। हदग्नाग ने बौद्ध दृजष्टकोण से

न्यायसूत्र का रचतयता गौतर् था, इस पवर्षय र्ें सन्दिे प्रकट ककए गए िैं। वात्स्यायन, उद्योतकर और र्ाधव अक्षपाद को न्यायसूत्रों की रचना का श्रेय देते िैं। इस र्त का सर्थनश वाचस्पतत और र्यन्त नेभी ककया िै। 'पद्र्पुराण' (उिरखण्ड, 263) और 'स्कंदपुराण' (काभलका खण्ड, 17) के अनुसार, न्यायसूत्र का रचतयता गौतर् िै और पवश्वनाथ की भी सम्र्तत यिी िै। हिन्दू ूपरम्परा के अनुिार, गौतर् और अक्षपाद दोनों एक िैं और किा र्ाता िै कक गौतर् का िी नार् अक्षपाद था अथात्श ्जर्सके पांव र्ें आखेंुँ िों। कथा इस प्रकार किी र्ाती िै कक गीतर् ध्यान र्ें र्ग्न था और एक कुए ुंर्ें धगर पडा। ईश्वर नेदवा करके उसके पांवों र्ें देखनेकी र्जक्त दे दी जर्ससेकक वि आगेइस पवपपि र्ें न पडे। डॉ. पवद्याभूर्षण एक र्ान्य परम्परा के पवरुद्ध र्ाकर किते िैं कक "गौतर् और अक्षपाद दोनों नर्िी उक्त ग्रंथ की रचना र्ें भाग भलया िै। न्यायसूत्र र्ुख्य रूप से ेपाचुँ पवर्षयों का प्रततपादन करता िै यथा: प्रर्ाण अथाशत् ्सत्यज्ञान का साधन, (2) प्रर्ेय, सत्यज्ञान का पवर्षयः (3) वाद अथात्श ्पववेचन, (4) अवयव अथात्श ्पराथानुशगर्न के घटक, और (5) अन्यर्तपरीक्षा अथात्श ्सर्कालीन दूसूरे दार्तशनक भसद्धांतों की सर्ीक्षा। दूसूरा और तीसरा पवर्षय और सम्भवतः अपनेआहदर् रूप र्ें पिला पवर्षय भी, जर्नके अनेक उल्लेख पुरातन वैहदक, बौद्ध तथा र्ैन ग्रंथों र्ें पाए र्ातेिैं, बिुत सम्भव िै गौतर् ने िी प्रततपाहदत ककए थे जर्सकी आन्वीक्षक्षकी पवद्या उन्र्िीं से बनी िै। चौथा और पाचुँवों पवर्षय और सम्भवतः अपनेव्यवजस्थत रूप र्ें पिला पवर्षय भी अक्षपाद द्वारा आन्वीक्षक्षकी पवद्या र्ें प्रस्तुत ककया गया, और ये िी अपनेअजन्तर् रूप र्ें न्यायसूत्र किलाए। इसभलए न्यायसूत्र का असली रचतयता अक्षपाद था जर्सनेगौतर् की आन्वीक्षक्षकी पवद्या से बिुत कुछ सार्ग्री ग्रिण की।" ('हिस्री आफ इजण्डयन लाजर्क' पृषूठ 49-50। यि र्त केवल एक कल्पना िै जर्सका न तो खण्डन िी ककया र्ा सकता िै और न जर्से स्वीकार ककया र्ा सकता िै। गौतर् को न केवल 'धर्सूशत्र' का भी रचतयता र्ाना र्ाता िै, बजल्क बाल्र्ीकक रार्ायण र्ें वणणतश गौतर् ऋपर्ष भी किा र्ाता िै जर्सका सम्बन्ध अिल्या के उपाख्यान से िै। र्िाभारत (र्ातत पव श265, 45) के अनुसार र्ेघाततधथ भी गौतर् का िी एक दूसूरा नार् िै। भास कपव नेअपने'प्रततर्ा नाटक' र्ें र्ेधाततधथ का उल्लेख न्यायदर्नश के संस्थापक के रूप र्ें ककया िै "र्ानवीयं धर्शास्त्र, र्िेश्वरं योगर्ास्त्र, विाशस्पत्यं अथशर्शास्त्र, र्ेघाततधेयायशर्ास्त्रर्।्' (र्ंक 5)। और देणखए 'हिस्री आफ इजण्डयन लाजर्क' पृषूठ 766 ।

[45] देणखए न्यायभाष्य 1/1, 5/1 2,9। वात्स्यायन अपनी र्ैली र्ें अन्य व्याख्याकारों का 1/1 , 32 र्ें इस प्रकार उल्लेख करता िै: एके (कुछ), केधचत् ्(कोई-कोई), अन्ये (अन्य)। देणखए र्िाभारत, आहदपव श42-44।

[46] न्यायभाष्य 1/1, 1 और अथशर्शास्त्र 2; न्यायभाष्य 5/1 10 और र्िाभाष्य 1: 1, 3।

[47] तुलना कीजए, वैर्ेपर्षक सूत्र 4/1 6 और न्यायभाष्य 31, 33, 31, 67, वैर्ेपर्षक सूत्र 3: 1, 16 और न्यायभाष्य 2/2 34।

 वात्स्यायन के भाष्य की आलोचना की िै। इस सबसे िर् यि अनुर्ान करते िैं कक वात्स्यायन 400 ईस्वी से कुछ
पिले ेपवद्यर्ान था।'[48]

हदग्नाग के ग्रन्थ, र्ो ततब्बती अनुवादों र्ें सुरक्षक्षत िैं, ये िैं 'प्रर्ाणसर्ुच्चय' जर्स पर ग्रन्धकार का अपना तनर्ी भाष्य िै, 'न्यायप्रवेर्', 'िेतु-र्िचिर्', 'आलम्बनपरीक्षा' और 'प्रर्ाणर्ास्त्रप्रवेर्' । किा र्ाता िै कक र्ापान र्ें ये ग्रन्य लोकपप्रय िैं।'[49] हदग्नाग पाचुँवीं र्ताब्दी (ईस्वी) र्ें िुआ।[50] न्यायदर्नश के भसद्धान्तों र्ें ककतने िी आवश्यक पररवतनश र्ो प्रर्स्तपाद ने ककए थे, हदग्नाग के कारण िी ककए गए। यहद प्रर्स्तपाद को हदग्नाग का पूववशती र्ाना र्ाए तो हदग्नाग की र्ौभलकता र्ें बाधा आएगी।

उद्योतकर के 'न्यायवाततकश' (छठी र्ताब्दी ईस्वी)'[51] र्ें हदग्नाग द्वारा वात्स्यायन पर ककए गए आक्षेपों का उिर हदया गया िै। धर्कशीतत शका 'न्यायबबन्दु'ु उद्योतकर द्वारा हदग्नाग की आलोचना के उिर र्ें भलखा गया था। यहद िर् यि र्ान लें कक 'वादपवधध', जर्सका उद्योतकर ने उल्लेख ककया िै,'[52] धर्कशीतत शके 'वादन्याय' का िी दूसूरा नार् िै, और धर्कशीतत शने अपने न्यायबबन्दु'ु[53] र्ें जर्स र्ास्त्र का उल्लेख ककया िै वि उद्योतकर का वाततकश िी िै, तो उस अवस्था र्ें इन दोनों लेखकों के एक िी काल र्ें पवद्यर्ान िोनेकी कल्पना

---

48 डॉक्टर पवद्याभूर्षण का र्त िै कक वात्स्यायन दक्षक्षण भारत का तनवासी था और चौथी र्ताब्दी (ईस्वी) के र्ध्य र्ें िुआ ('हिस्री आफ इजण्डयन लाजर्क', पृष्ठ 42, 116-117; ए., 1915, वात्स्यायन पर लेख)। कीथ (इजण्डयन लाजर्क एण्ड ऐटोभर्ज्र्, पृष्ठ 28) और बोडस (इण्रोडक्र्न टू 'तकशसंग्रि') इस र्त को स्वीकार करते िैं। र्ैकोची और सुओली का झुकाव उसे ेछठी र्ताब्दी (ईस्वी) र्ें अथवा उससे ेकुछ पूव शरखने की ओर िै। िरप्रसाद र्ास्त्री वात्स्यायन को नागार्ुनश तथा आयदेशव के पीछे आनेवाला र्ानते िैं, क्योंकक वि र्िायान सम्प्रदाय के क्षणणकवाद, र्ून्यवाद, व्यजक्तत्व आहद भसद्धान्तों से पररधचत िै (देणखए र्नल आफ हद एभर्याहटक सोसाइटी आफ बंगाल, 1905, पृष्ठ 178-179)

49 उनके पवर्षयों के सम्बन्ध र्ें कुछ पवचार डॉ. पवद्याभूर्षण की 'हिस्री ऑफ इजण्डयन लॉजर्क', पृष्ठ 276-299 से ेऔर उद्योतकर के हदग्नाग के पवचारों के उल्लेखों से, र्ो न्यायवाततकश र्ें हदए गए िैं, प्राप्त िो सकते िैं।

50 तारानाचरधचत 'हिस्री आफ बुद्धधज्र्' र्ें किा र्ाता िै कक हदग्नाग कांर्ीवरर् ्के एक ब्राह्र्ण का पुत्र था र्ो र्ीघ्र िी िीनयान की भर्क्षाओं र्ें पारंगत िो गया, यद्यपप उसनेबाद र्ें वसुवन्धु से र्िायान की भर्क्षाएुँ प्राप्त की। युवान व्यांग की साक्षी के अनुसार वसुवन्धु बौद्ध िोनेसे ेपूव शन केवल बौद्धधर् शके अट्ठारि सम्प्रदायों का िो अपपतुहिन्दुओं के र्षड्दर्नश का भी पूरा पजण्डत था। वसुवन्धु को अब चौथी र्ताब्दी (ईस्वी) के पूवाधश र्ें िुआ बताया र्ाता िै और हदग्नाग 400 (ईस्वी) के लगभग रिा िोगा। काभलदास द्वारा उसके र्ेघदूत काव्य र्ें र्ो हदग्नाग का उल्लेख आया िै उससे भी इस र्त की पुजष्ट िोती िै क्योंकक काभलदास का भी विी सर्य िै (देणखए कोच 'क्लाभसकल संस्कृत भलटरेचर', पृष्ठ 31-32 और 'भारतीय दर्नश', खण्ड 1, पृष्ठ 573, हटप्पणी 2)।

51 वसुवन्धु की 'वासवदिा' र्ें उद्योतकर का उल्लेख न्याय के रक्षक के रूप र्ें आया िै (देणखए िाल का संस्करण, पृष्ठ 235)। बाण के 'िर्षचशररत' र्ें, र्ो रार्ा िर्ष शके काल र्ें भलखा गया था, 'वासवदिा' (1) का उल्लेख भर्लता िै र्ो कक उद्योतकर का उल्लेख करती िै। िर्ष शकी रार्धानी धानेश्वर र्ें थी और वि िर िालत र्ें 629-6-44 (ईस्वी) र्ें राज्य करता था, र्बकक चीनी यात्री युआन च्वांग नेभारत की यात्रा की थी। इसभलए यि धारणा बनाना सवथशा तनदोर्ष िोगा कक वि छठी र्ताब्दी (ईस्वी) र्ें था। उद्योतकर का गोत्र भारद्वार् वा और वि पार्ुपत सम्प्रदाय का था।

52 न्यायवाततकश 1: 33 ।

53 न्यायपवन्दु'ु ५, पीटसनश का संस्करण, पृष्ठ 110-111 ।

ाि सकती ि ै। धर्कशीतत शका सर्य अधधक-से-अधधक सातवीं ांर्ताब्दी का प्रारजम्भक काल र्ाना र्ा सकता ि ै।[54] नवीं ांर्ताब्दी र्ें धर्ोिर ने अपनी न्यायबबन्दु ुटीका र्ें हदग्नाग एवं धर्कशीतत शका अनुसरण ककया।

नवीं ांर्ताब्दी के पूवाधश शर्ें वाचस्पतत ने अपनी 'न्यायवातत कशतात्पय-शटीका' र्ें न्याय के प्राचीन भसद्धान्तों की कफर सेस्थापना की। उसनेन्यायर्ास्त्र पर 'न्यायरुधचतनवन्ध' एवं 'न्यायसूत्रोद्धार''[55] र्ैसे ेछोटे-छोटे ग्रन्थ भी भलखे। वाचस्पतत एक प्रततभार्ाली पवद्वान था जर्सनेअन्य दर्नशों पर भी प्रार्ाणणक टीकाए ुँ भलखीं, र्ैसे ेअद्वैत वेदान्त पर 'भार्ती' टीका और सांख्यदर्नश पर 'सांख्यतत्त्वकौर्ुदी' नार्क टीका। इसभलए उसे ेसवतशन्त्रस्वतन्त्र एवं षड्दर्नशबल्लभ की संज्ञा दी गई ि ै। उदयन (984 ईस्वी) की 'तात्पयपशररर्ुद्धध' नार्क एक बिुर्ूल्य टीका वाचस्पतत के ग्रन्थ पर भर्लती ि ै। उसका 'आत्र्तत्त्वपववेक' नार्क ग्रन्य आत्र्ा के तनत्यत्व के भसद्धान्त के सर्थनश र्ें तथा आयकशीतत शआहद बौद्ध पवचारकों की आलोचना र्ें भलखा गया था। उसका 'कुसुर्ांर्भल' ग्रन्थ न्यायर्ास्त्र के परर्ात्र्भसद्धध पवषय का प्रथर् व्यवजस्थत ग्रन्थ ि ै।[56] उसके अन्य ग्रन्थ िैं 'ककरणावभल' और 'न्यायपररभर्ष्ट' । र्यन्त की 'न्यायर्ंर्री' 'न्यायसूत्र' पर एक स्वतन्त्र टीका ि ै। र्यन्त, जर्सने वाचस्पतत का अपने ग्रन्थों र्ें उल्लेखे ककया ि ै और जर्सका उल्लेखे रत्नप्रभा एवं ांदेवसूरी द्वारा ककया गया ि ै, दसवीं ांर्ताब्दी र्ें िुआ।'[57] भासवज्ञश का 'न्यायसार', र्ैसाकक नार् से प्रकट िोता ि ै, न्यायदर्नश का सवेक्षण ि ै। वि प्रत्यक्ष, अनुर्ान और आप्त वाक्य इन तीनों प्रर्ाणों को स्वीकार करता ि ै तथा तुलना को वस्तुभसद्धध का स्वतन्त्र साधन निीं र्ानता। वि र्ैवर्तावलम्बी ि ै, सम्भवतः काश्र्ीरी र्ैव सम्प्रदाय का ि ै, और उसका सर्य दसवीं ांर्ताब्दी (ईस्वी) ि ै। वधर्ान का 'न्यायतनबन्धप्रकार्' (1225 ईस्वी) उदयन के 'न्यायतात्पयपशररर्ुद्धध' नार्क ग्रन्थ पर टीका ि ै, यद्यपप इसर्ें नव्यन्याय सम्प्रदाय के संस्थापक व वधर्ान के पपता गंगेर् के पवचारों का सर्ावेर् ककया गया ि ै। रुधचदि के 'र्करन्द' (1275 ईस्वी) र्ें वधर्ान के पवचारों का पवकास िुआ ि ै।'[58]

न्यायर्ास्त्र पर भलखे ेगए परवती ग्रन्थ वैर्ेपेर्षक के पदाथों को स्पष्ट रूप र्ें स्वीकार करते िैं, जर्न्िें वे प्रर्ेय अथात्श ्ज्ञान के पवषयों के अन्तगतश या अथ शके अन्तगतश रखते िैं, र्ो बािर प्रकार के प्रर्ेयों र्ें से एक ि ै। वरदरार् का 'ताककशकरक्षा' (बारिवीं ांर्ताब्दी ईस्वी) नार्क ग्रन्थ सर्न्वयवादी सम्प्रदाय का एक र्ित्त्वपूण शग्रन्थ

---

54 इंजत्संग उसका उल्लेख करता ि ै। देणखए ताकाकुसु : इजत्संग', पृष्ठ 58।

55 'न्यायसूत्रोद्धार' का रचतयता इस ग्रंथकार से भभन्न ि ै और वि पन्द्रिवीं र्ताब्दी र्ें िुआ था। वाचस्पतत ने भलखा ि ै कक उसका 'न्यायसूची' ग्रंथ 898 र्ें बना। यि पविर् संवत् ्प्रतीत िोता ि ै और ईस्वी सन् ्इसके अनुसार 841 िी बैठता ि ै। इसर्ें सन्देि निीं कक वि बौद्ध ताककशक रत्नकीतत् श(1000 ईस्वी) से पूव शपवद्यर्ान था।

56 र्ब उसने यि अनुभव ककया कक उसकी ईश्वरभजक्त के उिर र्ें ईश्वर कोई अनुकम्पा उसके ऊपर निीं हदखाता, तो उसने सवोच्च सिा को इन र्ब्दों र्ें सम्बोधधत ककया "अपनी र्जक्त के गव शर्ें तुर् र्ेरा। ततरस्कार करते िो, र्बकक बौद्ध नाजस्तकों का र्ोर िोनेपर तुम्िारा अजस्तत्व र्ुझ पर िी तनभरश करता था।"

ऐश्वय शर्दर्िोऽभस र्ार्वज्ञाय वतसेश

पराक्रान्तेर्षु बौद्धेर्षु र्दधीना तब जस्थततः॥

57 देणखए 'हिस्री आफ इजण्डयन लॉजर्क', पृष्ठ 147 और 'इजण्डयन लॉजर्क एण्ड एटोभर्ज्र्', पृष्ठ 33।

58 यि वधर्ान के प्रकार् अथवा उदयन की कुसुर्ांर्भल पर टीका ि ै।

 िै। वि प्रर्ेय के अन्तगतश न्याय के बारि पदाथों तथा वैर्ेपर्षक के छः पदाथों का भी सर्ावेर् करता िै। केर्व भर्श्र

की 'तकशभार्षा' (तेरिवीं र्ताब्दी के अन्त र्ें तनभर्तश) र्ें न्याय और वैर्ेपर्षक के पवचारों का सजम्र्श्रण ककया गया िै।[59]

र्ैन दर्नश के प्रर्ुख तकश-ग्रन्थ िैं: भद्रबािुकृत 'दर्वैकाभलकतनयुजक्त' (लगभग 357 ई. पू.), भसद्धसेन हदवाकर का 'न्यायावतार' (छठी र्ताब्दी ईस्वी), र्ाणणक्यनन्दी का 'परीक्षार्ुखसूत्र' (800 ईस्वी), देवसूरी का प्रर्ाणनयतत्त्वालोकालंकार' (बारिवीं र्ताब्दी ईस्वी) और प्रभाचन्द्र का 'प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड' । र्ेन पवचारकों और बौद्ध ताककशकों ने तकशर्ास्त्र के क्षेत्र को धर्शऔर अध्यात्र् पवर्षय से पृथक् रखा, र्बकक हिन्दू पवचारधारा र्ें तकशर्ास्त्र उक्त दोनों पवर्षयों सेभर्श्रत था। हिन्दू लेखेकों द्वारा भलखे गए न्यायर्ास्त्र के ग्रन्थों र्ें परर्ाणु व उनके गुणों, र्ीवात्र्ा और पुनर्नर्, परर्ात्र्ा और र्गत् तथा प्रकृतत व ज्ञान की सीर्ा-सम्बन्धी ताककशक सर्स्याओं का वणनश िै। बौद्ध व र्ैन पवचारकों ने प्राचीन न्याय के अध्यात्र् पवर्षय र्ें रुधच न लेकेर केवल ताककशक पवर्षय पर िी बल हदया और इस प्रकार नव्यन्याय के भलए र्ाग शतैयार ककया, र्ो पवरुद्ध तकश और वाद-पववाद से सम्बन्ध रखता िै।

गंगेर् का 'तत्त्वधचन्तार्णण' नव्यन्याय का एक र्ान्य ग्रन्थ िै।'[60] गंगेर् के पुत्र वधर्शान ने अपनेग्रन्थों र्ें इसी परम्परा को र्ारी रखा िै। र्यदेव ने 'तत्त्वधचन्तार्णण' पर एक टीका भलखी िै जर्सका नार् 'आलोक' (तेरिवीं र्ताब्दी) िै। वासुदेव सावभशौर् की 'तत्त्वधचन्तार्णणव्याख्या[61] को नवद्वीप सम्प्रदाय का पिला बडा ग्रन्थ र्ाना र्ा सकता िै, और यि पन्द्रिवीं र्ताब्दी के अन्त र्ें या सोलिवीं र्ताब्दी के आरम्भ र्ें भलखा गया था। सौभाग्यवर् उनर्ें बिुत प्रभसद्ध भर्ष्य भी प्राप्त िुए, जनर्ें र्ुख्य िैं: प्रभसद्ध वैष्णव सुधारक चैतन्य र्िाप्रभु, प्रभसद्ध नैय्यातयक रघुनाथ र्ो 'दीधधतत' और 'पदाथखशण्डन''[62] ग्रन्थों के रचतयता िैं, प्रभसद्ध सूतृतकार रघुनन्दन और कृष्णनन्द र्ो ताजन्त्रक पवधधयों के अधधकारी पवद्वान् र्ाने र्ाते िैं। यद्यपप गंगेर् ने केवल चार प्रर्ाणों पर िी भलखा िै और अध्यात्र् पवर्षय को स्पष्ट रूप र्ें नििंभलया िै, परन्तु रघुनाथ ने इस सम्प्रदाय के कुछ अन्य लेखेकों की भांतत अध्यात्र् पवर्षयों पर भी बिुत भलखा िै। र्गदीर् (सोलिवीं र्ताब्दी के अन्त र्ें) और गदाधर (सत्रिवींर्ताब्दी) इस सम्प्रदाय के प्रभसद्ध ताककशक िुए िैं। अन्नं भट्ट'[63] (सत्रिवीं र्ताब्दी) ने, र्ो आन्ध देर् का एक ब्राह्मण था, प्राचीन तथा नव्यन्याय और वैर्ेपेर्षक को लेकर एक व्यवजस्थत दर्नशपद्धतत पवकभसत करने का प्रयत्न ककया। यद्यपप उसके पवचारों का झुकाव अधधकतर प्राचीन न्याय की िी

---

59 डॉक्टर झा नेअपनेग्रंच 'इजण्डयन चीट', खण्ड 2 र्ें इसका अनुवाद ककया िै।

60 पवद्याभूर्षण के 'हिस्री आफ इजण्डयन लॉजर्क', पृष्ठ 407-453 र्ें इस ग्रंथ का सार हदया गया िै। गंगेर् बारिवीं र्ताब्दी के अजन्तर् चतुांर् र्ें भर्धथला र्ें रिता था। यि इससे स्पष्ट िै कक वि उदयन के ग्रंथों व भर्वाहदत्य तथा िर्ष शके उद्धरणों से पररधचत िै। 'तत्त्वधचन्तार्णण' (2: पृष्ठ 293) र्ें िर्ष शके पवचारों की आलोचना की गई िै।

61 इसका नार् 'साराभल' िै और र्ुझे बतलाया गया िै कक इसकी पाण्डुभलपप वाराणसी के सरकारी संस्कृत कॉलेर् के पुस्तकालय र्ें िै।

62 वैर्ेपर्षक की यि आर्ोचना 'पजण्डत' (24 और 25) र्ें 'पदाथतशत्त्वतनरूपण' र्ीर्ष शके अन्तगतश छपी िै।

63 'हिस्री आफ इजण्डयन लॉजर्क', पृष्ठ 388।

 ओर था। उसके द्वारा रधचत 'तकशसंग्रि' और 'दीपपका' न्याय वैर्ेपर्षक सम्प्रदाय की दो प्रभसद्ध पुस्तकें िैं।

वल्लभ का 'न्याय-लीलावती', पवश्वनाथ का 'न्यायसूत्रवृपि' (सत्रिवीं ्र्ताब्दी) आहद अन्य ग्रन्थ भी प्रर्ुख िैं।'[64]

भारतवर्ष शर्ें तकशर्ास्त्र के अध्ययन के पवकास के भभन्न-भभन्न पिलुओं को र्ानना असम्भव निीं। सबसे पिले ेआन्वीक्षक्षकी िै, जर्से ेर्िभारत र्ें न्यायर्ास्त्र के साथ पृथक् स्थान हदया गया िै। र्ीघ्र िी यि न्याय के साथ भर्ल र्ाती िै और प्राचीन सम्प्रदाय के सूत्रों र्ें िर्ें अखण्ड पवश्व का आध्याजत्र्क दृजष्टकोण भी उसके ताककशक भसद्धांत के साथ-साथ भर्लता िै। र्ैसाकक वात्स्यायन ने भलखा िै, 'सवोच्च लाभ की तभी प्राजप्त िोती िै र्बकक र्नुष्य तनम्नभलणखत की यथाथ शप्रकृतत को ठीक-ठीक सर्झ लेता िै (1) जर्से ेछोड देना िी उर्् िै (अथात्श ्कारणों सहित दुखु की र्ो अपवद्या या अज्ञान और उसके पररणार्ों के रूप र्ें िोता िै); (2) जर्ससे ेदुुःख का नार् िोता िै; दूसूरे र्ब्दों र्ें ज्ञान या पवद्या; (3) वे साधन जर्नके द्वारा दुुःख का नार् िोता िै, अथात्श ् दार्तशनक ग्रन्थ; और (4) प्राप्तव्य लक्ष्य, या सवोच्च लाभ।"[65] प्राचीन न्यायर्ास्त्र ताककशक प्रश्नों पर बिस करता िै, ककन्तु केवल बिस के पवचार सिी निीं। र्ैन व बौद्ध दार्तशनकों ने इस पवर्षय र्ें एक सवथशा भभन्न दृजष्टकोण सम्र्ुख रखा। नव्यन्याय ने केवल ज्ञानर्ात्र र्ें िी अपनी रुधच प्रकट करते िुए तकश और र्ीवन के बीच र्ो घतनष्ठ सम्बन्ध िै उसे ेसवथशा भुला हदया। तकश व अध्यात्र् पवद्या के बीच र्ो सम्बन्ध िै, उसका पवचार प्राचीन नैय्यातयका के सार्ने अधधक स्पष्ट रूप र्ें था। पवचारगत पवर्षय का पवचार के प्रार्ाणणक रूपों के साथ क्या सम्बन्ध िै, तकश के द्वारा केवल इसी का िर्ें तनश्चय िो सकता िै। नव्य नैय्यातयक अधधकतर ध्यान केवल प्रर्ाण अथात्श ्ज्ञानप्राजप्त के्साधनों और पररभार्षा के भसद्धान्त पर िी देता िै,'[66] और प्रर्ेय अथात्श ्ज्ञातव्य पदाथों के प्रश्न को बबलकुल िी छोड देता िै। साम्प्रदातयक बारीककयों, ताककशक वाक्-छल और बाल की खाल तनकालने वाले ग्रन्थ, जर्नकी रचना र्ें गंगेर् के उिराधधकाररयों ने अधधक रुधच हदखाई, बिुतों को भयभीत कर देते िैं, यिांतक कक जर्न्िोंने इनर्ें गिराई तक प्रवेर् ककया िै वे भी यि तनश्चय निीं कर सकते कक उन्िोंनेइन ग्रन्थों के पवचारों को पूरे तीर पर सर्झा िै। ऐसेभी अनेक व्यजक्त िैं जर्न्िोंनेइन ग्रन्थों की गिराई र्ें उतर कर छानबीन की िै। वे इनकी उज्ज्वल एवं आकर्षकश वाक्चातुरी से तो प्रभापवत अवश्य िुए, ककन्तु उन्र्ें तिपवरर् िी िुआ और ज्ञान की उपलजब्ध निीं िी सकी। पवर्द पवर्षय र्टलता के कारण धुधुँले प्रतीत िोनेलगे। वैभर्ष्र्य के ज्ञान के भलए लालातयत एक ताककशक र्जस्तष्क प्रायः सूत्रों के प्रेर् र्ें फंस र्ाता िै और औपचाररक पवर्षयों र्ें िी उलझे रिने से वास्तपवक तत्त्व की प्राजप्त उसे ेनिींिोती। वास्तपवक ज्ञान का स्थान पाररभापर्षक र्ब्दों की खोर् ले लेती िै। पररभार्षाएुँ, जर्नका प्रयोग वैभर्ष्र्य के ज्ञान के भलए िोना चाहिए था, कभी-कभी कहठनाइयों से बच तनकलने के भलए कार् र्ें लाई र्ाती िैं। इन ग्रंथों र्ें से कुछ के पवर्षय र्ें तो यि किा र्ा सकता िै कक उनसे ेकेवल यिी प्रकट िोता िै कक जर्स पवर्षय का ग्रंथकार को कुछ भी ज्ञान न िो उसर्ें भी पाजण्डत्य का प्रदर्नश ककस प्रकार ककया र्ा सकता िै। ऐसेव्यजक्तयों को भी, र्ो यि र्ानते िैं कक उनकी बुद्धधरूपी चक्की बिुत िी बारीक पीसती

हिन्दू ्लॉजर्क एर् पप्रर्ड शइन चाइना एण्ड

---

[64] चीन और र्ापान र्ें हिन्दू ्तकशर्ास्त्र के इततिास के भलए देणखए सुगुइरा ' र्ापान'।

[65] न्यायभाष्य, 1/1 1।

[66] लक्षणप्रर्ाणाभ्यां वस्तुभसद्धधः ।

यि किना कक नव्यन्याय
ै, यि स्वीकार करना पडता ि ै कक उनके पास पीसने लायक अनार् की करी् रिती ि ै। [67]
बुद्धध के भलए एक भर्क्षणभूभर् ि ै, अततर्योजक्तपूण शन िोगा।

4. न्याय का क्षेत्र

न्याय बर्द का अथ र्शि-वि प्रकिया जर्सके द्वारा र्जस्तष्क एक तनष्कर्ष शतक र्पुँच सके।[68] इस प्रकार 'न्याय' तकश का पयायशवाची बर्द ि ै और वि दर्नश, र्ो अन्य दर्नशों की अपेक्ेषा अधधक पूणतशा के साथ तकश पवर्षय का प्रततपादन करता ि ै, न्यायदर्नश के नार् से र्ाना र्ाने लगता ि ै। तकश दो प्रकार का ि ै र्ान्य और अर्ान्य। 'न्याय' बर्द का प्रयोग साधारण व्यविार की भार्षा र्ें ठीक या उधचत के अथ शर्ें िोता ि ै, और इसभलए ठीक या उधचत तकश के पवज्ञान का नार् िी न्याय िो गया। संकुधचत अथों र्ें 'न्याय' से तात्पय शपराथानुशर्ान तकश से ि ै,'[69] र्बकक व्यापक अथों र्ें प्रर्ाणों के द्वारा ककसी पवर्षय की सर्ीक्षा करने का नार् न्याय ि ै। इस दृजष्टकोण से यि प्रर्ाणणत करने का अथवा पवरुद्ध ज्ञान का पवज्ञान ि ै जर्सेप्रर्ाणर्ास्त्र भी किा र्ाता ि ै। प्रत्येक ज्ञान के भलए चार प्रकार की सार्ग्री की आवश्यकता ि ै: (1) प्रर्ाता, अथात्श ्ज्ञान प्राप्त करने की सार्थ्य शरखने ेवाला; (2) पदाथ श अथवा प्रर्ेय, जर्सके ज्ञान के भलए साधनों का प्रयोग ककया र्ाता ि ै; (3) ज्ञान अथवा प्रभर्तत: और (4) प्रर्ाण अथवा ज्ञान प्राप्त करने के साधन'[70]। ज्ञान प्राजप्त की प्रत्येक किया र्ें, चािे वि र्ान्य िो या अर्ान्य, तीन अवयवों का िोना आवश्यक ि ै: एक, ज्ञान प्राप्त करने वाला कता,श दूसरा, पदाथ शजर्सके अजस्तत्व का पता ज्ञानकता शको ि ै; और तीसरा, इन दोनों के बीच, र्ो अलग-अलग िैं ककन्तु पृथृक् पृथृक् करके सर्झे ेर्ा सकते ि ैं, ज्ञान का सम्बन्ध। वि ज्ञान र्ान्य ि ै अथवा अर्ान्य, यि चौथेअवयव अथात् श ्प्रर्ाण पर तनभरश करता ै।साधारण पररजस्थततयों र्ें प्रर्ाण र्ान्य ज्ञान का कियात्र्क कारण िोता ि ै।'[71]

---

[67] तुलना कीजए, बोडास 'तकशसंग्रि', पृषृठ 13; कीथ 'इजण्डयन लॉजर्क एण्ड एटोभर्ज्र्', पृषृठ 35। डॉक्टर पवद्याभूर्षण न्यायदर्नश के इततिास को तीन कालों र्ें पवभक्त करते ि ैं प्राचीन (650 ई. पू. से े100 ईस्वी तक), र्ध्य (1200 ईस्वी तक) और नव्य (900 ईस्वी से आगे)। देणखए, उनका ग्रंथ, 'हिस्री आफ इजण्डयन लॉजर्का, पृषृठ 13। नव्यन्याय के स्वरूप का पवचार प्राप्त करने ेके भलए देणखए डॉक्टर र्ैलेश्वर सेन कृत 'अ स्टडी ऑफ र्थुरानाथास तत्त्वधचन्तार्णणरिस्य', 1924 ।

[68] नीयते ेअनन इतत न्याय:।

[69] न्यायभाष्य, 1/1 , ।। वात्स्यायन नेपराथाशनुर्ान के भलए परर्न्याय बर्द का प्रयोग ककया ि ै जर्सके अपने-आप र्ें पाचुँ भाग ि ै । हदग्नाग पराथानुशर्ान के अवयवों को न्यायावयव नार् से पुकारता ि ै। और देणखए, न्यायवाततकश, 4/1 14। वाचस्पतत की 'न्यावसूची' र्ें परावानुशर्ान पवर्षयक अध्याय (1/1, 32 - 99) को न्यायप्रकरण नार् हदया गया ि ै। पवश्वनाथ का तात्पयशन्याय स्वरूप से पराथानुशर्ान का आवश्यक ढांचा ि ै। देणखए, उसकी 'न्यायसूत्रवृपि 11, 25, 11, 31;11,38:11, 10

र्ाधव (सवदशर्नशसंग्रि 11) ने न्याय बर्द का प्रयोग परावानुशर्ान dot pi अथ शर्ें ककया ि ै।

[70] प्रर्ाकरणं प्रर्ाणर्।् 'वेदान्तपररभार्षा' । भी देणखए।

[71] न्यायवाततकश, 1: 1, 1।

रिां ंवात्स्यायन प्रर्ाण की पररभार्षा करते िुए उसे ेज्ञान-प्राजप्त का साधन बताता िै, अथात् श ्'जर्सके द्वोरा ज्ञान प्राप्त करने वाला अपनेप्रर्ेय पदाथ शका ज्ञान प्राप्त करता िै,"[72] वािंउद्योतकर इसे ेज्ञोन के कारण (उपलजब्ध िेतु) के रूप र्ें र्ानता िै।'[73] वि यि स्वीकार करता िै कक प्रर्ाण की यि पररभार्षा अधधक व्यापक िै, क्योंकक ज्ञान प्राप्त करने वाला और ज्ञेय पदाथ शभी ज्ञान के कारण िैं। ककन्तु वि इसे ेइस आधार पर उधचत ठिराता िै कक 'ज्ञाता और ज्ञेय प्रर्ाण को कियार्ील करते िैं, इसभलए उन दोनों की उपयोधगता अन्य प्रकार की िै। ककन्तु प्रर्ाण की उपयोधगता केवल ज्ञान सम्पादन के कारण िोनेर्ें िी िै। इसभलए ज्ञान का वास्तपवक कारण प्रर्ाण िी िै। रिां ंभी प्रर्ाण उपजस्थत िै विंज्ञान उत्पन्न िोता िै। प्रर्ाण की उपजस्थतत के बबना ज्ञान उत्पन्न निीिंसकता, चािे अन्य अवयव क्यों न उपजस्थत िों। इसभलए प्रर्ाण िी ज्ञान का र्ुख्य कारण िै और ज्ञान की उपलजब्ध से पिले ेप्रकट िोने वाला आणखरी अवयव िै।[74] भर्वाहदत्य ताककशक भावाय शउपजस्थत करते िुए प्रर्ाण की पररभार्षा यों करता िै, कक प्रर्ाण वि िै रो वास्तपवकता के अनुरूप प्रर्ा अथात् श ्ज्ञान को उत्पन्न करता िै।'[75] यन्त के अनुसार, प्रर्ाण उस कारण का नार् िै रो प्रर्ेय पदाथों के पवर्षय र्ें र्रहित एवं तनजश्चत ज्ञान की प्राजप्त कराता िै।"[76]

प्रर्ाता और प्रर्ेय ये अवयव प्रत्यक्ष अथवा अनुर्ान ज्ञानोपलजब्ध र्ें एक सर्ान िो सकते िैं, परन्तु ज्ञान का पवभर्षष्ट रूप प्रर्ाण िी पर तनभरश करता िै। इसी प्रकार र्न का आत्र्ा के साथ संयोग भी प्रत्येक प्रकार के ज्ञान र्ें सार्ान्य र्ध्यवती कारण िै। भभन्न-भभन्न प्रकार के ज्ञान र्ें केवल संयोग का प्रकार भभन्न-भभन्न िोता िै। ज्ञान के पवर्षय का प्रततपादन तो न्याय करता िी िै, ककन्तु उससेभी अधधक यि ज्ञान की सबसे बडी र्त,श अथात्श ्प्रर्ाण का प्रततपादन करता िै, और इसी कारण इसे ेप्रर्ाणर्ास्त्र किते िैं।[77] इससे पूव शकक िर् पदाथों के स्वरूप का अनुसन्धान करें, िर्ें ज्ञानोपलजब्ध के साधनों की र्जक्त का ज्ञान िोना चाहिए' क्योंकक 'जर्से ेर्ापना िै उसका ज्ञान र्ाप के ज्ञान पर तनभरश करता िै।"[78] प्रर्ाणर्ास्त्र न केवल पदाथों का यथाथ शज्ञान प्राप्त करने र्ें

---

72 न्यायभाष्य, 1 / 1, 1, ।

73 और देणखए, 'न्यायवाततकशतात्पयटशीका'1:1,1।

74 न्यायवाततकश 1:1 । एक अन्य आपपि पर पवचार करता िै, अचातु शयहद प्रर्ाण की उत्पपि ज्ञान प्राप्त करनेवाले प्रर्ाता तथा जे्ञेय पदाथ शके द्वारा िी िोती िै तो इन दोनों को प्रर्ाण सेपूव शपवद्यर्ान िोना चाहिए, यद्यपप वस्तुतः र्ब तक प्रर्ाण न िो िर् न प्रर्ाता और न प्रर्ेय का िी बोध प्राप्त कर सकतेिैं, जर्नकी साथकशता प्रर्ाण के िी कारण िै। उद्योतकर इस सबको स्वीकार करता िै, लेककन किता िै कक 'ये र्ब्द केवल अपनेवततर्ान कर् शके साथ सम्बन्ध पर िी तनभरश निींकरते। रसोइया रसोइया िी िै, भले वि रसोई न भी बना रिा िो। इस प्रकार के प्रयोग का कारण र्ब्द की अपनी अन्ततनहशित (अभभव्यजक्त की) क्षर्ता िै। यि क्षर्ता िर सर्य पवद्यर्ान रिती िै। इसी प्रकार, इस कथन र्ें भी कक प्रर्ाण की उत्पपि प्रर्ाता तवा प्रर्ेय पदाथ शके द्वारा िी िोती िै, कोई असंगतत निीं र्ानी र्ा सकती।'

75 सप्तपदाथी, पवभाग 144 और देणखए, 'सवदशर्नशसंग्रि', 11।

76 अव्यभभचाररणर्,् असंहदग्धार् अथोपलजब्धर्।् 'न्यायर्ंर्री', पृष्ठ 12।

77 पवश्वनाथ नेप्रर्ाण को पवष्णु के नाना नार्ों र्ें से ेएक र्ाना िै। इसी से ेयि प्रतीत िोता िै कक हिन्दू ूपवचारकों नेप्रर्ाणों के अनुसन्धान को ककतना र्ित्व हदया था।

78 र्ानाधीना र्ेयजक्तद्धधः-धचत्सुखी, 2: 18।

श ्
सियक िोता िै, बजल्क यि ज्ञान की यथाथतशा के रांचने र्ें भी सियक िोता िै।'[79] यि दोनों प्रकार का िै अथात् औपचाररक और वास्तपवक, और संगतत तथा सत्य दोनों र्ें िी रुधच रखता िै। न्यायर्ास्त्र इस धारणा को लेकेर

चनत िै कक िर्ारे र्जस्तष्क को यि र्गत् ्जर्स रूप र्ें प्रकट िोता िै वि बुित िद तक इसका पवश्वसगगश रूप

िै।

सभी प्रकार का ज्ञान यथाथ शको दर्ातशा िै (अथप्रशकार्) प्रकृतत ने िर्ारी रचना िो। प्रकार से की िै कक िर् पदाथों

का इजन्द्रयों द्वारा बोध करतेिैं, उनकी सर्ानता को ध्यान देखते िैंऔर उनसे ्अनुर्ान द्वारा एक पवर्ेर्ष

पररणार् पर पिुंचते िैं। प्रत्येक र्नुष्य, र्ो सोध सकता िै, इस किया को सम्पन्न करता िै, यद्यपप प्रत्येक के

काय शर्ें सावधानी तथा वथाथतश की दृजष्ट से परस्पर भेदे िोता िै। र्ब कभी िर्ारे र्जस्तष्क र्ें ककसी पदाथ शकी

यथाथतशा का ज्ञान प्राप्त करने के भलए चेष्ेटा उत्पन्न िोती िै तो िर्ें ताककशक आलोचना के भलए एक पवर्षा भर्लता

िै। सत्य के अन्वेर्षण का काय शर्ानव के कायकशलाप र्ें पिले ्से िी पवद्यर्ान िै। तकशर्ास्त्र उसे ्उत्पन्न निीं

करता। वि केवल उसके स्वरूप को अभभव्यक्त करके सार्ान्य भसद्धांतों के रूप र्ें उसकी व्याख्या र्ात्र करता िै।

तकशर्ास्त्र की सर्स्या अन्य भौततक पवज्ञानों को सर्स्या से अधधक भभन्न निींिै। ठीक र्जस प्रकार एक

भौततकपवज्ञानर्ास्त्री उस पवर्ेर्ष प्रकिया के पवर्षय र्ें अनुसंधान करता िै र्जसके द्वारा प्रत्येक प्राणी र्ीवन

धारण करता िै, उसी प्रकार न्यायर्ास्त्री उन तनयर्ों की व्याख्या करता िै र्ो ज्ञानप्राजप्त की प्रकिया का तनयर्न करते िैं। उसका उत्तरदातयत्व भी उसी प्रकार का िै र्जस प्रकार का कक एक भौततकपवज्ञानर्ास्त्री का िै। न्यायर्ास्त्र यि निींर्ानता कक र्ूल्य और तथ्य एक-दूसरे से बबलकुल पृथक् पदाथ िैं और इनके

पववेचन के भलए भी भभन्न-भभन्न पवधधयों का प्रयोग आवश्यक िै। र्ूल्य तथ्यों के साथ र्ुडे िुए िैं और उनका

अध्ययन उन्िींके साथ िो सकता िै। िर् कभी भी खाली र्जस्तष्क से प्रारम्भ निींकरते। अपनेतनर्ी अनुभवों

और परम्पराओं के आधार पर संसार के पवर्षय र्ें ज्ञान िर्ारे कोर्ष र्ें पिले ्से पवद्यर्ान रिता िै। श्रुतत, स्र्ृतत

एवं धर्शास्त्रों द्वारा िर्ें ज्ञान का एक गिन भसलभसला भर्ला िै। पवज्ञान की अनुर्ानात्र्क प्रणाली का उपयोग

करके न्याय उन भभन्न उपायों का वगीकरण करता िै र्जनके द्वारा िर्ें ज्ञान प्राप्त िोता िै। वे चार प्रकार के

प्रर्ाण, र्जनके द्वारा िर्ें ज्ञान प्राप्त िोता िै, ये िैं: (1) प्रत्यक्ष'[80] अथवा अन्तदृजशष्ट, (2) अनुर्ान[81] (3) उपर्ान

अथवा तुलना, और (4) र्ब्द अथात्श ्आप्त प्रर्ाण'[82]। तकशर्ास्त्र पर भलखे ्गए पाश्चात्य ग्रन्थों र्ें सार्ान्यतः

प्रत्यक्ष का प्रततपादन निीं ककया गया'[83]। ककन्तु न्यायर्ास्त्र उसे ्ज्ञान के एक र्ित्वपूण शसाधन के रूप र्ें

स्वीकार करता िै। अनुर्ान न्यायदर्नश का एक र्ुख्य पवर्षय िै और न्याय को कभी-कभी िेतुपवद्या भी किते िैं,

---

[79] तुलना कीजए डब्ल्यू. ई. र्ानसन की पररभार्षा के अनुसार, 'पवचार के पवश्लेर्षण और सर्ीक्षा का नार् न्याय िै।

[80] इजन्द्रयजन्य बोध अन्तदृजशष्ट अथवा साक्षात् ्बोध का िी एक भेद र्ात्र िै।

[81] अनुर्ान का घात्वथ शिै दूसूरे के द्वारा अथवा पीछे ककसी वस्तुका ज्ञान िोना।

[82] न्यायसूत्र 1/1, 3 चरक र्ें भर्लता िै आप्तोपदेर् अथात्श ्पवश्वसनीय कचन, प्रत्यक्ष, अनुर्ान और युजक्त अथात्श ्तनरन्तर तकश। और देणखए 'स्थानांगसूत्र' ।

[83] तुलना कीजए परन्तु र्े.् एस. भर्ल से ्र्ो किता िै "सत्य का ज्ञान िर्ें अन्तदृजशष्ट और अनुर्ान दो र्ागों से िोता िै।" ('भसस्टर् ऑफ लॉजर्क', इण्रोडक्र्न, पृष्ठ 4)।

अथात् श ्ितु का पवज्ञान जर्स पर अनुर्ान रूपी तकश तनभरश करता ि।'[84] इस दृजष्ट से न्यायदर्नश अनुर्ान का भसद्धांत ि अथात्श ्अनुर्ानवाद ि। इस प्रकार ऐसा सर्झा र्ा सकता ि कक अन्तदृजशष्ट से उत्पन्न या प्रत्यक्ष ज्ञान न्यायर्ास्त्र के क्षेत्र से बिार का पवर्षय ि। ककन्तुन्यायर्ास्त्र इस संकीण शपवचार को ठीक निींर्ानता। आप्त प्रर्ाण का सर्ावेर्, जर्सर्ें कक ईश्वरप्रदि आजस्तकवाद भी आ गया, यि प्रदभर्तश करता ि कक यि दर्नश धाभर्कश पवर्षय र्ें भी रुधच रखता ि। न्याय िर्ारे सार्ने ज्ञानप्राजप्त के इन चार साघनों की र्नोवैज्ञातनक व्याख्या प्रस्तुत करता ि। इसके अनुसार ताककशक अनुसन्धान र्नोवैज्ञातनक प्रकिया पर ध्यान हदए बबना, जर्ससे ेज्ञानरूप र्ानभसक तत्त्व की प्राजप्त िोती ि, आगेनिींचल सकता। यि र्ास्त्र उन उपायों का पवस्तार से प्रततपादन करता ि जर्नके द्वारा र्जस्तष्क आगे ेबढ़ता ि और नये-नये पररणार्ों को िर्ारे आगे ेप्रस्तुत करता ि और इस प्रततपादन र्ें यि उन पवघ्नों की ओर भी तनदेर् करता ि र्ो उक्त उपायों के प्रयोग सेआ सकते िैं। तकशर्ास्त्र का कार् र्ात्र अनुर्ानात्र्क िी निीं। इस सार्ान्य कथन से िी कक इन चार साधनों र्ें से िी ककसी के द्वारा िर्ें सारा ज्ञान प्राप्त िोता ि, ज्ञान की सर्स्या का सर्ाधान निीं िो र्ाता। सार्ान्य कथन सर्ाधान निीं ं िो सकता।

न्यायर्ास्त्र उन साधनों व उपायों का िी केवल अनुसन्धान निींकरता जर्नके द्वारा र्ानव-र्जस्तष्क ज्ञान को आत्र्सात् ्और पवकभसत करता ि। यि तककशत तथ्यों की भी व्याख्या करता ि तथा उन्िें ताककशक सूत्रों र्ें प्रकट करता ि, र्ो सत्य के अन्वेर्षण र्ें पवपवध भसद्धांतों की स्थापना करते िैं, इस प्रकार प्रर्ाण ज्ञान के र्ाप या र्ानदण्ड बनते िैं जर्नके द्वारा िर् अपनेअन्दर पिलेसे पवद्यर्ान ज्ञान की परीक्षा कर सकते िैं। इस प्रकार तकशर्ास्त्र प्रर्ाण का पवज्ञान ि, अथात्श ्साक्षी का र्ूल्य तनधारशण करता ि। यि उपलब्ध आधारों पर ज्ञान की तनभरशता को दर्ाशकर अथवा यथाथ शके साथ उसकी अनुकूलता हदखा कर ज्ञान की प्रार्ाणणकता का पववेचेन करता ि। सत्य की सर्स्या तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी भसद्धांत के भलए बिुत िी र्ित्त्वपूण शिै। न्यायर्ास्त्र यथाथतशा का तत्त्वर्ास्त्र ि और ज्ञान का भसद्धांत ि।'[85] इस प्रकार यि केवल तकशर्ास्त्र र्ात्र निीं, बजल्क ज्ञानप्राजप्त की सम्पूण शप्रकिया की व्याख्या करनेवाला र्ास्त्र ि, जर्सर्ें र्नोपवज्ञान, तकश, तत्त्वज्ञान और आजस्तकवाद-सभी का सर्न्वय ि।

5. पररभार्षा का स्वरूप

---

84 'ितुपवद्या' बर्द भर्भलन्द (सेिड बुक्स आफ द ईस्ट, खण्ड 35: पृष्ठ 6-7) र्ें आता ि, और 'लभलतपवस्तर (12) र्ें भी ि। यद्यपप 'ितु' का अथ शिै कारण अथवा आघार, ककन्तु र्ैन पवचारक इसका प्रयोग अथों र्ें करते िैं, और देणखए, 'र्नु', 2/11 र्िाभारत, आहदपव,श 1-67; र्ाजन्तपव,श 210, 22; अश्वर्ेघपव,श 85, 271 प्राचीन वैयाकरणं यथा पाणणतन, कात्यायन और पतंर्भल भी इस र्त को स्वीकार करते िैं। और देणखए, 'न्यायवाततकश', 4/1, 14 'इजण्डयन ताजर्क एण्ड एटोभर्ज्र्', पृष्ठ 1।

85 'न्यायभाष्य', 1:1, 1।

न्यायसूत्रों र्ें पववेचना ककए र्ानेवाले पवर्षयों की पिले ेउपस्थापना की र्ाती िै, कफर उनकी पररभार्षा की र्ाती िै और अन्त र्ें उनकी परीक्षा िोती िै ।[86] पररभार्षा के द्वारा वस्तु का ताजत्त्वक स्वरूप बतलाया र्ाता िै जर्ससे ेकक उसे ेअन्य पदाथों सेभभन्न करके पिचाना र्ा सके। पररभार्षा का काय शककसी पदाथ शको उन सभी पदाथों से भभन्न हदखाना िै जर्नके साथ उसके सादृश्य का रर् िो सकता िै।'[87] पदाथों र्ें उनकी पवर्ेर्षताओंकी व्याख्या ककए बबना भी परस्पर भेद ककया र्ा सकता िै। पदाथ शका असाधारण धर् शअथात्श ्पवर्ेर्ष गुण भी भेदे करने र्ें सिायक िोता िै। पररभार्षा र्ें िो सकने वाले दोर्ष तीन प्रकार के िोते िैं। उदािरण के भलए, गाय की पररभार्षा करने र्ें यहद किा र्ाए कक गाय एक ऐसा र्न्तु िै जर्सके सींग िोते िैं तो यि 'अततव्याजप्त' दोर्ष िोगा, क्योंकक ऐसी पररभार्षा गाय के अततररक्त उस पररधध के बािर वाले और र्न्तुओं पर भी लागू िो र्ाएगी। इसी प्रकार गाय की पररभार्षा करते िुए यहद किा र्ाए कक गाय एक भूरे रंग का र्न्तु िै तो यि 'अव्याजप्त' दोर्ष िोगा, क्योंकक भूरे रंग के अततररक्त रंग की गायेंभी अनेक िोने से यि पररभार्षा सारी गोर्ातत पर ठीक निींघटती। इसी प्रकार यहद गाय की पररभार्षा करते िुए किा र्ाए कक गाय एक बबना फटे खुरों वाला र्न्तु िै तो यि 'असम्भव' दोर्ष िै, क्योंकक ऐसी गाय जर्सका खुर फटा िुआ न िो, निीं ंभर्लेगी। तनदोर्ष पररभार्षा 'एक ऐसी पवर्ेर्षता दर्ातशी िै र्ो पररभापर्षत ब्द से अभभप्रेत सभी चीर्ों पर लागू िोती िै। वि न अधधक पर लागू िोती िै, न कर् पर।"[88] उसकी प्राजप्त के भलए िर् एक र्ातत से प्रारम्भ करके पीछे से उसके क्षेत्र् को संकुधचत करते-करते ेअर्ुक से इतर, अर्ुक से भभन्न आहद ब्दों का प्रयोग करते िुए[89] अनावश्यक पदाथों को उसर्ें से तनकालते र्ाते िैं।

6. प्रत्यक्ष अथवा अन्तदृजशष्ट

ज्ञान के पवपवध साधनों र्ें प्रत्यक्ष या अन्तदृजशष्ट का र्ित्त्व सबसे अधधक िै। वात्स्यायन का किना िै कक 'ब र्नुष्य ककसी पदाथ-शपवर्ेर्ष का ज्ञान प्राप्त करने की अभभलार्षा करता िै और कोई पवश्वसनीय पुरुर्ष उसे ेउस पदाथ शके पवर्षय र्ें बतला भी देता िै, तो भी उसके अन्दर एक अभभलार्षा उसकी यथाथतशा को अनुर्ान द्वारा पवर्ेर्ष-पवर्ेर्ष लक्षण र्ान कर परखने ेकी िोती िै। ककन्तुइतनेपर भी उसकी जर्ज्ञासा र्ान्त निींिोती ब तक कक वि स्वयं उसे ेअपनी आखुँों से न देख ले। अपनी आखुँों से देख लेने पर िी उसकी इच्छा पूण शिोती िै और तब वि कफर ज्ञान-प्राजप्त के भलए और ककसी साधन की खोर् निींकरता।'[90] प्रत्यक्ष ब्द द्वयथकश िै, क्योंकक इसका

---

86 उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा, 'न्यायभाष्य', 1/1, 3।

87 'न्यायभाष्य', 1/1, 3 ।

88 लक्ष्यतावच्छेदकसर्नीयतत्त्वर् ्।

89 तुलना कीजए, पृथ्वी की पररभार्षा-र्लाहदअष्टद्रव्यभभन्नं द्रव्यंपृधथवी।

90 'न्यायभाष्य', 1: 1,3। यि स्पष्ट िै कक एक िी पदाथ शकई प्रर्ाणों द्वारा र्ाना र्ा सकता िै। र्ीवात्र्ा के अजस्तत्व का ज्ञान धर्शास्त्रों, अनुर्ान तथा अन्तबोध से भी िो सकता िै। अजग्न की पवद्यर्ानता का ज्ञान अन्य पुरुर्ष द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर भी िोता िै तथा प्रत्यक्ष व अनुर्ान प्रर्ाण द्वारा भी िोता िै। ऐसी अवस्थाएुँ भी िैं र्िांज्ञान की प्राजप्त र्ें केवल एक िी प्रर्ाण व्यविार र्ें आ सकता िै। अजग्नोत्र करने से स्वग शकी प्राजप्त िोती िै, इसका ज्ञान केवल धर्शास्त्र द्वारा िी िोता िै। उद्योतकर की सम्र्तत र्ें 'ब एक िी पदाथ शपवभभन्न प्रर्ाणों द्वारा र्ाना र्ाता िै तो वि अपनेपवभभन्न रूपों र्ें र्ाना र्ाता िै' ('न्यायवाततकश', भूभर्का)।

प्रयोग पररणार् अथात्श ्सत्य के ग्रिण के भलए और उस सर्स्त प्रकिया के भलए भी िोता िै रो सत्य का ग्रिण कराती िै। यद्यपप 'प्रत्यक्ष' ब्द का व्यविार प्रारम्भ र्ें केवल इजन्द्रयों द्वारा साक्षात्कार के भलए िी िोता था, ककन्तु र्ीघ्र िी इसके अन्तगतश वि सर्स्त ज्ञान भी आ गया जर्सका ग्रिण तुरन्त िो र्ाता िै, भले िी उसर्ें इजन्द्रयों की सियता की आवश्यकता न भी िुई िो।'[91] गंगेर् ने प्रत्यक्ष का लक्षण इस प्रकार हदया िै, वि ज्ञान जर्सका ग्रिण सीधे रूप र्ें अथात्श ्साक्षात् ्िो।[92] यि ऐसा ज्ञान िै जर्सकी प्राजप्त र्ें अन्य ज्ञान की आवश्यकता साधन के रूप र्ें निीं ंिै।'[93] अन्य तीनों, अथात्श ्अनुर्ान, उपर्ान और आप्त प्रर्ाणों र्ें िर्ारी ज्ञानप्राजप्त का आधार, िर्ें:, प्रस्तुत पवषय का ज्ञान अथवा सर्ानता अथवा परम्परा आहद पिलेसे उपजस्थत रिते िैं। वि ज्ञान जर्से िर्नेपिले ेग्रिण ककया िै, िर्ारी स्र्ृतत र्ें रिता िै। प्रत्यक्ष र्ें, ज्ञान की पिले ेआवश्यकता निीं पडती। परर्ात्र्ा के अजस्तत्व का ज्ञान साक्षात्,् तुरन्त और पूण शरूप र्ें िोनेवाला ज्ञान िै और इसके भलए ककसी अन्य प्रकार के पूवबशोध की आवश्यकता निीं।

गौतर् ने इजन्द्रयर्न्य ज्ञान की पररभाषा इस प्रकार की िै। वि ज्ञान रो ककसी इजन्द्रय के साथ पदाथ शका संयोग िोनेसे प्रादुभूतश िोता िै, जर्से ब्दों द्वारा प्रकट न ककया र्ा सके, र्रहित िो और पूण शरूप से प्रकट िो रिा िो।'[94] इस पररभाषा र्ें उन पवभभन्न अवयवों का, रो ज्ञान की किया र्ें पवद्यर्ान रिते िैं, सर्ावेर् िो र्ाता िै, अथात्श ्(1) इजन्द्रया,ुँ (2) उनके द्वारा ज्ञेय पदाथ,श (3) इजन्द्रयों का पदाथ शके साथ संयोग, और (4) वि ज्ञान रो इस संयोग से उत्पन्न िोता िै। इजन्द्रयों का अजस्तत्व अनुर्ान प्रर्ाण का पवषय िै। यहद देखनेवाली चक्षुइजन्द्रय पवद्यर्ान न िो तो रंग का ज्ञान सम्भव निींिोगा।'[95] ज्ञानेजन्द्रयाुँ पाचुँ बतलाई र्ाती िैं क्योंकक इजन्द्रयर्न्य ज्ञान भी पाचुँ प्रकार का िै दर्नशात्र्क, श्रवणात्र्क, घ्राणात्र्क, स्वादात्र्क और स्पर्ात्र्शक ।[96] इन इजन्द्रयों के अधधष्ठान भी भभन्न-भभन्न िैं आखुँों के गोलक, कानों के गह्वर, नाभसका, जह्वा और त्वचा। गतत, आकृतत और

---

91 'न्यायपवन्दुटीका', पृष्ठ 7 ' ; 'इजण्डयन कफलासफी', प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 295-296 ।

92 प्रत्यक्षस्य साक्षात्काररत्वं लक्षणर्।् 'तत्त्वधचन्तार्णण', पृष्ठ 552।

93 ज्ञानकरणकं ज्ञानंप्रत्यक्षर्।् तुलना कीजए र्ैकटैगटश "एक ऐसा पवश्वास जर्सका आधार इजन्द्रय-साक्षात्कार िै..... यथाथश र्ें परर्ज्ञान किलाता िै, क्योंकक यद्यपप इसका कोई आधार तो िोता िै, अथात्श ्साक्षात्कार, पर यि अन्य ककसी पवश्वास पर आधश्रत निींिोता" (हद नेचर ऑफ एज़्ग्स्टेंस', पृष्ठ 42-43)।

94 1: 1, 4। तुलना कीजए, चरक ने प्रत्यक्ष ज्ञान की पररभाषा इस प्रकार की िै ऐसा ज्ञान रो आत्र्ा, र्न तथा इजन्द्रयों के अपनेपवषयों के सम्पकश र्ें आने से उत्पन्न िोता िै। गंगेर् गौतर् की पररभाषा की आलोचना कई आधारों पर करता िै यि अततव्याजप्त दोष से युक्त िै क्योंकक प्रत्येक प्रकार का बोध पवषय (पदाथ)श और र्न के सम्पकश से िी उत्पन्न िोता िै और र्न भी एक इजन्द्रय िै। कफर इसर्ें अप्राजप्त दोष भी िै क्योंकक यि सब बोध रो ईश्वर को इजन्द्रयों के बबना केवल अन्तदृजष्ट से िी िोता िै उक्त पररभाषा के अन्दर निींआता। इजन्द्रय क्या िै, इसका तनणयश भी केवल प्रत्यक्ष ज्ञान से िी िोता िै और उक्त पररभाषा र्ें इजन्द्रय ब्द का प्रयोग भी चिक दोष से र्ुक्त िै ।

95 क्योंकक इजन्द्रयाुँ ऐसेअवयवों से भर्ल कर बनी िैं जनर्ें नैसधगकश रूप से पवर्ेष गुण पवद्यर्ान िै, वे अपनेपवषयों (पदाथों) का तो प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकती िैं ककन्तु अपने-आपको प्रत्यक्ष निींकर सकतीं। इसका केवल एक िी अपवाद िै और वि ब्द िै ('न्यायसूत्र', 31. 68-69, 71)

96 'न्यायसूत्र', 3/1, 54

र्ातत-भेद से भी यि स्पष्ट ि ै कक इजन्द्रयाँुपाचुँ ि ैं। आखुँ, कान, नाक, जह्वा और त्वचा। इन पाचुँ इजन्द्रयों की भी प्रकृतत विी ि ै र्ैसाकक तेर्स्,् आकार्, पृथ्वी, र्ल और वायु आहद पाचुँों तत्त्वों की ि ै, जर्नके पवर्ेष गुणों, रंग, र्ब्द, गन्ध, स्वाद और स्पर् शआहद का आपवभावश उक्त पाचुँों ज्ञानेजन्द्रयों के द्वारा िोता ि ै।[97]

डैर्ीट्स के र्त सेभर्लता-र्ुलता यि र्त कक सभी इजन्द्रयाँुत्वचा के िी पररवततततश भेदे ि ै, इस आधार पर खजण्डत िो र्ाता ि ै कक एक अंधा[98] पुरुष रंग का ज्ञान प्राप्त निींकर सकता।'[99] यहद त्वचा के पवर्ेष भाग िी इजन्द्रयाँुसर्झी र्ाए ुँतो इजन्द्रयों की संख्या अनधगनत ठिरेगी, और यहद ऐिा निींि तो रंग और र्ब्द इत्याहद का ज्ञान इजन्द्रयों के द्वारा निींिो सकता।'[100] यहद एक िी इजन्द्रय का अजस्तत्व र्ाना र्ाए तो देखना, सुनना व सूंघना आहद सबका ज्ञान एक साथ िी िो र्ाना चाहिए। इसके अततररक्त त्वचा केवल उन्िींपदाथों का ज्ञान करा सकती ि ै र्ो सर्ीप र्ें ि ैं, र्बकक देखनेऔर सुनने से दूरू-दूरू के पदाथों का भी ज्ञान िोता ि ै। र्िां ंन्यायदर्नश सर्स्त इजन्द्रयों की एकता को अस्वीकार करता ि ै, विांवि त्वचा के पवर्ेष गुण को भी स्वीकार करता ि ै। सापेक्ष चेतना का उत्पन्न िोना उसी अवस्था र्ें सम्भव ि ै र्बकक र्न का सम्पकश त्वचा के साथ िो। और र्ब र्न, त्वचा के क्षेत्र से बािर पुरीतत् ्र्ें िोता ि ै, र्ैसाकक सुरुषुजप्त अवस्था र्ें िोता ि ै, तो उस सर्य चेतना बबलकुल स्थधगत अवस्था र्ें रिती ि ै।"[101]

र्न भी प्रत्यक्ष ज्ञान के भलए आवश्यक ि ै। जर्स सर्य िर् अध्ययन र्ें खूब र्ग्न िोते ि ैं तो िर्ें वायु के र्ब्द की प्रतीतत निींिोती, यद्यपप र्ब्द श्रवणेजन्द्रय से टकराता ि ै और दे्ि-भर से व्याप्त आत्र्ा का भी उसके साथ सम्बन्ध रिता िी ि ै। इसके अततररक्त, 'एक से अधधक इजन्द्रयों का सम्बन्ध अपने-अपनेपवर्षयों के साथ रिने पर भी सब पवर्षयों का एकसाथ प्रत्यक्ष ज्ञान निीं िो पाता। इसका कारण यि ि ै कक र्न का सम्पकश एक सर्य र्ें एक िी इजन्द्रय के साथ िो सकता ि ै और बबना र्न के साथ सम्पकश िुए इजन्द्रय ज्ञान निींग्रिण कर सकती ि ै। इसका अथ शयि िुआ प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें र्न का सम्पकश आवश्यक ि ै।"[102] र्ीवात्र्ा और इजन्द्रयों के बीच र्ें र्न र्ध्यस्थ रिता ि ै। यिी कारण ि ै कक एक िी सर्य र्ें भभन्न-भभन्न इजन्द्रय-ज्ञान एकसाथ निीं ंिो सकता।'[103] यद्यपप कभी-कभी र्ीघ्रता के साथ िो रिे िभर्क प्रभावों के कारण र्ात्र आभास िोनेलगता ि ै कक अनेक प्रत्यक्ष ज्ञान साथ-साथ िो रिे ि ैं। र्ब िर् पपन को कागर्ों के अनेक पन्नों र्ें घुसाते ि ैं तो ऐसा प्रतीत िोता ि ैकक पपन एक साथ िी अनेक पन्नों र्ें छेद कर रिा ि ै। ककन्तु, वस्तुतः वि एक के बाद दूसूरे पन्ने र्ें छेद करता ि ै

---

97 एक अभौततक सवव्शयापी पदाथ शको कोई बाधा निींदे सकता क्योंकक आखुँ को भौततक वस्तुओं यथा दीवार से ेबाधा भर्लती ि ै, इसभलए वि स्वयंभौततक ि ै।

98 'रत्नप्रभा' और 'भार्ती' ने (2:2,10) इसेसांख्य का र्त बताया ि ै।

99 'न्यायसूत्र' 3/1 51-52

100 देणखए, 'न्यायसूत्र', 3 / 1, 5 ।

101 देणखए, बृिदारण्यक उपतनर्षद्, 4/1 , 19; 'तकशसंग्रिदीपपका', 18।

102 न्यायभाष्य 1:1 ,4 ।

103 1:1, 16, 21, 24, 3/2 6 - 7, न्यायवाततकश, 1: 1, 16।

।104 इससे पररणार् यि तनकलता िै कक र्ब र्न का सम्पकश एक इजन्द्रय से िोता िै तो उसी सर्य से दूसूरी इजन्द्रय से उसका सम्पकश निीं िो सकता। इसभलए आयार् के पवचार से र्न को अणु ुकिा गया िै। इसके पवपरीत यहद र्न पवभु अथात् श ्दि‍े-भर र्े व्याप्त िोता तो िर् प्रत्यक्ष ज्ञान की िभर्कता की व्याख्या करने र्े अपनेको असर्थ शपाते। ज्योंिी इजन्द्रय ककसी पदाथ शके सम्पकश र्े आती िै, र्न पवद्युत्–्गतत से तुरन्त विांपिुँच र्ाता िै। इसके अततररक्त, दो व्यापक पदाथों के सम्पकश की कल्पना भी असम्भव िै। 'स्र्रण, अनुर्ान, आप्त ज्ञान, संर्य, प्रततभा, स्वप्न, ऊि (कल्पना) और आनन्द आहद का प्रत्यक्ष करना भी उसी अवस्था र्े सम्भव िै र्बकक र्न उपजस्थत िो।"[105] आत्र्ा को र्ो बोध िोते िैं वे भी अनुव्यवसाय को छोड कर, स्वयं प्रकार्य निींिैं।[106] र्ि उनका ज्ञान र्न के द्वारा उसी प्रकार िोता िै, र्ैसाकक अनुभवों और इच्छाओंका िोता िै।

वात्स्यायन र्न की गणना इजन्द्रयों के अन्दर करता िै। वि इसे ेअन्तररजन्द्रय र्ानता िै जर्सके द्वारा िर् आन्तररक र्नोभावों, इच्छाओंऔर ज्ञानों का बोध प्राप्त करते िैं। जर्स प्रकार आकार् र्े पवद्यर्ान सूय श और टेबल पर रखी िुई दवात के बारे र्े तुरन्त यि अनुभूतत िो र्ाती िै कक ये िर्से भभन्न बाह्य र्गत् ्के पदाथ श िैं, उसी प्रकार सुख और दु:ख की भावनाओं, प्रसन्नता व णखन्नता के र्नोवेगों और इच्छा व अभभलार्षा आहद की कियाओं कके बारे र्े भी तुरन्त यि अनुभूतत िोती िै कक ये र्ीवात्र्ा की पवर्ेर्षताए ुँिैं। र्ीवात्र्ा र्न िी के साधन से आन्तररक अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करता िै, र्बकक बाह्य र्गत् ्के पदाथों के ज्ञान के भलए र्न को इजन्द्रयों के सियोग की आवश्यकता िोती िै।'[107] आन्तररक तथा बाह्य र्े भेद ठीक वैसा िी निीं िै र्ैसा कक आत्र्तनष्ठ और पवर्षयतनष्ठ र्े िै, क्योंकक कागर् पर भलखने ेकी इच्छा भी प्रत्यक्ष ज्ञान का उतना िी पवर्षय िै जर्तना कक स्वयं कागर् िै। ज्ञान का सम्बन्ध ठीक उसी प्रकार का िै, पवर्षय चािे काग़ के सर्ान बाह्य िो या इच्छा के सर्ान आन्तररक िो। पवर्षय का प्रत्यक्ष और तुरन्त ज्ञान दोनों र्े एकसर्ान िै।'[108]

---

104 न्यायभाष्य, 3/2 ,58 1

105 न्यायभाष्य 1 / 1, 16 ।

106 यिांतक कक नैव्यातयक भी अनुव्यवसाय को स्वयंप्रकार्य र्ानते िैं।

107 तुलना कीजर्ए लौक द्वारा ककए गए संवेदन और धचन्तन के इस भेद के साथ कक बाह्य इजन्द्रय िर्े वाह्य र्गत् ्का ज्ञान कराती िै और अन्तररजन्द्रय िर्े अपनी र्ानभसक कियाओं का ज्ञान कराती िै। ('एसेऑन हद ह्यूर्न अण्डरस्टैंडडंग', 2 ::1,4) । उद्योतकर नेसुख तथा सुखानुभव के बीच भेद ककया िै। सुख वि पवर्षय िै जर्सका प्रत्यक्ष अनुभव िोता िै, और सुख का बोध तब उत्पन्न िोता िै र्ब र्न संवेदना के सम्पकश र्े आता िै। र्ैव्य की अनुकूलता का अनुभव त्वचा के ठण्डी वायु के साथ सम्पकश र्े आने र्े िोता िै, और र्ब र्न उसके सम्पकश र्े आता िै तब अनुकूलता का बोध उत्पन्न िोता िै।

108 र्न को अपनेतनर्ी बोध का साधन निींर्ाना र्ा सकता। पृथक् सार्तयकता का बोध र्ो र्न के अजस्तत्व का संकेत करता िै र्न के द्वारा उत्पन्न िोता िै, और इस प्रकार प्राप्त ककया गया र्न का बोध र्न की उपजस्थतत के कारण िोता िै। यि वि अवस्था निीं र्बकक र्न अपनेऊपर काय शकरता िै, क्योंकक र्न अपनेअजस्तत्व अथवा अपनेबोध का साधन निीं िै। र्न के बोध र्े र्न अपने अभभसूचक बोध के साथ भर्ल कर साधन बनता िै। इस प्रकार की उपाधध से ेयुक्त र्न स्वयं े र्न निीं। दैणखए, न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 3/1 17। उद्योतकर का र्त िै कक यौधगक कियाओं द्वारा र्न का साक्षात् ् ज्ञान िो सकता िै। (न्यायवाततकश, 3/1, 17)

वात्स्यायन के र्त र्ें र्न भी एक इजन्द्रय ि ै ि।ै जर्स प्रकार कक चक्षु ुआहद इजन्द्रयों िैं, यद्यपप दोनों र्ें अनेक स्पष्ट भेद िैं। बाह्य इजन्द्रयाँुभौततक तत्त्वों से बनी िैं, कुछ पवर्ेष पदाथों का ज्ञान कराने की िी क्षर्ता रखती िैं, और कुछ पवर्ेष गुण रखती िुई िी इजन्द्रय के रूप र्ें काय शकर सकती िैं परन्तु र्न अभौततक ि।ै सभी प्रकार के पदाथों का ज्ञान कराने र्ें एकसर्ान क्षर्ता रखता ि ै और कोई पवर्ेष गुण न रखता िुआ भी इजन्द्रय के रूप र्ें काय शकर सकता ि।ै[109] ककन्तु उद्योतकर पूणरूशपेण इस र्त का सर्थनश निीं करता। भौततक अथवा अभौततक िोना केवल उत्पन्न िुए पदाथों पर िी लागू िोता िै, बर्लक र्न कोई उत्पन्न िुआ पदाथ शनिींिै। वि यि स्वीकार करता ि ै कक र्न सब पदाथों पर काय शकरता िै, बर्लक इजन्द्रया ुँपररभर्त क्षेत्रों र्ें िी काय शकरती िैं।

इस लेखक के अनुसार, र्न की र्ीवात्र्ा के साथ सर्ानता इस अंर् र्ें ि ै कक सूतृत के भलए जर्स सम्पकश की आवश्यकता िोती ि ै उसके दोनों िी आधार िैं और दोनों उस सम्पकश के भी आधार िैं र्ो सुख का ज्ञान कराता ि।ै प्रत्येक र्ीवात्र्ा के पास अपना-अपना र्न ि ै र्ो तनत्य िै, यद्यपप यि दुबोुध तथा सूक्ष्र् ि।ै'[110] प्रत्येक र्ीवात्र्ा के साथ केवल एक िी र्न ि ै अनेर निीं, क्योंकक प्रत्येक र्ीवात्र्ा के साथ यहद अनेक र्नों का सम्बन्ध िोता तो प्रत्येक अवस्था र्ें भभन्न-भभन्न ज्ञान एकसाथ िो र्ातेऔर अनेक प्रकार की इच्छाएुँ भी एक साथ िी र्ें र्ाया करतीं बर्लक ऐसा िोता निीं ि।ै'[111]

क्योंकक प्रत्यक्ष एक प्रकार का ज्ञान िै, इसका सम्बन्ध र्ीवात्र्ा से ि।ै यद्यपप र्ीवात्र्ा और र्न का सम्पकश एक पवर्ेष अथ शर्ें तनत्य ि ै तो भी प्रत्येक र्ानभसक किया र्ें उसकी पुनरावृपि िोती रिती ि।ै न्यायर्ास्त्र र्ीवात्र्ा के भौततक पदाथों के साथ स्वाभापवक सम्बन्ध को स्वतः भसद्ध र्ान कर चलता ि।ै उसके र्त से बाह्य पदाथों की र्ीवात्र्ा के ऊपर उसी प्रकार की छाप पडनेकी कल्पना की र्ाती ि ै जर्स प्रकार कक लाख के ऊपर र्ुिर की छाप पडती ि।ै न्यायर्ास्त्र का प्रत्यक्ष-पवषयक भसद्धान्त र्रीर किया सम्बन्धी र्नोपवज्ञान की र्ुख्य सर्स्या को अथात्श ्एक बाह्य पदाथ शसे उत्पन्न उद्दीपना, र्ो इजन्द्रय पर िोती ि ै और एक याजन्त्रक सम्पकश के रूप र्ें पररणत िो र्ाती िै, ककस प्रकार एक र्नोवैज्ञातनत्र अवस्था का रूप धारण कर लेती िै, िल निीं ं करता। यि सर्स्या आर् भी, बर्लक पवज्ञान ने इतनी अधधक उन्नतत कर ली िै, एक रिस्य िी ि।ै

प्रत्यक्ष ज्ञान के उदय िोनेके भलए कता शके अततररक्त बाह्य पदाथ शका िोना भी आवश्यक ि।ै इस यथाथ श धारणा को स्वीकार कर लेने सेन्यायर्ास्त्र अपनी रक्षा ज्ञान सापेक्षतावाद से करने र्ें सर्थ िो गया, जर्सके अनुसार िर्ें केवल क्षणणक अनुभव िी िोते िैं और बाह्य पदाथ शका यथाथ शअजस्तत्व र्ानना रूढ़ पुरुषों की केवल र्र्ात्र्क कल्पना-र्ात्र ि।ै इजन्द्रय का अपनेउपयुक्त पवषय के साथ सम्पकश उस पदाथ शका चेतना के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापपत करा देता ि।ै पवषय र्ो उद्दीपक िै, तथा चेतनार्य पररणार् र्ो प्रत्यक्ष िै, दोनों के आपसी सम्बन्ध का अध्ययन ककया गया ि ै और न्यूनतर् संवेद्यता आहद के संकेतों की कर्ी निीं, यद्यपप सूक्ष्र् यन्त्र के अभाव र्ें इन प्रश्नों का सर्ाधान ठीक-ठीक भर्लना सम्भव निीं।

109 न्यायभाष्य 1/1, 4।

110 न्यायवाततक 1:1, 4 ।

111 श न्यायवाततक श 3/2, 56 ।

प्रत्यक्ष की पररभार्षा आत्र्ा तथा र्न के सम्पकश को तथा र्न और इजन्द्रयों के सम्पकश को स्वतः भसद्ध र्ान लेती ि ै र्ो सब बोधों र्ें पवद्यर्ान रिता ि ै, और 'इजन्द्रयाथ शसजन्नकर्ष'श को उक्त ज्ञान का पवर्ेर्ष लक्षण बताती ि ै।'[112] इजन्द्रयों का पदाथों के साथ सजन्नकर्ष शिोने से र्ीवात्र्ा के अन्दर र्ो पररवतनश िोता ि ै, उसी से प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न िोता ि ै। 'यहद इजन्द्रया ुँपदाथ शके साथ सम्पकश र्ें आए बबना भी ज्ञान उत्पन्न कर सकतीं ंतो वे दीवार के पीछे सेभी ज्ञान-सम्पादन करने र्ें सर्थ शिो सकतीं ं।[113] ककन्तु साधारणतः यि सम्भव निीं।'

'सजन्नकर्ष'श का अथ,श उद्योतकर के अनुसार, तनकट सम्पकश र्ात्र निीं ंि ै, बजल्क र्ात्र इजन्द्रय का पवर्षय 'बन र्ाना' अथवा इजन्द्रय के साथ एक तनजश्चत सम्बन्ध स्थापपत िो र्ाना ि ै।

पदाथ श(पवर्षय) कई प्रकार के िैं। घास का पिा एक द्रव्य ि ै, िरापन इसका एक गुण ि ै, और चूंकक गुण द्रव्य के अन्दर रिते िैं, उनका प्रत्यक्ष ज्ञान द्रव्य से अलग निीं िो सकता।'[114] द्रव्य और उनके गुण एक िी र्ातत के िोने से उनका पृथक् पृथक् अजस्तत्व निीं और इसभलए उनका ज्ञान केवल उनके आधार के ज्ञान द्वारा िी िोता ि ै। इजन्द्रय और द्रव्य के र्ध्य र्ो सम्पकश ि ै वि संयोग ि ै, ककन्तु द्रव्य और उसके गुण अथवा र्ातत और अकेले ेके र्ध्य र्ो सम्बन्ध ि ै यि उसर्ें सर्ापवष्ट रिनेसे 'सर्वाय' सम्बन्ध ि ै। उदािरण के रूप र्ें, आखुँ द्रव्य के साथ सीधेसम्पकश र्ें आती ि ै, ककन्तु उसर्ें सर्ापवष्ट रंग के साथ उसका सम्पकश केवल परोक्ष रूप र्ें िी िोता ि ै; और उससेभी अधधक परोक्ष रूप र्ें उस रंग की पवर्ेर्ष र्ातत के साथ िोता ि ै र्ो उस रंग र्ें सर्ापवष्ट िोती ि ै, र्ो उस पदाथ शर्ें रिता ि ै, जर्सके साथ आखुँ का सम्पकश िुआ ि ै।

इजन्द्रयाथ शसजन्नकर्ष शछः भभन्न-भभन्न प्रकार का बताया गया ि ै। पिला केवल संयोग र्ात्र ि ै, र्ैसे ेकक र्र् एक घडे को देखते िैं। दूसरा द्रव्य के गुण अथवा उसकी र्ातत के साथ सम्पकश जर्से संयुक्त सर्वाय किते िैं, र्ैसे ेकक घडे के रंग आहद का ज्ञान िर्ें िोता ि ै। तीसरी संयुक्त सर्वेत-सर्वाय, र्ैसेकक घडे के रंग की पवर्ेर्ष र्ातत का, र्ो उसके भी अन्तगतश ि ै, ज्ञान िोता ि ै। चौथा सर्वाय ि ै, र्ैसे ेकक िर् र्ब्दरूपी गुण का ज्ञान प्राप्त करते िैं[115], र्िां ंकक कान और र्ब्द के बीच सर्वाय सम्बन्ध िोता ि ै। पाचुँवा ुँसर्वेत-सर्वाय ि ै र्बकक िर् ककसी ऐसे गुण की र्ातत-पवर्ेर्ष का ज्ञान प्राप्त करते िैं र्ो द्रव्य से स्वतन्त्र ि ै, र्ैसै ेकक र्ब्दरूपी गुण की र्ातत-पवर्ेर्ष का ज्ञान। छठा अथात् श ्अजन्तर् ि ै पवर्ेर्षणता अथवा पवर्ेर्षण का पवर्ेष्य के साथ सम्बन्ध। इसका एक दृष्टान्त घडे के अभाव को देखनेपर िर्ारे आगे ेआता ि ै। यिां ंपर िर्ारी आंख का सम्पकश भूभर्तल के साथ िोता ि ै जिसर्ें घडे के अभाव रूपी पवर्ेर्षण की पवद्यर्ानता ि ै। इस सम्पकश को िर् दो भभन्न-भभन्न प्रकार से वणनश कर सकते िैं। प्रथर् यि कक घडे का अभाव रूपी पवर्ेर्षत्व भूभर् र्ें ि ै। (घटाभाववद् भूतलर्) ्। इसर्ें भूभर् प्रततपाद्य पदाथ शि ै और उसर्ें घडे का अभाव िोना उसका पवर्ेर्षण ि ै। दूसरे रूप र्ें यि कक भूभर् पर घडे का अभाव ि ै (भूतले घटाभावोऽजस्त)। दूसरे प्रकार र्ें पवर्ेर्षण और पवर्ेष्य के पारस्पररक सम्बन्ध उलट गए। पिली

---

112 न्यायवाततकश 2/1 1,29।

113 'न्यायकन्दली', पृषठ 23; न्यायभाध्य, 21, 19 ।

114 भसवाय र्ब्द के, र्ो गुण िोते िुए भी अपना प्रत्यक्ष ज्ञान अपने-आप करता ि ै।

115 श्रवणेजन्द्रय कान के गढ़े के अन्दर आवद्ध आकार् का नार् ि ै और र्ब्द आकार् का गुण (धर्)श ि ै।

अवस्था र्ें अभाव उसका पवर्ेर्ेषण िुआ जर्सके साथ इजन्द्रय का सम्पकश ि ै (संयुक्त पवर्ेर्षणता)[116] अथात्श ्भूभर् का आंख के साथ। दूसूरी अवस्था र्ें अभाव का पवर्ेर्षगुण उसके द्वारा बताया गया ि ै जर्सके साथ इजन्द्रय का सम्पकश ि ै (संयुक्त पवर्ेष्यता)।' उक्त पवर्ेर्षताए ुँयथाथ शके स्वरूप के सम्बन्ध र्ें न्यायर्ास्त्र की इन ताजत्त्वक धारणाओंपर आधाररत िैं कक वस्तुए,ुँ गुण तथा सम्बन्ध सब पवर्षय रूप र्त् ्के िी िैं। वैर्ेपर्षक के सर्ान न्याय की भी यि धारणा ि ै कक द्रव्यों, गुणों, कियाओं, सार्ान्यता, पवर्ेर्षता, सर्वाय और अभाव का स्वतन्त्र अजस्तत्व ि।ै एक द्रव्य जर्सका पवस्तार ि ै दृजष्ट द्वारा देखा र्ाता ि ै बर्तेकक उसका रंग प्रकट िो।'[117] इस सम्पकश का स्वरूप संयोग ि,ै आंख तथा पदाथ शको परस्पर वास्तपवक सम्पकश र्ें आया िुआ कि र्ाता ि।ै नव्यन्याय के र्त र्ें, यहद पदाथ शरूूत शरूप र्ें ि,ै तो स्पर् शभी पदाथ शका ज्ञान कराता ि।ै गुणों और गतत का ज्ञान सम्पकश के दूसूरे श ्द्रव्य, उसके गुण या गतत प्रकार द्वारा [illegible] र्त र्ें सर्वाय अथवा अन्तगतश गुण स्वयं ज्ञान का पवर्षय ि,ै बर्कक वैर्ेपपक के र्त र्ें यि अन्तगतश प्रर्ेय पदाथ शि।ै अभाव छठे प्रकार र्ें आता ि।ै

कुर्ाररलभट्ट तथा वेदान्त के अनुयातययों के र्त र्ें ज्ञान न िोना (अनुपलजव्ध) ज्ञान का एक स्वतन्त्र साघन ि।ै कुर्ाररल के अनुसार, र्ब ि र् घडे के अभाव को देखते िैं तो िर्ें दो भभन्न-भभन्न प्रकार के ज्ञान िोते िैं- एक तो तनजश्चत ज्ञान अथात्श ्भूभर् का और दूसूरा तनपेधात्र्क ज्ञान अथात्श ्घडे के अभाव का। नैव्यातयक के र्त र्ें घडे का अभाव ररक्तभूभर् का एक पवर्ेर्षण ि ै और िर्ें इस प्रकार की अभाव-पवभर्ष्ट भूभर् का ज्ञान िोता ि।ै यहद यि कि र्ाए कक िर्ें उन्िींपदाथों का ज्ञान िोता ि ै र्ो इजन्द्रयों के सम्पकश र्ें आतेिैं और पदाथों के अभाव का इजन्द्रयों के साथ सम्पकश निींिो सकता, तो नैय्यातयक का उिर यि ि ै कक आलोचक भूल से यि धारणा बना लेतेिैं कक केवल संयोग और सर्वाय दो प्रकार के िी सम्बन्ध िैं, अभाव के सम्बन्ध र्ें इनर्ें से एक भी संभव निीं, क्योंकक संयोग केवल दो द्रव्यों र्ें िी सम्भव िो सकता ि ै और अभाव द्रव्य निीं, तथा सर्वाय भी सम्भव निीं, क्योंकक अभाव अपवभाज्य रूप र्ें ककसी वस्तु के साथ सम्बद्ध निींिो सकता।'[118]

---

116 कोथ: इजण्डयन लाजर्क एण्ड एटोभर्ज्र्, पृष्ठ 77।

117 वैर्ेपर्षक सूत्र 4/1, 6 ।

118 पवर्ेर्षण और पवर्ेष्य के सम्वन्ध के बारे र्ें न्याय का र्ो र्त ि,ै उसकी आलोचना इस आधार पर की र्ाती ि ै कक वस्तुतः यि कोई सम्बन्ध निीं ि,ै क्योंकक यि ऐसी दो चीर्ों र्ें पवद्यर्ान निीं र्ो उससे े(सम्बन्ध से)े भभन्न िो। सम्वन्ध वि ि ै र्ो दोनों सम्बद्ध चीर्ों र्ें पवद्यर्ान रिते िुए भी दोनों से भभन्न िो। गंयोग ढोल तथा डण्डी दोनों से भभन्न ि ै यद्यपप पवद्यर्ान दोनों र्ें ि।ै पवर्ेर्षण और पवर्ेष्य का सम्बन्ध इस प्रकार का निीं। छडी िाथ र्ें भलए िुए व्यजक्त के पवर्षय र्ें छडी के गुण का स्वरूप छडी से भभन्न निीं और न िी व्यजक्त की पवभर्ष्टता व्यजक्त से भभन्न ि।ै पवर्ेर्षण और पवर्ेष्य का स्वयंउन चीर्ों के साथ तादात्म्य ि।ै अभाव के पवर्षय र्ें, पवर्ेर्षण और पवर्ेष्य दोनों िी िोनेचाहिए, क्योंकक ककसी भी द्रव्य, गुण व किया के भलए अभाव र्ें पवद्यर्ान रिना सम्भव निीं। इस प्रकार अभाव से सम्बद्ध पवर्ेर्षण का स्वरूप अपनी र्ें इस प्रकार का िोना चाहिए कक अपना ज्ञान करा सके। इसीभलए कि र्ाता ि ै कक अभाव का सम्पकश न िोनेसे इंहद्रयों द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त निींिो सकता। गंगेर् का यि र्त ि ै कक एक िी साधन िर्ें पदाथ शऔर उसके अभाव का भी ज्ञान प्राप्त करने ेर्ें सिायक िोता ि।ै अभाव, ज्ञान के अभाव से िोनेवाले अनुर्ान का पररणार् निीं, बजल्क स्वयंप्रत्यक्ष ज्ञान का एक पवर्षय ि।ै

 54 बौद्ध दर्नश के अनुसार, अभाव के ज्ञान का अथ शअभाव का अजस्तत्व र्निीं, बजल्क उसका तात्पय शकेवल ऐसी
ककसी वस्तु का अजस्तत्व ि ैरो् अभाव का आधार ि।ै घडेसे रहित भूभर् के तनजश्चत ज्ञान को, रर् र्ें पड कर, घडे के अभाव के ज्ञान के साथ भर्ला हदया गया ि।ै ककन्तु न्यायर्ास्त्र का र्त ि ैकक तनजश्चत सिात्र्क पदाथों का ज्ञान भी अपने-आपर्ें वैसा िी एक सत्य ि ैर्ैसाकक अभावात्र्क पदाथों का ज्ञान ि।ै यहद यि किा रा्ए कक भूभर् पर घडे के प्रत्यक्ष ज्ञान का न िोना घडे सेरहित भूभर् का प्रत्यक्ष ज्ञान िी ि,ै तो प्रश्न उठता ि ैकक भूभर् का घडे से रहित िोना भूभर् के साथ तादात्म्य रखता ि ैया उससे भभन्न ि?ै दोनों एकसर्ान र्निीं िो सकते। यहद घडे सहित भूभर् और घडे रहित भूभर् र्ें परस्पर भेद ि ैतो र्ैसे ेएक का ज्ञान प्रत्यक्ष से िोता ि ैदूसूरी का ज्ञान भी प्रत्यक्ष से िि
सकता ि।ै'[119]

बौद्ध ताककशक भसद्ध करते िैं कक चक्षुऔर श्रवणेजन्द्रय अपने पवर्षयों के साथ सीधेसम्पकश र्ें र्निींआतीं,ं बजल्क दूरू से भी पदाथों का ज्ञान प्राप्त करती िैं। ये दोनों इजन्द्रयां,ं उनके र्त र्ें, अप्राप्यकारी अथात् श ्पदाथों का ज्ञान दूरू से प्राप्त करने र्ें भी सर्थ शिैं। नैय्याततयक का तकश ि ैकक चक्षुइजन्द्रय आखुँों के गोलक या पुतभलयों का नार् र्निीं ंि,ै रो् इजन्द्रयों के अधधष्ठान र्ात्र ि।ै चक्षुइजन्द्रय तेर्स् ्प्रकृतत की ि ैऔर प्रकार् की ककरण पुतली से बािर दूरूजस्थत पदाथ शतक र्ाती ि ैऔर उसके साथ सीधे सम्पकश र्ें आती ि।ै यिी कारण ि ैकक िर्ें हदर्ा, दूरूी व जस्थतत का सीधा प्रत्यक्ष इजन्द्रयर्न्य ज्ञान िोता ि।ै'[120]

बौद्ध ताककशक तनम्नभलणखत युजक्तयों के आधार पर न्याय के र्त पर आपपि करता ि:ै

(1) चसु इजन्द्रय आंख की वि पुतली ि ैजर्सके द्वारा िर् पदाथों को देखते िैंऔर पुतली स्वयं बािर र्ा र्निीं ं सकती कक दूरूजस्थत पदाथों के साथ सम्पकश स्थापपत करे। (2) चक्षु ुइजन्द्रय आकार र्ें अपनेसे ककतने िी बडे पदाथों, यथा पवतश आहद, का ज्ञान प्राप्त करती ि,ै ककन्तुइतने बडेपदाथों के तनकट सम्पकश र्ें overline 46 आ र्निींसकती। (3) चक्षु ुइजन्द्रय को एक वृकूष के ऊपर के हिस्से ेअथवा चन्द्रर्ा को देखने र्ें एकसर्ान िी सर्य लगता ि ैजर्ससे ेयि प्रर्ाणणत िोता ि ैकक इजन्द्रय को पदाथ शके तनकट पिुुँचने की आवश्यकता र्निीं। (4) आंख पदाथ शतक र्निींर्ा सकती, अन्यथा र्ीर्े ेव अरक आहद पारदर्ी पदाथों के पीछे की वस्तुओं का ज्ञान कैसे ेप्राप्त

---

119 'न्यायबबन्दु'ु, पृषूठ 11, और 'न्यायर्ंर्ी' पृषूठ 53-57।

120 न्यायवाततकश, 1/1 4। चक्षु इजन्द्रय के पवर्षय र्ें एक रोचक प्रश्न पर पवचार ककया गया ि ैअथात् श ्यि एक ि ैया दो िैं। वात्स्यायन का किना ि ैकक इजन्द्रयों दो िैं और र्ब िर् ककसी पदाथ शको पिलेएक आखुँ से ेऔर उसके बाद दूसूरी आखुँ से ेदेखतेिैं तब िर्ें ज्ञात िोता ि ैकक यि विी पदाथ शि ैजर्सेपिले अवसर पर देखा था। इसका अथ शयि िुआ कक द्रष्टा एक िी व्यजक्त ि।ै ककन्तु उद्योतकर इस र्त को स्वीकार र्निींकरता (देणखए न्यायभाष्य और न्यायवाततकश 3/1 7,11। डेकाटश के सार्ने यि एक बडी सर्स्या थी कक ककस प्रकार और क्यों दो अलग-अलग ज्ञान रो् दो आखुँों तथा दो कानों के द्वारा प्राप्त िोते िैं, परस्पर भर्ल कर र्न के ऊपर सर्ान प्रभाव डालते िैं। उसके पवचार से, र्ीर्षग्रशजन्ध र्ें, रो् एकर्ात्र तंग र्ाग ि,ै जर्सके द्वारा प्राणणयों के अन्दर सब कियाएुँर्जस्तष्क र्ें पिुुँचती िैं, विी इसका कारण ि।ै ककरणों के अन्दर स्वयं प्रकट िोनेका गुण र्निीं। क्योंकक उस अवस्था र्ें वे आुँखों व पदाथ शके र्ध्य र्ें परदे के रूप र्ें प्रकट िोकर िर्ारी दृजष्ट र्ें बाधा उत्पन्न कर सकती थीं। आखुँों की ककरणें यद्यपप हदखलाई र्निीं देतीं तो भी बाह्य प्रकार् की सिायता से पदाथ शतक पिुुँच र्ाती ि ै(देणखए न्यायभाष्य 3 / 1 38-39 ।।

कर सकती ? दूरूी व हदर्ा का ज्ञान प्रत्यक्ष र्नीीं ककन्तु प्राप्त ककया गया िै।'[121] उदयन नेअपने 'ककरणावभल"[122] नार्क ग्रन्थ र्ें उक्त आपपियों का सर्ाधान करने का प्रयत्न इस प्रकार ककया िै : (1) र्ो कोई पदाथ शका ज्ञान प्राप्त कराता िै या उसे ेप्रकट करता िै उसका उस पदाथ शके साथ सम्पकश र्ें आना आवश्यक िै। दीपक उस पदाथ श को प्रकाभर्त करता िै जर्सके सम्पकश र्ें वि आता िै। इसी प्रकार चक्षुइजन्द्रय, र्ो तेर्ोर्य िै, पुतली से तनकल कर पदाथ शके सम्पकश र्ें आती िै। (2) पुतली से बिार आकर प्रकार् फैलता िै और पदाथ शको आच्छाहदत कर लेता ै तिथा सरूूचे क्षेत्र र्ें सर्ा र्ाता िै | (3) सर्ीप और दूरू के पदाथों को ज्ञान-प्राजप्त र्ें सर्य की अवधध र्ें अन्तर अवश्य िोता िै यद्यपप िर्ें इसका स्पष्ट भान र्नीं ंिोता। दूरूजस्थत चन्द्रर्ा आंख के खोलने पर इसभलए हदखाई देता िै कक प्रकार् की गतत इतनी वेगवती िै कक उसकी कल्पना भी र्नींकी र्ा सकती। यि सुझाव कक िर्ारी चक्षु ु इजन्द्रय से तनकला िुआ प्रकार् बिार के प्रकार् के साथ भर्ल कर तुरन्त एकाकार िो र्ाता िै जर्सके कारण सर्ीप और दूरू के पदाथ शएकसाथ हदखाई दे सकते िैं, युजक्तसंगत र्नींठिरता, क्योंकक इस भसद्धान्त के आधार पर िर्ें उन पदाथों का भी, र्ो िर्ारी दृजष्ट से तछपे िुए िैंऔर र्ो िर्ारी पीठ के पीछे िैं, ज्ञान िोना चाहिए। (4) र्ीर्ा एवं अरक आहद कुछ वस्तुए ुँस्वभाव सेपारदर्कश िैंऔर इसीभलए ये प्रकार् को आर-पार र्ाने देनेर्ें बाधा र्नींदेतीं। श ्जर्नका वे ज्ञान प्राप्त

पूवर्ीमांसा इन्द्रियों के पदाथ शके सम्पकश र्ें आती िैं कक श्रवणेजन्द्रय का पवषय ब्दि एक अतनजश्चत स्थान से चल कर ध्वतन की लिरों द्वारा वायु के अन्दर गतत करता िै और इस प्रकार श्रवणेजेन्द्रय का अजन्तर् ब्दि के साथ सम्पकश िोता ै। ब्दि अपनेतनकास-स्थान से चल कर िर्: लिरों के द्वारा वायु के र्ाध्यर् से सवत्रश फैलता िै, ठीक उसी प्रकार र्ैसे ेकक पौधे ेका पराग वायु की लिरों द्वारा सब हदर्ाओं र्ें दूरू-दूरू पिुँच र्ाता िै।'[123] ककस हदर्ा से ब्दि आ रिा िै इसका पररज्ञान इस प्रकार िोता िै कक ब्दि के तनकास-स्थानों की पवपवधता ब्दि र्ें पवर्ेषता पैदा कर देती िै और श्रवणेजन्द्रय के पवर्ेष भाग कियार्ील िो र्ातें। इसी प्रकार गन्ध के पवषय र्ें, पदाथ शके छोटे-छोटे कण वायु के र्ाध्यर् से नाभसका तक पिुँचते िैं। पदाथ शका इजन्द्रय के साथ केवल सम्पकश िी प्रत्यक्ष ज्ञान की उत्पपि के भलए पयाप्शत िै, र्ैसेकेक सोता िुआ र्नुष्य भी बबर्ली की कडक सुन लेता िै।[124]

गौतर् के अनुसार, इजन्द्रयर्न्य प्रत्यक्ष ज्ञान का सबसे ेप्रथर् स्वरूप यि िै कक वि अवणनशीय (अव्यपदेश्य) िै। पदाथ शके प्रत्यक्ष ज्ञान के भलए उसके नार् का िोना आवश्यक र्नीं िै। नार् की आवश्यकता सार्ाजर्क व्यविार के भलए िै ककन्तु पदाथ शके प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ-िी-साथ उसके नार् का ज्ञान आवश्यक र्नीं ं

---

121 न्यायवाततकश, 1/1.4 ; और देणखए पववरणप्रर्ेयसंग्रि, पृष्ठ 187 से ेआगे।

122 बाइबबल, इजण्डन एडीर्न, पृष्ठ 286 से ेआगे।

123 देणखए र्नारायण की 'पववृतत' 2/2 37। कुर्ाररल इस पवचार के सम्बन्ध र्ें इस आधार पर आपपि उठाता िै कक चूंकक आकार् एक तथा अपवभाज्य िै इसभलए सभी कानों पर ब्दि का एक सर्ान प्रभाव पडना चाहिए और िरएक ब्दि सभी कानों द्वारा सुना र्ाना चाहिए; अथवा यहद एक कान बिरा िै तो सभी कानों को सुनाई न पडना चाहिए। कफर वायु के साथ र्ण करते िुए ब्दि उन ब्दों की अपेक्षा अधधक दूरू तक सुनाई देते िैं र्ो बायु की गतत के प्रततकूल आते िैं। इसका कोई युजक्तसंगत सर्ाधान र्नींभर्लता, क्योंकक लिरें तो आकार् र्ें उत्पन्न िोती िैं र्र्स पर ब्दि का कोई प्रभाव र्नींपडता।

124 न्यायभाष्य 2/1 26। यि स्वेच्छा-पवरहित िै, क्योंकक वि आत्र्ा के प्रयत्न के द्वारा र्नीं िोता और इस प्रकार अदृष्ट अथवा अदृश्य तनयतत इसका कारण सर्झा र्ाता िै (न्यायभाष्य 2/1, 29)

 ि ै। र्यन्त ने एक प्रभसद्ध आचाय शकी सम्र्तत उद्धृत करते ि ुए किा ि ै कक उन सब पदाथों का ज्ञान जर्नरें नार्
पदाथ शका अंगभूत अवयव ि ै, प्रत्यक्ष ज्ञान के क्षेत्र से बिार ि ै। यहद एक र्नुष्य ककसी फल को देख कर उसके स्वरूप का अनुभव करता ि ै तो यि प्रत्यक्ष ज्ञान ि ै। ककन्तुयहद विी र्नुष्य ककसी दूसूरे पुरुर्ष से उस फल का नार् 'बबल्व' सुनता ि ै तो यि प्रत्यक्ष ज्ञान न ि ोकर आप्त ज्ञान किलाएंगा।'[125] वात्स्यायन का र्त ि ै कक पदाथ शका प्रत्यक्ष ज्ञान उसके नार् के साथ और उसके बबना भी ि ो सकता ि ै। पिली अवस्था र्ें उसे ेतनश्चयात्र्क और दूसूरी अवस्था र्ें अतनश्चयात्र्क प्रत्यक्ष ज्ञान किेंगे।'[126] अवणनशीय (अव्यपदेश्य) और सुपररभापर्षत (व्यवसायात्र्क) र्ें र्ो भेद ि ै विी भेद तनपवककशल्प तथा सपवकल्प र्ें ि ै।

वात्स्यायन और उद्योतकर इस भेद का उल्लेखे निींकरते ेऔर वाचस्पतत, र्ो इसका उल्लेख करते ि ैं, इसे ेअपने गुरु बत्रलोचन का र्त बताते ि ैं।'[127] परवती सभी दार्तशनक र्ैसे ेभासवज्ञश, केर्वभर्श्र, अन्नंभट्ट और सांख्य तथा वैर्ेपर्षक के अनुयायी तथा कुर्ाररल भी इस पवचार से सिर्त ि ै। गीतर् अपनी पररभार्षा से सभी प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान को तनश्चयात्र्क र्ानते ि ैं। यहद ि र्ें इस पवर्षय र्ें सन्दिे ि ै कक दूरूजस्थत पदाथ शर्नुष्य ि ै अथवा एक खम्भा ि ै, धूल ि ै या धुआ ुँि ै, तो यि प्रत्यक्ष निीं ि ै। र्ैन, जर्नका र्त ि ै कक ि र् प्रत्येक प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें प्रत्यक्ष के कता शतथा ज्ञेय पदाथ शदोनों से अभभज्ञ रिते ि ैं, प्रत्यक्ष ज्ञान के अतनश्चयात्र्क ि ोनेकी सम्भावना का तनर्ेषेध करते ि ैं।

सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान के अन्दर ज्ञान पदाथ शककस र्ातत का ि ै, यि ज्ञान, उन पवर्ेर्ष गुणों का ज्ञान र्ो उसे ेर्ातत के अन्य पदाथों सेपवभर्ष्ट करते ि ैं तथा दोनों के परस्पर सम्पकश का ज्ञान, ये सब उपलक्षक्षत रिते ि ैं।

---

125 र्ाजब्दकों का र्त ि ै कक सभी प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान का पवर्षय, पवर्षय (जे्ञेय पदाथ)श का द्योतक र्ब्द ि ै (वाग्रूपं तत्त्वर्)ृ्। र्यन्त इसकी आलोचना करता ि ै ('न्यायर्ंर्री', पृषृठ 99) और वाचस्पतत प्रश्न करते ि ैं कक यहद पदाथ शतथा नार्ों का परस्पर तादात्म्य ि ै तो वे तनत्य र्ब्दों के साथ भी तादात्म्य रखते ि ैं या परम्परागत र्ब्दों के साथ ? प्रत्यक्षानुभूत पदाथ श अप्रत्यक्षानुभूत र्ब्दों के साथ तादात्म्य निींरख सकते;े न वे नार्ों के साथ िी तादात्म्य रख सकते ि ैं, क्योंकक बच्चेपदाथों का साक्षात् ्करते ि ैं यद्यपप उनके नार् से पररधचत निींिोते। इस प्रकार र्ो र्ब्द का अथ शनिींर्ानते,े उन्िें तनपवकश प्रत्यक्ष ि ोता ि ै, और र्ो उन्िें र्ानते ि ैं उन्िें भी प्रथर् तो तनपवकशल्प िी ज्ञान ि ोता ि ै, र्ो अवचेतना र्ें पडे ि ुए भूतकाल के प्रत्यक्ष के नाग के संस्कार को पुनर्ीपवत कर देता ि ै। इस प्रकार विी तनपवकशल्प सपवकल्प प्रत्यक्ष बन र्ाता ि ै (न्यायवाततकशतात्पयटशीका, ।: 1, 4)।

126 न्यायभाष्य, 1: 1, 4। और देणखए 'न्यायर्ंर्री', पृषृठ 99। र्यन्त का किना ि ै कक तनपवकशल्प प्रत्यक्ष पदाथ शको प्रकट करने ेवाले र्ब्द अथवा नार् का बोध निींकरा सकता। र्ब्द चक्षु इजन्द्रय के प्रत्यक्ष का पवर्षय निीं, और यहद लक्षण तथा लक्षक्षत पदाथ शके परस्पर सम्बन्ध का बोध तथा अवभर्ष्ट धचि का पुनरुज्र्ीवन न ि ो तो र्ब्द का भी बोध निीं सकता। सपवकल्प प्रत्यक्ष र्ाजब्दक प्रततबबम्बों के साथ र्ुडा ि ुआ ि ै, ककन्तु तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ऐसा निीं ि ै, और सार्ान्यता तथा गुणाहद के बोध के पवर्षय र्ें दोनों र्ें कोई भेद निीं। भतृिशरर के र्त र्ें भार्षा के बबना कोई पवचार निींरि सकता, और इस प्रकार तनपवकशल्प प्रत्यक्ष, र्ो सब प्रकार की भार्षा से स्वतंत्र सर्झा र्ाता ि ै, उसके पवचार से ेअसम्भव ि ै (न्यायवाततकश तात्पयटशीका, 1: 1,4)।

127 रत्नकीतत शअपने 'अपोिभसद्धध' और 'क्षणभंगभसद्धध' नार्क ग्रंथों र्ें इस लेखक का उल्लेख करता ि ै। देणखए 'भसक्स बुद्धधस्ट न्याय रैक्ट्स', जर्सका सम्पादन िरिर्ोपाध्याय ि रप्रसाद र्ास्त्री नेककया ि ै। पवश्वनाथ तनपवकशल्प तथा सपवकल्प के भेद का वैकजल्पक व्याख्या के रूप र्ें उल्लेख करता ि ै। देणखए उनकी 'ज्यायसूत्र प्रवृपृ', 1: 1, 4 ।

पदाथ शकी र्ातत, पवभर्ष्ट गुणों और दोनों के सम्पकश का स्पष्ट ज्ञान तनपवकशल्प प्रत्यक्ष र्ें उपजस्थत निीं रिता।'[128] तनपवकशल्प और सपवकल्प ज्ञान का भेद लगभग वैसा िी िै रै्साकक पदाथ शके साधारण पररचय और उसके ज्ञान र्ें, अथात्श ्साधारण बोध तथा तनणयशात्र्क प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें िै।

प्राचीन वैर्ेपेर्षक र्ानुयातययों के अनुसार, तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान वि िै र्ो पदाथ शके सार्ान्य (र्ाततगत) एवं पवभर्ष्ट स्वरूप के सम्बन्ध र्ें प्रथर् साक्षात्कार के सर्य उत्पन्न िोता िै, जसर्ें उक्त दोनों के अन्तर का ज्ञान सजम्र्भलत निीं। सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें पदाथ शऔर उसके पवभर्ष्ट गुणों का भेदे स्पष्ट िोकर पदाथ शका ज्ञान तनश्चयात्र्क िो र्ाता िै।'[129] वाचस्पतत का पवचार िै कक तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें िर्ें पदाथ शके गुणों का ज्ञान तो िोता िै, ककन्तु िर् पदाथ शऔर उनर्ें पवर्ेर्षण-पवर्ेष्य भाव का सम्बन्ध स्थापपत निीं ं कर पाते। और र्ब ऐसा कर पाते िैं तो उसकी सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान संज्ंञा िो र्ाती िै। श्रीधर का यिी र्त िै। प्रभाकर प्राचीन वैर्ेपर्षक के अनुयातययों के साथ सिर्त िोकर किता िै कक तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें िर्ें केवल पदाथ शके स्वरूप-र्ात्र का ज्ञान िोता िै। यद्यपप िर् र्ाततगत सार्ान्य और उक्त पदाथगशत पवर्ेर्ष गुणों को भी देखते िैं, ककन्तु उनर्ें भेदे न कर सकने से , रै्साकक सपवकल्प ज्ञान र्ें करते िैं, उक्त ज्ञान को तनपवकशल्प संज्ंञा देते िैं। गंगेर् की सम्र्तत र्ें तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान वि िै जसर्ें पदाथ शऔर उसके र्ाततगत गुणों का पृथक् पृथक् ज्ञान तो िो ककन्तु दोनों के पारस्पररक सम्बन्ध का ज्ञान न िो। पदाथ शका इजन्द्रय के साथ रै्सेकक घडे का आंख के साथ सम्पकश िोतेिी घडे के पवर्षय र्ें तुरन्त यि ज्ञान निीं िोता कक यि घडा घडों की र्ातत का िै ।[130] ककन्तु र्ब पदाथ शऔर जर्स र्ातत का वि पदाथ िै उसके पारस्पररक सम्बन्ध का भी ज्ञान िो र्ाता िै तो उसे िर् सपवकल्प अथवा तनश्चयात्र्क प्रत्यक्ष ज्ञान किते िैं। अन्नंभट्ट के अनुसार, तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान पदाथ शके पवर्ेर्ष गुणों के ज्ञान से रहित केवल पदाथ शके ज्ञान का नार् िै, र्बकक सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान के अन्दर पदाथ श (पवर्ेष्य) और उसके गुणों (पवर्ेर्षणों) रै्से ेकक पदाथ शकी संज्ञा और र्ातत के सम्बन्ध का ज्ञान आ र्ाता िै ।[131]

श ्सार्ान्यलक्षणा प्रत्यक्ष का उक्त पवश्लेर्षण प्रत्यक्ष की किया के अन्तगतश दो अवयवों, अथात् तथा अजन्तर् तनणयश को िर्ारे सार्नेउपजस्थत करता िै। नर्वैज्ञातनक श्रेणीबद्ध प्रकल्पना के िेत्वाभास का कक पिले िर्ें प्रत्यक्ष िोता िै, कफर सार्ान्य प्रत्यय बनता िै और उसके बाद अजन्तर् तनणयश िोता िै, इस प्रकार तनराकरण िो र्ाता िै।

---

128 'तकशभार्ष' के र्त र्ें तनपवकशल्प प्रत्यक्ष र्ें यद्यपप आत्र्ा का र्न के साथ, र्न का इजन्द्रयों के साथ और इजन्द्रयों का पदाथ शके साथ सम्पकश िोता िै तो भी पदाथरूशप अजन्तर् अवयव गौण िोता िै। ककन्तु सपवकल्प प्रत्यक्ष र्ें यि र्ुख्य िो र्ाता िै।

129 'न्यायकन्दली', पृषठ 190। प्रभाकर तथा पाथसशारधथ भर्श्र, जर्नके र्त र्ें सपवकल्प प्रत्यक्ष इजन्द्रय द्वारा गृिीत तथा सूतृतगत प्रततपवम्व दोनों का सजम्र्श्रण िै, उक्त दृजष्टकोण का सर्थनश करते िैं।

130 प्रथर्तो घटघटत्वयोपवभशर्ष्टानवगािा एवं ज्ञाननंर्ायते,े तदेव तनपवकशल्पर्।् देणखए 'भसद्धांतर्ुक्तावतत', पृ.ृ 581

131 यि तनपवकशल्प प्रत्यक्ष को तनष्यकारक और सपवकल्प प्रत्यक्ष को सप्रकारक भी किता िै। यिां प्रकारता का अथ िै पवभर्ष्ट बोध का गुण। इस प्रकार सप्रकारक ज्ञान पदाथ-शपवर्ेर्ष का बोध िै, र्ो अन्य प्रकार के बांधों से पृथक् िै।

तनपवकशल्प प्रत्यक्ष के सम्बन्ध र्ें एक भभन्न प्रकार का पवचार, र्ो कक वस्तुतः असन्तोर्षर्नक िै, िर्ें नव्यन्याय र्ें देखने ेको भर्लता िै। विांऐसा किा गया िै कक चेतना र्ें र्ो ज्ञान प्रस्तुत िोता िै वि सपवकल्प प्रत्यक्ष िै, और उससे िर् तनपवकशल्प प्रत्यक्ष के अजस्तत्व का अनुर्ान करते िैं। ककसी पदाथ शका सपवकल्प प्रत्यक्ष श ्पदाथ शके पवर्ेर्ष गुणों से युक्त िोनेका ज्ञान, उन गुणों के तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान की पूवावशस्था का ज्ञान, अथात् संकेत करता िै, जर्सके बबना सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव निींिो सकता। यहद गुणों का प्रत्यक्ष ज्ञान भी सपवकल्प िोता तो उसका तात्पय शिोता गुणों के गुणों का प्रत्यक्ष ज्ञान और इस प्रकार उसका किीं ंभी अन्त न िोता। अतएव उक्त उलझन से दूरू रिने के भलए िर् तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान के अजस्तत्व को िी स्वीकार कर लेते िैं।[132]

कुछ नैव्यातयक तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान को अनुर्ान का पवर्षय निीं र्ानते,े बजल्क इसे ेकेवल चेतना की एक अवस्था र्ात्र स्वीकार करते िैं र्ो िर्ें केवल अजस्तत्व का बोध कराती िै।[133] र्ो इसे ेचेतना का एक तथ्य र्ानते िैं उनका तात्पय शइससे एक अस्पष्ट बोध से िै। ककन्तु र्ो इसे ेसपवकल्प चेतना से तनकभसत अरूूतभशावरूप र्ानते िैं वे इसे ेभाववाचक गुणों की अभभज्ञता के सर्ान सर्झते िैं और इसे ेवे तनपवकशल्प इसभलए किते िैं क्योंकक इसर्ें अनुव्यवसाय को स्थान निीं िै।

न्यायर्ास्त्र का झुकाव प्रधानतः तनपवकशल्प प्रत्यक्ष को सब प्रकार के ज्ञान का प्रारजम्भक पवन्दु ुसर्झने की ओर िै, यद्यपप उसकी सम्र्तत र्ें यि अपने-आप र्ें ज्ञान निीं। यि पदाथ शका तात्काभलक बोध िै र्ो ससी अथों र्ें ज्ञान निींकिला सकता। यि एक प्रकार की भेद-रहित, असम्बद्ध चेतनार्ात्र िै, र्ो आत्र्सात्करण, पवभेदीकरण, पवश्लेर्षण और सर्न्वय के काय शसे रुक्त िै। इसे ेरूक, अव्यक्त तथा र्ाजब्दक प्रततबबम्बों से रुक्त सर्झना चाहिए। सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान चेतना की एक व्यवहृत, भेदे-प्रदर्कश एवं सम्बन्ध तनदेर्क अवस्था िै जर्सर्ें आत्र्सात्करण और पवभेदीकरण के पररणार् भी सर्ापवष्ट िैं। यि व्यक्त, रूतरूशप और तनजश्चत ज्ञान ि। तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें र्ाततगत वैभर्ष्ट्य और सम्बन्ध अन्ततनहशित तो अवश्य िैं, ककन्तु वे प्रकट िोते िैं सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें िी। इस र्त का सर्थनश पाथसशारधथ भर्श्र ने ककया िै। तनपवकशल्प-प्रत्यक्ष अथात् श ् इजन्द्रय-सम्पकश से उत्पन्न अनुभव और सपवकल्प प्रत्यक्ष र्ो प्रत्यक्ष ज्ञान का तनणयशात्र्क रूप िै दोनों एक िी इजण्डयन लॉजर्क एण्ड ऐटोभर्ज्र्, पृष्ठ 72-79। अन्नंभट्ट अपनी 'दीपपका' (42) र्ें किते: "पवभर्ष्ट ज्ञानं

---

132 पवर्ेर्षणज्ञानर्ं पवभर्ष्टज्ञानत्वात् ् दण्डीतत ज्ञानवत् ् । पवर्ेर्षणज्ञानस्यापप सपवकल्प कत्वे अनवस्थाप्रसंगाजन्नपवकशल्पभसद्धधः।" और देणखए 'भसद्धान्त र्ुक्तावभल', 58। पवभर्ष्ट ज्ञान पदाथ शपवर्ेर्ष (पवर्ेष्य) का तनणयश अथवा ज्ञान िै र्ो पदाथ शका गुण (पवर्ेर्षण) बतलाता िै। न्याय का र्त िै कक इस प्रकार के ज्ञान के भलए, यि घडा िै, र्ें केवल इजन्द्रय के पवर्ेष्य पदाथ श(घडे) के साथ सम्पकश की िी आवश्यकता निींिोती, बजल्क पवर्ेर्षण (घटत्व) के पूवज्ञशान की भी आवश्यकता िै। इस पूवज्ञशान को िी तनपवकशल्प किते िैं और इसका साक्षात् ्ज्ञान न िोकर अनुर्ान ककया र्ाता िै। पूवर्शीर्ांसा तथा वेदान्त गुण के पूवज्ञशान की आवश्यकता का तनर्षेध करते िैं, और उनकी सम्र्तत र्ें इजन्द्रयां गुण और उसके पवर्षय (पदाथ)श दोनों के सम्पकश र्ें आती िैं। इस र्त की कक िर्ें पिलेकेवल घटत्व का तनपवकशल्प ज्ञान िोता िै. र्ोपवज्ञान से पुजष्ट निींिोती। व्यापक पवचार पिलेचेतना र्ें प्रकट निीं िोते। ज्ञान अतनजश्चत से तनजश्चत की ओर चढ़ता िै। घडे का भाव ताककशक दृजष्ट से,े न कक कालिर् की दृजष्ट से,े अनुभूत ज्ञान सम्बन्धी तनणयश से पिलिोता िै।

133 वस्तुस्वरूपर्ात्र : 'न्यायसार', पृषूठ 3, 4, 84-86।

प्रकिया के, र्ो प्रकृतत से एक िी िै, प्रारजम्भक और सरुन्नत रूप िैं। तनपवकशल्प प्रत्यक्ष क्योंकक तत्काल आगे ेनिीं ं बढ़ता, यि रूूक और पवश्लेर्षण-रहित िै, रे्म्स के ब्दों रें 'अपररपक्व और आवाधचक अनुभवः िै इसभलए सत्य-असत्य का भेद इसके पवर्षय रें लागूनिींिोता।'[134] पिले-पिल र्ब िर् प्रकार् को देखते िैं तो, कजण्डलैक के ब्दों रें, "िर् उसे ेदेखनेकी अपेक्षा िर् यिी िोते िैं।[135] इसभलए साधारण बोध रें भूल िोनेकी सम्भावना निीं। प्रत्यक्ष ज्ञान सम्बन्धी तनणयश रें, र्िां ंकता शके पवर्षय रें कुछ पवधान ककया र्ाता िै, ताककशक पववेचन की उत्पपि िोती िै क्योंकक िर्ारा अपना तनणयश पदाथ-शसम्बन्धी व्यवस्था के अनुकूल िो भी सकता िै और निींभी िो सकता। र्ब िर् किते िैं कक 'वि र्नुष्य िै', तो िर्ारा ज्ञान, र्िां ंतक 'वि' ब्द का सम्बन्ध िै, सत्य िै, ककन्तु र्िां ंतक 'र्नुष्य' ब्द का सम्बन्ध िै, वि सत्य िो भी सकता िै और निींभी िो सकता।'[136]

पवरोध रें बौद्ध ताककशकों का किना िै कक सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान व्यवित िोने के कारण पूवधशारणा से स्वतन्त्र निीं किकन्तु तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान पूवधशारणा से स्वतन्त्र, अथात् श ्कल्पनापोढ़[137] िै। तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान के पदाथ शके गुणों अथात्श ्सार्ान्यता, द्रव्यत्व, गुण, किया, नार् आहद का ज्ञान निींिोता, बजल्क यि केवल पदाथ शके स्वलक्षण'[138] अथात्श ्तनरी अजस्तत्व का िी ग्रिण कराता िै। यधाथ,श जर्सके िर् सम्पकश रें आते े िैं, अवणनशीय िै और जर्सका िर् वणनश करते िैं उसका क्षेत्र सार्ान्य प्रत्यय िै। धर्कशीतत शका किना िै कक प्रत्यक्ष ज्ञान का पवर्षय स्वलक्षण िै, र्बकक व्यवित ज्ञान का पवर्षय सार्ान्य लक्षण िै। उपजस्थत पदाथ शअपूव,श पवरे्ष और क्षणणक िै और र्ाना िुआ पदाथ शआदर्,श सार्ान्य और स्थायी िै।"[139] रै्से िी िर् ककसी अनुभूत यथाथ शके पवर्षय रें कुछ किते िैं, िर् उसका सम्बन्ध ककसी अन्य वस्तु के साथ स्थापपत कर देते िैं, और इस प्रकार यथाथ श अपनी प्रकृतत को खो देता िै तथा बुद्धध के द्वारा आपवष्कृत भावों से आरोपपत िो र्ाता िै। िर् श्रवणेजन्द्रय द्वारा भन-भन की-सी आवार् सुनते िैं और यि आवार् यथाथ शिै, ककन्तु यि आवार् क्खी की िै या दूरूजस्थत

---

134 देणखए नीलकण्ठकृत 'तकशसंग्रिदीपपकाप्रकार्' ।

135 रे्म्स: 'पप्रंभंसपल्स ऑफ साइकोलॉर्ी', खण्ड 2, पृष्ठ 4। और देणखए न्यायभाष्य 4: 2, 37।

136 न्यायभाष्य 3:2,97 ।

137 धर्कशीतत शके अनुसार कल्पना पवचार की वि किया िै जर्सके द्वारा पदाथ श(पवर्षय) को पवरे्रे्ष संज्ञा दी र्ाती िै। 'अभभलापसंसगयशोग्यप्रततभासप्रतीततः कल्पना।' यि वि ज्ञान िै जर्सका सम्बन्ध ब्दों के साथ िो सकता िै। र्यन्त का र्त िै कक कल्पना से ेतात्पय शउस सम्बन्ध से िै र्ो एक पदाथश को अपनेसियकों, अथात्श ्र्तत, गुण, किया, नार् और द्रव्य के साथ रिता िै ('न्यायर्ंर्री', पृष्ठ 97)। बौद्धर्त के अनुसार, व्यजक्त तथा र्तत रें, पवरे्ष तथा सार्ान्य रें, द्रव्य और गुण रें कोई भेद निीं। िर्ारा सपवकल्प प्रत्यक्ष र्िांभेद निीं िै, विांभेदों का आरोप करता िै। िर् गाय के अततररक्त गोर्तत का प्रत्यक्ष निींकरते, न गोरूर्ी द्रव्य का इसके गुणों से रहित प्रत्यक्ष करते िैं; और न गतत िी उससे ेभभन्न िै र्ो गतत करता िै। िर् र्ब पदाथ शको नार् देते िैं तो िर् उन वस्तुओंको, र्ो भभन्न-भभन्न िैं, एकसर्ान र्ान लेते िैं। र्ब िर् किते िैं कक 'यि चैत्र िै' तो 'यि' एक पदाथ शका तनदेर् करता िै और 'चैत्र' एक ब्द का, और िर्ारा तनष्कर्ष शउन दोनों को एकसर्ान र्ान लेता िै। इसी प्रकार द्रव्य का वग शउन पदाथों रें, र्ो ताजत्वक रूप से भभन्न-भभन्न िैं, एकात्र्कता अथवा सिसर्वाय का आरोप करता िै। 'यि र्नुष्य छडी भलए िुए िै' इस वाक्य रें 'र्नुष्य' और 'छडी', र्ो एक-दूसरे से भभन्न िैं, एक िी अधधष्ठान रें तनहित ककए र्ाते िैं। इस प्रकार यि तकश हदया र्ाता िै कक ये वग शपवचार की रचनाएं िैं (उसी स्थान पर)।

138 सर्ातीयपवर्ातीयपरावृिं स्वलक्षणर् ्('न्यायर्ंर्री', पृष्ठ 97)।

139 'र्ास्त्रदीपपका' रें ऐसा पवचार प्रकट ककया गया िै कक सार्ान्य स्थापनाएं कल्पना से उत्पन्न अपवाथ शवस्तुएं ंिैं: "पवकल्पाकाररात्रं सार्ान्यर्, अलीकं वा" (पृष्ठ 278)

 वाप्पसीटी की, यि ि्रारी अपनी कल्पना ि। धर्ि्र का तकश ि कक र्ां ्के स्तन का ज्ञान र्ो

बच्चे को दूसूरी बार

ि्ाता ि, अपनेपूवानुशभव के आधार पर ि्ी ि्ोता ि, और इसभलए यि ज्ञान भी पवरुद्ध या अतनजश्चत नि्ीं।
रैसाकक काण्ट ने किा ि, सभी सम्पकश ऐसेरूप िैं र्ो ि्रारे र्न द्वारा उपजस्थत तत्त्वों पर आरोपपत ककए गए िैं
और तभी वे ज्ञान के पवर्षय बन सके िैं। सपवकल्प ज्ञान र्ें ि्र् यथाथ शको रोंड कर उसका रूप बदल देते िैं और
इसीभलए वि अप्रार्ाणणक किलाता ि।'[140] हदग्नाग की सम्र्तत र्ें द्रव्यों, गुणों तथा कियाओंका ज्ञान भर्थ्या
ि।'[141] बाह्य पदाथ शक्षणणक िैऔर इसभलए वे र्ाने नि्ीं र्ा सकते।[142] रचनात्र्क कल्पना क्षणणक अवस्था को
एक ऐसी श्रृंखंला र्ें पररणत कर देती ि, जजसर्ें भूतकाल प्रपवष्ट ि्ोता ि और र्ो आगे की ओर भपवष्य र्ें बढ़ी
ि्ाती ि। पवचार-र्गत् ्अयथाथ श(अनथ)श ि। परर्ाथसशत् ्अनुभूत संवेदना ि ।[143] यि सर्स्त र्त इन पवचारकों की
अध्यात्र्-पवर्षयक पूवकशल्पनाओं द्वारा तनधारशरत ि। हदग्नाग एक पवर्षयीपवज्ञानवादी ि र्ो सर्स्त ज्ञान को
पवरुद्ध र्ानभसक र्ानता ि। यथाथ शके स्वरूप के प्रश्न को उसनेअतनणीत ि्ी छोड हदया ि, यद्यपप प्रत्यक्ष-
पवर्षयक तथ्य उसे ेयि स्वीकार करने को बाध्य कर देतेि कक ि्र् ककसी यथाथ शसिा के सम्पकश र्ें आते िैं, चािे
वि क्षणणक ि्ी क्यों न ि्ो। धर्कशीतत शअपनेसौत्राजन्तक झुकावों के कारण अततर्ानभसक यथाथ शसिाओं को
स्वीकार करता ि, जजससे ेकक प्रत्यक्ष ज्ञान की पवपवधता का सर्ाधान ि्ो सके, यद्यपप उनका क्षणणक रूप उनके
ज्ञान को असम्भव बना देता ि। वि संवेदनाओंको वैयजक्तक तथा उनके पदाथ शसम्बन्धी संकेत को
अनुर्ानगम्य र्ानता ि।

नैय्यातयक बौद्धर्त की कडी आलोचना करते िैं। उद्योतकर का तकश ि कक पवरुद्ध इजन्द्रय-ज्ञान र्ो
अपने-आप र्ें पवभर्ष्ट और स्वतः प्रज्ञात ि और र्ो नार् या र्तत के सजम्र्श्रण से रहित ि, एक असम्भव
धारणा ि। ि्रारा पदाथ-शपवर्षयक ज्ञान अतनवाय शरूप से व्यापक (र्ाततर्ात्र र्ें सार्ान्य) रूप धारण कर लेता ि।
बौद्धों का यि र्त कक सभी सार्ान्य स्थापनाए ुँकाल्पतनक िैं क्योंकक केवल पवभर्ष्ट पदाथों का ि्ी अजस्तत्व ि,
नैय्यातयकों को अर्ान्य ि। उनका र्त ि कक सार्ान्य स्थापनाए ुँउतनी ि्ी यथाथ िैंजर्तने कक वे पदाथ-शपवर्र्ेष िैं
जनर्ें वे सर्वाय सम्बन्ध से पवद्यर्ान िैं। इस सम्बन्ध का ज्ञान या तो ि्र्ें सीधा प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा ि्ोता ि
या इस तथ्य के अनुर्ान द्वारा ि्ोता ि कक ि्र्ें पवभर्ष्ट पदाथों के बारे र्ें यि अभभज्ञता ि्ोती ि कक वे यथाथ श
प्रकार के िैं। पदाथों का स्वरूप ि्ी अजन्तर् साक्षी ि र्ो स्वयं प्रकट रूप र्ें ि्रारी चेतना को तनधारशरत करता ि।
सम्बन्ध उपजस्थत पदाथों पर आरोपपत नि्ींककए र्ातें बजल्क यथाथ शके स्वरूप र्ें ि्ी भाभसत ि्ोते िैं। ि्रारी
बोधर्जक्त का काय शयथाथ शकी पूणतशा र्ें उस सम्बन्ध को केवल खोर् तनकालना ि। यहद 'यथाथ'श र्ें सम्बन्ध
तनहित नि्ीं और ज्ञान का पवर्षय सम्बन्धयुक्त ि, तो ि्र्ें बुद्धधगत पवर्षय और दृजष्टगत पवर्षय के भर्थ्या
ककन्तु काण्ट तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान की सम्भावना का तनर्षेध करता ि जजसके द्वारा, बौद्ध की कल्पना र्ें, केवलर्ात्र

140
भेद का ि्ी अन्तदृजशष्ट से ेज्ञान ि्ोता ि। तुलना कीजजए उसके इस प्रभसद्ध वक्तव्य के साथ कक 'प्रत्यक्ष ज्ञान भावों के बबना
अन्धा ि और भाव बबना प्रत्यक्ष ज्ञान के खोखलेिैं।' यद्यपप पूवतशर र्त के साथ इसका पवरोध ि्ोता ि र्ो 'प्रोलेगोर्ेना' (18)
र्ें व्यक्त ककया गया ि और जजसर्ें प्रत्यक्ष ज्ञान के तनणयशों तथा अनुभवों के तनणयशों र्ें भेद ककया गया ि।

141 देणखए यूई: 'वैर्ेपर्षक कफलासफी', पृष्ठ 67।

142 क्षणस्य (ज्ञानेन) प्रापतयतुर् ्अर्क्यत्वात् ्('न्यायबबन्दुटीका', पृष्ठ 16)

143 'न्यायबबन्दु'्, पृष्ठ 103 5. न्यायवाततकश 1/1, 4 ।

पवरोध को स्वीकार करना पडेगा। ज्ञात पवर्षय वैसा निीं िै रै्साकक पवर्षय वस्तुतः स्वयं िै। वि ज्ञाता और उद्दीपक पदाथ शके ध्र्य जस्थत एक तृतीय दल िै। ककन्न रै्सैाकक िर्ने देखा, न्यायदर्नश के अनुसार तनपवकशल्प और सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान ताजत्त्वक रूप र्ें एक िी िैं। सम्बन्ध रू्न्य से िठात् ्प्रकट निीं िो र्ाते। वे तनपवकशल्प ज्ञान र्ें पवद्यर्ान िै यद्यपप िर् सपवकल्प ज्ञान र्ें िी उनके अजस्तत्व से अभभज्ञ िोतिे।ैं र्यन्त का तकश िै कक सधचकत्य ज्ञान का पवर्षय अयथाथ शनिीं, क्योंकक तनपवकशल्प ज्ञान के द्वारा भी उसका बोध िोता िै। पवचार-सम्बन्धी अवयवों अथवा सूतृत के पवर्षयभूत तत्त्वों की उपजस्थतत र्ात्र इजन्द्रयों की सकियता र्ें िस्तक्षेप निीं ं करती। सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान की र्टलता एक ताककशक दोर्ष निीं। उसर्ें अन्ततनहशित पवचार का प्रयोग उसकी प्रार्ाणणकता का सर्थनश करता िै। यहद सपवकल्प प्रत्यक्ष उसी का ज्ञान कराता िै जर्सका ज्ञान पिले िी तनपवकशल्प प्रत्यक्ष द्वारा िुआ िै, तो यि कोई इस बात की दलील निीं कक वि सत्य निीं िो सकता। नवीनता सत्य की कसौटी निीं। पवचार पवर्षयक तत्त्व पवकल्पर्ात्र निीं। सार्ान्य, र्ो प्रत्यक्ष ज्ञान का पवर्षय िै, र्ात्र नार् िी निीं, क्योंकक नार् के अभाव र्ें भी उसका ज्ञान िोता िै। दक्षक्षण भारत का तनवासी र्ब उिर भारत र्ें ऊंटों को देखता िै तो वि उनकी सार्ान्यता को लक्ष्य करता िै, चािे उसे ेउक्त पर्ु के नार् का ज्ञान न िो। िर् र्ब अपनी चारों उंगभलयों को देखते िैं, तो िर् उनर्ें एक सार्ान्य भाव भी लक्ष्य करते िैं तथा उनके पवर्े्र्ष गुणों को भी लक्ष्य करते िैं। यहद िर् पदाथ शके केवल पवर्े्र्ष रूप को िी ग्रिण करें तो िर् दूसूरी घटना का प्रथर् के साथ सम्बन्ध स्थापपत न कर सकेंगे। यहद यि तकश हदया र्ाय कक र्ब िर् दूसूरी बार देखते िैं तो पिली बार का स्र्रण िो आता िै, तो र्यन्त का किना िै कक पिले ेके स्र्रणर्ात्र से कोई लाभ निीं िोगा, क्योंकक वि दूसूरे के साथ सम्बद्ध निीं। यहद इसका तात्पय शयि िै कक दूसूरा ज्ञान पिले ेका संकेंत देता िै, क्योंकक दोनों एक िी वग श के िैं, तो यि स्पष्ट िै कक पिले ेप्रत्यक्ष ज्ञान र्ें भी उसकी सार्ान्यता और पवर्े्र्षता का भी ज्ञान िुआ था। तनपवकशल्प प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें सार्ान्य तथा पवभर्ष्ट का ज्ञान अस्पष्ट रूप र्ें और सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें स्पष्ट रूप र्ें िोता िै। बौद्ध पवचारक भी यि अस्वीकार निींकरते ेकक र्ब िर्ें ककसी पवभर्ष्ट पदाथ शका प्रत्यक्ष ज्ञान िोता िै तो िर्ें सार्ान्यता (अनुवृपि ज्ञान) का भी बोध िोता िै। अब प्रश्न उत्पन्न िोता िै कक इस बोध (अनुवृपिज्ञानोत्पाहदका र्जक्त) का आधार क्या िै, अथात्श ्क्या यि पवभर्ष्ट िै अथवा उससे ेकुछ भभन्न िै, तनत्य िै अथवा अतनत्य िै, प्रत्यक्ष िोने योग्य िै अथवा निीं, क्योंकक यहद बोध र्ें कोई वैभर्ष्ट्य िै तो बोध के पवर्षय र्ें भी वैभर्ष्ट्य अवश्य िोगा।'[144] इसभलए सार्ान्य पवभर्ष्ट से भभन्न िै, वि व्याप्त िोनेसे तनत्य िै, र्बकक पवभर्ष्ट पदाथ शउत्पन्न िोतेतथा नष्ट िोते िैं। और सार्ान्य यथाथ शिै, चािे वि प्रत्यक्ष ज्ञान का पवर्षय िो या अनुर्ानगम्य िो।'[145] इस तकश की कक सपवकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान पदाथ शके तनदेर्क र्ब्द के स्र्रण पर तनभरश करता

---

144 पवर्षवाततर्यव्यततरेकेण प्रत्ययाततर्यानुपपिेः ('न्यायर्ंर्री', पृष्ठ 314)।

145 देणखए 'न्यायर्ंर्री' पृष्ठ 309-311, 315-314। तुलना कीजए न्याय के र्त की सेण्ट टार्स के इस र्त के साथ कक र्नुष्य के ज्ञान का र्ुख्य उद्देश्य एक ऐसी संश्लेर्षणात्र्क एकता िै जर्सर्ें इजन्द्रय और बुद्धध दोनों का अतनवाय शभाग रिता िै। व्यजक्तत्व अथवा परस्पर्ाणात्र्क वैभर्ष्ट्य तो इजन्द्रयों द्वारा प्राप्त िोता िै और गुणात्र्क एकत्व बुद्धध से। ज्ञान के उद्हदष्ट पवर्षय के अन्दर सारतत्त्व का अन्तज्ञानश और पवर्े्र्षों का ऐजन्द्रक ज्ञान ये सजम्र्भलत रिते िैं। यि न तो अकेला सार तत्त्व िै रै्साकक डेकाटश का पवचार था और न अकेली इजन्द्रयप्रदि सार्ग्री िै। रै्साकक अनुभववाहदयों (इम्पीररभसस्ट्स)

ैं और पदाथ शके इजन्द्रय के साथ सीधेसम्पकश पर तनभरश निंकरता, इस आधार पर आलोचना की गई ि कक यद्यपप सपवकल्प प्रत्यक्ष इजन्द्रयगृिीत ज्ञान तथा स्रृततगत प्रततबबम्ब का सजम्श्रण ि, तो भी प्ररुख अवयव इजन्द्रय सम्पकश िी ि, नार् की स्रृतत सियक अवयव ि। कोई भी बोध प्रत्यक्षर्तनत ि अथवा निं, यि पररधधस्थ उिर्ना की पवद्यर्ानता अथवा उसके अभाव पर तनभरश करता ि।'[146]

यिााँ िर् बौद्ध तथा नैय्यातयकों द्वारा सर्थतश यथाथ शसम्बन्धी पवचारों र्ें र्ौभलक पवभभन्नता ि, उस पर पिुाँचते िैं। बौद्धों की धारणा ि कक यथाथ शसि साधारण 'यि' ि, अथात्श एक क्षणणक पवभष्ट र्ो अपने गुण के अन्दर बन्द ि, र्ो काल के अन्दर बराबर रिनेअथवा देर् के अन्दर पवस्तार से सवथशा स्वतन्त्र 'सव श पृथक्' ि। सर्स्त सम्बन्ध स्वेच्छा सेबािर से कल्पना द्वारा फैलाया गया र्ाल ि, इसके पवपरीत, नैय्यातयका का तकश यि ि कक जर्सका अजस्तत्व ि वि क्षणणक गुण निं ि, बजल्क पवभष्ट पदाथ शि जर्सके अन्दर पवर्षयवस्तु की पवपवधता ि। अनेकत्व के िोते िुए भी वि एक रिता ि। वि अनेकों र्ें एक ि। र्िााँ तक वि दूसरों से पृथक् ि वि अपने-आप र्ें पवभष्ट ि, और र्िााँतक वि अपनी पवपवधता र्ें एकसर्ान ि वि सार्ान्य ि, और अपनी इस सर्ानता के कारण वि एक वग शका अंग भी ि। प्रत्येक पवभष्ट पदाथ शके ये दो पिलू िैं। अणु-रूप पवभष्ट पदाथ,श र्ो सब प्रकार के पवभेदों से रहित ि और र्ात्र सम्बन्ध जर्सका कोई अजन्तर् बबन्दु निं ि, एक ऐसा भर्थ्या पवश्वास ि जर्सका सम्बन्ध जर्सका सर्थनश अनुभव से निंिोता। तादात्म्य तथा पवभेद एक पूण शइकाई के अन्दर िी पृथक् पृथक् र्ाने र्ा सकते िैं, और ये िी र्ब स्वतन्त्र इकाइयों र्ें बटुाँकर कठोर िो र्ाते िैं तो भर्थ्या िो र्ाते िैं। आधुतनक र्नोपवज्ञान न्याय के इस र्त का सर्थनश करता ि कक प्रस्तुत पदाथगशत पवर्षय के दो पिलू िैं- इजन्द्रयगम्य गुण और सम्बन्ध ।

ऊपरी तौर पर पवचार करने सेिर्ें यि प्रतीत िोता ि कक अपररवक्व इजन्द्रय संवेदनाएाँ र्ो ज्ञान की उत्पादक सार्ग्री िैं, उच्चतर् यथाथ शसि िैं। ककन्तु इस जस्थतत को स्वीकार करना कहठन ि कक र्नुष्य की खण्ड-खण्ड संवेदनाएाँ िी वस्तुओं का यथाथतशत्व ि। अस्तव्यस्त पडेअसंख्य पत्थर, ईंटें तथा लकडी र्कान निं ि

का पवश्वास िोता ि र् वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते िैं, और वस्तुएाँन तो अर्ूत शसारतत्त्व िैं और न पवर्षयतनष्ठ प्रततपवम्ब िैं। सार्ान्यों को पवर्ेर्षों से पृथक् करने का अथ शिोगा वस्तुओं र्ें उक्त दोनों के एकत्व को न देखना।

146 'न्यायकन्दली', पृष्ठ 193। पाथसशारधथ भर्श्र का कथन ि कक 'सपवकल्पर् अपप अनुपरतेजन्द्रयव्यापारस्य, र्ायर्ानर् अपरोक्षावभासत्यात् प्रत्यक्षर्ेव' ('र्ास्त्रदीपपका', पृष्ठ 103-4)। बौद्ध र्तावलम्बी तकश करते िैं कक सपवकल्प प्रत्यक्ष साक्षात् निं और न स्पष्ट िी ि, यद्यपप इसके ठीक पूववशती तनपवकशल्प ज्ञान के साथ सम्बद्ध िोने से यि ऐसा प्रतीत िोता ि ककन्तु यि एक कल्पना ि। प्रभाचन्द्र नेभी बौद्धर्त की आलोचना की ि। अस्पष्टता केवल सपवकल्प प्रत्यक्षों की िी पवर्ेर्षता निं। र्ीर्ें अथवा अरक से तछपेदूरूजस्थत पदायों के प्रत्यक्ष ज्ञान अस्पष्ट िोते िैं, चािे वे तनपवकशल्प िों चािे सपवकल्प। यहद सपवकल्प प्रत्यक्ष इसभलए अप्रार्ाणणक ि कक यि भी उसी को प्रत्यक्ष करता ि जर्सका बोध पिले िी चुका ि, तो अनुर्ान भी अप्रार्ाणणक ि, क्योंकक वि भी उसी का बोध कराता ि जर्सका बोध पिलेसार्ान्य व्याजप्त के सिचय शद्वारा िो चुका ि। बौद्धर्त के आधार पर सब पदाथ शक्षणणक िैं और इस प्रकार कोई प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव निं। अनुर्ान र्ें भी र्ि पवर्षय के पवभष्ट व्यजक्तत्व को ग्रिण निंकरते िैं। ककन्तुउससे आनुर्ातनक ज्ञान अप्रार्ाणणक निंिो र्ाता। र्ब्द और पवचार पवर्षयक सम्बन्धों की पवद्यर्ानता का प्रार्ाणणकता के साथ कोई वास्ता निं। भूल िो र्ानेकी संभावना और कियात्र्क कायक्षशर्ता सपवकल्प तथा तनपवकशल्प दोनों प्रत्यक्षों र्ें रिती ि।

ि ै। अनुभूत संवेदनाए ुँज्ञान निीं ि ैवितर्शान क्षण की पररधध रें् आबद्ध सीभर्त ज्ञानवाद तो िरें् सीधा बौद्धधक आत्र्घात की ओर अग्रसर करेगा, क्योंकक उससे पवचार सम्बन्धी र्ीवन एक कजल्पत किानी-र्ात्र रि र्ाएगा। बौद्ध दार्तशनक तनजष्य़ि अभभज्ञता का वास्तपवकता के अनुभव के साथ तादात्म्य बतलाते ि ैं। वे िरें् र्ानभसक आलोचना के पाप से रुक्त िोनेका आदेर् देते िैं परन्तुव्यवधानरून्यता के भलए उनका र्ोर् एक पूवाग्रशि र्ात्र ि ै। तिथ्य के प्रतत तनष्ठा का अथ शर्ानभसक आलोचना से रुजक्त तो निीं ि ैर् ैंर्ब यि किता िूुँ कक यि वस्तु, जर्से र् ैंअपने सम्र्ुख देखता िूुँ, नारंगी ि ै, तो तनश्चय िी रें् इस सम्बन्ध रें् र्ान-बूझकर कोई आलोचनात्र्क रूखतशा निीं करता िूुँ। र्ानभसक आत्र्बोध र्ानवर्जस्तष्क का स्वाभापवक काय शि ै। र्ानव का र्जस्तष्क कोई खाली कर्रा तो िै निीं जसरें् इजन्द्रयर्न्य बोध तुरन्त घुस र्ाते िों। प्रत्येक इजन्द्रयर्न्य ज्ञान प्रेरणात्र्क पदाथ शके सम्पकश की कियात्र्क प्रततकिया ि ै। िर् र्र्ात पवचारक िैं और इसभलए र्ो ज्ञान िरें् उपलब्ध िोता िै उसकी व्याख्या ककए बबना िर् निीं रि सकते। संवेदनाए ुँिरें् एकदर् सम्बन्ध रहित प्राप्त निीं िोती ि ैं। वे िरें् पवर्षयतनष्ठता के भाव के साथ प्राप्त िोती िैं। वे अन्य तत्त्वों के सजम्धश्रत पुंर् से तघरी िुई िर्ारे आगे प्रस्तुत िोती िैं। आणपवक 'अब' (वतर्शान) का कोई अजस्तत्व निीं िै। आकार्-जस्थतत प्रत्येक पवन्दु ुके चारों ओर अन्य बबन्दु ुभी िैं, र्ैसाकक सर्य का प्रत्येक क्षण तनरंतर दूसूरे क्षण रें् पररवततततश िोता रिता िै। बौद्ध दर्नश के र्त से इजन्द्रय और अवबोध (प्रततपपि) भभन्न-भभन्न िैं और दोनों के काय शभी एक-दूसूरे से बबलकुल पृथक् िैं। इजन्द्रयों करती ि ै। उक्त

द्वारा गृिीत सार्ग्री भभन्न-भभन्न प्रवधधयों से परस्पर एकत्रर ि िोकर ज्ञान के गत् ुक्रान्ततनर्ाणशि ै। ज्ञान रें् यथाथतशा का न तो

सार्ग्री रें् ऐसेसम्बन्ध रुडे रिते िैं जर्न्र्िें रास नार् िी पृथक् करके सुलझाना ि ै।

रि् तनर्ाणश कर सकते िैं और न उसरें् कोई पररवतनश िी कर सकते िैं। इजन्द्रयों द्वारा र्ो अस्पष्ट रूप रें् ज्ञात िोता िै उसका स्पष्ट ज्ञान तब िोता िै र्ब िर् अवबोध के क्षेत्र रें् पिुुँचते िैं। र्ो सम्बद्ध व तकशसंगत िै, विी यथाथ शि ै। यथाथतशा का स्वरूप न तो इजन्द्रयों को प्राप्त िोता िै और न िी अवबोध को। वि केवल पूण शआत्र्ा को िी प्राप्त िोता िै।

धर्कशीतत शप्रत्यक्ष ज्ञान के चार प्रकार स्वीकार करता िै इजन्द्रयर्न्य ज्ञान, र्ानभसक ज्ञान (र्नोपवज्ञान), आत्र्चेतना तथा यौधगक अन्तदृजशष्ट । इजन्द्रयर्न्य प्रत्यक्ष ज्ञान रें् इजन्द्रया ुँर्ाध्यर् का कार् करती िैं। र्ानभसक ज्ञान को भी इजन्द्रयर्न्य ज्ञान के िी सर्ान किा गया िै, क्योंकक दोनों एक िी श्रे्रेणी के (एक सन्तान) ि ै। यि ज्ञान इजन्द्रयर्न्य ज्ञान के अगले िी क्षण रें् उत्पन्न िोता िै। एक प्रकार से यि कुछ-कुछ पश्चात्–्बबम्ब िै, क्योंकक धर्ोर्र का किना िै कक 'र्ानभसक-ज्ञान तब तक उत्पन्न निीं िो सकता र्ब तक कक आंख अपना कार् कुछ सर्य के भलए बन्द न कर दे। यहद आंख कियार्ील रि तो िरें् आकृतत तथा दृजष्टर्जक्त सम्बन्धी इजन्द्रय ज्ञान बराबर िोते िी रिेंगे।"[147] सुख और दुुःख का आन्तररक प्रत्यक्ष ज्ञान तीसरे वग शके अन्तगतश आता िै जर्से

147 परतण्यापारे चक्षुपप प्रत्यक्षभर्ष्यते। व्यापारवतत तु चक्षुपर्ष यद् रूपज्ञानंतत् ्सव शपृष्ठ 13)। तुलना कीजर्ए ररचड शसेर्न के इस पवचार के साथ कक िर् संवेदनाओंअपांथा तो र्ौभलक रूप रें् या सूतृत रूप रें्। र्ौभलक संवेदना उर्नर्ा के इस रूप रें् उर्नर्ा के बन्द िोनेपर संवेदना भी नष्ट िो र्ाती िै। ककर्नको पातन, जर्सके सर्ाप्त िो र्ाने पर र्ैसेउठी िुई लिरों को नैं: नैं: र्ांत िोनेके र्ांत िोनेपर भी संवेदेना को सर्ाप्त िोने रें् सर्य लगता िै। इस akoluthic) की जस्थतत की संज्ञा देता िै। सेर्न का किना िै कक र्ौभलक संवेदना अपनेपीछे, एक गिरा प्रभाव छोड र्ाती िै र्ो अवसर पाकर तथा उधचत

स्वसंवेदना या आत्रचेतना किा गया ि◌ै। ि◌र्े आत्रा के अजस्तत्व का ज्ञान उसकी सुख या दु:ख र्ैसी भभन्न-भभन्न जस्थततयों के ज्ञान के द्वारा ि◌ोता ि◌ै। यि सीधा अन्तज्ञानश ि◌ै जर्सके द्वारा र्ीवात्रा का आपवभावश ि◌र्ेाता ि◌ै (आत्रन: साक्षात्कारी)। यि बुद्धध के ि◌स्तक्षेप से स्वतन्त्र ि◌ै और इसीभलए इसर्े रर् की संभावना भी निींिो सकती। प्रत्येक र्ानभसक व्यापार र्े इसका सियोग पवद्यर्ान रिता ि◌ै। धर्ीर ने इस स्वसंवेदना को और उस आत्रीयता तथा भावुकतापूण शआवेर् को, र्ो प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान र्े उपजस्थत रिता ि◌ै, एक सर्ान बताया ि◌ै। नव्यन्याय ने इसेपरवती उपर् किा ि◌ै र्ो चेतना के ऊपर आच्छाहदत ि◌ो र्ाती ि◌ै। गंगेर् के र्त से इसकी उत्पपि तथ ि◌ोती ि◌ै र्ब ि◌र् किते ि◌ैं कक 'र् ◌ैंर्ानता ि◌ू◌ँकक यि एक बरतन ि◌ै।' व्यवसाय अथवा सपवकल्पज्ञान ि◌र्े ककसी पदाथ शका ज्ञान कराता ि◌ै, ककन्तुइस ज्ञान को कक 'र्ुझे पदाथ शका ज्ञान ि◌ै' अनु अथात्श ◌्

पीछे से उत्पन्न ि◌ोनेवाला व्यवसाय अथवा पश्चाद्ज्ञान किा र्ाएगा। 'यि एक घडा ि◌ै'[148] एक अवबोध ि◌ै; 'र् ◌ैं र्ानता ि◌ं◌ू कक यि घडा ि◌ै," अनुव्यवसाय ि◌ै, अथात्श ◌् पदाथ शके अवबोध के पीछे ि◌ोनेवाला ज्ञान ि◌ै। सांख्य और वेदान्त का र्त ि◌ै कक चेतना की प्रत्येक वृपि पदाथ शको तथा अपने-आपको भी प्रकट करती ि◌ै, जर्सर्े आत्रा

सजम्भलत ि◌ै।[149]

अवस्था र्े एक ऐसी संवेदना को उत्पन्न करता ि◌ै जर्सेस्रृततर्न्य किा र्ाता ि◌ै और र्ो र्ौभलक निींिोती। देणखए सेर्न की 'नेभर्क साइकोलॉर्ी।'

[148] दीपपका, 34।

[149] न्याय-वैर्ेपर्षक का र्त कुर्ाररल के र्त से भभन्न ि◌ै। कुर्ाररल का र्त ि◌ै कक बोध का अनुर्ान पदाथ शकी ज्ञातता से ि◌ोता ि◌ै। र्ैन दार्तशनकों, वेदाततयों तथा कुछेक बौद्धों का ऐसा पवश्वास ि◌ै कक बांध का वोध अपनेसे ि◌ोता ि◌ै। न्याय-वैर्ेपर्षक के अनुसार, बोध अपनिी ऊपर र्ुड कर स्वयंबोध का पवर्षय निीं बन सकता। यि वोध परप्रकार्क ि◌ै, स्वप्रकार्क निींि। यि एक अन्य बोध के द्वारा अभभव्यक्त ि◌ोता ि◌ै, क्योंकक यि एक कपडेकी भांतत ज्ञान का पवर्षय ि◌ै (ज्ञानंज्ञानांतरवेद्य प्रर्ेयत्वात् ◌्पटाहदवत्)◌्। उक्त र्त की र्ा आलोचना र्ैन दार्तशनकों नेकी ि◌ै वि संक्ंषेप र्े इस प्रकार रखी र्ा सकती ि◌ै: (1) जर्स प्रकार सुख का बोध अपने-आपर्िोता ि◌ै दूसरे से निीं, ईश्वरीय ज्ञान भी अपने-आप से ि◌ोता ि◌ै दूसरे से ◌ेनिीं, उसी प्रकार प्रत्येक आत्रबोध को भी स्वत: ज्ञान र्ानना चाहिए; अन्यथा, एक बोध को र्ाननेके भलए दूसरे बोध की और उसके बोध के भलए एक अन्य बोध की आवश्यकता ि◌ोगी और इस प्रकार श्रृंखला का किींअंत न ि◌ोगा। (2) इस बोथी युजक्त की आलोचना कक ईश्वर के अन्दर दो बोध ि◌ैं, एक तो यि र्ो सर्स्त पवश्व का बोध ग्रिण करता ि◌ै और दूसरा वि र्ो इस बोध का बोध ग्रिण करता ि◌ै, सरलता के साथ ि◌ो सकती ि◌ै। दूसूरे बोध का प्रत्यक्ष ज्ञान ि◌ोता ि◌ै या निीं? यहद ि◌ोता ि◌ै तो अपने-आपसिोता ि◌ै या ककसी अन्य से?◌े यहद अपने-आपसिोता ि◌ै तो क्यों न ि◌र् यिी क्षर्ता, पिलेर्े भी र्ान लें? यहद दूसरे से ि◌ोता ि◌ै तो इस श्रृंखला का किींअन्त न ि◌ोगा। यहद ि◌र् किें कक दूसूरे का ज्ञान पिलेसे ि◌ोता ि◌ै तो ि◌र् एक चिक दोर्ष र्े आ र्ाते ि◌ैं। यहद दूसूरे का प्रत्यक्ष ज्ञान निींिोता और यहद वि बबना अपना प्रत्यक्ष ज्ञान ि◌ुए पिलेका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकता ि◌ै, तो क्या पिला अपना प्रत्यक्ष ज्ञान ि◌ुए बबना भी सर्स्त पवश्व का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त निींकर सकता? ि◌र्े स्वीकार करना ि◌ी िोगा कक ईश्वरीय ज्ञान स्वत: ज्ञान ि◌ै। सर्स्त पवश्व का बोध ग्रिण करनेर्े यि अपना बोध भी ग्रिण करता ि◌ै। इस प्रश्न पर ईश्वरीय तथा र्ानवीय ज्ञान र्े कोई भेद निींि। अपने-आपको तथा अन्य को अभभव्यक्त करने का लक्षण (स्वपरप्रकार्क) चैतन्य के अन्दर ि◌ै, वि चािे र्ानवीय ि◌ो अथवा ईश्वरीय ि◌ो। ककन्तु सवज्ञशता सार्ान्य लक्षण निींि, क्योंकक इसका सम्बन्ध केवल ईश्वरीय चैतन्य के साथ ि◌ै ।(3) प्रत्यक्ष अथवा अनुर्ान द्वारा पश्चात् ◌्बोध (अनुव्यवसाय) का कोई प्रर्ाण निींभर्लता। न्याय के इस र्त को कक अनुव्यवसाय र्े आत्रा का र्न के साथ सम्पकश रिता ि◌ै, स्वीकार निींककया गया, क्योंकक र्न का अजस्तत्व अभसद्ध ि◌ै। (4) यहद एक बोध दूसरे से र्ाना र्ाता ि◌ै तो र्ब तक पिला बना रिता ि◌ै दूसरा उत्पन्न निींिो सकता, क्योंकक बोध पूवानुशपर ि◌ोते ि◌ैं। और र्ब पिला नष्ट ि◌ो गया तो यि उत्पन्न निींिो सकता, क्योंकक तब बोध करने ◌ेको कुछ पवर्षय निींरिा। यहद यि पिलेज्ञान का, जर्सका अब अजस्तत्व निींि, बोध ग्रिण करता ि◌ै तो यि

धर्कशीतत शके र्तानुसार, िर् बौद्धधर् शके चार सत्यों को, र्ो ज्ञान के साधारण साधनों की पिुंच से परे िैं, यौधगक अन्तदृजशष्ट से प्रत्यक्ष देखते िैं र्ो सर्स्त रर् से उन्र्ुक्त िै और बौद्धधक दोर्ष से भी रहित िै,'[150] यद्यपप स्वरूप र्ें वि तनपवकशल्प प्रत्यक्ष िी िै। प्रत्यक्ष ज्ञान की नानापवध श्रेणणया ्ुँिैं। पवजल्लयों घने अन्धकार र्ें भी पदाथों

को

देख सकती िैं और धगद्ध अपने भर्कार को बिुत दूरू से ताक लेतीैं। तनरन्तर ध्यान का अभ्यास करने से र्नुष्य इजन्द्रयातीत अथातश ्हदव्यदृजष्ट प्राप्त कर सकता िै, और सर्ीप व दूरू के, भूत और भपवष्य के तथा सुदूरू और दृजष्ट से ओझल सभी पदाथों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकता िै।[151] इस अत्यन्त उच्च श्रेणी के अन्तज्ञानश र्ें अन्तदृजशष्ट की व्यवधानरूून्यता िोती िै। िर्ारी दृजष्ट र्ें र्ो चर्त्कार प्रतीत िोता िै, ऋपर्षयों के भलए वैी एक प्राकृततक देन िै। िर्ारी पवरूद्ध दृजष्ट को र्ो अत्यन्त र्हटल और रिस्यपूण शप्रतीत िोता िै, ऋपर्षयों को वैी स्तार्लकवत् ्प्रत्यक्ष िो र्ाता िै। यिांरि एक वस्तु रूपान्तररत िै। सबसे तनचलेधरातल र्ें पपण्डीभूत पदाथों का सीधा-सादा इजन्द्रयर्न्य ज्ञान िै और सवोच्च धरातल पर यौधगक अन्तदृजशष्ट िै। प्रथर् प्रकार का ज्ञान प्रकृत एकर्न्र्ा र्नुष्य का िै, र्बकक दूसूरे प्रकार का ज्ञान आध्याजत्र्क द्पवर्न्र्ा पुरुर्ष का िै। पिले ेप्रकार का ज्ञान आत्र्ान्वेर्षण का र्िान् ्संघर्ष शप्रारम्भ िोनेसे पिले ेआता िै, और दूसूरे प्रकार का उस संघर्ष शके अन्त र्ें आता िै। दूसूरा ज्ञान एक भसद्धध िै र्ो ज्ञान की पररपक्व अवस्था एवं आन्तररक वेदेना का पररणार् िै। यौधगक अन्तदृजशष्ट यथाथ शका ज्ञान, र्ैसाकक वि िै, उसकी पूणतशा और एकलयता र्ें प्राप्त करती िै।'[152] यौधगक अन्तदृजशष्ट तथा ईश्वरीय सवज्ञशता र्ें इतना अन्तर िै कक पिली उत्पन्न िोती िै और दूसूरी तनत्य िै।'[153]

गंगेर् लौककक तथा अलौककक प्रत्यक्ष र्ें भेद करता िै। अलौककक प्रत्यक्ष के तीन भेद िैं र्ो तीन प्रकार के अलौककक सजन्नकर्षों, अथातश ्सार्ान्य लक्षण, ज्ञानलक्षण और योगर् धर् शद्वारा उत्पन्न िोते िैं।'[154] अजन्तर् यौधगक अंतदृजशष्ट िै। र्ब िर् पदाथों का र्ाततगत ज्ञान प्राप्त करते िैं तो यि सार्ान्य लक्षण िै। प्राचीन न्याय

~~द्पवगुण चन्द्रर्ा के बोध के सर्ान एक रांतत िै। (5) यहद दूसूरे बोध का प्रत्यक्ष ज्ञान िोता िै तो इसे अवश्य अन्य बोध के~~ द्वारा िोना चाहिए और इस प्रकार इस श्रृंखला का किींअंत न िोगा। यहद दूसूरे बोध का प्रत्यक्ष निींिोता तो स्वयंअज्ञात बोध पिलेबोध का ज्ञान ककस प्रकार करा सकता िै? इसका अथ शिोगा कक र्ेरे बोध का ज्ञान ककसी अन्य के बोध को िो सकता ै जर्सेर्ें निींर्ानता। (6) इस प्रकार के तकश पर कक जर्स प्रकार ज्ञानेजन्द्रयों निींर्ानी र्ातीं, यद्यपप वे पदाथ शके ज्ञान को उत्पन्न करती िैं, उसी प्रकार अज्ञात दूसूरा बोध पिलेबोध को उत्पन्न कर सकता िै, गम्भीरतापूवकश बल निींहदया र्ा सकता। क्योंकक, उस अवस्था र्ें यि र्ानना िोगा कक बाह्य पवर्षय का पिला बोध अपनेपवर्षय का बोध ग्रिण करता िै, यद्यपप वि अपने-आप अज्ञात िै, और यि एक ऐसी जस्थतत िै जर्सेन्याय-वैर्ेपर्षक अस्वीकार करता िै

('प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड', पृषूठ 34 से ेआगे)।

150 और देणखए 'न्यायबबन्दुटीका', पृषूठ 14-15। देणखए वैर्ेपर्षक सूत्र, 91, 13; इजण्डयन लाजर्क एण्ड ऐटोभर्ज्र्, पृषूठ 81 से आगे।

151 'न्यायर्ंर्री', पृषूठ 103। भासवज्ञश का र्त िै कक ईश्वर की कृपा से ेभी यौधगक र्जक्तयाुँ प्राप्त की र्ा सकती िै।

152 सर्ाधध के बल से प्राप्त र्ो अन्तदृजशष्टर्न्य ज्ञान ऋपर्षयों का िै उसे कभी-कभी प्रततभा भी किा र्ाता िै, यद्यपप 'प्रततभा' र्ब्द का प्रयोग प्रायः अंत:प्रेरणार्न्य उस चर्क के भलए िोता िै र्ो साधारण र्नुष्यों र्ें भी कभी-कभी हदखाई पडती िै

(प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सिंग्रि, पृषूठ 258)।

153 प्रर्स्तपद योधगयों की अन्तदृजशष्ट के दो भेद बताता िै (प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सिंग्रि, पृषूठ 187)। -'न्यायकन्दली', पृषूठ 195 से आगे। और देणखए 'उपस्कार', 9/1.1।

154 और देणखए लौगाक्षक्ष भास्करकृत 'तकशकौर्ुदी', पृषूठ 9, और पवश्वनाथकृत 'भार्षापररच्छेद', पवभाग 3।

 सार्ान्यता के प्रत्यक्ष ज्ञान को स्वीकार करता ि ै। गंगेर् के अनुसार, सार्ान्यों के ज्ञान र्ें बुद्धध के काय

शकी

पवर्ेर्ष र्िर्ा रिती ि ै। ककसी एक पदाथ शके र्ाततगत सार्ान्य धर् शके ज्ञान के द्वारा िर् उस र्ातत के अन्य सभी पदाथों को िर सर्य और िर स्थान र्ें र्ाननेर्ें सर्थ शिोते िैं। यहद इस प्रकार का ज्ञान िर एक अवस्था र्ें िो सके तब तो िर् सवज्ञश िोतेप्रतीत िोंगे। इस आपपि का उिर देते िुए पवश्वनाथ किते िैं कक िर् इस प्रकार से उन

सब पदाथों का केवल सार्ान्य ज्ञान िी प्राप्त करते िैं ककन्तु उनके पारस्पररक भेद को र्ान निींपाते। सार्ान्य धर् शका ज्ञान बबना इंहद्रय-सम्पकश के िोता ि ै ऐसा किा र्ाता ि ै, क्योंकक ऐसी अवस्था र्ें भी, र्िां ंिर्ें धुआंनिीं

हदखाई देता, सार्ान्य धर् शका ज्ञान िो सकता ि ै। विां पर पदाथ-शपवर्ेर्ष और सार्ान्य धर् शदोनों िी प्रकट िैं, वास्तपवक रूप र्ें पवद्यर्ान िैं और उनका साक्षात् ्प्रत्यक्ष ज्ञान भी िोता ि ै। सार्ान्य धर् शर्ानभसक रचना निीं ि ै, बजल्क एक यथाथ शसारतत्त्व ि ै र्ो पदाथों के अन्दर तनहित रिता ि ै। यि सारतत्त्व िर्ें उन सब पदाथों का स्र्रण कराता ि ै जनर्ें इसकी प्रतीतत िोती ि ै। सार्ान्य धर् शऔर पदाथ-शपवर्ेर्ष के सम्बन्ध का स्वरूप अभभन्न ि ै और ये अवयवावयवी-भाव से अथात्श ्सर्वाय-सम्बन्ध से पवद्यर्ान रिते िैं। सार्ान्य धर् शका ज्ञान िी अनुर्ान की प्रकियाओं द्वारा सार्ान्य सम्बन्धों की पूवानुशभूतत को सम्भव िोनेदेता ि ै।[155] र्ब िर् चन्दन की लकडी को देखते िैं तो ज्ञान लक्षण िो र्ाता ि ै, ककन्तु सुगन्ध का ज्ञान घ्राणेजन्द्रय द्वारा िी िोता ि ै। चक्षु-इजन्द्रय

के सजन्नकर्ष शके साथ-साथ सुगन्ध की स्र्ृतत भी िो र्ाती ि ै और उससेर्न का सम्पकश िोता ि ै। यि परोक्ष ज्ञान ि ै। इसी का दूसरा नार् स्र्ृततज्ञान भी ि ै। र्ैन दार्शशनकों का पवचार ि ै कक यि चेतना की एक भर्धश्रत जस्थतत (सर्ूिालम्बनज्ञानर्) ् ि ै जसर्ें चन्दन का दृजष्टगत िोना तथा सुगन्ध का पवचार एक साथ भर्धश्रत ि ै। 'वेदान्त पररभार्षा' का र्त ि ै कक ज्ञान के एक पवर्षयवस्तु र्ें दो तत्त्व िैं, एक तात्काभलक ज्ञान और दूसरा व्यवित ज्ञान'[156], र्बकक र्ैन तथा अद्वैतवादी अलौककक सजन्नकर्ष शको निीं र्ानते, ि ै नैय्यातयक इसे र्ानते िैं। वे चेतना की भर्धश्रत जस्थततयों को स्वीकार निीं ि ै करते। प्रत्येक र्नोपवकार अपने-आप र्ें एक इकाई ि ै और भभन्न ि ै तथा र्न का सूक्ष्र्-स्वरूप एक साथ िी दो र्नोपवकारों की सम्भावना को असम्भव बनाता ि ै इसभलए वे सुगजन्धत चन्दन के चाक्षुर्ष ज्ञान को एक साधारण र्नोपवकार र्ानते िैं, यद्यपप इससे पूव शचन्दन का प्रत्यक्ष ज्ञान और सुगन्ध की स्र्ृतत पवद्यर्ान थी। श्रीधर और र्यन्त का पवचार ि ै कक चाक्षुर्ष ज्ञान सुगन्ध के पूवज्ञशान की पुनरावृपि से सम्बद्ध ि ै, और सुगजन्धत चन्दन का वतर्शान ज्ञान चक्षु ुइजन्द्रय की अपेक्षा र्न के कारण अधधक ि ै।'[157] आधुतनक र्नोपवज्ञान इस घटना की व्याख्या प्रत्ययसिचय श(associations of ideas) के भसद्धान्त के आधार पर करता ि ै। योगर् धर्लशक्षण वि ि ै र्ो सर्ाधधस्थ ध्यान से उत्पन्न िोता ि ै।

155 'वेदान्तपररभार्षा' (1) का र्त ि ै कक अलौककक प्रत्यक्ष को स्वीकार कर लेनेपर अनुर्ान तथा अन्य प्रर्ाण अनावश्यक ठिरते िैं।

156 सुरभभचंदनभर्त्याहदज्ञानर्पप चंदनखंडार्े अपरोक्ष सौरभांर्े तु परीक्षर् ्(1)

157 देणखए 'न्यायर्ंर्री', पृष्ठ 461, और श्रीधरकृत 'न्यायकंदली', पृष्ठ 117।

देखा था,' यि
प्रत्यभभज्ञा (पिचान) की घटना के स्वरूप का पववेचन रै्से ेकक 'यि विी घडा िै जर्सेर्ैं
ज्ञान साधारण िै या भर्धश्रत, इसका पववेचन नैय्यातयकों ने ककया िै। क्या प्रत्यभभज्ञा की अवस्था दो ज्ञानों का सजम्र्श्रण िै-एक वि र्ो सीधा प्रत्यक्ष िुआ िै, अथात्श ्वि घडा र्ो हदखाई हदया और दूसूरा र्ो स्र्ृतत र्ें िै, अथात्श ् वि घडा जर्सके साथ वतर्शान घडे का तादात्म्य िै? क्या यि ऐसा ज्ञान िै र्ो अंर्तः प्रत्यक्ष िै तथा अंर्तः स्र्ृतत ै रै्साकक प्रभाकर र्ानता िै, या पवरुद्ध स्र्ृतत या पवरुद्ध अनुभूतत िै? बौद्ध इसको अनुभवात्र्क तथा स्र्रणात्र्क र्ानभसक अवस्थाओंका यांबत्रक सजम्र्श्रण र्ानते िैं।[158] यि अकेला अनुभवात्र्क या स्र्रणात्र्क र्ोपवकार निीं, क्योंकक इसका कारण केवल इजन्द्रय-सजन्नकर्ष शनिीं िै क्योंकक भूतकाल के पदाथ शके साथ इजन्द्रय सजन्नकर्ष िो निींसकता; और इसका कारण केवल संस्कार भी निीं ंिै, क्योंकक इस पिचान र्ें 'यि' की चेतना पवद्यर्ान िै और यि इन दोनों का सजम्र्श्रण भी निीं, क्योंकक दोनों पृथृक् पृथृक् किया करते िैं और दोनों के प्रभाव भी भभन्न िैं। यहद िर् यि र्ान भी लें कक प्रत्यभभज्ञारूपी घटना अपने-आप र्ें एक पृथृक् प्रभाव िै तो प्रश्न उठता िै कक इसका उद्हदष्ट पदाथ शक्या िै? भूतकाल की घटना उद्हदष्ट पदाथ शनिींिो सकती, क्योंकक इस अवस्था र्ें प्रत्यभभज्ञा स्र्ृतत से भभन्न निींिोरिती। भपवष्य की घटना भी निीं, क्योंकक उस अवस्था र्ें प्रत्यभभज्ञा तथा रचनात्र्क कल्पना र्ें कोई भेदे न रिेगा। केवल वतर्शान पदाथ शभी निींिो सकती, क्योंकक प्रत्यभभज्ञा का काय शवतर्शान पदाथ शकी भूतकाल के पदाथ शके साथ सर्ता हदखाना िै। इस प्रकार का र्त प्रकट करना कक प्रत्यभभज्ञा के द्वारा ऐसेपदाथ शका ज्ञान िोता िै र्ो भूत, भपवष्यत् ्और वतर्शान र्ें भी पवद्यर्ान ै, परस्पर पवरोधी कथन िोगा। इसभलए नैय्यातयक का किना िै कक प्रत्यभभज्ञा एक प्रकार का पवभर्ष्ट प्रत्यक्ष ज्ञान िै र्ो िर्ें वतर्शान र्ें अवजस्थत पदाथों का ज्ञान भूतकाल के गुणों के साथ पवभर्ष्ट रूप र्ें कराता िै। िर् एक पदाथ शको देखते ेऔर पिचानते िैं कक इसे ेपिले ेभी देखा था।'[159] र्ीर्ांसक और वेदान्ती इस र्त का सर्थनश करते िैं, र्बकक र्ैन दार्शतनकों का तकश िै कक पिचानने की अवस्था यद्यपप साधारण िै तो भी प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा स्र्ृतत से स्वरूप र्ें भभन्न िै।'[160] उनके अनुसार प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें अनुर्ान का अंर् सर्ापवष्ट रिता ै। िर् जर्स सर्य एक वृक्ष को देखते िैं तो वस्तुतः केवल उसके एक भाग को िी देखते िैं, अथात्श ्ऊपर के भाग के एक पाश्व शको देखते िैं। िर् इजन्द्रयानुभव को पदाथ शके स्र्ृतरूशप अथवा अथ शके साथ संजश्लष्ट करते िैं और इस प्रकार िर्ें पदाथ शका प्रत्यक्ष िोता िै।[161] सम्पूण शपदाथ शका पूवज्ञशान, और वतर्शान र्ें प्राप्त ककए गए उसके आभर्क ज्ञान से सम्पूण शपदाथ शका अनुर्ान, ये प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रत्येक कर् शर्ें सर्ापवष्ट रिते िैं। स्र्ृतत तथा अनुर्ान के तत्त्व सिायक िैं, ककन्तुइजन्द्रयर्न्य ज्ञान र्ुख्य तत्त्व िै। इजन्द्रय सजन्नकर्ष शसे र्ो भी र्ानभसक जस्थतत उत्पन्न िोती िै वि प्रत्यक्ष ज्ञान िै, भले िी उसर्ें अन्य तत्त्व भी रै्से ेस्र्ृतत और अनुर्ान, क्यों न सर्ापवष्ट िों।

158 और देणखए 'खण्डन', 1: 14।

159 देणखए 'न्यायर्ंर्री', पृष्ठ 448-459। 'भर्तभापर्षणी ' (पवर्यानगरर् ्संस्कृत सीरीर्, पृष्ठ 25) र्ें काथ िै: 'सोऽयं देवदि इत्यतीतवतर्शानकालपवभर्ष्टपवर्षयकं ज्ञानंप्रत्यभभज्ञा। "

160 'प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड', पृष्ठ 97-98।

161 न्यायभाष्य, 2/1 , 30 और देणखए न्यायभाष्य , 2/1 31-32।

गौतर् की पररभार्षा के अनुसार, राजन्तरहित िोना प्रत्यक्ष ज्ञान की पवभर्षता िै। प्रत्येक इजन्द्रयर्न्य ज्ञान प्रार्ाणणक र्निींिोता। साधारण प्रत्यक्ष र्ें तनम्नभलणखत पवर्षय पवद्यर्ान रिते िैं: (1) पदाथ,श जर्सका प्रत्यक्ष ज्ञान िोता िै, (2) बाह्य र्ाध्यर्, र्ैसे ेचाक्षुर्ष ज्ञान र्ें प्रकार्, (3) इजन्द्रय, जर्सके द्वारा पदाथ शका ज्ञान िोता िै, (4) र्न अथवा र्ुख्य इजन्द्रय, जर्सकी सिायता के बबना ज्ञानेजन्द्रयाुँअपने पदाथों पर काय शर्निींकर सकतीं,ं और (5) र्ीवात्र्ा। यहद इन पाचुँों र्ें से कोई एक भी ठीक-ठीक काय शन करे तो रर्ात्र्क ज्ञान उत्पन्न िोता िै। बाह्य पदाथों र्ें या तो गतत के कारण अथवा सादृश्य के कारण दोर्ष िो सकतेिैं। सादृश्य के कारण सीप चांदी हदखती िै। यहद प्रकार् र्न्द िै तो िर्ें पदाथ शस्पष्ट, रूप र्ें हदखाई र्निींपडेगा। यहद िर्ारी आखुँों र्ें कोई रोग िै या वे अंर्तः अन्धी िैं तो िर्ारे प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें भी दोर्ष रिेगा। यहद र्न ककसी और र्गि लगा िै, या यहद र्ीवात्र्ा के अन्दर भावनावर् उिेर्ना िै, तो रर् उत्पन्न िोगा।'[162] रर्ों के कारणों को तीन वगों र्ें बांटा गया िै: (1) दोर्ष, अथवा इजन्द्रय र्ें त्रुहट, र्ैसे ेआखुँ र्ें पीभलया रोग िोना, (2) सम्प्रयोग, अथात्श ्पदाथ शका सम्पूण शरूप श ्स्वभाव अथवा र्ानभसक र्ें प्रकट न िोना बजल्क उसके एक भाग या पिलू का िी गोचर िोना, (3) संस्कार, अथात् पक्षपात के पवघ्नकारक प्रभाव के कारण असम्बद्ध स्र्ृततयों का उदय िोना। रस्सी को देख कर उसर्ें सांप का रर् िोता िै, क्योंकक सांप की स्र्ृतत र्ाग र्ाती िै।[163]

स्वप्नों का स्वरूप अनुभवात्र्क िै और उसके उद्दीपक तत्त्व बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों िी प्रकार के िोते िैं। उनकी उत्पपि अवचेतन संस्कारों के पुनर्ीवन से िोती िै जर्सका कारण इजन्द्रय-सम्बन्धी िलचलें तथा पपछले ेपुण्य व पाप िोते िैं। भपवष्यवाणीपूण शस्वप्न, जर्नका अजस्तत्व अरस्तू तक ने स्वीकार ककया िै,'[164] प्रेतात्र्ाओं के प्रभाव से उत्पन्न िोते िैं, ऐसा किा र्ाता िै।

कणाद स्वप्नों का कारण र्ुख्य इजन्द्रय, र्न के साथ आत्र्ा का संयुक्त िो र्ाना बताता िै, जर्सर्ें पपछले ेअनुभवों के अवचेतना र्ें पडिुए संस्ंकार सिायक िोते िैं।'[165] प्रर्स्तपाद की दृजष्ट र्ें स्वप्न र्न के द्वारा ककए गए आभ्यन्तर प्रत्यक्ष के कारण िोते िैं, र्बकक इजन्द्रयाुँ तनद्रा र्ें दबी िोती िैंऔर काय शकरना बन्द कर देती िैं।"[166] पूवानुशभूत ज्ञान के अवभर्ष्ट प्रभावों के आधार पर, र्ारीररक वात, पपि, कफ (बत्रदोर्ष) के वैर्षम्य के कारण और अदृष्ट र्जक्तयों के कारण स्वप्नों की उत्पपि िोती िै। श्रीधर का किना िै कक स्वप्न केवल पूवानुशभवों की पुनरुत्पपि िी र्निींिै। उसका र्त िै कक वे केन्द्र की आभ्यन्तर उिेर्नाओंसे उत्पन्न िोते िैं।"[167] उदयन अपनी भभन्न सम्र्तत रखता िै। उसके अनुसार, पररधधस्थ अंग स्वप्न की अवस्थाओं र्ें काय शकरना बन्द र्निींकरते। यि यि भी स्वीकार करता िै कक स्वप्न कभी-कभी सच्चे ेतनकलतेिैं।'[168] प्रभाकर, अपने सार्ान्य दृजष्टकोण के

---

162 न्यायर्ंर्री', पृष्ठ 88-89, 173।

163 न्यायबबंदुटीका', पृष्ठ 12।

164 गीम्पर् श'ग्रीक धथंकंस'श, खण्ड 4, पृष्ठ 183।

165 वैर्ेपर्षक सूत्र 0.9/2 6 - 7 ।

166 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 183; 'उपस्कार', 9/2 ,7 ।

167 र्नोर्ात्रप्रभावं स्वप्नज्ञानर्।्

168 स्वप्नानुभवस्यापप कस्यधचत्सत्यत्वर्।् 'कुसुर्ांर्भल', पृष्ठ 147।

अनुरूप पूवानुशभवों की पुनरुत्पपि को ि◌ी स्वप्न बताता ि◌ै, र्◌ो सूतृत के धुंधंलेपन के कारण चेतेना को तुरन्त प्रस्तुत ि◌ुए प्रतीत ि◌ोते ि◌ैं। पाथसशारधथ स्वप्नावस्था को सूतृत के सर्◌ान बतलाता ि◌ै ।"[169] प्रर्स्तपाद स्वप्न ज्ञान और उस ज्ञान के ध्र्य र्◌ो तनद्रा अथवा स्वप्न के सर्◌ीप (स्वप्नाजन्तक) ि◌ोता ि◌ै, भेद करता ि◌ै। स्वप्नाजन्तक र्◌ें स्वयं स्वप्नगत अनुभवों की सूतृत ि◌ोती ि◌ै, राजन्त, जर्सका आधार (अधधष्ठान) कोई-न-कोई भौततक तत्त्व ि◌ोता श ◌्र्◌ो तनरधधष्ठान ि◌ै। श्रीधर

ै, उस र्◌ाया व इन्द्रर्◌ाल से भभन्न ि◌ै जर्सका कुछ भी अधधष्ठान निर्◌ीं, अथात्

उदािरणरूप र्◌ें एक ऐसेव्यजक्त को रखतेि र्◌ो ककसी स्त्री के प्रेर्◌् र्◌ें अन्धा ि◌ुआ ि◌र र्ग अपनी प्रेयसी ि◌ी का रूप देखता ि◌ै।[170]

7. अनुर्◌ान-प्रर्◌ाण

अनुर्◌ान का यौधगक अथ शि 'ककसी वस्तुके पश्चात् ◌्र्◌ापना'। यि वि ज्ञान ि◌ै र्◌ो अन्य ज्ञान के पश्चात् ◌् आता ि◌ै। धचह्न (भलंगं) के ज्ञान से ि◌र्◌् पदाथ शका ज्ञान प्राप्त करते ि◌ैंजर्सर्◌ें वि धचह्न पवद्यर्◌ान ि◌ो। अनुर्◌ान ब्द का प्रयोग बिुत व्यापक अथों र्◌ें ि◌ोता ि◌ै जर्नर्◌ें तनगर्न (deduction) और आगर्न (induction) दोनों प्रकार की प्रकिया आ र्◌ाती ि◌ै। अनुर्◌ान की पररभार्षा कभी-कभी इस प्रकार की र्◌ाती ि◌ै ऐसा ज्ञान जर्ससे ◌ेपूव श प्रत्यक्ष ज्ञान आवश्यक ि◌ै। वात्स्यायन की सम्र्तत र्◌ें, 'प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव र्◌ें अनुर्◌ान ि◌ो ि◌ी निंसकता।' केवल उसी अवस्था र्◌ें ब्कक देखनेवाला आग और धुएं को एक-दूसूरे के साथ सम्बद्ध देख चुका ि◌ै, तो वि दूसूरी बार धुएं को देख कर विां ◌ंपर आग की उपजस्थतत का भी अनुर्◌ान कर सकता ि◌ै।'[171] उद्योतकर ने प्रत्यक्ष ज्ञान और आनुर्◌ातनक ज्ञान र्◌ें भेदर्नक कुछ धचह्नों का तनदेर्◌् ककया ि◌ै। यथा (1) योगर्न्य अन्तदृजशष्ट को छोड कर अन्य सर्स्त प्रत्यक्ष ज्ञान एक ि◌ी प्रकार का ि◌ै, ककन्तु अनुर्◌ान र्◌ें पवपवधता ि◌ै; (2) प्रत्यक्ष ज्ञान केवल वतर्शान र्◌ें पवद्यर्◌ान ऐसेपदाथों तक ि◌ी सीभर्त ि◌ै र्◌ो इजन्द्रयों की पिुंच के अन्दर आते ि◌ैं, ब्कक अनुर्◌ान भूतकाल, वतर्शान और भपवष्य के पदाथों से भी सम्बन्ध रखता ि◌ै; (3) अनुर्◌ान र्◌ें सार्◌ान्य सम्बन्ध या व्याजप्त के स्र्रण की आवश्यकता ि◌ै, ब्कक प्रत्यक्ष ज्ञान र्◌ें निर्◌ीं।[172] र्ि◌ांप्रत्यक्ष ज्ञान ि◌ो सकता ि◌ै विांअनुर्◌ान के भलए कोई स्थान निं ◌ंि◌ै।[173] ि◌र्◌ारी इजन्द्रयों की पिुंच के अन्दर र्◌ो पदाथ शिं उनके ज्ञान के भलए ि◌र्◌ें पवर्◌ेर्ष पवचार करने की आवश्यकता निंिोती।'[174] अनुर्◌ान का पवर्षय 'न तो वि पदाथ शि र्◌ो अज्ञात ि◌ै और न वि पदाथ शि जर्सका ज्ञान तनजश्चत रूप से ि◌ै। केवल विी पदाथ शअनुर्◌ान के क्षेते्र के अन्तगतश आते ि◌ैं जर्नके अजस्तत्व र्◌ें सन्दिे ि◌ै।"[175] इसका उपयोग यथाथ शके ऐसे भाग के ज्ञान के भलए ककया र्◌ाता ि◌ै जर्सका प्रत्यक्ष ज्ञान निंिोता। प्रत्यक्ष पदाथ श

---

169 सूपिृरेव तात्रत् ◌्स्वप्नज्ञानभर्तत तनश्चीयते। श्लोकवाततकश पर न्यायरत्नाकर, पृषठ 243।

170 'न्यायकंदली', पृषठ 179।

171 न्यायभाष्य, 2:1, 31।

172 न्यायवाततकश, 2/1, 3 ।

173 प्रत्यक्षत्वादनुर्◌ानाप्रवृि: (र्◌ांकर डयूलंस भसस्टर्◌् ऑफ हद वेदांत, आंग्लभार्षानुवाद, पृषठ 88 हटप्पणी)

174 घटोऽयभर्तत पवज्ञातुं तनयर्◌ः कोऽन्यपेक्षते ◌े।

175 न्यायभाष्य, ।: 1,1 ।

ऐसी वस्तु की ओर तनदेर् करता ि◌ै र्ो प्रत्यक्ष तो नि◌ीं किकन्तु जर्सका सम्बन्ध उसके साथ अवश्य ि◌ै। भासवज्ञश ने अपने 'न्यायसार' र्ें अनुर्ान की पररभार्षा करते ि◌ुए कि◌ा ि◌ै कक यि इजन्द्रयगोचर क्षेत्र् से परे उस पदाथ शको र्ाननेका साधन ि◌ै र्ो इजन्द्रयों के पवर्षय के साथ अभभन्न सम्बन्ध रखता ि◌ै। गंगेर्'[176] भर्वाहदत्य'[177] का अनुसरण करते ि◌ुए अनुर्ानर्न्य ज्ञान की पररभार्षा करता ि◌ै कक ऐसा ज्ञान जर्सकी उत्पपि अन्य ज्ञान के द्वारा ि◌ो।

गौतर् अनुर्ान के तीन भेद बताते ि◌ैं: पूववशत्,◌् र्ेर्षवत् ◌्और सार्ान्यतोदृष्ट'[178]। और वात्स्यायन इस पवभाग की थोडी भभन्न व्याख्या करता ि◌ै, जर्ससे ◌ेपता लगता ि◌ै कक वात्स्यायन के पूव शभी न्यायसूत्रों की परस्पर पवरोधी व्याख्याए ◌ुँपवद्यर्ान थीं। अनुर्ान र्ें ि◌र् प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर र्ाते ि◌ैं जर्ससे ◌ेवि सम्बद्ध ि◌ै। और यि सम्बन्ध तीन प्रकार का ि◌ो सकता ि◌ै, अनुर्ेय तत्त्व या तो प्रत्यक्ष तत्त्व का कारण ि◌ो सकता ि◌ै, या उसका पररणार् ि◌ो सकता ि◌ै अथवा दोनों ि◌ी ककसी अन्य तत्त्व hat 8 संयुक्त पररणार् ि◌ो सकतिैं। र्ब ि◌र् बादलों को देखते ि◌ैं और उनसे ◌ेवर्षा शका अनुर्ान करते ि◌ैं तो यि 'पूववशत्'◌् अनुर्ान ि◌ै, जर्सर्ें ि◌र् पूववशस्तु को देख कर पररणार् रूपी परवती वस्तु के अजस्तत्व का अनुर्ान करते ि◌ैं। परन्तु इस अवस्था र्ें अनुर्ान केवल कारण ि◌ी को देख कर नि◌ीं ◌ंककया गया, बजल्क पूवानुशभव के आधार पर भी ककया गया ि◌ै। र्ब ि◌र् नदी र्ें आई ि◌ुई बाढ़ को देखते ◌े ि◌ैं और अनुर्ान करते ि◌ैं कक वर्षा ि◌ुई ि◌ोगी, तो यि र्ेर्षवत् ◌्अनुर्ान ि◌ै, क्योंकक इसर्ें ि◌र् परवती पररणार् को देख कर उसके पूववशती कारण का अनुर्ान करते ि◌ैं। इसका प्रयोग ऐसेस्थान पर भी ि◌ोता ि◌ै र्िां ◌ंि◌र् दो परस्पर सम्बद्ध पदाथों र्ें से एक को देख कर दूसूरे का अनुर्ान करतिैं, अथवा एक भाग से या तनरसन (elimination) पवधध से दूसूरे का अनुर्ान करतिैं, अथवा एक भाग hat H या तनरसन अथवा बहिष्कार (exclusion) पवधध के भसद्धांत का एक दृष्टान्त यि ि◌ै जर्ससे ◌ेर्ब्द के गुण ि◌ोने का अनुर्ान ककया गया ि◌ै। ि◌र् भसद्ध करते ि◌ैं, कक र्ब्द सार्ान्य नि◌ीं, न पवर्ेर्ष ि◌ी ि◌ै, सर्वाय भी नि◌ीं, न द्रव्य ि◌ै, और न किया ि◌ै। इस प्रकार ि◌र् इस पररणार् पर पि◌ुंचते ि◌ैं कक इसे ◌ेगुण ि◌ोना चाहिए। र्ब ि◌र् ककसी सींगों वाले पर्ु को देखते ि◌ैं और अनुर्ान करते ि◌ैं कक इस पर्ु के पूंछ भी ि◌ै, तो यि सार्ान्यतोऽदृष्ट अनुर्ान का पवर्षय ि◌ै। इस अनुर्ान का आधार काय-शकारणभाव उतना नि◌ीं जितनी कक अनुभव की सर्ानता ि◌ै। उद्योतकर इससेसिर्त ि◌ै और वि एक दृष्टान्त यि देता ि◌ै कक र्ैसे ◌े ककसी स्थान पर यहद सारस पक्षी हदखाई दें तो विांपानी भी पवद्यर्ान ि◌ोगा, ऐसा अनुर्ान ि◌ोता ि◌ै। इसका

---

176 'तत्त्वधचंतांर्णण', 2, पृष्ठ 2। तुलना कीजर्ए र्ाणणक्यनंदी की अनुर्ान की इस पररभार्षा से कक "साधनात् ◌् साध्यपवज्ञानर्'◌् ('परीक्षार्ुख सूत्र')।

177 'सप्तपदाथी', 146।

178 तुलना कीजर्ए, पूवर्शीर्ांसा सूत्र, 1. 2, 19, 22, 23 29, 3 : 1, 2-3; 3, 2 - 1 , र्िां 'पूव'श और 'र्ेर्ष' ये र्ब्द ताककशक दृजष्ट से वाक्य अथवा पैराग्राफ के प्रारजम्भक और अंततर् भागों के भलए आते ि◌ैं, और कभी-कभी पवधध तथा अथवशाद का उल्लेख करने र्ें प्रयुक्त ि◌ोते ि◌ैं। पूव शप्रधान अथवा प्राथभर्क तथा र्ेर्ष गौण ि◌ै। यि प्रकट ि◌ै कक पूवर्शीर्ांसा र्ें र्ेर्ष द्वारा ककया गया तकश गौण से प्रधान की ओर ि◌ोगा। सम्भवतः न्याय नेप्रधान तथा गौण के संबंध को कारण-काय शसंबंध र्ानकर व्याख्या की ि◌ै। देणखए प्रोफेसर ध्रुव का लेख 'बत्रपवधर् ◌्अनुर्ानर्'◌् पर, र्ो 'प्रोसीडडंग्स आफ हद ओररयण्टल कांफ्रेंस', पूना र्ें पृष्ठ 265 पर हदया गया ि◌ै।

भारतीय दर्नश-2 71 (सार्ान्यतोऽदृष्ट का) उपयोग इजन्द्रयातीत तथ्यों के अनुर्ान का तनदेर् करने के भलए भी ककया गया ी।'[179] िर्

धूप वाले भभन्न-भभन्न स्थानों अनुचखते िैं, और यद्यपप सूय शको न भी देख सकें तो भी अनुर्ान कर लेतेिं कक सूय शअवश्य गततर्ान िै। पवरजक्त तथा स्नै आहद भावों को देखकर िर् र्ीवात्र्ा के अजस्तत्व का अनुर्ान करते े ीं, जर्सका िर्ें प्रत्यक्ष ज्ञान निींिोता।"

उक्त सब दृष्टान्त यि प्रततपाहदत करने के भलए पयाप्शत िैं कक व्यापक सम्बन्ध की, जर्से ेव्याजप्त किा र्ाता िै, पवद्यर्ानता को स्वीकार करना आवश्यक िै। प्रत्येक व्याजप्त दो तत्त्वों को र्ोडती िै-एक व्यापक, अथात्श ्र्ो फैला िुआ िै; और दूसूरा व्याप्य अथात्श ्जर्सर्ेंयि (व्यापक) फैला िै। अनुर्ान इस तनजश्चत तथ्य से कक इस पदाथ शर्ें एक ऐसा गुण िै र्ो एक अन्य गुण के साथ सिचारी रूप से व्याप्त पाया र्ाता िै, एक तनष्कर्ष श पर पिुँचता िै। िर् इस पवर्षय का तनश्चय, कक पिाड र्ें आग लगी िै इस तथ्य से करते िैं कक पिाड र्ें धुआँिै, और धुए ुँके साथ आग सवत्रश रिती िै। धचह्न के पवचार से अथात्श ्धुए ुँसे िर् अनुर्ान करते िैंकक वि पदाथ श जर्सर्ें धुआं िै उसर्ें आग भी िै। उद्योतकर के अनुसार अनुर्ान, धचि तथा सूतृत के एक साथ भर्लने से बने तकश से उत्पन्न िोता िै' अथवा उस ज्ञान से जर्सके पूव शितुका प्रत्यक्ष ज्ञान िुआ िै और इस सूतृत से कक उसका साध्य के साथ तनरन्तर सिचय शि, उत्पन्न िोता िै।[180] अनुर्ानपवर्षयक तकश के भभन्न-भभन्न अवयव पराथानुशर्ान र्ें प्रकट िोतेिं।

8. पराथानुशर्ान

परायानुशर्ान के पाचुँ अवयव िैं (1) प्रततज्ञा, अथात्श ्वि पवर्षय जर्सेभसद्ध करना िै: पिाड र्ें आग लगी ी; (2) ेतु अथवा कारण क्योंकक इसर्ें धुआ ुँिै; (3) उदिारण, अथवा सादृश्यतनदर्कश दृष्टान्त : र्िाुँर्िा ुँधुआ ुँ

[179] कीथ का पवचार िै कक यि व्युत्पतत (अथ)श असम्भव िै (इजण्डयन लॉजर्क एण्ड ऐटोभर्ज्र्, पृषूठ 88 हटप्पणी)। 2. उद्योतकर वात्स्यायन द्वारा हदए गए अनुर्ान-पवर्षयक इस दृष्टांत की आलोचना करता िै कक भभन्न-भभन्न स्थानों र्ें और भभन्न-भभन्न सर्यों र्ें सूय शके प्रकट िोनेसे ेयि अनुर्ान िोता िै कक सूय शगततर्ान िै। उसका किना िै कक िर् सूय शके गोले के भभन्न-भभन्न भागों िी को देखतेिं, सूय शकी गतत को निीं देखते। यि ध्यान र्ें रखना बाहिए कक उद्योतकर, पूववशत्,् र्ेर्षवत् ्तथा सार्ान्यतोऽदृष्ट को अनुर्ान के तीन प्रकार निीं र्ानता, बजल्क प्रार्ाणणक अनुर्ान की तीन र्त ेंर्ानता िै: (1) पूवावथात् ्का अभभप्राय शिैकक धर्ी र्ें पदेन (िेतु) एपू (2) र्ेर्षवत् ्का अभभप्राय िै कक धर्र् पद (िेतु) अन्य (र्ेर्ष) स्थानों पर साध्य के साथ अतनवाय शसिचय शर्ें हदखाई देना चाहिए: (5) सार्ान्यतोऽदृष्ट ब्द सार्ान्यतः और अदृष्ट इन दो ब्दों से ेभर्ल कर बना िै और इसका अभभप्राय िै कक धर्र् पद (िेतु) पवर्षय (साध्य) तथा पवर्षय के अभाव (साध्याभाव) दोनों र्ें एकसर्ान निींिोना अथात् श ेंया अततव्याजप्त दोर्ष से युक्त निीं िोना चाहिए, र्ो साधारण का भासते। इनके साथ दो अन्य र्तों को भी र्ो 'च' से उपलक्षक्षत िोती िैं, सूत्र के अन्त र्ें र्ोड हदया गया िै, अनुर्ानको प्रयास तथा बीत (सुतत-पवर्षयक) 3. प्रर्ाण का पवरोधी निींिोना चाहिए। एक अनुर्ान इन पोतों की पूतत शिोनी चाहिए और कंवलान्वयी अथवा केवलव्यततरेकी अनुर्ान र्ें चार र्तों की पूतत शिोनी चाहिए।

[180] सूतूयनुगृीतोभलंगंपरार्ीऽनुर्ान न्यायपाततकश

हदखाई देता ि विाँ-विाँआग भी रिती ि, उदिारण के रूप र्ें रसोईघर; (4) उपनय, अथवा प्रयोग इसी प्रकार का यि पिाड भी ि; (5) तनगर्न अथवा तनष्कर्ष श: इसभलए पिाड पर आग लगी िुई ि।[181]

प्रततज्ञा एकदर् प्रारम्भ र्ें िी उस पवर्षय को प्रस्तुत करती ि जर्से ेभसद्ध करना ि। यि सर्स्या प्रस्तुत करती ि और र्ांच की सीर्ा का भी तनधारशण कर देती ि। सुझाव अथवा प्रस्तापवत पवर्षय, जर्से ेभसद्ध करना ि, प्रारम्भ से िी प्रकिया पर तनयन्त्रण रखता ि और अनुर्ान उसे ेसुदृढ़ करने र्ें र्क्त देता ि। प्रततज्ञा केवल एक 'प्रस्ताव या सम्भावनार्ात्र' ि।[182] तकश आगे ेबढ़ िी निीं सकता र्ब तक कक िर् प्रततक्षा र्ें उपजस्थत पवर्षय के सम्बन्ध र्ें अधधकाधधक ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा प्रकट न करें। प्रततज्ञा के दो भाग िोते िैं, अथात्श ्एक उद्देश्य जर्सका ज्ञान िोता ि और र्ो आर् तौर पर या तो एक व्यजक्तरूप पदाथ शिोता ि या कोई वग-शपवर्ेर्ष िोता ै जिर्से ेएक इकाई के रूप र्ें स्वीकार ककया र्ा सकता ि'[183] और दूसूरा भाग पवधेय ि जर्सको भसद्ध करना िोता ै। 'पिाड पर आग लगी िुई ि', इस वाक्य र्ें 'पिाड' उद्देश्य पक्ष अथवा धर्ी ि, और 'आग लगी' यि पवधेये अथात्श ्साध्य, धर् शअथवा अनुर्ेय ि, अथात्श ्जर्सका अनुर्ान ककया र्ाना ि। उद्देश्य िर्ारे ध्यान को यथाथ शके एक भाग की ओर आकृष्ट करता ि और पवधेय उद्देश्य को पवभर्ष्ट बना देता ि, यि बता कर कक इसर्ें अर्ुक गुण पवद्यर्ान ि या यि उन पदाथों के वग शर्ें र्ाभर्ल ि र्ो अर्ुक गुण रखते िैं। पराथानुशर्ान का काय शयि भसद्ध करना ि कक प्रत्यक्ष ज्ञान के पवर्षयरूपी उद्देश्य र्ें वि पवर्ेर्षता ि जर्सका पवधेय र्ें तनदेर् ककया गया ि। संयोर्क अथवा पवधेय वाचक कियापद भार्षा का एक आकजस्र्क पद ि, यि प्रततज्ञा का आवश्यक भाग निीं ं ै।'[184] प्रततज्ञा को प्रत्यक्ष ज्ञान के अथवा आम्नाय (श्रुतत) के पवरुद्ध न िोना चाहिए। हदङ्नाग के अनुसार, ऐसी प्रततज्ञाए ुँर्ो बुद्धधगम्य निीं, स्वयं र्ें पवरोधी िैं, अथवा स्वत:प्रकाश्य िैं, प्रततपाद्य पवर्षय निीं ंबन सकतीं।'[185] उनर्ें अपररधचत पद निींरिने चाहिए तथा वेस्वीकृत सत्यधारणाओंऔर अपने सुतनजश्चत पवश्वासों के पवपरीत निींिोनी चाहिए।[186] यि पता लगाने के भलए कक 'क' 'ख' ि, यि प्रततज्ञा सत्य ि अथवा निीं, िर् पक्ष को लेते िैं, उसके पृथक् पृथक् तत्त्वों का पवश्लेर्षण करते िैं, उसके अन्दर िेतु की पवद्यर्ानता को खोर्ते िैं। प्रत्येक तकश र्ें प्रततज्ञा के बाद पक्ष का पवश्लेर्षण आता ि। पराथानुशर्ान का दूसूरा अवयव पक्ष र्ें िेतु, या आधार, साधन, या भसद्ध करने के उपाय भलंगं या धचह्न की पवद्यर्ानता को बताता ि। इससे उसर्ें ऐसा पवभर्ष्ट लक्षण

---

181 न्यायसूत्र, 1: 1, 32। तुलना कीजर्ए प्रर्स्तपाद द्वारा दी गई संज्ञाओंसे (प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 235): प्रततज्ञा, अपदेर्, तनदर्नश, अनुसंधान और प्रत्याम्नाय। पाररभापर्षक र्ब्दों का यि भेद प्रदभर्तश करता ि कक वैर्ेपर्षक के ताककशक पवचारों का स्वतन्त्र रूप र्ें पवकास िुआ। वात्स्यायन तनदेर् करता ि कक पराथानुशर्ान र्ें ऐसेअंर् िैं र्ो भभन्न-भभन्न प्रर्ाणों से आए िैं। पिला र्ाजब्दक ि, दूसूरा आनुर्ातनक ि, तीसरा प्रत्यक्ष-सम्बन्धी ि, चौथा उपर्ान-सम्बन्धी ि, और तनष्कर्ष शप्रदभर्तश करता ि कक ये सब उसी सर्स्या पर आधाररत िैं (न्यायभाष्य, 1/1, 1)

182 न्यायभाष्य, 1:1, 39।

183 न्यायसूत्र, 2/2, 66

184 देणखए 'हिस्री आफ इजण्डयन लाजर्क', पृष्ठ 290। और देणखए प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 234, और वैर्ेपर्षक सूत्र, 3: 1, 15।

185 विी

186 और देणखए प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 234; वैर्ेपर्षक सूत्र. 31, 15।

(पक्षधर्तशा) प्राप्त िोता िै कक वि तनष्कर्ष शका पवर्षय बन र्ाता िै। पिाड र्ें धुआं हदखाई देता िै। पक्षता अनुर्ान की एक आवश्यक र्त शिै। कोई भी पिाड पक्ष निीं ंिै। यद्यपप रै्से िी िर्ें उसर्ें धुआ हदखाई देता िै और िर् अनुर्ान से यि भसद्ध करना चािते िैं कक उसर्ें आग भी िै. यि वन र्ा सकता िै। ककन्तु यहद िर्ें उसर्ें आग भी हदखाई देती िै. तो पिाड पक्ष निींरिता। का िोना संहदग्ध िै।[187] पक्ष पद से अधधक प्रस्तुत पवर्षय िै। पराथानुशर्ान के भलए आवश्यक तीन पद अब िर्ारे पास िो गए िैं। एक पक्ष, जर्सके पवर्षय र्ें ककसी बात का अनुर्ान कक गया िै, दूसूरा साध्य, जर्सका अनुर्ान पक्ष के पवर्षय र्ें ककया गया िै, और तीसरा िेतु, जर्सके द्वारा पक्ष के पवर्षय र्ें साध्य की सत्यता का अनुर्ान ककया गया िै।

िेतु के पक्ष र्ें पवद्यर्ान िोनेर्ात्र से िी, जर्से ेपक्षधर्तशा किते िैं, अनुर्ान तब ति प्रार्ाणणक निींिि सकता र्ब तक कक एक व्यापक सम्बन्ध िेतु और साध्य के बीच र्ें स्थापपत न िो। तीसरा अवयव, उदािरण, 'र्िां–र्िां ंधुआं िै विां-विां आग रिती िै, रै्से ेरसोईघर र्ें, िर्ें अनुर्ान के आधार, साध्यपद की ओर ले र्ाता िै। गौतर् के अनुसार, उदािरण सेतात्पय शएक ऐसेसर्ान दृष्टान्त से िै र्िां ंसाध्य का आवश्यक गुण पवद्यर्ान िो। वात्स्यायन का भी यिी र्त प्रतीत िोता िै। यिांर्ें यि र्तानेकी आवश्यकता निींिै कक ये दोनों पवचारक 'उदािरण' को एक सार्ान्य तनयर् के दृष्टान्त रूप र्ें स्वीकार करते िैं। सम्भवतः उनका पवचार यि था कक सर्स्त तकश पवभर्ष्ट से पवभर्ष्ट की ओर िैं। कुछेक पवभर्ष्ट पदाथों र्ें एक पवरे्र्ष गुण रिता िै। एक या अनेक पवभर्ष्ट पदाथ शउनके साथ कुछ अन्य गुणों से सादृश्य रखते िैं। इसभलए वे उस पवरे्र्ष गुण र्ें भी उनके साथ सादृश्य रखतिैं। यि िो सकता िै कक न्यायर्ास्त्र का पराथानुशर्ान उदािरण द्वारा प्रस्तुत तकश से पवकभसत िुआ िो। उदािरण को अरस्तू ने भी स्वीकार ककया िै।[188] ककन्तु र्ीघ्र िी यि र्ाना गया कक यद्यपप यि ऐसी पवधध िै जर्सके अनुसार िर् प्रायः तकश करते िैं, कफर भी यि ताककशक अनुर्ान निीं ंिै कक र्िांतनष्कर्ष शपदों द्वारा सर्धथतश िोता िै। तकश अप्रार्ाणणक ठिरता िै, यहद उदािरण सार्ान्य तनयर् का तनदेर् न करता िो। साधम्य श र्ाततगत स्वरूप (सार्ान्य) का संकेत करता िै। प्रर्स्तपाद सािचय शकी धारणा से अवगत िै और इसे ेकणाद का र्त घोपर्षत करता िै।'[189] परवती तकशर्ास्त्र तीसरे अवयव (उदािरण) की सार्ान्य सम्बन्ध के साथ तुल्यता हदखाता िै।'[190] र्ब तक कक धचह्न और अनुर्ातनत लक्षण र्ें सतत व्याजप्त पवद्यर्ान न िो तब तक अनुर्ान िो िी निीं ंसकता। 'वेदान्तपररभार्षा' का किना िै कक 'व्याजप्त का ज्ञान िी अनुर्ान का साधन िै ।'[191] उदािरण के वणनश करने का तात्पय शिै कक अनुर्ान दोनों प्रकार का िोता िै, अथात्श ्आगर्न और तनगर्न। सार्ान्यीकरण का आधार उदािरण िोते िैं और इससे िर्ें नये तथ्यों को तकश के द्वारा र्ाननेर्ें सिायता भर्लती िै। हदङ्नाग ने उदािरण के सिायक और नीतत र्ित्त्वपूण शस्वरूप पर बल हदया िै। धर्कशीतत शका र्त िै कक उदािरण अनावश्यक

---

187 'तकशसंग्रि', 49 और 51। सजन्दधसाध्यवान् ्पक्षः ।

188 तुलना कीजर्ए, थीब्स के पवरुद्ध एथेंस का युद्ध दुष्टुतापूण शथा, क्योंकक वि युद्ध पडोभसयों के र्ध्य था रै्सेकक फोककस के पवरुद्ध बीब्स का युद्ध था।

189 प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्शसंग्रि, पृष्ठ 205।

190 व्याजप्तप्रततपादकर्ुदािरणर् ्('तकशसंग्रिदीपपका', 45) ।

191 अनुभर्ततकरणञ्च व्याजप्तज्ञानर्, ् 2।

ि और इसका उपयोग केवल र्नुष्य को सर्झाने र्ें सियक के रूप र्ें ककया र्ाता िै। उदािरण पवर्षय को स्पष्ट भले िी कर सकता िै ककन्तु यि तनयर् की व्यापकता को स्थापपत निींकर सकता। डॉ. सील के अनुसार, "साध्य पद (major premise) सम्बन्धी भर्ल के इस र्त का कक वि पिले ि देखे गए तत्सदृर् दृष्टान्तों का एक संक्षक्षप्त स्र्रणपत्र िै जसर्ें उसे ि अनदेखी जस्थततयों र्ें लागू करने की भसफाररर् भी रिती िै, और अरस्तू के इस र्त का कक वि एक व्यापक प्रस्थापना िै र्ो अनुर्ान का आधार िै, उदािरण र्ें भर्श्रण और पूण शसार्ंर्स्य िो र्ाता ि।"[192] उदािरण भभन्न-भभन्न प्रकार के िो सकते िैं-सर्ातीय अथात् श ि स्वीकारात्र्क (साधम्य,श र्िां िकक साध्य गुण और िेतु उपजस्थत िै र्ैसेकक रसोईघर और पवर्ातीय अथवा तनर्ेषेधात्र्क (वैधैम्य) र्िांकक साध्य गुण और िेतु दोनों िी अनुपजस्थत िैं र्ैसै िकक झील।' [193]हदङ्नाग इन दोनों र्ें सादृश्यबोधक उदािरण और र्ोड देता िै। वि दस प्रकार के िेत्वाभासों का भी वणनश करता िै जर्नका सम्बन्ध उदािरणों के साथ िै, र्बकक भसद्धसेन हदवाकर छः प्रकार के िेत्वाभास सर्ातीय उदािरणों के बारे र्ें और छः प्रकार के पवर्ातीय उदािरणों के बारे र्ें बताता िै।

िेतु अथात्श ि र्ध्यपद की व्याजप्त के पवर्षय र्ें यि किा र्ाता िै कक (1) िेतु के भलए पक्ष के कुल क्षेत्र को व्याप्त करना आवश्यक िै, र्ैसाकक इस दृष्टान्त र्ें िै: 'र्ब्द अतनत्य िै क्योंकक यि उत्पन्न पदाथ शिै।'[194] यिां िेतु अथात्श ि उत्पन्न पदाथ शअपने अन्दर र्ब्द की प्रत्येक अवस्था को रखता िै; (2) िेतु द्वारा तनहदशष्ट सब पदाथ शउन पदाथों के सर्ातीय िोनेचाहिए जर्नका तनदेर् साध्य द्वारा िोता िै, र्ैसा कक इस दृष्टान्त र्ें िै: "सब उत्पन्न पदाथ शअतनत्य िैं; और (3) साध्य के पवर्ातीय ककसी भी पदाथ शका िेतु र्ें सर्ावेर् निीं िोना चाहिए 'कोई भी तनत्य उत्पन्न पदाथ शनिीं िै।' हदङ्नाग इस पर बल देता िै कक िेतु को व्यापक रूप से और सतत रूप से साध्य के साथ सम्बद्ध रिना चाहिए। उद्योतकर का तकश िै कक िेतु और साध्य र्ें व्यापक सम्बन्ध रिना चाहिए, यथा र्िां–र्िां िसाध्य िै, विां-विां ििेतु भी िोना चाहिए और र्िां–र्िां िसाध्य निीं विां-विांिेतु भी निींिोना चाहिए। प्रर्स्तपाद भी इसी र्त का सर्थनश करता िै र्ब वि यि किता िै कक भलंगं अथवा िेतु वि िै र्ो अनुर्ेय पदाथ शके साथ सम्बद्ध रिता िै, और जर्सके बारे र्ें िर् यि र्ानते िैं कक र्िां–र्िांवि पदाथ शउपजस्थत िै विां-विांवि िै और र्िां–र्िां ि वि पदाथ शअनुपजस्थत िै विां-विांवि भी निीं।' वरदरार् िेतु की पांच पवर्ेर्षताओं का वणनश करता िै। वेये िैं- (1) पक्षधर्तश‍ा, अथात् श ि िेतु का पक्ष र्ें पवद्यर्ान रिना, र्ैसे िपिाड र्ें धुए ँका िोना; (2) सपक्षसत्त्व अथात् श ि िेतु का साध्य के सर्ातीय तनश्चयात्र्क उदािरणों र्ें पवद्यर्ान रिना, र्ैसे िकक धुए ँ

192 'हद पॉजर्हटव साइंसेर् आफ हद ऐभर्यण्ट हिन्दूर्', पृषृ्ठ 252।

193 न्यायभाष्य, 1:1, 36-37।

194 प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्शसंग्रि, पृषृ्ठ 200।

वदनुर्ेयेन सम्बद्धं प्रभसद्धंच तदजन्वते।

तदभावे च नास्त्येव तजल्लङ्गनुर्ापकर् ि॥

धर्कशीतत शका पवचार िै कक र्ब तक उन पदाथों र्ें, जर्नर्ें अनुर्ेय पवद्यर्ान िै, िेतु उपजस्थत निीं, तिथा उन सब पदाथों र्ें जर्नर्ें अनुर्ेय निींपाया र्ाता, िेतुकी पररभार्षा इस प्रकार करता िै कक िेतु वि िै 'र्ो साध्य के अततररक्त अन्य ककसी के सम्बन्ध र्ें उपजस्थत निींरिता।' धुओं आग के अततररक्त अन्य ककसी पदाथ शसे उत्पन्न निींिो सकता।

श ्साध्य के प्रवरातीय तनरेषेधात्क उदिारणों रें िेतु का
का रसोईघर रें िोना; (3) पवपक्षसत्त्व, अथात्
अनुपजस्थत रिना, रैसे ेझील रें धुआँनिीं; (4) अबाधधतपवर्षयत्व, अथवापक्ष के साथ प्रभाव।'[195] तनतान्त स्वीकारात्क एवं तनतान्त तनरेषेधात्क अनुरानों रें पवरुद्ध चार प्रकार की आवश्यकताओं को िी पूतत शकरता िै, क्योंकक यि तनश्चयात्क तनरेषेधात्क दोनों रें सरान रूप से पवद्यरान निीं रि सकता। अन्न ंर्टके प्रकार का िोनेके कारण िेतु भी तीन प्रकार का िै (1) से अनुरान तीक (अन्वयततरेकी), रिां ंकक िेतु सतत रूपरा रेरो रैसे ेआग के साथ धुआ।ुँ रिां-रिां ंधुआ ुँिै विां-विां आग िै, रैसे ेरसोईयर रें रैसे रिां ंआग निीं विांधुआँभी निीं, रैसे ेकक झील रें[196], (2) केवल तनश्चयात् ्(केवलान्वयी), रिांरिें केवल स्वीकारात्क और सतत सिाचय शभर्लता िै, रैसे ेरााना रा सकता िै उसका नार भी रखा रा सकता िै,' रिांरिें इस जस्थतत को स्पष्ट करने के भलए तनरेषेधात्क दृष्टान्त निींभर्ल सकता कक 'जर्सेनार निीं सकते उसे ेरान भी निीं सकते।' और (3) केवल तनरेषेधात्क (केवलव्यततरेकी) रा एक तनश्चयात्क दृष्टान्त सम्भव निीं ंिै। उन सभी सिाओंरें जनरें परु-कियाए ुँिै रीवात्ा पवद्यरान िै, यिां िर केवल यिी भसद्ध कर सकते िैं कक कुभसयशों तथा तें रें परु-कियाए ुँनिींऔर इसभलए उनरें रीवात्ा का तनवास निीं। ककन्तु इन कोई तनश्चयात्क दृष्टान्त निींदे सकते क्योंकक रीवात्ाए ुँतथा वे सिाए ुँजर्न् ्परु-कियाए ुँिोती िैं अपनी प्रकृतत रें सि-पवस्तारी िैं।[197] वेदांत पररभार्षा के अनुसार, तनश्चयात्क व्याजप्त के द्वारा रो पररणार तनकलता िै उसे िी िर अनुरान किते िैं ककन्तुतनरेषेधात्क व्याजप्त से जर्स पररणार पर पिुँचते िैं, उसे े'अथापशपि' कितिैं इस आधार पर कक इसरें ककसी सारान्य भसद्धांत का प्रयोग अवस्था-पवर्ेष रें निींिोता।'[198] तो भी न्याय का पवचार िै कक प्रत्येक तनरेषेधात्क का पवरोधी एक तनश्चयात्क िोता िै, और इसभलए तनश्चयात्क पररणार तनरेषेधात्क व्याजप्तयों से तनकाले ेरा सकते िैं।[199] िेतु की रुख्य पवर्ेर्षता यि िै कक यि सब प्रकार की उपाधधयों से रुक्त िोना चाहिए। िर इस प्रकार का तकश निींकर सकते कक 'क' केवल इसभलए काला िै क्योंकक वि 'ख' का लडका िै, 'ख' के अन्य बच्चों के सरान और अन्य र्नुष्यों के बच्चों से भभन्न िै। यि तनष्कर्ष शसच िो भी सकता िै और निीं भी िो सकता, ककन्तु यि पिलेतीन का वणनश धर्कशीतत शतथा धरिेर नेककया िै। देणखए 'न्यायबबन्दु'ु पृष्ठ 104, तथा लौगाक्षक्ष भास्करकृत

195
'तकशकौरुदी', पृष्ठ 12, बीम्बे एडीर्न ।

196 यि ध्यान देनेके योग्य िै कक व्याप्त का तनर्षेध तनर्षेधात्क व्याजप्त रें व्यापक बन राता िै और व्यापक का तनर्षेध व्याप्त बन राता िै। देणखए श्लोकवाततकश, अनुरान, पृष्ठ 121।

197 'तकशसंग्रि', 48। इस भेद को उद्योतकर और गंगेर् नेस्वीकार ककया िै। तुलना कीजए इसकी रैन र्त के आप्त ग्रंथों रें पवहित अनुरान के वगीकरण के साथ रो इस प्रकार /: (1) यि िै, क्योंकक वि िै। विांआग िै क्योंकक विांधुआ ुँिै। (2) यि निीं, क्योंकक वि िै। यि ठण्डा निीं, क्योंकक अजग्न उपजस्थत िै, (3) यि िै, क्योंकक वि निीं। यि ठण्डा िै, क्योंकक अजग्न अनुपजस्थत िै। (4) यि निीं िै, क्योंकक यि निीं। यिां कोई आर का पेड निीं, क्योंकक यिांपेड िी निीं।

198 3 ।

199 व्याजप्त को या तो स्वीकारात्क (अन्वय) अथवा तनर्षेधात्क (व्यततरेक) िोना चाहिए और पिली दो प्रकार की िै सर्व्याजप्त रिांिेतु तथा साध्य सिकारी रूप से पवस्तृत िैं, रैसेकक इस दृष्टांत रें 'सर्स्त उत्पन्न बदाय शअतनत्य िैं' और पवर्षर्व्याजप्त, रिांवे दो सिकारी रूप से ेपवस्तृत निीं। रिां-रिां धुओं िोता िै िां-विां आग अवश्य िोती िै, ककन्तु इसका पवपरीत तकश ठीक न िोगा।

तकश की दृजष्ट से दोर्षपूण शअवश्य ि, क्योंकक 'ख' का लडका िोनेऔर काले ेरंग र्े कोई अनुपाधधक (उपाधधरहित) सम्बन्ध निीं।

उपनय (प्रयोग) पराथानुशर्ान का चौथा अवयव ि। पक्ष र्े प्रस्तुत िेतु की उपजस्थतत एवं अनुपजस्थतत की यि स्थापना करता ि। िेतु की उपजस्थपि की अवस्था र्े यि स्थापना तनश्चयात्रक िोती ि, र्ैसेकेक इस दृष्टान्त र्े, 'इसी तरि का यि पवतश ि,' अथात्श ्चुऐवाला ि, और दूसूरी अवस्था र्े तनर्ेषेधात्रक िोती ि, र्ैसे ेकक इस

दृष्टान्त र्े, 'यि पवतश ऐसा निीं, अथात् श ्धुएं वाला निीं ि।"[200]

तनष्कर्ष शप्रततष्ठापपत प्रततज्ञा को इस प्रकार दोिराता ि, 'इसभलए पिाड र्े आग लगी ि"[201] पिले ेअवयव र्े र्ो बात अस्थायी रूप र्े रखी गई थी, तनष्कर्ष शर्े उसकी स्थापना की र्ाती ि।

वात्स्यायन का किना ि कक कुछ ताककशकों की सम्र्तत र्े परावानुशर्ान के दस अवयव ि।ै ऊपर हदये गये पांच अवयवों के अततररक्त तनम्नभलणखत और उनर्े सजम्भलत ककए गए ि: (1) जर्ज्ञासा, अथवा प्रततज्ञा के सम्बन्ध र्े सत्यज्ञान को खोर् तनकालने की अभभलार्षा, अथात्श ्सम्पूण शपिाड र्े आग लगी ि या उसके कुछ हिस्सों र्े िी ि; (2) संर्ंय, कारण के पवर्षय र्े सन्दिे कक जर्सर्े धुर्ां सर्झ रिे ि, वि केवल भाप िी तो निीं; (3) क्यप्राजप्त, अथात् श ्दृष्टान्त की तनष्कर्ष शको सर्थतश करने की योग्यता कक क्या धुआं सवदशा िी आग के साथ रिता ि क्योंकक तपे िुए लाल लोि के अन्दर धुआंनिींभी पाया र्ाता; (4) प्रयोर्न, अथात्श ्तनष्कर्ष शतनकालनेका प्रयोर्न; और (5) संर्य-व्युदार्, अथात्श ्िेतु के साध्य के साथ सम्बन्ध और पक्ष र्े उसकी पवद्यर्ानता के बारे र्े सब प्रकार के संर्यों का तनवारण।'[202] पराथानुशर्ान के ये पांच अततररक्त अवयव वात्स्यायन के अनुसार भसद्धध के भलए प्रकिया को दृजष्ट र्े रखते ि। जर्ज्ञासा अथातश र्ानने की इच्छा तनश्चय िी सर्स्त ज्ञान का प्रारंभभक बबन्द ि; ककन्तु र्ैसाकक उद्योतकर का किना ि, यि पवर्षयभसहद अथवा तकश का अतनवाय शअवयव निीं।[203]

---

200 न्यायसूत्र, 1 1, 38।

201 न्यायसूत्र, 1 1, 39।

202 न्यायभाष्य, 1: 1, 32। यि इस पवर्षय का एक संकेत ि कक पराथानुशर्ान का स्वरूप वाद-पववाद-कलाके अभ्यासों तथा परम्पराओं र्े से पवकभसत िुआ ि। र्ैन ताककशक भद्रबािु परायानुशर्ान के दस अवयवों को एक पृथक् सूची देता ि अथात्श ्(1) प्रततज्ञा, (2) प्रततज्ञा-पवभजक्त, अथात्श ्प्रततज्ञा की सीर्ा: (3) िेतु अथवा कारण; (4) िेतु-पवभजक्त, अथात्श ्िेतु की सीर्ा; (5) पवपक्ष; (6) पवपक्ष-प्रततर्षेध; (7) दृष्टान्त; (8) आकांक्षा, अथात्श ्दृष्टान्त के प्रार्ाण्य र्े सन्दिे; (9) आकांक्षा-प्रततर्षेध; (10) तनगर्न, अथात् श ्तनष्कर्ष श('दर्वैकापिकतनयुजक्त, पृष्ठ 74, तनणयशसागर संस्करण)। भद्रबािु यिां भसद्ध करने ेकी द्पवगुण पवधध का आश्रय लेता ि। र्ब र्ब्द की अतनत्यता को भसद्ध करनेके भलए एक तकश हदया र्ाता ि तो एक पवपरीत प्रततज्ञा का कथन िोता ि और एक कथन द्वारा उसका तनर्षेध ककया र्ाता ि। यहद र्ब्द तनत्य िोता तो यि उत्पन्न पदाथ शन िोता। इस प्रकार का काल्पतनक तकश पूव-शअनुर्ान का सर्थनश करता ि यद्यपप अपने-आप र्े इसका अधधक र्ित्त्व निीं। भसद्धसेन हदवाकर नेअपने'न्यायावतार' ग्रंथ र्े पराथानुशर्ान को केवल पांच अवयवोंवाला िी बताया ि। अनन्तवीय शउस पर (13) टीका करते िुए किता ि कक पराथानुशर्ान के सवोर्त् रूप र्े दस अवयव रिते ि, र्ध्यर् र्े पांच और तनकृष्टतर् र्े दो अवयव रिते ि।

203 न्यायवाततकश, 1: 1,32।

र्ीघ्र ि ी यि पता लगा कक तनष्कर्ष शर्े प्रारजम्भक प्रततज्ञा को कफर से दिोराया र्ाता िै, र्बकक चौथा अवयव दूसूरे की आवृपिृर्ात्र िै। वस्तुतः प्रत्येक परावानुशर्ान के केवल तीन ि ी अवयव िैं। कि ा र्ाता िै कक नागार्ुनश ने ि ी तीन अवयवयुक्त वैरायानुर्ान का प्रचलन अपने 'उपायकौर्ल्यसूत्र' र्े ककया िै, र्िां वे बलपूवकश यि प्रततपादन करते िैं कक तनष्कर्ष शकी स्थापना तकश और दृष्टान्त द्वारा िी िो सकती िै, दृष्टान्त तनश्चयात्रक िो या तनर्ेषेधात्रक िो।[204] इसका श्रेय कभी-कभी हदङ्नार् को हदया र्ाता िै।'[205] अपने 'न्याय-प्रवेर्' र्े उन्िोंने पराथानुशर्ान के तीन अवयवों को ि ी वणनश ककया िै, यद्यपप तीसरे अवयव र्े वि तनश्चयात्रक एवं तनर्ेषेधात्रक दोनों ि ी प्रकार के उदािरणों की व्याख्या करते िैं; इस पिाड र्े आग लगी िै, क्योंकक इसर्े धुआं िै, र्िां-र्िां धुआंिोता िै, आग भी िोती िै, र्ैसे रसोईघर र्े और र्िां आग निीं िोती धुआं भी निीं, र्ैसे झील र्े। हदङ्नाग के अनुसार तीसरा अवयव एक सार्ान्य तनयर् िै र्ो सांकेततक दृष्टान्तों के सहित िै। धर्-शकीतत शका पवचार िै कक तीसरा अवयव भी आवश्यक िै क्योंकक सार्ान्य प्रततज्ञा तकश के अन्दर स्वतः ध्वतनत िै। इतना किना ि ी पयाप्शत िै कक पिाड पर आग िै क्योंकक उसर्े सेधुआं तनकल रिा िै। इस प्रकार के अनुर्ान का उपयोग र्ो लुप्तावयव िेतुर्द् अनुर्ान से भर्लता-र्ुलता िै, हिन्दू दार्तशनक ग्रंथों र्े भी बिुत भर्लता िै। र्ैन ताककशक र्ाणणक्य नन्दी और देवसूरी'[206] का भी यिी र्त िै। र्ीर्ांसक और वेदेन्ती केवल तीन अवयव वाले पराथानुशर्ान को ि ी स्वीकार करते िैं। वेदांत पररभार्षा नार्क ग्रन्थ पिले तीन अथवा अजन्तर् तीन अवयवों के उपयोग की अनुर्तत देता िै।[207] उद्योतकर दोनों ि ी पराथानुशर्ान के अजन्तर् दो अवयवों को छोड देनेके पवरुद्ध िैं।[208] वे स्वीकार करते िैं कक प्रथर् अवयव को तनष्कर्ष शर्े दोिराया र्ाता िै, र्बकक चौथा दूसूरे और तीसरे अवयव का भर्श्रण िै। यद्यपप तकश की दृजष्ट से वे अनावश्यक िैं, तो भी पववाद के भलए उपयोगी िैं क्योंकक वे तकश की पुजष्ट करते िैं, तथा उस प्रततज्ञा की तनश्चयपूवकश स्थापना करने र्े सिायक िोते िैं र्ो प्रारजम्भक अवयव र्े अस्थायी रूप से प्रस्तुत की गई थी। पंचावयवी पराथानुशर्ान दूसूरों को तनश्चय कराने के भलए उपयोगी िै, इसकी परायानुशर्ान संज्ञा इसीभलए दी गई िै। तीन अवयवों वाला अपनेतनश्चय के भलए, पयाप्शत िै, इसे स्वाथानुशर्ान की संज्ञा दी र्ा सकती िै। पपछला अनुर्ान को पवचार-सम्बन्धी गतत की प्रकिया र्ानता िै और इसभलए अन्वेर्षणात्रक पवज्ञान की श्रेणी र्े आता िै, र्बकक पिला प्रर्ाण से सम्बन्ध रखता िै। गौतर् और कणाद इसका उल्लेख स्पष्ट रूप से निींकरते, े

204 'हिस्री ऑफ इजण्डयन लाजर्क', पृष्ठ 119।

205 सुगुइरा : 'हिन्दू लाजर्क ऐर् पप्रर्ल्ड शइन चाइना एंड र्ापान'; यूई 'वैर्ेपर्षक कफलासफी', पृष्ठ 82, हटप्पणी 2।

206 'प्रर्ाणनयतत्त्वालोकांकार', पृष्ठ 3।

207 2: वरदरार् नेअपनेताककशक रक्षा (पृष्ठ 82 से आगे) नार्क ग्रंथ र्ीर्ांसा के र्त के तीन अवयव न्याले पराथानुशर्ान का बौद्ध र्त के दो अवयव वाले परायानुशर्ान का उल्लेख ककया िै। र्ाठरवृपि पक्ष, िेतु तथा दृष्टान्त इन तीन अवयव वाले पराथानुशर्ान से पररधचत िैं।

208 न्याय भाष्य, 1/1 39; न्यायवाततकश, 1/1, 39।

यद्यपप परवती ताककशक इसे ेस्वीकार करते िैं।'[209] प्रर्स्तपाद अपनेतनश्चय के भलए उपयुक्त अनुर्ान (स्वतनजश्चताथ)श और दूसूरों को तनश्चय करानेके भलए उपयुक्त अनुर्ान (पदाथ)श र्ें भेद करता िै।'[210] दूसूरों को तनश्चय कराने के भलए उपयुक्त पराथानुशर्ान अधधकतर एक औपचाररक व्याख्या िै। िर् एक पिाड को देखते िैं और िर्ें सन्दिे उत्पन्न िोता िै कक इसर्ें आग िै या निीं। धुएं को देखकर िर्ें आग और धुएं के सम्बन्ध का स्रण िोता िै और िर् इस तनष्कर्ष शपर पिुंचते िैं कक पिाड पर आग अवश्य िोगी। इस सूचना को र्ब िर् दूसूरों तक पिुंचाने का प्रयत्न करते िैंतो िर् पंचांवयवी अनुर्ान की पद्धतत का प्रयोग करते िैं।'[211]

पराथानुशर्ान के अवयवों की संख्ंया के पवर्षय र्ें र्तभेदे िोते िुए भी, इस पवर्षय र्ें सभी ताककशक सिर्त िैंकक एक दोर्षपविीन अनुर्ान के भलए दो अवयव अतनवाय शरूप से आवश्यक िैं, अथात्श ्व्याजप्त (व्यापक सम्बन्ध) अथवा साध्यपद और पक्षधर्तशा अथवा पक्षपद । पिला गुणों के व्यापक सम्बन्ध को बतलाता िै और पपछला बतलाता िै कक कताश र्ें व्यापक सम्बन्ध का एक अवयव उपजस्थत िै।'[212] ये र्े. एस. भर्ल की उन दो पवधधयों के अनुकूल िैं जर्नके द्वारा तनश्चय िोता िै कक (1) कौन-से गुण और ककनके धचि िैं, और (2) क्या ककन्िींप्रस्तुत पदाथों र्ें ये धचह्न पाए र्ाते िैं?

न तो साध्य और न पक्ष केवल अपने-आपसेककसी तनष्कर्ष शका तनश्चय करा सकते िैं। दोनों का परस्पर संश्लेर्षण आवश्यक िै। भलंगं परार्र् शअथवा धचह्न का पवचार अनुर्ान की प्रकिया का एक अतनवाय शतत्त्व िै। गंगेर् के अनुसार, व्याजप्त अपने-आप र्ें अनुर्ान-र्न्य ज्ञान का परोक्ष कारण िै और भलंगं परार्र् शअथवा धचह्न का पवचार अंतंतर् कारण (चरर् कारण) अथवा र्ुख्य कारण (कारण) िैं।'[213] तथ्य साररूप र्ें यि िै कक साध्य के साथ सम्बद्ध िेतु पक्ष रिता िै[214] और विी िर्ें तनष्कर्ष शपर ले र्ाता िै। परन्तु अनुर्ान की प्रकिया एक अखंड प्रकिया िै।

अद्वैतवाहदयों का तकश िै कक िेतु के पवचार का कोई प्रश्न प्याजप्त-सम्बन्ध का ज्ञान साधनरूप कारण िै। िर्ें इसका स्रण िोता िै। तनष्कर्ष शपर पिुँच र्ाते िैं।'[215] यि आपपि इस र्त के पवरुद्ध की गई प्रतीत िोती उसके बाद सूतृत िोती अनुर्ान के बाद ककता िै। अवैतवादी यि भसद्ध करनेका प्रयत्न हदड्नाग प्रर्स्तपाद, धर्कशीतत,श भसद्धसेन हदवाकर, र्ाणणवायनन्दी, देवसूरी, भासवज्ञश और गंगेर् आहद इस भेद को

209
स्वीकार करते िैं।

[210] प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संग्रि, पृष्ठ 231। तुलना कीजए इसकी धररि्र के भेद ज्ञानात्क और र्ब्दात्क के साथ (न्यायपवन्दुटीका, पृष्ठ 21) तथा भर्वाहदत्य के भेद अथरूशपत्य और र्ब्दरूपत्व के साथ (सप्तपदाथी, 154)।

[211] तकशसंग्रि, पृष्ठ 45

[212] तत्त्वधचन्तार्णण, 2, पृष्ठ 2; भार्षापररच्छेद, और भसद्धान्तर्ुक्तावली, पृष्ठ 66 और 68।

[213] तत्त्वधचन्तार्णण, 2, पृष्ठ 2।

[214] व्याजप्तपवभर्ष्टपक्षधर्तशाज्ञानर् ्(तकशसंग्रि, पृष्ठ 44)। देणखए भार्षा-पररच्छेद, पृष्ठ 66; तत्त्वधचन्तार्णण, 2: 2; र्ानकीनाथकृत न्यायभसद्धान्तर्ंर्ी, पृष्ठ 86-87, पडडत संस्करण।

[215] वेदांतपररभार्षा।

करता ि कक अनुर्ान ककया दो तनण शिोता ि। अर्य रख देना निीं, बजल्क यि एक अकेली प्रकिया (व्यापार) ि जर्सने दृश्यतत्त्व (पक्ष) सूतृत द्वारा आपवभूतश सार्ान्य भसद्धांत अथातश साध्य के काय श करता ि। ये दोनों तत्त्व स्वतन्त्र र्ानभसक अवस्थाएँ निीं और अनुर्ान की प्रकिया र्ें तनजश्चत जस्थततयों के रूप र्ें भाग निीं लेतीं। नैय्यातयक, र्ो नोवैज्ञातनक की ओर् ताककशक अधधक ि, बलपूवकश यि किता ि कक अनुर्ान के भलए संश्लेर्षण की किया आवश्यक ि।

हदङ्नाग अनुर्ेय के स्वरूप के सम्बन्ध र्ें एक रोचक प्रश्न उठाता ि। िर् धुएँ से आंग का अनुर्ान निीं

करते िैं, क्योंकक यि कोई नया ज्ञान निीं। िर् पिले से र्ानते िैं कक धुएँका आग के साथ सम्बन्ध ि। इसी प्रकार आग और पिाड के परस्पर सम्न्य का अनुर्ान िर्नेककया, यि भी निीं किा र्ा सकता, क्योंकक सम्बन्ध के भलए दो वस्तुओं का िोना आवश्यक ि, बकक अनुर्ान र्ें िर्ारे पास केवल एक िी वस्तु अथात्श ् पिाड ि, क्योंकक आग तो हदखाई निीं देती। जर्सका िर् अनुर्ान करते िैं वि न तो आग और न िी पिाड ि, बजल्क ऐसा पिाड ि जर्सर्ें आग लगी िुई ि।[216] तनष्कर्ष शएक अंततर् तनणयश ि।

नेव्यातयक ने उन भभन्न-भभन्न जस्थततयों को जनर्ें िेतु रि सकता ि, कोई र्ित्व निीं हदया ि। उसने बारबरा को सर्स्त पराथानुशर्ान-सम्बन्धी तकश के उदािरण के रूप र्ें र्ाना ि। तनश्चयात्र्क तथा तनर्ेषेधात्र्क उदािरणों के उपयोग ने उसका झुकाव स्वीकारात्र्क तथा तनर्षेधात्र्क सार्ान्य प्रततज्ञाओं को परस्पर सम्बद्ध र्ानने की ओर ककया। वस्तुतः सर्स्त अनुर्ान को दोनों ओर से पुजष्ट प्राप्त िोती ि।[217] वस्तुतः हिन्दू ्तकशर्ास्त्र र्ें एक िी सम्बन्ध-प्रकार (कफगर) और एक िी तत्त्व (र्ूड) ि। र्ब िर् यि र्ान लेतें कक प्रततज्ञा के कता शर्ें एक ऐसी पवर्ेर्षता ि जर्सका सािचय शतनरंतर एक ऐसे गुण के साथ ि जर्सकी पवद्यर्ानता को िर् भसद्ध करना चािते िैं, िर् अनुर्ान करते िैं कक कता शर्ें उक्त गुण पवद्यर्ान ि। इस भसद्धांत को गुण-तनदेर् (कन्नोटेर्न) की पररभार्षा र्ें व्यक्त ककया र्ाता ि। इसे ्यहद वगों की पररभार्षा र्ें पररवततततश ककया र्ाए तो िर्ें सार्ान्य से पवर्ेर्ष के अनुर्ान के भसद्धांत की उपलजब्ध िोती ि। एक वग-शपवर्ेर्ष के प्रत्येक व्यजक्त के पवर्षय र्ें र्ो कुछ किा र्ा सकता ि, वि उस वग शके ककसी व्यजक्त पवर्ेर्ष के पवर्षय र्ें भी किा र्ा सकता ि। सीि-सीि पवचार के भलए संवाक्य-प्रकारों तथा तत्त्वों के ब्यौरेवार भेदों की इतनी आवश्यकता निीं, यद्यपप वे सूक्ष्र् पवचार के भलए

216 न्यायवाततकशतत्त्वटीका, न्यायसूत्र, 1 1, 5 र्ें उद्धृत हदङ्नाग। वेदांतपररभार्षा (2) के अनुसार, पिाड का ती प्रत्यक्ष िोता ि और आग का अनुर्ान िोता ि।

217 यहद क ि तो ख ि। यहद ख निीं, तो क निीं। धर्कशीतत शर्िां इससे सिर्त ि कक सर्स्त पुजक्तयों को स्वीकारात्र्क अथवा तनर्षधात्र्क रूप र्ें व्यक्त ककया र्ा सकता ि, यहद वे साधम्यं और वैधम्यंपर आधाररत िों, विांउसका यि भी पवचार ि कक कुछ युजक्तया ुँस्वभावतः पपछली रूप के अन्तगतश िैं। सब पदाथ,श र्ो यिांऔर र्ब पवद्यर्ान िैं, प्रत्यक्ष देखे र्ाते िैं,

घडा प्रत्यक्ष निीं हदखाई देता,

इसभलए घडा यिांऔर अब पवद्यर्ान निीं।

यि कैर्ेस्रस का र्त ि।

 प्रभर्क्षणभूभर् प्रस्तुत करते िैं।'[218] अरस्तू ने स्वीकार ककया कक अंततर् तीन संवाक्य-प्रकारों को पिले ेर्ं सर्ावेर्

ककया र्ा सकता िै। न्याय पिले ेसंवाक्य प्रकार र्ें भी केवल बारबरा को स्वीकार करता िै। न्याय र्ें दराई (Darii) और फेररयो (Ferio) का प्रयोग निंिुआ िै, क्योंकक तनष्कर्ष शसवदशा एक पररभर्त पदाथ शसे सम्बन्ध रखता िै, और

व्यापक तथा पवभर्ष्ट के र्ध्य भेद निंउत्पन्न िोता। यि भेद केवल अपेक्षाकृत िै, क्योंकक एक पररभर्त वग शके भलए र्ो व्यापक िै वि पवस्तृत पवर्षय र्ें पवभर्ष्ट िो र्ाता िै। न्याय के पराथानुशर्ान र्ें पक्ष सदा एक व्यजक्तरूप पदाथ शिोता िै अथवा वग शिोता िै और इसभलए वि व्यापक िै, पवभर्ष्ट निं। 'कुछ' दृष्टांतों के पवर्षय र्ें प्राप्त तनष्कर्ष शिर्ें प्रस्तुत दृष्टांत-पवर्ेर्ष के पवर्षय र्ें कोई तनजश्चत सूचना निंदे सकता। बारबरा से सेलेरेण्ट बडी सुगर्ता से र्ाना र्ा सकता िै। अरस्तू ने स्वीकार ककया कक उसके सब तत्त्व पिले ेसंवाक्य-प्रकार के पिले ेदो तत्त्वों र्ें सर्ापवष्ट ककए र्ा सकते िैं। और यहद िर् यि र्ान लें कक सब तनणयश उभयपाश्ववशान िोते िैं तो ये दोनों

परस्पर पररवतनशीलिोक्रैं।की प्रकिया का पवश्लेर्षण अरस्तु के पराथानुशर्ान सम्बन्धी पवश्लेर्षण के साथ बबल्कुल तनकट सादृश्य रखता िै। पञ्चायवी रूप र्ें भी केवल तीन पद रिते िैं, और बत्र-अवयवी अनुर्ान र्ें तीन पवर्षय िोते िैं र्ो अरस्तु के तनष्कर्ष,श पक्षपद तथा साध्यपद से अनुकूलता रखतिैं। इस प्रकार की अद्भुत सर्ानता का कारण यि बताया र्ाता िै कक दोनों का एक-दूसूरे पर प्रभाव पडा िै। डॉक्टर पवद्याभूर्षण का किना िै 'ऐसा पवचार असंगत न िोगा कक अरस्तू के तकशपवज्ञान ने अलेक्ज़ेण्यिा, सीररया तथा अन्य देर्ों के र्ाग शसे तक्षभर्ला र्ें प्रवेर् ककया िो। र्ेरा पवचार ऐसा िै कक भारतीय तकशर्ास्त्र र्ें वस्तुतः पराथानुशर्ान की पवधध अनुर्ान से स्वतः उहदत निंिुई िै और यि पवचार हिन्दू ूताककशकों र्ें अरस्तू र्सें आया िै।[219] पवद्वान् ्प्रोफेसर का पवश्वास िै कक पराथानुशर्ान की कला उधार ली गई िै, यद्यपप अनुर्ान का भसद्धांत िर्ारा अपना िै। प्रोफेसर कीथ भलखते िैं'प्राचीनकाल के तकश-पवर्षय भसद्धांतों का उद्गर् ग्रीस देर् को र्ानने का कोई कारण प्रतीत निं ंिोता। गौतर् और कणाद द्वारा प्रततपाहदत 'पराथानुशर्ान' भी तनःसन्दिे यिंउत्पन्न िुआ, भले िी यि रुद्ध पवकास रिा िो। उपर्ान-प्रर्ाण के द्वारा तकश करने के स्थान पर, तनरन्तर सिचय शको अनुर्ान का आधार बनाने का अपने-आप र्ें पूण शभसद्धांत, यि ठीक िै कक हदङ्नाग के द्वारा िी प्रकट िुआ। और यि किना अयुजक्तयुक्त न िोगा कक सम्भवतः यिंरि

---

[218] गौम्पर् शका किना िै कक 'अत्यधधक र्ौभलक पवचार के आधार पर अरस्तू नेअनुर्ान के रूपों का अन्वेर्षण ककया, उनर्ें परस्पर भेद ककया तथा उनकी र्ाखाओं का पवश्लेर्षण ककया। और देणखए तथा पवचार कीजर्ए कक अपनेअनेकानेक ग्रंथों र्ें उन हदनों उपलब्ध सम्पूण शज्ञान के क्षेत्र को व्याप्त करते िुए भी उसनेवस्तुतः पराथानुशर्ान के तत्त्वों एवं संवाक्य-प्रकारों का बबलकुल भी प्रयोग निंककया। यि यि बात स्वीकार करने ेर्ें भी संकोच निंकरता कक रूपों के इस सर्स्त सर्ूि को पता कर केवल कुछ र्ौभलक रूपों र्ें रखा र्ा सकता िै और इससे प्रयोग र्ें कोई िातन न िोगी। िर् यि और कि सकते ेररिन् ् पवकास तथा पररष्कार िुआ िै. इस पवर्षव उसकी पुजष्ट करता के बाद का अनुसन्धान, जर्सर्ें प्रकार तथा तत्त्व केवल प्राचीन आश्चयर्शनक पवर्षयों के संग्रिार्ात्र रि गए िैं जर्न्िें पवज्ञान के इततिास नेसुरक्षक्षत रखा िै, ककन्तु स्वयंपवज्ञान नेभी उनका प्रयोग कभी निंककया। पीक पवखण्डपृष्ठ 44-43और खप गय. एन. रैण्डल : 'ए नोट ऑन हद इजण्डयन भसतोजर् अक्तूबरर्ाणा 1924

[219] हिस्री ऑफ इजण्डयन लॉजर्क, पृष्ठ 13।

ग्रीक प्रभाव ने भाग भलया ि◌ो।"[220] अपने इस सुझाव के सर्थनश र्ें वे इस बात का उल्लेख करते ि◌ैं कक हदङ्नाग के पूववशती आयदेशव की (र्ो उससेलगभग दो र्ताब्दी पूव शिुआ था) ग्रीक ज्योततर्ष का ज्ञान था। भरतर्ास्त्र र्ें पाई र्ानेवाली हिन्दू ◌ूनाट्यकला की प्रकल्पना पर अरस्तू का र्ो प्रभाव बताया र्ाता ि◌ै, उसके साथ यहद इस पवचार को भर्लाया र्ाए तो यि सम्भव प्रतीत ि◌ोता ि◌ै कक भारत और ग्रीस के र्ध्य परस्पर कुछ सांस्कृततक आदान-प्रदार रिा ि◌ो। कभी-कभी यि प्रततपाहदत ककया गया ि◌ै कक अरस्तू हिन्दू ◌ूप्रकल्पना से बिुत अधधक रिा ि◌ो। कभी का र्ो उसके पास भसकन्दर के द्वारा पिुंची थी, क्योंकक भसकन्दर के पवर्षय र्ें यि किा र्ाता ि◌ै कक उसनेभारत के ताककशकों के साथ वातालशाप ककया था। सीधेप्रभाव के सम्बन्ध र्ें कोई तनजश्चत प्रर्ाण निीं, और र्ब ि◌र् यि स्र्रण करते ि◌ैं कक परायानुशर्ान के नर्ूने की तकशप्रणाली अरस्तू के सर्य से पूव शहिन्दू ◌ूऔर बौद्ध पवचारकों के ग्रन्थों र्ें पाई र्ाती ि◌ैं'[221] तो ग्रीस से'उधार लेनेकी प्रकल्पना को स्वीकार करना कहठन ि◌ो र्ाता ि◌ै। र्ैक्सर्ूलर के र्ब्दों को यिांदोिराया र्ा सकता ि◌ै कक 'ि◌र्ें यिांपर भी यि अवश्य स्वीकार करना चाहिए कक ि◌र्ारे पूवर्श र्िां ◌ंतक चिाते थे ◌ेउससेभी किीं ◌ंअधधक पवचारों र्ें ऐसा साम्य भर्लता ि◌ै, जर्सके पवर्षय र्ें तनश्चय ि◌ी कोई पूवयशोर्ना निींरिी ि◌ोगी। ि◌र्ें यि कदापप न भूलना चाहिए कक र्ो कुछ एक देर् र्ें सम्भव न ि◌ुआ वि अन्य देर् र्ें भी सम्भव ि◌ो सकता ि◌ै।"[222] इस र्त की और भी अधधक पुजष्ट ि◌ो र्ाती ि◌ै र्ब ि◌र्ें यि पवहदत ि◌ोता ि◌ै कक भारतीय और ग्रीक पराथानुशर्ान पवधधयों र्ें ककतने ि◌ी र्ौभलक भेद भी ि◌ैं। ग्रीक तकशर्ास्त्र र्ें तकश के पवश्लेर्षण र्ें 'उपर्ान' का स्थान निीं, जर्से ◌ेकक हिन्दू ◌ूपवचारक व्यापक सम्बन्ध के कथन के भलए अतनवाय शसर्झते ि◌ैं। यि बबलकुल स्पष्ट ि◌ै कक अनुर्ान का आधार व्यापक सम्बन्ध ि◌ै, क्योंकक दृष्टान्त उस सम्बन्ध का उपयुक्त र्ूतरूशप ि◌ै।

9. आगर्न अनुर्ान

अनुर्ान यथाथतशा के प्रतत सत्य ि◌ोनेका दावा करता ि◌ै और यि दावा जस्थर निीं ◌ंरि सकता र्ब तक कक दोनों पद सत्य न ि◌ों। पक्षपद प्रत्यक्षज्ञान का पररणार् ि◌ै और साध्यपद ि◌र्ें आगर्न अनुर्ान की सर्स्या तक ले र्ाता ि◌ै।

व्यापक प्रततज्ञाओं की भसद्धध कैसे ि◌ोती ि◌ै? नैय्यातयक इसके भभन्न-भभन्न उत्तर देता ि◌ै। यि गणना, अन्तदृजशष्ट तथा परोक्ष प्रर्ाण को प्रस्तुत करता ि◌ै। पराथानुशर्ान तनयर् के साथ-साथ एक उदािरण का उल्लेख करता ि◌ै। ककसी तनयर् को दर्ानेशके भलए उदािरण पयाप्शत तो ि◌ो सकता ि◌ै, ककन्तु यि अपने-आप र्ें ककसी व्यापक सम्बन्ध की स्थापना निींकर सकता। रसोईघर र्ें धुएं का आग के साथ सतत सािचय शिो सकता ि◌ै, अथवा ि◌ोर् करने के स्थान र्ें भी धुएं का सतत सािचय शआग के साथ ि◌ो सकता ि◌ै, ककन्तु इसर्ें ि◌र् पिाड पर आग के ि◌ोनेका अनुर्ान केवल इसभलए निींकर सकतेकक ि◌र् उसर्ें धुएं को देखते ि◌ैं, र्ब तक कक ि◌र् इस

---

220 इजण्डयन लोजर्क एंड ऐटोभर्ज्र् पृष्ठ 18 ।

221 हिस्री ऑफ इजण्डयन कष्ट 500 हटप्पणी, तथा पररभर्ष्ट बी।

222 भसद्धांतसर्ुच्चय, पृष्ठ 385-86

भसद्धांत की स्थापना न कर लें कक सभी अवस्थाओं र्ें आग के साथ धुएं का सिाचय शपाया र्ाता िै। यहद िर् धुएं तथा आग को अनेक दृष्टांतों र्ें साथ-साथ देखते िैं तो िर्ारे अनुर्ान की भभपि अधधक दृढ़ िो र्ाती िै। बबना ककसी अपवाद के (अव्यभभचररत सिाचय)श बार-बार अनुभव (भूयोदर्नश) िर्ें एक सार्ान्य तनयर् तक पिुंचाने र्ें सिायक िोता िै। र्िां–र्िां ंआग िै विां-विां ंधुए ुँका हदखाई देना िी पयाप्शत निीं। िर्ारे भलए इस बात को लक्ष्य करना भी आवश्यक िै कक र्िां ंआग न िो विां धुआं भी न िो। उपजस्थतत र्ें सर्ानता और अनुपजस्थतत र्ें सर्ानता, दोनों आवश्यक िैं।'[223] यहद तनयत सिाचय शके साथ-साथ अपवाद भी किीं न भर्ले,े अथात्श ् अपवनाभावरूप-सम्बन्ध िो तो व्याजप्तपवर्षयक अनुर्ान को पुजष्ट भर्लती िै और केवल उसी अवस्था र्ें िर्ें उपाधधयों, अथात्श ्आकजस्र्क अवस्थाओं से रहित सिाचय शभर्लता िै।[224] यि आवश्यक निीं कक र्िां–र्िां ं आग िै विां-विांधुआं भी पाया र्ाए। एक लाल गर्र् शलोिे के टुकडे र्ें आग तो िै ककन्तु धुआंनिीं। केवल गीले ईंधन की आग के साथ िी धुएं का सिाचय शिै। इस प्रकार िर् देखते िैं कक आग के साथ धुएंका सिाचय शसोपाधधक िै, र्बकक धुएं के साथ आग का सिाचय शतनरुपाधधक अवश्यंभावी िै। इस प्रकार 'सब स्थानों पर आग के साथ धुआं िोना' स्वीकाय शनिीं ंिै, र्बकक प्रत्येक ऐसी अवस्था र्ें र्िां ंआग गीले ईंधन र्ें लगी िो, धुएं का िोना स्वीकाय शिै। उपाधध को तनजश्चत रूप सेदोर्ष निींकिा र्ा सकता, क्योंकक उपाधध से रर् केवल उसी अवस्था र्ें िोता िै र्बकक उसका पृथक् ज्ञान न िो सके। र्ब कभी उपाधध का सन्देि िो तो िर्ारे भलए उन पररजस्थततयों की पववेचना करना और यि हदखाना आवश्यक िो र्ाता िै कक उक्त उपाधध की अनुपजस्थतत र्ें सिाचय शबना रिता िै। तनश्चयात्र्क दृष्टान्त उपाधधदोर्ष का तनराकरण करते िैं, क्योंकक वे यि भसद्ध करते िैं कक िेतु तथा साध्य तो उपजस्थत िैं, र्बकक और कोई तनरन्तर उपजस्थत निीं। तनर्षेधात्र्क दृष्टान्त यि हदखाकर सर्थनश करते िैं कक िेतु और साध्य अनुपजस्थत िैं, र्बकक और कोई भौततक पररजस्थतत तनरन्तर अनुपजस्थत निीं। परवती तकशर्ास्त्र ने तनर्षेधात्र्क दृष्टान्तों पर पवर्शेर्ष बल हदया िै और व्याजप्त की पररभार्षा इस प्रकार की िै जर्ससे ेकक अनुर्ेय के भलए िेतु की ऐकाजन्तक पयाप्शतता प्रकट की र्ा सके।'[225] नैय्यातयक बलपूवकश किता िै कक व्यवजस्थत र्जस्तष्क के भलए उधचत िै कक वि अपनी स्वच्छंद कल्पनाओंको वर् र्ें करके यथाथ शतथ्य के आगे ेझुक र्ाए। परीक्षणात्र्क पवधधयों का सिी ब्यौरा परीक्षणात्र्क पवज्ञानों के साथ िी सम्भव िै; और उसके अभाव र्ें,

---

223 सिाचयज्ञशान और व्यभभचारज्ञानपवरि (तकशसंग्रिदीपपका, 45)।

224 उदयन उपाधध की पररभार्षा यों करता िै कक वि वस्तु र्ो अपना गुण सर्ीपस्थ अन्य पदाथ शको दे दे (उपसर्ीपवततततशन आदधातत सङ्क्रार्यतत स्वीयं धर्र्श ्इतत उपाधधः)। लाल रंग का फूल र्ो अपनेऊपर रखे िुए स्फहटक को अपनी लाली देकर एक पद्र्राग र्ाणणक्य का सा बना देता िै, एक उपाधध िै। तुलना कीजर्ए वरदरार्कृत इस पररभार्षा के साथ-साधनव्यापकाः साध्य सव्याप्ता उपाधयः (ताककशक रक्षा, पृष्ठ 66)। एक तनदोर्ष व्यापक को ऐसी सभी उपाधधयों से ेरहित िोना चाहिए जर्नका स्वयंअपने को सन्देि िो सकता िै, या र्ो पवरोधी द्वारा आरोपपत की र्ा सकती िैं। और देणखए वाचस्पततकृत न्यायवाततकश तत्त्व टीका, 1 1, ।। उदयन के अनुसार, तकशर्ास्त्र र्ें उपाधध वि िै र्ो (1) ध्र्यपद के साथ बराबर रिती िै, (2) जर्सके साथ यि ध्र्य पद रिता िै, (3) और र्ो ध्र्यपद के साथ तनरन्तर निींरिती। तकशदीपपका र्ें चार प्रकार की उपाधधयां र्ानी गई िैं। देणखए आथल्येकृत तकशसंग्रि, पृष्ठ 317।

225 व्याजप्त की अनेक पररभार्षाओं पर पवचार करने ेके पश्चात गंगेर् यि तनष्कर्ष शतनकालते िैं कक तनरन्तर सिाचय शसाध्य के साथ िेतु की सि-उपजस्थतत िै, र्ो उस तनरपेक्ष अभाव की प्रततकृतत के स्वरूप से उपाधधयान् ्निीं, र्ो िेतु के साथ उसी जस्थतत र्ें रिती िै ककन्तु उस प्रततकृतत के सम्बन्ध र्ें भभन्न जस्थतत र्ें रिती िै। तत्त्व धचन्तार्णण, 2 (देणखए हिस्री ऑफ इजण्डयन लॉजर्क पृष्ठ 124)।

वैज्ञातनक पवधध के बारे र्ें भारतीय ताककशक के पवचार कोई खास हदलवस्थी पैदा निींकरते। नैय्यापवक आगर्न की सार्ान्य सर्स्या से अभभज्ञ था और प्रकृतततनष्ठ तथ्यों का सावधानी से तनरीक्षण करनेकी पद्धतत से भी अभभज्ञ था, जर्सके द्वारा व्यापक प्रततज्ञाओं पर पिुंचा र्ाता िै।

प्रकृतत सदा िर्ें ठीक ढंग से तनश्चयात्र्क तथा तनर्ेषेधात्र्क दृष्टान्त प्रदान निींकरती कक जर्नकी सिायता से िर् ककन्िीिंभसद्धान्तों का प्रततपादन या तनराकरण कर सकें। नैय्याकि का किना िै कक िर् तनर्ेषेधात्र्क साक्ष्य की प्राजप्त के भलए तकश अथवा अप्रत्यक्ष प्रर्ाण का कोना कर सकतेिैं। यहद यि सार्ान्य प्रततज्ञा कक 'र्िां–र्िां ंधुआं िै विां-विांआप िै', ठीक निीं िै तो इससे पवपरीत, अथात्श ्कभी-कभी 'धुएं के साथ आग निीं ंरिती', अवश्य ठीक िोगी। दूसूरे ब्दों र्ें यि कक आग अतनवाय शरूप से धुएं की पूववशती निींिै। ककन्तु र्ि यि अस्वीकार निींकर सकते कक आग धुएं का कारण िै। इस प्रकार एक व्यापक प्रततज्ञा को पुष्ट करने के भलए, र्ो अबाधधत र्ेले के तनश्चयात्र्क दृष्टान्तों पर आधाररत िै, तकश का प्रयोग ककया र्ाता िै। यि ककसी पररकल्पना को भसद्ध करने का भी एक उपाय िै।'[226] यि हदखा कर कक यहद िर् सुझाई गई पररकल्पना को अस्वीकार करेंगे ेतो ककन-ककन असंगततयों र्ें फंस र्ाएंगे, अप्रत्यक्ष प्रर्ाण उस प्रकल्पना की पुजष्ट करने र्ें प्रवृत्ति िै। इससे यि भसद्ध िोता िै कक अन्य कोई प्रकल्पना तथ्यों का सर्ाधान निींकर सकती।[227]

तकश आगर्न की उस अनुभवाधश्रत प्रणाली के भलए, जर्ससे िर्ें व्यापक प्रततज्ञाओं की उपलजब्ध निींिो सकती, केवल एक सिायक का कार् करता िै। र्िां ंिर् सभी सम्भव अवस्थाओंका तनरीक्षण करके अपने तनष्कर्ष शकी पररपुजष्ट अप्रत्यक्ष प्रर्ाण द्वारा करते िैं, विांभी िर्ें व्यापक प्रततज्ञाओं के पवर्षय र्ें एकान्त तनजश्चतता उपलब्ध निींिोती। र्ब तक वे पररभर्तत तनरीक्षण पर आधश्रत िैं उनर्ें कोई आवश्यकता निींरिती। गणनात्र्क व्याजप्तयांर्ात्र सम्भव िैं, तनजश्चत निींिै। र्िां ंपर यि सत्य िै कक इजन्द्रय-ग्राह्य पवभर्ष्टों का अनुभव व्यापकों के ज्ञान को उत्पन्न करता िै, विांयि निींकिा र्ा सकता कक व्यापकों का ज्ञान पूणतशया इजन्द्रय-ग्राह्य पवभर्ष्टों के द्वारा िोता िै, क्योंकक व्यापक ककसी भी अथवा सर्स्त पवभर्ष्टों से परे र्ाता िै।

सर्जष्टवाची तनणयशों र्ें भी व्यापक के ज्ञान की पूव शधारणा रिती िै। िर् सब दृष्टान्तों की गणना निीं ं करते ेककन्तु केवल उन्िींकी गणना करते िैं जर्नके अन्दर वगीय गुण पवद्यर्ान िैं, जर्सके कारण िी उक्त दृष्टान्तों का स्थान उस वग शके अन्दर िोता िै। इसभलए व्यापक के ज्ञान के बबना गणना-पद्धतत भी काय शनिीं ं

---

226 न्यायसूत्र, 1 1, 311।

227 एक न्याय्य पररकल्पना के भलए तनम्नभलणखत र्तों को पूरा करना आवश्यक िै:- (1) पररकल्पना तथ्यों का सर्ाधान करने ेर्ें अवश्य सर्थ शिो। (2) ककसी भी ज्ञात तथ्य से ेअथवा स्थापपत सार्ान्य भसद्धान्तों से उसका पवरोध न िो। (3) र्िां अनुभूत साधनों के द्वारा तथ्यों की सन्तोर्षर्नक व्याख्या सम्भव िो सकती िो विां ंअननुभूत साधनों की कल्पना कभी न करनी चाहिए। (4) र्ब दो प्रततद्वन्द्वी प्रकल्पनाएँ उपजस्थत िों तो एक र्ित्त्वपूण शतथ्य अथवा कसौटी आवश्यक िै। इस प्रकार की कसौटी की अनुपजस्थतत ककसी भी प्रकल्पना की भसद्धध के भलए घातक िोगी। (5) अन्य बातें यहद एकसर्ान िों तो दो प्रततद्वन्द्वी प्रकल्पनाओं र्ें से सरलतर को, अथात्श ्र्ो न्यून कल्पना करती िो उसे ेचुनना चाहिए। (6) दो प्रततद्वन्द्वी प्रकल्पनाओंर्ें से ेर्ो तात्काभलक िो अथवा उपजस्थत पवर्षय के साथ अनुकूलता रखती िो, उसे पवर्ातीय अथवा दूरूस्थ की अपेक्षा र्ान्यता देनी चाहिए। ऐसी प्रकल्पना को र्ो उक्त र्तों को पूरा करती िै, भसद्धान्त रूप र्ें स्थापपत िोनेसे पिले, यथाथतशा की र्ांच र्ें भी खरा उतरना चाहिए। (सीकृत हदपॉज़हटव साइंसेर् ऑफ एभर्यण्ट हिन्दूर्', पृष्ठ 288)।

कर सकती। प्राचीन न्याय का दावा ै कक िर् व्यापकों को प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा पिचान सकते िैं। गंगेर् व्यापकों (सार्ान्य लक्षण) के ज्ञान र्ें इजन्द्रयातीत किया को स्वीकार करता ि, र्ब वि इसे अलौकिकक प्रत्यक्ष अथवा इजन्द्रयातीत अन्तदृजशष्ट को एक प्रकार बताता ि।'[228] उक्त पवचारों र्ें से ककसी से भी दृष्टान्तों का सवागां सवेक्षण िर्ारे भलए आवश्यक निीं। व्यापक धूमूरर्यता के प्रत्यक्ष द्वारा िर् धूम्र-सम्बन्धी सब अवस्थाओंका ज्ञान प्राप्त करते िैं। आग और धुएं की व्यापकताओं का ज्ञान िर्ें सार्ान्यलक्षण-प्रत्यासपि द्वारा िोता ि और िर् उनके अतनवाय शसम्बन्ध को अनुभव करते िैं। इस प्रकार एक दृष्टान्त पवश्लेर्षण द्वारा िर् व्यापक सम्बन्ध को पिचान सकते िैं; और र्ो कुछ एक दृष्टान्त के पवर्षय र्ें सत्य ि उसे उक्त वग शके सब सदस्यों तक उधचत रूप र्ें पवस्तृत ककया र्ा सकता ि, क्योंकक सर्ानरूपता नार् की एक वस्तु अवश्य ि। र्ो एक बार सत्य ि, वि सवदशा सत्य ि। िर् र्ब किते िैं 'धुआं', तो िर्ारे र्न र्ें उस सर्य धुएं की सब अवस्थाए ुँनिीं िोतीं, ककन्तु तो भी धुएं का गुण तनदेर् िर्ारे र्जस्तष्क र्ें उपजस्थत रिता ि। धुएं तथा आग के गुण तनदेर् व्याजप्त के अन्दर व्याप्य व्यापक-भाव से परस्पर सम्बद्ध िैं। िर्ारे सार्ने अनेकों दृष्टान्तों का रिना आवश्यक ि, इसभलए निींकक िर्ें इन पवभर्ष्टों से व्यापक सम्बन्ध की प्राजप्त िोती ि, बजल्क इसभलए कक वि सम्बन्ध केवल एक उदािरण से स्पष्ट रूप र्ें पिचाना निीं र्ा सकता। यद्यपप पवभेदक र्जक्त र्ें प्रवीण पुरुर्ष थोडे–से उदािरणों से भी सम्बन्धों र्ें भेद कर िी सकते िैं, व्यापक सम्बन्ध केवल खोर्र्ात्र ि, उसका सृर्न निींिता। केवल एक दृष्टान्त से भी पवर्ेर्ष पवचार द्वारा िर् व्यापक सम्बन्ध तक पिुँच सकते िैं। यहद स्वयं अजन्तर् तनणयश र्ें व्यापक सम्बन्ध िर्ारे सम्र्ुख स्पष्ट निीं िोता तो एकसर्ान घटनाओंकी पुनरावृपि भी इस पवर्षय र्ें िर्ारी सिायता निींकर सकती। यि पवर्षय के अन्दर तनहित ि जर्से िर्ारी पवचारर्जक्त ने बनाया निीं। र्ो कुछ इजन्द्रयातीत ि वि अनुभवातीत भी िो, यि आवश्यक निीं। पवधधयुक्त प्रेक्षण तथा परीक्षण ऐसेअनुभव का केवल सर्थनश करते िैं र्ो केवल एक घटना से कभी-कभी अन्तदृजशष्ट द्वारा प्राप्त िो र्ाता ि। प्रकृतत की प्रत्येक घटना अपनेअन्दर एक पवर्ेर्ष सम्बन्ध अथवा तनयर् को तछपाये िुए ि, जर्सके अनुसार वि घटना संघहटत िुई ि। ककसी घटना की र्ौभलक पवर्ेर्षताओंको उसके आकजस्र्क सिचारी पवर्षयों से पृथक् करके सर्झनेर्ें केवल अन्तदृजशष्ट िी िर्ारी सिायक िो सकती ि। व्यापक प्रततज्ञाएं पवर्षय-वस्तु के सम्बन्ध िैं। यहद सभी लघुपपि वाले प्राणी दीघायुश िोते िैं तो यि इसभलए निींकक र्नुष्य, घोडा तथा खच्चर, र्ो लघुपपि वाले िैं, दीघायुश िैं, बजल्क इसभलए कक लघुपपिता और दीघ शर्ीवन की पवर्षय-वस्तुओं र्ें एक आवश्यक सम्बन्ध ि। न्याय के पराथानुशर्ान का र्ित्त्व उसे इस पररकजल्पत तनरुपाधधक रूप र्ें रखने सेअच्छी तरि स्पष्ट िो र्ाता ि। यहद 'क' तो 'ख', 'क' इसभलए 'ख' ।

तनगर्नात्र्क तकश अपनेतनष्कर्ष शर्ें िर्ें इस प्रकार आधारवाक्य र्ें दी गई सार्ग्री से अधधक प्रदान कर सकता ि, यि सर्स्या इस दृजष्टकोण सेएक नये रूप र्ें प्रकट िोती ि। सार्ान्य भसद्धांत, गणनात्र्क तनष्कर्ष श निीं और वेसम्बन्ध र्ो पवभर्ष्टों को र्ाभसत करते िैं, उतनेिी यथाथ शिैं र्जतने कक स्वयं पवभर्ष्ट । र्ब िर्

---

[228] तुलना कीजए अरस्तू के इस र्त से कक व्यापक का ज्ञान, सम्बजन्धत पवभर्ष्टों के प्रत्यक्ष ज्ञान के पश्चात, र्न द्वारा िोता ि। दृष्टान्तों की गणना, भले िी ककतनी भी पूण शक्यों न िो, तनतान्त तनजश्चतता प्रदान निीं कर सकती, र्ब तक कक िर् प्रकृतत की अतनजश्चतता को अतततर्ण न कर लें (अरस्तू : एन. पोस्ट., 1:5)

व्यापक तनष्कय शपवभष्ट सत्य को तनकालते िैं तो एक पवरे्ष अथ शर्े तनष्कर्ष शआधारबाक्य से भी परे प र्ाता िै, यद्यपप दूसूरे अथ शर्े यि उसके अन्दर तनपवष्ट िै।

ककन्तु यहद व्यापक सम्बन्ध यथाथ शिैं और उनके भलए केवल अन्तदृजशष्ट िी को आवश्यकता िै तो यि कैसे िोता िै कक प्रेर्ी तथा पागल उन सार्ान्य भसद्धांतों के र्ित्व को ग्रिण निींकर सकते ◌ेर्ो वैज्ञातनकों तथा दार्तशनकों की आखौं र्े गड र्ाते िैं? क न इसका सर्ाधान िी सरल िै कक िर्ारे सार्ान्यानुर्ान कभी-कभी सत्य भसद्ध निीं िोते। त्रुहटपूण शआगर्नात्र्क अनुर्ानों र्े सम्बन्धों का सिी-सिी बोध निींिोता। पवभर्ष्टों को असीर् पूणतशा से उनका ठीक-ठीक भेदे निीं ककया र्ाता िै। यथाथतशा की र्हटलता के कारण सम्बन्धों र्े भेद करना कहठन िोता िै। राग, र्ानभसक पक्षपात और र्डता तथा पवचारिीनता के कारण िर् प्रस्थापनाओं को सत्य र्ान लेते िैं, यद्यपप ये सत्य िोती निीं। इस अथ शर्े पवभर्ष्ट प्रत्यक्ष भी अरुद्ध िो सकते िैं। अन्तदृजशष्ट द्वारा पुष्ट आगर्नात्र्क भसद्धांत अधधक पवश्वास-योग्य िो र्ाते िैं र्ब उनका प्रयोग नये पवभर्ष्टों के भलए िोता िै, अथात्श ◌ुर्ब िर् आगर्न से तनगर्न अवस्था की ओर आते।िैं र्ैसाकक िर् आगे ◌ेचलकर देखेंगेव्याजप्त-सम्बन्धों की प्रार्ाणणकता को भी, अन्य सब ज्ञानों के सर्ान, ज्ञान की अन्य पवधधयों से भसद्ध करने की आवश्यकता िोती िै। ऐसा अन्तज्ञानश जर्सकी पुजष्ट अनुभूतत के आधार पर न िुई िो, पररकल्पना र्ात्र िी िै। केवल अन्तज्ञानश कुछ अधधक उपयोगी निींिै। आनुभपवक सार्ग्री की पूण शतनःर्ेर्ेषता एक ऐसा आदर् शिै जर्सको प्राप्त निींककया र्ा सकता। दोनों एक-दूसूरे के परस्पर सिायक िैं। सार्ान्य भसद्धांत र्े कुछ आवश्यकता तनहित रिती िै। यद्यपप िर् इसे ◌ेकेवल एक आनुभपवक तथ्य के अवसर पर िी ठीक-ठीक सर्झ सकते िैं।

व्याजप्त के सम्बन्ध र्े न्याय की यि धारणा िै कक सार्ान्य स्थापनाए ◌ुँयथाथसशिा की अवयवभूत िैं,'[229] व्याजप्त-सम्बन्ध यथाथ शिैं।[230] चावाकश सम्प्रदाय वाले, र्ो भौततकवादी िैं, व्याजप्त-सम्बन्धों की सम्भावना को स्वीकार निींकरते ◌ेऔर इसीभलए वे अनुर्ान की यथाथतशा के भी पवरोधी िैं। बौद्ध दार्तशनकों के र्त र्े सार्ान्य प्रस्थापनाए ◌ुँआदर् शकृततयाुँ िैं, यथाथ शसम्बन्ध निींिै। सार्ान्य प्रस्थापनाएं ◌ंकेवल नार्र्ात्र िैं और उनकी पिचान केवल कल्पना िै। बौद्ध ग्रन्थ 'सार्ान्यदूरूषणहदकप्रसाररता' र्े इस र्त की कक िर् सार्ान्य प्रस्थापनाओंका, यथाथ शकी तरि प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते िैं, आलोचना की गई िै। िर् िाथ की पांच अंगुभलयों को देखते िैं और इसके अततररक्त छठी सार्ान्य वस्तु को निींदेखते, र्ो उतनी िी अवास्तपवक िै जर्तना कक भसर पर सींग।[231] यद्यपप इस र्त की ठीक-ठाक व्याख्या के अनुसार, प्रत्येक प्रकार का अनुर्ान असम्भव ठिरता िै, तो भी बौद्ध दार्तशनक कियात्र्क रूप र्े इसकी यथाथतशा को स्वीकार करते िैं और भभन्न-भभन्न प्रकार के सार्ान्य सम्बन्धों र्े भेद करते िैं। िेतु का साध्यपद के साच स्वभाव (तादात्म्य), कारण कायभशाव अथवा अभाव (अनुपलजब्ध) रूप से सम्बन्ध िो सकता िै । इसका तात्पय शयि िै कक िर्ारे अनुर्ान पवध्यात्र्क और

229 सार्ान्यस्य स्तुपृरूष्०1पूना संस्करण)

230 स्वभापवक सम्वन्धो व्याज प्त: पृषूठ 35

231 कीय: 'बद्धधस्ट कफलराफि' पृषूठ 233 । तुलना कीज ए वकशलेके अरूत श पवचारों से ◌े'पप्रभसपल्स ऑफ ह्यूर्न नॉलेर्, भूभर्का पृषूठ 13 ।

 तनरे्षेधात्रक ि◌ो सकते ि◌ैं और पिले ◌े प्रकार के भी पवश्लेर्षणात्रक अथवा संश्लेर्षणात्रक ि◌ो सकते ि◌ैं।'[232] र्ब ि◌र्

इस प्रकार का कथन करते ि◌ैं कक 'यि एक वृकू्ष ि◌ै क्योंकक यि देवदारु की श्ेरणी का ि◌ै" तो यि अनुर्ान या तो तादात्म्य, या पवश्लेर्षण, स्वभाव, अथवा सिअजस्तत्व के नरू्ने का ि◌ै। इसी प्रकार र्ब ि◌र् यि कथन करते ि◌ैं कक "चूंकक विांघुओं ि◌ै इसभलए विांआग ि◌ै" तो यि अनुर्ान तदुत्ुपपि (अथात्श ◌्आग से धुआँउत्पन्न ि◌ोता ि◌ै) संश्लेर्षण, कायकशारणभाव अथवा पूवानुशपरिर् के नरू्नेका ि◌ै। अनुपलजब्धर्न्य अनुर्ान यि ि◌ै रिां ◌ंि◌र् घडे के अभाव का अनुर्ान घडा हदखाई न देनेके कारण करते ि◌ैं। सार्ान्य सम्बन्धों का ज्ञान तथ्यों के तनरीक्षण द्वारा निींोिता, बजल्क ताजत्त्वक तादात्म्य की पूवधशारणाओं अथवा कायकशारण रूपी र्ावश्यकता के आधार पर ककए गए अनुर्ान से ि◌ोता ि◌ै। बौद्ध दार्तशनक इन कायकशारणभाव तथा तादात्म्य सम्बन्धी भसद्धांतों की सार्ान्य सिा को स्वीकार करते ि◌ैं, क्योंकक बबना इनकी स्वीकृतत के और कोई तनस्तार निींि। हिदङ्नाग के अनुसार, ज्ञान के द्वारा वस्तुतनष्ठ सिा के यथाथ शसम्बन्धों का स्पष्टीकरण निींोिता ि◌ै। अन्ततनहशितता, तत्त्व, गुण और उद्देश्य वस्तु के सम्बन्ध, जर्नके द्वारा ि◌र् ककसी तनष्कर्ष शपर पिुंचतेिं, ये सब पवचार के द्वारा आरोपपत ककए र्ाते ि◌ैं।[233] सम्बन्ध केवल तकशर्न्य ि◌ै।

वाचस्पतत उक्त बौद्धर्त की कडी छानबीन करता ि◌ै। बौद्ध दार्तशनकों की दृजष्ट र्ें कायकशारणभाव के तनयर् की सन्तुजष्ट ि◌ो र्ाती ि◌ै यहद ि◌र् आग लगने की अवस्था र्ें धुए ◌ँकी उपजस्थतत को ककसी अदृश्य पपर्ाच के
द्वारा उत्पन्न ि◌ुआ बता सकें। और उनके र्त र्ें यि भी आवश्यक निींि कक कायपशवरे्ष का कारण भी विी एक िो। यहद कारण वि ि◌ै र्ो काय शसेपिले ◌ेआता ि◌ै तो दोनों का एक ि◌ी सर्य र्ें पवद्यर्ान रिना निींबनता। धुए ◌ँको देखने ◌ेसे ि◌र् वतर्शान र्ें निीं ककन्तु भूतकाल र्ें आग के अजस्तत्व का अनुर्ान कर सकते ि◌ैं। और यहद दोनों का तादात्म्य ि◌ै तो एक के प्रत्यक्ष ज्ञान का अथ शदूसूरे का भी प्रत्यक्ष ज्ञान ि◌ै, और उस अवस्था र्ें अनुर्ान की आवश्यकता निींरिती। वाचस्पतत और र्यन्त बलपूवकश कितेि◌ैं कक देवदारु और वृकू्ष के र्ध्य सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध निींि, क्योंकक सभी वृकू्ष देवदारु निीं ि◌ैं।[234] बौद्धर्तानुयायी ि◌र्ें यि निींबतलाता कक कायकशारणभाव तथा ताजत्त्वक तादात्म्य सम्बन्धी भसद्धान्त स्वयं किां ◌ंसे आए। सिाचय शकी अनेक ऐसी अवस्थाए ◌ँि◌ैं जर्नका कायकशारणभाव अथवा तादात्म्य से कोई सम्बन्ध निींि। नैय्यातयक के अनुसार, सभी प्रकार के पारस्पररक सम्बन्ध व्याजप्त के अन्दर आतिें। केवल विी सम्बन्ध निीं ◌ंर्ो कायकशारणरूप से पूवापशरभाव रखतिेंअथवा र्ातत एवं उपर्ातत के र्ध्य ि◌ैं, बजल्क इस प्रकार के अन्य सम्बन्ध भी रै्से ◌ेकक सभी सींगों वाले परु्ओ के खुर फटे ि◌ुए ि◌ोते ि◌ैं', व्याजप्त के अन्दर आते ि◌ैं।'[235]

---

232 न्यायबबंदु, ◌ु 3।

233 देणखए न्यायकंदली, पृषूठ 207। वाचस्पतत हदङ्नाग से उद्धतृ करता ि◌ै- "सवोऽयर् ◌्अनुर्ानानुरे्यभावो बुद्ध्यारूढेन धर्धशभर्भशावेन न बहिरसदसत्वर् ◌्अपेक्षते। (न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 1: 1,5)।

234 न्यायर्ंर्री, पृषूठ 114, और न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 1: 1, 5।

235 प्रर्स्तपाद उल्लेख करता ि◌ै कक कायकशारणभाव के पवपरीत सि-अजस्तत्व, रै्सेकक चन्द्रर्ा के उदय से सर्ुद्र के ज्वार तथा कुर्ुहदनी के णखलनेका संकेत भर्लता ि◌ै, व्याजप्त के अन्दर आ र्ाते ि◌ैं (प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृषूठ 205)।

10. कारण

अन्य सब सार्ान्य भसद्धान्तों की भांतत, कायकशारणभाव का तनयर् भी नैय्यापवक के भलए ए अंतदृजशष्ट द्वारा ज्ञात स्वतःभसद्ध भसद्धान्त ि, जर्सकी पुजष्ट अनुभव द्वारा िोती ि। देखे गार कायकशारण-सम्बन्धों से उस भसद्धान्त का सर्थनश िोता ि जर्ससे ेसर्स्त अनुसंधान आरम्य िोता ि। कारण वि ि र्ो, पवना अपवाद के, काय शसे पूव शपवद्यर्ान रिता ि और जर्सकी आवश्यकता केवल सियक के रूप र्ें िी निीं, वजल्क काय शकी उत्पपि के भलए भी ि। यि एक घटनाका का पूववशती अवयव ि, र्ो सतत रूप से अनेक अवस्थाओंर्ें पूववशती रिा ि। ककन्तु कैल पूववशती िोना िी पयाप्शत निीं।[236] इसे ेएक आवश्यक पूववशती िोना चाहिए।

अन्यथाभसद्ध उस पूववशती को किते िैं जर्सका सम्बन्ध काय शके साथ कायकशारण रूप र्ें न िो, यद्यपप उसके साथ पवद्यर्ान भले िी रिा िो। पवश्वनाथ[237] इस प्रकार के पवभभन्न अन्यथाभसद्ध कारणों का उल्लेखे करता ि। िर् अपनी उंगली द्वारा ककसी पदाथ शकी आकार्ीय जस्थतत का संकेत कर सकते िैं। इस प्रकार उंगली द्वारा ककया गया संकेत भले िी सतत उपजस्थत रिा िो ककन्तु आकार्ीय जस्थतत के प्रत्यक्ष के साथ यि कायकशारणभाव से सम्बद्ध निीं। कुम्िार का डण्डा एक तनरुपाधधक पूववशती ि, र्ककक उस डण्डेके रंग से कोई प्रयोर्न निीं। डण्डेकी गतत से र्ो र्ब्द िोता ि वि भी एक सिर्ात काय शि। तनत्य और सवव्शयापी द्रव्य, जर्न्िें स्वेच्छा से न तो उपजस्थत िी ककया र्ा सकता ि और न िटाया िी र्ा सकता ि, तनरुपाधधक पूववशती निीं। उपाधध की उपाधध का भी, र्ैसे ेकक कुम्िार के बाप का घडे के तनर्ाणश से कोई सम्बन्ध निीं, िर्ें केवल तात्काभलक पूववशततयशों से प्रयोर्न ि। एक िी कारण के सिर्ात कायों र्ें भी कभी-कभी परस्पर कायकशारण-सम्बन्ध की रांतत िो र्ाती ि। गुरुत्वाकर्षणश के सार्ान्य कारण से तरार्ू ूके पलडों का ऊपर उठना एवं नीचे धगरना िोता ि। र्ब ये दोनों सिर्ात काय शएक-दूसरे के पश्चात् ्िोते िैं, तब इस पवर्षय की बुित आर्ंका रिती ि कक किीं ंपूववशती सिर्ात काय शको पश्चाद्वती सिर्ात काय शका कारण न सर्झ भलया र्ाए। काय शकी उत्पपि के भलए र्ो अनावश्यक ि, वि उसका अनुपाधधक पूववशती निीं। कारण को आनुर्ंधगक परीक्ष एवं नैभर्पिक या आकजस्र्क उपकरणों के साथ भर्धश्रत निींकरना चाहिए।[238] यि र्ानी िुई बात ि कक यहद बाधक

---

236 ग्लडैंवर :- र्ेरे र्न्र् हदन र्ें,
अन्तररक्ष का पूण शभाग आग्नेय आकृततयों से
तथा र्लती िुई र्शालों से ेभरा आया और र्ेरे र्न्र् के सर्य
पृथ्वी का यि ढ़ढ़ान ्ढांचा अपनी नींव सर्ेत
एक भीरु र्नुष्य की भातत कापुँ उठा था।

िाट्सपर :- क्यों, यहद तुम्िारी र्ां ंकी बबल्ली नेभी उसी र्ौसर् र्ें बच्चे हदए िोते ेतो भी ऐसा िी िोता, तुम्िारा र्न्र् भले िी उस सर्य न भी िोता (1: िेनरी 4; 3: 1, 13)।

237 'भसद्धांतर्ुक्तावभल', पृष्ठ 19-22।

238 अन्यथाभसद्धतनयर्पूववृशपिकारणर्।् देणखए तकशसंग्रि, पृष्ठ 38; तकशभार्षा, पृष्ठ 11।

र्जक्तयाँउपजस्थत िैं तो कारण से काय शर्निीतनकलेगा। इसभलए कभी-कभी 'प्रततबंधकाभाव' को भी कारण की पररभार्षा रें र्ोड हदया र्ाता िै। केर्व भर्श्र ने कारण की पररभार्षा इस प्रकार की िै कक ऐसा आवश्यक पूववशती जर्ससे ेकोई अन्य काय शसम्पन्न न िो सके, कारण िै। धागे कपडे के कारण बनते िैं ककन्तु उनका रंग कारण र्निीं, क्योंकक रंग कपडेके पवर्ेर्ष रंग का कारण भले िी िो, कपडेका कारण र्निीं।

ऐसेदो पदार्थों का परस्पर कायकशारण-सम्बन्ध र्निीं िो सकता र्ब तक कक उनके बीच अन्वय-व्यततरेकी सम्बन्ध न िो अथात्श ्कारण की पवद्यर्ानता का अथ शकाय शकी पवद्यर्ानता और कारण के अभाव का अथ शकाय श का अभाव िो। कायकशारण-सम्बन्ध पारस्पररक तथा प्रततलोर्ी िोते िैं। वे रिस्यर्य र्जक्तया ाँर्निीं। उनका तनश्चय इजन्द्रयानुभव द्वारा पूवापशरिर् को देख कर ककया गया िै र्ो एकसर्ान तथा अपवादरहित िै।[239] तथ्यों के सावधानी से तनरीक्षण पर बल हदया गया िै। उदयन किता िै- िर्को पररश्रर् के साथ प्रयास करके ऊिापोि के द्वारा अनेकों पररभर्तताओं तथा पृथक्करणों का तनणयश करना चाहिए।'[240] प्रकृतत िर्ारे सर्क्ष अन्ततनहशित सार्ग्री को र्हटलरूप र्ें प्रस्तुत करती िै। िर्ें अपनी पववेकबुद्धध द्वारा पूवापशरिर् की पववेचेना करके असम्बद्ध अंर्ों को काय-शकारण से अलग करना िोगा। िर्ें यि भी खोर् करनी िोगी कक क्या काय शका ततरोभाव संहदग्ध कारण के ततरोभाव की वर्ि से िै? इस सब अनुसन्धान र्ें इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना आवश्यक िै कक अन्य ककसी पररजस्थतत र्ें तो पररवतनश र्निीं िुआ। पूववशती की अनुपाधधकता का तनश्चय करने र्ें भेदपरक उभयपवधध के प्रयोग का बडा र्ित्त्व िै, र्ैसी कक पंचंकारणी नार्क बौद्ध भसद्धान्त र्ें पाई र्ाती िै।'[241]

कायकशारण-सम्बन्ध न तो िेतुरूख और न िी फलरूख से प्राप्त ककए र्ाते िैं। वे प्रस्तुत तथ्य र्निीं, बजल्क प्रस्तुत सार्ग्री के आधार पर की गई बौद्धधक रचनाए ाँिैं। यि किना कक 'क' 'ख' का कारण िै, इजन्द्रयज्ञानगम्य पवभर्ष्टों से ऊपर र्ाना और पूवापशरिर् के तनयर् का ज्ञान प्राप्त करना िै। कायकशारण का तनयर् केवल घटनाओंका िर् न िोकर तत्त्वों का पारस्पररक सम्बन्ध िै। र्बकक तत्त्व प्रस्तुत ककए र्ाते िैं, सम्बन्ध प्रस्तुत र्निीं ककया र्ाता।

यहद िर् कारणों के अनेकत्व को स्वीकार करें तो कायकशारणभाव के तनयर् की प्रयत्नपूवकश की गई व्याख्या बबलकुल िी तनरथकश िो र्ाती िै। और यहद कारणों के अनेकत्व र्ें कोई वैज्ञातनक सच्चाई िै तो अनुर्ान प्रर्ाण ज्ञान-प्राजप्त का प्रार्ाणणक साधन न रिेगा।'[242] यहद िर् ककसी नदी का पानी बढ़ा िुआ देखें तो िर् केवल यिी अनुर्ान र्निीं कर सकते कक वि पपछली वर्षा शका पररणार् िै। ऐसा आंभर्क रूप र्ें नदी के देखार यांचा बांधने से क ककया िो सकता िै। यहद िर् चीहटयों को अण्डे ले र्ाते िुए देखें तो यि काय शउनके आश्रय-स्थानों के बबगड र्ानेसे भी िो सकता िै. और यि आवश्यक र्निीं िै कक यि आनेवाली सुनाई पडेतो यि तनजश्चत रूप से बादलों के

239 भार्षा-पररच्छेद, पृष्ठ 16।

240 कुसुर्ांर्भल, 1 : 61

241 भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 427।

242 न्यायभाष्य, 2 / 1 37-38।

कुणकारण िी निीं िो सकती िै। यि भी सम्भव िो सकता िै कक कोई पवर्ेष व्यजक्त र्ोर के के कारण की नकल कर रिा िो। न्याय का र्त िै कक कारणों र्ें अनेकत्व निीं िै और एक आवार् की, एक िी कारण िै। कारणों के अनेकत्व की प्रतीतत त्रुहटपूण शपवश्लेर्षण के कारण िै। यहद काय शको पयाप्शत रूप से पररभर्त तथा पवभर्ष्ट बना हदया र्ाए तो अनेकत्य गायब िो र्ाता िै। वर्षा शके कारण नदी का बढ़ना और प्रकार का िोता िै और तट पर बांध बन र्ानेसे निी का बढ़ना और प्रकार का िोता िै। वर्षा शके कारण आई िुई बाढ़ र्ें पानी की धारा बिुत वेगेव िोती ि, पानी र्ें झाग भी बिुत रिता िै और फूल-पिी व फल आहद भी अधधक राभर् र्ें बिते िुए पाए र्ाते िैं। इसी प्रकार आश्रय-स्थान के बबगडने सेर्ो चींहटया िुँअण्डे लेकेर भागती िै उनकी गतत र्ें और वर्षा शके आगर्न की सूचना से र्ो चलती िैं उनकी गतत र्ें भी काफी अन्ता िै। र्ोरों की स्वाभापवक ध्वतन तथा र्नुष्य के द्वारा की गई उसकी नकल र्ें तो स्पष्ट िी भेट ककया र्ा सकता िै। यहद िर् काय शके पवर्ेर्षत्व की ओर ध्यान दें तो यि स्पष्ट िो र्ाएगा कक उसका एक िी पवर्ेष कारण िै। यहद िर् काय शका भावात्र्क अरूूतरूशप से पवचार करते िैं तो कारण का भी पवचार उसी रूप से करना चाहिए। वाचस्पतत और र्यन्त िर्ें बताते िैं कक कारणों पर यहद िर् पूरा-पूरा ध्यान देकर उनके वैभैर्ष्ट्य की र्ांच करें तो उनका अनेकत्व भर्ट र्ाएगा। परन्तु कई ताककशक यि र्ान लेते ि किक एक िी काय शके पवभभन्न संभापवत कारण एक सार्ान्य र्जक्त अथवा क्षर्ता (अततररक्त र्जक्त) रखतिे।ैं कारणों के अनेकत्व को िर् केवल उसी अवस्था र्ें, स्वीकार कर सकते िैं र्बकक िर् पवज्ञान से पवर्ुख िोना पसन्द करें। उस अवस्था र्ें, र्ैसाकक परवती न्याय िर्ें बतलाता िै, चूंकक ककसी भी काय शके भलए एक से अधधक कारण-कलाप की कल्पना िर् कर सकते िैं, अतः काय शउनर्ें से कारणसर्ूि का निीं, ककसी एक पवर्ेष बजल्क प्रत्येक का धचि िै। यहद काय शके अभाव का िर्ें तनश्चय िो तो उक्त कारणों र्ें से भी ककसी एक के अभाव का निीं, बजल्क प्रत्येक के अभाव का तनश्चय िोना चाहिए। इन अथों र्ें, सम्भापवत और वैकजल्पक कारण-कलापों र्ें से कोई एक िी ऐसा िोगा कक जर्सकी पवद्यर्ानता र्ें काय शकी भी सतत रूप से और बबना ककसी उपाधध के पवद्यर्ानता अवश्यम्भावी िै। कारण को लक्षक्षत करानेवाला (कारणतावच्छेदक) धचह्न सम्भापवत कारण-कलापों र्ें से ककसी एक की उपजस्थतत को िी बतलाता िै, इससे ेअधधक कुछ निीं।

तीन प्रकार के कारण र्ाने गए िैं'[243]- (1) उपादान (भौततक) कारण वि सार्ग्री िै जर्सते ेकाय शका तनर्ाणश िोता िै। उदिारण के भलए, धागेकपडे का उपादान कारण िै और भर्ट्टी घडे का उपादान कारण िै।[244] (2) अभौततक अथवा असर्वायी करण वि िै र्ो भौततक कारण र्ें रिता िै और जर्सकी क्षर्ता अच्छी तरि र्ानी िुई ि। धागों का परस्पर संवीग कपडे का अभौततक कारण िै। यहद धागों को र्ोडा न र्ाएगा तो वे केवल एक बण्डलर्ात्र िी रि र्ाएगेँ और कपडे का तनर्ाणश न कर सकेंगे।े धागों का रंग भी अभौततक कारण िै क्योंकक उसकी

---

243 वैर्ेपपकसूत्र, 102, 1-7 तकशभाया, पृषठ 15-25, भार्षा पररच्छेद, 17-18; तकशसंग्रि, 40।

244 न्याय के अनुसार, कायशका नार् उपादानकारण के पवनार् से िोता िै। र्ब एक धागे को नष्ट करते िैं तो असली कपडा भी नष्ट िुआ र्ाना र्ाता िै। इस तथ्य का सर्ाधान कक कपडा उस अवस्था र्ें भी बना रिता िै और र्ुलिो व उसकी भरनी आहद की आवश्यकता उसके नये भसरे से तनर्ाणश के भलए निीं पडती, इस धारणा से िोता िै कक र्ौभलक उपादान कारण का सवथशा नार् निींिुआ या, बजल्क वि बचिुए धागों र्ें एक अन्ततनहशित स्वतः उत्पादक संस्कार अथवा स्वभाव (जस्थततस्थापक संस्कार) के रूप र्ें बना रि था जर्ससे कक वे तुरन्त एक नये कपडेको उत्पन्न कर सकें।

क्षर्ता कपडे के अन्दर रंग लानेके सम्बन्ध र्ें र्ानी िुई िै। उपादान कारण द्रव्य िै, ककन्तु अभौततक कारण गुण अथवा किया िै।[245] न्यायर्ास्त्र द्वारा प्रततपाहदत परर्ाणुवाद के भसद्धांत के अनुसार भौततक गत् ्र्ें सर्स्त पररवतनश अंर्ों के परस्पर र्ुडुने व अलग िोनेके कारण िोता िै। स्थूल घटक वी परर्ाणु िै, यद्यपप उनका योर्निार् प्रत्येक क्षण पररवतततश िोता रिता िै। तनभरि् कारण पूवोक्त दोनों कारणों से भभन्न िै। यि वि श ्काय शका प्रयोर्न या साधन जर्ससे ेकाय शकी उत्पपि

कारण िै जर्सकी प्रेरणा से काय शकी उत्पपि िोती िै, अथात

ातिी िै। कुम्िार घडे का तनभरि् कारण िै, बकक कुम्िार का डण्डा व चाक आहद सिकारी कारण िै।[246] ये तीनों कारण अरस्तू द्वारा प्रततपाहदत भौततक, औपचाररक तथा तनभरि् कारणों से अनुकूलता रखतिैं। स्वयं काय शको अरस्तू का अजन्तर् कारण र्ाना र्ा सकता िै।

कभी-कभी ऐसे कारण को र्ो तुरंत काय शको उत्पन्न करता िै, कारण किा र्ाता िै और उसकी पररभार्षा िै कारणपवर्ेर्ष।'[247] केर्व भर्श्र के अनुसार, यि उच्चकोहट का कारण िै ।[248] कारणों के संग्रि र्ें कारण वि िै र्ो तुरंत काय शको उत्पन्न करे।[249] प्रत्यक्ष ज्ञान की किया र्ें ज्ञाता तथा ज्ञेय पदाथ शदोनों का उपजस्थत रिना आवश्यक िै, यद्यपप प्रधान कारण इजन्द्रय-सम्पकश िै। नीलकण्ठ ने करण की पररभार्षा र्ें किा िै कक ऐसा कारण जर्सके बबना अभभलपर्षत काय शककसी भी अवस्था र्ें उत्पन्न न िो सके।[250] घडे की उत्पपि र्ें कुम्िार का डण्डा साधनरूप कारण िै। र्ंगल का डण्डा कारण निीिं। यि तभी कारण बनता िै र्बकक घडे की उत्पपि र्ें इसका प्रयोग वस्तुतः ककया र्ाता िै। इसभलए 'व्यापारवद्' पवर्ेर्षण र्ोड हदया र्ाता िै। आधुतनक न्याय एक पग और आगे ेबढ़ता िै और किता िै कक करण वि निीिं जिसर्ें ेअन्दर व्यापार अथवा किया रिती िै, बजल्क स्वयं किया िी करण िै र्ो उपयुक्त काय शका तनकटतर् कारण िै।'[251]

---

245 सांख्य और वेदान्त नेइस दूसरे प्रकार के कारण को स्वीकार निींककया िै। वे ेकाय शतथा कारण को तादात्म्य-तनयर् से आबद्ध र्ानतिैं। दोनों को परस्पर बांधनेके भलए ककसी कडी की आवश्यकता निीिं। सिवायी तथा असिवायी कारणों र्ें भेद करना हटक निींसकता। वस्तुतः तनभरि् कारण िी असिवायी कारण िैं। सांख्य और वेदान्त तो उपादान तथा तनभरि् कारणों को स्वीकार भी करते िैं, ककन्तु बौद्ध इस भेद को भी स्वीकार निींकरते। प्रत्येक घटना क्षणणक िै र्ो अन्य को उत्पन्न करती रिती िै। दूधू के अन्दर प्रत्येक क्षण पररवतनश िोता रिता िै; केवल िर् इसेएक जस्थतत र्ें दूधू और दूसूरी र्ें दिी किते िैं।

246 तनभरि् कारणों र्ें तार्ान्य और पवभर्ष्ट दो भेद ककए गए िैं। सार्ान्य कारण आठ िैं ईश्वर, उसका ज्ञान, इच्छा और कर्,श पूववशती अभाव, देर्, काल, धर् श(पुण्य) और अधर् श(पाप)। इनर्ें कभी-कभी बाधक प्रभावों के अभाव को भी र्ोड हदया र्ाता िै (तकशसंग्रि, 37)।

247 असाधारणं कारणंकरणर् ्(तकशसंग्रि, 37)।

248 प्रकृष्टं कारणर्।्

249 अपवलम्बेन कायोत्पपि।

250 'तकशसंग्रि', 186।

251 फलायोगव्यवजच्छन्नं कारणर्।्

 परवती न्याय रे् काय शकी पररभार्षा इस प्रकार की गई िै कक काय श'अपनेपूवक्शत तनरे्षेध का

प्रततपक्षी

अजस्तत्व िै।"[252] यि पूववशती तनरे्षेध का तनजश्चत सिसंबंधी िै। यि किना कक काय शका पिले ेअभाव िोता िै, यि

स्वीकार करना िै कक काय शका आरगद िोता िै। यि असत्कायवशाद का भसद्धांत िै। इसे,े दूसूरे ब्दों रे्,

आरम्भवाद भी करते िैं। ककन्तु रूणपवकासवाद का भसद्धांतं यि िै कक काय शका अजस्तत्व कारण रे् पिले ेसे निीं

रिता ककन्तु काय शकी उत्पपि नये भसरे सिीती िै, जर्से ेयों भी कि सकते िैं कक वस्तुसिा रे् रचनात्र्क िर् िै

जर्सके अनुसार उसरे् तनत्य नूतन स्वरूप की वृद्धध िोती रिती िै।[253] कई बौद्ध दार्तशनकों का र्त िै कक काय श

की उत्पपि के पूव शन तो उसरे अजस्तत्व को िी स्वीकार ककया र्ा सकता िै और न अभाव को िी, और दोनों की

एक

साथ भी निींर्ाना र्ा सकता। न्याय का किना िै कक कारण से उत्पन्न िोनेके पूव शकाय शका अभाव रिता िै और

इस पवचार की सर्ता न्याय के इस भसद्धांत रे् भी टीक बैठैती िै कक पूणरूशप उन अंर्ों से जर्नसे भर्ल कर वि

बनता िै, बबलकुल भभन्न िै।[254] सांख्य तथा वेदांत का आग्रि िै कक काय शरे् पिले ेसे पवद्यर्ान क्षर्ताओं का

वास्तपवकीकरण िोता िै। सांख्य के र्तानुसार तनभरि् कारण केवल प्रकट िोनेकी प्रकिया रे् सियक र्ात्र िै।

नैय्याततयक इस र्त की आलोचना इस प्रकार करता िै कक यहद कपडा पिले ेसे िी धागों रे् पवद्यर्ान िै तो िर्ें वि

हदखाई क्यों निींदेता? धागे िी कपडा निीं, कपडे की तरि िर् धागों को पिन निीं सकते। कपडा प्रकट निीं ं

िोता यि कोई तकश निीं, क्योंकक प्रकट न िोना िी तो वास्तपवक सर्स्या िै। यहद प्रकट िोनेसे तात्पव श'ऐसी

आकृतत के रूप रे् पवद्यर्ान न रिना िै जर्सका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त ककया र्ा सकता िै और र्ो काय शकरने रे्

सक्षर् िै' तो यि कारण की किया से पूव शकाय शका स्पष्ट िी अभाव िै। कोई पदाथ शर्ो कारण की किया से पूव शएक

आकृतत-पवर्ेर्ष रे् पवद्यर्ान निींथा, अब कारण की किया से अजस्तत्व रे् आया िै।'[255] काय शकारण से आकृतत,

क्षर्ता और जस्थतत रे् भभन्न िै। इसके अततररक्त, यहद सांख्य के अनुसार काय शकी कारण से अभभन्नता के

भसद्धांत को स्वीकार कर भलया र्ाए तो यि सर्स्त भौततक र्गत् ्िी र्ो आद्य प्रकृतत से बना िै, प्रकृतत के

सर्ान िी अदृश्य िोना चाहिए। यहद काय शका पवस्तार र्ून्य आकार् रे् कारण िी के सर्ान िै तो इसका कारण

यि िै कक आधार कारण रे् िै। इसभलए प्राकृततक तथ्यों द्वारा तनहदष्ट इस र्त को कक पदाथ शनये भसरे से उत्पन्न

और नष्ट िोते िैं अस्वीकार करने का कोई कारण प्रतीत निींिोता।[256] यि र्त भी, कक र्ब दूधू दिी के रूप रे्

पररवततततश िोता िै तो केवल रूप रे् पररवतनश िोता िै, पवनार् की कोई किया निीं ंिोती, तकशसंगत निीं।

र्ब िर्

कभी नये पदाथ शको पुनर्निर्माण श की नई पवधध द्वारा बनते िुए देखते िैं तो उससे िर् अनुर्ान करते िैं कक पिले

[252] प्रागभावप्रततयोगी (तकशसंग्रि, 39)।

[253] कणाद नेयि दर्तन के भलए कक कारण और काय शसवधशा भभन्न िैं, अनेकों युजक्तयों का आश्रय भलया िै: (1) वे भभन्न-भभन्न पवचारों के पदाथ शिैं; (2) और भभन्न-भभन्न ब्दों के भी; (3) वे भभन्न-भभन्न कायों को उत्पन्न करते िैं; और (4) सर्य के भभन्न-भभन्न क्षणों रे् िोतिैं; (5) आकृतत रे् भी अन्तर िै (6) संख्या रे् भी, क्योंकक धागे अनेक िैं और कपडा एक िै; (7) यहद कारण और काय शएक सर्ान िोते ेतो कारण से काय शको उत्पन्न करनेके भलए ककसी प्रयत्न की आवश्यकता न िोती।

और देणखए न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 3/2 17।

[254] न्यायसूत्र, 41, 48 - 54।

[255] न्यायवाततकश, 4/1, 49

[256] न्यावभाष्य, 41, 49।

 पदाथ शनष्ट िो गया।[257] दूधू से संघंहटत अवयव पिले ेफट राते िैं और कफर वे पुनः संघहटत िकिर दिी को उत्पन्न

करते िैं। नैय्यातयक स्वीकार करता िै कक पूव शपदाथ शका पूणरूशपेण पवनार् िोनेसे नये पदाथ शका तनर्ाणश िनिा

असम्भव िोगा। तात्पय शयि तनकला कक पदाथ शर्ात्र अपनी पूवजशस्थतत को छोडता िै, यद्यपप नैय्यातयक इसे े प्रकट रूप र्ें स्वीकार करने को प्रविृ निींिोता।

सांख्य तथा वेदोंत के ग्रंथीं र्ें, जर्नका भसद्धांत काय-शकारण भाव के सम्बन्ध र्ें भभन्न िै, न्याय के पवचार की आलोचना की गई िै। यिांसांख्यकाररका से एक दृष्टान्त हदया र्ा सकता िै ।'[258] जर्सका अजस्तत्व निीं िैउसे ेकभी भी उत्पन्न निींककया र्ा सकता। िर् चािे ककतना िी प्रयत्न क्यों न करें, नीले ेको पीले र्ें पररवतततश निींकर सकते। और कफर उपादान कारण सदा िी काय शके साथ र्ुडा िुआ भर्लेगा, र्ैसे ेकक तेल के साथ ततल। क्योंकक अभावात्र्क पदाथ शके साथ सम्बन्ध सम्भव निीं, इसभलए काय शको कारण र्ें पवद्यर्ान र्ानना पडेगा। ऐसा किना, कक कारण से काय शकी उत्पपि िो सकती िै पवना उसके साथ सम्बन्ध रिते िुए भी, असंगत िोगा। क्योंकक उस अवस्था र्ें, कोई भी पदाथ शककसी भी कारण से उत्पन्न िो सकता िै और कायपशवर्ेष की उत्पपि के भलए कारणपवर्ेष का भी प्रश्न निींउठता।[259] यहद किा र्ाए कक असम्बद्ध कारण अपने अन्दर तछपी िुई क्षर्ता के कारण काय शको उत्पन्न कर सकता िै[260], तो यहद उस र्जक्त का काय शसे सम्बन्ध िै तो यि किना भी सवथशा उधचत िी िोगा कक काय शकारण के अन्दर पिले ेसे पवद्यर्ान िै; और यहद सम्बन्ध निीं तो इस कहठनाई का कक एक कायपशवर्ेष एक र्जक्तपवर्ेष से क्यों उत्पन्न िोता िै, कोई िल निींभर्लता। इसके अततररक्त, क्योंकक कारण और काय शदोनों की एक िी प्रकृतत िै, अतः यहद एक पवद्यर्ान िै तो दूसूरे को भी अवश्य पवद्यर्ान िोना चाहिए। सांख्य और वेदान्त का आग्रि िै कक यहद काय शकारण से सवथशा भभन्न िै तो दोनों को र्ोडनेवाला कोई तनणायशक भसद्धान्त निींिो सकता। नैय्यातयक का किना िै कक यहद काय शकारण से भभन्न निीं िै तो िर् उनके अन्दर कारण और काय शका भेदे निीं ंकर सकते। दोनों पवचार तकशसंगत िैं, यद्यपप भभन्न-भभन्न दृजष्टकोणों के आधार पर।

इस पवर्षय से आगे बढ़ने ेसे पूव शिर् न्यायर्ास्त्र के कायकशारणभाव के पवर्षय र्ें कुछ सर्ीक्षात्र्क पवचार प्रस्तुत करेंगे। नैय्यातयक पूववशतततत्शव पर बल देता िै। पूववशतततत्शव वस्तुतः ताककशक दृजष्ट से ठीक िै, ककन्तु कालिर् से निीं। सूय शप्रकार् का कारण िै और दोनों एक िी सर्य र्ें पवद्यर्ान रिते िैं। वास्तपवक कारण तब तक रिता िै, र्ब तक कक काय शरिता िै, और काय शके पूव शया पश्चात् ्कारण का अजस्तत्व अनावश्यक िै। सत्य की

---

257 न्यायभाष्य, 32, 16।

258 9 1

259 ईस र्त के अनुसार, किा र्ाता िै कक असम्भव पदाथ शर्ैसे र्शक का सींग भी उत्पन्न ककया र्ा सकता िै। न्याय इसका उिर इस प्रकार देता िै कक िर्ारे र्न से र्ो कुछ उत्पन्न िोता िै यि पिलेपवद्यर्ान निींथा, ककन्तुिर् एक पदाथ शजर्सका पिलेअजस्तत्व न रिा िो उत्पन्न िो सकता िै, ऐसी बात निीं (न्यायर्ंर्री, पृष्ठ 494):

260 यि उत्पपि से ेपूव शकाय शकी सिा निीं तो उत्पादक की कायर्शीलता का क्षेत्र काय शसे अलग किीं ंऔर कल्पना करना पडेगा। दूसूरे र्ब्दों र्ें, धागों के प्रतत उत्पादक का प्रयत्न पडेको उत्पन्न कर सकता िै। वैर्ेपर्षक इस कहठनाई का सर्ाधान इस प्रकार करता िै कक एक कारण पवर्ेष र्ें र्ो किया लगाई र्ाती िै वि उन्िीं कायों को उत्पन्न कर सकती िै जर्नकी क्षर्ता उस कारण र्ें तनहित िो।

तनष्ठा से र्नींककन्तु कियात्र्क दृजष्ट सेनैय्यातयक कायकशारण भाव के भलए पूववशततत्शव के रि्त्व को बढ़ा-चढ़ाकर पेर् करता िै।'[261] पूववशती अवस्थाओंके पवर्षय र्ें, और उस पररवतनश के पवर्षय र्ें र्ो अवस्थाओंको एकत्र कर उन्र्ें कारण बना देता िै जर्सर्से ेकक वे काय शको उत्पन्न करते िैं, न्याय का पवश्लेर्षण कृबत्रर् िै। अवस्थाओंके एकत्र िो र्ाने सेकाय शतुरंत उत्पन्न िो र्ाता िै और यहद वे एकत्र र्नींितीं ंतो कारण पवद्यर्ान रिते िुए भी काय शको उत्पन्न करने का कार् प्रारम्भ र्नीं करता। काय शकी उत्पपि के बबना कारण पवद्यर्ान र्नीं ं रि सकता। पररवतनश की प्रकिया स्वयं काय शिै। उसके अततररक्त और ककसी को काय शर्नींकि सकते। तत्त्वों, उनके एकत्रीकरण और काय शकी उत्पपि र्ें भेद करना काल्पतनक िै।[262] र्ंकराचाय शने ठीक िी किा िै कक िर् पूववशतततशा और अनुपाधधकता अथवा अपवभाज्यता दोनों पर ोर र्नींदे सकते। यहद कारण और काय शपरस्पर अपवभाज्य सम्बन्ध र्ें िैं, अथात्श ्अयुतभसद्ध िैं, तो कारण का सदा काय शसे पूव शिोना आवश्यक र्नीं। यि किना अधधक यथाथ शिोगा कक कारण और काय शएक िी वस्तु की दो भभन्न-भभन्न अवस्थाएँ, अपेक्षा इसके कक वे दो भभन्न-भभन्न पदाथ शिैं और अपवभाज्य रूप से र्ुड़ेिुए िैं।[263] इस तनष्कर्ष शकी पुजष्ट न्याय के सर्वाय-सम्वन्ध अथवा अन्ततनहशितता पर बल देने से िोती िै। यहद काय शतथा कारण परस्पर सर्वाय-सम्बन्ध से सम्बद्ध िैं तो उन्र्ें तादात्म्यरूप से सम्बद्ध र्ानना अधधक सरल िोगा।

यि र्नींकिा र्ा सकता कक प्रकृतत के तथ्य अपने र्ें कायकशारण-सम्बन्धों को इतनेस्पष्ट रूप र्ें धारण ककए िुए िैं कक केवल आंख खोलकर देखने ेर्ात्र से िी उनका प्रत्यक्ष ज्ञान िो र्ाएगा। िर् किते िैं कक 'क' 'ख' का कारण िै, अथवा यि कक 'क' आवश्यक िै या 'ख' आनुर्ंषंधगक िै, और इस प्रकार िर् अपने अनुभव र्ें िर् का तनर्ाणशकरते िैं। कायकशारणभाव िर्ारे पवचार का एक रूप िै अथवा बुद्धध की एक वृपि िै। यि पवश्व-तनयर्ों के अधीन र्ाभसत िोता िै, यि एक स्वीकृत पक्ष िै जर्से िर् तकशर्ास्त्र र्ें स्वीकार कर लेते िैंऔर तब आगे ेचलते िैं, यद्यपप अध्यात्र्र्ास्त्र र्ें इसे ेभसद्ध करना िोता िै। र्ीवन र्ें िर् असली कारण को र्नींपूछते, अथवा ककसी भी घटना की व्याख्या र्नीं चािते ेबजल्क एक पवर्ेर्ष काय शको करने के भलए जर्न वस्तुओं की आवश्यकता िै उनके ज्ञानर्ात्र से िी सन्तोर्ष कर लेते िैं। भट्टी घडे का कारण िै, र्िां ंप्रकृतत तो भट्टी प्रदान करती िै और कुम्िार उसका उपयोग अपने प्रयोर्न के भलए करता िै। अवस्थाओं या पररजस्थततयों का किीं अन्त र्नीं और इसभलए िर्ारी सब स्थापनाएं ंसापेक्ष िोती िैं। िर् किते िैं कक यहद ऐसी ऐसी अवस्थाएं ंिों और यहद इसके पवरोधी कारण न िों तो अर्ुक काय शअवश्य िोगा। कारणों के भी कारण के पवर्षय र्ें र्ो कहठनाइयाँऔर उनकी वरि् से र्ो पवपरीत पररणार् िो सकता िै, उन्र्ेंनैय्यातयक केवल पववादास्पद किकर त्याज्य सर्झता िै। कारण और काय श

---

[261] कुसुर्ांर्भल, 1:19।

[262] कायकशारणभाव वस्तुतः सर्य के अन्दर िो रिी पररवतनश सम्बन्धी तनरन्तर प्रकिया की पुनरशचना िै। पृथक अवस्याओं का परस्पर भर्लना और प्रकिया का आरम्भ, इनके बीच किीं कोई हदरार् था अन्तरावकार् र्नीं िै। कारण और काय शर्ें काल को लेकर भद र्नींककया र्ाता। उनर्ें काल सम्बन्धी भेद केवल कल्पनात्र्क िै, क्योंकक यहद कारण संकेंड के एक अर्भर भी रि तो अनन्त काल तक भी रि सकता िै। (बडैंला र्ाजर्क, 2. पृष्ठ 539 हटप्पणी।। कायकशारणभाव का सूत्र एक कल्पनात्र्क एकता िै जर्सकी खोर् और जर्सका तनर्ाण िर् पररवतनशों के तनरन्तर िर् र्ें करते िैं ककन्तुउस कर् के प्रवाि र्ें इसकी कोई वास्तपवक सिा र्नीं. पिर यि पिलेव्याजप्तयों के र्गत र्ें रिता िै (यिी. पृष्ठ 540)।

[263] र्ांकरभाष्य, 22.17

दोनों िी अस्थायी घटनाएं िैं। ये तनत्यसत्य र्निीं, यद्यपप िर् इनको अपना अजस्तत्व रखने वाले पदाथ शसर्झ कर इनकी व्याख्या करने र्ें प्रवृि िोते िैं। परर्ाणु ुयहद कारणरूप िैं, तो वे यथाथ शर्निीं िो सकते। कारण का पररवतनश के अततररक्त कुछ अथ शर्निीं और र्ो भी पररवतनशर्ील िै वि केवल अस्थायी घटनार्ात्र िै। पवश्लेषण करने पर कायकशारणभाव केवल एक िर् प्रतीत िोता िै ऐसी घटनाओंका, र्ो सदा एक-दूसूरे पर तनभरश करती िैं। कफर भी िर् उसे एक वास्तपवक प्रत्यय की तरि प्रयुक्त करने को बाध्य िो र्ाते िैं। अनुभव के क्षेत्र र्ें यि तनजश्चत रूप से उपयोगी िै ककन्तु िर् इसकी तनतान्त प्रार्ाणणकता को स्वीकार निीं कर सकते। कायकशारणभाव अनुभव का एक रूपर्ात्र िै।'[264]

कारण र्ें काय शका अभाव िै, यि पवचार र्ो न्याय ने स्वीकार ककया िै। इसका उद्गर् इस प्राकृततक पक्षपात र्ें िै कक यथाथ शवि िै र्ो प्रत्यक्ष िुआ िो।[265] िर् वस्तुतः उच्चतर और अधधक र्टल स्तरों को तनम्न तथा सरल स्तरों र्ें उदय िोते देखते िैं, जनर्ें वे पिलेनिींपाए गए थे। वतर्शान सर्य के अनेक वैज्ञातनक पवचारक यथाथसशिा सम्बन्धी इस पवचार को एकदेभर्क श्रृंखला के रूप र्ें स्वीकार करतिैं, अथात्श सरल से र्टल की ओर बढ़ना, तथा नीचे सेऊपर की ओर बढ़ना। वे यथाथवशादी नैय्यातयक से इस पवर्षय र्ें र्तभेद रख सकते िैं कक अजन्तर् सरल इकाई का स्वरूप क्या िै, ककन्तुउनकी व्याख्या का आदर् शतत्त्वरूप से विी िै। िर् चािे भौततक परर्ाणुओं से आरम्भ करें, र्ैसा कक नैय्यातयक करता िै, या इलेक्ट्रॉनों से आरम्भ करें, र्ैसा कक आधुतनक वैज्ञातनक करता िै, अथवा तनरपेक्ष सार्ग्री या इजन्द्रय-सार्ग्री अथवा देर्काल से आरम्भ करें और उिरोिर बढ़ती पवपवध र्टलताओं र्ें सेगुर्ें, र्ैसा कक कुछेक सर्कालीन यथाथवशादी करते िैं, िर्ें एक अपयाप्शत आदर् शव्याख्या को स्वीकार करने के भलए बाध्य िोना िोता िै। दार्तशनक बोधगम्यता की पिली र्त श यि िै कक अधधक र्ें से न्यून तनकल सकता िै, ककन्तु न्यून र्ें से अधधक निींतनकल सकता। पवचारधारा की स्वाभापवक प्रवृपि िर्ें इसी भसद्धान्त को स्वीकार करनेकी प्रेरणा करती िै। नदी की धारा अपनेतनकाल-स्थान की ऊँचाई से ऊपर निींउठ सकती। यहद ककसी र्त र्ें बोधगम्यता की पूव-शभसद्ध र्तें भंग िोती िों तो िर्ें बताया र्ाता िै कक उन र्तों को छोड देना चाहिए। ककन्तु िर् अपनी र्ानभसक रचना र्ें यथाथवशाद के आदेर्ानुसार पररवतनश निींकर सकते। पवचार उपलक्षक्षत, ककन्तु अव्यक्त अथवा सम्भापवत को भी ग्रिण करने के भलए बाध्य िोता िै और स्वीकार करता िै कक काय शअव्यक्त रूप से अथवा सम्भापवत रूप से कारण र्ें पिले से अन्ततनहशित था। एक पवरुद्ध यथाथवशादी की दृजष्ट से पवकास केवल आपवभावश र्ात्र िै। और यहद यि पवकास को, आपवभावश से कुछ अधधक र्ानता िै तो अपना िी पवरोध करता िै। अलेक्ट्रेण्डर सरीखे यथाथवशादी र्ब संघर्ष शऔर उच्चतर् गुणों अथवा र्ीवधाररयों के पवकास की चचाश करते िैं तो वे देर्काल के अततररक्त, अन्य ककसी भसद्धान्त की भी कल्पना कर लेतिैं। यहद यथाथवशादी केवल उसी को र्ो वास्तपवक िै, यथाथ शर्ानता िै और सम्भापवत को तनरथकश अभभव्यजक्त किकर छोड देता िै तो कायकशारणवाद सर्झ र्ें निींआ सकता। नैय्यातयक अपने र्त का स्वयं उल्लंघन करता िै र्ब वि परर्ाणुओं तथा आत्र्ाओं की यथाथतशा को स्वीकार करता िै र्ोकक देखे निीं र्ाते। वे यथाथ शजन्िें िर् देखते िैं, उत्पन्न िोते तथा नष्ट िोते िैं और इसभलए वे अतनत्य िैं। तनत्य पदाथ शिर्ें

264 आरोपपत अथवा अध्यस्थ धर् श।

265 न्यायभाष्य, 2/2 18।

 दृजष्टगोचर निंींति,े इसके बावरूद िर् उनके अजस्तत्व की धारणा करते िैं। यथाथवशादी काल के रि्त्व को
अततर्योजक्त के साथ र्ानने के भलए बाध्य िोता िै। गुयाऊ 'काल' पर भलखी अपनी छोटी-सी पुस्तक रें् किता िै कक 'काल को िर् आधुतनकों ने एक प्रकार की रिस्यपूण शयथाथसशिा बना हदया िै और उसे ेदैव-सम्बन्धी पुराने पवचार के स्थान रें् रखकर सवर्शजक्तर्ान बना हदया िै।"[266] काल की पररपूणतशा-पवर्षयक प्रकल्पना के आधार पर रिंे कभी भी इस पवश्व के, र्ो न तो तनजश्चत िै न स्थायी िै, उद्देश्य का तनश्चय निंीं िो सकता। िर् ऐसेर्गत् े रें् तनवास करते िैंर्ो पररवततशतश िोता रिता िै और रिां ंककसी भी पदाथ शसे कोई भी पदाथ शप्रकट िो सकता ैं। इस
प्रकार की योर्ना रें् परर्ात्र्ा का कोई स्थान निंींबनता, र्ब तक कक िर् यि पपवत्र धारणा न कर लें कक पदाथों का प्रवाि ऊपर की हदर्ा रें् िै और स्वयं परर्ात्र्ा भी तनर्ाणश की प्रकिया के अन्दर िै। प्रोफेसर अलेक्रैण्डर िरें् पवश्वास हदलातिंै कक दैव र्न से आगे ेका उच्चतर गुण िै। िरें् अवश्य यि प्रश्न करना चाहिए कक कफर परर्ात्र्ा के आगे ेउससे ऊँचा क्या िै?

नैय्यातयक आग्रिपूवकश किता िै कक काय शतथा कारण के र्ध्य रें् बराबर तारतम्य िै। यहद िर् न्याय के र्त को आधुतनक पवज्ञान की पररभार्षा रें् भसद्धान्त के रूप रें् रखना चािंें तो कि सकते िैं कक यि सर्स्त कायकशारणभाव को र्जक्त के व्यय के रूप रें् र्ानता िै। यि प्रकृतत की कायप्रशणाली रें् ककसी भी अतीजन्द्रय र्जक्त की सिा को र्ानने से तनर्ेर्षेध करता िै, यहद िर् क्षण-भर के भलए इसके अदृष्ट पुण्य-पापपवर्षयक पवचार को दृजष्ट से ओझल कर दें। कायकशारणभाव केवल र्जक्त का पुनपवभशार्न िै। कारण पररजस्थततयों का संग्रिर्ात्र िै (कारण-सार्ग्री) और काय शवि िै र्ो उससे उत्पन्न िोता िै।[267] साधारण बुद्धध के इस पवचार की र्ान्यता को ठीक बताने के भलए कक पदाथ शउत्पन्न िोते ेतथा नष्ट िोते िैं, नैय्यातयक प्रकृतत के तारतम्य को दृजष्ट से ओझल कर, खतरा र्ोल लेता िै। यि इस सवर्शान्य पवचार के साथ कक असत् ेसे कुछ उत्पन्न निंीिता, इस भाव को सर्जन्वत करने की चेष्टा करता िै कक वस्तुएं बननी प्रारम्भ िोती िैं। पौधे रें् से फूल तनकलता िै, वृकूष रें् से फल तनकुलता िै, तो भी वि अनुभव करता िै कक पौधा, फल, फूल और वृकूष सब अयथाथ शिैं। न्याय, कारण के ताजत्त्वक तादात्म्य को स्वीकार करता िै और उसके र्त रें् िर्ों रें् भेदे िोता िै, जर्ससे ेनये गुणों का उदय िोता िै। अध्यात्र्पवद्या के सर्क्ष प्रश्न िै कक क्या ये उत्पन्न िुए नये गुण यथाथ शिैं? यि बबलकुल सत्य िै कक िर्ने उर्न्िें काय शअवस्था रें् िी देखा िै, कारणावस्था रें् निंीं ंदेखा। ककन्तु क्या इसी आधार पर िर् अनुर्ान कर सकते िैं कक वे यथाथ शिैं? नैय्यातयक र्ब यि स्वीकार करता िै कक संसार की पररवतनशर्ील अवस्थाएं ंनश्वर िैं, तो वि यि भी स्वीकार करता िै कक वे तनतान्त यथाथ शनिंीिं। यथाथ शअपररवततशतश िै, र्बकक एकत्रीकृत पदाथों के रूप रें् पररवतनश िोता ैं। प्रचभलत रूप रें् िर् कितिंै कक पदाथ शअजस्तत्व रें् आते ेतथा पवनष्ट िोते िैं। वस्तुतः स्पष्टरूप तत्त्वों का परस्पर सजम्र्लन तथा पृथक्करण िोता िै, र्ो न तो उत्पन्न िो सकते िैं, न नष्ट िो सकते िैं, न न्यून िोते िैं

---

266 कफलासाकफकल ररव्यू, भसतम्बर 1923, पृष्ठ 166 रें् उद्धृत्।

267 रैसा कक िर् देखेंगे, वैर्ेपपक स्वीकार करता िै कक कारण के गुण काय शके गुणों के कारण िोते िैं। भट्टी का काला रंग घडे के कालेरंग का कारण िै, र्ब तक कक ताप की पवरोधी र्जक्त उसका रंग न बदल द। वैर्ेपर्षक रें् इसका अपवाद अणुओं से द्वयणुकों और द्वयणुकों से ेव्यणुकों की उत्पपि रें् पाया र्ाता िै, रिांकक उत्पादक अवयवों की संख्या पररर्ाण या आयार् तनजश्चत करती िै। भर्धश्रत पदाथों के गुणों रें् पररवतनश स्वीकार करता िै।

 और न बढ़ाए र्ा सकते िैं। यथाथ शपवद्यर्ान रिता िै ककन्तुउसकी अवस्थाओं र्ें पररवतनश

िोता िै। प्रकृतत के
राज्य र्ें भी तनरन्तरता के प्रथर् भसद्धान्त को स्वीकार ककया गया िै। परर्ाणु ुपवद्यर्ान रिते िैं र्बकक उनके आकजस्र्क भर्श्रण अजस्तत्व र्ें आते िैं तथा नष्ट िोतेिैं। असत् ्से सत् ्की उत्पपि िोती िै, इस कथन का पवरोधाभास नष्ट िो र्ाता िै र्ब िर् यि स्र्रण करते िैं कक र्ो अंकुर र्ें िै वि वास्तपवक रूप धारण कर लेता िै। ककसी एक जस्थतत को भावात्र्क रूप देकर उसकी पूवजशस्थतत को अभावात्र्क रूप देना भार्षा का दुरुपयोग करना िै।

11. उपर्ान अथवा तुलना

उपर्ान अथवा तुलना वि साधन िै जर्ससे िर् ककसी पूणतशया ज्ञात पदाथ शके सादृश्य से ककसी अन्य पदाथ शका ज्ञान प्राप्त करते िैं। यि सुनकर कक र्ंगली बैल (गवय) गाय के सर्ान िोता िै, िर् अनुर्ान करते िैं कक वि पर्ु र्ो गाय के सदृर् हदखाई देता िै, गवय िै।'[268] उपर्ान के तकश र्ें दो अवयव रिते िैं- (1) ज्ञेय पदाथ शका ज्ञान, (2) सादृश्य का प्रत्यक्ष ज्ञान। र्िां ंप्राचीन नैय्यातयक पिले ेको नये ज्ञान का र्ूल कारण र्ानते ेथे,े विां ं अवाचशीन नैय्यातयक सादृश्य ज्ञान को अधधक र्ित्त्व देतेिैं।[269] र्ात्र सादृश्य िी, चािे वि पूण िशो, चािे पयाप्शत र्ात्रा र्ें िो अथवा आंभर्क िो, उपर्ान प्रर्ाण को युजक्तयुक्त भसद्ध करने के भलए पयाप्शत निींिै। सादृश्य अथवा तादात्म्य की पिली अवस्था र्ें कोई नया ज्ञान उपलब्ध निींिोता। गाय एक गाय के सदृर् िै, यि निीं ं किा र्ाता िै। दूसूरी, अथात् श ्पयाप्शत सादृश्य की अवस्था र्ें अनुर्ान प्रार्ाणणक िी िो यि निींकिा र्ा सकता, क्योंकक भसैं गाय निीं ंिै, यद्यपप दोनों र्ें बिुत-सी बातें सादृश्य की पाई र्ाती िैं। और यहद आभर्क सादृश्य िै, तब तो र्ार्ला और अधधक खराब िै। एक ततल र्ेरु पवतश निींिो सकता, यद्यपप अजस्तत्व का गुण दोनों र्ें सर्ान िै। उपर्ान के प्रार्ाणणक तकश र्ें िर् सादृश्य के अंर्ों की उतनी गणना निींकरते ेजर्तना कक उनके र्ित्त्व पर ध्यान देते िैं।'[270] सादृश्य को र्ित्त्वपूण शयाआवश्यक िोना चाहिए'[271] और कायकशारण भाव के साथ उसका सम्बन्ध िोना चाहिए।[272] उपर्ान तकश, पदाथ शऔर उसके नार् र्ें र्ो सम्बन्ध िै उसका ज्ञान कराता िै।'[273] इसका सम्बन्ध अभभज्ञान की सर्स्या के साथ िै। िर्ें बताया र्ाता िै कक गवय संज्ंञा उस र्ानवर (नील गाय) की िै र्ो गाय के साथ सादृश्य रखता िै, और र्िां ंिर् ऐसे र्ानवर को देखते िैं उसे ेगवय कि देते िैं। परवती ताककशकों का र्त िै कक यि र्ाध्यर्रूप अभभज्ञान केवल सादृश्य के िी कारण निीं ंिोता, अपपतु असादृश्य

---

268 भसद्धवस्तुसाध्यम्ययादशप्रभसद्धस्य साधनर् ्।
उपर्ानं सर्ाख्यातंयया गोगवयस्तथा। (िररभद्रर्षड्दर्नशसर्ुच्चय , 23)।

और देणखए न्यायसूत्र, ।: 1, 6 ।

269 सादृश्यज्ञानर् ्(तकशसंग्रि, 58)।

270 न्यायभाष्य, 2 1, 44।

271 प्रभसद्धसाधम्यातश 2:1,45 ।

272 साध्यसाधनभाव (न्यायभाष्य 2:1,45)

273 संज्ञासंक्षज्ञभाव

(वैधम्र्य) के भी कारण िोता िै, रै्से ेकक िर् एक घोडे को पिचानतेिैंर्ो कक गाय से भभन्न र्ानवर िै, क्योंकक उसके खुर फटे निीं िोते ेर्ो कक गाय का पवर्ेष धर् िै, अथवा रै्से िर् ऊंट को पिचानतेिैं, ऊंची गरदन आहद उसके पवर्ेष लक्षणों द्वारा।'[274] इस अथ शर्ें उपर्ान-प्रर्ाण आधुतनक काल के सादृश्य-तकश के अनुकूल निीं बैठता।

रै्सा कक िर् देखेंगे, न्यायर्ास्त्र सत्य के पवर्षय र्ें उपयोधगतावादी के र्त को स्वीकार करता िै, र्ो िर्ें सफल प्रेरणा देता िै। अनुभूत पदाथों के सम्बन्ध र्ें तो यि कसौटी उपयुक्त िो सकती िै, ककन्तु इजन्द्रयातीत सत्य इसके क्षेत्र सेपरे िै। नैय्यातयक इस कहठनाई का सर्ाधान उपर्ान के द्वारा करने की कोभर्र् करता िै। यहद प्राचीन ऋपर्षयों द्वारा प्रततपाहदत आयुवेद के भसद्धान्त परीक्षा करने पर सत्य भसद्ध िुए तो आध्याजत्र्क पवज्ञान भी, र्ो उन्िींऋपर्षयों द्वारा प्रततपाहदत िै, अवश्य सत्य िोना चाहिए।

> क्योंकक उपर्ान र्ें सादृश्य के प्रत्यक्ष का पवर्ेष भाग िै, अतः हदड्नाग इसे ेप्रत्यक्ष ज्ञान की कोहट र्ें िी रखता िै। वैर्ेपर्षक इसकी गणना अनुर्ान र्ें करता िै, क्योंकक तकश को इस रूप र्ें रखा र्ा सकता िै: "यि पदाथ शगवय िै, क्योंकक यि एक गाय के सर्ान िै, और र्ो गाय के सर्ान िोता िै वि गवय िोता िै।[275] सांख्य तकश करता िै कक उपर्ान ज्ञानप्राजप्त का स्वतन्त्र साधन निीं, क्योंकक अरण्यरक्षक का तनदेर् एक आप्त (र्ाजब्दक) ज्ञान िै और सादृश्य का प्रत्यक्ष ज्ञान का एक दृष्टान्त िै।[276] भासवज्ञश भी इसे ेर्ाजब्दक ज्ञान के िी अंदर रखता िै। उपर्ान का तकश एक प्रकार से र्टल िै, क्योंकक इसर्ें अरण्यरक्षक द्वारा प्राप्त र्ाजब्दक ज्ञान कक गवदगी के सर्ान िै यि अवयव सजम्भलत िैं, प्रत्यक्ष ज्ञान का भी अवयव िै क्योंकक िर् गवय को र्ंगल र्ें देखते िैं, एक अवयव स्र्ृत का िै क्योंकक र्ब िर् गवय को देखते िैं तो िर्ें (अरण्यरक्षक का) कथन स्र्रण िो आता िै. एक अवयव अनुर्ान का िै क्योंकक िर् धारणा करते िैं इस सार्ान्य प्रततज्ञा की कक र्ो गाय के सर्ान िै यि गवय िै, और अन्ततोगत्वा वि र्ान र्ो इस प्रकार के तकश का पवर्ेष लक्षण िै इस प्रकार के र्ानवर की संज्ञा गवय िै। अजन्तर् िी पवर्ेष रूप से उपर्ान प्राणको देन िै और इसे ेज्ञान के अन्य भेदों के साथ भर्ला न देना चाहिए, यद्यपप इसर्ें कुछ रूप अन्य के सर्ान िो सकते िैं।'[277]

12. आप्त प्रर्ाण

---

274 ताककशक रक्षा 22 ।

275 उपस्कर 9:2, 5 ।

276 तत्वकौर्ुदी 3 ।

277 भसद्धान्तर्ुक्तावतत 79 और 80। पूवशर्ीर्ांसा और बेदान्त उपर्ान तकश की स्वाधीनता का म्योकार करत िै. यद्यपप वे इसकी पररभार्षा भभन्न प्रकार से करते िैं। र्ब र्ंगल र्ें गवय िर्ें भर्लता िै तो िर्ें के साथ इसके सादृर् का भी बोध िोता िै। दूसूरा ज्ञान उपर्ान से िी िोता िै क्योंकक गाय का तो उस सर्य प्रत्यक्ष निींिोता।

ज्ञान के रुख्य स्रोतों रें 'आप्त प्रर्ाण' आता ै। ि र् ऐसी अनेक वस्तुओं के अजस्तत्य की, जर्न् िें स्वयं निीं ेदेखा, न जर्नके पवर्षय रें पवचार िी ककया, अन्य पुरुर्षों के प्रर्ाणणत कथन के आधार पर स्वीकार कर लेतेिैं। ि रें प्रचभलत साक्ष्य, ऐततिाभसक परंपरा तथा धर्शास्त्रों की हदव्य वाणी के आधार पर बिुत कुछ ज्ञान प्राप्त िोता ै। इस प्रकार की ज्ञान प्राजप्त की पवधध रें ताककशक दृजष्ट से र्ो पववेचनीय पवर्षय सजन्नपवष्ट ै उनके पवर्षय रें ब्द अथवा आप्त प्रर्ाण के अन्तगतश ि र् पवचार करेंगे।

ब्दों के उद्गर् तथा स्वरूप, तथा आर्य और वाक्यों के पवन्यास के पवर्षय रें न्याय का क्या

पवचार ै, इसका उल्लेखे संक्ंषेपे रें कर सकते िैं। आकार् र्ो सर्स्त देर् को व्याप्त ककए िुए ै, ककन्तु वायुनिीं, ब्द का अधधष्ठान ै।[278] ब्द को एक तनवातश (रून्य) स्थान रें भी उत्पन्न ककया र्ा सकता

ै, भले िी ि र् उसे ेन सुन तकें क्योंकक उसे ि र्ारे कान तक पिुंचानेके भलए वायु का वािंअभाव ै। ब्द ककस कोहट का ै यि वायु पर तनभरश निीं, ककन्तुउसका ऊँचापन आहद वायु पर तनभरश ै।'[279] ब्द दो कठोर पदाथों के परस्पर संयोग से उत्पन्न िोता ै। एक ब्द दूसूरे ब्द को, दूसूरा एक अन्य ब्द को उत्पन्न करता ै, और यि ि र् तब तक चलता ै ब तक कक आगे ेकोई बाधक पदाथ शप्रकट निीं ि र्ाता रिां ंपिुँचकर यि ि र् रुक र्ाता ै।'[280] केवल इसभलए कक इसका अधधष्ठान दुबोध (इजन्द्रयातीत) ै, ि र् यि तकश निीं कर सकते ेकक ब्द तनत्य ै।[281]

---

278 ब्दलिरी का ज्ञान ऐसे ेसर्य रें भी िोता ै ब कक रंग अथवा अन्य गुणों पाती ककसी वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान निींिोता। इसका तात्पय शयि िुआ कक ब्द का अधधष्ठान ऐसा ै जर्सेर् छू निींसकते ेतथा र्ो सवत्रश छाया िुआ ै और जर्स आधार रें कम्पन िोता ै उसरें यि निींरिता। (न्यायाभाष्य 2:2, 13, 38)

279 वैरे्पर्षक, 2 2, 38)।

280 न्यायभाष्य 2:2, 35-36।

281 ब्द की अतनत्यता को भसद्ध करने ेके भलए अनेकों पुजक्तयां दी र्ाती ै (न्यायसूत्र 2/, 13-38)। (1) ब्द का आहद िोता ै, क्योंकक इसकी उत्पतत दो कठोर पदाथो रै्सेएक कुल्िाडी और दूधू के परस्पर संघर्ष शर्ें िोती ै। यि निींकिा र्ा सकता कक उक्त संघर्ष शकेवल ब्द की अभभव्यजक्त रें सिायक िोता ै ककन्तु उसे ेउत्पन्न निींकरता, क्योंकक संघर्ष शऔर ब्द दोनों एक साथ निींिोते े। ि र् ब्द का, जर्स संघर्ष शर्ें यि ज नकला ै उसके रूक र्ानेपर भी,था, बिुत दूरूी पर सुन सकते े ैं। (2)ब्द तनत्य निीं क्योंकक इसका आहद भी ै और अन्त भी ै। यहद यि तनत्य िोता तो बराबर सुनाई देता रिता क्योंकक यि श्रवणेजन्द्रय के सर्ीप ै, ककन्तु यि जस्थतत निीं। यि भी र्ानते िैं कक ब्द कुछेक र्ाने िुए कारणों से बन्द िो र्ाता ै। घण्टी के साथ अपने िाथ के सम्पकश सेर् घझटी के ब्द को रोक देते ैं : (2:2, 32-36:वैरे्पर्षकसूत्र 2/2. 26-37)। वात्स्यायन का किना ै कक प्रत्येक ब्द के पवर्षय रें ब्दों की एक श्रृंखला रिती ै और इस श्रृंखला रें आगेआनवाला ब्द पपछलेको नष्ट कर देता ै। उक्त श्रृंखला के अजन्तर् ब्द को र्ो नष्ट करता ै यि एक बाधक पदाथ शके साथ संयोग िोना ै (न्यायभाष्य, 22, 34)। परवती नेम्यातयक इस वणनश रें पररवतनश करते िैं जर्ससे कक वैरे्पर्षक की इस प्रकल्पना के साथ अनुकूलता िो र्ाए कक एक गुण दूसूरे गुण के अन्दर निींरिता और न अन्य गुण के साथ उिका संयोग िी िो सकता ै। वाचस्पतत का किना ै कक ब्द को र्ो नष्ट करता ै वि बाधक पदाथ शका ब्द के साथ निींबजल्क आकार् के लाय सम्पकश ै, र्ोकक ब्द का उपादान कारण ै। आकार् का एक अधधक चने पदाथ शके साथ सम्पकश िोनेस आकार् और आग ब्दों को उत्पन्न करने ेके योग्य निींरिता और ब आहदर् ब्द का अभीततक कारण, अथांतु छडी का ढोल के साथ सम्पकश, बन्द िो र्ाता ै तो उस श्रृंखला को नये भसरे से चालू ूकरने ेके भलए कुछ निींरिता और इस प्रकार अजन्तर् ब्द नष्ट िो र्ाता ै। (3) ब्द का बोध उसके श्रृंखलाबद्ध रूप रें आगेबढ़ते िुए ि र्ारी एक इजन्द्रय द्वारा िोता ै। इसका सम्बन्ध ब्दता के वग शसे ै और इसभलए यि अतनत्य ै (न्यायसूत्र, 22, 16) (4) ब्द की चचाशइस प्रकार की र्ाती ै कक रै्से इसरें उत्पन्नाची के गुण

ब्दं अक्षरों से भर्लकर बनता ि जर्ससे ेअभभधा अथवा लक्षणा के द्वारा ककसी पदाथ शका संकेत िोता ि।
प्रत्येक ब्दं कुछ अथ शरखता ि और इसी को सार्ान्यतः ब्दं तथा उस पदाथ शके ध्र्य जर्से ेयि द्योतन करता
ि, एक प्रकार का सम्बन्ध सर्झा र्ाता ि।[282]

ब्दाथ शके तथ्य की व्याख्या वैय्याकरणों ने 'स्फोट' के भसद्धान्त पर की ि।[283] इसक अनुसार कोई भी
अक्षर अकेला र्ैसे, े 'गा' अथवा 'य' या कुल अक्षर 'गाय' ब्दं के अनुरूप पदाथ शका ज्ञान उत्पन्न निंकरा सकते,
क्योंकक प्रत्येक अक्षर उत्पन्न िोते िी नष्ट िो र्ाता ि। यहद िर् यि भी र्ानें कक पूव शके अक्षरों ने र्ो भाव छोडा ि
वि सबसे अजन्तर् अक्षर की सियता करता ि, तो भी कई अक्षर भर्लकर भी पदाथ शके ज्ञान की व्याख्या निं ंकर
सकते। अक्षरों के अततररक्त और उनसे ेऊपर कोई वस्तुि जर्सके द्वारा ज्ञान प्राप्त िोता ि, और वि स्फोट ि,
अथात्श ंर्ब्द का सारभूत तत्त्व जर्सका आपवभावश ब्दं, अक्षर अथवा वाक्य द्वारा िोता ि।[284] ब्दं का यि
सारतत्त्व पदाथ शका बोध कराता ि। केवल अकेला अक्षर, र्ब तक कक वि पूरा ब्दं न बन र्ाए, ककसी पदाथ शका
संकेत निं ंकर सकता। पदस्फोट के सर्थकशों का तकश ि कक केवल एक पद अथवा एक ब्दं अथ शका बोध करा
सकता ि। इसी प्रकार वाक्यस्फोट के सर्थकशों का किना ि कक केवल एक वाक्य पूरे अथ शका संकेत कर सकता ि।
वाक्यस्फोट के सर्थकशों के अनुसार, वाक्य वाणी का केवल प्रारम्भ ि, र्बकक ब्दं वाक्यों के भाग िऔर अक्षर
ब्दों के भाग ि। स्फोट अथवा ब्दं के सारतत्त्व को तनत्य किा गया ि और वि स्वयंभूः ि जर्सका संकेततत
पदाथ शके साथ स्थायी सम्बन्ध ि। अक्षर, ब्दं और वाक्य तनत्य-अथों का केवल आपवभावश करते ि, उन्ंउत्पन्न
निंकरते। नैय्यातयक का र्त ि कक र्ो कुछ साथकश ि वि ब्दं ि,'[285] और ज्योंिि िर् ब्दं के अजन्तर् अक्षर को
सुनते ि, िर्ं उसके अथ शका ज्ञान िो र्ाता ि। अजन्तर् अक्षर 'य' को सुनने के साथ िी िर्ं पिले ेअक्षर 'गा' की
सूतृत िो र्ाती ि और पूरा ब्दं 'गाय' िर्ारे र्जस्तष्क र्ं आ र्ाता ि। इस प्रकार िर् ब्दं और पदाथ शका र्ो
रूहढ़गत सम्बन्ध ि उसके द्वारा पदाथ शका ज्ञान कर लेते ि।[286]
पवद्यर्ान िो। गंभीर व तीखा आहद, इस प्रकार इसका वणनश ककया र्ाता ि। (5) इसके आधार पर कक िर् भर्क्षकों से प्राप्त
ब्दों को दिोरातिं, िर् यि निंकि सकते ेकक ब्दं तनत्य ि। र्ब ये निंसुने र्ाते थे तो उनका अजस्तत्व निंथा और अब
र्ि उन्ंकेपल कफर से उत्पन्न करते ि। पवभभन्न र भी दिोराए गए किला सकते ि. र्ैसेिर् दो बार त्याग करने ेवाले या
नृत्य करनेवालेकिला सकते ि। ज्या 22, 29)। (6) क्योंकक िर् इसेछू निंसकते ेइसभलए यि तनत्य ि, यि तकश छ निं
सकते, े कफर भी वि अतनत्व ि (न्यायसूत्र, 22.22-24)

[282] तुलना कीजएं पवज्ञानभभक्षु सांख्य सूत्र 5:37 । वैय्याकरण भट्टोदीक्षक्षत (वैयाकरणभूर्षण पृषूठ 245) और नागेर् भट्ट
(र्ंर्ूर्षा, पृषूठ 25-26) इस द्योतक र्जक्त को र्ात्र ब्दों र्ं िी रिने वाले र्ानते ि । यद्यपप सांख्य और वेदांत का र्त ि कक
यि प्ररेय पवर्षयों र्ं भी रिती ि । 'पंचदरी', 8:4-15, न्यायबबन्दु ुटीका पृषूठ 10-11 ।

[283] पाणणतन का उल्लेख स्फोटन के पवर्षय र्ं 6:1,123 र्ं संकेत करता ि कक उनके सर्य र्ं यि भसद्धांत प्रचभलत था।
देणखए सवदशर्नश संग्रि पाणणनीय दर्नश ।

[284] इयूसन स्फोट और भाव को एक िी र्ानता ि। धथबौत इसे की एक कल्पना सर्झता ि और वि यि तनश्चयपूवकश किता
ि कक यि 'भाव' निंिि सकता क्योंकक इसेस्पष्ट रूप र्ं वाचक अथवा अभभधायक किा गया ि। इसे ब्दं के भाव के पवचार
का कारण भी किा गया ि । (धुधबौतकृत रांकरभाष्य पृषूठ 204, हटप्पणी-अंग्रेर्ी अनुवाद) और देणखए रांकरभाष्य, 1: 3, 28।

[285] र्क्त ंपदर् ं(तकशसंग्रि, 59)।

[286] न्यायवाततकश, 22,55 ।

ब्द और अथ शके ध्र्य र्ो सम्बन्ध िै वि प्रकृतत के कारण निीं, अपपतु लोकाचार से िै, और इस र्त का सर्थनश िर्ारे इस अनुभव सेभी िोता िै कक िर् ककस पवधध से ब्दों के अथों का ज्ञान प्राप्त करते िैं। िर्ें प्रचभलत प्रयोग, व्याकरण तथा ब्दकोर् के द्वारा ब्दों के अथों का ज्ञान प्राप्त िोता िै। वेदान्त इसके साथ भावभंगी को भी र्ोड देता िै।'[287] यि रूहढ़ कक अर्ुक अर्ुक ब्द अर्ुक अर्ुक अथ शका वाचक िोगा, ईश्वर संस्थापपत (ईश्वरसंकेत) िै।'[288] परवती न्याय स्वीकार करता िै कक र्नुष्य भी रूहढ़ की स्थापना करते िैं (इच्छार्ात्रं र्जक्तः)[289], यद्यपप र्ानुपर्षक रूहढ़ को पाररभापर्षक संज्ञा दी गई िै, क्योंकक वि भभन्न-भभन्न र्नुष्यों के साथ बदलती रिती िै।

ब्दों का द्योततत अथ शक्या िै, व्यक्त, अथवा आकृतत, अथवा र्ातत, या उक्त सब कुछ?"[290] व्यजक्त वि िै जर्सकी एक तनजश्चत आकृतत (रूतत)श िो और र्ो पवर्ेर्ष गुणों का वासस्थान िो।'[291] यि व्यक्त िै और उसे े प्रत्यक्ष देखा र्ा सकता िै।"[292] आकृतत पवभर्ष्ट गुण िै; गलकंबल का व्यवस्थापन गाय की आकृतत िै। र्ातत एक नरूना अथवा वग शी और र्ातत के पदाथ शर्ें पाया र्ानेवाला सार्ान्य पवचार िै। यि िर्ें प्रस्तुत व्यजक्त के सदृर् पदाथों का सम्पूण शज्ञान प्राप्त करने र्ें सिायता करता िै।"[293] न्याय का र्त िै कक ब्द व्यजक्त, उसकी आकृतत तथा उसकी र्ातत, तीनों को बताता िै. यद्यपप भभन्न-भभन्न परररर्ाण र्ें।'[294] व्यविार र्ें िर् आकृतत का उल्लेख करते िैं। अधधक रुधच बढ़नेसे ब्द व्यजक्त का तनदेर् करता िै, और ब िथ सार्ान्य पवधार को सूधचत करने की कोभर्र् करतेिैं तो र्ातत का र्ालेखे करते िैं। ब्द आकृतत का संकेत करता िै, व्यजक्त को बतलाता िै तथा र्ातत का गुण तनवेर् करता िै। पवरुद्ध अतनहदशष्ट लक्षण नार् की कोई चीर् निींिै। यि ककसी-ककसी रूप र्ें तनहदशष्ट (अपवजच्छन्न) िै। कफर आकृतत भी अपने-आप र्ें पयाप्शत निींिै। भट्टी से बनो गाया की रूतत शको िर् गाय निीं ंकि सकते यद्यपप आकृतत गाय की िी िै, ककन्तु उसर्ेअततयत अन्य गुणों का अभाव िै। व्याविाररक प्रयोग से इस र्त की पुजष्ट सोती िै कक ब्द व्यजक्तयों का संकेंत करते िैं।[295]

---

[287] भसद्धांतर्ुक्तावली, 81; न्यायर्ंर्री, पृषूठ 6।

[288] न्यायभाष्य, 2: 1, 55 और देणखए न्यायर्ंर्री, पृषूठ 243।

[289] तकशसंग्रि, 59, भसद्धांतर्ुक्तावली, 81।

[290] न्यायसूत्र, 2 2, 65।

[291] 2:2, 64 ।

[292] 2: 2,65।

[293] सर्ानप्रसवाजत्र्का र्ाततः (न्यायभाष्य , 2 2, 66)। क्योंकक िर् पवभर्ष्ट गायों के पवचार के पृथक् गोत्व की एक तनजश्चत धारणा रखते िैं इसभलए गोत्व का एक वस्तुपरक आधार अवश्य िोना चाहिए (न्यायभाष्य, 2: 2, 61 और 66)। उद्योतकर का र्त िै कक र्ाततगत स्वभाव प्रत्येक व्यजक्त के अन्दर सर्वाय-सम्बन्ध से रिता िै यि प्रश्न की र्ाती प्रत्येक व्यजक्त के अंदर अपनी संपूणतशा र्ें रिती िै या अंर्ों र्ें कुछ अथ शनिींरखना क्योंकक र्ातत भर्शण निींिै और इसभलए पूण शइकाई और अंर्ों का भेद इस पर लागू ूनिीं िोता। र्ातत अथवा तनत्य सार तत्व के भलए किा र्ाता िै कक उसका उन व्यजक्तयों के साथ र्जनका वि सार तत्व िै सर्वाय संबंध र्ें रिना आवश्यक िै और अन्य व्यजक्तयों के साथ काभलक संबंध र्ें।

[294] 2:2, 63 ।र्ातत पवभर्ष्ट व्यजक्त

[295] 2:2,57 ।

 बौद्ध पवचारकों के अनुसार, ब्द तनजश्चत पदाथों के वाचक र्नीीं, बजल्क ऐसेअन्य पदायों का तनराकरण करते ि ैं, जर्नका ध्यान भूल से र्न र्ें आ र्ाता ि ै। 'गाय' ब्द से घोडेआहद अन्य पदाथों का तनराकरण (अपोि) िो र्ाता ि ै। इस तनराकरण के कारण इप अनुर्ान करते ि ैं कक 'गाय' ब्द गाय रूपी पदाथ शका तनदेर् करता ि ै ।[296] उद्योतकर अपोि के भसद्धान्त की आलोचना तनम्नभलणखत युजक्तयों के आधार पर करता ि ै[297]-र्ब तक पिले ि से पवध्यात्रक संकेत का ग्रिण न िुआ िो, तनर्ेषेधात्रक संकेंत का पवचार र्न र्ें उठ िी र्नीीं सकता। प्रत्येक तनर्ेषेध का एक पवध्यात्रक आधार िोस ि ै। र्ात्र तनर्ेषेध का कुछ अथ शिी र्नीीं, बकक प्रत्येक तनर्षेधात्रक कथन के साथ पवध्यार्क कथन अथापशपि द्वारा र्ुडा िुआ ि ै। यद्यपप परस्पर पवरोधी दो ब्दों र्ें एक का संकेत दूसूरे का तनराकरण कर देता ि ै, परन्तु 'सब' र्ैसे र्ब्द र्ें इस प्रकार का तनराकरण सम्भव र्नीीं।[298] प्रत्येक ब्द ककसी पवध्यात्रक वस्तु का संकेत काला ि ै, र्ो अन्य पदाथों से उसका र्ात्र भेद िी र्नीीं िोती ि ै।"[299]

यि आपपि की र्ाती ि ै कक ब्द पदाथों का संकेत र्नीींकर सकते, क्योंकक वे पदाथों के साथ र्नीींरिते,े और पदाथों के उपजस्थत न रिने पर भी पवद्यर्ान रिते ि ैं, र्ैसे िकक इस तनर्ेषेधात्रक तणयश र्ें कक 'यिांकोई घडा र्नीीं।"[300] इस आपपि के उिर र्ें वाचस्पतत का किना ि ै कक ब्द व्यापक का संकेत करता ि ै जसर्ें देर् व काल र्ें बंटे िुए सभी व्यजक्त सजम्भलत रिते ि ैं, और इसभलए वि वतर्शान तथा भूतकाल के भी व्यजक्तयों का संकेत करता ि ै।[301] और न यि किा र्ा सकता ि ै कक ब्द केवल एक अरूूत शपवचार ि ै, क्योंकक यि भभन्न-भभन्न व्यजक्तयों के भभन्न-भभन्न रूपों को लक्षक्षत र्नीींकर सकता ि ै। ब्द पवभर्ष्ट रूपों का िी उल्लेख करता ि ै और ये पदाथ शके िी अन्दर रिते ि ैं। िर् अपनेअनुभव र्ें ब्दों का प्रयोग करते ि ैं और ये र्ीवन र्ें सफलता की ओर ले र्ाते ि ैं। यहद ब्द केवल र्ानभसक बबम्बों र्सेी सम्बन्ध रखता, बाह्य पदाथों से न रखता तो यि सब असम्भव िोता।[302]

---

296 देणखए न्याय र्ंर्री पृषूठ 303, 306-8 और पाथ शसारथी भर्श्रकृत'न्याय रत्नाकर' । प्रारंभभक बौद्ध ग्रंथो र्ें इस पवचार के पवर्षय र्ें कोई तनजश्चत सूचना र्नीीं, यद्यपप रक्त्नकीततकृशत ऑपोिभसद्धध ग्रंथ र्ें यि एक पररवतततश रूप र्ें भर्लता ि ै। उसके अनुसार ब्द ना तो पवद्यात्रक और र्नीींतनर्षेधात्रक पदाथों को प्रकट करते ि ै । तनश्चयात्रक अथ शअन्य पदाथों के तनर्षेध का पररणार् र्नीीं और ना िी तनर्षेधात्रक अथ शतनश्चयात्रक संकट का पररणार् ि ै अथ शका सार तत्व तनश्चात्रक एवं तनर्षेधात्रक दोनों पक्षों की एक साथ हदर्ा र्ें ि ै सभी तनहदशष्ट पदाथ शअपना एक पवद्याजत्रक स्वभाव रखते ि ैं जर्ससे अन्य सब का तनराकरण िो र्ाता ि ै यि र्त तनवारण िी अधधक संतोर्षप्रद ि ै यद्यपप बौद्धों के सार्ान्य आध्याजत्रक र्ास्त्र के साथ यि आसानी से िभर्ल र्नीींखाता और र्नीींहिंदू िूताककशक इसेबौद्ध र्त के रूप र्ें स्वीकार करते ि ैं ।

297 न्यायवाततकश 2:2, 65 ।

298 देणखए उदयनकृत 'आत्र् तत्व पववेक'

299 न्याय र्ंर्री पृषूठ 311 और देणखउ न्यायकंदली पृषूठ 317-21 ।

300 प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड, पृषूठ 124, वैर्ेपर्षर् सूत्र 712 17।

301 न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 2: 2,63 ।

302 प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड, पृषूठ 136, पवधानन्यकृत अष्टसिसी, पृषूठ 249।

कभी-कभी यि किा र्ाता ै कक ब्दं तथा पदाथ शके ध्यं क्या सम्बन्ध ै, िर् इसकी कल्पना निींकर सकते। ब्दं एक गुण ै, और इसके द्वारा प्रकट ककया गया पदाथ शद्रव्य ै, और इन दो के ध्यं संयोग सम्बन्ध निींिो सिकता। यहद ब्दं के द्वारा प्रकट ककया गया पदाथ शभी गुण िोता, तो भी दो गुणों के ध्यं यि सम्बन्ध असम्भव ै।'[303] ब्दं तनजष्ियि ैं और संयोग तनभरश करता ै दोनों र्ें से ककसी एक गतत पर। ब्दं आकार् और पदाथ शआकार् दोनों तनजष्ियि ैं और उनर्ें कोई संयोग निींिो सिकता। वात्स्यायन स्वीकार करता ै कक ब्दं और उसके अथ शके बीच सम्बन्ध उत्पादक रूप (प्राजप्तलक्षण) निीं। 'अजग्न' ब्दं अजग्न पदाथ शको उत्पन्न निीं ं करता।[304] यिी कारण ै कक र्ाजब्दक बोध इजन्द्रयर्न्य प्रत्यक्ष ज्ञान से कर् स्पष्ट िोता ै।[305] तो भी बोध के रूप र्ें वि ककसी भी तरि न्यून निीं ंिोता।

वाक्य साथकश (भावपूण)श ब्दों का संग्रि ै। िर्ें वाक्य को बनानेवाले ब्दों का बोध िोता ै और उसके बाद उनके अथों का। ब्दों के बोध अपनेपीछे संस्कार छोड र्ाते ैं जर्नको वाक्य के अन्त र्ें स्र्रण ककया र्ाता ै, और तब पवभभन्न अथ शएक प्रकरण र्ें एकसाथ सम्बद्ध िो र्ाते ैं। रिीं ंप्राचीन नैय्यातयकों का किना ै कक र्ाजब्दक ज्ञान का र्ुख्य कारण र्ौणखक सूतृत से प्राप्त पदाथों का स्र्रण ै, विांआधुतनक नैव्यातयक तकश करते े ैं कक र्ौणखक सूतृत र्ुख्य कारण ै। वाक्य का अथ शतनभरश करता ै- (1) आकांक्षा, पारस्पररक आवश्यकता अथवा परस्पराश्रय, अथवा अन्य ब्दं के अभाव र्ें ककसी ब्दं की अभभलपषत अथ शको संकेत करने की असर्थतश पर, (2) योग्यता अथवा वाक्य के भाव के अनुरूप िोनेकी क्षर्ता तथा उसे तनरथकश ककंवा असफल न िोनेदेनेकी क्षर्ता पर, (3) सजन्नधध, तनकटता अथवा बीच र्ें लम्बा व्यवधान हदए बबना ब्दों के र्ीघ्रता के साथ एक के बाद एक उच्चारण पर। ये ब्दों के पदयोर्ना-सम्बन्धी, ताककशक तथा ध्वन्यात्र्क सम्बन्धों पर पवर्ेष वल देते ैं। ऐसे ब्दों के संकलन से र्ो परस्पर एक-दूसूरे पर आधश्रत न िो, यथा र्नुष्य, घोडा और बस्ती, कोई भाव निीं ंतनकलता। एक ऐसेवाक्य का, र्ैसे े'आग से सींचे,' कुछ भी अथ शनिीं ंिै, क्योंकक यि बुद्धध र्ें निीं ं आता। इसी प्रकार देर-देर से उच्चारण ककए गए ब्दं कुछ अथ शनिीं ंरख सकते। वाक्य ऐसे ेब्दों से बनता ै र्ो एक-दूसूरे पर आधश्रत, और जर्न्िें एक-दूसूरे के अगल-बगल रखकर कोई रचना की र्ा सके। गंगेर् इसर्ें एक चौथी र्त शभी र्ोडता ै, अथात्श ्वक्ता के आर्य का ज्ञान। एक ऐसे वाक्य, र्ैसे े'सैन्धवर् ्आनय' का अथ शयि िो सकता ै कक 'घोडा लाओ' और यि भी िो सकता ै "नर्क लाओ!" इसका तनजश्चत अथ शिर्ें तभी र्ालूर् िो सकता ै र्बकक िर्ें वक्ता के र्न र्ें क्या ै, इसका ज्ञान िो। तनजश्चत अथ शको प्रकट करनेकी योग्यता र्ें इस आवश्यकता को भी सजम्र्भलत कर लेना चाहिए।[306] रिीं ंयोग्यता के भलए औपचाररक संगतत की आवश्यकता ै, विांतात्पयज्ञशान अथवा वक्ता के अभभप्राय के ज्ञान से आर्य वास्तपवक संगतत किा र्ा सकता ै।'[307]

---

303 वैर्ेपषक सूत्र, 72, 14 ।

304 न्यायभाष्य और न्यायवातत कशतात्पयटशीका, 2:1, 50-51।

305 प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड, पृषूठ 128-30, कुर्ाररलकृत श्लोकयाततकश, 5 : 11, 6-8, और 10।

306 भाषा पररच्छेद 1 और वेदान्तपररभाषा 4

307 र्ीर्ांसक तथा व्याकरण का र्त ै कक वाक्य के अंतगतश ब्दं किया पर िी केंहद्रत रितें, जर्सके बबना कुछ अथश निींबनता विांनैन्यातयक का र्त ै की प्रततज्ञा केवल कुछ साथकश ब्दों (पद सरिू) से ेबनती ै जर्नकी सार्ूहिक अथ शका बोध िोता ै, वाक्य के अंदर कियापद िो या ना िो ।(तकश संग्रि पृषूठ 59 प्रभाकर स्कूल पृषूठ 63)

प्रततज्ञाओं को तीन वगों र्ें बांटा गया ि ै पवधध, तनर्ेषेध और व्याख्या (अथवशाद)।[308] ब्द का उपयोग ब ज्ञान के उद्गर् के रूप र्ें ककया र्ाता ि ै तो उसका तात्पय शिोता ि,ै 'आप्तीपदेर्' अथात्श ्एक पवश्वस्त व्यजक्त का कथन।'[309] आप्त सेतात्पय शउस व्यजक्त सेि ै र्ो ककसी क्षेत्र-पवर्ेर्ष र्ें पवर्ेर्षज्ञ िो, 'वि र्ो ककसी पवर्षय का प्रत्यक्ष प्रर्ाण रखता ि ै और उसे ेदूसूरों को पिुंचाना चािता ि,ै जर्ससे कक वे इसे ेसर्झ लें।' ऐसेव्यजक्त ककसी भी र्ातत अथवा वण शके क्यों न िों, 'ऋपर्ष िों, आय शिों अथवा म्लेचे्छ िों।"[310] ब ककसी युवक के र्न र्ें यि सन्देि िो कक अर्ुक नदी पार की र्ा सकती ि ै या निीं, तो बस्ती के ककसी पराने अनुभवी पुरुर्ष से इस प्रकार की सूचना भर्लने पर कक वि पार की र्ा सकती ि,ै उस पर पवश्वास करना चाहिए।

ये पवश्वसनीय कथन दृश्य र्गत् ्से अथवा अदृश्य र्गत् ्से सम्बन्ध रखते िैं। यि कथन कक कुनैन नार्क दवा ज्वर का इलार् करती ि'ै ि ै पिले ेप्रकार का ि,ै और 'धाभर्कश र्ीवन से स्वग शभर्लता ि'ै यि दूसूरे प्रकार का ि।ै ऋपर्षयों के ब्द दूसूरे अथात्श ्अदृश्य-र्गत् ्से सम्बन्ध रखते िैं।[311] उनके कथनों पर पवश्वास करना चाहिए, क्योंकक इस पवश्व के सम्बन्ध र्ें उनके कचन, जर्नकी सचाई र्ांची र्ा सकती थी, सत्य भसद्ध िुए िैं। वेदों के तनर्ातशा आप्तपुरुर्ष अथात्श ्पवश्वसनीय पुरुर्ष ि,ै क्योंकक उन्िोंने सत्य का अजष्ट से प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त ककया था, उन्िें र्ुष्य-र्ात्र से प्रेर् था तथा उनर्ें अपनेज्ञान को दूसूरों को देने की इच्छा थी।[312]

उदयन तथा अन्नंभट्ट र्ैसे ेपरवती नैय्यातयक और वैर्ेपर्षक पवचारक परर्ेश्वर को वेदों का तनत्य तनर्ातशा र्ानते िैं। उदयन इस र्त का तनराकरण करता ि ै कक वेदों की प्रार्ाणणकता उनके तनत्य, दोर्षिीन तथा र्िान ्सन्तों द्वारा स्वीकृत िोनेिसेि ैसकती। वेदों की तनत्यता के पवर्षय र्ें र्ीर्ांसक का र्ो र्त ि ै उसका उदयन पवरोध करता ि,ै और युजक्त देता ि ै कक तनत्यता की सूचक कोई तनरन्तर परम्परा निीं ि,ै क्योंकक इस तरि की परम्परा वतशर्ान सृजष्ट से पूव,श प्रलय के सर्य, नष्ट िो गई िोगी। परन्तु वात्स्यायन परम्परा की तनरन्तरता को स्वीकार करता ि ै तथा किता ि ै कक ईश्वर प्रत्येक सृजष्ट के आरम्भ र्ें वेदों का पुनतनर्शाणश करता ि,ै तभी उक्त परम्परा को जस्थर रखता ि।ै[313] यहद र्ीर्ांसक अपने इस र्त के सर्थनश र्ें वेदर्न्त्र प्रस्तुत करते िैंकक वेद तनत्य िैं और ऋपर्ष उनके तनर्ातशा निींअपपतु केवल र्न्त्रद्रष्टा िैं, तो वेदों के उद्गर् के पवर्षय र्ें न्याय-र्त के सर्थनश र्ें अन्य र्न्त्र उद्धृत ककए र्ाते िैं।'[314] इसके अततररक्त, वेदों र्ें ऐसेवाक्य िैं र्ो तनर्ातशा को उपलक्षक्षत करते िैं।

---

308 न्यायसूत्र 2:1,63 और तकश कौर्ुदी पृष्ठ 17 ।

309 1:1,7।

310 न्यायभाष्य 1:1,7 ।

311 न्याय भाष्य 1:1, 8।

312 2:1,68 ।

313 न्यावभाध्य और न्यायवाततकशतात्पयटशीका ,2:1,68 ।

314 इरं सर्व्श ्आयुर्त ऋचो यरूपप साभातन इत्याहद।

वेदों की प्राणणकता के पवरोध र्ें असत्य, पूवापशर, पवरोध, पुनरुजक्त आहद रो आपपियां ंउठाई राती िैं उन सबका यि किकर तनर्ेषेध ककया गया िै कक वे हटकनेवाली निीं।'[315] उनकी प्राणणकता की रक्षा इस आधार पर की राती िै कक उनके पवर्षय एक संगत और पूण शइकाई का तनर्ाणश करते िैं। वेदों को स्वीकार करने का अथ श भर्थ्यापवश्वास अथवा ईश्वरीय वाणी का आश्रय लेना निीं िै।

हदङ्नाग पवरोध र्ें किता िै कक र्ब्द, ज्ञान का स्वतन्त्र साधन निीं। र्ब िर् पवश्वसनीय कथन की बात करते िैं तो उससे िर्ारा तात्पय शया तो यि िोता िै कक रो व्यजक्त बोल रिा िै वि पवश्वसनीय िै, या यि िोता िै कक यि तथ्य जर्सेवि कि रिा िै, पवश्वसनीय िै। पिली अवस्था र्ें यि अनुर्ान िै, और दूसूरी अवस्था र्ें प्रत्यक्ष ज्ञान िै।[316] यद्यपप र्ब्द अनुर्ान के सर्ान िै, क्योंकक यि पदाथ शके ज्ञान को उसके धचह्न द्वारा दूसूरे को पिुँचाता िै। ककन्तु इसका धचड अनुर्ान के धचह्न सेभभन्न िै, क्योंकि यि संकेत करता िै कक र्ब्दों का प्रयोग करनेवाला व्यजक्त पवश्वात के योग्य िै या निीं।[317] अनुर्ान र्ें धचह्न (लक्षण) तथा लक्षक्षत पदाथ शका सम्बन्ध प्राकृततक िै, ककन्तु र्ब्द प्रर्ाण र्ें यि सम्बन्ध रूहढ़गत िै।'[318] यहद िर् यि तकश उपजस्थत करें कक र्ाजब्दक बोध र्ब्दों के अथों की स्रृतत के पीछे आता िै और इसभलए यि आनुर्ातनक ज्ञान िै, तो संहदग्ध बोध तथा उपर्ानर्तनत ज्ञान को भी आनुर्ातनक र्ानना िोगा। यहद सर्य के तीन भागों से सम्बद्ध िोनेके कारण र्ाजब्दक बोध अनुर्ान की कोहट र्ें आता िै तो तकश की अन्यान्य पवधधयांभी अनुर्ान की कोहट र्ें आ र्ाएगी। यहद इस बात पर बल हदया र्ाए कक र्ाजब्दक बोध तनजश्चत तथा तनर्ेषेधात्र्क के सिाचय शपर तनभरश करता िै और यि किा र्ाए कक 'घडा' र्ब्द का तात्पय शिै पदाथ शका बोध, और रिां ंइसे ेवाणी से उच्चारण निींककया र्ाता विां ं बोध निीं ंिोता, तो प्रत्यक्ष ज्ञान भी अनुर्ान की कोहट र्ें आ र्ाएगा, क्योंकक यि विां पवद्यर्ान िै रिां ंघडा पवद्यर्ान िै और रिां ंघडा पवद्यर्ान निींविांप्रत्यक्ष ज्ञान भी निीं।[319] इस प्रकार र्ब्दों द्वारा प्राप्त ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुर्ान तथा उपर्ान प्रर्ाण द्वारा प्राप्त ज्ञान से भभन्न िै।'[320]

13. ज्ञान के अन्य रूप

---

315 यहद िर् पुत्र प्राजप्त के भलए यज्ञ करते िैं और पुत्र प्राजप्त निींिोती, तो कर् शर्ें किीं दोर्ष रिा िोगा, वैहदक पवधान र्ें दोर्ष निीं। इस प्रकार के आदेर्ों को कक 'सूयोदय के पश्चात् ्िोर् करो' अथवा 'पिले' े िो ेर् करो, परस्पर पवरोधी निीं ंसर्झना चाहिए, क्योंकक वे आचार के वैकजल्पक पवधानों का कथन करते िैं। कोई भी पुनरुजक्त तनरथकश निीं (न्यायभाष्य, 2/1 58-59)!

316 हदङ्नागक्रफरभीबुद्धकेवचनोंकोप्रार्ाणणकर्ानतेथे।देणखएकुर्ाररलकृततत्त्वयाततकश , पृष्ठ 169 सेआगे)।

317 न्यायभाष्य , 2/1, 52।

318 न्यायभाष्य, 2:1,55।

319 न्यायवाततकश, 2:1, 49-51|

320 न्यायभाष्य, 2 : 1, 52; न्यायवाततकश, 1/1, 7।

न्याय के अभभर्त ज्ञान के चार साधनों र्े् र्ीर्ांसक अथापशपि तथा भाट्ट र्त के अनुयायी और वेदान्ती अभाव को भी र्ोडते िैं। पौराणणक लोग परम्परा तथा सम्भावना को भी ज्ञान के प्रार्ाणणक साधनों र्े् सजम्र्भलत करते िैं। नैय्यातयक का र्त िै कक ज्ञान के सभी प्रकार चार प्रर्ाणों के अन्दर सर्ा र्ातेिैं।'[321]

ऐततह्य अथवा परम्परा र्ब्द प्रर्ाण के अन्दर आ र्ाता िै।[322] यहद प्रवाद ककसी ऐसेव्यजक्त द्वारा प्रचाररत ककया गया िो र्ो पवश्वस्त िै तो यि वैसा िी प्रार्ाणणक िै र्ैसे ेकक र्ब्द प्रर्ाण। अथापशपि अथवा उपलक्षण एक अन्य तथ्य के आधार पर (अथात्श)् एक नये तथ्य को प्राप्त करना, अथवा ककसी चीर् के पवर्षय र्े् धारणा बनाना (आपपि) िै। यि एक ऐसेपदाथ शके पवर्षय र्े् धारणा बनाना िै र्ो अपने-आप प्रत्यक्ष निींिुआ िै, बजल्क प्रत्यक्ष या अनुर्ान द्वारा र्ाने गए अन्य पदाथ शसे उपलक्षक्षत िुआ िै। र्ोटे र्रीर वाला देवदि हदन र्े् निीं ं खाता। इससे यि उपलक्षक्षत िुआ कक वि रात र्े् खाता िै, क्योंकक बबना खाना खाए कोई र्ोटा निींिो सकता। र्ीर्ांसक, र्ो इसे ेज्ञान का स्वतन्त्र साधन र्ानते िैं, इसे ेएक पवकल्पात्र्क काल्पतनक पराथानुशर्ान र्ानते िैं।[323] गंगेर् के अनुसार, यि एक तनर्ेषेधात्र्क अनुर्ान का उदिारण िै र्ो साध्य पद के अभाव द्वारा िेतु के अभाव की स्थापना करता िै। भार्षापररच्छेद के अनुसार, िेतु तथा साध्यपद के र्ध्य तनर्ेषेधात्र्क सम्बन्ध (व्यततरेकव्याजप्त) को पिचान लेनेसे अथापशपि सम्पन्न िो र्ाती िै।[324] सम्भव अथवा अन्तगशर्न वि िै र्िां ंकक र्ि्ि पूण शके एक अंर् का, र्ोकक उसका अवयव िै, बोध िोता िै। यि तनगर्नात्र्क अनुर्ान की अवस्था िै। वस्तुतः यि सांजख्यक अभभव्याजप्त िै।

अभाव अथवा अनजस्तत्व को कभी-कभी एक स्वतन्त्र प्रर्ाण र्ाना गया िै। यद्यपप न्यायवैर्ेपर्षक दर्नश अभाव को एक प्रर्ेय पदाथ शकरके स्वीकार करता िै पर वि यि निींर्ानता कक उसके र्ाननेके भलए ककसी पवभर्ष्ट प्रर्ाण की आवश्यकता िै। िर् पिले ेदेख आए िैंकक ककस प्रकार अजस्तत्व एक प्रर्ेय पदाथ शिै र्ो अपने अधधकरण के साथ पवर्ेर्षणता (अथात्श ्गुण और गुणी) सम्बन्ध से सम्बद्ध िै। अभावात्र्क प्रर्ेय पदाथ शउसी श्र्ेणी का िै जर्स श्र्ेणी का उसका अधधकरण िै र्ो प्रत्यक्ष हदखाई देता िै, अन्यथा उसके अभाव का ज्ञान उसके

---

321 न्यायभाष्य, 2:1, 19।

322 2:2,2।

323 और देणखए भार्षापररच्छेद, पृष्ठ 143।

324 इसेदो भभन्न-भभन्न जस्थततयों र्े् प्रकट कर सकते िैं:-

वि र्ो बबलकुल निींखाता र्ोटा निींिोता।

यि र्नुष्य र्ोटा िै।

इसभलए यि र्नुष्य वि निींर्ो बबलकुल निींखाता अथाशत् यि वि िै र्ो खाता िै।

यि सीर्ी िै। अलग चरण िैः-

वि व्यजक्त र्ो खाता िै उसे ेहदन र्े् या रात र्े् अवश्य खाना चाहिए।

यि हदन र्े् निींखाता।

इसभलए वि रात र्े् खाता िै

अधधकरण से संकेततत निीं िो सकता। तनतान्त अभाव कल्पनातीत िै। अभाव, र्ो ज्ञान का पवर्षय िै, सापेक्ष िै।'[325]

अनुर्ान द्वारा िर् पदार्थों के अभाव का ज्ञान प्राप्त कर सकते िैं। अभाव से तात्पय शकेवल तनर्ेषेध िी से निीं, बजल्क वैर्षम्य से भी िै। एक पदाथ शर्ो पवद्यर्ान िै और दूसूरा र्ो पवद्यर्ान निीं िै, उनर्ें परस्पर वैर्षम्य िै। र्ैसे ेकक वर्षा शका अभाव तीव्र वायु के साथ बादलों के सम्बन्ध का ज्ञान कराता िै, क्योंकक यहद तीव्र वायुरूपी बाधा र्ाग शर्ें न आ र्ाती तो गुरुत्वाकर्षणश के तनयर्ों के अनुसार बादलों का नीचे पृथूवी पर बरस र्ाना आवश्यक था।[326] दो परस्पर पवरोधी पदार्थों र्ें सेएक के अभाव सेदूसूरे के अजस्तत्व की स्थापना िोती िै। न्यायदर्नश का तकश युग्र्ाखीय पवभाग के भसद्धान्त को लेकेर आगे ेबढ़ता िै। सर्ातीय तथा पवर्ातीय उदिारणों का भेद इसी कल्पना के आधार पर हटका िुआ िै। दो परस्पर-पवरोधी तनणयशों की अवस्था र्ें ऐसा निीं ंिो सकता कक दोनों िी सत्य िों अथवा दोनों िी असत्य िों। 'क' या तो 'ख' िै और या 'ख' निीं। परस्पर पवरोधी दो र्ें से एक अवश्य सत्य िोगा, क्योंकक कोई और र्ाग शसम्भव निीं ंिै।[327] यहद िर् ककसी वस्तु के अभाव का अनुर्ान दूसूरी वस्तु के अजस्तत्व से करते िैं तो यि केवल अनुर्ान का पवर्षय िै।'[328] वात्स्यायन का किना िै कक 'जर्स सर्य पवद्यर्ान वस्तु बोध िोता िै उस सर्य अभावात्र्क वस्तुका बोध निींिोता, अथात् श ्अभावात्र्क वस्तु का अज्ञान उसी सर्य िोता िै बर्कक पवद्यर्ान वस्तु का बोध िोता िै। र्ब दीपक र्लता िै और र्ो देखा र्ानेयोग्य पदाथ शिै उसे ेदृश्य बना देता िै, तो वि र्ो उसी प्रकार से हदखाई निीं देता जर्स प्रकार उक्त देखने योग्य पदाथ शहदखाई देता िै, वि अभावात्र्क र्ाना र्ाता िै। उस सर्य र्ानभसक प्रकिया तनम्नभलणखत प्रकार की िोती िै: 'यहद पदाथ शका अजस्तत्व िोता तो यि हदखाई देता और क्योंकक वि हदखाई निींदेता इसभलए तनष्कर्ष शअवश्य यिी तनकलता िै कक वि पवद्यर्ान निीं।[329] प्रर्स्तपाद इस पवचार का सर्थनश करता िै। 'जर्स प्रकार काय शका रूप कारण के अजस्तत्व का संकेत करने वाला िोता िै, उसी प्रकार काय शका अभाव कारण के अभाव का संकेत करने वाला िोता िै, उसी प्रकार काय शका अभाव कारण के अभाव का संकेंत करता िै।"[330] र्ब्द के द्वारा भी अभाव का बोध िो सकता िै।'[331]

14. तकश और बाद

---

325 एक भभन्न र्त के भलए देणखए र्ास्त्रदीपपका पृषूठ 234 से आगेवेदान्तपररभार्षा िै, 6 ।

326 न्यायभाष्य, 2: 2,1 ।

327 परस्परपवरोधे हि न प्रकारान्तरजस्थतत (कुसुर्ांर्भल, 3:8)।

328 न्यायभाष्य, 2:2,2 ।

329 न्यायभाष्य प्रस्तावना।

330 प्रर्स्तपादकृत पदावधशर्संशग्रि, पृषूय 225 । और देणखए वैर्ेज र्षक सूत्र 9:2:5 न्यायकन्दली, पृषूठ 2 25-26,और कुसुर्ांर्भल, 3: 20, 22 और 26 ।

331 र्यन्त ग्यारि प्रकार की अनुपलजब्धयों का उल्लेख करता िै । देणखए न्यायर्ंर्री पृषूठ 56-57 ।

तकश अथवा परोक्ष प्रर्ाण र्ें िर् एक ररात्र्क धारणा को लेकर चलते िैं और प्रदभर्तश करतें कक ककस प्रकार यि िर्ें असंगततयों की ओर प्रेररत करती िै। यहद र्ीवात्र्ा तनत्य न िोती तो यि अपनेकर्ों के फलों का उपभोग कर सकती, न पुनर्जन्र् र्ें आती और न र्ोक्ष िी प्राप्त कर सकती। इसभलए र्ीवात्र्ा तनत्य िै। एक असत्य आधार वाक्य को र्ान लेनेसे िर् असत्य साध्यपद को र्ानने के भलए बाध्य िोते िैं।'[332] तकश एक प्रकार का ऐसा अनुर्ान िै र्ो अन्य सबसे भभन्न िै, क्योंकक यि ककसी प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर निीं। यि िर्ें परोक्षरूप से ठीक ज्ञान की ओर ले र्ाता िै।[333] वात्स्यायन के अनुसार, यि िर्ें तनश्चयात्र्क ज्ञान निींकरा सकता, यद्यपप यि िर्ें इतना बतला देता िै कक एक प्रस्तुत पक्ष का पवपरीत असम्भव िै।"[334] उद्योतकर का तकश िै कक आत्र्ा के पवर्षय र्ें तकश िर्ें ऐसा किने के योग्य निींबनाता कक आत्र्ा अनाहद िै बजल्क केवल इतना किने के योग्य बनाता िै कक ऐसा िोना चाहिए।'[335] तकश अपने-आप र्ें प्रार्ाणणक ज्ञान का साधन निीं, यद्यपप प्रकल्पनाओंके प्रस्तुत करने र्ें यि र्ूल्यवान भसद्ध िोता िै।

प्राचीन न्याय ग्यारि प्रकार के तकश को स्वीकार करता िै जर्से ेआधुतनक न्याय ने घटाकर पांच िी रखा िै। इनर्ें र्ुख्य वि िै जर्सका िर्नेवणनश प्रर्ाणवाधचताथप्रशसंग नार् से ककया िै। अन्य चार िैं, आत्र्ाश्रयर्, अन्योन्याश्रय, चकक्रक अथवा चिरूपी तकश, और अनवस्था, अथात्श ्अन्तपविीन पश्चाद्गतत । प्रर्ाणबाधधताथप्रशसंग को भी िेत्वाभास र्ाना गया िै, क्योंकक यि ऐसा तनष्कर्ष शतनकालता िै र्ो असंगल िै। ककन्तु र्ब िर् भूल को अततिर्ण कर र्ाते िैं तब िर् एक तनजश्चत तनणयश पर पिुंच र्ाते िैं।[336]

वाद परानुंर्ान की पवधध का स्वतंत्ररूप से प्रयोग करके सत्य के तनश्चय करने का लक्ष्य रखता िै। ककन्तु यि प्रायः बबगडकर र्ल्प के रूप र्ें पररणत िो र्ाता िै, जर्सका लक्ष्य पवर्य प्राप्त करना िो र्ाता िै और यि पवतण्डा किलाता िै, र्ो सर्ालोचना के भलए सर्ालोचना करनेर्ें िी प्रसन्न िोता िै।'[337] इस प्रकार के तनष्फल वाद-पववाद का अन्त प्रततपक्षी को उसकी भूल र्वाकर तथा उसे ेअपनी िार र्ाननेके भलए बाध्य करने से िी िो सकता िै।[338]

---

332 सवदशर्नशसंग्रि, 11 ।

333 प्रर्ानुग्रियस्तकश (सवभशसद्धांतसारसंग्री, 6:25)। तकशभार्षा ।

334 न्यायभाष्य, 1:1, 40 ।

335 न्यायवाततकश 1:1, 40 ।

336 1:1,41 ।

337 1:2, 1-3 ।

338 परार्य के स्थान (अथात् श ्तनग्रिस्थान) 22 प्रकार के िैं (1) प्रततज्ञािातन, अथवा साध्यपक्ष को त्याग देना; (2) प्रततज्ञान्तर, अथवा नये पववेचन को बीच र्ें लाकर तकश के पवर्षय को बदल देना; (3) प्रततज्ञापवरोध, अचया आत्र्पवरोध; (4) प्रततज्ञासंन्यास, अथवा साध्यपक्ष hat \# टि र्ाना, (5) िेत्वन्तर, अथवा अपनी दी िुई युजक्त को बदल देना; (6) अथान्शतर, अथात् श ्पवर्षय बदल देना; (7) तनरथकश, अथवा पवना ककसी अथ शकी, बात करना (8) अपपज्ञाताथ,श अथवा ऐसी भार्षा का प्रयोग जर्सका अथ शसर्झ र्ें न आ सके. (9) अपाथकश, अथात्श ्असंगत भार्षण, (10) अप्राप्तकाल, अथवा तकश के िर् की उपेक्षा; (11) न्यून, अथवा तकश के आवश्यक अंर्ों को छोड देना; (12) अधधक, अथात्श ्र्ो स्पष्ट िो उसे ेआवश्यकता से ेअधधक तूल देना; (13) पुनरुक्त, अथात् श ्किे िुए को बार-बार दोिराना, (14) अननुभार्षण, अथात् श ्चुप रिना, (15) अज्ञान, अथात्श ्

15. स्नृतृत

सर्स्त ज्ञान दो श्रेरेणणयों र्ें पवभवत ककया गया िै-अनुभव, रो पूण शचेतना की पुनरावृपि न िोकर वतर्शानकाल का ज्ञान िै, और स्नृतृत, रो पूण-शअनुभवों के आधार पर स्र्रणात्र्क चेतना के रूप र्ें प्रकट िोती िैं।"[339] यहद िर् स्नृततर्न्य ज्ञान को तनकाल दें तो सर्स्त भूतकाल तनजश्चतता के क्षेत्र से तनकल रायेगा। स्नृततज्ञान संस्कारों के आधार पर जस्थत िै। स्नृतत की पररभार्षा करते िुए किा राता िै कक आत्र्ा का र्न के साथ एक पवर्रे्ष प्रकार का सम्बन्ध िोनेसेतथा पूव-शअनुभव के रो संस्कार र्रे्ष रिते िैं उनके कारण िर्ें स्नृतत िोती िै।[340] कभी-कभी यि किा राता िै कक यि केवल संस्कार र्ात्र से उत्पन्न िोती िै। और इस प्रकार की यि पिचान (प्रत्यभभज्ञा) से भभन्न िै। रिां ंसंस्कार स्नृतत का तात्काभलक कारण िै, विां ंपिचान ककसी अन्य पदाथ श के साथ प्रस्तुत पदाथ शके तादात्म्य के प्रत्यक्ष ज्ञान के कारण िोती िै। न्याय, स्नृतत को ज्ञान का एक पृथक् साधन निीं र्ानता, क्योंकक िर्ें इसर्ें पदार्थों का कोई बोधात्र्क ज्ञान प्राप्त निीं िोता बजल्क केवल पपछले ेअनुभव की पुनरावृपि उसी रूप तथा िर् र्ें िोती िै जसर्ें कक वि भूतकाल र्ें कभी रिा था और अब पवलुप्त िो चुका था।'[341] स्नृततपवर्षयक ज्ञान की प्रार्ाणणकता उस पूव-शअनुभव की प्रार्ाणणकता पर तनभरश करती िै जर्सकी कक यि पुनरावृपि िै। कुछ ताककशक-स्नृततर्न्य ज्ञान को प्रार्ाणणक बोध के अन्दर सजम्भलत करतेिैं, र्बकक प्रार्ाणणक बोध का कभी पवरोध निीं िोता।"[342] स्नृततयां एक साथ निीं िोतीं ंक्योंकक ध्यान (प्रणणधान), धचि का प्रत्यक्ष तथा अन्य (भलंगांहद ज्ञान) एक िी सर्य र्ें उपजस्थत निीं रिते।'[343]

साध्यपक्ष को न सर्झना; (16) अप्रततभा, अथात्श ्उिरों का न सूझना, (17) पवक्षेप, अथात्श ्रोगाहद का बिाना करके बाद-पववाद से ेबचना. (18) र्तानुज्ञा, अथातूश यि किकर कक पवरोध पक्ष र्ें भी यि पाया राता िै, अपनी िार को स्वीकार कर लेगा, (19) पयनुशयोग्योपक्षण, अथात्श ्रर्िां दोर्ष देखना चाहिए उसेदृजष्ट से ओझल कर देना, (20) तनस्नुयोग्यानुयोग्य अथात्श ्रिांर्रे्ष न लगाना चाहिए यिांदोर्ष लगाना, (21) अपभसद्धान्त, अथात्श ्स्वीकृत भसद्धान्त से भी परे िटना, और (22) व्याभास, अथात्श ्रो िेतु निीं िै उसे िेतु की भांतत हदखाना।

339 तकशसंग्रि, 34।

340 वैर्रे्षकसूत्र, 9/2, 6।

341 न्यायसूत्रवृपि, 1: 1, 3 ।

342 तकशकौर्ुदी, पृष्ठ 7।

343 न्यायसूत्र, 3: 2, 35, न्यायभाष्य, 32, 25-30; न्यायवाततकश, 3 2, 26-26। स्नृतत के कारणों र्ें तनम्नभलणखत का उल्लेख ककया गया िै। (1) प्रणणधान, अथवा ध्यान, (2) तनबन्ध, अवया सिाचयश; (3) अभ्यास, अथात् श ्बार-बार दोिराना, (4) भलंगं, अथवा धचि (5) लक्षण, अथवा वणनशात्र्क धचि; (6) सादृश्य, अथात् श ्सर्ानता, (7) पररग्रि, अथवा स्वाभर्त्व; (8) आश्रयाधश्रतसम्बन्ध, अचचा आश्रय तथा सम्बन्ध; (9) आनन्तयश, अथात्श ्िर् र्ें ठीक पीछे आना, (10) पवयोग अथात्श ्पृथ ि्र्ाना; (11) एक काय,श अथात् श ्व्यापार र्ें एकता, (12) पवरोध, (13) अततर्य, अथवा श्रेष्ठता, (14) प्राजप्त) (15) व्यवधान, (16) सुख-दु:ख (17) इच्छरोप (18) भय, (19) अधथत्शव, अथवा आवश्यकता, (2०) ककया, (21) राग, अथात्श ्स्नेि या प्रेर्, (22) धर् शअथवा पुण्य; (23) अधर् शअथया पाप। चात्स्यायन के अनुसार, ये इततर्ात्र िैं, यिी सब कुछ निीं। 'तनदर्नश घेद स्नृततिेतूनां ंन पररसंख्यानसू' इतत (व्योदभाष्य, 32, 41) सिाचय शके सर्स्त कारण और पवचारों को पुन:स्वरण उक्त र्ीर्षकशों के अन्तगतश लाए रा सकते िैं।

16. संर्य

संर्य कई अवस्थाओं र्ें उत्पन्न िोता िै, यथा (1) कई पदाथों के गुणसाम्य से, र्ैसे ेकक िर् सायंकाल के झुटपुटे र्ें एक लम्बी आकृतत को देखें और तनश्चय न कर सकें कक वि र्नुष्य िै अथवा खंभा िै, क्योंकक लम्बाई दोनों र्ें सार्ान्य िै; (2) ऐसे गुणों के ज्ञान र्ें र्ोकक ककसी भी पदाथ शर्ें सर्ान रूप से न पाए र्ाएं,ं र्ैसे ेकक यि तनश्चय करने र्ें िर्ें कहठनाई िो कक ब्द तनत्य िै या निीं, क्योंकक यि र्नुष्य र्ें अथवा परु र्ें निींपाया र्ाता र्ो अतनत्य िै, और न परर्ाणु र्ें िी पाया र्ाता िै र्ो तनत्य िै; (3) परस्पर-पवरोधी साक्ष्य से, र्ैसे ेकक दो प्रार्ाणणक पुरुषों र्ें र्ीवात्र्ा के स्वरूप के पवर्षय र्ें र्तभेद िो र्ाता िै; (4) प्रत्यक्ष ज्ञान की अतनयभर्तता से, र्ैसे ेकक र्ल हदखाई पडने पर िर् यि तनश्चय न कर सकें कक यि वास्तपवक र्ल िै र्ैसाकक तालाब र्ें िोता िै, अथवा कृबत्रर् िै र्ैसाकक र्ृगर्रीधचका र्ें हदखाई देता िै, क्योंकक ज्ञान दोनों र्गि िी सर्ान िै; (5) न हदखाई देने की अतनयभर्तता से, र्ोकक पूवावशस्था सेपवपरीत िै।"[344] उद्योतकर के अनुसार, पपछली दोनों अवस्थाएं ंर्ब तक कक सार्ान्य अतनश्चयात्र्क लक्षणों का ज्ञान न िो, अपने-आप संर्य को र्न्र् निींदेतीं। क्योंकक देखा गया अवयव एक से अधधक पदाथों सेसम्बद्ध िोता िै, अतः यि एक साथ िी दो प्रकार के पवचारों की श्रृंखला की सूतृत को तार्ा कर देता िै, जर्नके बीच र्न दोलायर्ान रिता िै और इससे संर्य उत्पन्न िोता िै।' [345] दोनों र्ें से एक भी पवचार दृश्य ज्ञान के साथ सम्बद्ध निीं ंरिता, यद्यपप िर्ें दोनों का संकेत भर्लता िै।[346] संर्यात्र्क वृतृत अवांतछत रूप र्ें बढ़कर किया को रोक देती िै।[347]

यहद दोनों पवकल्पों र्ें सेएक को दबा हदया र्ाए और र्न का झुकाव दूसूरे की ओर िो र्ाए तो उसे,े 'ऊि' अथात्श ्अटकल के नार् से र्ाना र्ाता िै, और कुछ सर्य के भलए िर् एक पवकल्प को र्ान लेतीं।'[348] एक पवकल्प को दबाने का कारण दूसूरे का सर्क्त िोना िोता िै। यहद िर् धान के खेत र्ें ककसी लम्बे ेपदाथ शको देखें तो िर् अटकल लगाएंगे कक यि कोई र्नुष्य िै, लम्बा खंभा निीं, क्योंकक धान के खेते र्ें खंभे ेप्रायः निींपाए र्ाते। र्िां ंसंर्यावस्था र्ें दोनों पवकल्पों की एक सर्ान संभावना रिती िै, विांऊि र्ें एक की संभावना दूसूरे की अपेक्षा अधधक िोती िै।

---

344 तकशसंग्रि, 64, वैर्ेपर्षकसूत्र, 2/2.17 ।

345 दोलायर्ाना प्रतीततः संर्यः (गुणरत्नकृत पदर्नशसर्ुच्यवृतृत)।

346 लौगाक्षक्ष भास्कर संज्ञयावत्या की पररभार्षा करता िुआ किता िै कक वि ऐसा ज्ञान िै जर्सर्ें नानापवध परस्पर पवरोधी गुणों का पवकल्प रिता िै। तो एकजर्स्न् ्पभर्णश पवरुद्धनानाकोहटकं ज्ञानर्।् पृष्ठ 7। और तुलना कीजर्ए तकशसंग्रि, 64, भार्षापररच्छेद, 129-30 ।

347 प्रर्स्तपाद संर्य के दो प्रकार बताता िै. आभ्यन्तर और बाह्य (प्रर्स्तपाद कृत पदाथधशर्सशग्रि, पृष्ठ 174)।

348 सप्तपदाथी, 68।

एक अन्य संर्यात्क अवस्था भी िै जर्से ेअनध्यवसाय किते िैं। यि स्रृतत के अभाव र्ें उत्पन्न िोती ैं। िर् वृकूष को देखते िैं ककन्तु उसका नार् भूल र्ाते िैं और पूछते िैं कक "इसका क्या नार् िो सकता िै?"[349] भर्वाहदत्य के अनुसार, यिां भी िर्ारे सार्नेदो वैकजल्पक सुझाव रिते िैं यद्यपप वे चेतेना र्ें पवद्यर्ान निीं ं रिते। यहद िर्ें उनका ज्ञान िो तो एक संर्यात्क अवस्था उपजस्थत िो र्ाती िै। प्रर्स्तपाद, श्रीधर तथा उदयन एक अन्य िी सर्ाधान प्रस्तुत करते िैं। वे इसे ेअन्यर्नस्कता अथवा अधधक ज्ञान की अभभलार्षा के कारण पररधचत अथवा अपररधचत पदाथ शका सजन्दग्ध (अतनजश्चत) ज्ञान र्ानते िैं। र्ब कोई पररधचत पदाथ शसर्ीप से गुर्रता िै और िर् उसे ेउधर ध्यान न िोने, अथात्श ्अन्यर्नस्क िोनेके कारण निींदेखते तो इसे ेअनध्यवसाय के नार् से पुकारते िैं, क्योंकक िर्ें यि तो पता िै कक कुछ सर्ीप से गुर्र गया ककन्तु यि कौन-सा पदाथ शथा, सो िर् निीं ंर्ानते। ककन्तु र्ब पदाथ शअपररधचत िै और िर्ें उनका नार् निींर्ालूर् तो िर्ारे सम्र्ुख अपूण शज्ञान की अवस्था उपजस्थत िोती िै, र्ोकक साधारण संर्य की अवस्था से भभन्न िै।[350]

संर्य सिैर्ें अनुसंधान की प्रेरेणा भर्लती िै, क्योंकक यि िर्ारे अन्दर इस अभभलार्षा को उत्पन्न कर देता िै कक जर्सका पता निीं ंभर्ल सका िै उसे ेर्ाने। यि अनुर्ान के पूव शआता िै, यद्यपप प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा आप्त ज्ञान र्ें इसका कोई स्थान निीं। िर्ारा ज्ञान सुतनजश्चत िो र्ाने पर संर्य लुप्त िो र्ाता िै संर्ंय तथा भूल (रांतत) र्ें अन्तर िै। इन्र्ें एक साथ न भर्लाना चाहिए, क्योंकक ऐसा ज्ञान िोना कक िर् पदाथ शके स्वरूप से अनभभज्ञ िैं, यथाथ शज्ञान अथवा प्रत्यय िै। संर्य अपूण शज्ञान िै, र्बकक भूल भर्थ्या ज्ञान िै।

17. त्वािभास

न्यायदर्नश का तकश पवस्तार के साथ उन भसद्धांतों का प्रततपादन करता िै जर्नके द्वारा ज्ञान प्राप्त िोता िै। यि प्राकृततक पवज्ञान के दृजष्टकोण को स्वीकार करता िै, और इसके तनयर् उपदेर्रूप न िोकर सार्ान्य उजक्तयाँ जर्नका आधार उन साधनों का सूक्ष्र् तनरीक्षण िै जर्नके द्वारा र्ानव अपनी बौद्धधक आवश्यकताओंकी सन्तुजष्ट करता िै। साधारणतः ज्ञान यथाथ शिोता िै; भूल संयोगवर् िोती िै और तभी िोती िै र्बकक वे अवस्थाएं ंनिींिोतीं ंजर्नर्ें यथाथ शज्ञान उत्पन्न िोता िै। िेत्वाभास तब िोतेिैंर्बकक ज्ञानोत्पादक र्जक्तयों के र्ाग शर्ें िस्तक्षेपे िोता िै। न्याय िेत्वाभासों के पवर्षय का पवस्तृत पववेचेन करता िै और इसर्ें आश्चय शभी क्या िै, क्योंकक िर्ें स्रण रखना चाहिए कक पवचार र्ें भूल िोने की सम्भावना के कारण िी न्यायर्ास्त्र के तनर्ाणश की आवश्यकता िुई।

र्ब्द-र्ाल की ओर भी पयाप्शत ध्यान हदया गया िै, क्योंकक न्यायर्ास्त्र का उद्देश्य पवतण्डावाहदयों की कला अथात्श ्वाक्छल से िर्ारी रक्षा करना िै। र्ाजब्दक छल के तीन प्रकार बतलाए

---

349 देणखए सप्तपदाथी, पृषूठ 69। तुलना कीजएं भर्तभापर्षणी पवर्यानगरर् ्संस्कृत ग्रंथर्ाला, पृषूठ 26 : ककं संज्ञकोऽयभर्त्यत्रापपत चूतःपनसो वेतत पवकल्प स्फुरणदनध्यवसायोऽपप संर्य एव ।

350 प्रर्स्तपादकृत पदाथसंशग्रि, पृषूठ 182-89।

गए ि ं (1) वाछल-एक ऐसेबर्द का प्रयोग ककया र्ाता ि ै र्ो सजन्दग्धाथ शि और श्रोता उसका वक्ता के आर्य से भभन्न अथ शलगाता ि ै। र्ब कोई यि किता ि ै कक "अरुक लडका नवकंबल ि ै," अथात्श ् र्जसके पास नया कंबल ि ै (अथवा नौ कंवल ि ै), तो वाछली उिर देता ि ै कक "निीं, इसके पास नौ निींअपपतु एक िी किम्बल ि ै।" (2) सार्ान्यछल-एक व्यजक्त पवर्ेर्ष के पवर्षय र्ें ककए गए कथन को र्ब सारी र्ातत पर लागूकर हदया र्ाए, र्ैसे ेककसी के यि किनेपर कक "यि ब्राह्मण पवद्वान और आचारवान ि ै", विोजक्त-पटु पुरुर्ष आक्षेप करे कक निीं, सभी ब्राह्मण पवद्वान और आचारवान निींिोते। (3) अपचारछल-अथात्श ् र्ों ि ंआलंकाररक भार्षा र्ें ककए गए कथन को र्ाजब्दक अथ शर्ें भलया र्ाता ि ै। र्ैसे े कक कोई किे कक "फांसी के तख्ते ेधचल्ला उठते ि ैं", तो उस पर विोजक्तपटु-पुरुर्ष प्रततवाद करे कक फांसी के तख्ते ेर्ैसे ेतनर्ीव पदाथ शसेयि आर्ा निींकी र्ा सकती कक वि धचल्ला सके।

र्ातत एवंतनग्रिस्थान र्ैसे िेत्वाभास अधधकतर भार्षा-सम्बन्धी दोर्ष ि ैं, तकश-सम्बन्धी निीं। ताककशक िेत्वाभास पराथानुशर्ानात्र्क युजक्त के पवभभन्न अवयवों के सम्बन्ध र्ें िोते ि ैं। पक्षपद-सम्बन्धी दोर्ष अथात्श ् पक्षाभास, और दृष्टान्त सम्बन्धी दोर्ष अथात्श ् दृष्टान्ताभास उतने र्ित्त्व के निीं ि ं, जर्तने कक िेत्वाभास अथात् श र्ध्य पद (िेतु) सम्बन्धी दोर्ष ि ैं। गौतर्[351] इस प्रकार के दोर्षों के पांच भेद बतलाते ि ैं: (1) सव्यभभचार, अथात् श र्जसके द्वारा एक से अधधक प्रकार के पररणार् तनकल सकें। दुबोध इजन्द्रयातीत िोनेके कारण र्बद को चािे तो िर् तनत्य सझ लें चािे अतनत्य, क्योंकक तनत्य परर्ाणु और अतनत्य पदाथों के ज्ञान भी दुबोध अथात्श ् इजन्द्रयातीत ि ैं। िेतु र्ें साध्यपद व्याप्त निीं ि ै क्योंकक िेतु बराबर ककसी एक पवकल्प का सिचारी निीं ि ै, इसभलए परवती तकशर्ास्त्र र्ें इसे े अनैकाजन्तक किा गया ि ै। इसके तीन उपपवभाग र्ानेगये ि ैं, अथात् श (क) साधारण, र्िां ंकक िेतु अत्यन्त व्यापक ि ै, (ख) असाधारण, र्िां ंकक िेतु बिुत संकुधचत ि ै, और (ग) अनुसंिारी अथातुश अतनश्चयात्र्क, र्िां ंिेतु की यथाथतशा निींर्ांची र्ा सकती।[352] (2) पवरुद्ध अथादश यि तकश र्जससे े स्वयं प्रततज्ञा का िी खण्डन िो र्ाए।[353] (3) प्रकरणसर्, अथात्श ् र्ो इततक्षा के िी सर्ान िो, र्जससे ेकोई पररणार् निींतनकल सकता, क्योंकक यि उसी प्रश्न को उठाता ि ै र्जसका कक इसे ेउिर देना िोता ि ै। यि दो परस्पर पवरोधी पवर्ेर्षताओं र्ें से एक को रखता ि ै, र्बकक दोनों िी अप्रत्यक्ष ि ैं।[354] परवती न्याय इसे सत्प्रततपक्ष के अन्तगतश लाता ि ै। र्ब यि सव्यभभचार के साथ तादात्म्यरूप धारण कल्ला ि ै तो यि एक

351 1.2, 4. ओर देणखए वैर्ेपपकसूत्र 3, 15 प्रर्स्तपाद नेअभसद्ध, पवरुद्ध, सजन्दग्ध और अनापतत इस प्रकार के िेत्वाभास बताए ि ैं (प्रर्स्तफकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 239-40)। हदनान नेधीवत प्रकार के और भासवंज्ञ नेछः प्रकार के िेत्वाभासों का वणनश ककया ि ै। और देणखए तकशसंग्रि, 52 ।

352 तकशसंग्रि, 53। और देणखए पवश्वनाथकृत न्यायसूत्रकृतत 1 |2,46।

353 व्यापाततकश 26 वाल्या (योगभाष्य (३३) से हृष्टान्तरूप र्ें वे दो कथन दुतु करते ि ैं (1) इस संसार का व्यक्त िोना इसभलए सर्ाचर िो र्ाता ि ै क्योंकक यि तनत्य निीं ि ै और (२) यि पवद्यभान इसभलए रिता ि ै क्योंकक इसका गा़ निीं िो सकता। और देणखए तकशसंग्रि, 54।

354 न्यायभाष्य और न्यायवाततकश,1:2, 7 ।

ऐसा तकश ि◌◌ो र्ाता ि◌◌ै जर्ससे ◌ेदोनों पक्ष अपना तात्पय शतनकाल सकते ि◌◌ैं।[355] (4) साध्यसर् वि तकश ि◌◌ै र्ो साध्य से भभन्न निीं ि◌◌ै, अथात्श ◌्जर्सेभसद्ध करनेको स्वयं एक प्रर्ाण की आवश्यकता ि◌◌ै। यि अभसद्ध पवर्षय ि◌◌ै जर्सके पवभभन्न प्रकार भानेगए ि◌◌ैं, रै्से ◌े(क) स्वरूपाभसद्धध, रि्ां ◌ंि◌◌ेतु का स्वरूप बबल्कुल ि◌◌ी अज्ञात ि◌◌ै, रै्से ि◌◌ेर् किं कक र्ब्द तनत्य ि◌◌ै क्योंकक यि हदखाई देता ि◌◌ै। यिांर्ब्द का हदखाई दे सकना बबलकुल ि◌◌ी अज्ञात ि◌◌ै; (ख) आश्रयाभसद्धध रि्ांि◌◌ेतु का कोई आधार ि◌◌ी निीं, रै्सेकक इस उदािरण र्ें कक 'पररा्त्रा का अजस्तत्व निीं◌ैं, क्योंकक वि झरीरधारी निीं ◌ंि◌◌ै, यहद परर्ात्रा निीं◌ैं तो अर्रीरता का श ◌्र्ो अन्य प्रकार से ज्ञात ि◌◌ो।'[356] (5) कालातीत, कोई अधधष्ठान ि◌◌ी निीं◌ै (ग) अन्यथाभसद्धध, अथवा अथवा श ◌्ऐसा तकश जर्सका सर्य बीत चुका ि◌◌ो। यि तकश कक "र्ब्द स्थायी ि◌◌ै क्योंकक इसकी अभभव्यजक्त दो पदाथों के संयोग से ि◌◌ोती ि◌◌ै रै्से ◌ेकक रंग की, इस प्रकार के ि◌◌ेत्वाभास का उदािरण ि◌◌ै। घडेका रंग तब प्रकट ि◌◌ोता ि◌◌ै र्बकक दीपक के साथ घडे का संयोग ि◌◌ोता ि◌◌ै, यद्यपप इस संयोग से पिले ◌ेभी रंग पवद्यर्ान था और संयोग के पवच्छेद ि◌◌ो र्ानेपर भी बराबर रिेगा। ककन्तु उक्त उदािरण के आधार पर यि तकश करना कक ढोल के साथ डंडेका संयोग ि◌◌ोनेसे पिले ◌ेभी र्ब्द पवद्यर्ान था और संयोग के पवच्छेद ि◌◌ो र्ाने पर भी पवद्यर्ान रिेगा, ि◌◌ेत्वाभास ि◌◌ै। यि तकश कालातीत ि◌◌ै क्योंकक दीपक और घडे के संयोग के साथ ि◌◌ी रंग की अभभव्यजक्त ि◌◌ोती ि◌◌ै, र्बकक डंडेऔर ढोल का संयोग ि◌◌ोने के बाद र्ब्द की उत्पपि ि◌◌ोती ि◌◌ै। इस प्रकार के ि◌◌ेत्वाभास को 'बाधधत' भी किते ि◌◌ैं रि्ांकक ि◌◌ेतु एक पक्ष की स्थापना करता ि◌◌ै, पर उसर्ें पवपरीत की भसद्धध अन्य प्रर्ाण द्वारा ि◌◌ोती ि◌◌ै। परवती तकशर्ास्त्र र्ें ि◌◌ेत्वाभासों की सूची बिुत अधधक पवकभसत ि◌◌ै।

18. सत्य अथवा प्रर्ा

ज्ञान के भसद्धान्त का प्रारम्भ जर्स सर्य से ि◌◌ोता ि◌◌ै वि यि निीं◌ैं कक ि◌◌र्ें ज्ञान ि◌◌ै, बजल्क यि ि◌◌ै कक ि◌◌र् उसका दावा करते ि◌◌ैं। यि प्रर्ाणवादी का काय शि◌ै कक वि अनुसंधान करे कक उस दावे को किां ◌ंतक तनभाया र्ा सकता ि◌◌ै। प्रर्ा अथवा सत्य के भसद्धांतं र्ें नैव्यातयक जर्ज्ञासा करना आरम्भ करता ि◌◌ै कक किां ◌ंतक ि◌◌र्ारा दावा तकश की कसौटी पर न्यायोधचत ठिर सकता ि◌◌ै। यि यि र्ानने का प्रयत्न करता ि◌◌ै कक चार प्रर्ाणों के द्वारा र्ो ज्ञान ि◌◌र्ें प्राप्त ि◌◌ोता ि◌◌ै वि प्रार्ाणणक ि◌◌ै अथवा उसकी प्राकृततक आवश्यकता ि◌◌ै।

न्यायर्ास्त्र द्वारा प्रततपाहदत ज्ञान के भसद्धान्त का र्ाध्यभर्क र्त के संर्यवाद के साथ पवरोध ि◌◌ै। संर्यवादी का किना ि◌◌ै कक ि◌◌र्ें पदाथों के तत्त्व का ज्ञान निीं◌ंिो और ि◌◌र्ारा पवचार परस्पर इतना पवरोधी ि◌◌ै कक उसे ◌ेयथाथ शनिीं◌ंसझ सकते। इस र्त के पवरोध र्ें वात्स्यायन का किना यि ि◌◌ै कक यहद र्ाध्यभर्क को इतना तनश्चय ि◌◌ै कक ककसी भी पदाथ शकी सिा निीं◌ैं, तो उसे ◌ेअपने ि◌◌ी र्त के अनुसार कर्-से-कर् इतनी तनजश्चतता तो

[355] तकशसंग्रि, 55।

[356] वाचस्पतत एकपेर्ाभसद्धध को र्ोडता ि◌◌ै और उदयन तप्यत्वाभसद्धध को र्ोडता ि◌◌ै, रि्ांकक सािचय शतनरन्तर रिनेवाला निीं◌ैं।

स्वीकार ै ी, और इस प्रकार उसके र्त का अपनेसे ी खण्डन ो र्ाता ै। और यहद 'ककसी पदाथ शकी सि निीं'

इसे ेभसद्ध करने के भलए उसके पास कोई प्रर्ाण निीं और यि उसकी केवल अयुजक्तयुक्त कल्पना ै तो इसके पवपरीत र्त को स्वीकार ककया र्ा सकता ै और कफर र्ो प्रर्ाणों की र्ान्यता को स्वीकार करता ै, वि या तो ककसी प्रर्ाण के आधार पर ऐसा कर सकता ै या बबना ककसी आधार के ऐसा कर सकता ै। यहद पपछली बात ै

तो तकश करना तनरथकश ै। और यहद पिली बात ै तो वि प्रर्ाणों की र्ान्यता को स्वीकार कर ी लेता ै। र्ौभलक

संर्यवाद कियात्रक निीं ै। प्रत्येक व्यजक्त को पवचार प्रारंभ करते ी ज्ञान के भसद्धांतों को स्वीकार करना ी पडता ै और र्ो पवचार की किया को स्वीकार करता ै उसे ेयथाथ शके र्त् ्को भी स्वीकार करना ी ोता ै,

क्योंकक पवचार तथा यथाथसशिा एक-दूसूरे पर आधश्रत ैं। वात्स्यायन का किना ै कक यहद पवचार द्वारा पदार्थों का पवश्लेर्षण सम्भव ै तो यि किना अयुजक्तयुक्त ोगा कक पदार्थों की वास्तपवक कृतत का ज्ञान निीं ंो सकता। और यहद, दूसूरे पक्ष र्ें, पदार्थों की वास्तपवक सि का ज्ञान निींिोता तो पवचार द्वारा पदार्थों का पवश्लेर्षण सम्भव निीं। इस प्रकार यि किना कक पवचार द्वारा पदार्थों का पवश्लेर्षण ोता ै ककन्तु पदार्थों की वास्तपवक प्रकृतत का ज्ञान निींिोता, इन दोनों वक्तव्यों र्ें परस्पर पवरोध ै।'[357] उद्योतकर इसे ेइस प्रकार रखता ै कक "यहद पवचार द्वारा पदार्थों का पवश्लेर्षण ो सकता ै तो पदाथ शअसत् ्निीं सकते, ँ और यहद पदार्थों की सि निीं तो पवचार द्वारा पदार्थों का पवश्लेर्षण सम्भव निीं।"[358] न्यायर्ास्त्र का पवश्वास ै कक ज्ञान यथार्थसशिा का सूचक ै।'[359]

वात्स्यायन पवज्ञानवाद के इस र्त पर आक्षेप करता ै कक अनुभूत पदाथ शसाक्षात्कार के सृजनात्मक ैं। स्वप्न र्ें देखे गए पदाथ शयथाथ शनिीं िैं क्योंकक जाग्रतावस्था र्ें ि र्ें उनका अनुभव निींिोता। यहद इजन्द्रयग्राह्य अनुभूत र्स ्का अजस्तत्व न िोता तो स्वप्न की अवस्थाएं ंसम्भव ी न ो सकतीं। स्वप्नों की पवपवधता उनके कारणों की पवपवधता पर आधश्रत ै।'[360] यहद यथाथसशिा का अजस्तत्व न िोता तो सत्य तथा रांतत र्ें भेद न के बराबर ोता और इस तथ्य का कोई स्पष्टीकरण सम्भव न ोता कक प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें िर्ें

357 न्यायभाष्य, 4:2,27 ।

358 न्यायवाततकश, 4: 2,27 ।

359 तनजश्चत ज्ञान की असम्भवता, र्ाध्यभर्कों के अनुसार, अन्य युजक्तयों के साथ-साथ इस आधार पर ै कक प्रत्यक्ष ज्ञान ऐजन्द्रय पवर्षयों के न तो प्रारम्भ र्ें, न पीछे और न ी साथ-साथ कभी ो सकता ै। यहद यि पिले ोता ै तो यि पदाथ शके साथ इजन्द्रय के सजन्नकर्ष शका पररणार् निींि सकता, यहद यि पीछे िोता ै तो यि निींकिा र्ा सकता कक इंहद्रय के पवर्षय की स्थापना प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा ुई ै। और यहद प्रत्यक्षात पदाथ शके साथ-साथ ोता ै तो िर्ारे बोधों र्ें ककसी िर् की आवश्यकता निीं, क्योंकक उनसे सम्बद्ध पदार्थों र्ें कोई ऐसा िर् निीं। रंग और गन्ध का प्रत्यक्ष ज्ञान एक ी सर्य र्ें ो सकता ै, जर्से न्याय निींस्वीकार करता। र्ो कुछ प्रत्यक्ष के पवर्षय र्ें सत्य ै वि अन्य प्रर्ाणों तथा प्रर्ेयपवर्षयों के साथ उनके सम्बन्ध के पवर्षय र्ें भी लागू ूोता ै। इस प्रकार ज्ञान के ये साधन अप्रार्ाणणक भी ैं और असम्भव भी ैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के पवरुद्ध उक्त आपपि का तनराकरण इस तकश के आधार पर ककया र्ाता ै कक ज्ञान का साधन अपनेप्रर्ेय पदाथ शसे पूव शभी रि सकता ै र्ैसेकक ढोला र्द से ेपिलेरिता ै, पीछे भी आ सकता ै र्ैसे ेप्रकार् सूय शके पश्चात् ्आता ै और एकसाथ भी रि सकता ै र्ैसे कक धुएं ंका ज्ञान आग के साथ-साथ ोता (न्यायभाष्य, 2: 1. 8-19) ।

360 न्यायभाष्य, 4/2 33-34 और 37 ।

स्वेच्छाचार प्राप्त र्नीिं।[361] और न्याय उस र्त से भी सन्तुष्ट र्नीिं र्ो पदाथों को स्वयंभसद्ध, यद्यपप

श ्ज्ञान से पूव श
क्षणणक स्वभाव वाले, र्ानता ि।ै यहद पदाथ शिर्ारे ज्ञान के कारण िैं तो उनका अजस्तत्व काय शअथात्
िोना आवश्यक ि।ै ककन्तु पदाथों की क्षणणकता के र्त से, जर्स पदाथ शने ज्ञान उत्पन्न ककया उसका दूसूरे िी क्षण र्ें, बकक उसका प्रत्यक्ष िोता ि,ै अजस्तत्व र्नीिंरिता। ऐसे र्ेत को ककस प्रकार स्वीकार ककया र्ा सकता ि,ै क्योंकक प्रत्यक्ष ज्ञान तो केवल उस पदाथ शका िोता िै र्ोकक उसी क्षण र्ें पवद्यर्ान िो। ऐसा तकश उपजस्थत करना कक पदाथ शका ततरोधान प्रत्यक्ष ज्ञान का सर्कालीन ि,ै तनःसार ि,ै क्योंकक िर् वतर्शानकाल के पदाथ शका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते िैं न कक भूतकाल के पदाथ शका। इस प्रकार अनुर्ान तक भी असम्भव िो र्ाएगा।[362] कफर, कायश और कारण के आधान और आधेय के रूप र्ें परस्पर सम्बद्ध िोनेके कारण, दोनों का एक िी काल र्ें पवद्यर्ान रिना आवश्यक ि।ै र्ो पदाथ शवास्तपवक रूप से िै उसका र्ौभलक स्वरूप उस पदाथ शसे जर्सकी केवल कल्पना की र्ाती ि,ै इस बात र्ें भभन्न िै कक उसकी सिा अनुभव के िर सम्बन्ध से स्वतन्त्र ि।ै जर्स पदाथ शकी सिा ि,ै वि उस काल र्ें भी िै बकक िर्ें उसका अनुभव र्नीिं ्ििोता। अनुभव एकपक्षीय तनभरशता का सम्बन्ध ि।ै अनुभव की पवद्यर्ानता के भलए पदाथों का रिना आवश्यक ि;ै ककन्तुपदाथों की सिा के भलए ककसी अनुभव का िोना आवश्यक र्नीिं। इस प्रकार नैय्यातयक इस पररणार् पर पिुंचता िै कक िर्ारे पवचार, द्रष्टा की इच्छा एवं प्रयोर्न से स्वतन्त्र, तथ्यों के वस्तुपरक स्तर (र्ानदण्ड) के अनुसारी िोते िैं।'[363] पदाथों की सिा प्रर्ाणों पर तनभरश र्नीिं ्करती, यद्यपप बोध के पवर्षय के रूप र्ें उनका अजस्तत्व बबलकुल प्रर्ाणों की किया पर तनभरश करता ि।ै

प्रर्ाणों की प्रर्ाण संज्ञा इसभलए िै कक वे िर्ें प्रर्ा (सत्य) प्राप्त कराते िैं।'[364] उदयन अपने 'तात्पयपशररशुद्धि' नार्क ग्रन्थ र्ें किते िैंकक "पदाथों के वास्तपवक स्वरूप का ज्ञान 'प्रर्ा' ि,ै और इस प्रकार के ज्ञान के साधन को प्रर्ाण किते िैं।"[365] पदाथों का वास्तपवक स्वरूप अथात्श ्तत्त्व क्या ि?ै यि, र्ो पदाथ शिै उसकी पवद्यर्ानता और र्ो पदाथ शर्नीिं उसका अभाव के अततररक्त और कुछ र्नीिं ्ि।ै[366] इसका तात्पय शयि िै कक र्ब ककसी पदाथ शका, र्ो ि,ै एक पवद्यर्ान पदाथ शके रूप र्ें ज्ञान प्राप्त ककया र्ाता ि-ैअथात्श ्उसे ्उसके यथाथ शरूप र्ें र्ाना र्ाता िै (यथाभूतर्)्, और उससेपवरोधी रूप र्ें र्नीिं र्ाना र्ाता (अपवपरीतर्)् तो इस प्रकार र्ो ज्ञान प्राप्त ककया र्ाता िै वि उस पदाथ शका यथाथस्शवरूप ि।ै इसी प्रकार दूसूरी ओर र्ब एक असत् ्(अभावरूप) का अभावात्र्क अनुभव ककया र्ाता िै अथात्श ्र्ो पदाथ शर्नीिं ्िै और भावात्र्क पदाथ शके पवरोधीस्वरूप का ि,ै तो

---

361 न्यायभाष्य, 4/2

362 देणखए न्यायवाततकश, 1/1.37 3/2 14 उद्योतकर किता िै 'परावानुशर्ान र्ें, र्ब्द अतनत्य िै क्योंकक घडे की भातत यि एक उत्पन्न पदाथ शि।ै घडा एक दृष्टान्त िै जर्सके अन्दर अतनत्यता और उत्पन्न िोनेकी योग्यता अवश्य तनहित िोनी चाहिए। इनर्ें पिला पश्चाद्वती अभाव िै बकक पपछला पूववशती अभाव ि।ै यहद घडा केवल क्षणणक िै तो ये दोनों िी एकसाथ घडे र्ें कैसे रि सकते िैं।"

363 न्यायभाष्य; पवश्वनाथ न्यायसूत्रवृपि, 4/2 26 और आगे।

364 प्र अथात्श ्यथाथ,श र्ा अथात्श ्ज्ञान (4, 2, 29)

365 यथाथाशनुभवः प्रर्ा तत्साधनं च प्रर्ाणर्।्

366 सतश्य सर्ायोऽसतश्चासद्भावः । न्यायभाष्य, 1 :1, 1।

भारतीय दर्नश-2 115 विी उसका यथाथस्शवरूप ि ै।[367] अप्रर्ा, रर् अथवा भर्थ्याज्ञान पदाथ शका उस रूप र्ें ज्ञान ि ै

र्ैसाकक वि निीं ि।ै

र्ब ि र् सीप को चांदी सर्झ लेतें िैंतो यि पदाथ शका वैसी बोध ि ै र्ैसाकक वि निीं ि ै।'[368] यि केवल ज्ञान का अभाव निीं ि,ै बजल्क तनजश्चत रांतत ि ै।'[369]

पररप्रश्न, संर्य आहद का भी र्नुष्य के र्ानभसक इततिास र्ें एक स्थान ि ै, यद्यपप उनकी यथाथतशा अथवा अयथाथतशा का प्रश्न निीं उठता। व्यजक्त का पवचार ककए बबना ककसी पवर्षय-वस्तु के पवर्षय र्ें स्वतन्त्र रूप र्ें तनणयश देना या ककसी प्रकार का कथन करना ताककशक र्ूल्यांकन का उद्देश्य ि ै। प्रत्येक ज्ञान एक प्रकार का ऐसा तनणयश ि ै जजसर्ें वि पदाथ शजजसके पवर्षय र्ें तनणयश हदया र्ाए, पवर्ेष्य ि ै और उसके सम्बन्ध र्ें र्ो कुछ किा र्ाए वि पवर्ेर्षण ि ै। न्यायर्ास्त्र र्ें तनणयश का पवश्लेर्षण उद्देश्य और पवधेय के रूप र्ें उतना निीं ककया र्ाता जजतना कक पवर्ेष्य और पवर्ेर्षण के रूप र्ें िोता ि ै।[370] सर्स्त ज्ञान पदाथों के स्वरूप तथा गुणों के पवर्षय र्ें िोता ि ै। उद्देश्य ि र्ें यि बताता ि ै कक एक वस्तु का अजस्तत्व ि ै और पवद्येय उसके पवर्ेर्ष गुणों का वणनश करके उसके स्वरूप का तनश्चय कराता ि ै। र्िां ंतनणयश पदाथ शके स्वरूप से र्ेल खाता ि ै उसे ि र् यथाथ शज्ञान किते िैं।'[371] प्रत्येक पवर्षय का अपना वास्तपवक स्वरूप िोता ि ै और पवचार पवर्ेष्य तथा पवर्ेर्षण र्ें भेद करता ि ै और प्रर्ाणणत करता ि ै कक दोनों वास्तपवक र्गत् र्ें परस्पर संयुक्त पाए र्ाते िैं। यि किा र्ाता ि ै कक प्रर्ाण िर्ें वस्तुओं के वास्तपवक स्वरूप का ज्ञान कराते िैं।'[372]

घटरूपी पदाथ शतथा उसके ज्ञान का र्ो सम्बन्ध ि ै वि सर्वाय सम्बन्ध निीं ि ै, क्योंकक घटपवर्षयक ज्ञान आत्र्ा का एक गुण ि ै, घडे का गुण निीं ि।ै और न िी यि सम्बन्ध संयोग-सम्बन्ध ि ै, क्योंकक संयोग सम्बन्ध केवल द्रव्यों र्ें िी सम्भव ि ै, र्बकक ज्ञान द्रव्य निीं बजल्क गुण ि ै। तो भी पदाथ शके ज्ञान के र्ध्य एक सम्बन्ध िोना अवश्य चाहिए जजससे ेतनजश्चत और यथाथ शपररणार् तक पिुंचाया र्ा सके। इस प्रकार िर्ारे तनणयश का एकर्ात्र संभव तनयार्क कारण घट का स्वरूप िी िो सकता ि ै। इस प्रकार के सम्बन्ध को 'स्वरूप-

---

367 न्यायभाष्य और न्यायवाततकश, 1: 1, 1।

368 न्यायभाष्य, 1, 4 ।

369 न्यायभाष्य, 42, 1, 42, 35 ।

370 तुलना कीजए, "ि र् देखते िैं कक ि र एक प्रततज्ञा र्ें ि र् पदाथ शका स्वरूप क्या ि ै यिी तनणयश करते िैं। अतः सवाधशधक आधारभूत अथों र्ें ि र् तनधारशरत तया तनधारशक की बात कि सकतें िैं। 'तनधाररत की पररभार्षा करतेिुए किा र्ाता ि ै कक यि वि ि ै जजसको पवचार या बोध के द्वारा तनणीत करने ेके भलए वि स्वरूप-ज्ञान के भलए प्रस्तुत ककया र्ाता ि ै। और तनधारशक वि ि ै र्ो उसे े(प्रस्तुत को) तनभीत करता ि ै या उसके स्वरूप का ज्ञान कराता ि ै" (डब्ल्यू ई र्ानसन लौततक, 1। पृष्ठ 9)।

371 तद्धतत तत्प्रकरकोऽनुभयो यथाथःश तद्भावयतत तत्प्रकारकोऽनुभयोऽयथाथःश (तकशसंग्रि, 33)। 'प्रकार' पवधेय का नार् ि ै, र्बकक यथाथ शका गुण र्ो पवधेय से ेधोततत िोता ि ै, 'पवर्ेर्षण' किलाता ि ै। प्रकार बोथ का उल्लेखे करता ि ै और पवर्ेर्षण पदाथ शका। अन्नंभट्ट यि कहठनाई उपजस्थत करता ि ै कक क्या इस तनणयश र्ें कक 'घटत्य घडे के अन्दर िै', घटत्व को पवर्ेष्य और घट को पवर्ेर्षण सर्झा र्ा सकता ि ै। वि इस कहठनाई का तनराकरण यि किकर करता ि ै कक यि आवश्यक निीं ि ैकक पवधेय सदा गुण िी िो, बजल्क इसेर्ात्र पवर्षय के साथ सम्बद्ध िोना चाहिए। 'तद्धतत का अथ शिै तत्सम्बन्धयतत। और देणखए, न्यायवाततकश, 3 :2,42 ।

372 प्रर्ाणस्य सकलपदाथव्शयवस्थापकत्वर् ्(पवश्वनाथकृत न्यायसूत्रवृपि 1 / 1, 1

सम्बन्ध' किते िैं जर्सकी पररभार्षा भीर्ाचाय शके न्यायकोर् र्ें इस प्रकार की गई िै कक "ऐसी अवस्था र्ें र्बकक तनजश्चत ज्ञान अन्य ककसी सम्बन्ध, अथात्श ्सर्वाय अथवा संयोग के द्वारा प्राप्त न िो और इसकी सिा स्वीकार करने के भलए िर् बाध्य िों।"[373] यि प्रर्ेय पदाथ शतथा बोध के र्ध्य अपने िी ढंग का एक तनराला सम्बन्ध िै।'[374] ज्ञानरूप काय,श र्ो ज्ञान की किया अथवा प्रकिया से स्पष्टतः भभन्न िै, स्वयं र्ें न तो भौततक पदाथ शिै और न केवल एक र्ानभसक अवस्था िै। यि सारतत्त्व अथवा उस पदाथ शका स्वरूप िै र्ो र्ाना र्ाता िै।'[375] यहद बाह्य ज्ञान र्ें ज्ञान का पवर्षय स्वयं भौततक सिावान िै तो उस अवस्था र्ें रांतत िो िी निींसकती। उसके पवर्षय र्ें िर एक व्यजक्त का पववरण अवश्य सत्य िोना चाहिए। यि सर्झना कक र्ब िर् उिरी ध्रुव के पवर्षय र्ें सोचतेिैंतो वि वस्तुतः िर्ारी चेतना र्ें आ र्ाता िै, तथ्य के साथ र्ेल निींखाता। यहद यि केवल एक र्ानभसक अवस्था िै तो िर् ज्ञानसापेक्षतावाद (पवर्षयीपवज्ञानवाद) के भंवर र्ें आ फंसते िैं। ज्ञान का पवर्षय न तो भौततक सिावान िै और न र्नोवैज्ञातनक सिावान िै, बजल्क पदाथ शका स्वरूप िै। सर्स्त ज्ञान र्ें यि 'क्या' िी सारतत्त्व अथवा स्वरूप िै र्ो यथाथतशा का दावा रखता िै। स्वप्नों र्ें भी िर्ारे सार्ने 'क्या' आता िै, ककन्तु िर्ें यि पता चल र्ाता िै कक स्वप्नगत पदाथों की कोई यथाथसिशा निींिै। उसका अजस्तत्व-सम्बन्धी उपलक्षक्षत अनुर्ोदन उधचत निींिै। सर्स्त ज्ञान स्वरूपों का िी िै, जर्सर्ें सिा उपलक्षक्षत रूप से आरोपपत िोती िै। इस उपलक्षक्षत पवश्वास र्ें कभी-कभी रांतत भी िोती िै। स्वयंज्ञान की अपनी किया द्वारा वस्तुपवर्षय पदाथ शसे सम्बन्ध रखता िै या निींयि निींर्ाना र्ाता, क्योंकक ज्ञान का स्वतः प्रार्ाण्य निींिै।'[376] न्याय का र्त िै कक ज्ञान की यथाथतशा अपने-आप र्ें भसद्ध निींिै बजल्क वि अन्य साधनों द्वारा (परतः प्रर्ाण) प्रर्ाणणत की र्ाती िै। सांख्य का पवचार िै कक यथाथतशा और अयथाथतशा बोध के अन्दर तनहित िैं। ककन्तु र्ीर्ांसकों का पवचार िै कक यथाथतशा तो बोध के अपने िी कारण िै,'[377] पर अयथाथतशा बाह्य कारणों से िोती िै। इसभलए र्ब तक अन्यथा भसद्ध न िो, बोध को यथाथ शिी सर्झना चाहिए। बौद्ध पवचारकों का र्त िै कक अयथाथतशा तो सब बोधों के साथ सम्बद्ध िै, ककन्तु यथाथतशा को भसद्ध करने के भलए अन्य साधनों की आवश्यकता िोती िै। इन सब र्तों के पवरोध र्ें नैय्यातयक का किना िै कक यथाथतशा और अयथाथतशा की स्थापना बोध से स्वतन्त्र अन्य ककसी वस्तु से

---

373 सम्बन्धान्तरेण पवभर्षप्रतीततर्नर्नायोग्यत्वर्।् स्वयंपडे को सम्बन्ध बनानेर्ें र्ो स्पष्ट आपपि िै, अधांत सम्बन्ध तथा सम्बद्ध पदाथ शके र्ध्य र्ो भेद िै यि सुप्त िो र्ाता िै। उसका सर्ाधान इस प्रकार हदया गया कक घट-घट के रूप र्ें

सम्बन्ध निीं, बजल्क केवल ज्ञान के पवर्षय के रूप र्ें िै।

374 अवच्छेदकत्व स्वरूपसम्बन्ध की एक अवस्था िै। कुछेक अवस्थाओंर्ें यि व्यजक्त का, जर्सका अजस्तत्व निीं,

अतनवाय शरचनात्क गुण िोता िै घटाभाव की अवत्त्या र्ें घटत्व अवच्छेदक िै। र्िंसरल तथा भर्धश्रत दोनों प्रकार के गुण िोते िैं, विांसरलतर गुण अवच्छेदक िै। र्िंगुणदृष्टान्त के साथ सापारी िै उसे िर् अनततररक्तवृपिृत्य की अवस्था किते िैं। ज्ञान और पदाथ शके र्ध्य र्ो सम्बन्ध िै, वि पवर्षयता किलाला िै।

375 तुलना कीजर्ए, "िर्ारे पास उपलब्ध सार्ग्री केवल स्वरूप के सजम्र्श्रण, सारतत्व, ताककशकपराथ शजर्न्िें प्रत्यक्ष देखे ेगए, अचवा अन्य प्रकार से र्ानेगए पवद्यर्ान पदाथों का स्वरुप र्ानना िी िोता िै" (एसेर् इन किहटकल ररयभलज़्, पृष्ठ 5)।

376 तुलना कीजर्ए, ब्रेक "सर्स्त बोधात्क अनुभव ज्ञात सिावान का ज्ञान िै (यहद यि सतापान िै। उस पर अधधकार निीं िै। उसकी प्रार्ाणणक की र्ांय अन्य साधनों से िोनी चाहिए, र्ो क्षणणक अन्तदृजष्ट रा अततररक्त िो" (किहटकल ररभलज़्, पृष्ठ 32)।

377 उनके भलए वेदों का सत्य स्वता प्रकट िै और उसके पालन के भलए ककसी बाह्य स्वीकृतत की आवश्यकता निीं। ककन्तु नैय्यातयकों के अनुसार, वेदों का प्राभाष्य इसभलए िै कक उनका तनर्ातशा ईश्वर िै।

 ि◌ोती ि◌ै। यहद प्रत्येक बोध स्वयं स्पष्ट ि◌ोता तो संर्य की सम्भावना ि◌ी न ि◌ोती।[378] इसभलए

यथाथतशा का तनश्चय

तो सत्य घटनाओंको देखकर ि◌ी ककया र्ाता ि◌ै। कल्पना कीजर्ए कक ि◌र् एक पदाथ शको प्रत्यक्ष देखते ि◌ैं। ि◌र्ें तुरंत यि तनश्चय निींिि सकता कक जर्स पदाथ शको ि◌र् देख रिे ि◌ैं वि ठीक उसी पररर्ाण और आकृतत का ि◌ै र्ैसा कक ि◌र्ें हदखाई देता ि◌ै। ि◌र् देखते ि◌ैं कक सूय शघूर् रिा ि◌ै। ककन्तु वस्तुतः वि घूर्ता निीं ◌ंि◌ै। इसभलए पदाथ शके प्रत्यक्ष अथवा तात्काभलक ज्ञान के साथ उसकी यथाथतशा का पवश्वास स्वतः संलग्न निींि। ि◌र्ें ज्ञान की यथाथतशा केवल पुनर्नशन की र्ध्यस्थ प्रकिया द्वारा ि◌ी प्राप्त ि◌ो सकती ि◌ै।'[379] र्ो वात प्रत्यक्ष ज्ञान के पवषय र्ें सत्य ि◌ै विी उन सब ज्ञानों के पवषय र्ें भी सत्य ि◌ै र्ो ि◌र्ें अन्य साधनों से प्राप्त ि◌ोते ि◌ैं।

उक्त भसद्धान्त पर ककए गए कततपय आक्षेपों पर न्याय पवचार करता ि◌ै। एक प्रर्ाण र्ो ि◌र्ें ककसी पदाथ शका वोध कराता ि◌ै, स्वयं ककसी अन्य प्रर्ाण का प्रर्ेय कैसे ◌ेबन सकता ि◌ै? र्ैसेकेक एक तरारू ◌ूर्ब उससे ◌े कोई चीर् तोली र्ाती ि◌ै, तो वि साघन ि◌ै, ककन्तु र्ब स्वयंतरारू ◌ूका वर्न र्ानना ि◌ो तो वि पदाथ शबन र्ाएगी जर्सके वर्न के भलए अन्य तरारू की आवश्यकता ि◌ोगी। ठीक इसी तरि, ज्ञान का साधन र्ब ककसी प्रर्ेय पदाथ श की स्थापना करता ि◌ै तो वि साधन ि◌ै, परन्तु र्ब उसकी अपनी स्थापना की र्ाती ि◌ै तो वि प्रर्ेय बन र्ाता ि◌ै। वात्स्यायन किता ि◌ै कक "बुद्धध, अथवा ज्ञान वस्तुओं के पररज्ञान के काय शर्ें स्वयं साधन अथवा प्रर्ाण ि◌ै। ककन्तु र्ब उसका स्वयं का पररज्ञान अपेक्षक्षत ि◌ो तो विी प्रर्ेय पदाथ शिै।[380] यहद यि किा र्ाए कक ज्ञान के एक साधन को अपनी प्रार्ाणणकता भसद्ध करने के भलए ज्ञान के अन्य साधन की आवश्यकता न ि◌ोनी चाहिए, अथात्श ◌् यि स्वतः भसद्ध ि◌ै, तो इस प्रकार प्रर्ेय को भी स्वयंभसद्ध र्ाना र्ा सकता ि◌ै और तब प्रर्ाणों की कोई आवश्यकता ि◌ी निीं ◌ंरिती। यि आपपि की र्ाती ि◌ै कक यहद ज्ञान की यथाथतशा का ज्ञान ककसी अन्य ज्ञान द्वारा

---

378 भसद्धान्तर्ुक्तावभल, 138। परर बोध की यात्रा स्वयंप्रतीत ि◌ो तो ऐसे बोध के पवषय र्ें र्ो अभ्यास द्वारा उत्पन्न ि◌ुआ ि◌ै, कोई संर्य रिेगा कक बाद इस अवस्था र्ें बोध तथा उसको यथाथतशा का ज्ञान रर्◌ा ता संर्य कैसे ि◌ो सकता ि◌ै। दूसूरी ओर पहद बोध का र्ान निींिोता तो ऐसी वस्तु के ज्ञान के अभाव र्ें जर्सर्ें गुण ि◌ै. संर्य कैसे ि◌ो सकता ि◌ै। इसभलए बोध की यथाथतशा अनुर्ान का पवषय (अनुर्ेयर्)◌् ि◌ै ।"

379 तकशभाषां र्ें किा ि◌ै-बोध को द्वारा ि◌ोता ि◌ै। र्ल की खोर् करने ि◌े पि सफल ि◌ोता ि◌ै अथवा अल्थ ि◌ोता ि◌ै। अनुतन का पवषय (अनुर्ेयर्)◌् ि◌ै। ककन्तु उसको धाथतशा का ज्ञान अनुभर्ान र्ाप्रत्यो। इसभलए यि र्ो प्रयास काता उसको यथाका अनुर्ान ि◌ोता ि◌ै, क्योंकक र्ो यथाथ शनिींि यि प्रयास की सफलताका कारण निींसकता।

380 न्यायभाष्य, 2:1, 16। वात्स्यायन दीपक के प्रकार् का दृष्टान्त देता ि◌ै र्ो अन्य पदार्यो को प्रकाभर्त करने ◌ेके साथ-साथ अपने-आपको भी प्रकाभर्त करता ि◌ै। दीपक के प्रकार् की अवस्था र्ें यि पाया र्ाता ि◌ै कक र्िां वि स्वयंदृजष्ट का पवषय ि◌ै, विांऐसा साधन भी ि◌ै जर्सके द्वारा ि◌र् अन्य देखे ◌ेर्ाने योग्य पदाथों का ज्ञान प्राप्त करते ि◌ैं। इस प्रकार, पररजस्थतत के अनुसार, वि बोध का पवषय भी ि◌ै और साधन भी ि◌ै। (न्यायभाष्य, 2: 1, 19) इस पर नागार्ुनश आपपि करता ि◌ै कक दीपक अपनेको प्रकाभर्त निींकर सकता, क्योंकक उसके अन्दर अन्धकार निींि। वि अन्य पदाथों को प्रकाभर्त करता ि◌ै उस अन्धकार को दूरू करके र्ो उर्न्िे आच्छाहदत ककए ि◌ुए ि◌ै। (र्ाध्यभर्ककाररका, १)। वात्स्यायन के र्त को प्रर्ाणों के स्वतः प्रकार्-सम्बन्धी वेदान्त की जस्थतत के साथ न भर्लना चाहिए। एक ि◌ी प्रर्ाण पदाथ शको भी प्रकाभर्त करे तथा अपनी यचाचंता को भी भसद्ध करे, ऐसी बात निींि। उद्योतकर इसका स्पष्टीकरण यों करता ि◌ै कक प्रर्ेय पदाथों के सम्बन्ध र्ें दीपक का प्रकार् प्रर्ाण ि◌ै ककन्तु इसकी अपनी भसद्धध एक अन्य प्रत्यक्षज्ञान से ि◌ोती ि◌ै र्ोकक पक्षु इजन्द्रय की नस के साथ इसका सम्पकश ि◌ोनेसे ि◌ोता ि◌ै। इस प्रकार एक प्रर्ाण दूसूरे प्रर्ाण से भसद्ध ककया र्ाता ि◌ै। (न्यायवाततकश, 2:1, 19)। और देणखए न्यायवाततकशतात्पयटशीका. 21. 19

 प्राप्त ककया र्ाता ि ै, और कफर दूसूरे ज्ञान की यथाथतशा अन्य ज्ञान के द्वारा र्ानी र्ाती ि ै, तो एक प्रकार की ऐसी अव्यवस्था ि ो र्ाएगी जर्सका कि ीं ि ं अन्त निीं ि ोगा।[381] यहद ि र् कि ीं ि ं बीच र् ें ठिर र्ाति ैं तो प्रर्ाण की भसद्धध निीं ि ोती। नैव्यातयक की दृजष्ट र् ें यि कोई गंभीर आपपि निीं, बजल्क केवल एक काल्पतनक आपपि ि ै। सब प्रकार के काय-शसम्पादन के भलए ि र् प्रर्ाणों की यथाथतशा को स्वयं भसद्ध र्ान लेति ैं और एक प्रर्ाण से दूसूरे प्रर्ाण की यथाथतशा को तनरंतर भसद्ध करते ि ं रिने की कोई आवश्यकता निीं ि ोती।'[382] स्पष्ट ज्ञान की अवस्था र् ें, र्ैसे ि ं कक र्ब ि र् ककसी फल को अपनेि ाथ र् ें देखते ि ैं, ि र् ें बोध की यथाथतशा के पवर्षय र् ें कोई संर्य निीं ि ं ि ोता। ि र् ें पदाथ शका तनजश्चत ज्ञान एक ि ी बोध से ि ो र्ाता ि ै। ककन्तु संर्यात्र्क ज्ञानों र् ें ि र् ें उस ज्ञान की यथाथतशा तनजश्चत करने के भलए अन्य ज्ञान की सिायता की आवश्यकता ि ोती ि ै और र्ब ि र् ें पूणरूशप र् ें यथाथ श ज्ञान की प्राजप्त ि ो र्ाती ि ै तो ि र् आगे ि ं खोर् करना वन्द कर देते ि ैं। कुछ प्रर्ाण ऐसेि ैं जर्न्ि ें पदाथों की भसद्धध और व्याविाररक कायवशिी के भलए अपने ज्ञान की आवश्यकता ि ोती ि ै और कुछ प्रर्ाण ऐसे ि ैं जर्न्ि ें पदाथों की भसद्धध के भलए अपनेज्ञान की आवश्यकता निीं ि ोती। स्वयं धुएंका ज्ञान, इससे पूव शकक वि आग का ज्ञान कराए, आवश्यक ि ै। इजन्द्रयांि र् ें पदाथों का ज्ञान देती ि ैं, ककन्तु इजन्द्रयों के अपनेज्ञान का प्रश्न निींउठता। ि र् इजन्द्रयों का ज्ञान अन्य साधनों द्वारा प्राप्त कर सकते ि ैं, ककन्तु वि ज्ञान अनावश्यक ि ै।

नैव्यातयक के र्त र् ें, ि र् सीधे यि निींर्ान सकते कक ि र्ारे बोध यथाथ शसे र्ेल खाते ि ैं या निीं। ि र् ें इसके भलए अनुर्ान का आश्रय लेना ि ोता ि ै कक यि कि ांतक ि र् ें सफल प्रयत्न की ओर अग्रसर करने र् ें सक्षर् ि ै। सब प्रकार का ज्ञान ि र् ें कर् शकरने के भलए प्रोत्साहित करता ि ै। यि ि र् ें बतलाता ि ै कक अर्ुक पदाथ शवांछनीय ि ै, अथवा अवांछनीय ि ै, अथवा दोनों र् ें से ककसी कोहट का भी निीं ि ै। र्ीवात्र्ा केवल तनश्चेष्ट दर्कश के रूप र् ें वस्तुओं की र्ात्र कल्पना ि ी निींकरती ि ै, वि ग्राह्य पदाथों को ग्रिण करने तथा अग्राह्य पदाथों को त्यागनेके भलए सदा ि ी उत्सुक रिती ि ै। पवचार र्ीवनयात्रा र् ें र्ात्र एक प्रक्षक्षप्त कथा-प्रसंग ि ै। "ज्ञान ऐसा बोध ि ै र्ो अभभलार्षा को र्न्र् देता ि ै और कर् शकी ओर अग्रसर करता ि ै।"[383] नैव्यातयक उपयोधगतावाहदयों के इस पवचार के साथ सिर्तत प्रकट करता ि ै कक ज्ञान का आधार ि ै र्ानव-प्रकृतत की र्ित्त्वपूण शआवश्यकताएं, और वि एक ऐजच्छक प्रततकिया को र्न्र् देता ि ै। ि र्ारे पवचारों का पदाथों से र्ेल ि ै या निीं, इसका तनश्चय ि र् ें सफल कर् शके प्रतत अग्रसर करने की उनकी योग्यता से ि ी ि ो सकता ि ै, जर्सेप्रवृपिसार्थ्य कि ा गया ि ै।[384] इसभलए यि स्पष्ट ि ै कक पदाथों के साथ पवचारों का सम्बन्ध अनुकूलता का ि ै, सादृश्य का निीं ि ै। नैव्यातयक के र्त से ि र्ारे

---

381 यि आपपि नागार्ुनश द्वारा उसके 'पवग्रिव्यावतनशीकाररका' नार्क ग्रन्थ र् ें उठाई गई आपपि के सदृर् ि ै। देणखए 'हिस्री आफ इजण्डयन लॉजर्क', पृष्ठ 257 और देणखए न्यायभाष्य, 2: 1, 17-18 श्री ि र्ष शनेबौद्ध ताककशक धर्कशीतत शके कथन का इस प्रकार उद्धरण हदया ि ै र्ो यि स्वीकार निींकरता कक बोध का ज्ञान स्वतः और सीधा ि ोता ि ै, उसके र्त र् ें वस्तु का ज्ञान भसद्ध निीं ि ो सकता।" देणखए खण्डन, । : 3।

382 न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 2 1,19 ।

383 न्यायभाष्य 1:1,2 ।

384 न्यायसूत्र 1:1, 17 और दणखए न्यावभाव्य तथा न्यायवाततकश । ।, ।। और कुसुर्ांर्भल, 4 18 ।

पवचारों की यथाथतशा तथ्यों के साथ उिके सम्बन्ध पर तनभरश करती िै, और उनके र्त र्ें वि सम्बन्ध अनुकूलता का िै जर्सका अनुर्ान िर् पवचारों की कायपशद्धतत से करते िैं।[385]

वस्तुतः उसी पवचार को सत्य कि र्ाता िै र्ो कक िर्ें पवचार द्वारा अभभलपर्षत ज्ञान को प्राप्त करा सके और िर्ें पररजस्थततयों के अनुसार सफलतापूवकश काय शकरने के योग्य बना सके। तत्त्वधचन्तार्णण के प्रार्ाण्यवाद के अनुसार, बोधों की प्रार्ाणणकता अनुर्ान द्वारा स्थापपत की र्ाती िै। र्ब िर् एक घोडेको देखते िैं तो िर्ें सबसे पिले ेआकृतत का बोध िोता िै, 'यि एक घोडा िै', जर्सके बाद एक अस्पष्ट-सा पवचार र्न र्ें आता िै कक नैं एक घोडे को देखा िै।' और र्ब कोई घोडेके सर्ीप र्ाकर और वस्तुतः उसे ेछूकर देखता िै, तभी उसे े अनुर्ान िोता िै कक उसका बोध यथाथ शथा और यहद आर्ा के अनुरूप प्रत्यक्ष ज्ञान उदय निीं ंिोता तो वि अनुर्ान करता िै कक उसके बोध र्ें राजन्त िुई। िर् र्ल को देखते िैं और उसके पास र्ाते िैं। यहद वि िर्ारी आवश्यकताओंकी पूतत शकरता िै तो िर् अपनेर्ल-सम्बन्धी ज्ञान को यथाथ शकिने लगते िैं, क्योंकक र्ो यथाथ श निीं वि सफल कियार्ीलता के भलए प्रोत्साहित निींकर सकता।'[386] र्ब िर्ारी आकांक्षाएं पूरी िो र्ाती िैं तो र् अपने ज्ञान की यथाथतशा को र्ान र्ाते िैं। इस प्रकार िर् पररर्ाणों से कारणों का अनुर्ान करते िैं। सत्य का यि भसद्धान्त अथात् श ्पवध्यात्क दृष्टान्तों से यथाथ शज्ञान की सफल उपलजब्ध तथा अभावात्क दृष्टान्तों से अयथाथ शज्ञान की असफल उपलजब्ध, आगर्न किलाता िै।

यि व्यवियतशा सत्य की केवल कसौटी र्ात्र िै, पवर्षय-वस्तु निीं। उपयोधगतावाद के कुछ पक्षपोर्षकों की यि भी सम्र्तत िै कक कियात्क पररणार् िी सम्पूण शसत्य िै, और बौद्ध ताककशक इसका सर्थनश करते िैं। बौद्ध ताककशकों का र्त िै कक "यथाथ शज्ञान वि िै जर्सका पवरोध न िो सके। ऐसे ेज्ञान को िर् अपवरोधी कि सकते िैं र्ो िर्ें दृष्ट पदाथ शकी प्राजप्त करा सके।"[387] पदाथ शकी प्राजप्त से तात्पय शउसके सम्बन्ध र्ें सफलतापूवकश काय शकरना तथा उसके स्वरूप को सर्झना िै।'[388] नैव्यातयक के र्त र्ें सत्य व्यवियतशार्ात्र निीं, यद्यपप

---

385 तुलना कॉजर्ए, र्ेटैगटशकृत नेचर ऑफ एजक्स्टेन' र्ें प्रततपाहदत सादृश्य और अनुकूलता के भेद के साथ तथा सत्य की नकल और धचत्रसम्बन्धी प्रकल्पओं के साथ। इस पर ध्यान देना रुधचकर िोगा कक अर्ीक्षक प्रथाथवशादी, जर्नका ज्ञानपवर्षयक पवश्लेर्षण न्याय के पवश्लेर्षण को सर्ान िै, इस कहठनाई पर पवर्य पाने के भलए उसी उपाय का आश्रय लेते िैं। इस प्रश्न का ककया भौततक पदों के ररत्य र्ें पवश्वास रखने का कोई अधधकार िै, उिे इस प्रकार हदया िै अपनेचारों ओर जस्थत भौततक र्ग के अजस्तत्य र्ें िर्ारा सिर् (और लगभग अतनवाय शपवष्टत्युक्त िै। प्रीतत का यि साम्राज्य (अथात्श ्र्ो कुछ प्रतीत िोता िै, और प्रस्तुत िै भलनेसत्र का स्वप्ननाव िै, ऐसा सोचा र्ा सकता िै। ककन्तुिर् अपनेअन्तकरण र्ें सिर् प्रद्वारा पि अनुभव करते िैं। कक ये प्रतीततयांयथाथ शपदादों के पवभष्ट लक्षण िैं। िर्ारी प्रततततनजऐसी िै कक र्ानो उसका अपना अभलत्य िै, भले िी िर् सुप्तावस्था र्ें या उर्न्ें िुए। इसी पवश्वास पर काय शकरती िै ('एसेर्् इन किहटकल ररवभलर् पृषूठ 6)।

386 पूर्वोत्पन्न र्लज्ञानं प्रर्ा, सफलप्रवृपृर्नकत्वात्, ् यन्नैच तन्नैव वथा अप्रर्ा (अन्नंभटकूतदीपपका, 63)

387 धर्ोर: न्यायबबन्दुटीका,1: "अपवसंवादकं ज्ञानंसम्यगुज्ञानर् ्प्रदभर्तशर् ्अथ शप्रार्षनु संपादक उच्यते।

388 प्रवतकशत्वर् ्एव प्रापकत्वर्.्.. प्रवतकशत्वर्पप प्रवृपृपवर्षयप्रवतकशत्वर्ेध । धर्ोर के पवचार से प्राप्त पदाथ शऔर ज्ञात पदाथ शएक निीं, यद्यपप वे उसी श्रृंखला के िैं। यद्यपप बौद्ध तथ्यों और पवचारों के सम्बन्ध के न्याय के र्त से सिर्त निीं िो सकत, तो भी वे अथभशसद्धध अथात् ध्येय पदाथ शकी प्राजप्त, अथवा कियात्क क्षर्ता (अथकशियासार्थ्य)श को सत्य

 सत्य इससे ज्ञाना ज्ञाता िै। प्रर्ाणणत िोनेसे पूव शसत्य पवद्यर्ान रिता िै। तनणयश सत्य िै, इसभलए निींकक वि

प्रर्ाणणत िो ज्ञाता िै, बजल्क वि सत्य िै इसीभलए प्रर्ाणणत िो ज्ञाता िै। उक्त भसद्धान्त र्ें की गई अनेक आपपियों की सर्ीक्षा नैय्यातयक ने की िै। िर्ारी आकांक्षाएंपूण शिो गईं, इसका िर्ें तनश्चय निीं िो सकता। रर्ात्र्क सन्तोर्ष के भी अनेक उदािरण सुने गए िैं। स्वप्नों र्ें िर्ें भासर्ान सन्तोर्ष िोता िै, ककन्तु इसका तात्पय शयि निीं िै कक स्वप्न की अवस्थाएं ंयथाथ शिैं। इसका उिर न्यायर्ास्त्र यों देता िै कक केवल सफल कियार्ीलता की अनुभूतत िी पयाप्शत निीं, बजल्क एक सार्ान्य स्वस्थ र्जस्तष्क की अनुभूतत चाहिए र्ो सफल कियार्ीलता के पपछले ंअनुभवों का सर्थनश करे। केवल र्ानभसक अवस्था की पवर्दता या सन्तोर्ष की अनुभूतत निीं, बजल्क सम्पूण शअनुभव के साथ अनुकूलता अभीष्ट िै। स्वप्नगत पदाथ शअनुभव के देर्-काल रूपी सांचें र्ें ठीक निीं ंबैठै सकते,े और इसभलए वे काल्पतनक िैं।

र्ब तक फल की प्राजप्त निीं िोती तब तक िर् अपनेज्ञान को तनजश्चत रूप से यथाथ शनिीं ंकि सकते। इस प्रकार िर्ें वि आत्र्पवश्वास निींभर्ल सकता जर्सके बबना कोई प्रयत्न संभव निीं। पदाथों का यथाथ शज्ञान सफल कियार्ीलता की पूव शर्त शिै और सफल ककयार्ीलता से पूव शिर्ें पदाथों का यथाथ शज्ञान निीं िो सकता।'[389] उद्योतकर बलपूवकश किता िै कक कियार्ीलता और ज्ञान की सापेक्षक्षक पूववशततताशा के प्रश्न र्ें कोई सार निीिै, क्योंकक सृजृष्ट अनाहद िै। इसके अततररक्त, कर् शके भलए ज्ञान की यथाथतशा निीं, बजल्क पदाथ शका ज्ञान िी आवश्यक िै। र्िां ंतक पररधचत पदाथों का सम्बन्ध िै, कोई कहठनाई उत्पन्न निीं िोती। ऐसी जस्थततयों र्ें र्िां ंिर्ारे सर्क्ष अद्भुत रूपरेखा उपजस्थत िोती िै और केवल पूववशती घटनाओंको लागू करना अपयाप्शत िै, विांभी अपयाप्शत ज्ञान के आधार पर िर् परीक्षण करते िैं। कभी-कभी िर् प्रभसद्ध प्राक्कल्पनाओं का यथाथ शरूप र्ांचनेके भलए कर् शर्ें प्रवृि िोते िैं। र्ीवन सार्ान्यतः धारणाओं के आधार पर चलता िै और प्रत्येक प्रस्तुत कियाप्रणाली को उसके आधार पर कर् शकरने से पूव शतकश की सूक्ष्र् तुला पर ततोलना सवदशा सम्भव निीं िो सकता। व्याविाररक आवश्यकताओं का दबाव िर्ें पवचारों के अनुसार काय शकरने को बाध्य कर देता िै, भले िी उनका साक्ष्य अपूण शिो। धाभर्कश पवश्वास के पवर्षय िर्ारे कर् शका तनणयश करते िैं, चािे वे तकश के क्षेत्र से परे िी क्यों न िों। नैय्यातयक स्वीकार करता िै कक ऐसी अवस्थाएं ंिैं र्िां ंपूण शर्ांच सम्भव निीं। अजग्निोत्र के अनुष्ठान से िर्ें स्वग-शप्राजप्त िोती िै या निीं, इसका तनश्चय िर्ारी र्ृत्यु से पूव शनिीं िो सकता। ऐसा व्यजक्त र्ो पूण शज्ञान प्राप्त ककए बबना कर् शिी निींकरेगा, या तो अतत बुद्धर्जस्तष्क वाला िोगा, या अत्यन्त अल्पायु िोगा।

वाचस्पतत और उदयन र्ैसे ेपरवती नैय्यातयक प्रार्ाणणक ज्ञान के कुछ रूपों का स्वतः प्रर्ाण िोना स्वीकार करते िैं। सब की र्ांच तथा असंगतत से रहित अनुर्ान और ताजत्त्वक सर्ानता पर आधश्रत उपर्ान वाचस्पतत के अनुसार स्वतः प्रार्ाण्य रखते िैं, क्योंकक बुद्धधसंगत आवश्यकता बोध तथा पदाथों को परस्पर

की कर्ौटी स्वीकार करते िैं और प्रर्ेव पदावों के साथ पवचारों के सादृश्य र्ैसे ेसंहदग्ध वाक्यों का प्रयोग करते िैं. र्ैसे े ~~अथसशारूप्यर् ्अस्य प्रर्ाणर् ्(न्यायबबन्दु, ु~~ । 1)।

---

389 इस कहठनाई का पवचार करते िुए तनभांसर्) , और उसर्ें र्ा ध्यवती जस्थततयों र्ें थे प्रवतकशर्) , भेद करता िै। पिली 1:1, 1 । पर उद्योतकर और वाचस्पतत।

 बांधनेवाली ि। इजन्द्रयर्न्य प्रत्यक्ष ज्ञान और र्ाजब्दक प्रर्ाण के पवर्षय र्ें रि् सर्ान रूप से तनजश्चत निींि

सकते।[390] उदयन वाचस्पतत के र्त का स्वीकार करता ि और युजक्त देता ि कक अनुर्ान और उपर्ान के अततररक्त आत्र्चेतना (अनुव्यवसाय) और केवल-र्ात्र सत् ्का आभ्यन्तर तथा बािा प्रत्यक्ष (ज्ञान) स्वतः प्रार्ाणणकता रखते िैं।'[391]

19. राजन्त

प्रर्ा अथवा प्रार्ाणणक ज्ञान संज्ञव तथा रान्त ज्ञान (पवर्षय) से भभन्न ि रिां कक पवचार सफल किया तक निीं ्पिुंचाते। श्राततयां और गततपवरर् उद्देश्य की पूतत शकराने र्ें असफल िोते िैं, अथवा यो किना उधचत िोगा कक उनके द्वारा उकसाई गई आर्ाएंपूण शर्निींिोती। िर्ें भूल अथवा रर् का ज्ञान तब िोता ि र्बकक िर्ारे उद्हदष्ट भूतकाल की आकांक्षाएंवतर्शानकाल से पूण शर्निीं िोतीं। िर् एक श्वेत पदाथ शको देखते िैं और उसे ्चांदी सर्झ लेते िैं। र्ब उसे ्उठाते िैं तो ज्ञात िोता ि कक यि तो केवल सीप का एक टुकडा ि। सीप-सम्बन्धी नये अनुभव ने चांदी की आकांक्षा को काट हदया। न्यायर्ास्त्र के अनुसार, सब प्रकार की रांतत व्यजक्तपरक ि। वात्स्यायन कित ि "यथाथ शज्ञान के द्वारा जर्सका तनराकरण ककया र्ाता ि, वि रान्त ज्ञान ि, पदाथ शर्निींि।"[392] उद्योतकर र्ृगतृजृष्णका के दृष्टान्त को लेकर कित िैं कक "पदाथ शर्ैसा असल र्ें ि सदा वैसा की रिता ि। सूय शकी चंचल ककरणों के कारण र्ब र्ल का बोध उत्पन्न िोता ि तो स्वयं पदाथ शर्ें कोई राजन्त उत्पन्न निीं ्िोती, ककरणें भी ककरणें िी रिती िैं और उनकी चंचलता भी चंचलता िी ि। राजन्त तो बोध र्ें ि, क्योंकक यि बोध

िी ि र्ो ककरणों की चंचलता के रूप र्ें प्रकट न िोकर र्ल के रूप र्ें प्रकट िोता ि। तात्पय शयि िुआ कक ककसी वस्तु का ज्ञान यथाथ शरूप र्ें प्रकट न िोकर उस रूप र्ें प्रकट िोनेका नार् राजन्त ि र्ैसी कक वि वस्तु निींि।'[393] आकार्पुष्प की भांतत र्ल का सवथशा अभाव तो निीं ि, ककन्तु यि यिांऔर इस काल र्ें उपजस्थत निींि, यद्यपप उसकी उपजस्थतत की कल्पना की गई ि। सूय शकी ककरणें इस रांतत का कारण िैं, यद्यपप वे र्ल के रर्ात्र्क ज्ञान का पवर्षय निीं िैं। न्यायर्ास्त्र के यथाथवशाद र्ें यिांथोडा-सा पररवतनश ककया गया ि, क्योंकक वि रांततयुक्त ज्ञान की इस र्त से उधचत व्याख्या निींकर सकता कक अनुभव करने वाले कता शसे स्वतन्त्र अनुभूत पदाथों की उनके पवर्ेर्ष गुणों सहित अपनी सिा ि। सर्स्त रान्त ज्ञान का कुछ-न-कुछ आधार वस्तुजस्थतत र्ें िै। वात्स्यायन कित िैं कक "कोई भी रान्त ज्ञान बबलकुल तनराधार निींि।'[394] पदाथपशवर्ेर्ष को उसके वास्तपवक रूप से भभन्न रूप र्ें र्ानने का नार् राजन्त ि। इस 'अन्यथाख्यातत' र्त का केवल न्याय ने िी निीं, अपपतु र्ैन ताककशकों तथा कुर्ाररल ने भी सर्थनश ककया ि।

---

390 न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 1:1,1।

391 न्याय के सत्यपवर्षयक भसद्धांत की गिरी सर्ीक्षा के ज लए देणखए खण्डन 1:13-14 ।

392 न्यायभाष्य, 4:2,35 ।

393 न्यायवाततकश, 1/1, 4

394 न्यायभाष्य 4/2 ,35 ।

राजन्तपवर्षयक अन्य र्तों को नैय्यातयक स्वीकार निींकरते, े'[395] र्ो उनके अनुसार, ताककशक न िोकर अधधकतर अध्यात्र्पवद्या-सम्बन्धी िैं। सौत्राजन्तकों के अनुसार, बाह्य पदाथ शपर एक अरुद्ध ज्ञानाकार का आरोप करना 'रांतत' िै। योगाचार के र्ानने वाले अर्ानभसक सिाओंको अंगीकार न करते िुए भी व्याविाररक रूप र्ें पदाथों की सिा को र्ान लेतेिैं। अनाहद अपवद्या की प्रवृपियांइसका कारण िैं। इस प्रकार के पदाथों पर ज्ञानाकार का आरोप िी रांतत िै।[396] िर्ें रांतत का ज्ञान िो र्ाता िै, क्योंकक एक अन्य ज्ञान से वि दूरू िो र्ाती िै।'[397] और स्वयं कियात्र्क क्षर्ता (अथकशियाकाररत्व) सेरहित िोती िै। 'यि चांदी िै' इस ज्ञान र्ें जर्स अंर् का श ्'यि' िै, क्योंकक तनष्कर्ष शर्ें 'चांदीपवर्षयक ज्ञान' इसके तनराकरण िोता िै वि चांदी निीं, बजल्क 'इदन्ता' अथात्श ्'यि चांदी निीं ंिै' इस कथन र्ें िर् 'यि' को रद्द करते े पवर्षय र्ें बताया गया िै। तनराकरणात्र्क तनष्कर्ष श अथात् श ्'चांदी' को तनराकरण करने का तात्पय शिोगा कक िर् ज्ञान के एक रूप र्ें, 'चांदी' को निीं, क्योंकक पिछले े अथात् इसके अजस्तत्व का िी तनराकरण कर रिे िैं। यि 'ज्ञानाकार-ख्यातत' का भसद्धान्त िै, जर्सके अनुसार एक बाह्य पदाथ शके पवर्षय र्ें एक ज्ञानाकार का गलती से उल्लेखे ककया र्ाता िै। र्ब रर् दूरू िो गया तो चांदी के बाह्य उल्लेख का भी तनराकरण िो गया। यि र्त योगाचारों की इस सार्ान्य आध्याजत्र्क र्ान्यता का सिर् परररणार् ैकिक र्ीवात्र्ा, प्रर्ेय पदाथ शऔर ज्ञान र्ें वस्तुतः कोई भेद निींिै। इस पर आपपि उपजस्थत करते िुए नैय्यातयक किता िै कक योगाचार के र्त से िर्ारे ज्ञान का स्वरूप 'यि चांदी िै' ऐसा न िोकर 'र् ैंचांदी िंूं' ऐसा िोना चाहिए, ककन्तु बात ऐसी निींिै। योगाचार सम्प्रदाय वाले सत्य और रांतत के भेद की व्याख्या निींकर सकते। पवर्षयीपवज्ञानवाद सारी जस्थतत को दूपूर्षत कर देता िै। भर्ठास र्िद के अन्दर िै और कडवापन र्ाूर्फल र्ें िै, और ये गुण केवल काल्पतनक निींिै। न्याय का सूत्र (अथात्श ्ककसी वस्तु को र्ैसी वि निींिै उस रूप र्ें सर्झना िी रांतत िै) योगाचार के र्त पर भी लागू िो सकता िै।'[398] र्ाध्यभर्क लोग 'असत्ख्यातत' के भसद्धान्त को र्ानते िैं, अथात्श ्यि कक 'असत्' ् के अततररक्त और कुछ निींिै, तथा आभ्यन्तर एवं बाह्य पदाथों का सर्स्त ज्ञान रर्ात्र्क िै। अभावात्र्क चांदी सिात्र्क के रूप र्ें भासती िै, जर्सका कारण िर्ारी ज्ञान-सम्बन्धी किया-पवधध िै। नैय्यातयक इस पर आपपि करता िुआ किता िै कक सीप र्ें चांदी-पवर्षयक रर्ात्र्क ज्ञान अभाव स उत्पन्न निींिोता, बजल्क सीप के टुकडे र्ें पवद्यर्ान ककसी चीज़ से उपर्ता िै। यहद रर्ात्र्क ज्ञान के उर्के की बाह्य सिा न र्ानी र्ाए और उसका कोई पदाथ-शपवर्षयक आधार न िो तो िर् एक प्रकार के रर् को दूसूरे प्रकार के रर् से ककस प्रकार भभन्न कर सकते िैं। अभावात्र्ात्र्क वस्तु ककसी काय शको उत्पन्न निींकर सकती । रर्ात्र्क ज्ञानों का उद्भव स्रृततयों के आधार पर भी निीं र्ाना र्ा सकता, क्योंकक उनके आधार भी तो ठोस पदाथ शिी स्वीकार करनेपडगें।[399] अद्वैतवाद अतनवचशनीय ख्यातत को स्वीकार करता िै। बोध से र्ो कुछ व्यक्त िोता िै विी बोध का पवर्षय िै। चांदी की रांतत र्ें चांदी िर्ारी चेतना र्ें प्रकट िोती िै और उसका बोध िोता

395 न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 1/1, 2

396 अनाद्यपवद्यावासनारोपपतर्लीक बाह्यर्, ् तत्र ज्ञानाकारस्यारोपः (भार्ती, 1/1, 1)

397 भार्ती। बलवद्बाधकप्रत्ययवर्ात् ्।

398 सांख्यप्रवचन सूत्र पर अतनरुद्ध, 42, न्यायर्ंर्री, पृष्ठ 178।

399 यहद रांततयां की उत्पपि बाह्य पदाथों से निींिोती तो सुबुद्धध तथा रांततयों र्ें भसवाय इसके कोई अन्तर न रिेगा कक रतत र्ें चेतना पवद्यर्ान रिती िै और सुपजप्त र्ें निीं। 'प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड', पृष्ठ 19 से आगे, न्यायर्ंर्री, पुजष्ट 177-178

ीं, अन्यथा िर् यि क्योंकर कि सकते िैं कक यि चांदी का रर् िी िै, ककसी और चीर् का निीं। ककन्तु चांदी, जर्सका इस प्रकार बोध िोता िै, न तो वास्तपवक िै, न अवास्तपवक िै और न वास्तपवक तथा अवास्तपवक दोनों िी िै। यहद वि वास्तपवक िै तो बोध भी यथाथ शिोगा। यहद अवास्तपवक िै तो उसकी ओर प्रवृपि निीं िो सकती। यहद वास्तपवक और अवास्तपवक दोनों िै तो दो परस्पर पवरोधी गुण एक िी वस्तु के अन्दर र्ानने पडगें। इस प्रकार इसका स्वरूप वस्तुतः अतनवचशनीय िै, अथात श ्जर्सकी व्याख्या निीं की र्ा सकती। यि अव्याख्येय चांदी अपवद्या के कारण उत्पन्न िोती िै, और उसकी सियक िै चांदी के भूतकालीन प्रत्यक्ष ज्ञान की स्र्ृततयां, र्ो चांदी रै्से ेपदाथ शके साथ दोर्षपूण शदर्नेशजन्द्रय का संयोग िोनेसे र्ाग र्ाती िैं। अद्वैतवाद के र्त रें् रांतत एक प्रत्यक्षात्र्क बोध िै र्ो चेतना रें् वस्तुतः प्रस्तुत िुए पदाथ शद्वारा उत्पन्न िोता िै। र्िां ंऔर र्ब रांतत उत्पन्न िोती िै, उस स्थान पर और उस सर्य चांदी पवद्यर्ान िै अन्यथा रांतंत का साक्षात्कार निीं िो सकता। यि प्रस्तुत चांदी तब तक रिती िै र्ब तक कक रांतंत रिती िै। नैय्यातयक इस पर आपपि करते िुए किता िै कक यहद चांदी के अभाव रें् भी चांदीरूप रांतत पवर्षयक पदाथ शकी उत्पपि िोती िै तो िर् ककसी भी ऐसे ेपदाथ शको देख सकते ेिैं जर्सका पवचार िर्ारे र्न रें् िो, और कफर प्रत्यक्ष ज्ञान के पवर्षय तथा बबम्व रें् कोई अन्तर निीं ंरि र्ाता। परन्तु नैय्यातयक इस बात के भलए अपनेको बधाई दे सकता िै कक उसके अन्यथाख्यातत भसद्धान्त के अन्तगतश यि र्त आ सकता िै, क्योंकक एक ऐसा पदाथ शजर्सकी पररभार्षा निीं िो सकती, िर्ारी चेतना रें् यथाथ शकी तरि प्रकट िोता िै।'[400] प्रभाकर के रांतत-सम्बन्धी र्त को 'अख्यातत' (अथवा पववेकोख्यातत), अथवा अपववेकी की संज्ञा दी र्ाती िै। सीप के टुकडे रें्, जर्न्िें र्् देख रिे िैं, और चांदी रें्, जर्सकी िर् कल्पना करते िैं, र्ो भेद िै वि हदखाई निींपडता, और िर् कि देते िैंकक 'यि चांदी िै'। तनराकरण करनेवाला बोध रांतत का खण्डन निींकरता, बजल्क वि स्र्ात्र्क ज्ञान रें् प्रत्यक्ष देखे गए और स्र्रण ककए गए अवयवों के र्ध्य र्ो भेद िै, केवल उसे ेस्वीकार-र्ात्र करता िै। इसके पवरोध रें् न्याय बलपूवकश किता िै कक र्ब तक रांतत रिती िै, चांदी का भी वस्तुतः प्रत्यक्ष ज्ञान िोता िै, उसकी केवल प्रततकृतत-र्ात्र निींिोती। िर् यि अनुभव करते िैं कक चांदी िर्ारी चेतना रें् यिांऔर इस काल रें् प्रस्तुत िै, और कोई ऐसी वस्तु निीं िै जर्सका प्रत्यक्ष भूतकाल रें् िुआ था और अब केवल स्र्रण िुआ िै। रांतत के सर्य अपववेक से कर् शकी प्रेरणा निीं िो सकती। स्र्ृतत के धुंधलेपन (स्र्ृतत-प्रर्ोर्ष) का स्वरूप स्पष्ट निींककया गया िै। इसभलए यि र्ानना िी पडेगा कक िर्ारी तात्काभलक प्रत्यक्ष की चेतना स्वयं रांतत-दोर्ष से सम्पृक्त िै।[401]

---

400 अद्वैतर्त की आलोचना करते िुए रार्ानुर् प्रश्न करते िैं कक रांतत के सर्य रें् अव्याख्येय चांदी की उत्पपि का कारण क्या िै? चांदी का बोध पदाथ शको उत्पन्न निींकर सकता, क्योंकक पदाथ शिी चांदी के बोध का कारण िै। यि चक्षुरूपी यन्त्र के ककसी दोर्ष के कारण निीं िो सकता, क्योंकक इजन्द्रयां बाह्य पदाथों रें् कोई काय शउत्पन्न निीं करतीं। इजन्द्रयों से ेज्ञान की उत्पपि िोती िै, प्रर्ेय पदाथों की निीं।

401 र्भसंर्ूरर अलौककखख्यातत के भसद्धान्त का उल्लेख करता िै जर्सर्ें यन्त्र एक र्ीर्ांसक की वृपि बतलाता िै। इसके अनुसार, चांदी के रांततरूप बोध रें् रांतत का पवर्षय चांदी िै, र्ो साधारण (लौककक) चांदी से ेभभन्न िै। िर्ारी कियात्र्क आवश्यकताओं को र्ो पूण शकरता िै, वि लौककक िै और र्ो निींकरता वि अलौककक िै। अलौककक चांदी भी कुछ प्रेरणा कियार्ीलता की ओर करती िै। नैय्यातयक पूछता िै कक क्या िर्ें अलौककक चांदी का कोई ज्ञान िोता िै? और र्ब िर्ें अपनी भूल का ज्ञान िो र्ाता िै तो कफर उस ज्ञान का क्या िोता िै? प्रर्ाचन्द्र अपने'प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड' रें् यि उल्लेख करता िै कक 'प्रभसद्धाथख्यातत' र्त का सर्थनश भास्कर और सांख्य के अनुयातययों नेककया िै। इसके अनुसार, रांततरूप

न्यायर्ास्त्र के अन्यथाख्यातत भसद्धान्त की सब सम्प्रदायों ने सर्ालोचना की ि ै, जनर्ें अद्वैत वेदान्त द्वारा की गई सर्ालोचना पवर्ेर्ष ध्यान देनेयोग्य ि ै।'[402] ककसी अन्य काल एवं स्थान र्ें उपजस्थत चांदी इजन्द्रय प्रत्यक्ष का पवर्षय निीं ं ि ो सकती, क्योंकक इस सर्य वि इजन्द्रयों के सर्क्ष प्रस्तुत निीं ि ै। यहद यि किा र्ाए कक ि र्ारी चेतना को उसकी पुनःस्र्ृतत ि ो र्ाती ि ै तो धुएं से आग के अनुर्ान र्ें आग की स्र्ृतत भी चेतना र्ें आ सकती ि ै और इस प्रकार अनुर्ान की कोई आवश्यकता निींरिेगी और कफर, अन्यथात्व ककसका प्रततपादन करता ि ै? यि ज्ञानपवर्षयक कियार्ीलता का प्रततपादन निींकर सकता, र्िां कक अधधष्ठानरूप सीप अपनी आकृतत को उस ज्ञान के प्रतत अपपतश निींकर सकता र्ो चांदी का बोध ग्रिण करता ि ै; और न ि ी ज्ञान-पवर्षयक कियार्ीलता के पररणार् का प्रततपादन कर सकता ि ै, क्योंकक साक्षात्कार र्ें वि चािे प्रार्ाणणक ि ो अथवा अप्रार्ाणणक, कुछ अन्तर निींआता। बोध के पवर्षय को भी प्रततपाहदत निींकर सकता र्ोकक सीप ि ै, र्ो चांदी के साथ तदात्र् निीं ि ो सकता, या अपनेको चांदी र्ें पररवतततश निीं ंकर सकता। यहद सीप चांदी से सवथशा भभन्न ि ै, तो उसके साथ तादात्म्य कैसे ि ो सकता ि ै। और यहद दोनों ि ै, अथात्श ्भभन्न भी और अभभन्न भी, तो इस प्रकार के तनणयश भी कक 'गाय एक छोटे सींगोंवाला र्ानवर ि ै' रांततपूण शठिरेंगे। यहद सीप वस्तुतः अपनेको चांदी र्ें पररवतततश करता ि ै, तो चांदी का बोध अयथाथ शनिीं ि ै और उसका तनराकरण निीं ि ो सकता। यहद यि किा र्ाए कक र्ब तक रांतत रिती ि ै तभी तक के भलए यि क्षणणक पररवतनश ि ै, तो जर्न व्यजक्तयों की दृजष्टर्जक्त र्ें कोई दोर्ष निीं ि ै उन्िें भी चांदी का प्रत्यक्ष ि ोना चाहिए।[403]

20. न्याय के प्रर्ाणवाद का सार्ान्य र्ूल्यांकन

न्यायर्ास्त्र द्वारा प्रततपाहदत ज्ञानपवर्षयक भसद्धान्त, जर्सके अनुसार ज्ञान को आत्र्ा का गुण किा र्ाता ि ै र्ो यथाथतशा का अनुकरण करती ि ै, सिर् बुद्धध को इतना सरल लगता ि ै कक उसके भलए ककसी प्रकार के सर्थनश की आवश्यकता प्रतीत निींिोती। तो भी इस तनदोर्ष लगनेवाले र्त र्ें ऐसी धारणाएं ंि ैं जर्न्िें सर्ालोचना के बबना ि ी स्वीकार कर भलया गया ि ै। बौद्धों के 'ज्ञान सापेक्षतावाद' की प्रततद्वन्द्पवता र्ें, न्याय का दावा ि ै कक वस्तुएं ताककशक सत्य का आधार ि ैं कक ि र्ारे ज्ञान से अलग बाह्य र्गत् ्की अपनी स्वतंत्र सिा ि ै, और बाह्य र्गत् ्ि ी उस ज्ञान का तनणायशक ि ै, और ि र्ारे पवचार वस्तुओंके अनुकूल ि ोते ि ैं। न्याय यथाथ शको दो भागों र्ें पवभक्त करता ि ै- द्रष्टा और दृश्य, और इस प्रकार वि सिर् बुद्धध की सार्ान्य धारणाओंको एक आध्याजत्र्क भसद्धान्त का रूप दे देता ि ै र्ोकक चेतेना के तथ्यों तथा तकश की र्ांगों के भलए पयाप्शत निीं ि ै।

बोध का पवर्षय अभावात्र्क वस्तु निीं ि ै, बजल्क एक भावात्र्क वस्तु ि ै जर्सकी भसद्धध ज्ञान के द्वारा ि ुई ि ै। र्त र्त-पवर्षयक रांतत का पवर्षय ि ै, और र्ब रांततर्य बोध का स्र्य शकी ककरणों के बोध द्वारा प्रत्याख्यान ि ो आता ि ै तो पपछलेबोध का पवर्षय स्र्य शकी ककरणें ि ो र्ाती ि ैं। यि र्त सन्तोर्षर्नक निीं ि ै, क्योंकक इसके अनुसार सभी बोध यथाथ शठिरते ि ैं (न्यायर्ंर्री, पृष्ठ 187-188; प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड, 1)।

[402] देणखए वेदान्तपररभार्षा, 1।

[403] पववरणप्रर्ेयसंग्रि, पृष्ठ 33।

रुख्य-रुख्य धारणाएं, ं र्ो न्याय के प्रर्ाणवाद के पवरुद्ध र्ाती िैं, ये िैं (1) आत्र्चेतना और अनात्र्ड एक-दूसूरे से सवथशा भभन्न िैं। (2) चेतना आत्र्ा पर अनात्र् की किया का पररणार् िै। (3) ज्ञान आत्र्ा का गुण िै। उक्त आध्याजत्र्क पूवाग्रिशों के रिते िुए भी न्याय के पास सफल सुझाव िैं जर्नसे ेउसके दोषों पर पवर्य पाई र्ा सकती िै। र्िां ंतक न्याय इस पवर्षय की व्याख्या करता िै कक ज्ञानरूपी कर् शर्ें तात्काभलक अनुभव ककस प्रकार का िोता िै, यि सुदृढ़ भभपि पर िै। ककन्तु र्ब वि आध्याजत्र्क सर्ाधान ऐसी पररभार्षाओं र्ें देनेका यत्न करता ै र्ो िर्ें ज्ञान के अजन्तर् तथ्य के पीछे की ओर ले र्ाती िैं तो वि आलोचना का पवर्षय िो र्ाता िै। तनम्न पवचार अनुभव के द्वारा प्रर्ाणणत िैं कक िर्ें इस र्गत् ्की प्रत्यक्ष अभभज्ञता िै, र्ो केवल अरूतअंशव्यापी अवयवों के एकत्र िो र्ाने से िी र्निींबना िै बजल्क एक भर्धश्रत पवश्व के रूप र्ें िै, र्ो संज्ञाओं एवं सम्बन्धों, अंव्यार्पी एवं सवव्शयापी अवयवों सेयुक्त िै; और यि कक िर्ारे पवचारों का कियात्र्क रूल्य िै। न्याय की र्ौभलक भूल लॉक तथा अन्यान्य प्रयोगवाहदयों की भूल के िी सर्ान िै, र्ो व्यजक्त तथा र्गत् ्को पृथक् पृथक् इकाई के रूप र्ें र्ानते िैं। यि याजन्त्रक दृजष्टकोण िर्ारी दैतनक तथा र्नोवैज्ञ्ातनक सीभर्त आवश्यकताओंके भलए ककतना िी क्यों न युजक्तयुक्त प्रतीत िो ककन्तु अन्ततोगत्वा इसकी रक्षा र्निींकी र्ा सकती। तकश के सर्क्ष ज्ञान के रूल रूप की सर्स्या उतनी र्निींजर्तनी कक उसके स्वरूप की िै। िर् ज्ञान के स्वरूप का तनणयश उसके पीछे र्ाकर और उसकी उत्पपि का पता लगाकर करनेकी आर्ा र्निीं ंकर सकते। र्ब नैय्यातयक चेतना को उत्पन्न अथवा पररणार् र्ानता िै तो वि र्ाननेकी प्रकिया के पीछे र्ानेका प्रयत्न करता िै।

यहद आत्र् एवं अनात्र् के अन्दर तीक्ष्ण भेद िै और यहद चेतेना केवल अनात्र् की आत्र् पर किया का िी पररणार् िै, र्ैसाकक लॉक एवं डेकाटश, िोर् और कांट सर्झते ेथे, तो चेतना के सर्स्त तत्त्व केवल प्रर्ाता व्यजक्त की पवर्षयीगत अवस्थाएं ंिैं। अनात्र् र्गत् ्की घटनाएंआत्र्-सम्बन्धी ज्ञान का भाग र्निींबन सकतीं। और यहद ज्ञान वस्तुजस्थतत की पुनरावृपि करता िै तो उसर्ें केवल वास्तपवक घटनाओं की नकलर्ात्र िो सकती ै, स्वयं घटनाएं र्निींिो सकतीं। र्ब िर् द्रष्टा को दृश्य पदाथ शसे पृथक् करते िैं तो एक-दूसूरे के बीच र्ो अन्तर िै उसे ेपाटने ेकी सर्स्या कहठन िो र्ाती िै। या तो िर् यि स्वीकार करें कक दृश्य पदाथ शका तनर्ाणश द्रष्टा के द्वारा ुआ या दृश्य पदाथ शि िी र्निीं, ं चिों तो िर् यों किें कक पदाथ शचेतना र्ें ले भलया र्ाता िै, अथवा उसके अन्दर प्रततबबजम्बत िोता िै, अथवा एक रूपरेखा के रूप र्ें प्रस्तुत िोता िै। इस प्रकार िर् पदाथ शके साथ ज्ञान के सम्बन्ध का र्ो भी स्वरूप स्वीकार करें, यि तनश्चय सेकिना कक र्गत् ्वैसा िी िै र्ैसाकक िर् इसे ेदेखते िैं, िर्ारे भलए असम्भव िी िै। र्ब तक कक दोनों एक-दूसूरे के भलए बाह्य िैं, र्ैसेकक एक पदाथ शदूसूरे के भलए बाह्य ै, तब तक िर् तनजश्चत र्निीं िो सकते कक िर्ारे पवचार पदाथों को सिी-सिी प्रस्तुत करते िैं, अथवा वे पदाथों को प्रस्तुत करते ेभी िैं या र्निीं। िर् अपनेबोधों की तुलना वास्तपवकता के साथ र्निींकर सकते, क्योंकक वास्तपवकता पवचार के भलए बाह्य िै, भसवाय पवचार के अन्य कुछ सीधे र्निींर्ाना र्ाता िै। और िर् पवचार की तुलना वस्तु से र्निींकर सकते, क्योंकक िर्ें एक िी पद प्राप्त िै, र्बकक तुलनारूपी कर् शका आधार दोनों पद िैं।

 यहद कोई चीर् पवचार को एक ओर रखकर और पदाथ शको दूसूरी ओर रखकर उनकी तुलना कर सकती िै तो वि
चेतना िी िो सकती िै।'[404] ककन्तु इस प्रकार की चेतना र्ें पवचार और पदाथ शदोनों िी सर्ापवष्ट रिने चाहिए।

यहद सत्य से तात्पय शपवचार का वास्तपवकता से र्ेल िै, और यहद वास्तपवकता की पररभार्षा यि िो कक यि पवचार से बाह्य िै-अथात्श ्र्ो पवचार न िो, पवचार के अन्तगतश न िो और पवचार से बनी न िो तो सत्यान्वेर्षण तनरथकश दौड-धूप िै, ऐसा र्ानना पडेगा। पवचार एक ऐसे लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करता िै जर्से ेप्राप्त निींककया र्ा सकता। यिी निीं, बजल्क किना िोगा कक एक ऐसा लक्ष्य जर्सका कोई स्पष्ट भाव ध्यान र्ें निीं आ सकता। इस प्रकार नैय्यातयक के सर्क्ष यिी पररणार् आता िै कक पवचार का लक्ष्य, अथात्श ्सत्य की प्राजप्त, प्रत्यक्ष रूप से िो निींसकती। वि यि र्त रखता िै कक एक सीर्ाबद्ध र्जस्तष्क के भलए पवचार का लक्ष्य प्राप्त करना र्जक्त से बिार की बात िै। िर्ें पवचारों के कियात्र्क र्ूल्य र्ें पवश्वास करके तनम्नतर् आदर् शसे िी सन्तोर्ष प्राप्त करना िोगा। कियात्र्क क्षर्ता िी इस पवश्वास को उत्पन्न करती िै ककन्तु यि कायक्षशर्ता न्याय की इस धारणा को र्ान्यता प्रदान निीं ंकरती कक पवचार इसभलए काय शकरते िैंकक उनका वास्तपवकता के साथ र्ेल िोता िै।'[405] बौद्ध ताककशक, र्ो सत्य की इसी कसौटी को अंगीकार करते िैं, इससे एक भभन्न पररणार् तनकालते िैं; और यि र्ानना पडेगा कक बौद्धर्त अधधक तकशसम्र्त िै। सत्य का सारतत्त्व पदाथों के साथ ज्ञान की अनुकूलता निींिै क्योंकक वे केवल आदर् शिैं, बजल्क अनुभव द्वारा उनका सर्थनश िी सारतत्त्व िै।[406] पवचार र्ें कर् शकी ओर प्रवृि करते िैं, और र्ब िर् अपनी इच्छाओं को पूण शकर लेते िैंतो उनका सत्य िोनेका दावा यथाथ शसर्झा र्ाता िै। िर्ारे स्वप्न रांततर्य किे गए िैं, क्योंकक उनके आधार पर ककए गए कर् शउद्देश्यों की भसद्धध र्ें असफल रिते िैं। कल्पना करो, िर्ें कुछ स्वप्न िुआ, िर् अपनेखेत को खोदते िैं और एक खर्ाना पा र्ाते िैं, तब िर्ारा स्वप्न सत्य िै, चािे यि वास्तपवकता के साथ र्ेल खाए या न खाए। यि स्पष्ट िै कक दृढ़ भभपि वाले और सुतनजश्चत ज्ञान र्ें भी रांतत की संभावना रिती िै। िर्ारा कोई भी पवश्वास इतनेदृढ़ आधार पर स्थापपत निींिोता कक उसके भर्थ्या िोनेकी थोडी-सी सम्भावना न िो सके। इस उपयोधगतावादी परख पर तनभरश करके र्ीवन-यापन सम्भव अवश्य िै, ककन्तु िर्ें इससेपूण शसन्तोर्ष निींिोता। र्ो एक आवश्यकता की पूतत श करता िै, सम्भव िै वि अन्य की पूतत शन कर सके। िर्ें आवश्यकता िै एक सर्क्त ताककशक पवधध की, र्ो िर्ें वास्तपवकता का ज्ञान करा सके, और इसकी पूतत शिो निीं सकती। न्याय ने, र्ो िर्ें बौद्धों के पवर्षयीपवज्ञानवाद से बचाने के भलए उत्सुक िै, वास्तपवकता के पवर्षय र्ें कोई अधधक सन्तोर्षर्नक र्त निींहदया िै। र्ब बाह्य

---

404 प्रोफेसर अलेक्रेण्डर का र्त िै कक चेतना एवं वास्तपवकता दोनों स्वतंत्र वस्तुएं ंिैं, और उनर्ें सम्बन्ध सि-उपजस्थतत का िै। यद्यपप दोनों संसार र्ें भभन्न-भभन्न िैं, तो भी वे दोनों साथ रिती िैं। ककन्तु इस चेतना का स्वरूप क्या िै? चेतना सदा िी ककसी वस्तु की िोती िै, और यि िर्ें ऐसेपदाथ शकी सिा के पवर्षय कुछ निींबताती र्ो इससे बिार और इससे स्वतंत्र िो।

405 तुलना कीजिए ब्रॉड: पवज्ञान को इससे कुछ भी वास्ता निीं िै कक संज्ञा का आभ्यन्तर रूप क्या िै, बर्ते ेकक जर्स काय शके भलए यि िै उसे ेसम्पन्न कर दे। यहद िर् वाद-पवर्षयों की ऐसी पररभार्षा कर सकें, जर्ससे उनके द्वारा दो र्त ेंपूण शिो सकें तो इसकी कुछ धचन्ता निींकक पववाद-पवर्षय चािे स्वयं ऐसी सिाएं प्रतीत िों र्ो िर्ारी र्ान्यताओं से भभन्न िों (साइजण्टकफक थौट, पृषूठ 39)।

406 न्यायावशन्दु, ु पृषूठ 103; और न्यायबबन्दुटीका, पृषूठ 6।

र्गत् ्के ज्ञान की व्याख्या न्याय का भसद्धान्त सर्ीचीनतया न कर सका तो उसे ेअपनी प्रारजम्भक धारणाओं के प्रतत लौटकर ज्ञानरूपी तथ्य के पवश्लेर्षण के प्रकार् र्ें उनकी परीक्षा करनी चाहिए।

यद्यपप यि सत्य ि ै कक र्ेरे या तुम्िारे अनुभव र्ें आए बबना भी पदाथ शअपने-आपर्ें वास्तपवक अजस्तत्व रखते िैं और उनकी सिा उस सर्य आरम्भ निीं िोती र्बकक तुर् या र् ेंउनके पवर्षय र्ें अभभज्ञ िोते िैं, तो भी यि निींकिा र्ा सकता कक वास्तपवक सिा सब प्रकार के अनुभव से स्वतन्त्र िै। ज्ञान और पदाथ शके बीच र्ो सम्बन्ध िै उसे ेन्याय र्ें स्वरूप-सम्वन्ध किा र्ाता िै। ज्ञात पदाथ शज्ञान की प्रणाली का तनधारशण करता िै। बोध से तात्पय शककसी पदाथ शकी चेतना िै।'[407] धुर्सूदन सरस्वती ने[408] उदयन का उद्धरण देते िुए भलखा िै कक "बोध र्ोकक अपने-आप र्ें आकृतत रहित िैं, अपनेप्रर्ेय पदाथों के द्वारा पवभर्ष्टता प्राप्त करते िैं। इसका तात्पय शयि िुआ कक प्रर्ेय पदाथ शबोध के केवल पवर्ेर्ष पववरण िैं।" प्रत्येक बोध का पवर्ेर्षत्व या उसका स्वरूप पदाथ-शपवर्ेर्ष के द्वारा िी र्ाना र्ाता िै, र्ैसे,े 'यि एक दवात िै', 'वि एक र्ेपोर् िै'। यहद ज्ञात पदाथ शज्ञान की प्रकिया से पूणतशया बािर िै तो सत्य के पवर्षय र्ें अनुरूपता का भाव स्वीकार करना पडेगा। ककन्तु इसका स्वरूप ज्ञान की प्रकिया के अन्तगतश िी किा गया िै, यद्यपप पदाथ शअपने-आप र्ें पदाथ शके ज्ञान के साथ तादात्म्यरूप निीं। इस र्त के अनुसार, ज्ञान पदाथों को उत्पन्न निीं करता, और न िी यि उनके अनुकूल िोता िै, बजल्क उनका बोध कराता िै। इसभलए ऐसा र्त प्रकट करना अनुपयुक्त िै कक पदाथ,श ज्ञान की सीर्ाओंके बािर अवजस्थत िैं, और र्ो र्ाना र्ा सकता िै वि या तो उसका काय शिै या द्रष्टा की चेतना र्ें उसकी नकल िै। िर् बाह्य पदाथ शअथवा आभ्यन्तर अवस्था को चािे प्रत्यक्ष देखें, चािे उसकी कल्पना करें अथवा उसका स्र्रण करें, िर् जर्सका ज्ञान, कल्पना या स्र्रण करते िैं वि स्वयंपदाथ शिै और ज्ञान की प्रकिया से स्वतन्त्र िै। न्याय का यि भसद्धान्त कक िर्ें वास्तपवकता का तात्काभलक और प्रत्यक्ष बोध िोता िै, उसकी अन्य धारणा से, अथात्श ् इससे कक द्रष्टा तथा दृश्य अथवा प्रर्ाता और प्रर्ेय एक-दूसरे से पृथृक् िैं, असंगत िै। ज्ञाता और ज्ञेय के र्ध्य र्ें ककसी भी प्रकार का व्यवधान निीं। दोनों अभभन्न रूप से एक-दूसरे से सम्बद्ध िैं। एक का स्थान दूसरा निींले सकता। न्याय 'पवर्षयीपवज्ञानवाद' के इस र्त का प्रत्याख्यान ठीक िी करता िै कक प्रर्ेय पदाथ शकी सृजृष्ट प्रर्ाता की कल्पना सिोती िै। प्रर्ाता के ज्ञान की प्रकिया पदाथ शका तनर्ाणश निींकरती। यिांतक कक सवव्शयापी सम्बन्ध भी प्रर्ाता को हदए गए बताए गए िैं, प्रर्ाता उनका तनर्ाणश निीं ंकरता। इजन्द्रय-सार्ग्री अलग-अलग परर्ाणुओं के रूप र्ें प्रकट निींिोती, बजल्क कततपय गुणों तथा पवभर्ष्टताओं से युक्त प्रकट िोती िै। परवती न्याय के अनुसार, केवल व्याजप्त अथवा तादात्म्य के आधार का बोध िी इजन्द्रयातीत (अलौककक) र्ानभसक किया द्वारा िोता िै। िर्ारे अनुभवों का एक बिुत बडा भाग, र्ो िर्ारे ज्ञान के अन्तगतश िै, स्वरूप र्ें इजन्द्रयातीत िै। नैय्यातयक वास्तपवकता की पववर् करने की र्जक्त को स्वीकार करता िै। िर्ारे अनुभव की आवश्यकता प्रर्ाता द्वारा आरोपपत निींकी गई िै, बजल्क यि र्त् ्की आवश्यकता के कारण िै। वस्तुसिा स्वयं दो भागों, अथात्श ्आत्र् तथा र्त् ्र्ें पवभक्त निीं िै। प्रत्येक पवचार के भलए पूव-शउपजस्थत सार्ग्री के रूप र्ें एक अपवभक्त वास्तपवकता आवश्यक िै जर्सर्ें से पृथृक्करण की प्रकिया द्वारा प्रर्ाता तथा प्रर्ेय तनकाले े

---

407 न्यायभाष्य , 4 :2,29।

408 अद्वैतभसद्धध , 1:20।

 र्ाते िैं। यि सत्य िै कक िर्ारे र्ीवन र्ें पृथक्करण का एक बडा भाग िै, परन्तु तो भी वास्तपवकता स्वयं र्ें,
जर्स पर िर्ारे ज्ञान का आधार िोना चाहिए अथातश प्रधान ताजत्त्वकीय तथ्य, चेतना िी िै। ज्ञान के स्वरूप और अवस्थाओं की आध्याजत्र्क खोर् िर्ारे सार्ने चेतना की व्यापकता को प्रकार्रूप र्ें ला देती िै। यि चेतना िी सब वस्तुओं की आधार और स्रष्टा िै, चेतना को अधभशौततक रूप देना आपपिर्नक िोगा। यि अनेकावयवघहटत संयुक्त पदाथ शर्नीं ंिै, यद्यपप िर्ारा र्गत् ्पयाप्शत र्ात्रा र्ें ठोस व स्रूत शिो सकता िै। आत्र्ाओं तथा पदाथों के रूप र्ें िर्ारा पवश्र्लेर्षण िर्ारी व्याविाररक आवश्यकताओं का सापेक्ष िै, ककन्तु यि भर्धश्रत पवश्व एक वास्तपवकता पर आधाररत िै र्ो अपनेर्ें अपवभक्त िै। वस्तुसि का पवचार र्ब िर्ारे सर्क्ष आता िै तो वि यिी स्वरूप धारण करती िै। िर्ारे भलए बुद्धध के द्वारा भेद करने के अततररक्त वास्तपवकता का बौद्धधक पववरण देना सम्भव र्नीं। तो भी िर्ारे पवचार एक ऐसी वास्तपवकता का प्रततपादन करतीं जर्सके भलए िर्ारे ककए गए भेदे अतनवाय शर्नीं ंि ।ैं अतः, चैतन्य की अपवभक्त वास्तपवकता िी एकर्ात्र तनरपेक्ष िै, जर्से ेदृजष्ट से
ओझल करके नैय्यातयक आत्र्ाओं व भौततक पदाथों के अनेकत्व को अंगीकार करता िै।

र्बकक वास्तपवकता चैतन्य या चेतना िै, सत्य-र्ोकक ताककशकों का लक्ष्य िै-उससेभभन्न िै। क्योंकक तकशर्ास्त्र की धारणा र्ें प्रर्ाता और प्रर्ेय भभन्न-भभन्न िैं, और उसकी प्रेरणा तभी सफल िो सकती िै र्बकक आत्र्ाओं तथा पदाथों का र्गत् ्एक सार्ंर्स्ययुक्त पूण शइकाई के रूप र्ें संघहटत िो। न्यायर्ास्त्र अपने अनुकूलता के भाव का त्याग ककए बबना भी सार्ंर्स्य के भसद्धान्त के अधधक सर्ुधचत स्वरूप को ग्रिण कर लेता िै। इसके र्त र्ें ज्ञान के सर्स्त प्रकार एक सम्पूण शइकाई के अंर्ात्र िैं, और प्रत्येक अपने-अपने स्थान र्ें उसी पूण शके अन्दर किया करता िै, एवं उसका औधचत्य उस पूण शके भाग के अततररक्त र्नीं। ककसी भी प्रर्ाण की र्ान्यता अन्य प्रर्ाणों द्वारा स्थापपत की र्ाती िै।'[409] ज्ञान के भभन्न-भभन्न प्रकार परस्पर एक-दूसूरे से सम्बद्ध िैं। प्रत्येक ज्ञान की र्ध्यवती आवश्यकता िै। र्ब नैय्यातयक उस सन्तोर्ष की अनुभूतत के पवरुद्ध िर्ें चेतावनी देता िै र्ो स्वप्नद्रष्टा तथा पवक्षक्षप्त व्यजक्तयों को िोती िै, और एक सार्ान्य स्वस्थ र्जस्तष्क वाले े व्यजक्त की अनुभूतत को ध्यान र्ें रखने ेकी बात किता िै, तो वि अपनेअनुकूलता के भसद्धान्त को त्याग देता ीं। सार्ान्य व्यजक्त वि र्नीं िै जर्सेबिुर्त का सर्थनश प्राप्त िो। इन अथों र्ें कुछ रांत-ज्ञान भी सार्ान्य िो सकता िै, ककन्तु इसीभलए वि सत्य र्नीं। सार्ाजर्क अंर् केवल पवरुद्ध काल्पतनक अनुभवों को उन अनुभवों से पृथक् करके प्रकट करता िै र्ो पदाथों से अधधक सम्बद्ध िैं। अपने अनुभवों की अन्यों के अनुभवों के साथ तुलना करके िर्ें एक कियात्र्क तनश्चय िोता िै, र्ो सभी साधारण प्रयोर्नों के भलए पयाप्शत िै। र्ो िर्ारे सर्ान दूसूरों ने भी देखा, और र्ो िर्नेभभन्न-भभन्न स्थानों व भभन्न-भभन्न कालों र्ें एक सर्ान देखा, उसे िर्

---

409 िर् एक पदाथ शको प्रत्यक्ष देखते िैं और इस प्रत्यक्ष ज्ञान की यथाथतशा प्रर्ाणणत िोती िै इसके अन्दर तनपवष्ट अवयवों-इजन्द्रयों, पदाथ शदोनों का सम्पकश और पररणार्स्वरूप िोनेवाली बोध रूपी किया की यथाथतशा के अनुर्ान और प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा। अनुर्ान के द्वारा यि भसद्ध िोता िै कक बाह्य उद्दीपक के एक वग-शपवर्ेर्ष को ग्रिण करनेवाली इजन्द्रय िै। पदाथों का तनश्चय इजन्द्रय-प्रत्यक्ष के द्वारा िोता िै। भेदों के अप्रत्यक्ष से ेसम्पकश का अनुर्ान िोता िै और पररणार्स्वरूप िोनेवाली बोधरूपी किया का प्रत्यक्ष ज्ञान आत्र्ा को र्न के साथ उसके सम्पकश तथा ज्ञान के साथ उसके तनकट सम्बन्ध के द्वारा
िोता िै।
- न्यायभाष्य 2/1 , 19

सत्य अथात् श ्यथाथ शर्ान सकते िैं। पवज्ञान की र्ांग िै कक िर्ें अपनेसाधारण प्रत्यक्ष ज्ञान की र्ांच-पडताल करनी चाहिए। िर्ें अपनी ऐजन्द्रय दृजष्ट से सूय शआकार् र्ें चलता िुआ प्रतीत िोता िै, ककन्तु पवज्ञान िर्ें बतलाता िै कक पृथ्वी सूय शके चारों ओर घूर्ती िै। अधधक प्रारजम्भक व परस्पर-असम्बद्ध अनुभवों की व्याख्या अधधक संघहटत एवं व्यवजस्थत अनुभवों को ध्यान र्ें रखकर करनी चाहिए। आदर् शअथवा र्ानदण्ड दूसूरी श्र्ेणी के अनुभव िी िैं। सत्य प्रर्ेय पदाथों पर उतना तनभरश निीं करता जर्तना कक इस पर तनभरश करता िै कक उसर्ें सब स्थानों व सब कालों र्ें किां तक अव्यभभचारी रिने की क्षर्ता िै। वास्तपवकता की संरचना को सत्य के अनुकूल िोना आवश्यक िै। यि सर्झा र्ाता िै कक देर् व काल की तनरन्तरता का एक व्यवजस्थत स्वरूप िै। नैय्यातयक, र्ो उपयोधगतावादी परख का आश्रय लेता िै, यि स्वीकार करनेके भलए बाध्य िै कक वास्तपवकता सम्बन्धी िर्ारे पवचार िर्ारे प्रयोर्नों की अपेक्षा रखते िैं। ककसी भी पदाथ शके ज्ञान से तात्पय शिर्ारी वतर्शान आवश्यकताओंकी पूतत शके अनुसार िी सर्झा र्ाता िै। कियात्र्क र्ीवन र्ें िर्ें पदाथों के तत्त्व से कोई प्रयोर्न निींरिता, बजल्क उनका अथ शिर्ारे भलए क्या िै इसी सिर्ें वास्ता रिता िै। इस कथन का कक प्रत्येक व्यजक्त के भलए पत्थर कठोर िैंऔर आग गरर् िै अथ शयि िै कक ये पदाथ शिर्ारे भलए भी यिी अथ शरखतिैं। कियात्र्क रूप र्ें उधचत अनुकूलता नैय्यातयक के भलए सत्य िैं, और अनेकों र्र्ात्र्क ज्ञान र्ो सब व्यजक्तयों तथा र्ातत के भलए सार्ान्य िैं, इस कसौटी के अनुसार सत्य िैं। और इस कसौटी का उपयोग भूतकाल और भपवष्य की घटनाओंके सम्बन्ध र्ें भी निींिो सकता। यद्यपप िर्ारे सत्य सापेक्ष िैं, कफर भी वे सब एक सर्ान र्ित्त्व के निींिैं। सवोच्च सत्य वि िै र्ो संसार को पूण शरूप से सर्झने की र्ित्त्वपूण शताकककशक आवश्यकता की पूतत शकर सके। आदर् शअनुभव, र्ो वास्तपवकता के स्वरूप को यथाथ शरूप र्ें-जर्सर्ें पररभर्त प्रर्ाता और पररजस्थतत भी सजम्र्भलत िैं-पिचानता िै, सत्य का तनजश्चत र्ानदण्ड िै। इन अथों र्ें निीं ंकक ककतने िी व्यजक्तयों ने इसे ेप्राप्त ककया िै, अपपतु इन अथों र्ें कक र्ब एक व्यजक्त ताकककशक र्त का आश्रय लेता िै तो वि इसे ेसत्य के रूप र्ें सर्झेगा। वास्तपवक यथाथतशा का आधार बिुर्त निीं िो सकता।'[410] यि बात कक र्नुष्यों र्ें अधधकतर अनेकतावाद र्ें आस्था रखते िैं, इसके भसवाय और कुछ व्यक्त निींकरती कक यि एक ऐसा पवचार िै जर्सका कियात्र्क र्ित्त्व िै। सत्य तथा असत्य की परीक्षा बिुर्त गणना द्वारा निीं ंिो सकती। यहद र्नुष्यों की अधधक संख्या पीभलया रोग का भर्कार िो र्ाए तो इससे सत्य र्ें कोई अन्तर निींआ सकता। सत्य वि िै र्ो अपनेको उन व्यजक्तयों के आगे ेव्यक्त करता िै जर्न्िोंने अनुभव की गिराई र्ें र्ाकर अन्वेपण ककया िै। नैय्यातयक भी आर्षर्शान अथात् श ्ऋपर्षयों की बुद्धध की प्रर्ाणणकता को स्वीकार करता िै। वि िर्ें किता िै कक िर् उन व्यजक्तयों की उपलजब्ध से, जर्न्िोंने अधधक योग्यता के साथ यथाथसशिा का ज्ञान प्राप्त ककया िै, अपनेअनुभवों की परीक्षा करें। सत्य सज्र्नता और सुन्दरता के सर्ान एक व्यजक्त की अपनी उपाजर्तश भसद्धध िै, और दूसूरे

---

410 "क्या इस तथ्य की सत्यता कक एक अंधा र्नुष्य अपनी दृजष्ट-र्जक्त के तनदोर्ष पवकास से, र्ो सार्ान्यरूप र्ें िोना चाहिए था, वंधचत रि गया िै, अपनेप्रर्ाण के भलए इस तथ्य पर तनभरश करती िै कक र्नुष्यों र्ें अधधकांर् व्यजक्त अंधेनिीं िैं। सबसेपिला प्राणी जर्सेिठात् ्टटोलते टटोलते दृजष्टर्जक्त प्राप्त िुई, इस पवर्षय की घोर्षणा करने ेका अधधकारी था कक प्रकार् वास्तपवकता िै। र्ानवीय र्गत् ्र्ें बिुत कर् व्यजक्त ऐसे िैं जर्नकी आध्याजत्र्क आँखें खुली िुई िैं। ककन्तु ऐसे व्यजक्तयों के अत्यधधक संख्या र्ें रिते िुए भी कक र्ो देख निीं सकते, े िर् उर्न्िें प्रकार् के अभाव के प्रर्ाणरूप र्ें उद्धृत निीं कर सकते।" रवीन्द्रनाथ ठाकुर। देणखए राधाकृष्णन-रधचत 'कफलासफी आफ हद उपतनर्षद्स' का प्राक्कथन।

अथ शर्रें यि र्ानवीय र्जस्तष्क के भलए उस र्गत् ्का हदव्य ज्ञान िै र्ो अभी तक अज्ञात िै, ककन्तु र्जसका पूण श ज्ञान अधधक पररपक्व अनुभव के द्वारा िर्ें प्राप्त करना िै। िर् सत्य को तनर्ाणश करने की अपेक्ष्ा अधधकतर प्राप्त करते िैं। तो भी नैय्यातयक बार-बार र्नोंवैज्ञातनक के र्त की ओर कफसल र्ाता िै र्ो कल्पना करता िै कक र्ीवात्र्एं तथा प्रकृतत इन दोनों के संयोग से ज्ञान उत्पन्न िोता िै। िर्ारे उद्देश्यों के प्रतत ज्ञान की सापेक्षता न्याय की इस धारणा का सर्थनश निींकरती कक प्रर्ाता और प्रर्ेय सवथशा एक-दूसूरे के पृथक् िैं। इससे िर्ारी प्रकृतत की र्ांगों और उनकी पूतत शकी सम्भावना ध्वतनत िोती िै। यथाथ शका स्वभाव र्नुष्य के कर् शकी आवश्यकताओंके अनुकूल िै, इससे यि प्रकट िोता िै कक वास्तपवकता के दो रूप, अथात्श र्न और उसकी पररजस्थतत, परस्पर सम्बद्ध िैं। दृश्यर्ान अनेकत्व और वस्तुओंकी परस्पर असम्बद्धता केवल भाभसत िोती िैं। वास्तपवक पदाथों की अनेकता का यि पवचार कक पदाथ शबाह्य रूप र्ें एक-दूसूरे से सम्बद्ध िै, र्गत् ्की अतनवाय शएकता के पवचार के आगे ठिर निींसकता।

सर्स्त पवचार के साधनात्र्क तथा सापेक्ष स्वरूप र्ें र्ो गूढ़ाथ शतछपा िै उसके आधार पर नैय्यातयक को स्वीकार करना चाहिए कक स्वयं सत्य के आदर् शका स्वरूप सापेक्ष िै। ताकककशक सत्य, र्ो इस प्रकार की वास्तपवकता िै कक र्जसका भाव र्न र्ें परस्परसम्बद्ध आत्र्ाओं तथा पदाथों के एक भसलभसले के रूप र्ें उदय िुआ िै, ताकककशक भावना की अपेक्षा करता िै, यद्यपप यि उस र्त से किीं ंअधधक सन्तोषर्नक िै र्जसकी दृजष्ट र्ें यि पवश्व अनेक स्वतन्त्र तथा वास्तपवक पदाथों से भर्लकर बना िै। सत्य एक वि वास्तपवकता िै र्ो आदर् श िैऔर र्जसे एक बुद्धधगम्य पद्धतत के रूप र्ें र्ाना गया िै। िर्ारे तनष्कर्ष शऔर अनुर्ान उस पूण शइकाई को सर्झनेका लक्ष्य रखतिैं। ज्ञानरूपी र्ीर र्ें उनके स्थान का तनणयश इस प्रयत्न र्ें उनकी सफलता तथा पवफलता के दर्े के अनुसार िोता िै। सब प्रकार का ताकककशक सत्य सापेक्ष िै। इस अथ शर्ें कक व्यजक्त वास्तपवकता का केवल अंर्-र्ात्र िै, र्ो अपने पवषय से भर्धथल िो गए एक अन्य अंर् को सिारा देता िै, और र्ब तक एक व्यजक्त ताकककशक दृजष्ट का सिारा लेता िै, वास्तपवकता को अपने-आप र्ें ग्रिण करना असम्भव िै। िर्ारा पवचार भेद करने और चुनने के भलए पववर् िोता िै, और िर् उपयोधगतावादी कसौटी का प्रयोग करनेको वाध्य िोते िैं। उदार से उदार पवचार भी अपनी स्वयं की सिा को छोड देने के भलए बाध्य िोता िै, र्जसे कक उसे वास्तपवकता र्ें अवश्य सजम्भलत करना चाहिए। सर्स्त ज्ञान पदाथ शसेपृथक्करण िी िै। यि परर् तनरपेक्ष की आदर् शपुनरशचना िैं।"[411]

न्यायर्ास्त्र का ज्ञान-पवषयक पवश्लेषण और इसका 'स्वरूप-सम्बन्ध' पवषयक र्त ज्ञान र्ें वास्तपवकता की उपजस्थतत के भसद्धान्त का सर्थनश करते िैं। तनपवकशल्प तथा सपवकल्प ज्ञान का भेदे भी यि संकेत करता िै कक िर्ारा ज्ञान िर्ारे प्रयोर्न की अपेक्ष्ा करता िै। कुछ अवस्थाओं र्ें िर्ें वास्तपवकता का

[411] तुलना कीजए ब्रेडल, "इस र्गत् ्का गौरव अन्त र्ें एक प्रतीतत-र्ात्र िै, ककन्तु यि चीर् र्गत् ्का और भी अधधक गौरवर्ाली बना देती िै यहद िर् यि अनुभव करें कक यि एक पूणतशर काजन्तर्य गररर्ा का प्रदर्नश-र्ात्र िै। ककन्तुयि ऐजन्द्रय यवतनका केवल एक प्रवंचंना िै, यहद र्जसेयि तछपाती िै। वि परर्ाणुओं की कंवल वणिशीन गतत िै, अततसूक्ष्र् अपकर्षणशों का कोई पैबत्रक तानाबाना िै, या रक्तपविीन वगों का कोई अपाधथवश नाच िै" (लौजर्क, खण्ड 2, पृषूठ 591)।

 केवल भेदरहित पररचय िोता िै, और अन्य अवस्थाओं र्ें इसकी र्टलता का तनकटतर् ग्रिण

िोता िै।

कियात्र्क उपयोधगता की कसौटी को स्वीकार करने से इस र्त का सर्थनश िोता िै कक िर्ारे ज्ञान को िर्ारे सीभर्त दृजष्टकोणों की अपेक्षा रिती िै। वास्तपवकता की यि धारणा कक यि दो पवभभन्न क्षेत्रों से भर्लकर बनी िै, र्नोपवज्ञान के भलए युजक्तसंगत और उपयोगी िो सकती िै परन्तु र्ब िर् ताकककशक दृजष्टकोण पर आते िैं तो िर्ें उससेआगे ेबढ़ना चाहिए। र्ैसा कक िर् पिले ेहदखा चुके िैं, न्याय को पवहदत िै कक सत्य की सार्ंर्स्य की धारणा

िी िै र्ो तकशर्ास्त्र र्ें स्वीकार की र्ा सकती िै। सापेक्षतावाद के इस सर्स्त भसद्धान्त का स्वाभापवक तनष्कर्ष श यि िै कक एक भर्धश्रत पवश्व का, जर्सर्ें अवयव परस्पर सम्बद्ध िैं, यि ताकककशक आदर् शभी परर् तनरपेक्ष निीं ं सर्झा सकता। न्याय ने इस र्ूल सर्स्या का र्ुकाबबला करना पसंद निींककया, ककन्तु इसका ज्ञान-सम्बन्धी भसद्धान्त र्ब संगततपूवकश व्यविार र्ें लाया र्ाता िै तो स्पष्टतः िर्ें इस जस्थतत र्ें पिुंचाता िै कक प्रर्ाता तथा प्रर्ेय के भेदे ज्ञान अथवा अनुभव के तथ्य र्ें िी उदय िोतेिैं, र्ो अकेला िी परर् तनरपेक्ष िै अथवा अजन्तर् तथ्य िै, जर्सके परे िर् निींर्ा सकते े।

21. भौततक र्गत् ्

न्यायर्ास्त्र वैर्ेपर्षक के तत्त्वपवज्ञान से सिर्त िोकर इस भौततक र्गत् ्को तनत्य, अपररणार्ी, कारणपविीन तथा िर्ारे पवचारों सेअलग अपनी स्वतन्त्र सिा रखने ेवाले परर्ाणुओं द्वारा घहटत र्ानता िै। भौततक र्गत् ्के पवर्षय र्ें न्यायर्ास्त्र की अवधारणाएं ंलगभग वैर्ेपर्षक िी के सर्ान िैं।

यि र्ानना भी रोचक िोगा कक न्याय अपनेप्रततद्वन्द्वी सम्प्रदायों द्वारा ककए गए आक्षेपों का उिर ककस प्रकार देता िै। काल के पवर्षय र्ें पवर्ेर्ष कहठनाइयां िैं। कुछ नैय्यातयकों का र्त िै कक काल अनुभव का िी एक रूप िै और उसका ग्रिण भी इजन्द्रयों द्वारा प्रर्ेय पदाथों के गुण के रूप र्ें िोता िै। दृष्टान्त के रूप र्ें 'भर्षार्णण' के रचतयता रार्कृष्णाध्वरी का किना िै कक क्योंकक िर्ें पदाथों का बोध 'इस काल र्ें वे उपजस्थत' िैं, इस रूप र्ें िोता िै, इसभलए सर्य का भी साथ-साथ बोध िोता िै। घडे के प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें अथात् श ्कक 'घडा इस काल र्ें िै' वतर्शानकाल भी पदाथ शपवर्षयक ज्ञान के साथ-साथ िी सजम्र्भलत िै। प्रत्येक पदाथ शके पवर्षय र्ें वि अर्ुक काल र्ें िै या था, इस प्रकार का ज्ञान िोता िै, यद्यपप काल का स्वतन्त्र बोध कभी निींिोता िै।'[412] पदाथों के पवर्षय र्ें र्ो कुछ किा र्ाए, काल पवर्षयक सम्बन्ध उस पर तनभरश िै। र्ीघ्र या पवलम्ब से, पिले ेअथवा पीछे इस प्रकार का भाव घटनाओं एवं कियाओं से भभन्न कुछ निींिो सकता क्योंकक काल का बोध पदाथों के गुण के रूप र्ें िोता िै, इसभलए उसका वास्तपवक अजस्तत्व िै।[413]

---

412 न्यायर्ंर्री, पृष्ठ ,136 ।

413 विी, पृष्ठ 137।

ऱाध्यभर्क के इस भसद्धान्त का कक भूत तथा भपवष्य से स्वतन्त्र वतर्शानकाल की पृथृक् कोई सिा निीं ीं, पिववेचन वात्स्यायन ने ककया िै।'[414] भूतकाल की पररभार्षा यि िै कक वि वतर्शानकाल से पिले ेआता िै, और भपवष्य वि िै ऱो वतर्शान के पीछे आता िै। ककन्तु वतर्शान का भूत तथा भपवष्य से स्वतन्त्र कोई अभभप्राय निीं ं ी। वात्स्यायन का उिर िै कक यि सब देर् तथा काल के सजम्श्रण के कारण िोता िै। आक्षेपकता शका तकश िै कक बर् कोई वस्तु धगरती िै तो उसे ेकुछ दूरी पार करने र्ें कुछ सर्य लगा िै और र्ेर्ष दूरी पार करने र्ें कुछ सर्य लगेगा। बीच की कोई दूरी ऐसी निीीं जिर्सेंवि वस्तु वतर्शान र्ें पार करे। पार कर ली गई दूरी िर्ें भूतकाल का पवचार देती िै, ऱो दूरी पार करनी िै वि िर्ें भपवष्यकाल का पवचार देती िै, तथा र्ेर्ष कोई और दूरी निीीं ऱो ऱिरे सार्ने वतर्शान का पवचार रख सके।'[415] ककन्तु वात्स्यायन किते िैं कक सर्य अथवा काल की अभभव्यजक्त दूरी (देर्) से निींअपपतु किया सिोती िै। बर् वस्तु का धगरना बन्द िो ऱाता िै तो िर्ें भूतकाल का भाव भर्लता ी...बर् वस्तु के धगरनेकी किया िोनेवाली िोती िै तो भपवष्यत्काल का भाव भर्लता िै, और अन्त र्ें, बर् वस्तु की किया हदखाई दे री िै तो िर्ें वतर्शानकाल का भाव भर्लता िै। इस प्रकार की पररजस्थतत र्ें यहद कोई व्यजक्त िोती िुई किया को कभी न देखे, तो उसे ेकिया की सर्ाजप्त तथा आगे िोने का पवचार भी कैसे िो सकता िै?... भूत और भपवष्य दोनों िी कालों र्ें वस्तु के अन्दर किया निीं िै, बर्कक िर्ारे इस पवचार के सर्य कक 'वस्तु धगर री ीं', वस्तु का सम्बन्ध वस्तुतः किया के साथ िोता िै। इस प्रकार वतर्शानकाल जर्सका ज्ञान कराता िै वि वस्तु और किया का वास्तपवक पवद्यर्ान सम्बन्ध िै। इसभलए इसी के (अथात्श ्पवद्यर्ान सम्बन्ध और उसके द्वारा संकेततत काल के) आधार पर िी िर् काल के अन्य दोनों बबन्दुओं-अथात्श ्भूत एवं भपवष्य का भाव ग्रिण कर सकते िैं। और, इस कारण, यहद वतर्शानकाल न िोता तो भूतकाल व भपवष्यत्काल की भी भावना सम्भव न िोती।"[416] इसके अततररक्त प्रत्यक्ष केवल उन्िीं िंपदाथों का िोता िै जर्नकी सिा वतर्शानकाल र्ें िो। इसभलए यहद वतर्शानकाल की सिा को स्वीकार न ककया ऱाए तो प्रत्यक्ष भी निीिं सकता। इस प्रकार वतर्शानकाल ऱात्र गणणत का िी पवर्षय निीीं, बजल्क काल का एक खण्ड िै जर्सकी एक तनजश्चत अवधध िै, जर्सर्ें भौततक ठोसपन ी।'[417]

भौततक र्गत् ्के उद्भव व स्वरूप के सम्बन्ध र्ें हदए गए भभन्न-भभन्न भसद्धान्तों के पवरोध र्ें वात्स्यायन तकश करते िैं।[418]' क्षणणकवाद की आलोचना करते िुए उनका किना िै कक िर् यि तनजश्चत निीं ंकि सकते कक एक क्षण के बाद एक सिा का स्थान दूसूरी सिा ले लेगी, और एक सिा की उत्पपि एवं उसके अन्त के बीच कोई ऱोडने वाली कडी तो िोनी िी चाहिए। क्षणणकता के तथ्य को िर् विंास्वीकार कर सकते िैं र्िां ंउसका बोध िोता िो, ककन्तु र्िां उसका बोध निीं, र्ैसे ेपत्थर आहद र्ें, विांकैसे ेस्वीकार कर सकते िैं!'[419] पदाथों के

---

414 न्यायभाष्य, 2 / 1 , 39 और आगे; 1: 43। और देणखए 'भारतीय दर्नश, खण्ड 1, पृष्ठ 596 ।

415 न्यायभाष्य, 21, 39।

416 न्यायभाष्य, 2:1,40।

417 व्ाइटिेड हद पप्रंभंसपल आफ ररलेहटपवटी, पृष्ठ 7।

418 न्यायभाष्य, 4 2, 31-33, और 4 2, 26-27 ।

419 न्यायभाष्य, 3 2, 11, और देणखए 3 2, 12-13 ।

लगातार बोध से पररणार् यि तनकलता िै कक उसका अजस्तत्व तनरन्तर रिता िै। 'प्रत्येक पदाथ शअभावात्क िै इस कल्पना का प्रत्याख्यान इस आधार पर िो र्ाता िै कक यहद प्रत्येक पदाथ शअभावात्क िै तो कोई संकभलत पदाथ शकैसे िो सकता िै।'[420] और न िी सब पदाथों को एक-दूसूरे का सापेक्ष कि र्ा सकता िै। यहद लम्बा और छोटा दोनों अन्योन्याधश्रत िैं, तो एक के अभाव र्ें दूसूरा भी न रिेगा। और यहद दोनों र्ें से एक भी अपने-आप र्ें 'सत्' ् निीं ंिै तो उनके परस्पर-सम्बन्ध की स्थापना निीं िो सकती ।[421] अतनत्यता के भसद्धान्त का अवलम्ब पदाथों की उत्पपि और पवनार् के तथ्यों पर िै। नैय्यापवक का तकश िै कक परर्ाणु,ु आकार्, देर् और काल उनके कुछ गुण ऐसेिैंर्े न तो उत्पन्न िोते िैंऔर न पवनष्ट िोते िैं।'[422] इसका पवरोधी र्त कक सब पदाथ शतनत्य िैं, सर्ान रूप से दोर्षयुक्त िैं, क्योंकक कुछ पदाथों को िर् प्रत्यक्ष देखते िैं कक वे उत्पन्न भी िोते िैं और नष्ट भी िोते े िैं। भर्धश्रत् ्पदाथ शतो अवश्य िी बनते ेव बबगडते िैं।'[423] वात्स्यायन 'सवपृशथृक्त्ववाद' पर भी पवचार करते िैं।[424] नैव्यातयक का र्त िै कक सम्पूण शकेवल अपनेभागों का संकलन निीं। उसका अपना अलग अजस्तत्व िै और वि अपनेभागों र्ें सर्वाय-सम्बन्ध से रिता िै। वात्स्यायन इस बौद्ध र्त का'[425] प्रत्याख्यान करते िैं कक सम्पूण श भसवाय अपनेभागों के संकलन के अन्य कुछ निीं और सम्बन्ध केवल भर्थ्या िै।'[426]

अभाव (असत्) ् सेर्गत् ्की उत्पपि निीं िो सकती। अभावपरक प्रकल्पना के सर्थकश युजक्त देते िैं कक कोई काय श तब तक उत्पन्न निीं िोता र्ब तक कक कारण नष्ट निीं िोता। अंकुर की उत्पपि के भलए बीर् को अवश्य नष्ट िो र्ाना िोता िै। इस पवचार के पवरोध र्ें वात्स्यायन का तकश यि िै कक कारण, र्से ेनष्ट िो गया कि र्ाता िै, पवनार् के पश्चात्,् कफर से अजस्तत्व र्ें निीं आ सकता, और नष्ट िो गई वस्तुओंसे कुछ भी उत्पन्न निीं िो सकता। यहद बीर् का नार् अंकुर की उत्पपि का कारण िोता तो र्ैसे िी बीर् के टुकडे-टुकडे िुए, उसी क्षण र्ें अंकुर को उत्पन्न िो र्ाना चाहिए था। वस्तुतः अंकुर केवल तभी प्रकट िोता िै र्बकक बीर् के पवभाग के बाद उसके कणों से एक नवीन सजम्श्रण बन र्ाता िै। इस प्रकार अंकुर की उत्पपि अभाव से न िोकर बीर् के कणों की पुनव्यवशस्था से िोती िै।''[427]

---

420 न्यायभाष्य, 4/1 37-40, और देणखए 4/2 26-27, 31-33।

421 यहद वस्तुओं का कोई पवभर्ष्ट लक्षण (अथवा व्यजक्तत्व) र्ैसी कुछ वस्तु निीं, तो िर्ें एक से ेदो अणुओं अथवा एक िी आकार के दो पदाथों के पवर्षय र्ें लम्बाई और छुटाई के सापेक्ष भाव क्यों निीं िोते? अपेक्षा से तात्पय शयि िै कक र्ब िर् दो वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते िैं तो उनर्ें से एक का दूसूरी पर आधधपत्य लक्ष्य करना िर्ारे भलए सम्भव िो र्ाता िै। (न्यायभाष्य, 4/1, 40)

422 न्यायभाष्य, 4/1 25-28।

423 न्यायभाष्य, 4/1 39-33।

424 न्यायभाष्य, 4/1 34-36।

425 देणखए बौद्ध अर्ोककृत 'अवयवतनराकरण'। इसका रचतयता नौवीं र्ताब्दी के अन्त के लगभग िुआ था।

426 वात्स्यायनकृत 'संख्यैकान्तवाद' की व्याख्या स्पष्ट निीं। यि संभवतः पपथागोरस की संख्यापवर्षयक प्रकल्पना र्ैसे ककसी भसद्धान्त का उल्लेख करती िै।

427 न्यायभाष्य, 4/1 14-18 ।

इस र्त कक र्गत् ्अकस्र्ात् ्उत्पन्न िो र्ाता िै, पववेचना की गई िै, और उसे ेत्याग हदया गया िै। सर्स्त अनुभव को बेकार बताए बबना अथवा झूठा भसद्ध ककए बबना, काय-शकारणभाव के तनयर् का तनर्ेषेध नर्ीं ं ककया र्ा सकता।'[428]

22. र्ीवात्र्ा और उसकी तनयतत

न्याय के अनुसार, पवश्व र्ें कुछ तत्त्व ऐसेर्ैं र्ो भौततक नर्ीं्ैं। ये िैं िर्ारे बोध, इच्छा, द्वेर्ष, संकल्प और सुख-दु:ख की संवेदनाएं।[429] चैतन्य की ये सब अवस्थाएं ंपररवतनशर्ील िैं, और इस प्रकार इन्र्ें द्रव्यों के साथ न भर्लना चाहिए। उन्र्ें आत्र्ारूपी द्रव्य के गुण र्ाना गया िै।

आत्र्ा एक यथाथसशिा िै और इसके गुण िैं इच्छा, द्वेर्ष, संकल्प, सुख-दु:ख तथा ज्ञान। साधारणतः नैय्यातयक आत्र्ा के अजस्तत्व को अनुर्ान प्रर्ाण के द्वारा भसद्ध करता िै, यद्यपप उसके सर्थनश र्ें र्ास्त्रीय प्रर्ाण भी देता िै।'[430] उद्योतकर का र्त िै कक आत्र्ा की यथाथसशिा का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा भी प्राप्त ककया र्ा सकता िै। उसके अनुसार 'र्'ैं रूपभाव का प्रर्ेय पदाथ शआत्र्ा िै।'[431] भभन्न-भभन्न बोधों की प्रत्यभभज्ञा 'र्ेरी' के रूप र्ें िोना यि भसद्ध करता िै कक आत्र्ा की सिा तनरन्तर पवद्यर्ान रिती िै।[432] र्ब कोई पुरुर्ष ककसी पदाथ-श पवर्ेर्ष को र्ानना अथवा सर्झना चािता िै तो वि पिलेसोचता िै कक यि क्या िो सकता िै और उसे ेइस रूप र्ें र्ानता िै कक यि अर्ुक प्रकार का िै। यि र्ाननेकी किया उसी एक कता शकी िै जर्सने र्ानने की इच्छा की थी, और पीछे का पवचार भी उसी कता शका िै। इस प्रकार यि ज्ञान उसी एक किाशकी उपजस्थतत का संकेत करता िै और यिी आत्र्ा िै।[433] िर् उन पदाथों का स्र्रण करते िैं जर्नका बोध िर्ें पिले िुआ िो।'[434] र्ब कोई ककसी पदाथश को देखता िै, उससेआकृष्ट िोता िै तथा उसे ेप्राप्त करने की चेर्ष्टा करता िै, तो इस सब भभन्न-भभन्न कियाओं का आधार विी एक सार्ान्य सिा िै जर्से िर् आत्र्ा के नार् से र्ानते िैं।[435] यहद िर्ारा र्ानभसक र्ीवन प्रत्येक क्षण र्ें एक अद्भुत गुणात्र्क रूप धारण ककए रिता िै, र्ो एक प्रर्ाता के रूत शइततिास र्ें एक क्षण का तनर्ाणश करता िै तो इसका कारण यि िै कक यि इसी एक सार्ान्य आत्र्ा से सम्बन्ध रखता िै, ककसी अन्य से नर्ीं। उद्योतकर का किना िै कक ऐसेव्यजक्त के भलए र्ो र्ीवात्र्ा को नर्ीं र्ानता, प्रत्येक बोध अपने-आप र्ें

428 न्यायभाष्य, 4:1, 22-24।

429 यहद सुख, दु:ख, राग और द्वेर्ष को संवेदना की अवस्थाएं र्ाना र्ाए तो चैतन्य की तीन अवस्थाएं िैं-ज्ञान, संवेदना तथा इच्छा।

430 न्यायभाष्य, 1/1 10।

431 न्यायवाततकश, 3/1, 1 वैर्ेपर्षक के र्त र्ें आत्र्ा योगपवद्या के प्रत्यक्ष का प्रर्ेय िै। (वैर्ेपधक सूत्र, 9/1 11 न्यायकन्दली, पृष्ठ 196) ।

432 न्यायभाष्य, और न्यायवाततकश, 1/1 , 10।

433 न्यायभाष्य, 1/1, 10 |

434 न्यायभाष्य, 3 1, 14; और s / 1 , 7-11 |

435 एककतृकशत्वं ंज्ञानेच्छाप्रवृिीनां सर्ानाश्रयत्वर् ्(न्यायभाष्य, 3/2 ,34)

 भभन्न िोना चाहिए और उसका अपना अलग एक प्रये्य िोना चाहिए, तथा कोई भी ज्ञान अथवा सूतृत सम्भव न

िी सिकेगी।'[436] संवदेनात्र्क तथा स्निैात्र्क तत्त्वों की केवल सजम्र्श्रणर्ात्र िोनेसे चेतना की कोई भी अवस्था र्ेरी िै या अन्य की, ऐसी पृथक् करके निंीं र्ानी र्ा सकती । दूसूरे का अनुभव र्ेरा अनुभव निंीं, क्योंकक र्ेरी आत्र्ा उसकी आत्र्ा से भभन्न िै। ि्र्ारी सब र्ानभसक अवस्थाएं ्र्ैसे ्सूतृत, अभभज्ञान, र्ीवात्र्ा की सापेक्ष तनरन्तरता की अभभज्ञता, आत्र्ा का संकल्प या आग्रि, अन्य आत्र्ाओं के साथ सिानुभूतत अथवा सम्वन्ध की चेतना, ये सब सूधचत करती िैं कक आत्र्ा का यथाथ शअजस्तत्व िै।

भौततकवादी के इस र्त का कक चेतेना दिे का गुण िै, सरलता के साथ प्रत्याख्यान िो र्ाता िै। यहद यि दिे का गुण िोती तो इसका स्थान दिे के भभन्न-भभन्न भागों र्ें और उसके भौततक अंर्ों र्ें भी िोता।[437] यहद दिे के भौततक अंर्ों र्ें भी चेतना िै तो िर्ें र्ानना िोगा कक व्यजक्त की चेतना पवपवध प्रकार की चेतनाओंका सजम्र्श्रण िै र्ो दिे के भभन्न-भभन्न अंर्ों सेउत्पन्न िुई िै। यहद दिे र्ें चेतना र्ानी र्ाए तो प्रकृततर्ात्र र्ें भी चेतना र्ाननी पडेगी, क्योंकक प्रकृतत के तत्त्व िी दिे का तनर्ाणश करते िैं। यहद दिे से भभन्न आत्र्ा का अजस्तत्व निंीं तो नैततकता का कुछ भी र्ित्त्व निंीं रि र्ाता।[438] क्योंकक दिे क्षण-क्षण र्ें बदलती रिती िै, इसभलए कोई भी पाप आगार्ी र्ीवन र्ें ि्र्ारा पीछा कैस करेगा। यहद चेतना दिे का अतनवाय शगुण िै तो वि अपनेइस अतनवाय शगुण को कभी भी छोड न सकती, ि्र्ारे भलए ऐसी दिेों को देखना र्ो चेतना-र्ून्य िो, असंभव िो र्ाता-र्ैसे ्कक र्ृत दिे चेतना-र्ून्य देखी र्ाती िै। सर्ाधध अवस्था र्ें चेतना निंीपाई र्ाती। दिे का यि स्वाभापवक गुण निं ंिै, क्योंकक र्ब तक दिे रिती िै तब तक यि बराबर उसके साथ निंीरिती, र्ैसेकक रंग आहद अन्य गुण दिे के साथ बराबर रिते िैं।'[439] यहद चेतना दिे का आकजस्र्क गुण िोती तो इसका कारण दिे के अततररक्त अन्य कुछ िोता। इसके अततररक्त, चेतना उस पदाथ शका गुण निं ंिो सकती जर्सकी कक चेतना िोती िै, बजल्क उसी का गुण िो सकती िै, र्ो स्वयंचेतन िै। चेतना को दिे का गुण र्ानें तो इसका ज्ञान दूसूरों को भी िोना चाहिए।[440] दिे चेतना की सिायक भी निंीं िै, र्ैसा कक अनुभव सवपशवहदत िै। अधधक से अधधक यि स्वीकार ककया र्ा सकता िै कक यि (दिे) चेतना की अभभव्यजक्त र्ें साधन व सिायक-र्ात्र िै। दिे की पररभार्षा यि की गई िै कक दिे कियाओं, इजन्द्रयों तथ पदाथों का र्ाध्यर् िै।[441] आत्र्ा दिे के द्वारा िी पदाथों को प्राप्त करने अथवा उनसे ्छुटकारा पाने का प्रयत्न करती िै, क्योंकक दिे िी इजन्द्रयों, र्न तथा भावनाओं का स्थान िै। कफर् दिे की चेतना एवं आत्र्ा के

---

436 न्यायवातत्तकश, 1/1 10। वाचस्पतत का किना िै कक "यहद आत्र्ा की अनुपजस्थतत र्ें बांधों की सूतृत तथा उनका पवलयन इस प्रकल्पना के अन्तगतश सम्भव िो सकता कक प्रत्येक बोध बांधीं की श्रृंखला र्ें एक अवयव बन र्ाता, तो प्रत्येक बोध उक्त श्रृंखला के प्रत्येक अन्य चोध का स्र्रण करा सकता तथा उसके साथ पवलय िो सकता। वाचस्पतत का उक्त कथन वात्स्यायन के इस कथन का भावानुवाद िै कक "एक बोध की प्रत्यभभज्ञा दूसूर बांध के द्वारा उसी प्रकार संभव िोगी र्ैसेएक र्रीर द्वारा ककए गए अनुभवों की प्रत्यभभज्ञा दूसूरे र्रीर को िो।" (न्यायभाष्य, 1 1, 10)

437 देणखए सांख्यसूत्र, 3. 20-21, और इस पर पवज्ञानचक्षु और अतनरुद्ध को टीका।

438 देणखए न्यायभाष्य, 3:1, 4 ।

439 न्यायभाष्य, 3 2, 47।

440 देणखए, भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 261-62। और देणखए न्यायभाष्य 3 2.53-55।

441 न्यायसूत्र, 1/1,11 ।

साथ र्ी उसे ेधारण करती ि, एकात्र्ा स्वीकार र्निंकर सकते। और न िी िर् र्ीवनी र्जक्त की प्रकियाओंके साथ चेतना का तादात्म्य स्वीकार कर सकते िैं। आत्र्ा का दि के साथ र्ी पवर्ेर् सम्बन्ध ि उसी का नार् र्ीवनी र्जक्त ि।'[442]

आत्र्ा इजन्द्रयांर्निं ि, बजल्क इजन्द्रयों का तनयंत्रण करने वाली ि, तथा इजन्द्रयों द्वारा प्राप्त ज्ञान का संश्लेपण करने वाली ि।'[443] यि र्ीवात्र्ा िी ि र्ी भभन्न-भभन्न प्रकार के अनुभवों र्ें एकत्व स्थापपत करती ि। आंख र्ब्दों को र्निंसुन सकती, न कान िी वस्तुओंको देख सकते ि, और यि चेतना कक र्ें जर्स पदाथ शको अब देख रिा िूं उसके पवर्षय र्ें र्नैंसुना भी था, सम्भव र्निं िो सकती थी यहद आत्र्ा इजन्द्रयों से भभन्न तथा उनसे े परे न िोती। इजन्द्रयांसाधनर्ात्र ि और इसभलए उनका उपयोग करने के भलए ककसी कता शकी आवश्यकता ि। इजन्द्रयांकेवल भौततक प्रकृतत सेउत्पन्न ि, अतः चेतना उसका गुण र्निंिो सकती। देखा िुआ पदाथ शऔर आंखें यहद दोनों नष्ट भी िो र्ाएंतो भी यि ज्ञान कक र्नैं देखा था, रिता िी ि, और इसभलए यि ज्ञान इजन्द्रयों या बाह्य पदाथों का गुण र्निंिो सकता।'[444] आत्र्ा और र्न को भी एक र्निंर्ाना र्ा सकता, क्योंकक र्न एक साधन-र्ात्र ि जर्सके द्वारा आत्र्ा र्नन अथवा पवचार करती ि। क्योंकक र्न परर्ाणुओं से बना ि अतः यि भी दि की भांतत िी, आत्र्ा र्निंिो सकता। यहद बुद्धि को र्न का गुण र्ानें तो अनेकों वस्तुओं के एक साथ ज्ञान की, र्ैसा कक योधगयों को िोता ि, व्याख्या र्निंिो सकेगी।'[445] आत्र्ा का ऐक्य दि, इजन्द्रयों या र्न के साथ र्निंिो सकता, क्योंकक दि के नष्ट िोने, इजन्द्रयों के अलग िो र्ाने और र्न के तनश्चेष्ट िो र्ानेपर भी आत्र्ा बनी रिती ि।'[446] उक्त सब प्रर्ेय पक्ष के पदाथ शिैं और प्रर्ाता र्निंबन सकते, र्बकक आत्र्ा िी प्रर्ाता ि।"[447]

यि स्थायी आत्र्ा बुद्धि, उपलजब्ध अथवा ज्ञान र्निं ि।'[448] बुद्धि अस्थायी ि, र्बकक आत्र्ा को अवश्य स्थायी िोना चाहिए।[449] िर् अपनी चेतना की बिती िुई र्ल की धारा से उपर्ा दे सकते िैं, र्िां र्न की एक अवस्था के पवलीन िोतिी दूसूरी प्रकट िो र्ाती ि। पदाथ शका र्ो भी स्वरूप िो, र्ब्द की भांतत द्रुतु गतत से णखसकनेवाला अथवा घडे की तरि अपेक्षाकृत स्थायी बोध अपने-आप र्ें क्षणणक (अस्थायी) ि।"[450] पदाथ शका सापेक्ष स्थातयत्व बोध की सापेक्ष पवभर्ष्टता का कारण िोता ि, ककन्तु इसके कारण बोध स्वयं स्थायी र्निंिो र्ाता।"[451] प्रत्यभभज्ञा (पिचान) की योग्यता बुद्धि का गुण र्निंिो सकती।"[452] बुद्धि, नैय्यातयक के अनुसार, न

---

442 न्यायकन्दली, पृषृठ 263।

443 न्यायभाष्य, 31, 1।

444 न्यायभाष्य, 32, 18

445 न्यायभाष्य, 3:2, 19 ।

446 प्रर्स्तपाद का पदाथधर्शसंग्रि, पृषृठ 69, और देणखए भार्षापररच्छेद ,47-49 ।

447 न्यायवातत कश, 3 2, 19 ।

448 न्यायसूत्र, 1:1-5 ।

449 न्यायवाततंकतात्पयटशीका,1:1, 10।

450 न्यायभाष्य, 32, 1-2 3 2, 18, 41 ।

451 न्यायभाप्य, 32, 44, और देणखए न्यायवातत कश, 3 2, 45।

452 न्यायभाष्य, 3: 2,3 ।

तो द्रव्य ि◌ै और न ि◌ी प्रर्ाता ि◌ै, बजल्क र्ीवात्र्ा का एक गुण ि◌ै जर्सका बोध ि◌ो सकता ि◌ै। र्ीवात्र्ा उन सबकी द्रष्टा ि◌ै जर्नसे दु◌ुःख-सुख उत्पन्न ि◌ोते ि◌ैं। वि सुख व दु◌ुःख की भोक्ता, अथात्श,◌् अनुभव करने वाली ि◌ै, और सब पदाथों का ज्ञान प्राप्त करने वाली ि◌ै।

वि द्रव्य र्ो इन गुणों का तनधान ि◌ै, अवयव-घहटत नि◌िंीं सकता, क्योंकक न्यायर्ास्त्र की यि धारणा ि◌ै कक भर्धश्रत पदाथ शनार्वान् ◌्ि◌ैं र्बकक सरल (तनरवयव) पदाथ शतनत्य ि◌ै। जर्सकी उत्पपि ि◌ै वि अवश्य अवयवों से भर्लकर बना ि◌ै, और र्ब अवयव अलग-अलग ि◌ो र्ाते ि◌ैं तो पदाथ शका पवनार् ि◌ो र्ाता ि◌ै। र्ीवात्र्ा तनरयव ि◌ै और तनत्य ि◌ै। इसका न आहद ि◌ै, न अन्त ि◌ै। यहद र्ीवात्र्ा ने कभी बनना आरम्भ ककया ि◌ोता तो उसका कभी अन्त भी ि◌ोता। र्ीवात्र्ा का आकार भी पररभर्त नि◌ीं ◌ंि◌ो सकता, क्योंकक र्ो पररभर्त ि◌ै उसके अवयव ि◌ैं और वि नार्वान् ◌्ि◌ैं। आत्र्ा को या तो परर्ाणु-तनभर्तश ि◌ोना चाहिए, अथवा अपररभर्त ि◌ोना चाहिए। वि भर्धश्रत पदाथों के सर्ान र्ध्यर् पररर्ाण वाली नि◌िंीं सकती। यि परर्ाणुघहटत नि◌िंीं सकती क्योंकक उस अवस्था र्ें ि◌र्ें उसके बुद्धध व इच्छा आहद गुणों का ज्ञान न ि◌ोता। उसके परर्ाणु ◌ुघहटत ि◌ोनेकी अवस्था र्ें बोध सारी दि र्ें व्याप्त नि◌िंीं सकता था।'[453] यहद वि र्ध्यर् पररर्ाण की ि◌ोती तो या तो दि से बडी या छोटी ि◌ोती। दोनों ि◌ी अवस्थाओं र्ें वि दि को व्याप्त न कर सकती, र्बकक वि करती ि◌ै और उसे ◌ेकरना चाहिए। यहद वि दि के ि◌ी पररर्ाण की ि◌ोती तो दि के भलए बिुत छोटी भसद्ध ि◌ोती, क्योंकक दि तो र्न्र् के बाद से बराबर बढ़ती रिती ि◌ै। इसके अततररक्त र्न्र्-र्न्र् र्ें वि अपना पररर्ाण बदलती रिती, यि कहठनाई उपजस्थत ि◌ोती जर्से ◌ेदूरू ककया ि◌ि नि◌िंर्ा सकता। इसभलए वि सवव्शयापक ि◌ै, यद्यपप वि एक सर्य र्ें अनेक पदाथों का ज्ञान उपलब्ध नि◌िंकर सकती, क्योंकक उसका साधन र्न अणुरूप ि◌ै। दि द्वारा ककए गए सर्स्त कर्ों के संस्कारों को र्न ि◌ी संभालकर रखता ि◌ै, और ि◌िर एक आत्र्ा के पास सार्ान्यतः एक ि◌ी र्न ि◌ै, जर्सेतनत्य किा गया ि◌ै।[454]

प्रत्येक व्यजक्त र्ें आत्र्ा अपनी पवर्ेर्षता रखती ि◌ै।[455] र्ीवात्र्ाओं की संख्या अपररभर्त ि◌ै। यहद प्रत्येक व्यजक्त की र्ीवात्र्ा पृथृक् पृथृक् न ि◌ोती तो सबके अनुभव एक सर्ान ि◌ो र्ाया करते।'[456] यहद सब दि◌ें के अन्दर एक ि◌ी आत्र्ा पवद्यर्ान रिती तो र्ब एक को सुख या दु◌ुःख अनुभव ि◌ोता तो सबकी उसी प्रकार के सुख और दु◌ुःख का अनुभव ि◌ोता, ककन्तु ऐसा ि◌ोता नि◌िंी।

चेतना आत्र्ा का अतनवाय शगुण नि◌ीं ◌ंि◌ै। बोध की र्ृंखलाओं का भी एक अन्त ि◌ै। "अजन्तर् बोध के पवर्षय र्ें जस्थतत यि ि◌ै कक कारण (पुण्य या पाप) के न रिने पर वि भी सर्ाप्त ि◌ो र्ाता ि◌ै अथवा काल की पवर्ेर्षताओं से (र्ो अच्छे व बुरे कर्ों का अन्त कर सकता ि◌ै), अथवा स्वयं अजन्तर् बोध द्वारा उत्पन्न संस्कारों से भी

---

453 तकशसंग्रिदीपपका, 17।

454 एक ि◌ी आत्र्ा द्वारा भभन्न-भभन्न र्रीरों के संचालन की सम्भावना को असाधारण घटना र्ाना गया ि◌ै (न्यायभाष्य, 32, 32)

455 न्यायभाष्य, 1 1, 16; 32,56।

456 न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 1 1, 10; न्यायभाष्य, 3: 1, 14।

 अजन्तर् बोध का अन्त िो र्ाता िै।"[457] पररणार् यि तनकला कक आत्र्ा, र्ो चेतना का आधार िै, सदा िी चेतन
रिे, आवश्यक निीं। वस्तुतः यि एक ऐसा तत्त्व िै र्ो चेतना की अवस्थाओं से गुणवान िोता िै।"[458] चेतनता आत्र्ा से पृथक् निीं रि सकती र्ैसे ेकक अजग्न की ज्वाला अजग्न से पृथक् निीं रि सकती। ककन्तु आत्र्ा के भलए यि आवश्यक निीं ंकक वि चेतेन रिे। र्ाग्रत अवस्था र्ें आत्र्ा का र्न के साथ संयोग िोनेसे उत्पन्न एक गुण चेतनता िै। यि आत्र्ा का एक अन्तपवरशार्ी गुण िै।'[459]

आत्र्ा एक ऐसा तनत्य तत्त्व िै कक सर्य-सर्य पर इसका ऐसी एक दिे से सम्बन्ध िोता रिता िै र्ो इसके अनुकूल िोती िै। दिे र्नुष्य को अपनेकर्ों के अनुसार भर्लती िै, और सुख-दुःख का आधार दिे िी िै।[460] दिे की रचना तनयतत[461] की अदृष्ट र्जक्त से िोती िै और पूवकशर्ों के फलों का पररणार् िै।'[462] प्रत्येक र्नुष्य को ऐसी दिे भर्लती िै र्ो कक उन अनुभवों का, र्ो उसे ेभोगने िैं, र्ाध्यर् बन सके। प्राणी का र्न्र् केवल भौततक प्रकिया निीं। उद्योतकर का किना िै कक र्ाता-पपता का कर् शजर्न्िें बच्चे की उत्पपि से िोनेवालेअनुभवों को भोगना िै, और उस व्यजक्त का अपना कर् शजर्से ेइस र्गत् र्ें अनुभवों को भोगना िै-ये दोनों परस्पर भर्लकर र्ाता के गभ शर्ें दिे की उत्पपि के कारण बनते िैं।'[463] दिे के साथ आत्र्ा का सम्बन्ध उसका र्न्र् किलाता िै एवं उससेअलग िो र्ानेका नार् र्ृत्यु िै।[464] सृजष्ट के प्रारम्भ र्ें परर्ाणुओं र्ें एक किया चालू िो गई, जर्ससे ेवे संयुक्त िोकर भौततक पदाथों की सृजष्ट करते िैं। इसी प्रकार की एक किया आत्र्ाओं के र्नों र्ें भी िोती िै र्ो आत्र्ाओं के अपनेपपछलेकर्ों के अनुसार कई अन्य गुणों को उत्पन्न करती िै। प्रत्येक आत्र्ा के र्ूल शइततिास र्ें अनेक र्न्र् अन्ततनहिशत िोते िैं। प्रत्येक क्षण र्ें इसकी ऐततिाभसक परम्परा अपनी र्ड़ेंभूतकाल र्ें रखती िै और भपवष्य की रूपरेखा भलए रिती िै। प्रत्येक र्न्र्, ऐततिाभसक रूप र्ें व्यवजस्थत इस प्रकार की श्रृंखंला की केवल एक कडी िै।

---

457 न्यायवाततकश, 32, 24 ।

458 उदयन के र्त र्ें यि एक ऐसा द्रव्य िै जर्सर्ें ज्ञान, आिाद तथा अन्य पवर्ुद्ध गुण िैं, एवं यि तनत्य, अपवनश्वर, पररवतनशरहित, आकार र्ें अणु से बडा निीं, ककन्तु सर्स्त र्रीर र्ें व्यापक िोनेकी क्षर्ता रखता िै।

459 1: 1, 10 पर न्यायभाष्य और न्यायवाततकश, प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृष्ठ 99।

460 न्यायभाष्य, 3: 1, 27। दिे र्ुख्यतया पृथ्वी से ेबनी िै, यद्यपप अन्य तत्त्व भी इसके साथ सिायक के रूप र्ें रिते िैं (3: 1, 27-29)। र्ानवीय दिे का तनर्ाशण र्ुख्यरूप से ेपृथ्वी से िुआ िै, ककन्तु न्याय, वरुणलोक र्ें तनभर्तश र्लीय दिेों को भी स्वीकार करता िै। इसी प्रकार यि सूयलशोक र्ें आग्नेय और वायुलोक र्ें वायव्य दिेों को भी स्वीकार करता िै। ककन्तु आकार्ीय अथवा ईथर की दिेें निीं।

461 न्यायभाष्य, 3/2 60-72 ।

462 पूवकृशतफलानुबन्धात् ्(न्यायभाष्य, 8/2, 60) ।

463 न्यायवाततकश, 3/2, 63

464 .4: 1, 10। प्रश्न पूछा र्ाता िै कक संसार रूपी चि का फेरा, अथात्श र्न्र् व र्ृत्यु का सम्बन्ध र्न के साथ िै या आत्र्ा के साथ? उद्योतकर उिर देते िैं "यहद संसार से तुम्िारा अभभप्राय कर् शसे िै (अथात्श र्रीरों र्ें प्रपवष्ट िोनेऔर उन्िें छोडने से िै) तो इसका सम्बन्ध र्न से िै, क्योंकक र्ो वस्तुतः गतत करता िै (संसरतत) वि र्न िै। दूसरी ओर, यहद संसार से ेअभभप्राय तुम्िारा (सुख और दुःख के) अनुभवों से िै तो इसका सम्बन्ध आत्र्ा से िै, क्योंकक यि आत्र्ा िी िै र्ो सुख और दुःख का अनुभव करता िै।" (न्यायवाततकश,1/1, 19 ।)

पूव-शअजस्तत्व की प्रकल्पना को भसद्ध करने का कोई पवर्ेष प्रयत्न इसभलए निीं ककया गया क्योंकक इसे े साधारणतः स्वीकार कर भलया गया ि ै। भर्ुएकदर् प्रारजम्भक अवस्थाओंर्ें सुख और दु:ख के धचह्नों को प्रकट करने लगते ि ैं, और ि र् बच्चे की र्ुस्कान अथवा रोने को कर्ल के णखलनेतथा र्ुरझाने के सर्ान केवल याजन्त्रक गतत बतलाकर टाल निींसकते।'[465] र्नुष्य-प्राणी एक फूल से किीं ंअधधक र्ित्त्वपूण शअजस्तत्व रखता ि ै, नवर्ात भर्ु की दूधू पीने की इच्छा का सर्ाधान चुम्बक के प्रतत लोि के टुकडे के स्वाभापवक आकर्षणश से उसकी उपर्ा देकर निींककया र्ा सकता, क्योंकक भर्ु केवल धातु का टुकडा निीं ि ै।'[466] वि आपपि कक इच्छाओं सर्ेत बच्चे उत्पन्न िो सकती ि ैं, र्ैसेकक गुणों सर्ेत द्रव्य पैदा िोते ि ैं, भान्य निीं ि ै, क्योंकक इच्छाएं ंकेवल गुण निीं ि ै अपपतु उनका प्रादुभावश भूतपूव शअनुभव से िोता ि ै।[467] ि र् इस र्त् ्र्ें तनतान्त भुलावे र्ें निींआते ेऔर न िी पूवनशग्नता को लेकर आते ि ैं 'बजल्क कुछ सूतृतयों तथा स्वभावों को लेकर आते ि ैं र्ो ि र्नेअपनेपूवर्शन्र् से अजर्तश ककए ि ैं।'[468] पूवर्शन्र्ों तथा भावी र्ीवन संबंधी तकश को नैततक भावनाओं से सर्थनश प्राप्त िोता ि ै। यहद ि र् अपनी आत्र्ाओं के भलए भूतकाल तथा भपवष्य के अजस्तत्व को न र्ानें तो उस अवस्था र्ें 'कृतीन' श ्र्ो कुछ ककया उसका लोप तथा र्ो निींककया उसका फलभोग- इन दोनों से िर्ारा

तथा 'अकृताभ्यागर्'- अथाशत्

नैततक भाव नष्ट िो र्ाएगा। भपवष्य र्न्र् को अवश्य िोना िी चाहिए, जर्सर्ें ि र् अपने कर्ों का फल भोग सकें, और वतर्शान र्ें व्यजक्तयों के भाग्य र्ें र्ो इतना भेद हदखाई देता ि ै उसका सर्ाधान करने के भलए भूतकाल के र्न्र् को भी र्ानना आवश्यक ि ै। र्ब िर्ारे दण्ड अथवा पुरस्कार हदलानेवाले गुणावगुणों का कोर् तनःर्ेष िो र्ाता ि ै तो र्ीवात्र्ा संसार एवं पुनर्न्र्् से र्ुक्त िो र्ाती ि ै और र्ोक्ष प्राप्त कर लेती ि ै।'[469] वात्स्यायन के अनुसार, िर्ारे सब कर्ों का फल र्ोक्ष सेपूव शके अजन्तर् र्न्र् र्ें प्राप्त िोता ि ै।'[470]

दु:ख सेछुटकारा पाने का नार् र्ोक्ष ि ै।"[471] यि अर्रता की अवस्था भय से तनर्ुक्शत, अपवनश्वर, परर्ानन्द की प्राजप्त के भाव सेयुक्त, ब्रह्र् किी र्ाती ि ै।'[472] र्ोक्ष परर् आनन्द का नार् ि ै, र्ो पूण शर्ाजन्त से युक्त एवं अपपवत्रता (कलुर्षता) से रहित ि ै। यि आत्र्ा का पवनार् निीं ि ै, बजल्क केवल बन्धन का पवनार् ि ै। तनर्ेधात्र्क पररभार्षा र्ें कि सकते िैंकक यि दु:ख का अन्त ि ै, और तनजश्चत सुख की प्राजप्त निीं ंि ै क्योंकक सुख के साथ दु:ख सदा िी भर्धश्रत रिता ि ै और इसकी उत्पपि का भी कारण दु:ख की उत्पपि के सर्ान र्न्र् ि ै।

---

465 3 / 1 19-21।

466 3:1, 22-24।

467 3 / 1 25-26 ।

468 यि भी किा र्ा सकता ि ै कक इच्छाएं तथा प्रवृपियां ंकेवल आत्र्ा के अजस्तत्व को भसद्ध करती ि ैं, इसके पूवर्शन्र् को भसद्ध निींकरतीं। अन्ततोगत्वा, नये प्रारम्भ की न्याय की प्रकल्पना के अनुसार, िर्ें अपनी आत्र्ाओंके भूतकाल को र्ानना आवश्यक निीं ि ै।

469 न्यायभाष्य, 3 / 2,67 ।

470 न्यायभाष्य,41,64

471 1/1, 9

472 तदभयर् ्अर्रर्तृ्युपदं ब्रह्र्क्षेर्प्राजप्तः (न्यायभाष्य, 1/1, 22)

उद्योतकर बलपूवकश किता ि कक यहद ुक्त आत्ा को स्थायी सुख की प्राजप्त करनी िो तो इसे ेस्थायी ीर भी चाहिए, क्योंकक ीर की याजन्त्रक किया के बबना अनुभव िो निींसकता।"[473]

र्ब धाभर्कश ग्रन्थ सुख को आत्ा का अतनवाय शसारतत्त्व किते िैं, तो उनका तात्पय शउससेदुःख का सवथशा अभाव िोता ि। नैय्यातयक भसद्ध करता ि कक ुजक्त का प्रत्येक पवचार कर्-से-कर् दुःख से छुटकारा चािता ि।'[474] न्याय के र्त र्ें, प्रयत्न एवं कियात्कता और चेतेनता का पूरा अभाव तथा ीर व र्न से आत्ा का सवथशा पृथक्त्व िी ोक्ष ि। इस पवरुद्ध जस्थतत की तुलना, जर्से ेुक्त आत्ाएं प्राप्त करती िैं, प्रगाढ़ स्वप्नपविीन तनद्रा के साथ की ाती ि।[475] अरूत शअजस्तत्व की यि अवस्था, ो ज्ञान तथा आह्लाद से ून्य ि, बिुत गौरव की बताई गई ि। क्योंकक ीवात्ा इस जस्थतत र्ें पवभुत्व के सार्ान्य गुणों को धारण करती ि, यद्यपप ज्ञान, इच्छा एवं संकल्प के पवर्ेर्ष गुण उस सर्य पवद्यर्ान निीं िोते। वात्स्यायन इस भसद्धान्त की आलोचना कक आत्ा के सुख की अभभव्यजक्त का नार् िी ोक्ष ि, इस आधार पर करता ि कक न तो इसके भलए कोई प्रार्ण ि और न िी औधचत्य िी ि। यहद सुख की अभभव्यजक्त का कोई कारण ि, तो वि या तो तनत्य िि

सकता ि या अतनत्य िो सकता ि। यहद तनत्य ि, तो ुक्त तथा बद्ध आत्ा र्ें कोई अन्तर न िोना चाहिए। यहद कारण अतनत्य ि, तो वि क्या िो सकता ि? आत्ा का र्न के साथ सम्बन्ध वि निीं िो सकता, क्योंकक केवल इससे कुछ बनता निीं। अन्य सिायक, पुण्य आहद, स्वीकार करने पडगें। ककन्तु अतनत्य पुण्य से उत्पन्न वस्तु तनत्य निीं िो सकती। र्ब पुण्य क्षीण िो ाता ि तो उससे उत्पन्न सुख को भी सप्त िो ाना चाहिए।[476]' यि अवस्था बोधों सेभी तनलकुल ुक्त ि। क्योंकक, न्याय के अनुसार, बोध भी क्षणभंगुर और कर् शके उत्पादक िैं, इसीभलए बन्धन के भी उत्पादक िैं। सांख्य के इस र्त की कक ोक्ष पवरुद्ध चेतनता की अवस्था ि, सीक्षा र्ें किा गया ि कक इस चेतनता की उत्पपि का भी तो कोई कारण अवश्य िोना चाहिए, और जर्सका कोई कारण ि वि अवश्य अतनत्य ि। इसके अततररक्त, सांख्य का यि र्त कक ुक्तावस्था र्ें पुरुर्ष अपने स्वरूप र्ें अवजस्थत िो ाता ि, प्रकृतत के र्ड-तत्त्व को अत्यधधक बुद्धधपूण शबताता ि।'[477]

सीक्षक अनुभव करता ि कक नैय्यातयकों का ोक्ष एक तनरथकश र्ब्द ि; क्योंकक भौततकवाद और न्याय के दर्नश र्ें कुछ अधधक भेदे निींप्रतीत िोता। न्याय के र्त र्ें व्यजक्त न तो आत्ा ि और न दिे िी ि, बजल्क इन दोनों के संयोग का पररणार् ि। र्ब आत्ा का दिे से पृथक्त्व िोता ि तो ऐसा कुछ घहटत निींिोता ो संवेदना को उत्तेजर्त करे, र्ैसा कक ल्यूककर्स ने किा ि, "न तो पृथ्वी सरुद्र र्ें सा ाएगी और न सरुद्र स्वग शर्ें सा ाएगा।" पवनष्ट चेतना की ाजन्त्त ृत्यु की ाजन्त के सर्ान िी ि। स्वप्न-रहित तनद्रा संज्ञाून्य र्डता की जस्थतत ि। और िर् यि भी कि सकते िैं कक एक पार्षाण भी गम्भीर तनद्रा र्ें परर् आनन्द प्राप्त कर रिा ि, ैं, ऐसा

---

473 न्यायवाततकश, 1/1 22। और देणखए न्यायभाष्य ,41, 58 । सुख आत्ा का गुण ि ककन्तु अवयवरूप निीं वाचस्पतत का किना ि। देणखए न्याययाततंकंतात्पयटशीका 1/1, 22

474 सवदशर्नशसंग्रि, 111।

475 सुपुप्तस्य स्वप्नादर्नेश क्लोभाववदपवगःश (4/1, 63)

476 न्यायभाष्य, 1/1 22 और देणखए 'न्यायकन्दली पृष्ठ 286-87।

477 न्यायसूत्र, 3/2 73-78 ।

जसर्ें स्वप्न कोई पवघ्न निीं ◌ंडाल सकते। दुुःख तथा कार्ना से रहित अजस्तत्व, र्ो न्याय का आदर्् शिै, र्नुष्य के स्वप्नों का केवल एक र्ाक र्ालूर्् देता िै। संवेदनाओं, कार्नाओं और सब प्रकार के हितों का त्याग करना और देर्् और काल के बन्धन से र्ुक्त िोना परर्ात्र्ा र्ें नये भसरे से उत्पन्न िोनेसे तनश्चय िी भभन्न िै। भावुक हृदय व्यजक्त इस प्रकार के एक अपरूप राक्षस को, र्ो देवी-देवताओंकी रू्ततयशों के संग्रिालय र्ें स्थान पाने के योग्य िै, कभी र्ान्य निीं ठिरा सकते। वेदान्ती, चािे वि ककसी भी सम्प्रदाय का क्यों न िो, तकश करता िै कक र्ोक्ष से तात्पय शइस तनबलश, नश्वर, व्यजक्तत्व को छोडकर अनन्त र्ें सर्ा र्ाना िै। नैय्यातयक यि प्रततपादन करने को उत्सुक िैंकक र्ुजक्त की दर्ा परर्ानन्द की दर्ा िै।'[478] ककन्तु वे ऐसा तब तक निींकर सकते र्ब तक कक वे आत्र्ा के साथ चेतना के सम्बन्ध की अपनी धारणा पर पुनपवचशार न करें।

23. आत्र्ा तथा चेतना के सम्बन्ध के पवर्षय र्ें न्याय के भसद्धान्त पर कुछ सर्ालोचनात्र्क पवचार

नैय्यातयक के सर्क्ष इस पवर्षय र्ें जस्थतत स्पष्ट निींिै कक उसके भसद्धान्त से चेतनता की पद-र्यादशा क्या िै। वि आत्र्ा को अपने आप र्ें चेतनापविीन र्ानता िै और युजक्त देता िै कक चेतनता की उत्पपि भौततक प्रकृतत के प्रतत आत्र्ा की प्रततकिया सिीती िै। उसकी धारणा िै कक िर्ारी चेतनता र्ें र्ो एकत्व िै वि आत्र्ारूपी एक यथाथ शतत्त्व के अजस्तत्व के कारण िी िै। िर्ारी चेतनता क्षणणक भी िै और कभी-कभी यि कुछ सर्य के भलए सवथशा पवलुप्त भी िो र्ाती िै। तो भी एक सर्ान सिा पवद्यर्ान अवश्य िै र्ो िर्ें वस्तुओं का स्र्रण कराती िै और यि ध्यान हदलाती िै कक िर्् बचपन और वृद्धावस्था र्ें विी िैं। इस तथ्य की व्याख्या के भलए नैय्यातयक आत्र्ारूपी एक तनत्य सिा को स्वीकार कर लेता िै र्ो सदा उसी रूप र्ें रिती िै, यद्यपप चेतनावस्थाएं ◌एक के पश्चात् ◌्दूसूरी परररवततततश िो सकती िैं ककन्तु क्या आत्र्ा स्वयं चेतनतापविीन िोते िुए भी प्रत्यभभज्ञा कर सकती िै? यहद तनहद्रतावस्था और तत्सर्ान अन्य भी कततपय अवस्थाओं र्ें िर्ारे चेतन र्ीवन का पूण शपवच्छेद िोता िै और यहद आत्र्ा स्वयं चेतनतारहित िै तो कफर प्रत्यभभज्ञा की व्याख्या ककस प्रकार िो सकती िै? यहद नैय्यातयक द्वारा कजल्पत आत्र्ा तनत्य तथा स्वयं चैतन्य-स्वरूप निीं िै र्ो र्ानभसक जस्थततयों की श्रृंखलाओं की साक्षी िै तो वि न तो पिचान सकती िै न िी स्र्रण कर सकती िै। र्ैसा कक र्ंकराचाय शका किना िै "र्ो यि र्ानता िै कक चेतनता का उन अवस्थाओं र्ें काय शबन्द िो र्ाता िै, उसके भलए भी चेतनता द्वारा असाक्षीकृत चैतन्यपविीनता के पवर्षय र्ें कुछ कि सकना सम्भव निींिो सकता।"[479] र्ीवात्र्ा को बबना व्यवधान के चेतन रिना चाहिए, जर्सेकभी अवकार्् निीं भर्लता। नैय्यातयक का यि र्ानना ठीक िै कक यहद चेतनता से तात्पय शस्वयं देखी गई या बािर सेदेखी गई, ककसी वस्तु की चेतना की अवस्थाओं का भसलभसला िै तो वि र्ौभलक यथाथ शसिा निीं ◌ंिै। यथाथसशिा िै द्रष्टा, र्ो तनत्य िै और आत्र्तनभरश िै ककन्तु यि पपछला तत्त्व चेतनता से परे िोना आवश्यक निींिै। अचेतन आत्र्ा चेतनावस्था के अवभर्ष्ट प्रभावों को अपनेअन्दर धारण

478 न्यायसार, पृष्ठ 39-41। और तुलना कीजए, न्यायभाष्य ,1/1, 22

479 र्ांकरभाष्य ,2/3 3,18 ।

 करता िै। यहद आत्र्ा को एक तनरन्तर चेतना के रूप र्ें निीं र्ाना र्ा सकता तो उसकी कल्पना करने की िी

आवश्यकता निीं। र्ानवदिे के र्जस्तष्क के कोष्ठक िी स्र्तृत और प्रत्यभभज्ञा के आधार बन सकते िैं। ककन्तु नैय्यातयक का सन्तोर्ष इस प्रकार के सर्ाधान से निींिोता इसीभलए उसे ेएक चेतनार्य प्रर्ाता अथवा आत्र्ा को र्ानना िोता िै। आत्र्ा को एक अभीततक पदाथ शस्वीकार करने का र्ो उसका र्त िै, यि उसी का फभलताथ श प्रतीत िोता िै। इसे ेआध्याजत्र्क र्ाना गया िै और यि भी आवश्यक िै कक इसे ेचैतन्यर्य स्वीकार ककया र्ाए, यद्यपप प्रयोगभसद्ध अथ शर्ें निीं। नैय्यातयक को धचन्ता िै कक तनत्य आत्र्ा को अस्थायी बोधों के साथ एक सर्ान न र्ान भलया र्ाए। आत्र्ा की आध्याजत्र्क यथाथतशा को अस्थायी र्ानभसक अवस्थाओं के साथ भर्धश्रत करना ठीक न िोगा। आत्र्ा सब सर्य र्ें इन क्षणणक र्ानभसक अवस्थाओं से प्रततबबजम्बत निीं ेरिती। ककन्तु इसे ेयहद उस उद्देश्य की पूतत शकरनी िै र्जसके भलए इसकी कल्पना की गई िै, तो इसे ेचैतन्यर्व िोना िी चाहिए।

इस पवर्षय र्ें सांख्य का र्त न्याय से एक पग आगे िै।

र्ब तक िर् आत्र्ा की यथाथतशा को चैतन्यर्य निींर्ानते,े चेतनता की व्याख्या करना कहठन िो र्ाता िै। िर् चेतनता को एक तृतीय वस्तु (tertiumquid) निींबना सकत-अथात् श ्एक प्रकार की यांबत्रक चर्क, र्ो दो चेतनतापवीन पदाथों की परस्पर किया-प्रततकिया से उत्पन्न िो र्ाती िो। यहद आत्र्ा अपने-आप र्ें चैतन्ययुक्त निीं, और यहद यि चैतन्य बाह्य र्गत् ्की किया के द्वारा उसके अन्दर उत्पन्न ककया र्ाता िै, तो न्याय के भसद्धान्त तथा भौततकवाद र्ें भेद िी क्या रि र्ाता िै? अथात्श ्यि िो सकता िै कक चेतनता केवल र्जस्तष्क की एक आनुर्षंधगक उपर् िो। चेतनता भौततकता से बिुत आगे ेसरक र्ाती िै और िर् इसके सर्ान कोई याजन्त्रक पदाथ शनिींढूंढ़ सकते। यि पवर्षय कक भौततक तथा अभौततक वस्तुएं एक-दूसरे पर ककस प्रकार किया-प्रततकिया करती िैं, अधचन्तनीय िै। र्ब िर् एक भौततक घटना, से र्ानभसक क्षेत्र र्ें आते िैं, तो िर् एक र्गत् ्से दूसरे र्गत् ्र्ें पग बढ़ाते िैं, र्ो अपपरर्ेय िै। यि कि देना कक चैतन्य अवस्थाएं चेतना-पवरहित दो पदाथों, अथात्श ्आत्र्ा तथा र्न की किया-प्रततकिया से उत्पन्न उपपवकार िैं, कोई सर्ाधान निीं। आत्र्ा असीर् तथा तनरवयव िै, र्न प्रर्ाणुओं से बना तथा तनरवयव िै, इसभलए इन दोनों की किया-प्रततकिया की कल्पना िर् कैसे ेकर सकते िैं?[480] यहद चेतनता कोई ऐसी वस्तु िै र्जसकी उत्पपि असीर् रूप से पवस्तृत आत्र्ा के अन्दर िोती िै, तो क्या इस चेतनता का आधार आत्र्ा अपने पूण शरूप र्ें िै अथवा दिेगत पवभर्ष्ट भाग के रूप र्ें? पिली अवस्था स्वीकार निींकी र्ा सकृती, क्योंकक उस अवस्था र्ें सब पदाथ शचेतना र्ें एक साथ आ र्ाने चाहिए। दूसरी अवस्था इसभलए संभव निीं, क्योंकक आत्र्ा के हिस्से ेनिीं ेिोते। पुण्य तथा पाप को यहद इस पवर्षय का तनणायशक र्ाना र्ाए तो वि भी असंगत िै, क्योंकक सर्ुद्र, नहदयों, आकार् तथा पवतशों के प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ पुण्य व पाप का क्या सम्बन्ध िो सकता िै? र्ंकराचाय शइसर्ें बलपूवकश अनेक आक्षेप करते िैं। क्योंकक प्रत्येक आत्र्ा सवव्शयापक िै, इसभलए एक आंत्र्ा से सम्बद्ध र्न को सब आत्र्ाओं से सम्बद्ध िोना चाहिए और पररणार्स्वरूप सब आत्र्ाओं को एक सर्ान अनुभव िोनेचाहिए। क्योंकक सब आत्र्ाएं सवव्शयापक िैं, अतः

---

480 र्ांकरभाष्य, 2: 2, 17। प्रलयावस्था र्ें आत्र्ाओंका परर्ाणुओं के साथ सम्पकश िोना निीं र्ाना र्ाता। तब वे अपने भूतकाल के संस्कारों को कैसे ेधारण कर सकती िैं? क्या र्न उन्िेंअपनेअन्दर जस्थर रखता िै और क्या प्रलयकाल र्ें भी र्न आत्र्ा के साथ रिता िै?

उर्न्े सिब दिेंीं र्् भी पवद्यर्ान िोना चाहिए। उि अवस्था र्् अनेक सवव्शयापक आत्र्ाएंएक िी दिे को भी घेरेंगी।'[481] यहद यि किा र्ाए कक र्न पर, र्ो स्वरूप र्् भौततक िै, आत्र्ा की किया से चेतनता की उत्पपि िोती िै, तो किना पडेगा कक आत्र्ा का चेतनता र्् भाग िै, क्योंकक र्ब दो भौततक पदाथ शएक-दूसूरे के सम्पकश र्् आते िैं तो वे केवल भौततक घटना के िी कारण बन सकते िैं। यहद िर् भौततकवाद के दोर्ष से बच तनकलना चािें, र्ो बुद्धध को परर्ाणुओं अथवा इलेक्रॉनों की एक अंधी िलचल का तनरुद्देश्य काय शबताता िै, तो िर्् चेतनता की स्वतन्त्र सिा र्ाननी िी पडेगी। आत्र्ा को एक तनरन्तर कियार्ील आत्र्ा के रूप र्् र्ानना िोगा, भले िी िर् इसके कायकशलाप सेअभभज्ञ न िों। पवसूतृत और असत्य की व्याख्या की आवश्यकता िो सकती िै, सूतृत और ज्ञान की निीं।

यहद िर् दिे और आत्र्ा र्् भेदे करते िैं तो िर्् उनकी पारस्पररक प्रततकिया की व्याख्या के भलए अदृष्ट (भाग्य) के भसद्धांत का आश्रय लेना िोगा, जर्से ेडेकाटश ने 'दैवयोग' किा िै। न्याय के अनुसार, आत्र्ा र्ो पवभु (व्यापक) िै, सवदशा र्न के साथ सम्बन्ध रखती िै और बोध तब उत्पन्न िोते िैं र्ब र्न का सम्बन्ध इजन्द्रयों के साथ िोता िै। र्न एक ओर इजन्द्रयों के साथ सम्बद्ध िोता िै और दूसूरी ओर आत्र्ा के साथ। यि ऐसा करने र्् ककस प्रकार सर्थ िोता िै, यि एक ऐसा रिस्य िै जर्सका सर्ाधान नैय्यातयक केवल परर्ात्र्जक्त की ओर संकेत करके करता िै।

न्याय, आत्र्ा और दिे को न केवल एक-दूसूरे से भभन्न अपपतु सार्ंर्स्यपूण शयथाथसिोए र्ानता िै। यि दिे से भभन्न ककन्तु दिे र्् तनवास करनेवाली आत्र्ा के भसद्धात को स्वीकार करता िै। दिे अवश्य प्रकृतत से बनी िै। र्नुष्य की र्रीर-रचना र्् आत्र्ा और दिे दोनों एक िी कोहट के निीं र्ाने र्ा सकते और न िी वे ऐकाजन्तक िैं। दिेरूपी यन्त्र र्् आत्र्ा कोई बािर से र्ोडा गया पदाथ शनिीं िै। नैय्यातयक र्नुष्यप्रकृतत के आध्याजत्र्क एवं भौततक अंर्ों र्् अधधक व्यवजस्थत संबंध र्् पवश्वास रखता िै।[482] न्याय एवं वैर्ेपर्षक द्वारा सर्थथतश भसद्धान्त के अनुसार, भौततक प्रकृतत पवचारों को र्ूतरूशप र्् व्यक्त करने के भलए उपकरण िै। भौततक प्रकृतत की अपेक्षा आत्र्ा की साथकशता एवं र्ूल्य किीं ंअधधक िै और इसीभलए उसकी यथाथतशा भी अधधक िै। आत्र्ा तथा दिे के र्ध्य भेद अनुभव के उच्चतर व तनम्नतर स्तर का िै।

नैय्यातयक को पवहदत िै कक चेतेनता सर्स्त अनुभव का आधार िै। यि तथ्यों र्् से कोई एक तथ्य निीं ं िै र्ैसे ेकक सूय शअथवा पृथूवी िै, बजल्क सब तथ्यों के भलए यि एक आवश्यक आधार िै। बुद्धध भी बाह्य पदाथों के कर् शद्वारा आत्र्ा के अन्दर उत्पन्न िुआ गुणर्ात्र निीं, बजल्क सब प्रकार के अनुभव का आवश्यक आधार िै। अन्नंभट्ट इसकी पररभार्षा करते िुए इसे ेसब प्रकार के अनुभव का कारण (सवव्शयविार्ि-तु) बताता िै।'[483]

481 र्ांकरभाष्य, 2: 3, 50-53।

482 न्यायभाष्य, 3/2 60 ।

483 तकशसंग्रि, 43। गोवधनश अपने 'न्यायबोधधनी' नार्क ग्रन्थ र्् व्यविार को र्ब्द-प्रयोग के सर्ान, अथवा र्ो कुछ र्ब्दों द्वारा अभभव्यक्त ककया र्ा सके, सर्झता िै, यद्यपप यि र्त अत्यधधक संकुधचत िै।

भर्वाहदत्य बुद्धध की पररभार्षा करते िुए इसे ेआत्रा् के द्योतनात्रक अंर् के रूप र्ें वणनश करता िै,'[484] जर्से टीकाकार जर्नवधनश और स्पष्ट करते िुए प्रकार् का स्वरूप बताता िै, क्योंकक यि अपवद्या के अंधकार को दूरू करती िै और सब पदार्थों को प्रकार् र्ें लाती िै।[485] र्ो कुछ सर्स्त अनुभव से पूव शपवद्यर्ान िै उसे ेअनुभव से उत्पन्न र्नींकिा र्ा सकता र्बकक पवर्ेर्ष प्रकार के पवचार एवं र्त वातावरण-सम्बन्धी अवस्थाओंपर तनभरश करते िैं, वेअवस्थाएं ंअपने-आप र्ें, चेतना के आधार से अलग, उनका कारण र्नीं बन सकतीं। न्याय की पररभार्षा के अनुसार, बुद्धध प्रर्ाता (पवर्षयी) पक्ष से सम्बन्ध रखनेवाली िै।'[486] यि क्षणणकरूप र्नीं, बजल्क प्रर्ाता का अतनवाय शस्वरूप िै। इसीभलए बुद्धध कभी स्वयंप्रर्ेय, सावभशौर् चेतनता र्नींबन सकती, जर्ससे े पृथक् न तो पररभर्त र्जक्तर्ाली व्यजक्त और न प्रर्ेय पदाथ शिी संभव िैं।

यहद चेतनता सर्स्त अनुभव का आधार िै, वि आधारभूत यथाथतशा िै जर्सके अन्दर पररभर्त र्जक्तर्ाली आत्राएंतथा प्रर्ेय पदाथ-शजर्नकी उर्न्िें चेतना िोती िै-आ र्ाते िैं, तो यि पररभर्त से अधधक िै। व्यजक्तरूप प्रर्ाता तथा प्रर्ेय पदाथ शअनन्त के आंभर्क रूप िैं र्ो सदा पररवतततश िोतेरिते िैं। आत्रा, जर्से नैय्यातयक र्ीवन के नानापवध अनुभवों के सर्न्वय की व्याख्या करने के भलए र्ानता िै, चैतन्यस्वरूप िै जर्ससे ेसर्स्त अनुभव सम्भव िैं। िर् इसे ेद्रव्य र्नींकि सकते,े क्योंकक ऐसा किना आनुभापवक र्गत् ्के भावों को इस पर लागूकरना िोगा, र्बकक िर् यि देखते िैं कक इसी सतत चेतेनता की पवद्यर्ानता के कारण सर्स्त अनुभव-संसार सम्भव िोता िै । यहद िर् इस अनुभव र्ें उसे ेसजम्भलत कर लेतें र्ो इससे ेउन्नत िै और साथ िी इसे ेबनाता भी िै, तो आत्रा एक पवचारर्ील द्रव्य बन र्ाता िै, जर्ससे ेर्ेर्ष सब बाह्य िै।

उस आत्रा र्ें र्ो पवर्ुद्ध चैतैन्य िै और सब व्यजक्तयों र्ें सर्ान रूप से व्यापक िै, तथा उन सान्त आत्राओं र्ें जर्नका ऐततिाभसक अजस्तत्व िै, परस्पर भेदे करना िोगा। नैय्यातयक द्वारा प्रततपाहदत आत्रा बढ़ती िै, लचकदार िै और अपना इततिास रखती िै। इस प्रकार की युजक्तयां कक जर्सका आरम्भ िै उसका अन्त भी िै, जर्सका तनर्ाणश भर्श्रण से िुआ वि पवभाज्य भी िै और नष्ट भी िो सकता िै, और कक अवयवरहित पदाथ श का न तो पवभाग सम्भव िै और न पवनार् िी सम्भव िै, सबकी सब पवर्ुद्ध आत्रा के तनत्यस्वरूप को भसद्ध करती िैं, न कक ऐततिाभसक आत्राओं के तनत्यस्वरूप को। ऐततिाभसक आत्राओं के अपने उद्देश्य तथा आदर् िैं र्ो र्ीवन की अवस्थाओं के प्रतत उनकी प्रततकियाओंके तनणायशक िोते िैं। सान्त व्यजक्त की पवर्ेर्ष भावनाओं तथा उन बाधाओं के अधीन िोनेकी सम्भावना, र्ो उसकी कियार्ीलता का रोकती िैं, ऐततिाभसक पररजस्थततयों के कारण िैं। बढ़ते िुए व्यजक्तयों के अन्दर जर्स प्रकार का स्थातयत्व िै उसे ेऔर पवर्ुद्ध आत्रा के स्थातयत्व को परस्पर भर्लाना न चाहिए। सान्त आत्राओं की प्रकृतत का, र्ो अपेक्षाकृत जस्थरस्वरूप िै, उद्भव बाह्य साधनों से िोता िै। अपने-आप र्ें वन्दी ऐसी ऐततिाभसक आत्राएं असंख्य िैं। एक तनजश्चत दार्तशनक अन्तबोध

---

484 आत्राश्रयः प्रकार्ः। सप्तपदाथी, 93। तुलना कीजएं अन्नंभट्टकृत आत्रा की इस पररभार्षा से कक आत्रा वि िै र्ो ज्ञानाधधकरण िै (तकशसंग्रि, 17)।

485 अज्ञानान्धकार-ततरस्कारकारक-सकलपदाथस्शयाथप्रशकार्ः प्रदीप इव देदीप्यर्ानो यः प्रकार्ः सा बुद्धधः ।

486 न्यायवाततकश, 3/2 19

 नैय्यातयक को यि स्वीकार करने की प्रेरणा करता ि ै कक व्यजक्त की र्याहशदत र्जक्तयां और भौततक पवर्ेर्षता

आत्र्ा की आनुर्ंषंधगक पवर्ेर्षताएुँ ि ैं, जर्नसे वि र्णरीलता के अभभर्ाप से छुटकारा पाने पर र्ुक्त ि ो र्ाएगा। र्ुजक्त अथवा बन्धन दोनों ि ी अवस्थाओं र्ें आत्र्ा का पवभर्ष्ट लक्षणीय स्वरूप बना ि ी रिना चाहिए। क्योंकक आत्र्ा का स्वरूप ि र्ारे ज्ञान से अतीत ि ै, इसभलए ि र् अनुभव करने लगतेि ैंकक बौद्धधक, भावनार्य एवं ऐजच्छक अन्त:प्रेरणाओं से रहित ि ोनेपर र्ो र्ेर्ष बचता ि ै वि र्ात्र र्ून्य ि ै। ककन्तु तो भी नैय्यातयक को तनश्चय ि ैकक आनुर्ंषंधगक गुणों का आधार वास्तपवक कुछ ि ै। प्रर्ेय पदाथ शके साथ र्ो सम्बन्ध ि ै उसी के कारण आत्र् सम्बन्धी यथाथतशा तछपी रिती ि ै। ि र्ारे अन्दर र्ो आत्र्ा ि ै उसके ऊपर प्रकृतत के तनजष्ियि अवयव का आवरण ि ै। नैय्यातयक अपनेइस र्त र्ें ठीक ि ै कक आत्र्ा अर्र ि ै, यद्यपप वि उसे ि ेऔर र्ीवात्र्ा को भर्ला देनेर्ें भूल करता ि ै, क्योंकक र्ीवात्र्ा चेतेनता की अबाधधत पवद्यर्ानता के अततररक्त पूवर्शन्र् को स्र्रण निींरखता। र्बकक ि र्ारे अन्दर पवद्यर्ान आत्र्ा सावभशौर् आत्र्ा ि ै, अभभन्न आत्र्ा ि ै, कफर भी संस्ंकारों को ग्रिण करने की क्षर्ता अपनेग्रिाकतागुण के कारण, ऐसी वस्तु ि ै र्ो पराधीन, तनश्चेष्ट और नश्वर ि ै और र्ो स्वभाव र्ें अधधकतर प्रकृतत के साथ भर्लती ि ै। ि र्ारे अन्दर र्ो आत्र्ा ि ै और जर्सेअभौततक र्ाना गया ि ै, वि अपनी कर्र्शीलता को स्थधगत निीं ि ोनेदेती, वि तनबलशता तथा पवकार के अधीन निींि ोती। ककन्तु र्न र्रीर के सर्ान, र्ो कक इसका तनवास स्थान ि ै, तथा सम्बद्ध इजन्द्रयों के सर्ान भभन्नस्वरूप ि ै। प्रत्येक र्ीवात्र्ा द्वारा अनुभूत तथ्य भभन्न-भभन्न ि ैं, क्योंकक र्ीवात्र्ाएं भभन्न-भभन्न ज्ञानेजन्द्रयों से सम्बद्ध ि ोती ि ैं। यहद आत्र्ा र्न के सिाचय शसे र्ुक्त ि ो र्ाए तो सब पदाथ शएक साथ ि ी चेतेना को प्राप्त ि ो र्ाएंगें, ि े और आत्र्ाओं के वस्तुतत्व भी, क्योंकक आत्र्ा सवत्रश पवद्यर्ान ि ै, सर्ान ि ोंगे। इस सावभशौर् वस्तुतत्व को प्रत्येक आत्र्ा एक पवर्ेर्ेष दृजष्टकोण से ग्रिण करती ि ै, जर्सका तनणयश देर् और काल की उस व्यवस्था के कारण ि ोता ि ै जर्सर्ें कक प्रत्येक आत्र्ा अवजस्थत ि ै। पवश्वनाथ के अनुसार, र्ो वेदोजन्तयों का यि र्त ि ै कक आत्र्ा ज्ञानर्य ि ै एवं सब पदाथ श उसकी ऐततिाभसक पररजस्थततयों द्वारा तनणीत पवर्ेर्ष आकृततयां ि ैं, अपररिाय शि ै।'[487]

र्ीवात्र्ा की ऐकाजन्तकता इसका अतनवाय शगुण निीं ि ै यि स्वयं ज्ञान के तथ्य से ि ी प्रकट ि ो र्ाता ि ै। यहद प्रत्येक र्ीवात्र्ा एक पवभर्ष्ट र्न से संयुक्त पृथक् आध्याजत्र्क इकाई ि ै, तो ि र्ें यि तनश्चय निीं ि सकता कक वे सब र्गत् ि ्जर्न्िें वे देखती ि ैं, एक ि ी ि ैं। यहद प्रत्येक इकाई अपनेभलए एक र्गत् ि ्का तनर्ाणश करती ि ै तो एक तनतान्त अनेकत्ववाद का, अथात् श ि ्जर्तनी इकाइयाुँ ि ैं उतनी ि ी र्गत् ि ्ि ैं, ऐसा पररणार् तनकलेगा। न्याय 'पवर्षयीपवज्ञानवाद' से बचने के भलए आतुर ि ै और उसका पवश्वास ि ै कक ि र् सब एक सार्ान्य र्गत् ि ्को र्ानते ि ैं। दूसरे र्ब्दों र्ें, ि र् 'यिां' और 'अब' अथात्श ि ्देर् और काल की सीर्ाओंसे ऊपर उठने का सार्थ्य शरखते ि ैं, आकजस्र्क, पवभर्ष्ट तथा आंभर्क से ऊपर उठकर आवश्यक, सावभशौर् तथा अनन्त तक पिुंचनेका सार्थ्य श

---

[487] नानावस्तुपवज्ञानर्ेव आत्र्ा तस्य स्वतः प्रकार्रूपत्वाच्चैतन्यर् ्। ज्ञानसुखाहदकन्तु तस्यैवाकारपवर्ेर्षः । तस्यापप भावत्वादेव क्षणणकत्वं पूव-शपूवपशवज्ञानस्यिोरपवज्ञाने ि ेतुत्वात् ्(भसद्धान्तर्ुक्तावभल, 49, ।) आत्र्ा तन:सन्दिे ज्ञान ि ै। इसका ज्ञानस्वरूप इसकी अपनी अभभव्यजक्त से ि ी भसद्ध ि ोता ि ै। इस अथवा उस पदाथ शका ज्ञान तथा सुख आहद इसकी पवर्ेर्ष आकृततयां ि ैं। केवल पदाथ शिोनेके कारण वे अस्थायी ि ैं। पूववशती र्ानभसक जस्थततयाुँपरवती जस्थततयों को उत्पन्न करती ि ैं।

रखते िैं। प्रत्येक ज्ञान र्ें एक आवश्यक तत्त्व तनहित रिता िै, अथात्श ्जर्सीना िी चाहिए। र्ाननेवाला आत्र्ा सान्त निीं ंिो सकता। सान्त पवर्षयी (प्रर्ाता) का सम्बन्ध र्गत् ्के साथ जस्थर निीं िै। सान्त चेतनता कभी पररपूण शर्निीिं, और इसीभलए सदा अपनेर्ें बेचैन रिती िै। सान्त पवचार का पवर्ेर्ष लक्षण यि िै कक वि तनरन्तर अपनेर्ें पररवतनश स्वरूप िै। र्ानवीय पवचारधारा की अपनी पवधध द्वन्द्वात्र्क िै, जर्सका प्रयत्न बाह्य पदाथों के अपेक्षाकृत जस्थर स्वभाव के प्रत्याख्यान की ओर रिता िै। वि सब पवर्षय र्ो चेतना को बाह्य प्रकट िोता िै, वस्तुतः वैसा निीं िै। िर् र्ो कुछ िैं उससेअसन्तुष्ट रिते िैं, यि िर्ें र्ो कुछ बनना चाहिए उसके भलए र्िरा दावा िै। पदाथों तथा घटनाओंकी लौकिक व्यवस्था से परे र्ानेका प्रयत्न अधधकतर र्ौभलक यथाथतशा को प्राप्त करने के भलए िोता िै, र्ो सवोपरर चेतनता के अततररक्त और कुछ निीं र्ो ककसी भी वस्तु को अपनेसे पवधर्ी निींसर्झती। नैय्यातयकता पवरुद्ध आत्र्ा को ऐततिाभसक व्यजक्तत्व से, र्ो आदर्ों तथा पवश्वासों पर तनभरश िै- दूसूरे ब्दों र्ें र्ो पवरुद्ध आत्र्ा का एक प्रकार से स्र्ूतरूशप िै-पृथृक् बताता िै। यहद िर् ककसी सर्य सान्त आत्र्ा के स्वरूप को पिचान सकते िैंतो इसके र्ारीररक स्वरूप व आदर्ों के द्वारा िी पिचान सकते िैं र्ो कक इसके भूतकालीन इततिास तथा वातावरण सम्बन्धी अवस्थाओंसे तनणीत िोतीं। ककन्तु आदर्ों, र्रीर-रचना और वातावरण की ये व्यजक्तत्व दर्तनवाली अवस्थाएं,ं सत्यस्वरूप आत्र्ा से भभन्न िैं, यद्यपप ये उस पर आधाररत िैं- इसे ेनैय्यातयक स्वीकार करता िै। ताककशक दृजष्ट से नैय्यातयक को स्वीकार करना िोता िै कक आत्र्ाओं के अनेकत्व के भसद्धान्त का आधार आत्र्ा के आनुर्ंषंधगक गुण िैं, और र्ब आत्र्ा के ताजत्त्वक स्वरूप पर बल हदया र्ाएगा तो इस भसद्धान्त को त्यागना पडेगा। ऐततिाभसक दृजष्टकोण, र्ो तनरपेक्ष निीं, र्गत् ्के अनेकत्व की ओर ले र्ाता िै। ककन्तु आध्याजत्र्क दृजष्टकोण, र्ो तनरपेक्ष िै, अनैक्यवाद से ऊपर उठता िै। न्याय का यि तकश कक परर् आत्र्ा एक निीिं सकता क्योंकक इस प्रकार र्ानने से सुख और दु्ःख के भभन्न-भभन्न ज्ञान गडर्ड िो र्ाएंगे, प्रबल निीं, क्योंकक ऐततिाभसक आत्र्ाओं के पृथृक्त्व का तनर्ेषेध निींककया गया थी। अनेक र्न भभन्न-भभन्न आत्र्ाओं का तनणयश करते िैं, र्ो कफर अपने कर्ों द्वारा र्गत् ्को रूप देती िैं। क्योंकक व्यजक्तगत आत्र्ाएं र्गत् ्के सब रूपों से सम्बद्ध निींरितीं,ं इसभलए श्रीधर का र्त िै कक कर्-से-कर् एक आत्र्ा ऐसी िोनी चाहिए जर्सके अनुभव का क्षेत्र सर्स्त र्गत् ्िो। इस आत्र्ा का सब पदाथों के साथ कोई सार्ान्य सम्बन्ध निीं, बजल्क सब पदाथों के साथ घतनष्ठ सम्बन्ध िै और उन पर तनयंत्रण िै।'[488] ताजत्त्वक रूप र्ें सब आत्र्ाएंएक िैं। लौककक भेद र्ो िर् आत्र्ाओं र्ें देखते िैं, उन घतनष्ठ तथा पवर्ेर्ेष सम्बन्धों से तनजश्चत िोते िैं जर्न्ें आत्र्ाएं, सब वस्तुओं से सार्ान्य रूप से सम्बद्ध रिते िुए, प्राप्त करती िैं।

सावभशौर् चेतनता अथवा आत्र्ा की र्ौभलक यथाथतशा को र्ान लेना पवर्षयीपवज्ञानवाद के भसद्धान्त को सर्थनश देना निीं। सावभशौर् आत्र्ा की यथाथतशा के आधार पर प्रर्ाता तथा प्रर्ेय के अन्दर भेद करने का तात्पय शयि निीं किक िर् इस तथ्य को अस्वीकार करते िैं कक सूय शके प्रकार् से लाभ उठानेवाले ककसी र्ीपवत वनस्पतत अथवा सौर र्जक्त को प्रकार् र्ें पररणत करनेवाले ेककसी चेतन चक्षुके प्रादुभावश से युगों पिले ेपृथ्वी तथा अन्यान्य ग्रि अपने-अपने धुरों पर तथा सूय शके चारों ओर चक्कर काटते ेथे।

---

488 न्यायकन्दली, पृष्ठ 88।

र्ब तक न्याय चेतनता को आत्र्ा का एक गुणर्ात्र र्ानता ि◌ै तब तक वि अनुभव का कारण निीं ◌ं बतला सकता। यहद अनुभव को बुद्धधगम्य बनाना ि◌ै तो आत्र्ा को सावभशौर् चेतनता र्ानना ि◌ोगा। न्याय ठीक र्ाग शपर ि◌ै र्ब वि यि किता ि◌ै कक पररजस्थतत-सम्बन्धी अवस्थाएं ◌ंकततपय पवचारों तथा आदर्ों के पवकास की ओर ले र्ाती ि◌ैं और यि पवकास र्ानव-स्वभाव की ऐततिाभसकता को बनाता ि◌ै परन्तु यि र्ानव-स्वभाव सर्स्त चेतनता का पवर्षय निीीं, बजल्क इसका पवकास स्वयं चेतनता के अन्दर ि◌ोता ि◌ै और वि एक प्रर्ेयरूपी र्ाध्यर् द्वारा तनणीत ि◌ोता ि◌ै। आत्र्ाओं का भेद लौकककक र्ीवन के कारण ि◌ै जसर्ें वे भाग लेती ि◌ैं। पररभर्त र्जक्त वाले प्राणी, यद्यपप उनका र्ूल प्रकृतत र्ें ि◌ै, आत्र्ा के अन्दर ि◌ी फलते-फूलते ि◌ैं। पूणतशाप्राप्त आत्र्ा आध्याजत्र्क अजग्न र्ें पवद्यर्ान रिते ि◌ैं र्बकक भौततक दिेरूपी धुआं नष्ट ि◌ो र्ाता ि◌ै। इस र्त को स्वीकार करने से र्ुक्त आत्र्ा के एकदर् ररक्त ि◌ोनेका भय भी निीं रिता। र्िां ◌ंतक आत्र्ाओं की र्ुक्तावस्था के पवचार का सम्बन्ध ि◌ै, एक और अनेक का भेदे कुछ अथ शनिीींरखता। यहद ि◌र् न्यायदर्नश की र्ुख्य भर्क्षा का अनुसरण करें और उसर्ें असंगततयों को तनकाल दें, यद्यपप न्यायर्ास्त्र के पवचारक स्वयं उनसे स्पष्ट रूप र्ें अवगत निीं ◌ं ी, तो ि◌र् कुछ इसी प्रकार के पररणार् पर पिुंचते ि◌ैं।

24. नीततर्ास्त्र

न्याय के पवचारक इच्छा और बुद्धध के र्ध्य कोई कडा भेदक धचह्न निीींरखते ि◌ैं। बुद्धध प्रस्तुत पदाथों को ग्रिण करने अथवा उन पर पवचार करने र्ें कोई तनजष्िय कता शनिीीं, और इच्छा, र्ो बुद्धध द्वारा पदाथों के प्रस्तुत ककए र्ानेके पश्चात् ◌ुकाय शप्रारम्भ करती ि◌ै, कोई रिस्यर्यी र्जक्त निीीं। सर्स्त ज्ञान प्रयोर्न को भलए रिता ि◌ै और र्ैसे ि◌ी ि◌र् पदाथों का ज्ञान प्राप्त करते ि◌ैं, या तो ि◌र् उन्िें पसन्द करते ि◌ैं या नापसन्द करते ि◌ैं, उन्िें प्राप्त करने की इच्छा करतेिैं अथवा उनसे ◌ेबचतेिैं। र्ब ि◌र् ककसी पदाथ शका धचन्तन करते ि◌ैं तो उसका र्ूल्य भी तनधारशरत कर लेते ि◌ैं, और उसके प्रतत एक तनजश्चत कियात्र्क भावना भी बना लेतेिैं। नीततर्ास्त्र र्नुष्य-र्ीवन के कियात्र्क पक्ष को, पवर्ेर्षकर स्वेच्छाकृत कर्ों को अपना पवर्षय बनाता ि◌ै।

ककततपय न्यायग्रन्थों र्ें कार्ना के स्वरूप का र्नोवैज्ञातनक पवश्लेर्षण ककया गया ि◌ै। पवश्वनाथ,'[489] इच्छा की अनेक प्रकार की अवस्थाओं का वणनश करता ि◌ै। ि◌र् असम्भव पदाथों की इच्छा निींकरते। केवल अबोध बच्चे ि◌ी चांद को पकडने के भलए ि◌ाथ फैलाते ि◌ैं। साधारणतः ि◌र् ऐसे ि◌ी पदाथों के भलए अपनी इच्छा प्रकट करते ि◌ैं र्ो ि◌र्ारी पिुंच के अन्दर ि◌ोते ि◌ैं।[490] कफर, र्ब ि◌र् पदाथों की प्राजप्त के भलए इच्छा प्रकट की र्ाती ि◌ै वे ऐसे ि◌ी पदाथ शिोते ि◌ैं जर्न्िें वांछनीय र्ाना गया ि◌ै, अथात् श ◌्जर्नसेज्ञाता का उपकार ि◌ोगा।'[491] यिांतक कक र्ब ि◌र् आत्र्ित्या भी करने का पवचार करते ि◌ैं, या अपनेर्रीर र्ें कांटा चुभाते ि◌ैं तो वि भी इस पवचार से करते ि◌ैं कक यि ि◌र्ारे भलए उपयोगी ि◌ोंगे। ककसी भी पदाथ शका र्ूल्य कता शके भलए उपयोगी ि◌ोने के नाते ि◌ी आंका र्ाता ि◌ै, यि

489 भसद्धान्तर्ुक्तावली , 146-50।

490 कृततसाध्यता ज्ञान ।

491 दृष्टसाधनता ज्ञान।

बात अलग िै कक र्नुष्य आत्र्त्यिा इत्याहद ऐसीी अन्य कायों को र्जस्तष्क की असाधारण अवस्था (पवकृतत) के कारण िी क्यों न उपयोगी सर्झता िो।[492] पीछे चािे उसके पवर्षय र्ें कुछ भी सम्र्तत क्यों न प्रकट की र्ाए, कार्ना करते िसर्य तो उस पदाथ शकी उपादेयता िी सर्झी र्ाती िै। ककसी भी काय-शयोर्ना का पवधान बनाते िे सर्य िर् उसके सर्स्त पररणार्ों को ध्यान र्ें रखतेिैंऔर तनश्चय कर लेतेिैं कक उसके अंगीकार करने से अधधक बुराई न िोगी।[493] यहद ककसी पदाथ शके अधधक िातनकर भसद्ध िोनेकी सम्भावना िोती िै तो िर् उसका अनुसरण निीं िंकरते। इस तरि इसर्ें प्रस्तापवत कायपशद्धतत के पररणार्ों का ध्यानपूवकश सवेक्षण सजम्र्भलत रिता िै।

ऐसेस्वतःप्रवृि कर्,श र्ो आन्तररक प्रेरणाओंके कारण िोते िैं'[494] तथा स्वतः सम्पन्न िोते िैं, र्जनके सम्पादन र्ें इच्छा की प्रेरणा का कोई स्थान निीं िंि, वस्तुतः नीततर्ास्त्र के क्षेत्र र्ें निीं आ सकते। आत्र्ा स्वयं इच्छा व द्वेर्ष की दोर्षी निीं िै, ये बािर से उस पर आतीिैं। यहद आत्र्ा स्वयं एक अचेतन व्यजक्तत्व रखती तो राग-द्वेर्ष इसके भाग्य का तनर्ाणश करते िेऔर आत्र्ा भी उसी के साथ णखंचंती। न्याय की धारणा िै कक आत्र्ा को उपिर् तथा चुनाव करने का अधधकार प्राप्त िै र्जससेयि स्वतः उपलक्षक्षत िोता िै कक आत्र्ा को दैवीय स्वातन्त्र्य प्राप्त िै। वात्स्यायन इस र्त का घोर पवरोधी िै कक सर्स्त कर् शसीधे परर्ात्र्ा की प्रेरणा से सम्पन्न िोते िैं, और पुरुर्षाथ शका उनर्ें कोई स्थान निींिै।[495] र्ानवीय इच्छा र्ें पयाप्शत क्षर्ता िै, यद्यपप यि कायश करती िै परर्ात्र्ा के तनयन्त्रण के अन्तगतश िी। वात्स्यायन इस र्त का भी खण्डन करता िै कक इच्छा बबना ककसी कारण के काय शकरती िै।"[496]

सर्स्त कर्ों का प्रयोर्न'[497] सुख प्राजप्त तथा दुःखपररिार की इच्छा िोती िै। बेचैनी[498] का कारण दुःख इस पवर्षय का धचह्न िै कक आत्र्ा अपने-आप र्ें सन्तुष्ट निींिै। परर् श्रेय सुख की प्राजप्त र्ें निीं, अपपतु दुःख से छुटकारा पाने र्ें िै, क्योंकक सुख सदा दुःख के साथ भर्श्रत रिता िै।"[499] संसार िै दुःखर्य, यद्यपप कभी-कभी

492 रागदूपूर्षताचशतः ।

493 बलवदातनष्टाननुवजन्धत्वज्ञान। यि श्लेर्षात्र्क िै और इसका अथ शया तो अतनष्ट के अभाव की चेतनता (अतनष्ट अर्नकत्वज्ञान) अथवा ककसी भी अतनष्ट की चेतना का अभाव (अतनष्टर्नकत्वज्ञानाभाव) िो सकता िै। पवश्वनाथ का झुकाव पपछलेअथों की ओर िै।

494 र्ीवनयोतनपूवकश, 152 ।

495 न्यायभाष्य, 4:1, 19-21 ।

496 न्यायभाष्य, 41, 22-24 ।

497 न्यायभाष्य और इस पर न्यायवाततकश, 11, 24, और न्यायभाष्य, 32, 32-37।

498 1:1, 21 ।

499 सवदशर्नशसग्रि, 11। उद्योतकर इस पवचार र्ें कुछ पररवतनश करता िै। "यहद सुख न िोता तो पुण्य तनतान्त तनरथशक िोता... और न िी केवल दुःख के अभाव को पुण्य का पररणार् सर्झना ठीक िोगा, क्योंकक तब पुण्य का पररणार् र्ात्र एक तनर्षेधात्र्क वस्तु रि र्ाएगा। साधारण र्ीवन र्ें िर् र्नुष्यों र्ें दो प्रकार की चेष्टा पाते िैं। एक व्यजक्त वांछनीय पदाथ शको प्राप्त करने िेके भलए कर् शकरता िै, र्बकक अन्य व्यजक्त अवांछनीय वस्तु से दूरू रिनेके भलए कर् शकरता िै। यहद कुछ भी वांछनीय न िोता तो यि दो प्रकार को चेष्टा सम्भव न िोती। कफर (यहद सुख न िोता तो) इस प्रकार का परार्श शभी न भर्लता कक अर्ुक सुख को दुःख िी सर्झना चाहिए। और अन्त र्ें, ककसी प्रकार कारण भी न िोता, क्योंकक दुःख के प्रतत कोई भी

यि सुखर्य प्रतीत िोता िै। संसार से छुटकारा पाना िी परर् श्रेेय की प्राजप्त िै। दुःख, र्न्र्, प्रवृपि, दोर्ष, भर्थ्याज्ञान इस श्रृंखला की एक-एक परवती कडी के नष्ट िोनेसे उसकी पूववशती कडी नष्ट िोती र्ाती िै।'[500] दुःख र्न्र् का पररणार् िै, और र्न्र् प्रवृपि का पररणार् िै। सब प्रकार की प्रवृपि, बिो वि अच्छी िो या बुरी, िर्ें संसाररूपी श्रृंखंला र्ें र्कडती िै, और उसी के कारण िर्ें नीच या उच्च र्न्र् प्राप्त िोता िै। नैय्यातयक को लज्र्ा िीती िै कक उसके र्ीर िै और नॉवभलस के सर्ान वि भी घोर्षणा करता िै कक "र्ीवन आत्र्ा का एक रोग िै, एक ऐसी प्रवृपि िै जर्सेकार् से उिर्ना भर्ली िै।" यि प्रवृपि राग, द्वेप और र्िृ आहद दोपों के कारण िै। द्वेर्ष के अन्तगतश िोध, ईष्या,श दुभ्ाुवशना, घृणृा और तनष्ठुरता सजम्भलत िैं। राग के अन्तगतश वासना, लालच, तृष्णूा (उत्कट अभभलापा) और लालसा (स्पृिा) आहद का सर्ावेर् िै। सबसे बुरा र्िृ िै क्योंकक इसी के कारण राग और द्वेर्ष उत्पन्न िोते िैं।[501] उक्त दोर्षों के कारण िर् यि भूल र्ाते िैं कक आत्र्ा के भलए कुछ भी उपादेय अथवा िेय निीं, और िर् पदाथों को पसन्द या नापसन्द करनेलगतेिैं। इन दोर्षों का कारण िै आत्र्ा, सुख व दुःख इत्याहद के स्वरूप का भर्थ्याज्ञान। र्ोक्ष का अनन्त जस्थतत की प्राजप्त के भलए, र्ो िर्ारा एकर्ात्र र्िान् ्लक्ष्य िै, िर्ें उस श्रृंखला को सर्ाप्त कर देना चाहिए र्ो भर्थ्याज्ञान से आरम्भ िोकर दुःख र्ें सर्ाप्त िोती िै। र्ब भर्थ्याज्ञान दूरू िो र्ाता िै तो उक्त दोर्ष भी दूरू िो र्ाते िैं। इन सचके पवलुप्त िो र्ाने पर कफर प्रवृपि का कोई आधार निींरिता, और इसभलए र्न्र् की भी संभावना निींरिती। र्न्र् के अभाव का तात्पय शिी दुःख की सर्ाजप्त िै और इसी का नार् परर् आनन्द, अथात्श ्र्ोक्ष िै।'[502]

र्ब तक िर् कर् शकरते ेरिते िैं तब तक िर्ारे ऊपर राग और द्वेर्ष दोनों का र्ासन रिता िै और िर् परर् श्रेेय को निीं ्प्राप्त कर सकते। दुःख के प्रतत घृणृा भी घृणा िी िै और सुख के प्रतत राग भी राग िी िै। इसभलए र्ब तक ये कियार्ील रिेंगे तब तक परर् श्रेेय िर्ारी पिुंच से परे िी रिेगा।

नैय्यातयक िर्ें किता िै कक िर्ें पृथृक्त्व के भाव को दबाए रखना चाहिए, क्योंकक उसके र्त र्ें ऐसे व्यजक्त की प्रवृपि, र्ो इन दोर्षों पर पवर्य पा लेता िै, पुनर्न्शर् का कारण निींिोता।'[503] वे व्यजक्त जर्न्िोंने उक्त दोर्षों पर पवर्य पा ली िै, र्ीर के रिते ेकर् शकरते ेरि सकते िैऔर वे कर् शउनके बन्धन का कारण निीं ं बनते। र्ब तक िर्ारा लगाव एक पवलग सिा के रूप र्ें बना रिता िै और िर् इन्द्रपद अथवा ब्रह्र्पद की प्राजप्त के भलए पुण्यसंचय करते िैं, तब तक िर् इस संसारचि के साथ बंधे रिते िैं, क्योंकक इन्द्र अथवा ब्रह्र् की

राग निींरखता।" (न्यायवाततकश 1/1, 21) श्रीधर इस र्त सेसिर्त निीं किक केवल दुःख के अभाव का नार् िी सुख िै, क्योंकक परर् आनन्द का तनजश्चत अनुभव िोता िै और र्नुष्यों की चेष्टाएं भी दो प्रकार की देखी र्ाती िैं। (न्यायकन्दली, पृष्ठ 260)।

500 न्यायसूत्र, 1: 1, 2, 4/1 68। तुलना कीजर्ए इसकी बौद्धदर्नश-प्रततपाहदत कायकशारण श्रृंखला के साथ। (पवसुद्धधर्ग्, 19)।

501 न्यायभाष्य, 3 / 2 67, 4/1 6; 4/2, 1 ।

502 4/1, 3 - 9

503 न्यायसूत्र, 4/1 64।

अवस्थाएं ंभी सान्त अथात् श ्एक न एक हदन सर्ाप्त िोने वाली िैं। परर् श्ेर्य तो पवलग सि (पृथृक्त्व) के भाव से सवथशा र्ुजक्त िी िै।

यथाथ शज्ञान र्ें तात्पय शसंसार से तुरन्त र्ुजक्त प्राप्त कर लेनेसे निीं। गुणावगुण का. र्ा दि और आत्र्ा के सम्बन्ध का कारण िै, सवथशा तनःर्ेर्ष िो र्ाना आवश्यक िै, जर्ससे ेकक उक्त दोनों के सम्बन्ध की पुनरावृपि की संभावना िी न िो सके।'[504]

क्योंकक इस प्रकार पृथृक्त्व से र्ुजक्त िी एकर्ात्र श्ेर्य िै, अतः चररत्र सम्वन्धी वे सब र्ाग शर्ो इस ओर प्रविृ कराते िैं, अच्छे कि गए िैं, और र्ो पवपरीत हदर्ा र्ें ले र्ाते िैं वे बुर कि गए िैं। कर् शवाणी, र्न अथवा दि से सम्बन्ध रखतिें और वे अच्छे व बुरे दो प्रकार के कि गए िैं।[505] चररत्र-सम्बन्धी पापकर् शका सार पुण्यकर् शकी अपेक्षा पापकर् शका र्ान-बूझकर चुनाव करने र्ें िै। उत्कृष्ट राग के प्रभाव र्ें आकर िर् पाप के दुःखदायी पररणार्ों को भूलकर सुख के आकर्षणशों का भर्कार बनते िैं।

सुकर्ों के अंगीकार करने से व्यजक्त इस योग्य िो र्ाता िै कक वि र्रीर तथा इजन्द्रयों से आत्र्ा के पृथृक्त्व को र्ान सके। सत्य ज्ञान, जर्स पर इतना बल हदया गया िै, केवल बौद्धधक सम्र्तत का िी पवर्षय निीं ंिै, अपपतु एक प्रकार की सार्ान्य र्नोवृपि िै। भर्थ्याज्ञान तथा स्वाथपशरक र्नोवृपि का परस्पर सिाचय शिै ।'[506] इसी प्रकार सत्य (यथाथ)श ज्ञान तथा तनःस्वाथ-शभाव परस्पर एक-दूसूरे के अंग िैं। यि सत्यज्ञान पुस्तकों द्वारा प्राप्त निीं ंककया र्ा सकता, बजल्क केवल ध्यान तथा धर्भशावना की वृद्ूधध से िी प्राप्त िो सकता िै।'[507] स्वाध्याय और धचन्तन'[508] के साथ-साथ यौधगक कियार्ों का भी आदेर् हदया गया िै।"[509] उद्योतकर धाभर्कश ग्रंथों के अध्ययन, दार्तशनक पववेचन तथा ध्यान का आदेर् देता िै।[510] िर्ें कभी-कभी सांसाररक सुखों से बचे े रिने, प्रत्येक लालसा को त्याग देनेतथा वन र्ें र्ाकर अपनी आत्र्रूपी यज्ञ की अजग्न र्ें सब प्रकार के भौततक कर्ों की आिुतत दे डालनेका आदेर् हदया र्ाता िै। र्ाजन्त तथा सुख की प्राजप्त के भलए भजक्तरूप साधन की िर्ें

504 न्यायसूत्र, 4:1, 19-21 ।

505 1 1. 17। दान, रक्षा और सवा र्रीर से सम्बन्ध रखने वाले सुकर् िैं, र्बकक ित्या, चोरी और व्यभभचार दुषुकर् िैं। सत्य बालना, र्ो उपयोगी तथा र्ुखकारक भी िा, और धाभर्कश पुस्तकों का अध्ययन वाणी से सम्बन्ध रखनवाल सुकर् िैं, र्बकक झूठ बोलना, कठोर भार्षा का प्रयोग, तनन्दा, चुगली तथा तनरथकश वातालशाप दुषुकर् िैं। दया, उदारता और भजक्त र्न से े सम्बन्ध रखनेवाले सकर् िैं, र्बकक द्वेर्ष, लोलुपता तथा संर्यात्र्कता ये दुषुयाथ िैं।

506 न्यायवाततकश, 4 2,2 ।

507 न्यायभाष्य, 4:2. 38 और 41।

508 न्यायभाष्य, 4:2, 47।

509 न्यायभाष्य, 4: 2, 40 । नैय्यातयकों को योग नार् सेभी र्ाना र्ाता िै। "नैय्यातयकानां योगपराभभधानानार् ् (गुणरत्नकृत र्षड्दर्नशसर्ुच्चयवृपि)। और उसकी तकशररस्यदीपपका भी देणखए। वात्स्यायन ने 1: 1, 29 र्ें न्याय के र्त का योग के प्रकरण र्ें उल्लेख ककया िै।

510 न्यायवाततकश, 1 :1,2 ।.

अनुज्ञा दी गई िै। यद्यपप परर्ेश्वर िस्तक्षेप निींकरता, तो भी भजक्त का अपना िी पुरस्कार र्नुष्य को प्राप्त
िोता अवश्य िै।"[511]

हिन्दू ूपवचारधारा के अन्य दर्नशों के सर्ान, न्यायदर्नश भी कर् शके भसद्धान्त को स्वीकार करता िै और ऐसा पवश्वास प्रकट करता िै कक िर्ें अपनेकर्ों का फल अवश्य भर्लता िै। कुछ कर् शतो िर्ारे ऐसेिोते िैं कक जर्नका फल तत्काल भर्लता िै, रै्से ेखाना पकानेका कर् शिै, ककन्तु अन्य प्रकार के ऐसेकर् शिैं जर्नका फल भर्लने र्ें पवलम्ब िोता िै, रै्सैकक खेते र्ें िल चलाना, पपवत्र र्ीवन बबताना कर्कशाण्ड-सम्बन्धी कर् शदूसूरे कोहट र्ें आते िैं, क्योंकक स्वगप्रशाजप्त र्ृत्यु से पूव शिो िी निींसकती।'[512] र्ध्यवती काल र्ें कारण नष्ट निींिोते, े बजल्क धर् शऔर अधर् शके रूप र्ें पवद्यर्ान रिते िैं। 'फल' भर्लनेसे पूव शभी ककसी वस्तु का अजस्तत्व (र्ाध्यर् के रूप र्ें) अवश्य रिता िै, रै्से ेकक वृकूषों पर फल आने से पूव शकी अवस्था र्ें।[513] अदृष्ट अथात्श ्न हदखाई देनेवाले गुण तथा अवगुण कर् शसे भभन्न निीं, क्योंकक यहद ऐसा िोता तो "अजन्तर् र्ोक्ष के पश्चात् ्भी दिे की उत्पपि की सम्भावना रिती।"[514] जर्न दिेों को आत्र्ाएंधारण करती िैं उनका तनधारशण उनके पूवकशर्ों के अनुसार िोता िै। दिे से आत्र्ा को नार् भर्लता िै, यद्यपप आत्र्ा न तो र्नुष्य िै और न घोडा िै, तो भी उसे ेकैसी दिे प्राप्त िुई िै उस नार् से पुकारी र्ाती िै।'[515] न्याय और वैर्ेपर्षक दर्नश 'सूक्ष्र्शरीर' र्ें पवश्वास निीं रखते। आत्र्ा एक शरीर से दूसूरे शरीर र्ें र्न की सिायता से प्रपवष्ट िोती िै। र्न परर्ाणु ्से बना िै और इसीभलए अतीजन्द्रय िै और इसी कारण र्ृत्यु के सर्य दिे को छोडता िुआ हदखाई निीं ंदेता। क्योंकक आत्र्ाएं सवश्यापक िैं, इसभलए पुनर्न्र्काल र्ें फल भोगने के भलए प्राप्त नये घर (दिे) र्ें र्न का िी र्ाना सम्भव िो सकता िै।

न्याय-वैर्ेपर्षक के अनुसार, यथाथसशिा आत्र्ाओंतथा प्रकृतत का सजम्र्श्रण िै। प्राकृततक पवधान आत्र्ाओं के द्वारा की गई सृजष्ट निीं, बजल्क परर्ेश्वर द्वारा रची गई व्यवस्था िै। परर्ेश्वर परर्ाणुओं से इस प्रकार की रचना करता िै कक जर्ससे ेयि भौततक सृजष्ट र्ीवात्र्ाओं के अनुभवों का र्ाध्यर् बन सके। र्ीवात्र्ाओं तथा प्रकृतत के बीच र्ो सार्ंर्स्य िर् देखते िैं, वि दैवीय योर्ना के कारण िै।

---

511 न्यायसार, पृषूठ 38, 10-41, तथा सवभशसद्धान्तसारसंग्रि, 6 10-21। और 40-44।

512 उद्योतकर भलखता िै "उन अवस्थाओंर्ें र्िां कर् शका परर्णार् तत्काल प्राप्त निींिोता उसका कारण उन पवर्ेर्ष पररजस्थततयों से उत्पन्न िुई बाधा िोती िै र्ो फलीभूत िोते ेअवभर्ष्ट कर्ों के कारण उपजस्थत िो र्ाती िै, अथवा ऐसी बाधा िोती िै र्ो उन अन्य प्राणणयों के फलीभूत िोते ेअवभर्ष्ट कर्ों के कारण उपजस्थत िो र्ाती िै जर्नके अनुभव प्रस्तुत र्नुष्य के सर्ान िैं, अथवा इन कर्ों र्ें उन प्राणणयों के कर्ों द्वारा उपजस्थत की गई बाधा िोती िै र्ो प्रस्तुत र्नुष्यों के कर् शर्ें साझीदार िै, अथवा यि िोता िै कक धर् शतया अधर् शरै्सेसिायक कारण उस सर्य उपजस्थत निींिोते" (न्यायवाततकश, 3/2.6) ।

513 न्यायभाष्य, 4/1 47 देणखए, 4/1, 44-54।

514 न्यायभाष्य, 8/2 68

515 न्यायभाष्य, 3:1, 26

25. ब्रह्मपवद्या

'न्यायसूत्र' र्ें िर्् देखते िैं कक परर्ेश्वर का उल्लेख केवल आनुर्ंषंधगक रूप र्ें िी पाया र्ाता िै, जर्ससे े यि सन्दिे युजक्तयुक्त िी ठिरता िै कक न्याय का प्राचीन भसद्धान्त ब्रह्मवादी निींथा।'[516] दैवीय कारणवाद की प्रकल्पना का उल्लेखे न्यायसूत्र र्ें भर्लता िै।"[517] वात्स्यायन, उद्योतकर तथा पवश्वनाथ इसे ेन्याय का अपना र्त स्वीकार करते िैं, ककन्तु वाचस्पतत, उदयन और वधर्शान की सम्र्तत र्ें यि वेदान्त के इस र्त की आलोचना र्ात्र िै कक ब्रह्म पवश्व का उपादान कारण िै। इस आक्षेप के उिर र्ें कक र्नुष्य को प्रायः अपनेकर्ों का पूरा फल निींभर्लता और इसभलए सब कुछ ईश्वर की इच्छा पर तनभरश करता िै-र्ानवीय पुरुर्षाथ शपर निीं। न्याय का किना िै कक र्नुष्य के कर् शब्रह्म के तनयन्त्रण र्ें तथा उसके सियोग से फल उत्पन्न करते िैं। वात्स्यायन इस प्रकार की घोर्षणा करते िुए कक आत्र्ा सबको देखती िै, अनुभव करती िै तथा र्ानती िै, ब्रह्मपवद्या का सर्थनश करता िै। उक्त पववरण को यहद अपूण शर्ीवात्र्ा पर लागू ककया र्ाए तो इसका सब आर्य नष्ट िो र्ाता िै।'[518] परवती नैय्यातयक और वैर्ेपर्षक भी स्पष्ट रूप से ब्रह्मवादी िैं और आत्र्ा-सम्बन्धी प्रकल्पना पर पवचार करते ेसर्य ईश्वर के स्वरूप के पववेचन र्ें भाग लेतेिैं। अन्नंभट्ट आत्र्ाओं का वगीकरण करता िै कक आत्र्ाएंदो प्रकार की िैं, अथात्श ्सवोपरर तथा र्ानवीय। सवोपरर आत्र्ा ईश्वर िै, एक िै तथा सवज्ञश िै। र्ानवीय आत्र्ाएंसंख्या र्ें अनन्त िैं, प्रत्येक दिे र्ें भभन्न िैं।[519] ईश्वर को एक पवभर्ष्ट आत्र्ा र्ाना गया िै, र्ो सवर्शजक्तर्ि और सवज्ञशता के गुण धारण ककए िुए िै, जर्नसेवि सर्स्त पवश्व का संचालन तथा तनयर्न करता िै। क्योंकक र्ानवीय तथा दैवीय आत्र्ाएंअनेक पवर्षयों र्ें परस्पर भभन्न िैं, इसभलए ऐसा पवश्वास करना कहठन िै कक न्याय तथा वैर्ेपर्षक के आहदग्रंथकार गौतर् और कणाद का अभभप्राय इन दोनों प्रकार की आत्र्ाओं को एक िी वग शर्ें रखने ेका रिा िोगा। न्याय की लौककक प्रवृपि तथा ताककशक रुधच के कारण ईश्वर की यथाथसशिा के पवर्षय र्ें उसकी कियात्र्क उदासीनता िो सकती िै।[520]

---

516 "दोनों सम्प्रदायों के र्ूल ग्रंथों, वैर्ेपर्षक तथा न्यायसूत्रों र्ें ईश्वर की सिा को प्रारम्भ र्ें स्वीकार निींककया गया था। पीछे कुछ सर्य बीतनेपर दोनों दर्नश पररवतततश िोकर ईश्वरवादी बन गए, यद्यपप दोनों र्ें से कोई भी यिांतक निींपिुंचा कक यि ईश्वर को प्रकृतत का खष्टा र्ाननेलगे।" (गाबें कफलासफी आफ एभर्यण्ट इजण्डया, पृष्ठ 23)। म्योर "यि निींकि सकता कक न्याय का प्राचीन भसद्धान्त इंश्वरवादी था या निीं" (ओररर्नल संस्कृत टैक्स्ट्स, खण्ड 3: पृष्ठ 133)।

517 4/1 19-21।

518 न्यायभाष्य, 1/1, 9; 4/1, 2।

519 तकशसंग्रि, 17।

520 आथलेभलखता िै "िो सकता िै कक कणाद और गीतर् ने पिले र्ान-बूझकर अपनेदर्नशों र्ें ईश्वर का े ेछोड हदया िो, इसभलए निींकक उसका सवचशा अजस्तत्व िी निींथा, बजल्क इसभलए कक यि इस लौककक र्गत् ्से दूर तथा ऊपर िै, क्योंकक उक्त दोनों दर्नशों का प्रधान प्रततपाद्य पवर्षय यि लौककक र्गत् ्िी था। सम्भवतः सूत्रकारों नेअपने को ऐिलौककक (सांसाररक) वस्तुओं के वगीकरण तथा पववेचन की सीर्ा के िी अन्तगतश रखा और पारलौककक कताश की ओर ध्यान निीं हदया। ककन्तु भाष्यकारों नेइस त्रुहट पर पवचार करके ईश्वर का सजन्नवेर् उसी श्रेणी के अन्तगतश ककया र्िांऐसा करना सम्भव था, और उक्त त्रुहट को पूरा ककया" (तकशसंग्रि, पृष्ठ 137)। "न्याय तकश के पवपयर्ें इतनी अधधक रुधच रखता िै कक आध्याजत्र्क पवज्ञान र्ें इसका उत्र्र् िाथ र्ें भलए िुए कार् से पवचभलत िाना किलाएगा। और यि िर्ें ऐसा र्ान लेनेसे

उदयनकृत कुसुर्ांर्भल नार्क ग्रन्थ ईश्वर के अजस्तत्व-सम्बन्धी न्याय के प्रर्ाणों का र्ास्त्रीय पववरण िै। उक्त पुस्तक के पिले ेअध्याय र्ें कुछ पवचारणीय पवर्षय हदए गए िैं, र्ा एक अदृष्ट कारण की यथाथ श सिा को दर्ातेश िैं, र्ो िर्ारे सुख और दुुःख का तनणायशक िै ।'[521] प्रत्येक काय शकारण पर तनभरश करता िै। इसभलए िर्ारे सुख-दुुःख का भी कोई कारण अवश्य िोना चाहिए।'[522] प्रत्येक कारण अपनेसे पूववशती कारण का काय शिै और वि भी अपने-आप र्ें अन्य ककसी कारण का काय शिै। जर्से प्रकार संसार अनाहद िै, उसी प्रकार यि कारण काय शकी श्रृंखला भी अनाहद िै। इस प्रकार िर्ारे सुख-दुुःख के आहदकारण का पता निीं लग सकता।'[523] कायों की पवपवधता से कारणों की पवपवधता उपलक्षक्षत िोती िै। िर्ारे भभन्नता रखनेवाले ेभाग्यों का कोई एक िी सार्ान्य कारण, ईश्वर या प्रकृतत, निीं ंिो सकता। िर्ारे कर् शपवलुप्त िो र्ाते िैंककन्तु अपने पीछे संस्कार छोड र्ाते िैं, र्ो फल उत्पन्न करने की योग्यता रखते िैं। "ऐसी वस्तुजर्से ेगुर्े िुए एक दीघ शसर्य बीत गया िो, कोई पररणार् निींउत्पन्न कर सकती, र्ब तक कक उसका तनरन्तर रिने वाला कोई प्रभाव (कर्ातशतर्य) न िो।"[524] एक श्रेष्ठ कर् शके संस्कार को पुण्य तथा तनकृष्ट कर् शके संसं्कार को पाप किते िैं। ये दोनों भर्लकर अदृष्ट या गुणावगुण की सृजृष्ट करते िैं र्ो कर् शकरने वाले र्नुष्य की आत्र्ा के अन्दर अवजस्थत िोता िै-उस वस्तु के अन्दर अवजस्थत निीं ंिोता जर्ससे ेउसे ेसुख या दुुःख भर्लता िै। यिी अदृष्ट र्ब उपयुक्त सर्य, स्थान तथा पदाथ शभर्ल र्ाते िैं तो सुख और दुुःख को र्न्र् देता िै अदृष्ट की यि अतीजन्द्रय कायशर्जक्त यि प्रदभर्तश करती िै कक पुण्य और पाप बराबर जस्थर रिते िैं। इजन्द्रययुक्त र्रीरों का आत्र्ाओं के साथ सम्पकश प्राकृततक कारणों से निींिै। नैततक काय-शकारणभाव प्राकृततक पवधान से ऊपर िै। भभन्न-भभन्न आत्र्ाएंर्ो भभन्न-भभन्न पररर्ाण र्ें सुखानुभव करती िैं, यि सब उनके अपने-अपनेअदृष्ट की भभन्नता के कारण िोता िै।

उदयन यिांतक प्राचीन नैय्यातयकों के र्त र्ें भजक्त रखता िै। उनके सर्ान, पवश्व की रचना की व्याख्या के भलए वि भी अणुओं र्ें एक आहदर् किया की तथा आत्र्ाओं र्ें र्दृष्ट की कल्पना करता िै। ककन्तु र्ब वि यि युजक्त देता िै कक अदृष्ट के सर्ान एक बुद्धधिीन कारण ककसी बुद्धधयुक्त आत्र्ा के पथप्रदर्नश के बबना कोई काय शनिीं ंउत्पन्न कर सकता, तो वि उनसे ेआगे ेबढ़ र्ाता िै । ईश्वर को अदृष्ट के काय शका तनरीक्षण करने वाला किा गया िै।'[525] पररर्ाणुओं अथवा कर् शकी र्जक्त से र्गत् ्की व्याख्या निींिो सकती। यहद पररर्ाणुओं के अन्दर कियार्ीलता प्राकृततक िै तो वि कभी रुकनी निींचाहिए। यहद काल की र्जक्त से उनकी कियाओं का संचालन िोता िै तो कालरूपी इस अचेतन तत्त्व को या तो सवदशा कियार्ील या सवदशा तनजष्िय िोना

बारण करता िै कक ककसी पवर्षय र्ें र्ौन साधन का तात्पय शउक्त पवर्षय को त्याग देना िै " (ऐटोभर्ज्र्, पृष्ठ 265)।

521 सापक्षत्वाद् अनाहदत्याद् वैधच्याद् पवश्ववृपितः ।
प्रत्यात्र्तनयर्ाद् र्ुक्तेरजस्त िेतुरलौकककः ॥ (1/4)

522 1:5 ।

523 1:1 6 । इस प्रकार अदृष्ट के आहद का प्रश्न टाल हदया गया िै। देणखए न्यायवातत कथ4/1,21

524 1/9 ।

525 1/19 ।

 चाहिए। बछडे के पोर्षण के भलए गाय के दूधू का ऱ्ो प्रविा ि उसकी उपऱ् से प्रयोर्न भसद्ध र्निीं ीिता, क्योंकक

यहद दूधू अपने-आप र्् कियाऱ्ील िोता तो ऱ्ीं िुई गाय से भी प्रवाहित िोना चाहिए था। पररणार्् यि तनकलता ै किक यहद ककसी अचेतन वस्तु र्् किया हदखाई दे तो उसका कता शअवश्य कोई चेतना िोना चाहिए। ऱ्ीवात्र्ा अदृष्ट की तनयंत्रक र्निीं िो सकती, क्योंकक यहद ऐसा िोता तो वि अवांछनीय दुःखों को दूरू कर सकती, ककन्तु ऐसा िोता र्निीं। इस प्रकार बुद्धधपवीन तत्त्व अदृष्ट, ऱ्ो प्राणणयों के भाग्य का तनणायशक ि, ईश्वर के तनदेर्न र्् काय शकरता ि। ईश्वर न तो अदृष्ट को बनाता ि और न इसका अतनवाय शकायपशद्धतत र्् कोई पररवतनश करता ै, बजल्क इसके काय शकरने को सम्भव कर देता ि। इस प्रकार ईश्वर िऱ्ारे कर्ों का फलप्रदाता ि।

उदयन ने अन्य युजक्तयों का सार तनम्नभलणखत काररका र्् हदया ि। "कायों से, आयोर्न से, धारण आहद से परम्परागत कलाओं से, प्रार्ाणणकता से, श्रुततयों तथा श्रुततगत वाक्यों से और पवभर्ष्ट संख्याओंसे, एक तनत्यस्थायी तथा सवज्ञश सिा का अजस्तत्व भसद्ध िोता ि।" काय-शकारणभाव सम्बन्धी पववेचना को सबसे प्रथर्् स्थान हदया गया ि। र्गत्् को एक उत्पन्न वस्तुर्ाना गया ि, क्योंकक यि संघटक भागों से भर्लकर बना ि इसभलए इसका बनानेवाला अवश्य िोना चाहिए। क्योंकक "सर्वती कारणों की ककसी श्रृंखला के बबना ऱ्ो स्वतन्त्र रूप से अपना यथोधचत स्वरूप प्राप्त कर लेता ि, वि काय शर्निीं।" र्गत्् का रचतयता एक ऐसा बुद्धधर्ान ि ऱ्ो "संकल्प, कर्् शकरने की इच्छा एवं उधचत साधनों के ज्ञान का ऐसा सर्ुच्चय रखता ि ऱ्ो अन्य सब कारणों को गतत देता ि, ककन्तु वि स्वयं ककसी के भी द्वारा गतत र्् र्निींआता।"[526] आयोर्न से तात्पय शउस कर्् शसे ि ऱ्ो सृजष्टरचना के आरम्भ र्् दो अणुओं को भर्लाकर युग्र्भर्श्र बनाता ि। इस कर्् शसे एक बुद्धध-सम्पन्न कता शका अजस्तत्व उपलक्षक्षत िोता ि। धारण से तात्पय शि कक यि अद्भुत पवश्व उसी की इच्छा से संभला िुआ ि। उक्त काररका र्् ऱ्ो आहद र्ब्द ि वि इस पवर्षय का द्योतक ि कक इस र्गत्् का संिार करनेवाला भी विी ि। ईश्वर र्गत्् का तनर्ाणशकता,श संिारकताशतथा पुनतनर्ााणशकताशभी ि। परम्परागत कलाएं इसका उपलक्षण ि कक इनका कोई बुद्धधसम्पन्न आपवष्कारक अवश्य िोगा। वेदों की प्रार्ाणणकता इसभलए ि कक जर्सने उन्ि् प्रार्ाणणकता दी ै वि स्वयं प्रार्ाणणक ि। उदयन का र्त ि कक वेद, र्गत्् की अन्य सब वस्तुओं की भांतत, ऱ्ो उत्पपि और पवनार्् के अधीन ि, अतनत्य ि। इस पर भी यहद वे सत्यज्ञान के उद्भव-स्थान ि तो इसीभलए ि कक उनका रचतयता ईश्वर ि।[527] इसके अततररक्त, श्रुततयां (धर्शास्त्र) ईश्वर को र्गत्् का कताशबताती ि। कफर, वेदों के अन्दर वाक्य िऔर वाक्यों की रचना करनेवाला भी कोई िोना चाहिए, ऱ्ो केवल परर्ेश्वर िी िो सकता ि। संख्यापरक युजक्त का आधार यि पवचार ि कक युग्र् की र्िर्ा परर्ाणुओं की अनन्त सूक्ष्ता (पररर्ाण्डल्य) से र्निीं, बजल्क परर्ाणुओं की पवर्ेर्ष संख्या (अथात्श द्) से उत्पन्न की गई ि। र्ैसा कक िर्् देखेंगे, यि द्पवत्व का पवचार बुद्धध की अपेक्षा रखता ि, अथात्श बबना बुद्धधसम्पन्न कता शके र्निीं िो सकता। इसभलए इस द्पवत्व की व्याख्या के भलए, ऱ्ो सृजष्ट के प्रारम्भ र्् युग्र्ों को उत्पन्न करता ि, एक बुद्धधसम्पन्न कता शकी कल्पना करनी िी िोती ि। प्रत्यक्ष हदखाई न देनेका कारण ईश्वर के अजस्तत्व के सम्बन्ध र्् ऱ्ो आपपि की र्ाती ि, उसका

---

526 कायायशोर्नघृत्यादेः पदात्् प्रत्यतः श्रुतेः ।
वाक्यात्् संख्यापवर्ेर्षाच्च साध्यो पवश्वपवदव्ययः ॥ (3/1)

527 2:1 ।

प्रत्याख्यान उदयन इस प्रकार करता िै। ककसी पदाथ शके प्रत्यक्ष न िोने से उसका अभाव तब भसद्ध िोता िै र्बकक वि पदाथ शऐसा िो र्ो साधारणतः प्रत्यक्ष िोता िो। इजन्द्रयों की क्षेत्र्-सीर्ा से परे र्ो वस्तुएं िैं उर्न्ें असत् ् निींकिा र्ा सकता। अधधक से अधधक र्ो किा र्ा सकता िै वि यि िै कक ईश्वर के अजस्तत्व की भसद्धध प्रत्यक्ष द्वारा निीं ंिो सकती।'[528] अनुर्ान प्रर्ाण ईश्वर के अजस्तत्व को न तो भसद्ध करता िै न अभसद्ध िी ठिराता िै।'[529] उपर्ान प्रर्ाण को पदाथों के अजस्तत्व अथवा अभाव से कुछ प्रयोर्न िी निीं ंिै।'[530] र्ब्द प्रर्ाण ईश्वराजस्तत्व के पक्ष र्ें िै।' [531]अथापशपि और अनुपलजब्ध ज्ञान के स्वतन्त्र साधन निीं।'[532]

नैय्यातयक का ईश्वर रीरधारी िै, र्ो सत्,् धचत् ्(ज्ञान) और आनन्द से पूण शिै। उसर्ें अधर्,श भर्थ्याज्ञान तथा प्रर्ाद का अभाव िै, और यि धर्ज्ञशान सर्ाधध से युक्त िै। अपनी सृजष्ट-रचना र्ें वि सवर्शजक्तर्ान् ्िै, यद्यपप अपनी सृजष्ट के प्राणणयों के कर्ों के पररणार्ों से प्रभापवत िोता िै। वि स्वयं तो आप्त कर्फशल िै, अथात्श ्अपनेकर्ों के तर्ार् फल प्राप्त कर चुका िै, और अपनेरचे िुए प्राणणयों के भलए कर् शकरना र्ारी रखता िै। जर्स प्रकार एक पपता अपनेबच्चों के भलए कर् शकरता िै, उसी प्रकार परर्ेश्वर भी प्राणणयों के भलए कर् शकरता िै।"[533] परर्ेश्वर सवज्ञश िै, क्योंकक वि सत्यज्ञान रखता िै र्ो यथाथसशिा का स्वतन्त्र बोध िै। वि तनत्य प्रज्ञावान् ्िै क्योंकक उसके बोध तनत्यस्थायी िैं इसभलए स्र्ृतत अथवा अनुर्ान सम्बन्धी ज्ञान की उसे े आवश्यकता िी निीं। साधारण र्नुष्यों र्ें र्ो एक प्रकार का अन्तपवरशार्ी अलौककक प्रत्यक्ष ज्ञान िै, योधगयों र्ें र्ो प्राप्त की िुई र्जक्त (भसद्धध) िै, ईश्वर र्ें विी एक सर्ान रिने वाली बोध की प्रकिया िै।'[534] ईश्वर इच्छार्जक्त से भी युक्त िै।[535] ईश्वर पवरुद्ध, अबाधधत प्रततभा तथा परर्ानन्द का भण्डार िै।

सृजष्ट रचना की कठठनाइयों की उपेक्षा निींकी गई िै। सम्पूण शकिया को दुःख के अन्तगतश र्ाना गया िै और किा गया िै कक वि दोषों के कारण िै।"[536] प्रश्न उठाया गया िै कक क्या ईश्वर अपनी ककसी इच्छा की पूतत शके भलए र्गत् ्की सृजष्ट करता िै, अथवा दूसरों के भलए करता िै। परन्तु ईश्वर की सर्स्त इच्छाएं ंपिले ेसे िी पूण शिैं, इसभलए सृजष्ट रचना ईश्वर की ककसी भी इच्छा की पूतत शका साधन निीं िो सकती। र्ो दूसरों की भलाई के भलए धचजन्तत रिता िै, केवल बराबर व्यस्त रिता िै। और न िी िर् ईश्वर की उक्त किया का कारण र्नुष्यर्ात्र के प्रतत उसके प्रेर् को िी र्ान सकते िैं। र्गत् ्का दुःखस्वरूप िोना िी उक्त कल्पना का प्रत्याख्यान करता िै।

---

528 3/1 ।

529 3/4 -7 ।

530 3/8 -12 ।

531 8/13 - 17 ।

532 3/18 - 23।

533 न्यायभाष्य, 4 1,21 ।

534 उदयन एक रोचक प्रश्न उठाता िै कक क्या ईश्वर की सवज्ञशता के अन्दर सीभर्त र्जक्त वाले प्राणणयों के र्र्ात्र्क बोधों तथा उनके पवषयों (पदाथों) का ज्ञान भी सर्ापवष्ट िै, और पररणार्स्वरूप क्या ईश्वर पदाथों को उस रूप र्ें भी प्रत्यक्ष करता िै र्ैसेकक वे निीं। इसके उिर र्ें वि किता िै कक र्ानवीय रांततयों का ईश्वर को र्ो ज्ञान िै यि र्र्ात्र्क निीं।

535 न्यायभाष्य, 4/1, 21 ।

536 1/1, 18 ।

 नैय्यातयक उक्त आलोचना का उिर इस प्रकार देता ि : "ईश्वर का सृजृष्ट-रचनारूप कर् शवस्तुतः केवल

अनुकम्पावर् ि। परन्तु ऐसी सृजृष्ट रचना का पवचार जसर्ें केवल सुख िी िो, वस्तुओं की प्रकृतत से र्ेल निीं ं खाता, क्योंकक जर्न प्राणणयों की सृजृष्ट की र्ाएगी, उनके अच्छे या बुरे कर्ों के पवभभन्न पररणार्ों से अन्ततोगत्वा पवभभन्नता िोनी आवश्यक ि। और तुर्ें इस प्रकार की आपपि करने की भी आवश्यकता निींकक यि ईश्वर की अपनी स्वतंत्रता र्ें िस्तक्षेप िोगा (क्योंकक इस प्रकार वि दूसूरों के कर्ों पर तनभरश प्रतीत िोगा)। क्योंकक यि नीतत का वचन ि कक 'अपना र्ीर स्वयं अपने को बाधा निींदेता, बजल्क अपनी लक्ष्यप्राजप्त र्ें सिायक िोता ि।"[537] उद्योतकर स्वीकार करता ि कक ईश्वर की किया अन्य कारणों से र्यहशदत िो र्ाती ि, परन्तु ये कारण केवल स्वतः आरोपपत र्यादशाएं ंिं।[538] ईश्वर की दृजष्ट र्ें र्ो लक्ष्य ि वि प्राणणयों का सुख निीं अपपतु उनका आध्याजत्र्क पवकास ि। र्त् ्दुःखों द्वारा श्रेयस् ्की तथा त्याग द्वारा पूणतशा की प्राजप्त के भलए, र्ो िर्ारे आध्याजत्र्क लक्ष्य िं, एक प्रकार का क्षेत्र ि।

नैय्यातयक र्ैव िं, र्बकक वैर्ेपर्षकों को पारुुपत किा गया ि।'[539] जर्नदि अपने 'पववेकेपवलास' (तेरिवीं ं र्ताब्दी के र्ध्य र्ें रधचत) ग्रन्थ र्ें किता ि कक भर्व न्याय-वैर्ेपर्षक का देवता ि। उद्योतकर एक पारुुपत था। भासवज्ञ ने ध्यान-सर्ाधध का फल र्िेश्वर का साक्षात्कार बतलाया ि।'[540] उदयन सवोपररसिा को भर्व र्ानता ि।'[541]

न्याय का ईश्वरवाद-पवर्षयक भसद्धान्त हिन्दू ूपवचारधारा के इततिास र्ें बिुत पववाद का पवर्षय रिा ि। आलोचक का किना ि कक र्ब प्राकृततक सर्ाधान असफल िोता ि तो नैय्यातयक 'अदृष्ट' का आश्रय िोता ि। सृजृष्ट के आरम्भ र्ें परर्ाणुओं र्ें िलचल का िोना, आग की गतत का ऊपर की ओर िोना, यिांतक कक सुई का चुम्बक की ओर आकृष्ट िोना भी अदृष्ट के कारण र्ाना गया ि। अदृष्ट केवल व्याख्या की सीर्ा र्ात्र ि।"[542] एक बुद्धधसम्पन्न तनयार्क की आवश्यकता की कल्पना की गई ि र्ो ईश्वर ि, क्योंकक जर्स िर् से घटनाएं सम्पन्न िोती िं उस अद्भुत तनयभर्तता की व्याख्या भसवाय ईश्वर के अन्य ककसी प्रकार से की िी निींर्ा सकती क्योंकक ईश्वर र्ें ज्ञान, इच्छा तथा प्रयत्न िं। प्रलयकाल र्ें आत्र्ाओं की कियार्जक्त नष्ट िो र्ाती ि

---

537 सवदशर्नशसंग्रि, 11।

538 न्यायवाततकश, 41, 21।

539 देणखए गुणरत्नकृत 'पड्दर्नशसर्ुच्चयवृपि', पृष्ठ 49-51। और देणखए िरभद्रकृत 'धड्दर्नशसर्ुचअप

अक्षपादर्ते देवः सृजृष्टसंिारकृत् ्भर्वः ।

पवर्ुतनत्शयैकः सवज्ञोशनत्यबुद्धधसर्ाश्रयः॥ (13)

रार्र्ेखरकृत र्षड्दर्नशसर्ुच्चय, र्ो कुछ सर्य पूव शबना, इस र्त का सर्थनश करता ि। देणखए कीथ इजण्डयन लॉजर्क एण्ड ऐटोभर्ज्र्', पृष्ठ 262-63।

540 न्यायसार, पृष्ठ 39।

541 कुसुर्ांर्भल, 2:4 ।

542 र्यन्त अपनेन्यायर्ंर्री नार्क ग्रन्थ र्ें चावाकश भसद्धान्त की आलोचना करते िुए किता ि कक अब िर् ककसी वस्तु के कारण को निींर्ानते ेतो उसे स्वाभापवक अथवा प्राकृततक किने लगतेिं।

 तथा सृजृष्ट रचना के सर्य उर्न् यि कफर प्राप्त िो र्ाती िै, इस सबकी व्याख्या बबना दैवी संचालन के सम्भव

निीं। उदयन तथा श्रीधर ने काय-शकारणभाव से अत्यधधक लाभ उठाया िै।'[543]

यि धारणा करके कक यि र्गत् ्एक काय शिै, नैय्यातयक ने र्ो भसद्ध करना िै उसे ेपिले ेसे स्वतः र्ान भलया िै। पौधे ेतथा परु-पक्षी स्वात्रतनभरश निीं ंिैं। वे उत्पन्न िोते िैं, बढ़तेिैं तथा र्ृत्यु को प्राप्त िोते िैं। व्यजक्तरूप वस्तुएं उत्पन्न पदाथ शिैं ऐसा किने का अथ शयि निीं कक यि र्गत् ्एक पूण शइकाई के रूप र्ें उत्पन्न पदाथ शिै। नेय्यातयक अनेक तनत्यसनाओंके अजस्तत्व को स्वीकार करता िै र्ो उत्पन्न पदाथ शनिीं।[544] तो क्या यि र्गत् ्सम्पूण शरूप र्ें भी तनत्य निींिो सकता? कफर क्या सर्स्त कायों के तनभर्ि कारण भी रिने आवश्यक िैं? र्ैसाकक िर् पिले ेदेख चुके िैं, काय-शकारण का पवधान, जर्स रूप र्ें नैव्यातयक इसकी व्याख्या करता िै, सावभशौर् प्रार्ाणणकता निीं रखता। इसकी साथकशता इसके अततररक्त और कुछ निीं कक यि एक सर्ान और सािचय-शसम्बन्धी पररवतनश को दर्ातशा िै क्योंकक इसकी साक्षी इजन्द्रयगोचर र्गत् ्से ली गई िै, इसभलए इसके क्षेत्र को उससेपरे बढ़ाना भूल िै। सृजृष्ट के कारण का ज्ञान र्ानवीय र्जस्तष्क से बिर का पवषय िै। अनन्त कारणों की अनन्त प्रतीप गतत असम्भव िै, इसीभलए नैव्यातयक को एक ऐसेकारण के अजस्तत्व पर बल देना पडा र्ो काय-शकारण श्रृंखंला से बिर िै जर्सका कोई अन्य कारण निीं ंिै। र्ंकराचाय शकाय-शकारणभाव की युजक्त का पवरोध करते िुए िर्ें परार्श देते िैं कक िर् सािसपूवकश यि स्वीकार करें कक यि पवश्व िर्ें पवद्यर्ान प्रीत िोता िै, इसके अततररक्त िर् और कुछ निींर्ानते। इसका अजस्तत्व अपने-आप से िै, अथवा यि ककसी सुदूरू कारण का काय शिै इसे िर् निींसझ सकते। यहद िर् ककसी सुदूरू कारण को स्वीकार करते िैं तो िर् उसके भी सुदूरू कारण की र्ागुँ क्यों न करें, और इस प्रकार अतनजश्चत काल तक र्ांग करते–करते ेहदर्ाग hat 61 खराब िो र्ाएगा। यहद ईश्वर का अजस्तत्व िै तो उसे ेककसने बनाया? सांख्य के अनुसार, यि र्ान लेनो कक पवश्व के कता शने अपने-आप बनाया। अध्यात्रपवद्या की दृजष्ट से यि प्रश्न कर् निींिो सकता और सर्ाधान सर्स्या से भी बुरा िै। नैय्यातयक के सगुणवाद से तो और भी कहठनाइयांउपजस्थत िोती िैं। प्रश्न उठता िै कक सृजृष्ट का कता शर्रीरी िै या निीं?ं यहद वि र्रीरी िै तो उसे ेअदृष्ट के अधीन र्ानना पडेगा, क्योंकक सब र्रीरों की रचना अदृष्ट के िी आधार पर िोती िै। सब र्रीरधारी तनभर्तश िोते िैं, और वेसूक्ष्र् परर्ाणुओं तथा पाप-पुण्य पर तनयन्त्रण निींकर सकते। िर् निींर्ानते ेकक तनत्यर्रीर क्या वस्तु िै? इस पवषय र्ें नैय्यातयकों का र्त स्पष्ट निीं। वे कभी किते िैं कक परर्ेश्वर बबना ककसी र्रीररूपी साधन के सृजृष्ट की रचना करता िै, और साथ-साथ यि भी किते िैं कक िर्ारे अदृष्ट के कारण परर्ेश्वर को भी र्रीर प्राप्त िो र्ाता िै। कभी परर्ाणुओं को िी परर्ेश्वर का र्रीर र्ान भलया र्ाता िै, एवं अन्य अवसरों पर आकार् को र्रीर की कोहट र्ें लाया र्ाता िै। यहद ईश्वर ककसी अधचन्त्य पवधध से, र्रीर के बबना, परर्ाणुओं द्वारा सृजृष्ट की रचना करने र्ें सर्थ शिै, तो िर् ऐसा भी कि सकते िैं कक वि बबना ककसी पूव-शअवजस्थत सार्ग्री के सृजृष्ट की रचना कर सकता िै।

---

543 न्यायकन्दली, पृष्ठ 54-57 ।

544 "तनत्य यस्तु की कोई उत्पपि निीं िोती, और न िी तनत्य वस्तुका कोई कारण िोता िै। (न्यायवाततकश4/1, 32)

ईश्वर की भसद्धध के भलए उपयुक्त की र्ानेवाली युजक्तयों की प्रार्ाणणकता को िर् यहद र्ान भी लें तो भी न्यायदर्नश का ईश्वर एक ऐसी पूण शआध्याजत्र्क यथाथसशिा निींठिरता कक जर्सकी िर् अपूण श अभभव्यजक्तयां िैं। वि िर् सेऔर गत् ्से भी बाह्य िै, भले िी िर् उसे ्सेसृजृष्ट का कारण, र्ासक तथा संिारिकता श कि लें। यथाथसशिा असंख्य अर्व्यापी अवयवों से बनी िै र्ो एक बाह्य बन्धन द्वारा श्रृंखलाबद्ध िै, र्ैसेकेक एक रस्से ्ेर्ें अनेकों लकडडयां बंधी रिती िैं। ईश्वर परर्ाणुओंका रचतयता निीं, अपपतु केवल उन्िेंिर्बद्ध करनेवाला िै। उसकी बुद्धधर्ि पवश्व के तत्त्वों पर बिार से काय शकरती िै, आन्तररक र्ीवनी र्जक्त के रूप र्ें काय शनिीं ंकरती। ईश्वर के पवर्षय र्ें इस प्रकार का पवचार कक वि गत् ्से परे, देर् के सर्स्त पवचार से बिार, एक र्ाश्वत आत्र्केजन्द्रत एकान्त र्ें, पवल्कुल अलग रिता िै, सवथशा र्ुष्क और थोथा पवचार िै। िर् इस प्रकार के द्वैतवाद को, जर्सके अनुसार एक ओर एक अनन्त स्रष्टा तथा दूसूरी ओर एक अनन्त पवश्व िो, प्रर्ाणणत निीं ं कर सकते। वे दोनों िी एक-दूसूरे को र्ाहशदत कर देंगे। जर्न वस्तुओंकी पररभार्षा एक-दूसूरे के प्रतत की र्ाए, वे अवश्य सान्त िोनी चाहिएं। र्ीवात्र्ाएं कभी-न-कभी स्वातंय् प्राप्त करती िी िैं। सबकी र्ुजक्त से संसार लुप्त िी र्ाएगा; ईश्वर का आधधपत्य भी सर्ाप्त िो र्ाएगा। जर्सका अन्त िै, उसका आहद भी िै। दोनों िी र्ून्य से प्रादुभूतश िुए िोंगे ्ेऔर इसभलए र्ून्य र्ें िी लुप्त भी िो र्ाएंगें। यि सत्य िै कक सृजृष्ट-रचना का कारण ईश्वर का प्रेर् बताया गया िै, ककन्तु इस कल्पना के आधार पर सृजृष्ट का तात्पय शक्या िै? यहद परर्ाणु तथा आत्र्ाएंदोनों िी तनत्य िैं, और उक्त दोनों की किया-प्रततकिया का िी पररणार् सृजृष्ट िै, तो कफर सृजृष्ट-रचना र्ें ईश्वर का स्थान किां ंिै? इसभलए या तो नैय्यातयक को ईश्वर को स्रष्टा र्ानने का पवचार त्याग देना चाहिए अथवा यि स्वीकार करना चाहिए कक परर्ाणु तथा आत्र्ाएंईश्वररूपी तनत्य और र्ाश्वत कारणता की अभभव्यजक्तयां िैं, यद्यपप इस कारणता को याजन्त्रक अथों र्ें निीं ंभलया र्ाना चाहिए। यि न्याय के इस सुझाव से उपलक्षक्षत िोता प्रतीत िोता िै कक पदाथों का स्वरूप िी ईश्वर की दिे िै। यि एक ऐसा दृष्टान्त िै जर्सका उपयोग रार्ानुर् के भाष्य र्ें बिुत सावधानी के साथ और उच्च प्रयोर्न को लेकर ककया गया िै। ईश्वर के अवश्यंभापवत्व का कुछ ऐसा िी पवचार उसकी सवज्ञशता के कारण बलात् ्िर्ारे ऊपर आरोपपत ककया गया िै। न्याय के अनुसार, सान्त प्राणी केवल पवचार को र्ानतेिैं, और इस प्रकट तथ्य को भी कक यथाथ शवस्तु पवचार निीं िै। पवचार और यथाथतशा र्ें परस्पर-सम्बन्ध क्या िै और कैसे िै, इसे ्ेकेवल एक अनन्तर्जस्तष्क िी, जर्सकी कल्पना सान्त र्जस्तष्कों के िी अनुरूप की गई िो, र्ान सकता िै। आत्र्ाएंतथा परर्ाणुईश्वर के साथ-साथ सर्ानरूप से तनत्य िैं, र्ो केवल सर्ानों र्ें प्रथर् िैं। प्रारम्भ र्ें तो ऐसा प्रतीत िो सकता िै कक न्याय ईश्वर के प्रतत भजक्त पर आग्रि करके र्नुष्य-र्तत के धाभर्कश र्ीवन र्ें सिायता करता िै। ककन्तुन्याय तनश्चय िी ईश्वर के साथ तादात्म्य के आदर् श को निीं ंतनभा सकता, क्योंकक उसकी प्रकल्पना के स्वरूप से िी ईश्वर र्नुष्य तथा पवश्व से बाह्य िै। वेदान्त अपनेसर्स्त रूपों र्ें तथा योगदर्नश भी उपासना का सर्थनश करते िैं, ककन्तु यि इस पवचार को लेकर िै कक व्यजक्त दैवीय पद प्राप्त कर ले। न्याय यहद र्नुष्य-र्तत की उच्चतर् धाभर्कश प्रेरणाओं को सन्तुष्ट करना चािता िै तो उसे ्ेअपनेईश्वर-पवर्षयक भाव पर पुनः पवचार करना िोगा।

26. उपसंरि

हिन्दू ूपवचारधारा के प्रतत न्यायदर्नश की सबसेबडी देन इसकी सर्ीक्षात्र्क तथा वैज्ञातनक अन्वेर्षण की तकशरै्ली ि।ै इसकी पद्धतत को अन्य दर्नशों ने भी ग्रिण ककया ि,ै यद्यपप अपने आध्याजत्र्क पवचारों के कारण कुछ पररवतनशों के साथ ग्रिण ककया ि।ै इसनेज्ञान-र्गत् ्ि ै बायाधचत्र को उसके अतनवाय शरूपों र्ें तैयार करके, उसके र्ुख्य र्ुख्य पवभागों को र्ो संज्ञाएं ्कान की, हिन्दू ूपवचारधारा र्ें उनका आर् भी उसी रूप र्ें प्रयोग िो रिा ि।ै यि इस बात पवर्द प्रर्ाण ि ै कक न्यायर्ास्त्र ने पवचारधारा के क्षेत्रे् र्ें ककतनी दूरू तक उन्नतत की थी। र्ास्त्र र्ें प्रततपाहदत िेत्वाभासों की सूची ने हिन्दू ूपवचारकों को र्ताजब्दयों तक ऐसे साधन हदए ि ै जर्नके द्वारा सत्य तथा भर्थ्या अनुर्ान के र्ध्य र्ीघ्र तथा तनजश्चत भेद ककया र्ाता रिा ि,ै और रांततरू्लक तनष्कर्षों को उधचत संज्ं्ञा देकर उनकी दोर्षपूणतशा की ओर संकेत ककया र्ाता रिा ि।ै संस्कृत के दर्नशग्रन्थों र्ें िर्ें प्रायः इस प्रकार की चुप करा देनेवाली आलोचना भर्लती ि ै कक "यि एक चिक ि",ै अथातश ्ऐसी युजक्त ि ै र्ो चि की तरि घूर्कर विींआ र्ाती ि;ै "यि साध्यसर् ि",ै अथातश ्बबना तकश के ककसी बात को स्वीकार कर लेना ि,ै "यि अन्योन्याश्रय अथातश ्एक-दूसूरे पर तनभरश ि",ै "यि अनवस्था की ओर ले र्ाता ि,ै अथात्श ्जर्सका किीं ्अन्त निीं ् िो सिकता।" न्याय के िेत्वाभास सम्बन्धी भसद्धान्त ने भारतीय पवचारकों के िाथ र्ें इस प्रकार का एक तत्काल-गणक दे हदया ि ै र्ो, बोनी नार्क पवद्वान् ्के भावपूण शब्दों र्ें, िाथ धोने ्के भलए "बार-बार सर्ुद्र के पास र्ाने से िर्ें बचा देता ि।ै"

न्यायदर्नश की र्जक्तर्ा तथा तनबलशता भी उसके इस पवश्वास र्ें ि ै कक सिर् बुद्धध तथा अनुभव की पद्धतत का प्रयोग धर् शऔर दर्नश की सर्स्याओं पर भी िो सकता ि।ै एक अनेकत्ववादी पवश्व, र्ो आत्र्ा तथा भौततक प्रकृतत के र्ौभलक द्वैतभाव पर आधश्रत ि,ै एक प्रकिया तथा पद्धतत के रूप र्ें काफी युजक्तयुक्त ि,ै ककन्तु इसे ेएक सार्ान्य दर्नश का रूप निीं ्हदया र्ा सकता। एक साधारण व्यजक्त को बाह्य दृश्यर्ान र्गत् ्की यथाथतशा स्वीकार करने र्ें कोई हिचककचािट निींिोती। वि आत्र्वादी भी ि,ै यद्यपप उसका यि आत्र्वाद जर्तना अन्तःप्रेरणा के आधार पर ि ै उतना तकशवाि के आधार पर निीं, और इसभलए वि अपनी तथा अन्य आत्र्ाओं के अजस्तत्व को स्वीकार कर लेता ि।ै वि यथाथसशिा की भर्न्न-भभन्न श्रेर्णयों को निींर्ानता, क्योंकक इस प्रकार का पवचार उसके द्वैतपरक यथाथवशाद के दृढ़ पवश्वास के पवरोध र्ें र्ाता ि।ै ककन्तु तकश के हित र्ें वि इजन्द्रयों की पिुंच के बािर प्रर्ेय पदाथों की श्रेर्णयों के पवचार का स्वागत करता ि।ै ब्रह्र्पवद्या र्ें वि पवश्व के कारण का प्रश्न उठाता ि।ै पवश्व का तनर्ाणश ककस प्रकार से िोता ि?ै वि किता ि ै कक यि र्ैसा अब ि,ै र्ब से यि बनना प्रारम्भ िुआ, सदा वैसा िी रिा। यद्यपप, द्वैतवादी िोनेके कारण, वि र्ड और चेतन के र्ध्य ककसी संजिन्त को स्वीकार करने से दूरू रिने का प्रयत्न करता ि,ै पर उसकी अनुभवात्र्क बुद्धध उसे ेपवश्व की जस्थरता के र्त को स्वीकार करने की अनुज्ञा निीं ्देती। इस कहठनाई र्ें वि अपनेअनुभव की ओर झुकता ि,ै र्िां ्वि पाता ि ै कक वि अपने सेभभन्न नाना पदाथों का, यथा टेबल, कुसी आहद का तनर्ाणश करता ि।ै जर्स प्रकार िर् अपनी बनाई वस्तुओं से सवथशा भभन्न प्रकृतत के ि,ैं इसी प्रकार इस सृजृष्टरूप वस्तु को बनानेवाला

इससे सवथशा भभन्न प्रकृतत वाला ि◌ो सकता ि◌ै। जर्स प्रकार ि◌र् पवद्यर्ान सार्ग्री के द्वारा नये भसरे से तनर्ाणशकाय शर्रे् संलग्न ि◌ोते ि◌ैं, ईश्वर भी ठीक उसी प्रकार आत्र्ाओं तथा परर्ाणुओं रूपी उपलब्ध तत्त्वों से, र्ो दोनों ि◌ी सिाचयभशाव से उसके सर्ान तनत्य ि◌ैं, सृजृष्ट की रचना करता ि◌ै। इस प्रकार न्याय सिर् बुद्धध के अनुभवों के प्रतत ईर्ानदार रिने का प्रयत्न करता ि◌ै और अनेकत्ववादी यथाथवशाद के आध्याजत्र्क ज्ञान का तनर्ाणशकरता ि◌ै।

उक्त व्याख्या द्वारा ि◌र्नेइस पवर्षय का तनदेर् ककया ि◌ै कक न्याय का र्त रिां पवचारधारा के पवकास र्ें तन:सन्दिे एक स्वाभापवक तथा आवश्यक पडाव ि◌ै, विां इसे ◌ेअजन्तर् लक्ष्य निींकिा र्ा सकता। यथाथसशिा की याजन्त्रक व्याख्या, र्ो इसे ◌ेपीछे की ओर इसके तत्त्वों पर ले र्ाती ि◌ै, पवकास के तथ्य को बीच र्ें से तनकाल देती ि◌ै। इस दर्नश की सत्याभासता इस कारण से ि◌ै कक यि केवल पवर्षतयपवज्ञानवाद का आग्रिपूवकश पवरोध करता ि◌ै तथा र्नुष्य र्तत की आहदर् भावनाओंको सन्तुष्ट कर देता ि◌ै। हिन्दू ◌ूपवचारधारा का कोई भी दर्नश, यिांतक कक र्ंकराचाय शका दर्नश भी सृजृष्ट के केवल र्ानभसक अजस्तत्व को स्वीकार निींकरता। ककन्तु आध्याजत्र्क आदर्वशाद तथा र्नोवैज्ञातनक यथाथवशाद र्ें परस्पर कोई पवरोध निीं ◌ंि◌ै।'[545] वस्तुओंकी कियात्र्क यथाथतशा को, र्ो सीभर्त र्नों से स्वतन्त्र ि◌ै, पवर्षयाधश्रत (पदाथतशनष्ठ) आदर्वशाद की सर्स्त दार्तशनक पद्धततयों ने स्वीकार ककया ि◌ै। पवचार के स्वरूप तथा अवस्थाओं का आध्याजत्र्क अन्वेर्षण ि◌र्ें इस बात के भलए बाध्य करता ि◌ै कक ि◌र् आत्र्ा को अन्य पदाथों की कोहट का एक पदाथ शन सर्झें। यि एक प्रकार के आदर्वशाद को र्न्र् देगा र्ो सिर् बुद्धध के र्त को उतना उलटेगा निींजर्तना कक उसके पार र्ाएगा। आध्याजत्र्क आदर्वशाद भी ि◌र्ें सिर् बुद्धध तथा र्नोपवज्ञान के दृजष्टकोण से यि स्वीकार करने की अनुर्तत प्रदान करता ि◌ै कक पवचार तथा वास्तपवकता र्ें भेद ि◌ै। ि◌र्ारे अनुभव र्ें अपवजच्छन्नता तथा सार्ंर्स्य का तात्पय शि◌ै कक अननुभूत वस्तुओं की भी यथाथसशिा ि◌ै। सांख्य और वेदान्त ने तकश की हदर्ा र्ें अनुभव के गिनतर पवश्लेर्षण का भार अपनेऊपर भलया। रार्ानुर् के भाष्य र्ें ि◌र्ें न्याय के ब्रह्मपवद्या सम्बन्धी पवचारों का अधधक व्यवजस्थत सर्न्वय भर्लता ि◌ै।

उद्धृत ग्रंथों की सूची

- ऑथले: तकशसंग्रि ऑफ अन्नंभट्ट-अंग्रेर्ी भार्षानुवाद
- कावेल : उदयनकृत कुसुर्ांर्भल अंग्रेर्ी भार्षानुवाद
- कावेल एण्ड गफ : सवदशर्नशसंग्रि, 11
- गंगानाथ झा : न्यायसूत्रार् पवद वात्स्यायन्स भाष्य एण्ड उद्योतकस श
- वाततकश-अंग्रेर्ीभार्षानुवाद
- कीथ इजण्डयन लॉजर्क एण्ड ऐटोभर्ज़्

545 तुलना कीजर्ए, ग्रीन: "यि सवथशा एक जस्थर रिनेवाली जस्थतत ि◌ै कक पदाथ शकी चेतना की एक अवस्था न र्ानना और तो भी यि स्वीकार करना कक केवल एक पवचारर्ील चेतना के भलए ि◌ी इसकी कुछ यथाथतशा ि◌ै" (वक्स शखण्ड 1, पृषृठ 423)।

- सील: हद पॉजर्हटव साइंसेर् आफ हद ऐंभंर्यंट हिन्दू
- पवद्याभूर्षण : हिस्री आफ इजण्डयन लॉजर्क

तीसरा अध्याय

वैरे्पर्षक का परर्ाणु-पवर्षयक अनेकवाद

वैरे्पर्षक दर्नशतनर्ाणशकालतथा साहित्य-ज्ञानकाभसद्धान्तपदाथ-शद्रव्य- परर्ाणुवाद की प्रकल्पना- गुण-कर् शअथवा किया-सार्ान्य- पवरे्र्ष - सर्वाय-अभाव-नीततर्ास्त्र-ईश्वर-वैरे्पर्षकदर्नश का सार्ान्य रूल्यांकन

1. वैरे्पर्षक दर्नश

वैरे्पर्षक दर्नश को यि नार् 'पवरे्र्ष' ब्र्द के कारण हदया गया ि।ै उक्त दर्नश अपनेइस र्त पर बल देता ै किक इस पवश्व के पृथक् पृथक् पदाथों, पवरे्र्षकर उन पृथक् पृथक् र्ीवात्र्ाओं और परर्ाणुओं र्ें िी, र्ो प्रत्यक्ष के पवर्षय निीं, यिाथ शपवभर्ष्टत्व अथवा पृथक्त्व हदखाई देता ि।ै यद्यपप पृथक् पृथक् र्ीवात्र्ाएंसावभशौर् एवं ं सार्ाजर्क सम्बन्धों से युक्त िैं जर्नके द्वारा िी वे अपने-आप को पिचान सकती िैं तो भी वे इन सब सम्बन्धों

के अततररक्त अपना पवर्रे्षत्व रखती ि ैं। यथाथ शरूप र्ें वैर्रेपेर्षक दर्नश पाथक्शय का प्रततपादन करनेवाला दर्नश ि ै, क्योंकक यि ऐसेककसी भी प्रयत्न को सिन करने के भलए तैयार निीं िै र्ो र्ीवात्र्ाओं तथा पदाथों के पृथक् पृथक् अजस्तत्व को भर्टा कर ककसी काल्पतनक अधधक पूण शव्यजक्तत्व की स्थापना के भलए ककया गया िो। इसका दृजष्टकोण कल्पनापरक िोनेकी अपेक्षा वैज्ञातनक ि ै, संश्लेर्षणपरक न िोकर पवश्लेर्षणात्र्क ि ै, यद्यपप यि पवश्व के, एक पूण शइकाई के रूप र्ें सार्ान्य स्वरूप से सम्बद्ध प्रश्नों को भी सवथशा भुला निींसका ि ै। पवज्ञान का काय शपृथक् पृथक् पवश्लेर्षण करना ि ै, र्बकक दर्नश का काय शसर्न्वय करना ि ै। वैर्रेपर्षक को एक ऐसे सवान्शतग्रिशी सर्न्वय की रचना र्ें कोई रुधच निीं जिसर्ें कक सब वस्तुओंके भलए स्थान िो, अथात् शर्ो सर्स्त इजन्द्रयगत् तथा पवचारगत् की पवपवधता को एक िी व्यापक सूत्र र्ें बांध सके। पवज्ञान की भावना को लेकर यि दृश्य वस्तुओं के अत्यन्त सार्ान्य लक्षणों को सूत्रबद्ध करने का प्रयत्न करता ि ै। यि अनुभव के पवभभन्न पक्षों को उनकी संज्ञा देनेतथा सरुधचत वगों र्ें रखने का काय शकरता ि ै। पररणार्स्वरूप यि दर्नश पृथक् पृथक् स्वरूप तो बतलाता ि ै, ककन्तु ककसी यथोधचत तथा व्यापक भसद्धान्त की स्थापना निीं करता ।

वैर्रेपर्षक दर्नश की प्रेरणा बौद्धदर्नश के प्रतीततवाद के पवरोध र्ें प्रादुभूतश िुई। र्िां यि एक ओर ज्ञान के साधनों, प्रत्यक्ष और अनुर्ान के पवर्षय र्ें बौद्धदर्नश के र्त से सिर्त ि ै, विांदूसरी ओर इसका यि भी तकश ि ै कक र्ीवात्र्ाएं तथा द्रव्य अपने आप र्ें सारवान् तथा यथाथ शतथ्य ि ैं और इनके अजस्तत्व का खण्डन इन्िें पिदे के पीछे खेली र्ा रिी एक परी कथा के काल्पतनक धचत्र र्ानकर निींककया र्ा सकता। इसको ईश्वरज्ञान सम्बन्धी सर्स्याओं से कोई प्रयोर्न निीं। र्ंकराचाय शतो अपनी सर्ीक्षा र्ें यिांतक किते िैंकक वैर्रेपर्षक की प्रवृपि रु्ख्यतः अनीश्वरवाहदता की ओर ि ै।'[546] चािे र्ो भी िो, वैर्रेपर्षक अपनेप्रारजम्भक रूप र्ें एक अत्यधधक र्ानभसक लोच के युग र्ें प्रस्तुत ककया गया, र्बकक संर्ंयवाद के अंकुर पवचारधारा के अन्दर पयाप्शत र्ात्रा र्ें पवद्यर्ान थे।

यि दर्नश यद्यपप रु्ख्य रूप से भौततक तथा आध्याजत्र्क पवज्ञान का दर्नश ि ै, तो भी तकशसम्बन्धी पववादों का इसके परवती ग्रन्थों र्ें कुर्ल गठबन्धन पाया र्ाता ि ै। वैर्रेपर्षक और न्याय अपनेताजत्त्वक भसद्धान्तों, यथा आत्र्ा के स्वरूप और गुणों तथा पवश्व की परर्ाणुपरक प्रकल्पना के पवर्षय र्ें एकर्त ि ैं। परन्तु वगीकरण तथा पदाथों के पवभर्ष्टत्व के तनरूपण र्ें एवं परर्ाणुवाद की प्रकल्पना के पररष्कार र्ें वैर्रेपर्षक दर्नश अपना पवर्रे्ष र्ित्त्व रखता ि ै।

2. तनर्ाणशकाल तथा साहित्य

"वैर्रेपर्षक दर्नश का तनर्ाणश न्यायदर्नश से बिुत पूव शिुआ प्रतीत िोता ि ै।"[547] गार्बेर्िोदय की उक्त सम्र्तत युजक्तयुक्त प्रतीत िोती ि ै। र्ानवीय ज्ञान र्ें पवर्रे्ष, सार्ान्य से पिले आता ि ै। ज्ञान की प्रकल्पना,

---

546 र्ंकराचाय शवैर्रेपर्षक के अनुयातययों को अधवैशनाभर्क अथवा अधर्शून्यवादी र्ानते ि ैं (र्ांकरभाष्य ,2:2, 18)

547 गाबें 'हद कफलासफी आफ एभर्यण्ट इजण्डया', पृष्ठ 20।

 रैसी कक िर्ें न्यायर्ास्त्र र्ें भर्लती िै, तब तक सम्भव निींिीं सकता िै र्ब तक कक ज्ञान स्वतन्त्र रूप र्ें
उन्नतत निीं ंकर लेता। तकशर्ास्त्र आलोचक तथा सुधारक के रूप र्ें प्रकट िोता िै। कणाद के सूत्र तथा प्रर्स्तपादकृत 'पदाथधशर्संशग्रि' पर न्यायर्ास्त्र का कोई प्रभाव निींिीं, र्बकक गौतर् के सूत्र तथा वात्स्यायन के भाष्य वैर्ेपर्षक र्त से पयाप्शत र्ात्रा र्ें प्रभापवत िुए िैं।

यि भी बलपूवकश किा र्ाता िै कक वैर्ेपर्षक दर्नश की रचना बौद्ध तथा रै्न-दर्नशों से पूव शुिई। बौद्धों के 'तनवाणश' की प्रकल्पना का आहद उद्भव-वैर्ैपर्षक की 'असत्कायवशाद' की प्रकल्पना से िुआ र्ाना र्ाता िै। रै्नों के 'आजस्तकाय' तथा उनकी परर्ाणुवाद की प्रकल्पना का र्ूल भी वैर्ेपर्षक र्ें िी िै, जर्सका उल्लेख अनेकों रै्न-ग्रन्थों तथा लभलतपवस्तर र्ें भी भर्लता िै। लंकावतारसूत्र र्ें भी परर्ाणुवाद का संकेत पाया र्ाता िै। रै्नों का एक परवती ग्रन्थ 'आवश्यक'[548] रोिगुप्त (18 ई.) को वैर्ेपर्षक दर्नश का रचतयता र्ानता िै, र्ो रै्नधर् शके छठे पवभेद का प्रधान गुरु था। यद्यपप उक्त ग्रन्थ का वैर्ेपेर्षक-पवचार-सम्बन्धी आख्यान कणाद की योर्ना के अनुकूल िै[549], ककन्तु इसके इस दावे ेको कक वैर्ेपर्षक दर्नश रै्नदर्नश की िी एक र्ाखा िै, प्रर्ाणणत करना कहठन िोगा। रै्नदर्नश तथा वैर्ेपर्षक र्ें र्ो सर्ानता का पवर्षय िै और जर्सके कारण उक्त दावे का संकेत भर्ल सकता िै वि परर्ाणुवाद की प्रकल्पना िै, ककन्तु इस पवर्षय र्ें भी दोनों के पवचारों र्ें र्ौभलक भभन्नता पाई र्ाती िै। रै्नै र्त के अनुसार, गुणों की दृजष्ट से परर्ाणु ुएकसर्ान िैं। प्रत्येक परर्ाणु ुर्ें रंग, रस, गन्ध और स्पर् शतथा र्ब्द के उत्पादन की क्षर्ता पवद्यर्ान िै, यद्यपप वि स्वयं तन:र्ब्द िै। वैर्ैपर्षक र्त र्ें, गुणों की दृजष्ट से परर्ाणुओं र्ें भेद िै। वे वायु, र्ल, अजग्न और पृथ्वी-जर्सके भी परर्ाणु िों उसके हिसाब से एक, दो, तीन अथवा चार सार्ान्य गुण रखतिैं, और र्ब्द के साथ उनका कोई सम्बन्ध निींिीं। परर्ाणुवाद की प्रकल्पना, द्रव्यों का वगीकरण और ज्ञान के दो साधनों की स्वीकृतत बलपूवकश यि संकेत करते िैंकक वैर्ेपेर्षक दर्नश की रचना बुद्ध और र्िावीर के सर्य' [550](छठी-पांचवीं ंर्ताब्दी ई. पू.) के लगभग िुई।

वैर्ेपर्षक दर्नश की व्याख्या व्यवजस्थत रूप र्ें सबसेपिले ेकणाद (कणभुर् अथवा कणभक्ष) के वैर्ेपर्षक सूत्र र्ें भर्लती िै। यि नार्, जर्सका अथ शर्ब्दव्युत्पपि-र्ास्त्र की दृजष्ट से अणुभक्षक िोता िै, इसके रचतयता का

---

548 सैड बुक्स आफ हद इंस्ट, खण्ड 45, पृष्ठ 38 ।

549 द्रव्य, गुण, कर्,श सर्वाय को स्वीकार ककया गया िै, तथा सार्ान्य और पवर्ेर्ष के पवर्षय र्ें थोडी-सी पवपवधता पाई र्ाती िै। सार्ान्य के भेद ककए गए िैं: (1) र्िासार्ान्य, र्ो पदाथ,श अथवा अभभधेयत्व, अथांत नार् रखे ेर्ानेकी सम्भाव्यता, अथवा ज्ञेयत्व अथाशत् ्र्ानने की सम्भाव्यता के भलए उिरदायी िै। सब श्रेणणयां इसर्ें आ र्ाती िैं (देणखए प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 16; वैर्ेपर्षकसूत्र, 1/1, 8) र्िासार्ान्य पवर्ुद्ध सार्ान्य िै और ककसी उच्चतर वस्तु की उपर्तत निीं िै, र्बकक अन्य सार्ान्य तथा पवर्ेर्ष दोनों िैं। (2) सिा सार्ान्य, र्ो सिा अथवा वैर्ेपर्षक के भाव के अनुकूल िै। प्रर्स्तपाद अजस्तत्व को छिों पदाथों का सार्ान्य गुण (साधम्र्य) बताता िै, और (3) सार्ान्य पवर्ेर्ष, जर्सके अन्दर सार्ान्यता के अन्य दृष्टांत आ र्ाते िैं। देणखए यूई 'वैर्ेपर्षक कफलासफी', पृष्ठ 37-38 ।

550 देणखए यूई: वैर्ेपर्षक कफलासफी, पृष्ठ 33। अश्वघोर्ष नेअपने 'सूत्रालंकार' नार्क ग्रंथ र्ें वैर्ेपर्षक का तनर्ाणश युद्ध के पूव शिुआ, ऐसा किा िै (विी, पृष्ठ 40-41)

इसभलए भी पड गया िो क्योंकक उसके दर्नश का भसद्धान्त परर्ाणुवाद िै।'[551] इस दर्नश को औलूक्य दर्नश भी कि र्ाता िै।'[552] ऐसा प्रतीत िोता िै कक उक्त सूत्र के रचतयता का यथाथ शनार् 'काश्यप' था।'[553] यि ग्रन्थ दस अध्यायों र्ें पवभक्त िै। प्रथर् अध्याय र्ें द्रव्य, गुण, किया, सार्ान्य तथा पवर्ेर्ष आहद पांच पदाथों का पववेचेन ककया गया िै। द्पवतीय अध्याय र्ें पवभभन्न द्रव्यों का, जनर्ें आत्र्ा तथा र्न सजम्र्भलत निीं, पिववेचेन ककया गया िै। आत्र्ा और र्न, इजन्द्रयों के पवर्षयों तथा अनुर्ान के स्वरूप का पववेचेन तृतीय अध्याय र्ें ककया गया ोै। चितुथ शअध्याय का र्ुख्य पवर्षय परर्ाणुओं द्वारा पवश्व की रचना िै। पंचर् अध्याय र्ें किया का स्वरूप और उसके प्रकार बताए गए िैं। नैततक सर्स्याओं पर र्षष्ठ अध्याय र्ें पवचार ककया गया िै। सप्तर् अध्याय र्ें गुण, आत्र्ा तथा सर्वाय-सम्बन्धी प्रश्नों का पववेचन िै। पपछलेतीन अध्याय र्ुख्य रूप से तकश-पवर्षयक िैं और इनर्ें प्रत्यक्षज्ञान, अनुर्ान तथा काय-शकारणभाव के भसद्धान्त का प्रततपादन ककया गया िै। रै्साकक िर् ऊपर कि आए िैं कई कारणों से वैर्ेपर्षकसूत्र न्यायसूत्र से पूवकशाल के बने प्रतीत िोते िैं, और सम्भवतः ब्रह्मसूत्र के सर्कालीन िैं।[554] क्योंकक कौहटल्य ने आन्वीक्षक्षकी-पवद्या के अन्दर वैर्ेपर्षक का उल्लेखे निींककया िै इसभलए यि कि र्ाता िै कक इस दर्नश का तनर्ाणश सूत्ररूप र्ें 300 ई. पू.'[555] के पश्चात् ्िुआ। ऐसा प्रतीत िोता िै कक यद्यपप परर्ाणु-पवर्षयक प्रकल्पना कुछ बौद्ध तथा रै्न पवचारों र्ें भी पाई र्ाती िै, ककन्तु वैर्ेपर्षक का १ यि प्रधान

551
लक्षण िै। देणखए ब्रह्मसूत्र, 2: 2, 11, और धर्ोरकृत 'न्यायबबन्दुटीका', पृष्ठ 86।

552 यूई कृत वैर्ेपर्षक कफलासफी।

553 प्रर्स्तपाद कृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 200।

554 वात्स्यायन ने वैर्ेपर्षकसूत्र से ेएक उद्धरण हदया िै, जर्सर्ें न्याय द्वारा ककए गए अनुर्ान के 'पूववशत्'् व 'र्ेर्षवत्'् भेदों से अभभज्ञता उपलब्ध निींिोती। वैर्ेपर्षकसूत्र र्ें काल को परर् कारण उल्लेख िै (2/2 2.99.5 से अथ) कगार यिी पवचार श्वेताश्वतर उपतनर्षद् र्ें भी हदखाया गया िै (1/1, 2) ककन्तुपवख्यात दर्नशों र्ें से एक ने भी इसेनिींअपनाया िै। आत्र्पवर्षयक सर्स्या पर भी वैर्ेपर्षक इसके अजस्तत्व को भसद्ध करने ेका प्रयत्न निींकरता, बजल्क उसकी रुधच अधधकतर इस पववेचन र्ें िै कक आत्र्ा अनुर्ान का पवर्षय िै अथवा साक्षात् ्अन्तदृजशष्ट का। बादरायण ने ब्रह्मसूत्र (2/2, 11) र्ें परर्ाणुवाद का उल्लेख ककया िै, और कणाद नेअपवद्या तथा प्रत्यगात्र्न् ्रै्सेवेदान्त के पाररभापर्षक र्ब्दों का प्रयोग ककया िै, और र्ब वि बलपूवकश यि प्रततपादन करता िै कक आत्र्ा की भसद्धध केवल शुरुतत से िी निीं िोती और र्रीर तीन या पांच तत्त्वों सेभर्लकर निींबना िै (वैर्ेपर्षकसूत्र, S / 2, 9; 4/2, 2 - 3) तो उसकी दृजष्ट र्ें वेदान्त की प्रकल्पना िोती िै। यहद र्र् टीकाकारों पर पवश्वास करें तो वैर्ेपर्षकसूत्र र्ीर्ांसा तथा सांख्य के ज्ञान की पूवकशल्पना करता िै। देणखए वैर्ेपर्षकसूत्र 21, 20; 3/1 1-2, 52, 19-20; 7: 2, 3-8; 7 2, 13,9 2, 3। वसुभर्त्रकृत 'अभभधर्र्शिापवभार्षार्ास्त्र' र्ें पांच प्रकार के कर्ों का उल्लेख िै। चरक द्वारा ककए गए वैर्ेपर्षक के प्रतत संकेत िर्ारे भलए अधधक सिायक निीं िैं। नागार्ुनश नेअपने 'प्रज्ञापारभर्तार्ास्त्र' र्ें टैर्ेपर्षक की उस प्रकल्पना का उल्लेखे ककया िै जर्सके अनुसार काल एक अपररवतनशर्ील यथाथसशिा िै, र्ो एक कारण र्ें संबद्ध िै (वैर्ेपर्षकसूत्र, 2 2, 7-9; 5 2, 26; 7 1, 25)। देर्, परर्ाणु और आत्र्ा के पवर्षय र्ें ककए गए उसके उल्लेख यि संकेत करते िैं कक वि वैर्ेपर्षकसूत्र से अभभज्ञ था, और उसनेवस्तुतः अनेकों सूत्र उद्धृत भी ककए ोैं, रै्सेआत्र्ा के स्वरूप के सम्बन्ध र्ें 3/2 4 और 3 1, 2, परर्ाणु-पवर्षयक प्रकल्पना के पवर्षय र्ें, 41, 1 तथा 7/1 10; तथा आणपवक संघात के पवर्षय र्ें, 6 2, 13 और 5 217-18। आयदेशव वैर्ेपर्षकसूत्र से अभभज्ञ िै, और िररवर्नश सूत्र-तनर्ाणश के पश्चात् ्िुए वैर्ेपर्षक दर्नश के पवकास को र्ानता िै। देणखए यूई कृत वैर्ेपर्षक कफलासफी, 46-55।

555 डॉ. दासगुप्त का सुझाव िै कक वैर्ेपर्षक, रै्सी कक इसकी व्याख्या कणाद के सूत्र र्ें की गई िै, र्ीर्ांसा की ककसी प्राचीन र्ाखा को प्रस्तुत करता िै (हिस्री आफ इजण्डयन कफलासफी, पृष्ठ 280-85)। यि युजक्त कक वैर्ेपर्षक सूत्र का प्रारम्भ धर् शकी व्याख्या करने ेके लक्ष्य की घोर्षणा से िोता िै और सर्ाजप्त इस सर्ाश्वासन के साथ िोती िै कक वैहदक कर् शअदृष्ट की र्जक्त से सुख-सर्ृद्धध की ओर ले ेर्ाते िैं, तनणाशयक निीं, क्योंकक धर्-शसम्बन्धी पववेचन तथा आग्रि के पवर्षय र्ें ककसी एक

 कणाद के सूत्रों र्ें पीछे कुछ अंर् सर्य-सर्य पर र्ुडते चलेगए।[556] कुछेक सूत्र कणाद के उक्त ग्रन्थ र्ें

ऐसेभी

भर्लते ैं जर्न पर भाष्यकार प्रर्स्तपाद ने भाष्य र्नीं ककया। इससे यि संकेत भर्लता ै कक जर्स सर्य प्रर्स्तपाद ने वैर्ेपर्षकसूत्र पर भाष्य भलखा, वे सूत्र उनर्ें सजम्र्भलत र्नीं थे। र्िं ं कणाद ने केवल तीन ी पदाथों का वणनश ककया[557], प्रर्स्तपाद ने उनर्ें तीन और र्ोड हदयेऔर उसर्ें भी आगे ेचलकर अभाव नार् का एक पदाथ शऔर र्ोड हदया गया। कणाद की सूची र्ें प्रर्स्तपाद द्वारा सात गुण और र्ोड हदए गए ैं।'[558]

प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, सूत्र पर अधधकांर् भाष्य न ोकर उसी पवर्षय का एक र्ित्त्वपूण श स्वतन्त्र ग्रन्थ ै। इस र्त की रक्षा करना कक प्रर्स्तपाद के पररपक्व पवचार कणाद के ग्रन्थ र्ें हदए गए सुझावों का केवल पवकास र्ात्र ैं, कहठन ै।'[559] प्रर्स्तपाद द्वारा चौबीस गुणों का पववरण, सृजृष्ट की रचना और उसके संिार का भसद्धान्त, ेत्वाभासों का कथन तथा अनुर्ान का स्वरूप कणाद के ग्रंथ र्ें तनजश्चतरूप से र्ोडे गए ै।ैं वि न्यायदर्नश द्वारा अत्यधधक प्रभापवत था और वात्स्यायन के पीछे ुआ था। उसका काल चौथी र्ताब्दी के अन्त र्ें रखा र्ा सकता ै।[560]

प्रर्स्तपाद के ग्रन्थ के आधार पर तनभर्तश एक वैर्ेपर्षक पुस्तक चन्द्रकृत दर्पदाथर्शास्त्र ै, र्ो चीनी भार्षा र्ें अनूहदत ोकर सुरक्षक्षत ै। (648 ई.) ककन्तु भारत की पवचारधारा के पवकास पर इसका प्रभाव र्नीं ं

दर्नश का एकाधधकार र्नीर्ाना र्ा सकता। वैर्ेपर्षक तथा र्ीर्ांसा के र्ध्य र्ो भेदपरक पवर्षय ैं उनके सर्ाधान का प्रयत्न संतोर्षर्नक र्नीर्ाना र्ा सकता। कणाद का र्त ै कक वेद ईश्वर के रधचत र्नीं, बजल्क ऋपर्षयों के रधचत ग्रंच ैं (2/1 18; 6 1, 1-2), र्बकक र्ीर्ांसा का दृढ़ तनश्चय ै कक वेद तनत्य ैं, जर्से परवती पवकास र्नीर्ाना र्ा सकता। र्ब्द की तनत्यता तथा वेदों की तनत्यता इन दोनों भसद्धान्तों का परस्पर घतनष्ठ सम्बन्ध ै। पवचारों तथा पाररभापर्षक र्ब्दों tilde pi सर्ानता रिते ुए भी यि किना कहठन ै कक वैर्ेपर्षक र्ीर्ांसा की एक र्ाखा ै।

[556] फेडडगन, 'हद वैर्ेपर्षक भसस्टर्', पृष्ठ 10-11।

[557] वैर्ेपर्षकसूत्र, 8/2 3। अथ शइतत द्रव्यगुणकर्सुश ु(1/1, 4) र्ो छः पदाथों का प्रततपादन करता ै, पीछे से र्ोडा गया किा र्ाता ै।

[558] और देणखए वैर्ेपर्षकसूत्र, 1:1, 4, 1:1, 6; 1:2, 3

[559] देणखए दासगुप्त: 'हिस्री आफ इजण्डयन कफलासफी', खण्ड 1, पृष्ठ 351, 'इजण्डयन लॉजर्क एण्ड एटोभर्ज्', पृष्ठ 25 और 93, यूई, 'वैर्ेपर्षक कफलासफी', पृष्ठ 17, हटप्पणी । "लगभग सब पवलक्षण भसद्धान्त, र्ो परवती वैर्ेपर्षकों को नैय्यातयकों तथा अन्य र्ाखाओं से पृथक् करते ेथे, प्रर्स्तपाद के ग्रंथ र्ें पाए र्ाते ैं और वे कणाद के सूत्र र्ें अनुपलब्ध ैं। द्पवत्व, पाकर्ोत्पपि, पवभागर् पवभाग और ऐसे ी अन्य अनेक भसद्धान्तों को, जर्न्िें वैर्ेपर्षक दर्नश की पवलक्षणताएं ं र्ाना गया ै, कणाद के सूत्रों र्ें छुआ भी र्नींगया ै, यद्यपप प्रयास्तपाद के भाष्य र्ें उन पर खूब अच्छी तरि पवचार-पवर्र्श ककया गया ै।" ('बोडास तकशसग्रि', पृ. ृ 37)।

[560] कीय नेहदङ्नाग की पूववशतततशा तथा प्रर्स्तपाद के उसके प्रतत ताककशक भसद्धांत के नाना पवर्षयों र्ें ऋणी ोनेके सम्बन्ध र्ें एक पररष्कृत तनणयश हदया ै (इजण्डयन लॉजर्क एण्ड एटोभर्ज्, पृष्ठ 93-110)। इससे भभन्न र्त के भलए देणखए फैडीगनकृत 'वैर्ेपर्षक भसस्टर्', पृष्ठ 319-23। र्ंकर और उद्योतकर प्रर्स्तपाद के ग्रंथ से अभभज्ञ ैं। यहद कीथ के र्त को स्वीकार भी कर लें, तो भी वि उद्योतकर के पूव शऔर हदङ्नाग के पश्चात् ्ुआ, और इसभलए पांचवीं र्ताब्दी र्ें पवद्यर्ान था। यहद छः पदाथों के भसद्धान्त को प्रततपादन करने का श्रेय प्रर्स्तपाद को हदया र्ाए तो वि वात्स्यायन का पूववशती अथवा कर्-से-कर् उसका सर्कालीन करता ै। धर्पशाल (535-570 ई.) और परर्ाथ श(499-569 ई.) प्रर्स्तपाद के पवचारों का पववेचन करते ैं। देणखए यूई : वैर्ेपर्षक कफलासफी, पृष्ठ 18।

 िुआ।'[561] रावणभाष्य तथा भारद्वार्वृपि,'[562] जर्न्ि वैरे्पर्षक की टीकाएंबताया र्ाता िै, उपलब्ध निींि।

प्रर्स्तपाद के ग्रन्थ पर चार टीकाएं ंभलखी गई िैं र्ो ये िैं-व्योर्ेख्र कृत 'व्योर्वती', श्रीधरकृत 'न्यायकन्दली', उदयनकृत 'ककरणावली' (दसवीं ंर्ताब्दी) और श्रीवत्सकृत 'लीलावती''[563] (ग्यारिवीं ंर्ताब्दी)। अन्य तीनों की अपेक्षा व्योर्वती पूववशती िै।[564] श्रीधर की न्यायकन्दली 991 ई. र्ें भलखी गई और टीकाकार कुर्ाररल, र्डन तथा धर्ीर के पवचारों से परिधचत िै। लीलावती तथा ककरणावली सम्भवतः न्यायकन्दली के तुरन्त बाद भलखी गई। श्रीधर तथा उदयन दोनों िी ईश्वर के अजस्तत्व तथा अभाव नार्क पदाथ शको स्वीकार करतें। भर्वाहदत्यकृत सप्तपदाथी ग्रन्थ भी इसी काल का िै।'[565] यि न्याय तथा वैरे्पर्षक के भसद्धान्तों को एक िी पूण श इकाई के भागों के रूप र्ें प्रस्तुत करता िै। यि पदाथों की व्याख्या से प्रारम्भ िोता िै और न्याय के तकश को ज्ञान के गुण के रूप र्ें पेर् करता िै। लौगाक्षक्ष भास्करकृत तकशकौर्ुदी एक और संतितवादपरक ग्रंथ िै जर्सका आधार प्रर्स्तपाद की पुस्तक िै। वैरे्पर्षकसूत्र पर र्ंकरानन्दकृत 'उपस्कार' एक और ग्रन्थ भी कुछ र्ित्त्व का िै।[566] पवश्वनाथ (सत्रिवीं ंर्ताब्दी) अपने'भार्षापररच्छेद' तथा उस पर 'भसद्धान्तर्ुक्तावली' नार्क टीका र्ें कणाद की योर्ना का पववेचन करता िै। वि नव्यन्याय द्वारा पयाप्शत र्ात्रा र्ें प्रभापवत िुआ था। अन्नंभट्ट के ग्रन्थ, र्दीर्कृत तकार्ृशत (1635 ई.) तथा र्यनारायणकृत 'पववृपि' (सत्रिवीं ंर्ताब्दी) वैरे्पर्षक भसद्धान्तों के उपयोगी संक्षक्षप्त संग्रि िैं। पववृपि 'उपस्कार' पर आधाररत िै, dot pi dot pi कुछ पवर्षयों र्ें इससे र्तभेद रखती िै।'[567]

3. ज्ञान का भसद्धान्त

वैरे्पर्षक के तकश तथा न्याय के तकश र्ें थोडा-सा िी भेद िै। ज्ञान, र्ोकक तकश की पवरे्र्ष सर्स्या िै, नानापवध आकृततयों को धारण कर लेता िै, क्योंकक इसके प्रर्ेय पवर्षय अनन्त िैं।'[568] प्रार्ाणणक ज्ञान के चार प्रकार स्वीकार ककए गए िैं, र्ो ये िैं प्रत्यक्ष, लधैंगक (अनुर्ान), स्र्ृतत, तथा अन्तदृजशष्टर्न्य ज्ञान (आर्षज्ञशान)।

561 पूव शकेअनुसारज़र्सनेइसका आंग्लभार्षर्ें अनुवादककया िैइसका ,रचतयता छठीर्ताब्दी र्ेंुआ।र्ैसाकक इसके नार् से उपलक्षक्षत िोता िै, इस ग्रन्थ र्ें दर् पदाथों का प्रततपादन ककया गया िै और र्ोडेसरकार पर रार् से ेउपलक्षक्षत िोता ै. इस प्राक, सार्ान्य-पवरे्र्ष और अभाव । ईश्वर का उल्लेख निींि। र्ापानी लेखकों नेइस ग्रंथ पर बिुत-सी टीकाएं भलखी िैं।

562 .देणखए 'रत्नप्रभा' 2:2,11 वोडास : तकशसंग्रि पृषृठ 40। भारद्वार्वृपिभाप्य, जर्सेगंगाधर ने सम्पाहदत ककया िै (कलकिा, 1869), सांख्य से पयाप्शतर्ात्रा र्ें प्रभापवत िै, और इसर्ें ककतने िी र्ित्त्वपूण शपररवतनश ककए गए िैं। देणखए फैडीगनकृत 'हद वैरे्पर्षक भसस्टर्', पृषृठ 35-40 ।

563 उपनार् वल्लभ ।

564 सप्तपदाथी के घाटे के संस्करण की प्रस्तावना देणखए।

565 भर्वाहदत्य उदयन के पीछे िुआ तथा गंगेर् से ेपिलिुआ, क्योंकक गंगेर् उसके र्त से परिधचत िै।

566 यि एक ऐसी वृपि का उल्लेख करता िै (देणखए, 1:1, 21:2, 4, 6; 3/1 17; 4:1, 7 * i * 6/1, 5, 12; 7/1 3) जर्सका पता निींचल सका।

567 देणखए पवरे्र्षकर, 1/1 4, 25; z / 1 , 1:2:2, 5, 9:1, 8।

568 प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्शसंग्रि, पृषृठ 172।

प्रत्यक्ष के द्वारा िर् द्रब्यों, गुणों, कर्ों तथा सार्ान्यताओं का बोध प्राप्त करने के योग्य िोते िैं। ठोस द्रव्य, र्ो हिस्सों से बनते िैं, प्रत्यक्ष ज्ञान की पिुंच के अन्दर िैं; ककन्तुपरर्ाणु ुतथा द्वय्णुक नीिं ंिैं। वैरे्पषक योधगयों के प्रत्यक्ष को स्वीकार करता िै जर्सके द्वारा आत्र्ा का प्रत्यक्ष ज्ञान िोता िै।[569] वैरे्पषक उपर्ान, ऐततह्य (परम्परा) तथा ब्दद ज्ञान को अनुर्ान के अन्तगतश रखता िै।[570] र्ास्त्रीय कथनों की प्रार्ाणणकता वक्ताओं की प्रार्ाणणकता के अनुर्ान से िै।'[571] न्याय की भांतत, वैरे्पषक भी र्ीर्ांसा के ब्दद की तनत्यता तथा वेदों की तनतान्त प्रार्ाणणकता के भसद्धान्त का प्रत्याख्यान करता िै।[572] रिं ंन्याय वेदों की प्रार्ाणणकता को ऋपषयों के साक्षात् ्ज्ञान के आधार पर रखता िै, जर्न्िोंनेतनत्य सत्यों तथा पवधानों को सर्झ भलया िै, विांवैरे्पषक उनकी प्रार्ाणणकता का अनुर्ान ईश्वरी प्रेरणाप्राप्त ऋपषयों के सवथशा तनभान्शत के आधार पर करता िै। धर्शास्त्र िर्ें केवल कल्पनार्ात्र नीिं, अपपतु यथाथ शज्ञान प्रदान करते िे।ं यि वस्तुओंका र्ैसी वे िैं उस रूप र्ें ज्ञान िै, और इस अथ शर्ें इसका आहद नीिं िै, यद्यपप इसका ज्ञान सदा साक्षात् ्(बबना ककसी व्यवधान के) िोता िै और कुछ व्यजक्तयों को पूणरूशप र्ें तथा कुछ को आंभर्क रूप र्ें िोता िै। योग्यतर नरों ने सत्यों का ज्ञान ग्रिण ककया और उसे िर् तक पिुंचाया। वेदों की वाक्य रचना को देखकर यि सर्झा र्ा सकता िै कक इनके रचतयता अवश्य र्ेधावान् ्व्यजक्त रिे िोंगे ेऔर उनको स्वग शतथा अदृष्ट (तनयतत) का पूण शऔर सिी-सिी ज्ञान भी अवश्य था। नैः-नैः ईश्वर को िी वेदों का रचतयता र्ाना र्ानेलगा। "वेदों की प्रार्ाणणकता इसके ईश्वर की वाणी िोनेके कारण िै।"[573] ब्ददों तथा वाक्यों के अथों का ज्ञान पिले िोना आवश्यक िै अन्यथा इसके बबना ज्ञान की प्राजप्त नीिंिो सकती। क्योंकक अथों का ज्ञान तनभरश करता िै व्यापक सिवततत्शव की प्रत्यभभज्ञा पर, इसभलए र्ाजब्दक ज्ञान अनुर्ान का पवषय िै।[574] चेष्टा,'[575] अथापशपि,'[576] सम्भव[577] तथा अभाव[578], ये सब अनुर्ान प्रर्ाण के अन्तगतश आते िैं। स्र्ृतत को स्वतन्त्र स्थान हदया गया िै।'[579] आपज्ञशान ऋपषयों की अन्तदृजशष्ट िै। यहद स्र्ृतत को

छोड हदया र्ाए, क्योंकक यि केवल उसी अनुभव को दिोराती िै र्ो िर्ें पिले िो चुका िै, और यहद अन्तदृजशष्टर्न्य ज्ञान को प्रत्यक्ष के अन्तगतश र्ान लें तो वैरे्पषक के अनुसार, िर्ारे पास ज्ञान के केवल दो िी साधन रि र्ाते िैं, अन्तदृजशष्ट और अनुर्ान।'[580]

---

569 वैरे्पषकसूत्र, 9/1.11 -15।

570 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशग्रि, पृषृ्ठ 212 से ेआगे।

571 9/1, 3|

572 वैरे्पषक सूत्र, 2/2, 21 - 37; 6/1 1,1 से आगे। न्यायसूत्र, 2/2 15-40।

573 तद्वचनादाम्नायस्य प्रार्ाण्यभर्तत (10/2, 9)। और देणखए न्यायकंदली, पृषृ्ठ 216, और वैरे्पषकसूत्र, 6/1:1-4।

574 3/1,7 - 15

575 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशग्रि, पृषृ्ठ 220। प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशग्रि, पृषृ्ठ 223।

576

577 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशग्रि, पृषृ्ठ 225; वैरे्पपकसूत्र, 9/2 ,5।

578 विी।

579 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशग्रि, पृषृ्ठ 256।

580 सवभशसद्धान्तसारसंग्रि, 5/33।

भर्थ्याज्ञान के चार भेदे ककए गए िैं और वे ये िैं 'संर्य, पवपययश, अध्यवसाय और स्वप्न। भर्वाहदत्य इन चारों को एक-दूसूरों र्ें सजन्नपवष्ट करके केवल दो िी भेदे रखता िै, अथात्श ्संर्य और भूल। ऊि, तनपवकशल्प ज्ञान तथा पराधश्रत तकश को वि संर्य के अन्तगतश रखता िै।'[581] श्रीधर स्वप्न का पृथक् रूप से वणनश करने केऔधचत्य का सर्थनश इस आधार पर करता िै कक स्वप्न र्रीर की एक अवस्था-पवर्ेर्ष र्ें िी आते िैं।"[582]

4. पदाथ श

र्ैसाकक िर् पिलेदेख चुके िैं, कुछ र्ताजब्दयों तक बौद्धदर्नश के दृजष्टकोण ने, र्ो वस्तुओं की व्याख्या उनके पररणार्ों को लेकर तथा प्रत्येक वस्तु की व्याख्या उसके पूवापशर सम्बन्ध से करता था, एवं सभी स्थानों पर आत्र्तनभरशता का खण्डन करता था, इस देर् की पवचारधारा पर आधधपत्य र्ा रखा था। उसके अनुसार िर एक वस्तु का अपना अजस्तत्व केवल पारस्पररक सम्बन्ध के कारण िै तथा कोई भी वस्तु तनरपेक्ष रूप र्ें अपना अजस्तत्व निीं रखती क्योंकक सम्बन्ध िी र्ीवन की सार्ग्री अथवा र्ूल तत्त्व िै, इसभलए आत्र्ा और प्रकृतत भी केवल सम्बन्धों के संकंलन िैं, वैर्ेपेर्षक ने उक्त र्त का पवरोध ककया और एक अधधक सन्तोर्षर्नक योर्ना िर्ारे सर्क्ष प्रस्तुत की, र्ो यथाथतशा की दृजष्ट से अधधक युजक्तयुक्त प्रतीत िोती िै। यि आनुभपवक चेतनता पर आधश्रत िै र्ो आहद तथा अन्त र्ें यथाथ शतथा पृथक-पृथक वस्तुओं से सम्बन्ध रखती िै। सबसे अधधक सरल तथा पवस्तृत यथाथतशा पदाथ शतथा उनके आन्तररक सम्बन्ध िैं। आंखें खोलते िी िर् अपने आगे ेएक पवस्तृत भौततक र्गत् ्को पात िैं जर्सर्ें भभन्न-भभन्न वस्तुएं तथा उनकी व्यवस्थाएंभी भभन्न-भभन्न प्रकार की िैं, जर्न पर पवचार अपना काय शकर सकता िै और र्ब िर् अन्दर की ओर देखते िैंतो िर्ें एक अभौततक र्गत् ्का अनुभव िोता िै जर्सकी पररभार्षाएं और सम्बन्ध अपनेिैं। तनदोर्ष दर्नशपद्धतत की र्ांग िै कक िर् अपने ध्यान को अनुभव-भसद्ध पदाथों पर िी केजन्द्रत करें, र्ो ज्ञान के पवर्षय िैं, और केवल ऐसी िी प्रकल्पनाओंको स्वीकार करें र्ो िर्ारी अनुभवगम्य व्यवस्था की व्याख्या के सम्बन्ध र्ें अतनवाय शप्रतीत िों। पवश्लेर्षणात्र्क सवेक्षण एक पररशुद्ध दर्नशपद्धतत की सबसेप्रथर् आवश्यकता िै, और वैर्ेपर्षक के पवश्लेर्षण के पररणार् पदाथों के भसद्धान्त र्ें तनहित िैं।

पदाथ शका यौधगक अथ शिै-र्ब्द का अथ।श पदाथ शएक ऐसा प्रर्ेय पवर्षय िै जर्सके पवर्षय र्ें पवचार (अथ)श ककया र्ा सकता िै तथा जर्सको नार् (पद) हदया र्ा सकता िै। सब वस्तुएं जर्नका अजस्तत्व िै, जर्नका बोध िो सकता िै तथा जर्न्िें नार्'[583] हदया र्ा सकता िै, संक्षेप र्ें, केवल भौततक र्गत् ्की वस्तुएं िी निीं, बजल्क अनुभव[584] र्ें आनेवालेसब प्रर्ेय पवर्षय पदाथ शिैं। न्यायर्ास्त्र र्ें वणणतश सोलि पदाथ शपवद्यर्ान वस्तुओं के

---

[581] सप्तपदाथी, 32।

[582] न्यायकंदली, पृष्ठ 185।

[583] अजस्तत्व, अभभधेयत्व, ज्ञेयत्व (प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्सर्ंग्रि, पृष्ठ 16)।

[584] प्रभर्ततपवर्षयाः पदाथां (सप्तपदाथी, पृष्ठ 2)।

पवश्लेर्षण निीं, बजल्क ताककशक पवज्ञान के रुख्य पवचार-पवर्षयों की एक ताभलका िै परन्तु वैरे्पर्षक पदाथ शप्रत्येक पदाथों के पूण शपवश्लेर्षण का प्रयत्न करते िैं।

वैरे्पर्षक के पदाथों रें केवल विी वस्तुएं सराि्पवष्ट निीं िैं रो अन्य की पवधेय िों, बजल्क वे उद्देश्य भी आ राते िैं जर्नके पवर्षय रें कुछ पवधान ककया रा सके। अरस्तू के पदाथ शकेवल पवधेयों का ताककशक वगीकरण िै, सब पवचारणीय पवर्षयों का आध्याजत्रक वगीकरण निीं। वैरे्पर्षक पवचारक, अरस्तू के सरान िी, नार् और वस्तु के घतनष्ठ सम्बन्ध से अभभज्ञ थे। यद्यपप अरस्तू ने ब्दों का वगीकरण ककया िै, पर वि वस्तुओं का भी वगीकरण िी रिता िै, क्योंकक जर्सको भी पृथृक् नार् हदया रा सके विी वस्तु िै। "वाक्य-रचना के बबना उच्चारण ककए गए श ्अकेले ेब्दों, रें से प्रत्येक ब्द द्रव्य अथवा पररराण अथवा गुण अथवा सम्बन्ध अथवा देर् ब्दों, अथात् अथवा काल अथवा प्रवृपि (अथात्श ्रुख अथवा आन्तररक व्यवस्था) अथवा उपकरण अथवा कर् शअथवा कर्-शभोग श ्द्रव्य का वाचक िोता िै।"[585] इस दस पदाथों रें सेपपछले ेनी ककसी अन्य वस्तु के पवधेय िैं, बकक पिला अथात् उद्देश्य िै। यि ककसी वस्तु का पवधेय निींबन सकता, यिां ्तक कक अपना भी निीं, क्योंकक उस अवस्था रें यि द्रव्य न रिकर एक गुण (पवरे्रे्षण) बन राएगा। ककन्तु अरस्तूको ब्द के उक्त प्रयोग के भलए कोई पवरे्ष आगि निीं। साधारण बोलचाल की भार्षा से िी उसने अपने वगीकरण का तनणयश ककया िै, और ब्दों रें वे िैं रो ककसी ठोस व्यजक्त-रूप पदाथ शके सार के द्योतक िैं। ब द्रव्य एक श्रोत व्यजक्त-रूप पदाथ शिोता िै तो िर् प्रश्न करते िैं कक, "यि क्या िै?" और उिर रें किा राता िै कक एक घोडा या गाय िै जर्सेअरस्तू द्रव्य किता िै, ककन्तु वस्तुतः यि गुण िै।[586] यि पिले ेऔर दूसूरे द्रव्यों रें भेद करता िै, तथा अपनी सम्रतत प्रकट करता िै कक पिले ेद्रव्यों का प्रयोग पवधेय के रूप रें निीं िोता। ताककशक उद्देश्य को पवधेयों के वगीकरण रें सजम्भलत करना यि प्रदभर्तश करता िै कक अरस्तू का आर्य यि था कक उसकी पदाथों की ताभलका रें अजस्तत्व के नाना प्रकारों का भी सरावेर् रिे। अरस्तू की ताभलका रें वे द्रव्य तथा गुण भर्लते िैं रो या तो स्थायी िैं या अस्थायी िैं। लगभग सभी टीकाकार इससे सिर्त िैं कक सम्बन्ध नार्क पदाथ शरें उसकी योर्ना के अजन्तर् छः भी सजम्भलत सर्झेरानेचाहिए। इसभलए िर् द्रव्य तथा गुण को, वे अस्थायी िों या स्थायी, और सम्बन्ध को भी पूण शसारगभभतश सर्झ सकते िैं।

वैरे्पर्षक ने पदाथों के वगीकरण को छः प्रकार का बताया िै, जर्सके अनुसार द्रव्य, गुण, कर्,श सारान्य, पवरे्ष और सर्वाय-ये छः पदाथ शिुए। इनके साथ सातवां ंपदाथ शअभाव परवती वैरे्पर्षकों, यथा श्रीधर, उदयन और भर्वाहदत्य ने रोड हदया िै।[587] पदाथों की गणना रें अभाव को सरापवष्ट करने का तात्पय शयि िुआ कक ताजत्त्वकीय योर्ना का पररवतनश ज्ञानवाद सम्बन्धी योर्ना रें िो गया िै। िरारी धारणाएंिी पवध्यात्रक अथवा तनर्ेषेधात्रक िोती िैं, वस्तुए रो पवद्यरान िैं, निींतिीं। प्रारजम्भक अवस्थाओं रें वैरे्पर्षक ने ऐसे सारान्य

---

585 अरस्तूकृत 'कैहटगरीर्', 26, भण्टोंकृत 'लॉजर्क', पृषृठ 113।

586 तुलना कीजर्ए रानसन : "एक अजस्ततववाची व्यजक्तवाची संज्ञा पवरे्षण निींबन सकती, ककन्तु स्वयंउसका पवरे्ष्य िोना आवश्यक िै" (लॉजर्क, भाग 2, पृषृठ 12)।

587 प्रर्स्तपाद केवल छः पदाथों का प्रततपादन करता िै। सप्तगुणी योर्ना भर्वाहदत्य के सर्य तक स्थापपत िो चुकी थी, रैसाकक उसके 'सप्तपदाथी' नार्क ग्रंथ के रीर्षकश से ेप्रकट िोता िै। रंकर और िररभद्र (र्षड्दर्नशसरुच्चय, 60) वैरे्पर्षक के अन्दर छः पदाथ शिी बताते िैं। देणखए रांकरभाष्य, 2 2, 17. और यूई कृत वैरे्पर्षक कफलासफी, पृषृठ 126।

लक्षणों को र्ानने का प्रयत्न ककया र्ो सर्स्त अजस्तत्व पर लागू िो सकते िैं, ककन्तु र्ीघ्र की उसने अपना ध्यान धारणाओं के स्वरूप की ओर हदया और जर्ज्ञासा प्रकट की कक कौन-सी धारणाएं ंसत्य िैं और कौन-सी निीं। कोई वस्तु िै, ककसी वस्तु की सिा िै, यिी वैर्ेपर्षक दर्नश की प्रथर् स्थापना िै। ककन्तु कोई भी वस्तु केवल सत् ्िी निीं ं िी सकती। यहद िर् केवल सिा पर िी आकर ठिर र्ाएंऔर आगे ेबढ़ने का पवचार छोड दें, तो र्ैसा कक िेगल ने र्ें बताया िै, िर्ारे सर्क्ष केवल र्ून्यर्ात्र रि र्ाता िै, और 'ककसी वस्तु का अजस्तत्व िै', इस प्रथर् भसद्धान्त तक को भी छोडना पडेगा। इसभलए िर्ें उक्त भसद्धान्त को आगे ेबढ़ाना िोगा और यि किना िोगा कक कोई वस्तु इसभलए िै क्योंकक उसर्ें केवल सिा के अततररक्त कुछ पवर्ेर्ष गुण िैं। यहद ककसी वस्तु का अजस्तत्व िै तो केवल इसभलए िै क्योंकक उसर्ें कुछ गुण िैं। द्रव्य सिावान िैं और उनर्ें गुण िैं। गुण दो प्रकार के िैं, एक वे र्ो बिुत पदाथों र्ें रिते िैं और दूसरे वे र्ो व्यजक्तगत पदाथों र्ें रिते िैं। प्रथर् श्रेणी के सार्ान्य गुण िैं और दूसरी श्रेणी के स्थायी गुण तथा अस्थायी कर् शिैं। सर्वाय एक पवर्ेर्ष प्रकार का सम्बन्ध िै।'[588]

पिले ेतीन पदाथ शअथात्श ्द्रव्य, गुण और कर् शर्ें यथाथ शपदाथ-शपवर्षयक अजस्तत्व िै।[589] कणाद उन्िें अथ श की संज्ञा देता िै और योग-सम्बन्धी अन्तदृजशष्ट के पवर्षय पर प्रततपादन करते िुए किता िै कक िर्ें उनका ज्ञान अन्तदृजशष्ट के द्वारा िो सकता िै।[590] अन्य तीन, अथात्श ्सार्ान्य, पवर्ेर्ष और सर्वाय बौद्धधक भेदे से उत्पन्न िोते िैं, अथात्श ्बुद्धध की अपेक्षा रखते िैं।'[591] ये ताककशक द्रव्य िैं। प्रर्स्तपाद का किना िै कक 'वे अपनेएकर्ात्र सत्त्व को अपनेअन्दर धारण करते िैं-अथात् श ्स्वात्र्सत्त्व िै। बुद्धध उनकी र्ागदशर्कश िै (बुद्धधलक्षणत्व)। वे काय शनिीं ंिैं, कारण निीं ंिैं तथा उनर्ें सार्ान्य अथवा पवर्ेर्षत्व भी निीं। वे तनत्य िैं और उन्िें वस्तु र्ब्द से

---

588 वैर्ेपर्षक के द्रव्य और गुण अरस्तू के द्रव्य और गुण के अनुकूल िैं। अरस्तू की संख्या को गुण के अन्तगतश र्ान भलया गया िै। सम्बन्ध दो प्रकार के िैं बाह्य र्ैसे'संयोग' अथवा आभ्यन्तर र्ैसे'सर्वाय' । पिलेको गुण के रूप र्ें र्ाना गया िै और दूसरे को एक पृथक् पदाथश सर्झा गया िै। र्ेर्ष पदाथश सम्बन्ध के अन्दर आते िैं, र्बकक देर् और काल को स्वतंत्र द्रव्य के रूप र्ें र्ाना गया िै। कियार्ीलता कर् शिै, र्बकक तनजष्ियता केवल कर् शका अभाव िै। गुण (धर्)श या तो सार्ान्य िो सकता िै या पवभर्ष्ट िो सकता िै। प्रवृपि एक गुण िै। यहद अरस्तू एक तनजश्चत भसद्धान्त पर चलता तो वि इस प्रकार की युजक्त देता वस्तुएं, जर्नर्ें स्थायी अथवा अस्थायी गुण पवद्यर्ान िैं, देर् और काल के सम्बन्धों र्ें अपना अजस्तत्व रखती िैं और व सम्बद्ध िैं अन्य वस्तुओं के साथ पारम्पररक सम्बन्धों के एक पवस्तृत र्ाल र्ें, और उस अवस्था र्ें द्रव्य, गुण, कर् शऔर सम्बन्ध िी र्ुख्य र्ीर्षकश रि र्ाएंगे। अरस्तू के पवश्लेर्षण के दूपूर्षत रूप को स्टोइक लोगों न तथा न्योप्लेटोतनक लोगों ने लक्ष्य ककया। काष्ट के पवचार से ेअरस्तू पदाथों को, ज्यों-ज्यों वे उसके आगेर्ाते ेगए, केवल नोट करता गया। िेगल का किना िै कक अरस्तू नेउन्िें ककसी न ककसी प्रकार एकत्र कर हदया। भर्ल तो एक प्रकार से दोर्षदर्ी की दृजष्ट से किता िै कक अरस्तू को सूची इस प्रकार की िै "र्ैसेकक र्न्तुओं का पवभाग र्नुष्यों, चौपायों, घोडों, गधों और खच्चरों र्ें कर हदया र्ाए।" तुलना कीजएँ वैर्ेपर्षक योर्न की र्ैतनयों के पवभागीकरण के साथ, जर्न्िोंने सब वस्तुओं को द्रव्यों, गुणा तथा रूप पररवतनशों र्ें पवभक्त ककया िै (भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 287 से ेआगे, और उिराध्ययन', प्रथर् भाग, सेिड बुक्स आफ हद इंस्ट, जर्ल्द 45)। प्राचीन र्ीर्ांसकों नेर्जक्त और सादृश्य को पदाथ शके रूप र्ें स्वीकार ककया िै। उदयन नेइनका तथा संख्या का तनर्षेध ककया िै। देणखए 'ककरणावली', पृष्ठ 6; 'सप्तपदाथी', पृष्ठ 10; 'न्यायकंदली', पृष्ठ 7, 15, 144 से े आगे।

589 वैर्ेपर्षकसूत्र, 1/2, 7, 8/2, 3 , प्रर्स्तपादकृतधर्संशग्रि, पृष्ठ 17।

590 वैर्ेपर्षकसूत्र, 9/1, 14 ।

591 1: 2,3 ।

भारतीय दर्नश-2 171 व्यक्त निंककया र्ा सकता (अथर्शब्दानभभधेयत्व)।"[592] 'पपछले ातीन पदाथों के याथाथ्य शका प्रर्ाण ताककशक

किा र्ाता िै।"[593] यि इस पवर्षय का उपलक्षण िै कक इनका प्रत्यक्ष बोध निंीिं सकता। यि एक ऐसा पवचार िै जसर्ें उस सर्य पररवतनश िुआ र्बकक न्याय और वैर्ेपर्षक के भसद्धान्त परस्पर भर्धश्रत िो गए। प्रारजम्भक वैर्ेपर्षक र्ें र्िां ंसब पदाथों र्ें सार्ान्य रूप र्ें अजस्तत्व का लक्षण भर्लता िै[594], विां दो प्रकार के अजस्तत्व र्ें भेद ककया र्ाता िै-सिा-सम्बन्ध द्रव्यों, गुणों तथा कर्ों र्ें रिता िै और स्वात्र्सत्त्व सार्ान्य, पवर्ेर्ष और सर्वाय र्ें रिता िै।[595] उदयन ने अपनी 'ककरणावली' र्ें सिा-सम्बन्ध को सर्वाय-सम्बन्ध से रिनेवाला बतलाया िै और 'स्वात्र्त्त्वि' को आत्र्तनभरश अजस्तत्व किा िै र्ो सर्स्त अजस्तत्व से स्वतन्त्र िै। र्ंकरभर्श्र अधधक सिायक िै, क्योंकक अपने'उपस्कार' र्ें वि सिा-सम्बन्ध की व्याख्या करते िुए उसे ापवनार् के योग्य तथा अपने स्वभाव से कायों को उत्पन्न करने की क्षर्ता रखनेवाला बतलाता िै। यि देर् और काल से बद्ध अजस्तत्व को वणनश करने की एक पाररभापर्षक पवधध प्रतीत िोती िै। स्वात्र्सत्त्व अथवा आत्र्तनभरश अजस्तत्व देर् और काल से स्वतन्त्र िै और इसीभलए कालाबाधधत पदाथों र्ें इसका सर्ावेर् िै। यद्यपप ये दूसूरे अपकर्षणश की उपर् िैं, पर इर्न्िें स्वियं की भी अपेक्ष्षा, जर्नके कक ये अपकृष्ट भाव िैं, अधधक यथाथ शसर्झा र्ाता िै। वैर्ेपर्षक सार्ान्य, अपेक्ष्षा और सर्वाय-इन तीन पदाथों के कालाबाधधत तथा कायकशारण-पवीन स्वरूप पर देता िै, और िर्ें सावधान करता िै कक िर् अपकर्ष शके तनष्कर्षों को देर् और काल ते संयुक्त करने की स्वाभापवक प्रवृपृ से दूरू रिें।

5. द्रव्य

वि पदाथ शजर्सके द्वारा वैर्ेपर्षक अपनेको तनजश्चत रूप से अन्य सब आदर्वशादी दर्नश पद्धततयों के र्ुकाबले र्ें खडा करता िै, द्रव्य िै। पवचार न करने वाले ासाधारण व्यजक्त भी स्वीकार करतेिैं कक द्रव्य िैं। बाह्य र्गत् ्र्ें पदाथ शिर्ारे सर्क्ष यथाथ शरूप र्ें आते िैं। वे वतर्शान वास्तपवकताएं ंिोती िैं और अपनेभलए अपना तनर्ी अजस्तत्व रखती िैं। द्रव्य उन वस्तुओं के अपने अजस्तत्व के स्वरूप को, र्ो यिां ंपवद्यर्ान िै, र्तलाता िै। जर्सेिर् अस्पष्ट रूप र्ें सत् ्किते िैं, वि वस्तुओं की एक श्रृंखला के अततररक्त और कुछ निंीं र्ो पवपवध प्रकार के देर् और काल की उपाधधयों से आबद्ध िैं तथा भभन्न-भभन्न गुणों द्वारा एक-दूसूरे से पृथक् िैं। बौद्धों का यि र्त कक द्रव्य अपने गुणों के अततररक्त और कुछ निंीं, अथवा पूण शइकाई अपने अंर्ों के अततररक्त और कुछ निंीं ंिै, अनुभव की कसौटी के पवपरीत िै।'[596] यथाथतशा िर्ार सर्क्ष ऐसे द्रव्यों को प्रस्तुत करती िै जर्न्िें गुणों और अंर्ों सेलक्ष्य ककया र्ा सकता िै। िर् उस घडेको जर्सेिर्नेकल देखा था, पिचाननेर्ें सर्थ शिैं।

---

592 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सिंशग्रि, पृष्ठ 19, वैर्ेपर्षक सूत्र ,12, 3-10, 12, 14, 16, 7:2, 26 ।

593 बुद्धधरेव लक्षणं प्रर्ाणर्।् 'न्यायकदली', पृष्ठ 19।

594 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सिंशग्रि, पृष्ठ 11। प्रर्स्तपादकृत

595 पदाथधशर्सिंशग्रि, पृष्ठ 19।

596 न्यायवाततकश, 1/1 13।

यहद घडा केवल संवंदेनाओं की श्रृंखलार्ात्र िोता[597] तो यि असम्भव िोता। यि साधारण अनुभव का पवर्षय िै कक गुण ऐसेवगों र्ें प्रकट िोतेिैं र्ो स्वरूप र्ें एक िी सदृर् िोते िैं और दूसूरों से पयाप्शत र्ात्रा र्ें भभन्न रूप र्ें लक्ष्य ककए र्ा सकते िैं। एक सेब सवदशा एक िी वग शके गुण रखता िै और एक िी प्रकार के वृक्ूष पर बराबर लगता िै। एक पुरातन सुरक्षक्षत र्व अथवा पवतश का अबाधधत नैरन्तय शके साथ सिस्रों वर्षों र्ें रिने वाला अजस्तत्व भसवाय इस धारणा के कक द्रव्यों का अजस्तत्व िै जर्नके अन्दर गुण सर्वाय-सम्बन्ध से रिते िैं, अन्य ककसी प्रकार से सर्झ र्ें निींआ सकता। "वि जर्सके अन्दर कर् शव गुण रिते िैंऔर र्ो सिाजस्तत्वयुक्त कारण िै", द्रव्य िै।'[598] यि गुणों का अधधष्ठान िै।'[599] दूसूरे पदाथ शगुणों से रहित िैं।

वैर्ेपर्षक के र्त र्ें द्रव्य गुणों से अततररक्त भी एक वस्तु िै। जर्स क्षण र्ें द्रव्य उत्पन्न िोते िैं वे गुणों से रहित िोते िैं।[600] क्योंकक यहद गुण द्रव्यों के साथ-साथ िी उदय िोते ेतो उनके अन्दर कोई भेद न िो सकता। और यहद गुण उदय न िों तो द्रव्यों के गुणों से पविीन िोनेसे द्रव्य की पररभार्षा कक जर्सर्ें गुण रिते िैं, सवथशा तनरथकश िो र्ाएगी। इस कहठनाई को िल करने के भलए किा र्ाता िै कक द्रव्य गुणों का अधधष्ठान िै, या तो सर्वाय-

सम्बन्ध से अथवा [illegible] द्रव्य गुणों का, र्ो वास्तपवक अथवा सम्भाव्य िैं, वतर्शान अथवा भपवष्य र्ें आनेवालेिैं, आधार िै।"[601] वैर्ेपर्षक एक ऐप्सी वस्तु के अजस्तत्व पर बल देनेको उत्सुक िै र्ो स्वयं तो गुण निीं ंककन्तु गुणों को धारण करती िै क्योंकक िर् द्रव्यों के पवर्षय र्ें तो गुणों का पवधान करते िैं ककन्तु गुणांके पवर्षय र्ें गुणों का पवधान निींकरते। और न िर् यिी कि सकते िैं कक िर् एक गुण-सरुदाय के एक पवर्ेर्ष गुण का पवधान करते िैं। लेककन क्योंकक गुणों से अलग द्रव्य िर्ारे पवचार का पवर्षय निींिो सकता, इसभलए द्रव्य की पररभार्षा करते ेसर्य िर् किते िैं कक द्रव्य वि िै र्ो गुणों का अधधष्ठान िै।

तनत्य तथा अतनत्य द्रव्यों र्ें भी भेद ककया र्ाता िै। र्ो वस्तु अन्य ककसी पर तनभरश करती िै वि तनत्य निींिो सकती। भर्धश्रत (अवयवी) द्रव्य अन्य पर तनभरश िैंऔर क्षणणक िैं। सरल (अभर्धश्रत) द्रव्यों र्ें तनत्यत्व, स्वातन्त्र्य् तथा तनरपेक्ष व्यजक्तत्व के लक्षण पाए र्ाते िैं।'[602] उनकी न तो उत्पपि िोती िै और न पवनार् िी िोता िै। अतनत्य द्रव्य अपने से निीं, ंबजल्क अपनेसे भभन्न ककसी अन्य कारण से उत्पन्न िोतेिैंतथा नष्ट िोते िैं।[603]

---

597 न्यायसूत्र, 2/1 30-36।

598 1/1 15 ।

599 गुणाश्रयो द्रव्यर् ्।

600 आय क्षणेतनगुणंश द्रव्यंततष्ठतत ।

601 भसद्धांतर्ुक्तावभल, 3।

602 तनत्यत्व, अनाजश्रतत्व, अन्त्यपवर्ेर्षत्व (प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संग्रि, पृष्ूठ 20-21)

603 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संग्रि, पृष्ूठ 20, न्यायकंदली, पृष्ूठ 20। देणखए। वैर्ेपर्षकसूत्र 1:1, 9-10,12, 15, 18; 10:2, 1-2 ।

पृथ्वी, र्ल, अजग्न, वायु, आकार्, काल, देर्, आत्रा और र्न-ये नौ द्रव्य िैं, जर्नके अन्दर सर्स्त रीरधारी तथा अर्रीरी वस्तुओं का सर्ावेर् िो र्ाता िै।'[604] वैर्ेपर्षक भौततकवाद निीं, यद्यपप यि एक यथाथवशादी योर्ना िै, क्योंकक यि अभौततक द्रव्यों, तथा आत्रा, को स्वीकार करता िै, और ठोस रूूतरूशप भौततक द्रव्यों को निीं, बजल्क उनके अततसूक्ष्र् रूप को यथाथ शर्ानता िै। नौ द्रव्यों र्ें से पृथ्वी, र्ल, अजग्न, वायु, आत्रा और र्न इनके अनेक व्यजक्तत्व िैं।'[605] आत्रा को छोडकर, ये सब पवस्तृत िोते िैं, दूरू एवं सर्ीप के सम्बन्ध रखते िैं, कर् शकरने के योग्य िैं और गततर्ान् ्िैं।'[606] आकार्, काल और देर् सवव्शयापक िैं, और असीर् पवस्तार रखते िैं और सब रीरधारी वस्तुओं के एक सर्ान पात्र िैं।[607] आत्रा और र्न, आकार्, काल और देर्, वायु और अजन्तर् परर्ाणु साधारणतः प्रत्यक्ष के पवर्षय निीं।'[608] रूूत शतथा भूत द्रव्यों र्ें भी भेद ककया गया िै। प्रथर् प्रकार के द्रव्यों का तनजश्चत पवस्तार िोता िै[609], वे कर् शकरते िैं और गतत करते िैं। भूत द्रव्य, एकाकी रूप र्ें अथवा परस्पर संयुक्त िोकर, संसार र्ें उत्पन्न पदाथों के भौततक कारण बनते िैं। र्न यद्यपप परर्ाणु ्से बना ि, पिर वि अन्य ककसी वस्तु को उत्पन्न निींकरता। ककन्तुआकार् ्सवव्शयापक िोतेिुए भी र्ब्द को उत्पन्न करता िै। पृथ्वी, र्ल, अजग्न और वायु रूूत शिैं और उत्पादक भी िैं।'[610]

आत्रा के पवर्षय र्ें वैर्ेपर्षक की प्रकल्पना वस्तुतः न्याय की प्रकल्पना के िी सर्ान िै। भेद केवल यिी िै कक आत्रा के प्रत्यक्ष ज्ञान को, जर्सर्ें आत्रा ज्ञान का कता शभी िै और पवर्षय भी िै, वैर्ैपर्षक ने स्वीकार निीं ं ककया।[611] उपर्ान इस पवर्षय र्ें िर्ारा सिायक निीं िो सकता। आगर् अथवा ईश्वरीय ज्ञान और अनुर्ान िी इस पवर्षय र्ें िर्ारे ज्ञान के एकर्ात्र साधन िैं।'[612] आत्रा के अजस्तत्व का अनुर्ान इस तथ्य के द्वारा ककया र्ाता िै कक चेतनता रीर, इजन्द्रयों तथा र्न का गुण निीं ंिो सकती।'[613] सुख, दुःख, इच्छा, द्वेर्ष, संकल्प और ज्ञान, तनःश्वास और उच्वास आंखों की पलकों का खुलना तथा बन्द िोना, र्ारीररक घावों का भर र्ाना, र्न की

---

604 श्रीधर नेअन्धकार (तर्स्)् के स्वरूप के पवर्षय र्ें एक रोचक प्रश्न उठाया िै (न्यायकंदली, पृषूठ 9; वैर्ेपर्षकसूत्र, 5 2, 19-20)। कुर्ाररल इसे एक पवभर्ष्ट द्रव्य र्ानता िै, जर्सर्ें काला रंग िै तथा गतत की किया िै (श्लोकवाततकश, पृषूठ 43)। प्रभाकरों का र्त िै कक प्रकार् का अभाव अन्धकार िै (गंगानाथ झा: पूवर्शीर्ांसा, पृषूठ 93)। अन्नंभट्ट का भी यिी र्त िै। (तकशसंग्रिदीपपका, 3)। वैर्ेपर्षक नेअन्धकार को द्रव्यों की कोहट र्ें निींरखा क्योंकक यि गुणों से रहित िै। अलंकार की भार्षा र्ें किा र्ाता िै कक इसर्ें काला रंग िै, ठीक वैसेकक रंगपविीन आकार् को नीलवण शकिा र्ाता िै। यि अभाव का एक प्रकार ि, र्ात्र प्रकार् का तनर्षेध िै। (वैर्ेपर्षकसूत्र, 5 2, 19, सवदशर्नशसंग्रि, 10)

605 अनेकत्वंप्रत्येक व्यजक्तभेदः (न्यायकन्दली, पृषूठ 21)।

606 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृषूठ 21।

607 . पृषूठ 22!

608 वैर्ेपर्षकसूत्र, 8:1, 2।

609 पररजच्छन्नपररर्ाणत्वर् ्।

610 तकशदीपपका, पृषूठ 14।

611 वैर्ेपर्षकसूत्र, 3/2 6।

612 वैर्ेपर्षकसूत्र, 3/2 8 और 18।

613 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृषूठ 69, वैर्ेपर्षकसूत्र, 3/1, 19 |

 गतत और इजन्द्रयों की प्रवृपिृ आत्र्ा के अजस्तत्व के प्रर्ाण रूप र्ें प्रस्तुत ककए र्ातेिं।[614] अपनी प्राकृततक

अवस्था र्ें आत्र्ा ज्ञान से रहित िोती िै, रै्से िकक प्रलय र्ें। इसे िवस्तुओं का बोध तभी िोता िै र्बकक यि र्रीर से सम्बद्ध िोती िै।[615] चेतनता का धारण आत्र्ा के द्वारा िोता िै, यद्यपप यि इसका अतनवाय शतथा अपवच्छेद्य चक्षण निीिं। र्न के द्वारा र्ीवात्र्ा न केवल बाह्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करती िै, बजल्क अपनेगुणों का भी ज्ञान प्राप्त करती िै। आत्र्ा यद्यपप सवव्शयापक िै, तो भी इसका ज्ञान, अनुभव तथा कर् शका र्ीवन केवल र्रीर के साथ िी पवद्यर्ान रिता िै।

आत्र्ाओं की अनेकता का अनुर्ान जस्थतत र्ें भेदों के कारण तथा अवस्थाओं की नानापवधता के कारण ककया र्ाता िै।[616] धर्शास्त्रों के आदेर् इस धारणा को र्ान कर हदए गए िैं कक आत्र्ाएं भभन्न-भभन्न िैं।"[617] प्रत्येक आत्र्ा अपने-अपने कर्ों का फलोपभोग करती िै।[618] यि सब प्रकार के अनुभवों र्ें सर्ान रूप से पवद्यर्ान रिती िै।"[619] श्रीधर आत्र्ा के एकत्व का खण्डन करता िै।"[620] कुठेक आत्र्ाओं के र्ोक्ष प्राप्त कर लेने से र्गत् के तनतान्त पवलय िो र्ानेका कोई भय निीं िै, क्योंकक आत्र्ाएंअसंख्य िैं। वैर्ेपर्षक की अनेकत्व-सम्बन्धी पूव शधारणा के कारण इसके अनुयायी अनेकत्व को िी परर् सत्य र्ानते िैं। र्ुक्तात्र्ाओं के पवर्षय र्ें यि सर्झा र्ाता िै कक वे तनत्य पवभर्ष्ट भेदों सहित िी रिती िैं।"[621] यद्यपप प्रत्येक आत्र्ा का अपना एक पवर्ेर्षत्व ककया र्ाता िै, तो भी वि क्या िै यि र्ानना िर्ारे भलए असम्भव िै। आत्र्ाओं र्ें परस्पा सर्झा नको भभन्न-भभन्न र्रीरों के साथ सम्बन्ध के कारण िै। पुनर्जन्र् र्ें भी र्न आत्र्ा के साथ र्ाता िै और उसे िे व्यजक्तत्व प्रदान करता िै। िर एक प्रयोर्न के भलए, आत्र्ा का वैभर्ष्ट्य र्न के वैभर्ष्ट्य पर तनभरश करता िै र्ो आत्र्ा के साथ बराबर र्ीवन भर रिता िै। र्न भी आत्र्ा के सर्ान असंख्य िैं क्योंकक विी र्न र्न्र्-र्न्र्ान्तर र्ें भी बराबर आत्र्ा के साथ रिता िै इसभलए र्ृत्यु के उपरान्त भी वररत्र का तनरन्तर बने रिना

---

614 वैर्ेपर्षकसूत्र, 3 / 2, 4 - 19।

615 अर्रीररणार्ात्र्नां न पवर्षयावबोधः (न्यायकदली, पृष्ठ 57, पृष्ठ 279 भी देणखए)।

616 व्यवस्थातो नाना (वैर्ेपर्षकसूत्र, 3/2.2)।

617 र्ास्त्रसार्थ्यात् श ् (वैर्ेपर्षकसूत्र, 3 / 2, 21)।

618 वैर्ेपपकसूत्र, 6/1, 5।

619 न्यायकंदली, पृष्ठ 86।

620 "यहद आत्र्ा एक िोती तो र्न का सम्पकश सब र्नुष्यों से एक सर्ान रिता. र्ो आत्र्ाओं की अनेकता को स्वीकार करता िै, उसके भलए यद्यपप सब आत्र्ाएं सवव्शयापक िोनेके कारण सब र्रीरों र्ें उपजस्थत रिंगी, तो भी उसके अनुभव उन सबके भलए सर्ान न िोंगे, क्योंकक उनर्ें से िप्रत्येक केवल ऐसे िी सुखों आहद का अनुभव करेगी र्ो उस पवभर्ष्ट र्रीर र्ें प्रकट िोंगे र्ोकक उसे िअपनेपूव शकर्ों के अनुसार भर्ला िै और कर् शका सम्बन्ध भी उसी आत्र्ा के साथ िै जर्सके र्रीर से वि कर् शककया गया िै। इस प्रकार र्रीर का प्रततबन्ध कर् शके प्रततबन्ध के कारण और कर् शका र्रीर के कारण िै, और इस प्रकार की पारस्पररक तनभरशता अन्तिीन िै" (न्यायकंदली, पृष्ठ 87-88)।

621 डॉक्टर दासगुप्त के इस सुझाव को स्वीकार करना कहठन िै कक वैर्ेपर्षक का र्त था कक "आत्र्ा एक िै, यद्यपप अनेक प्रततबन्धों के पवचार से िऔर र्ुरुततयों र्ें हदए गए आदेर्ों के पालन करने िकी आवश्यकता के भलए भी उन्िें अनेक र्ान भलया गया।" (हिस्री आफ इजण्डयन कफलासफी, पृष्ठ 290, हटप्पणी 1)। वैर्ेपर्षक का लौककक पवपवधता से िप्रयोर्न िै, परर्सत्य से निीं, और अनेकत्व के र्त को, क्योंकक यि पवर्ेर्ष के भसद्धान्त पर आधश्रत िै, यि अजन्तर् रूप र्ें िी स्वीकार करता िै।

सम्भव ि ै।'[622] रीवात्रा तथा पररात्रा के अन्दर भेदे ककया गया ि ै।'[623] इन दोनों र् सादृश्य तो ि ै ककन्तु तादात्म्य निीं।

आकार्, देर् और काल के तनम्नतर उपवग शनिीं ि ैं और ये व्यजक्तगत संज्ञाएं ि ैं।'[624] इन्ें अनुभव की पवपवधता की व्याख्या के भलए सवतशोव्यापी इकाइयांरान भलया गया ि ै। इन्िीके अन्दर सर्स्त घटनाएं घहटत िोती ि ैं। देर् और काल सब उत्पन्न पदाथों के साधनरूप कारण ि ैं। यथाथतशा एक प्रकिया अथवा राग शि और इसीभलए देर्ीय तथा कालगत भी ि ै।

भौततक पररवतनशों के भलए िर्ें एक सम्पूण शइकाई की आवश्यकता िोती ि ै जर्सके अन्तगतश वे घहटत िोते ि ैं। सभी परराणुवादी ररक्तदेर् (आकार्) को यथाथसशा रानते ि ैं। यहद देर् अनेक इकाइयांिोता, तो भभन्न-भभन्न देर्ों र् चक्कर लगाने वाले परराणुओं का एक-दूसूरे के साथ कोई सम्बन्ध न रि सकता। पूव-श पजश्चर् आहद हदरा सम्बन्धी भावों तथा दूरू और सरीप से सम्बजन्धत भावों का भी आधार देर् िी ि ै ।'[625] देर् की प्रतीयरान पवपवधता उसके कायों द्वारा तनणीत िोती ि ै।[626] वस्तुओं की सापेक्षक्षक जस्थतततयां ंभी देर् िी के कारण जस्थर रि सकती ि ैं, रो देर् के बबना सम्भव निींि सकती थीं।

प्रकृतत र् िोनेवाले स्थूल शपररवतनशों, यथा वस्तुओंकी उत्पपि, पवनार् और जस्थरता के भलए भी काल का िोना आवश्यक ि ै। यि वि र्जक्त ि ै रो अतनत्य पदाथों र् पररवतनश लाती ि ै। यि वि ब्रह्माण्ड र्जक्त निीं रो गततयों को उत्पन्न करती ि ै, बजल्क यि सर्स्त गतत की आवश्यक अवस्था ि ै।'[627] सब दृश्यरान वस्तुएं गतत करती िुई, पररवतततश िोती िुई, उत्पन्न िोती िुई तथा नष्ट िोती िुई हदखाई देती ि ैं। खजण्डत अथात्श ्अलग-अलग वस्तुओं के अन्दर आत्र-उत्पादन अथवा आत्र-गतत की कोई र्जक्त निींिोती। यहद ऐसी र्जक्त िोती तो वस्तुओं र् वि पारस्परररक सम्बन्ध न िोता रो सब प्रकार के पररवतनश के िोते िुए भी जस्थर रिता ि ै। गतत सुव्यवजस्थत अवस्था र् पाई राती ि ै, जर्सका अथ शि कक एक ऐसी वद्याथसशा अवश्य ि ै जर्सका साराण्य ज्ञान सम्बन्ध सर्स्त पररवतनशों के साथ रिता ि ै। काल को एक स्वतन्त्र यथाथसशा राना गया ि ै रो सर्स्त पवश्व र् व्याप्त ि ै और रो वस्तुओं की व्यवजस्थत गतत को सम्भय बनाती ि ै। यिी काल पिले-पीछे िोने, एक सर्य र् तथा भभन्न-भभन्न सर्य र् िोनेके सम्बन्धों और रीघ्र अथवा पवलम्ब के भायों का आधार ि ै।'[628] काल एक िी ि ै रो पवस्तार र् सवत्रश उपजस्थत ि ै।'[629] यि स्वरूप र् व्यजक्तस्य ि ै, और इसर्ं रोडने तथा अलग करने के दोनों

---

622 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 89, वैर्ेपर्षकसूत्र, 7/2, 21, 3/2, 22 ।

623 ककरणावली, पृष्ठ 7 और भी देणखए, उपस्कार, 3 2,18।

624 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 58।

625 तकशसंग्रि, 16; भार्षापररच्छेद, पृष्ठ 46-47।

626 वैर्ेपर्षकसूत्र, 2/2 13।

627 2: 2, 9, 5: 2, 26। इस र्त को उस प्रकार का 'कालवाद' न सझी लेना चाहिए रो काल को दैवत्व का रूप देता ि ै।

628 वैर्ेपर्षकसूत्र, 2 2, 6।

629 7:1, 25 ।

प्रकार के गुण ि ैं। क्षण, भर्नट, घण्टा, वर्ष शआहद प्रचभलत लौककक भाव उसी ठोस स्रूतरूशप सर्य से तनकलि ैं।
वैरे्पर्षक के र्त र्ें, काल एक तनत्य द्रव्य ि ै'[630] और सर्स्त अनुभव का आधार ि ै।'[631] ि र् यि तो निीं र्ानते ि कक
काल अपने-आप र्ें क्या ि ै, ककन्तु ि र्ारा अनुभव काल के रूप र्ें ढाला र्ाता ि ै। पिलेअथवा पीछे के सम्बन्धों
का यि औपचाररक कारण ि ै, र्बकक उनका भौततक कारण, घडा, कपडा आहद पदाथों का स्वरूप ि ै। काल एक ि ी
ि ै, किकन्तु अनेकरूप र्ो प्रतीत ि ोता ि ै उसका कारण उन पररवतनशों के साथ संपकश ि ै र्ो इसके साथ सम्बद्ध ि ैं।[632]

देर् और काल का भेद वैरे्पेर्षक ग्रन्थों र्ें पाया र्ाता ि ै। देर् सि-अजस्तत्य का प्रततपादन करता ि ै और
काल अनुिर् का, अथवा ऐसा किना अधधक ठीक ि ोगा कक देर् दृश्यर्ान पदाथों का वणनश करता ि ै और काल
ऐसेपदाथों का वणनश करता ि ै र्ो उत्पन्न ि ोते ि ैं तथा नष्ट ि ोते ि ैं।[633] र्ंकरभर्श्र का र्त ि ै कक काल के सम्बन्ध
बराबर रिने वाले अथवा तनयत ि ैं तथा देर् के सम्बन्ध अतनयत ि ैं।'[634] वस्तुएं गतत करती ि ैं काल के कारण, और
परस्पर सम्बद्ध रिती ि ैं देर् के कारण। देर् और काल के अन्दर, अधधकतर सवग्रशिी सम्बन्ध, अथात्श ्एक
स्थान से दूसूरे स्थान तक अथवा एक अयस्था से दूसूरी अवस्था र्ें संर्णि, देर्-सम्बन्धी गर्नागर्न और
कालगत पररवतनश आ र्ातिे। ैं ककन्तु ये सब औपचाररक ि ैं और यथाथ शवस्तुओं के उपलक्षण ि ैं, र्ो वस्तुतः गतत
करती ि ैं तथा पररवतततश ि ोती ि ैं।

आकार् एक सरल (अभर्धश्रत), तनरन्तर स्थायी तथा अनन्त द्रव्य ि ै। यि र्ब्द का अधधष्ठान ि ै। यि
रंग, रस, गन्ध और स्पर् शआहद गुणों से रहित ि ै। अपनयन की किया द्वारा यि भसद्ध ककया र्ाता ि ै कक र्ब्द
आकार् का पवभर्ष्ट गुण ि ै।[635] यि तनजष्िय ि ै। सर्स्त भौततक पदाथ शइसके साथ संयुक्त पाए र्ाते ि ैं।'[636]
परर्ाणु, ु र्ो अत्यन्त सूक्ष्र् ि ैं, एक-दूसूरे के पास आकर अथवा एक-दूसूरे को स्पर् शकरके ककसी बडेपदाथ शका
तनर्ाणश निींकर सकते। यहद वे एक-दूसूरे से पृथृक् रिते ि ैं और कफर भी ककसी प्रकार से परस्पर भर्लकर

एक व्यवस्था को जस्थर रखति ैं, तो यि केवल आकार् के ि ी र्ाध्यर् द्वारा सम्भव ि ै। परर्ाणु ुपरस्पर
संयुक्त ि ोते ि ैं ककन्तुतनरन्तर निींसंयुक्त ि ोते ि रिते। वि वस्तु र्ो परर्ाणुओं को परस्पर संयुक्त ककए रिती ि ै,
यद्यपप स्वयं परर्ाणुओं द्वारा तनभर्तश निीं ि ,आकार् ि ै। यहद आकार् भी खजण्डत ि ोता, अथात्श ्परर्ाणुओं र्ें
पवभक्त ि ोनेयोग्य ि ोता, तो कफर ि र्ें ककसी अन्य ऐसी र्ोडने वाली वस्तु की कल्पना करनी पडती र्ो
परर्ाणुओं से बनी न ि ो। आकार् तनत्य ि ै, सवत्रश उपजस्थत ि ै, इजन्द्रयातीत ि ै और र्ोडने तथा पृथृक् करने के
व्यजक्तगत गुण रखता ि ै। आकार् सर्स्त देर् को पूण शकरता ि ै, यद्यपप यि स्वयं देर् निीं ि , क्योंकक यि

630 2: 2,7 ।

631 अतीताहदव्यविाररेतुः (तकशसंग्रि, 15; भार्षापररच्छेद, 15)।

632 न्यायर्ंर्री, पृषृठ 136 ।

633 भसद्धान्तचन्द्रोदय र्ें किा ि ै "न्र्यर्ात्रं कियार्ात्रं वा कालोपाधधः, र्ूतर्शात्र हदगुपाधधः।

634 उपस्कार, 2/2 10। तुलना कीजए इसके साथ काण्ट के अनुभव-पवर्षयक दूसूरे तथा तीसरे उपर्ान की।

635 वैरे्पर्षकसूत्र, 2/1 27, 29 -81|

636 न्यायसूत्र, 4/2 21-22।

वस्तुओं के साथ पवरे्ष सम्बन्धों द्वारा सम्बद्ध ि◌ुए बबना और उन सम्बन्धों द्वारा उनरे् बद उत्पन्न ककए बबना न तो वस्तुओं पर कोई प्रभाव डाल सकता ि◌ै और न किया ि◌ी कर सकता ि◌ै। खजण्डत पदार्थों के जस्थतत-पवर्षयक सम्बन्धों तथा उनकी व्यवस्था को रो् धारण ककए रिती ि◌ै वि हदक् (हदर्ा) ि◌ै, यद्यपप वि स्वयं देर् निीं, यिद देर् सेतात्पय शस्थान अथवा आकार् ि◌ै, क्योंकक वि तो आकार् ि◌ी ि◌ै। आकार् तथा देर् के भेद को इसभलए स्वीकार ककया र्ाता ि◌ै कक रिं ◌ंआकार् को उसके पवरे्ष गुण अथात्श ◌्र्बद का भौततक कारण सझा र्ाता ि◌ै, विांदेर् सब कायों का सार्ान्य रूप रे् कारण ि◌ै।

पृथ्वी, र्ल, अजग्न, वायु और आकार् इन पांच द्रव्यों के सम्बन्ध रे् वैरे्पर्षक की भौततक प्रकल्पना का पररष्कार ककया गया ि◌ै। प्रकृतत, रै्से ◌ेकक वि ि◌र्ारे सार्ने आती ि◌ै, पांचं तत्त्वों का सजम्श्रण ि◌ै, जर्सरे् एक न एक तत्त्व प्रचुर र्ात्रा रे् रिता ि◌ै। पंचभूत प्रकृतत की पांचं अवस्थाएं ◌ंि◌ैं, रै्से ◌ेठोस (पृथ्वी), तरल (र्ल), वायवीय (वायु), तेर्ोर्य (अजग्न), अन्तररक्ष सम्बन्धी (आकार्)। पृथ्वी के चार गुण ि◌ैं गन्ध, रस, रंग और स्पर्।श र्ल के तीन गुण ि◌ैं: रस, रंग तथा स्पर्।श अजग्न के दो गुण ि◌ैं: रंग और स्पर्।श वायु रे् केवल स्पर् शगुण ि◌ै तथा आकार् रे् केवल र्बद गुण ि◌ै।'[637] यद्यपप पृथ्वी रे् अनेक गुण ि◌ैंतो भी ि◌र् किते ि◌ैंकक गन्ध पृथ्वी का गुण ि◌ै, क्योंकक यि गुण प्रधान र्ात्रा रे् ि◌ै।[638] यिद पृथ्वी के अततररक्त र्ल तथा अन्य द्रव्यों रे् भी गन्ध भर्लती ि◌ै तो इस कारण से कक उनरे् पृथ्वी के अंर् भर्ले ि◌ुए ि◌ैं। बबना गन्ध के ि◌र् पृथ्वी का पवचार कर ि◌ी निीं ◌ंसकते, यद्यपप वायु और र्ल का कर सकते ि◌ैं। पृथ्वी से बनी वस्तुएं तीन प्रकार की ि◌ैं र्रीर, इजन्द्रयांतथा प्रत्यक्ष-पवर्षय पदाथ।श'[639] र्ल का पवरे्ष गुण रस ि◌ै। अजग्न का पवरे्ष गुण ज्योततर्ा्ि ि◌ै। वायु अदृश्य ि◌ै, यद्यपप पवस्तार रे् सीभर्त ि◌ै और अंर्ों से धगलकर बनी ि◌ै। वायु रे् गततयों के ि◌ोनेसेयि अनुर्ान ककया र्ाता ि◌ै कक वायु खजण्डतस्वरूप की ि◌ै। यिद वायु अंर्ों से रहित एक पूण शअपवजच्छन्नता ि◌ोती तो उसरे् गततयां ◌ंसंभव न ि◌ोतीं।'[640] इसके अजस्तत्व का अनुर्ान स्पर् शसे ि◌ोता ि◌ै।'[641] इसे ◌ेद्रव्य इसभलए किा गया ि◌ै क्योंकक इसरे् गुण तथा किया ि◌ै। तापर्ान वायु का पवरे्ष गुण ि◌ै। पृथ्वी, वायु, अजग्न तथा र्ल रै्से ◌ेठोस पदार्थों का तनर्ाणश्करने वाले अन्त रे् परर्ाणु ि◌ी ि◌ैं।

6. परर्ाणुवाद की प्रकल्पना

परर्ाणुवाद र्ानवीय र्जस्तष्क के भलए इतना स्वाभापवक ि◌ै कक भौततक र्गत् ◌्की व्याख्या के भलए आरम्भ रे् र्जतने भी प्रयत्न ि◌ुए, सबने इसी प्रकल्पना को अपनाया। उपतनर्षदों रे् भी इस कल्पना के धचह्न

637 न्यायसूत्र, 3 1, 60-61।

638 न्यायसूत्र, 3:1, 66।

639 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशग्रि, पृष्ठ 27।

640 वैरे्पर्षकसूत्र, 2:1,14।

641 प्राचीन वैरे्पर्षकों तथा अन्नंभट्ट का र्त ि◌ै कक वायु प्रत्यक्ष निींिोती, ककन्तुउसका ज्ञान अनुर्ान के द्वारा ि◌ोता ि◌ै। वे युजक्त देते ि◌ैं कक वायु का कोई रंग निीं और इसभलए वि देखी निीं र्ा सकती। आधुतनक नेव्यातयकों का किना ि◌ै कक ककसी वस्तु के प्रत्यक्ष ि◌ोनेके भलए यि आवश्यक निींकक यि देखी ि◌ी र्ा सके, वायु का प्रत्यक्ष स्पर् शसे ि◌ोता ि◌ै।

 भर्लते िैं, र्ो सब भौततक पदाथों को चार तत्त्वों, अथात्श ्अजग्न, र्ल, वायु और पृथ्वी से बना

िुआ र्ानते िैं।

आकार् को छोड हदया गया िै, क्योंकक इसका अपना एक पवलक्षण स्वरूप िै और यि अन्य तत्त्वों के साथ भर्धश्रत निींिोता। ककन्तु अजग्न, र्ल, वायु और पृथ्वी अपने-आप र्ें पररवतनशर्ील और पवभाज्य िैं, बकक यथाथ शको अपररवतनशर्ील तथा तनत्य र्ाना र्ाता िै। स्वभावतः यि प्रश्न उठता िै कक अपररवतनशर्ील, अपवभाज्य तथा तनत्य ये परर्ाणुिैं क्या? पवचारधारा के उस आंदोलन र्ें, जर्सनेर्ैन और बौद्धदर्नश र्ैसी बडी-बडी दर्नशपद्धततयों को र्न्र् हदया, कुछ ऐसी भी दर्नश पद्धततयांथीं-उदािरण रूप र्ें अर्ीवक और र्ैन र्ो परर्ाणुवाद की प्रकल्पना को र्ानती थीं।'[642] कणाद ने इसकी कल्पना पवरुद्ध आध्याजत्र्क आधार पर की और इसके द्वारा गंदपवर्षयक पवचारधारा को सरस बनाने का प्रयत्न ककया। ल्यूभसपस तथा डेर्ोकिटस के साथ भी यिी बात थी, क्योंकक अणुवाद की प्रकल्पना ने डाल्टन के सर्य से पूव शतक वैज्ञातनक दृजष्टकोण से कोई र्ित्त्वपूण शस्थान निींप्राप्त ककया।

सब पदाथ,श र्ो हिस्सों सेभर्लकर बने िैं, हिस्सों से िी उत्पन्न िोते िैं, जर्नके साथ वे सर्वाय-सम्बन्ध से र्ुडे िोते िैं, संयोग इसर्ें सिकारी िै। जर्न वस्तुओं को िर् अनुभव करते िैं वे सब उत्पन्न िुई िैं, अथात्श्या तो अलग-अलग िैंया हिस्सों से बनी िैं। इसभलए वे अतनत्य ि।ैं तनत्य से अलग अतनत्य का कुछ तात्पय शिी निीं।643 पृथ्वी, र्ल, अजग्न, और वायु तनत्य और अतनत्य दोनों िी िैं ककन्तु आकार् केवल तनत्य िी िै। भर्धश्रत पदाथ श र्ो उत्पन्न िोते िैं, अतनत्य िैं, ककन्तु उनके बनाने वालेअंर्, र्ो उत्पन्न निींिोते,े तनत्य िैं ।'[644] अदृश्य तनत्य परर्ाणु ुहिस्सों र्ें पवभक्त निींिो सकते।[645] परर्ाणु पवभार्न की अजन्तर् सीर्ा िै। यहद परर्ाणु ुके भी अनन्त रूप से हिस्से िो सकते तो सभी भौततक पदाथ शउसी प्रकार से अनन्त घटकों की उपर् िोते, और इस प्रकार पदाथों के आकारों र्ें र्ो भेद िै उसकी व्याख्या करना असम्भव िो र्ाता।[646] यहद भौततक प्रकृतत अनन्त रूप से पवभाज्य िोती र्ाती तो उसको िर्ें र्ून्य तक ले र्ाना पडता और इस पवरोधाभासर्य जस्थतत को स्वीकार करना पडता कक लम्बाई व चौडाई ऐसी वस्तुओं सेबनी िै जर्नका अपना कुछ पररर्ाण निीं, र्ीर र्ीर-रहित से बने िैं।[647] र्ीरों के आकार-प्रकार सेपररवतनश उनके बनाने वाले परर्ाणुओ के सजम्र्लन तथा तनःसरण के कारण िोता िै। अन्तपवीन र्ि्र् तथा अन्तपवीन र्यादशाग िैं, और जर्नका ज्ञान िर्ें िोता िै वि दोनों का र्ध्यवती िै।

---

642 भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृषूठ 291-93। बौद्धधर् शके प्रार्ाणणक ग्रंथों र्ें तो निीं, ककंतु उिरी बौद्ध साहित्य र्ें परर्ाणुवाद की प्रकल्पना के अनेकों उद्धरण िैं। गैभापवक और सौत्राजन्तक इसेर्ानतेिैं। देणखए यूई कृत 'वैर्ेपर्षक

कफलासफी', पृषूठ 26-28।

643 4/1,4 ।

644 4/1 1, 1: 2 / 3 7/1 , 20-21।

645 परं वा त्रुटेः (न्यायभाष्य, 4/2 17-25)।

646 सवेर्षार् ्अनवजस्थतावयवत्वे र्ेरुसर्षपशयोस्तुल्यपररर्ाणत्वापपिः । देणखए न्यायय, न्दली, पृषूठ 31।

647 िरबटश के पवचार र्ें पवपवधता तथा अनुभव सम्बन्धी पररवतनशों को तभी बुद्धध द्वारा ग्रिण ककया र्ा सकता िै र्ब वस्तुएं, र्ो अपनेर्ें सरल तथा अपररवतनशर्ील िैं, स्वयंउनके पवर्षय र्ें कोई कारण प्रस्तुत कर सकें। इन अजे्ञेय यचायसशिाओंका पवचार ककन्िीं पवर्ेर्ष सम्बन्धों र्ें िी ककया र्ा सकता िै, जर्नके द्वारा िर् उनके प्रकट गुणों तथा पररवतनशों की पवपवधता को सर्झ सकते िैं।

तनरन्तर ऱ्ोडते–ऱ्ोडते िर् अनन्त रूप से ऱ्ो रिन् ्ि उस तक पिुंचते िैंऔर तनरतर पवभार्न करते–करते िर् अनत लघुता तक पिुंचते िैं। परऱ्ाणु ुकायों के भौततक कारण िैं। वे यद्यपप इजन्द्रयातीत िैं तो भी उनका वगीकरण ककया ऱ्ा सकता िै, यद्यपप परररऱ्ाण, आकार, वर्न तथा घनता के दृजष्टकोण से निीं। इजन्द्रयगम्य वस्तुओं की पवभभन्न आकृततयों र्ें ऱ्ो गुण वे उत्पन्न करते िैं, वे िऱ्ारे भलए परऱ्ाणुओं का वगीकरण करने र्ें सिायक िोते िैं। यहद िर् इजन्द्रयगम्य वस्तुओं, अभेदनीयता रै्से ेसाऱ्ान्य गुणों को, जर्नका प्रत्यक्ष ज्ञान एक से अधधक इजन्द्रयों द्वारा िोता िै, एक ओर रख दें तो पवर्ेर्षगुण ये रि ऱ्ाते िैं गन्ध, रस, उज्ज्वलता और ताप। ये प्रकार भेद से भभन्न िैं, केवल ऱ्ात्राभेद से िी निीं। ऐसा सर्झा ऱ्ाता िै कक परऱ्ाणुओं की भी भौततक पदाथों के चार पवभागों अथात श ्पृथ्वी, र्ल, अजग्न, तथा वायु के िी अनुकूल चार श्रेणणयां िैं। किा गया िै कक परऱ्ाणुओं की ये चार श्रेणणयां स्पर्,श रस, दर्नश तथा गन्ध की इजन्द्रयों को उत्पन्न करती िैं, और यिी कारण िै कक प्रत्येक पवर्ेर्ष इजन्द्रय केवल एक गुण का िी प्रकार् करती िै, चािे ककतनी की उिर्त वि क्यों न िो। यद्यपप पाधथवश पदाथों के गुण-यथा रंग, रस, गन्ध और स्पर्नशीयता स्वयं पदाथ शके नार् िो ऱ्ानेपर लुप्त िो ऱ्ातीं, वे उनके अपने-अपने परऱ्ाणुओं र्ें सदा पवद्यऱ्ान रिते िैं यद्यपप पृथ्वी तथा पृथ्वी के परऱ्ाणुओं र्ें कुछ गुण अजग्न द्वारा उत्पन्न ककए (पाकर्) िोते िैं।[648] र्ल, प्रकार् तथा वायु इस प्रकार के पररवतनश को निींआनेदेते िैं।

वैर्ेपर्षक पीलूपाक की प्रकल्पना को स्वीकार करता िै। र्ब कच्चे ेघडे को आग पर चढ़ाया ऱ्ाता िै तो पुराना घडा नष्ट िो ऱ्ाता िै, अथात्श ्परऱ्ाणुओं के रूप र्ें पररवतततश िो ऱ्ाता िै। ताप के लगने से परऱ्ाणुओं र्ें लाल रंग उत्पन्न िोता िै और परऱ्ाणु ुकफर से संयुक्त िोकर एक नए घडे को उत्पन्न करते िैं। इस र्त के अनुसार, पिले ेसर्स्त इकाई का परऱ्ाणुओं के रूप र्ें पवघटन िोता िै और कफर उसके पश्चात् ्उन परऱ्ाणुओं का पुनः संघटन िोकर एक इकाई नये भसरे से बनती िै। यि सब र्टिल प्रकिया चक्षुका पवर्षय निीं, क्योंकक यि अत्यन्त द्रुतु गतत से केवल नौ क्षणों के िी व्यवधान र्ें सम्पन्न िो ऱ्ाती िै।[649] नैय्यातयक 'पपठरपाक' के भसद्धान्त को पुष्ट करता िै, जर्सके अनुसार रंग का पररवतनश परऱ्ाणुओं तथा पदाथ शदोनों र्ें एक साथ िोता िै। यि र्त अधधक युजक्तयुक्त प्रतीत िोता िै। नैय्यातयक वैर्ेपर्षक की प्रकल्पना पर तनम्न आधार पर आपपि उठाता िै। यहद पिला घडा नष्ट िो गया और उसके स्थान पर सवथशा नया घडा उत्पन्न िुआ तो िर् दूसूरे घडे को पुराना घडा करके कैसे ेपिचान सकते िैं? िर् उसी घडे को देखते िैंजर्से ेपिले ेदेखते थे,े भेद केवल रंग का िै। इसके अततररक्त ऐसा प्रतीत िोता िै कक वैर्ेपर्षक के र्त र्ें, पृथ्वी के परऱ्ाणुओं का गुण, गंध भी अतनत्य िै। यि तथ्य की इजन्द्रयगम्य पदाथों पर ताप का असर िोता िै, यि दर्ातशा िै कक वे सवथशा ठोस निीं बजल्क तछद्र वाले े िैं।[650]

परऱ्ाणुओं को गोलाकार (परररऱ्ाण्डल्य) बताया गया िै, यद्यपप इससे यि पररणार् निींतनकाला ऱ्ा सकता कक उनके हिस्से िैं। इस पवचार पर कक उनके हिस्से िैं, कुछ आपपियां ंकी ऱ्ाती िैं। र्ब तीन परऱ्ाणु ुसाथ-

---

648 7/1, 1 - 6 ।

649 सवदशर्नशसंग्रि, 10 ।

650 न्यायवाततकशतात्पयटशीका, पृष्ठ 55; न्यायर्ंर्री, पृष्ठ 438।

साथ अगल-बगल रखेर्ातिैंतो र्ध्यवती अन्य परर्ाणुओंको पावों से स्पर् शकरता िै। र्ब एक परर्ाणु ुसब ओर से तघरा रिता िै तो िर् परर्ाणुओं के छः पाश्व शसर्झते िैं जर्न्ि िर् परर्ाणुओं के भाग कि सकते िैं और यहद छः पाश्व शसंकुधचत िोकर एक बबन्दु ुपर आ र्ाते िैं तो इससे यि पररणार् तनकलेगा कक ककतने भी परर्ाणु ु क्यों न िों, वे एक परर्ाणु से अधधक स्थान न घेरेंगे, और सर्स्त भौततक पदाथ शभी परर्ाणुरूप धारण करके अदृश्य िो र्ाएंगे। इस सब कहठनाई को दूरू करने के भलए उिर र्ें किा र्ाता िै कक परर्ाणुओं का हिस्सों र्ें पवभार्न केवल आनुभपवक (अथात्श ्प्रतीततर्ात्र) िै, यथाथ शर्निींिै।[651] परर्ाणुओं का अन्दर और बिार कुछ र्निींिै।'[652] और वेदेर्ररहित िैं।'[653]

परर्ाणु स्वभाव सेतनजष्यि िैं और उनकी गतत बाह्य आघात के कारण िै। इस र्त् के प्रलयकाल र्ें परर्ाणु ुपवद्यर्ान रिते िैं, ककन्तु कुछ काय शर्निींकरते। उस सर्य वे पृथक् पृथक् तथा गततपविीन रिते िैं। वैर्ेपर्षक के र्तानुसार, रूल परर्ाणुओं र्ें गतत एक पवभर्ष्ट धर् शके अनुसार िोती िै।'[654] प्रर्स्तपाद किता िै : र्िाभूतों र्ें िर् र्ो कियाएं प्रकट िोती पाते िैं और जर्नका कोई भी कारण च तो प्रत्यक्ष द्वारा और न िी अनुर्ान द्वारा र्ान सकते िैं, तथा र्ो कफर भी उपयोगी अथवा िातनप्रद पाई र्ाती िैं, इन्िेंअदृष्ट साधनों द्वारा उत्पन्न िोती िैं (अदृष्टकाररतर्)्", ऐसा िी सर्झा र्ाएगा।

पदाथगशत गुण उन परर्ाणुओं के कारण िैं, जर्नसे वे बने िैं। इन परर्ाणुओं र्ें सब द्रव्यों के पांच सार्ान्य गुण रिते िैं, यथा पूववशततताशा और पश्चादवतततशा के भी गुण रिते िैं। इनके अततररक्त, पृथ्वी र्ें गन्ध का पवर्ेर्ष गुण िै तथा अन्य गुण, अथात् श ्रस, रंग, स्पर् शअथवा ताप, गुरुता, वेग एवं तरलता िैं। र्ल र्ें पवर्ेर्ष गुण सान्द्रता का िै तथा भसवाय गन्ध के पृथ्वी के अन्य गुण िैं। प्रकार् (अजग्न अथवा तेर्) र्ें साधारणतः रिने वाले सात गुण और ताप, रंग, तरलता तथा वेग, ये गुण िैं। वायुर्ें केवल स्पर् शऔर वेग तथा साधारण सातों गुण िैं। परर्ाणुओं र्ें ये गुण तनत्य िैं, ककन्तु उनसे ेउत्पन्न पदाथों र्ें ये क्षणणक रूप से रिते िैं।

ऐसा सर्य कभी न आ सकेगा र्ब वस्तुएं सवथशा रून्य र्ें पररणत िो र्ाएंगी। यद्यपप तनर्ाणश की गई इर्ारतें नष्ट िो र्ाती िैं तथापप जर्न पत्थरों से वे बनी िैं वे स्थायी रिते िैं।[655]' उपादान कारणरूप अवयव, जर्नके परस्पर संयुक्त िोने पर एक पूण शइकाई बनती िै. और इसीभलए र्ो इस प्रकार के भर्धश्रत पदाथों की

---

651 न्यायभाष्य, 4: 2, 20 ।

652 प्रश्न उठाया र्ाता िै कक आकार् र्ो एक सरल (अभर्धश्रत) तथा सवव्शयापक द्रव्य िै, परर्ाणुओं के अन्दर प्रवेर् करता िै या र्निीं? यहद करता िै तो परर्ाणुओं के हिस्से र्ाननेपडगें, और यहद प्रवेर् र्निींकरता तो परर्ाणुओं के तो हिस्से र्निींिोंगे े ककन्तु आकार् सवव्शयापी र्निीं रिेगा। उिर र्ें यि किा र्ाता िै कक अन्दर और बिार का पवचार एक तनत्यसिा के पवर्षय र्ें उठता िी र्निीं, और आकार् की सवत्रश उपजस्थतत से ेयि उपलक्षक्षत र्निींिोता कक परर्ाणुओं के हिस्से िैं।

653 न्यायवाततकश, 4/2 25। परर्ाणु िबिृ के पवपरीत सूक्ष्र् आकार के िोते र्ाते िैं। उनर्ें ककसी-न-ककसी प्रकार का पररणार् (लम्बाई-चौडाई) अवश्य िै। इससे पवभभन्न र्त के भलए देणखए चैटर्ीकृत हिन्दू ूररयभलज्र्, पृषूठ 19-34; 149-153 तथा 164।

654 धर्पशवर्ेर्षात्, 4/2 ,7 6 पृषूठ 309।

655 न्यायभाष्य, 4 2,16।

उत्पपि के पूव शपवद्यर्ान थे, अपनेरें एक स्वतंत्र सिा की र्जक्त रखतिैं और कफर उसी अवस्था रें वापस आ र्ाते िैं। इस दृश्यर्ान र्गत् ुका एक के बाद एक ढांचा, यिां एक कक सर्स्त पाधथवश पदाथसशरिू पवलीन िो सकता िै तो भी परर्ाणु सवदशा नये और ता ेरिंगे ेऔर आगार्ी युगों रें नये ढांचों का तनर्ाणश करने के भलए उद्यत रिंगे। व्यजक्तरूप परर्ाणु ुदूसूरों के साथ संयुक्त िोतिैंऔर उसी सिकारी अजस्तत्व रें कुछ सर्य तक पवद्यर्ान रिते िैं, और कफर पवयुक्त िोकर अपनेआहदर् एकाकी रूप रें आ र्ाते िैंऔर कफर नये संयुक्त पदाथों का तनर्ाणश करते िैं। संयुक्त िोनेतथा पवलग िोनेकी यि प्रकिया अनन्त काल तक चलती रिती िै। वैरेपर्षक के अनुसार, सृजृष्ट रचना रें परर्ाणु असंयुक्त अवस्था रें निीं रिते।[656] सृजृष्ट रचना रें उनके अन्दर एक पररस्पन्द रिता िै। परर्ाणु ुएकाकी रूप रें र्ब रिते िैं तो उनके अन्दर उत्पादन की क्षर्ता निीं ंिोती। श्रीधर का तकश िै कक यहद एक तनत्य वस्तु अपने एकाकी रूप रें उत्पादनक्षर् िोती तो उत्पपि के िर् का कभी अन्त न िो सकता, और कफर पदाथों की अपवनश्वरता स्वीकार करने को िर् बाध्य िोते। य्णुक भी उत्पादनक्षर् निींिो सकते, क्योंकक एक रूतरूशप भौततक पदाथ शअपनेसेलघुतर परररर्ाण के हिस्सों से भर्लकर बना िै। य्णुक, र्ो एक ठोस परररर्ाण रखता िै, अवश्य ककसी अन्य वस्तु से बना िै र्ो कफर स्वय भी एक उत्पन्न पदाथ िै। इसभलए केवल 'द्वयणुक' िी वस्तुओं को बनाते िैं।[657] द्वयणुक भी, र्ो दो र्ौभलक परर्ाणुओं से भर्लकर बने िैं, सूक्ष्र् िैं, और इस प्रकार के तीन द्वयणुकु भर्लकर एक य्णुकु बनता िै[658], जर्सका आकार-प्रकार इतना छोटा निींिोता कक र्ो बोधगम्य न िो। अकेला एक परर्ाणु ुतथा द्वय्णुकु दोनों िी अदृश्य िैं, और कर् से कर् लम्बाई-चौडाई की र्ात्रा र्ो दृजष्टगोचर िो सके वि 'य्णुक' िै, जर्सके पवर्षय रें किा र्ाता िै कक वि सूयकशकरण रें हदखाई देनेवाले छोटे-छोटे कणों के आकार का िै। देखने ेरें यि इस साधारण तनयर् का एक अपवाद लगता िै कक कारणों के गुण कायों रें प्रकट िोते िैं। र्ब श्वेत वण शके दो परर्ाणु ुएक द्वयणुक को बनाने के भलए परस्पर भर्लते िैं तो द्वयणुक का रंग भी तदनुसार श्वेत िोना चाहिए। परन्तुपरर्ाणु ुगोलाकार िै और द्वय्णुकु सूक्ष्र् िै,'[659] तो भी वे एक दृश्यर्ान परररर्ाण को उत्पन्न करते िैं। इसीभलए यि किा र्ाता िै कक उत्पन्न पदाथ शका परररर्ाण उनके हिस्सों अथवा उनकी संख्या अथवा उनकी अवस्था पर तनभरश करता िै।[660] ज्यों-ज्यों द्वयणुकों की संख्या बढ़ती िै, त्यों-त्यों उसके अनुसार उत्पन्न पदाथ शके परररर्ाण रें भी वृद्धध िोती िै। परर्ाणुओं के संयोग से उत्पन्न वस्तुएं केवल सरिूर्ात्र निीं, अपपतु पूण शइकाइयां ंिैं। यहद िर् पूण शइकाई का प्रत्याख्यान करें तो िर्ारे सार्ने केवल हिस्से िी रिंगे,े जर्नके और छोटे-छोटे पवभार्न िोतेचलेंगे ेऔर अन्त रें िर् उन्िीं ंअदृश्य परर्ाणुओं तक पिुंच र्ाएंगे। इसी प्रकार यहद िर् पूण शइकाई का तनरेषेध करें तो िर् अदृश्य परर्ाणुओं से परे अन्य ककसी सिा को निींर्ान सकते। यहद यि किा र्ाय कक परर्ाणु ुअपने-आप रें अदृश्य िैं तथा परर्ाणुओं के संग्रि हदखाई दे अन्तररक्ष-र्ण्डल की वायु इस तनयर् का अपवाद िै, क्योंकक किा र्ाता िै कक यि अनेक परर्ाणुओं के पुर्ों से बनी िै र्ो

656
अलग-अलग तथा असंयुक्त अवस्था रें िैं, ककन्तु नैय्यातयक इस र्त से ेसन्तुष्ट निींि

657 न्यायकंदली, पृषूठ, 32।

658 कुछेक परवती वैरेपर्षक पवचारकों की यि सम्र्तत िै कक एक य्णुक तीन एकाकी अणुओं से भर्लकर बना िै। (भसद्धान्तर्ुक्तावली, पृषूठ 37; पूई, 'वैरेपर्षक भसस्टर्', पृषूठ 130-31

659 र्ादेवभटूट का र्त िै कक द्वयणुक अतीजन्द्रय निींि। 'दर्पदाथी' का भी यि र्त िै। देणखए पूई, 'वैरेपर्षक कफलासफी' और 'न्यायकोर्', पृषूठ 350।

660 वैरेपर्षकसूत्र, 7 : 1, 9।

 सकते िैं रैसे ेकक एक अकेला योद्धा अथवा एक अकेला वृकूष हदखाई न पडेककन्तु एक पूरी सेना अथवा रंगल को

अवश्य देखा रा सकता िै; तो उिर रें न्याय का किना िै कक यि उपरा तनदोर्ष निीं, क्योंकक योद्धा और वृकूष परराणु ुरखतिैं और इसीभलए हदखाई देते िैं, र्बकक परराणु ुपररराण निींरखते।"[661] पूण शइकाई हिस्सों से भभन्न एक वस्तु (अथान्शतर) िै, जर्स प्रकार कक संगीत स्वरों के रोड से बढ़कर कुछ वस्तु िै।'[662] इसके अततररक्त, यहद पूण शइकाई न िोती तो इस प्रकार के वाक्यों का कुछ अथ शन िोता कक 'वि एक कुरसी िै', 'यि एक नुष्य िै' आहद-आहद। पूण शइकाई और उसके हिस्से ेपरस्पर सर्वाय-सम्बन्ध से सम्बद्ध िैं।'[663]

हिन्दू ूपवचारधारा का कोई भी सम्प्रदाय ऐसा निीं िै जर्सने कालचि (युगों) रूपी प्रकल्पना पर अथवा सृजृष्ट-रचना तथा पवनार् (प्रलय) के िर्: आते ेरिने वालेपवश्व ब्रह्माण्ड के कालों पर, जर्स पर पिले िी बिुत गम्भीर पवचार िोता आया िै, कफर सेपवचार न ककया िो। प्रर्स्तपाद ने इन प्रकियाओं का वणनश ककया िै।"[664] ब्रह्मा के हदन की गणना के अनुसार र्ब सौ वर्ष शिो राते िैं तो उसकी रुजक्त का सर्य आता िै। उन सब रीवधारी प्राणणयों को, रो अपने र्न्-र्न्र्ान्तर के रर्ण के कारण बेचैन िो गए िैं, पवश्रार् देने के भलए सवोपरर भगवान् ् (रो ब्रह्म से भभन्न िै) सर्स्त सृजृष्ट को कफर से सर्ेटने ेकी इच्छा करता िै। इस इच्छा के उदय का आर्य िोता िै कक आत्राओं के उन सब अदृष्ट कारणों को रो प्राणणयों के पवपवध रीरों, इजन्द्रयों तथा रािभूतों के कारण िैं, रोक देना। उस सर्य भगवान् ्की इच्छा सेआत्राओं परराणुओंका पाथक्शय िो राता िै। र्ब परराणुओं के सरू्ि नष्ट िो राते िैं तो उनसे ेतनभर्तश पदाथ शभी नष्ट िो राते िैं। तब कफर पररूप भौततक द्रव्यों, अथात् शु ्पृथ्वी, र्ल, अजग्न तथा वायु का एक-दूसूरे के पश्चात् ्िर्: पवलय िोता िै। परराणु ुएकाकी रि राते िैं तथा आत्राएंभी अपनेपपछले ेपुण्य व पाप की क्षर्ताओं से व्याप्त अकेली रिती िैं। उसके पश्चात् ्कफर प्राणणयों को को उ उनके पूवकशर्ों का फलोपभोग कराने के भलए, सवोपरर भगवान् ्सृजृष्ट-रचना की इच्छा करता िै। ईश्वर की इच्छा से वायु के परराणुओं रें, उन अदृष्ट प्रवृपियों के कारण रो सब आत्राओं रें काय शकरना प्रारम्भ करती िैं, गतत उत्पन्न िोती िै। वायु के परराणु द्वयणुक तथा त्र्यणुक और अन्त रें रिान् ्वायु को बनाने के भलए परस्पर संयुक्त िोते िैं, और रीघ्र िी रिान् ्रल प्रकट िोता िै, उसके बाद रिान् ्पृथ्वी और तब रिान् ्अजग्न। ईश्वर के पवचाररात्र (अभभध्यानरात्र) सेअजग्न तथा पृथ्वी के परराणुओंसे ब्रह्माण्ड उत्पन्न िोता िै, और उसके अन्दर भगवान र्ित् ्तथा ब्रह्मा को रचता िै। उस ब्रह्मा के सुपुदश िी भपवष्य रें सृजृष्ट रचना का काय शरिता िै। आत्राओं की श्रेणणयों रें ब्रह्मा सबसे रीर्षकशोहट रें िै, और इस पद को वि तब तक संभालेरिता िै र्ब तक उसके पुण्यकर्ों का सार्थ्य शबना रिता िै। यि र्ित् ्सर्ग्ररूप रें ब्रह्मा की रचना निीं, और न ऐसा िी िै कक उसके पुण्यकर् शके तनःरेर्ष िो राने के पररणार्स्वरूप यि र्ित् ्स्वतः नष्ट िो राएगा। यि उिरदातयत्व सवोपरर भगवान् ्का िै। ब्रह्मा, ज्ञान की उच्चतर् रात्राओं, प्रराान्तधचिता तथा र्जक्त के कारण, अपनेर्ानस पुत्रों, अथात्श ्प्रराापततयों, र्नुओं, देवताओं, पपतरों, ऋपर्षयों तथा चारों वणों एवं अन्य सब रीपवत प्राणणयों की उनकी

661 न्यायभाष्य, 4: 2,14।

662 न्यायसूत्र, 21, 35-36 ।

663 न्यावभाध्य और न्यायवाततकश , 4: 2, 12।

664 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि पृष्ठ 48 से आगे।

 अपनी-अपनी प्रभावात्क क्षर्ताओंके अनुसार सृजृष्ट करता ि ै।'[665] श्रीधर के अनुसार, अनन्तरूप से

रि्ान् ्और

अपररवतनशर्ील तीन द्रव्य, अथात्श ्देर्, काल और आकार्, सृजृष्ट-रचना तथा पवनार् की प्रकियाओंसे अछूते रिते िैं। पवश्व की नवीन रचना नार् की कोई वस्तु निीं। प्रत्येक पवश्व अनाहद श्रृंखंलाओं र्ें से एक ि ै। र्त् ्की सृजृष्ट इस प्रयोर्न से िोती ि ै कक चेतनता-सम्पन्न र्ीवात्र्ाएं,ं अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार अनुभव प्राप्त कर सकें। प्राणणयों की र्ूलभूत र्क्तयों को वास्तपवक रूप देनेका नार् िी पवश्व ि ै और इसकी रचना उनके कर्ों के कारण तथा उन्िें अनुभव कराने के प्रयोर्न से िुई ि ै। ककसी भी सर्य का सबसे उच्चकोहट का प्राणी ब्रह्मा ि ै और किा र्ाता ि ै कक सर्स्त पवश्व उसी के अनुभव के भलए बना ि ै। ककन्तु सम्पूण शयोग्यता एक अजर्तश वस्तु ि ै और इसीभलए उसका आहद भी ि ै और अन्त भी ि ै। अतएव ब्रह्मा की योग्यता भी अनन्त निीं। र्ब उसका अन्त िोगा तो पवश्व का भी अन्त िो र्ाएगा, ऐसा किा र्ाता ि ै परन्तु अन्य व्यजक्तयों के पवना भुगते िुए अनुभव र्ेर् रि र्ाएंगे। यहद एक ब्रह्मा की योग्यता का अन्त िो र्ाएगा िो दूसूरा ब्रह्मा उसके स्थान पर आकर उच्च आत्र्ाओं की संख्या र्ें अधधष्ठाता का पद संभाल लेगा। इस प्रकार पवश्व के पूव शऔर पश्चात् ्एक पवश्व रिता ि ै, और यि सृजृष्ट का प्रवाि अनन्तकाल तक चलता रिता ि ै।[666]

परर्ाणु र्ो द्वयणुकों के भौततक कारण िैं, तनत्य िैं और इसीभलए नष्ट निीं िो सकते। द्वयणुक र्ूल परर्ाणुओं के नार् सेनिीं, अपपतु र्ूल परर्ाणुओं के संयोग के नार् से नष्ट िोते िैं।[667] प्राचीन नैय्यातयकों का र्त ि ै कक कारणों का पवनार् िोनेसे कायर्ों का भी तुरन्त पवनार् िो र्ाता ि ै। 'द्वयणुक' अपवादस्वरूप ि ै, र्िां ं संयोगर्ात्र का पवनार् िोता ि ै ककन्तु उनके भौततक कारणों का पवनार् निींिोता। ककन्तु परवती नैय्यातयकों का र्त ि ै कक िर अवस्था र्ें संयोग नष्ट िोता ि ै। यि र्त अधधक सन्तोर्र्नक ि ै, क्योंकक पवनार् का अथ शवस्तुओं का अपने घटकों (अवयवों) र्ें उिरोर पवघटन िी ि ै। यहद पवनार् की प्रकिया की पुनरावृपि िोती ि ै ककन्तु रचना की प्रकिया का पवपरीत-भाव निींिोता, और यहद हिस्सों के नार् से काय शका पवनार् िो र्ाता ि ै, तो इन प्रकियाओं के र्ध्य व्यवधान रिेगा, अथात्श ्हिस्सों के नार् के पश्चात् ्भी काय शअवभर्ष्ट रि र्ाएंगेऔर यि सोचना असम्भव िोगा कक इस र्ध्यवती सर्य र्ें काय शकिां ंरिेगा। हिस्सों र्ें वि रि निींसकता, क्योंकक वे तो पवलुप्त िो चुके ि ैं। परर्ाणुओं र्ें भी निींरि सकता क्योंकक कायों के साथ उनका सीधा सम्बन्ध निीं।'[668]

---

665 फैडडगन सृजृष्ट-रचना तथा प्रलय के िर्ों र्ें एक र्ित्वपूण शभेद को लक्ष्य करता ि ै। अजग्न का तनर्ाणश वायु की रचना के तुरन्त पश्चात् ्िोनेके स्थान र्ें सबसे अन्त र्ें िोता ि ै। "सृजृष्टकताशका िेतु िर्् बदलनेर्ें यि था कक अजग्न की सृजृष्ट सृजृष्ट-संबंधी अण्ड, अथात्श ्हिरण्यगभ शकी सृजृष्ट, से ठीक पिले िो, क्योंकक हिरण्यगभ शका, र्ो सोनेका ि ै, तनर्ाणश अजग्न और पृथूवी के भर्श्रण से िुआ ि ै। इस प्रकार पद्धतत के सार्ंर्स्य का भंग प्रचभलत पौराणणक पवचारों को अनुकूलता देनेके प्रयोर्न से

िुआ" (वैर्ेपर्षक भसस्टर्, पृषूठ 164)।

666 उदयन आत्र्तत्त्वपववेक।

667 परर्ाणुद्रव्यसंयोगनार्।

668 वैर्ेपर्षक के अनुसार, दो प्रकार के पवनार् पवचार र्ें आ सकतेिैं। एक अवान्तरप्रिय अथाशत् ्बीच का प्रलय, जर्सर्ें केवल स्पर् शर्ें आनेवाले ठोस उत्पन्न पदाथ शपवनष्ट िोते िैं, और एक र्िाप्रलय अथवा सावभशौर् पवनार् जर्सर्ें सब वस्तुएं भौततक तथा अभौततक परर्ाणुरूप र्ें लौट र्ाती िैं। सृजृष्ट तथा प्रलय तनत्य की क्षर्ता तथा पवकास (स्पष्टीकरण) के रूप िैं। तुलना कीजर्ए र्िानारायण उपतनर्षद्, 5; कीथ इजण्डयन लॉजर्क एण्ड ऐटोभर्ज़्र्, पृषूठ 216।

र्ंकराचाय शअनेक युजक्तयों के आधार पर परर्ाणुवाद की आलोचना करते िैं। प्रलयकाल र्ें गतत का आरम्भ पवचार र्ें निींआ सकता। र्नुष्य के प्रयत्न से यि गतत निीिंिो सकती, क्योंकक र्नुष्य का तो उस सर्य अजस्तत्व िी निींथा। यहद अदृष्टरूपी तत्त्व को उसका कारण र्ाना र्ाए तो प्रश्न उठता िै-अदृष्ट का तनवास किां ◌ं ◌ै? यहद किा र्ाए कक वि र्ीवात्र्ाओं र्ें रिता िै तो वि परर्ाणुओं को कैसे ◌ेप्रभापवत करता िै? यहद परर्ाणुओं र्ें रिता िै तो बुद्धध-सम्पन्न न िोनेसे वि गतत निींदे सकता। यहद कल्पना की र्ाए कक र्ीवात्र्ा परर्ाणुओं के अन्दर सर्वाय-सम्बन्ध सेरिती िै और अदृष्ट उसके साथ संयुक्त रिता िै, तो तनत्य कियार्ीलता िोनी चाहिए, र्ो पवघटन की अवस्था के पवपरीत िोगा। इसके अततररक्त, यि किा र्ाता िै कक अदृष्ट का काय श आत्र्ाओं को उनके कर्ों का र्ुभार्ुभ फल भोग कराना िै तथा पवश्व की उत्पपि अथवा पवलय से उसे ◌ेकुछ प्रयोर्न निीिं। परर्ाणुओं के परस्पर संयुक्त िोनेके सम्बन्ध र्ें र्ंकराचाय शकहठनाइयां उपजस्थत करते िैं। यहद परर्ाणु ◌ुपूणरूशप र्ें एक-दूसूरे के साथ संयुक्त िोते िैं तो एक-दूसूरे के अन्दर सर्ा र्ाने से परररर्ाण निींबढ़ सकता। तब वस्तुओं की उत्पपि भी सम्भव निीिंिो सकती। यहद पूणरूशप र्ें संयुक्त न िोकर परर्ाणु ◌ुहिस्सों र्ें संयुक्त िोते िैं, तो परर्ाणुओं को हिस्से ◌ेवाला र्ानना पडेगा। इसके अततररक्त यि भी सर्झना कहठन िोगा कक परर्ाणुओं के भर्श्रण देर्ीय गुणों को किां ◌ंसे प्राप्त करते िैं, क्योंकक परर्ाणुओं की इकाई र्ें वे निीिंिोते। परर्ाणुओं के संयोग र्ें वे गुण किां ◌ंसे आए र्ो स्वयं परर्ाणुओंर्ें पिले ◌ेनिींथे? और यि सर्झना भी सरल निीिं कक सूक्ष्र् और अपवनश्वर परर्ाणुओं र्ें रंग तथा उसके सर्ान और गुण किां से आते िैं? कफर, स्थूतरूशप तत्त्वों, यथा अजग्न, वायु, पृथूवी, र्ल और आकार्र्ें से कुछ र्ें अन्यों से अधधक गुण रिते िैं। र्िां ◌ंर्ल र्ें रंग, रस और स्पर् शगुण िैं, विां वायु र्ें कंवल स्पर् शगुण िी िै। ये गुण स्वयं परर्ाणुओं र्ें भी ककसी-न-ककसी रूप र्ें िोनेचाहिए। इस प्रकार र्ल के परर्ाणुओं र्ें वायु के परर्ाणुओं से अधधक गुण िोने चाहिए। ककन्तु गुणों र्ें वृद्धध िोने का तात्पय शिै कक उनके आकार र्ें भी वृद्धध िोगी, और ऐसी अवस्था यि कथन कक सब परर्ाणु ◌ुएक िी आकार के िैं, असंगत िो र्ाएगा। आत्र्ा, र्न और परर्ाणुओंके परस्पर संयोग र्ें भी कहठनाई िै, क्योंकक ये सभी हिस्सेरहित िैं। कफर, परर्ाणुओं को या तो सदा कियार्ील, या सदा तनजष्िय अथवा दोनों िी प्रकार का, या दोनों र्ें से एक प्रकार का भी निींर्ानना िोगा। यहद उन्िेंसदा कियार्ील र्ाना र्ाए तो उनका पवघटन असम्भव िोगा, और यहद वे सदा तनजष्िय िों तो सृजष्ट-रचना निीं ◌ंिो सकती। एक साथ दोनों प्रकार का िोना परस्पर पवरोधी िै। और यहद कियार्ील तथा तनजष्िय दोनों र्ें से कुछ भी निीिं, तो कियार्ीलता तथा तनजष्ियता दोनों िी अवस्थाओंके भलए प्रवतकश कारणों की कल्पना करनी िोगी और ये कारण, अदृष्ट तत्त्व के सर्ान परर्ाणुओं के साथ स्थायी रूप सेसम्बद्ध िोनेके कारण, या तो तनत्य कियार्ीलता या तनत्य तनजष्ियता को उत्पन्न करेंगे।'[669]

आधुतनक पवचारधारा परर्ाणुवाद की प्रकल्पना र्ें सन्देि प्रकट करती िै। वैर्ेपर्षक का यि र्त कक संसक्त अथवा पवस्तृत पदाथ शअसंख्य, असंसक्त तथा परररभर्त इकाइयों से भर्लकर बने िैं, एक कोरी

669 र्ांकरभाष्य ,2/2 14।

कल्पनार्ात्र ि◌ै; क्योंकक कोई भी यथाथ शवस्तु इन इकाइयों तक सीभर्त र्नीीं। छोटी-से-छोटी घटना की भी एक अवधध ि◌ोती ि◌ै, और उसर्ें इस प्रकार की गणणतर्ास्त्रीय इकाइयांअसंख्य रिती ि◌ैं।

ऐसा कि्ा र्ाता ि◌ै कक वैर्ेपर्षक की उक्त प्रकल्पना को यूनानी पवचारधारा से प्रेरणा भर्ली और इसका आपवभावश सम्भवतः उस काल र्ें ि◌ुआ र्बकक भारत पजश्र्ी देर्ों के सम्पकश र्ें आया, र्िां ◌ंयि प्रकल्पना पवस्तृतृरूप र्ें प्रचभलत थी।[670] ि◌र्ारे ज्ञान की वतर्शान अवस्था र्ें इस पवर्षय र्ें कुछ भी तनजश्चत रूप से कि्ना कहठन ि◌ै ककन्तु परर्ाणुवाद की प्रकल्पना के सम्बन्ध र्ें यूनानी तथा भारतीय पवचारों र्ें भसवाय इसके और कोई सर्ानता र्नीींपाई र्ाती कक दोनों परर्ाणु ◌ुको अदृश्य इकाई र्ानते ि◌ैं। डेर्ोिहटस के र्त से, परर्ाणुओं र्ें परस्पर पररर्ाण सम्बन्धी भेदे तो ि◌ै ककन्तु गुणात्र्क भेद र्नीीं। वि र्ानता ि◌ै कक परर्ाणु ◌ुअनन्त गुणों से सवथशा रहित और अपवभाज्य ि◌ैं, ककन्तु आकृतत, पररर्ाण, गुरुत्व, जस्थतत तथा व्यवस्था के सम्बन्ध र्ें परस्पर भभन्नता रखते ि◌ैं। कणाद के र्त र्ें परर्ाणु ◌ुभभन्न-भभन्न आकार के ि◌ैं, प्रत्येक अपने र्ें एक पवभर्ष्टता रखता ि◌ै। पररणार्स्वरूप, पदाथों र्ें गुणों के कारण र्ो परस्पर भेद ि◌ै वे यूनानी पवद्वानों की दृजष्ट र्ें न्यून ि◌ोकर पररर्ाण-सम्बन्धी दर्ों र्ें पररणत ि◌ो र्ाते ि◌ैं, र्बकक वैर्ेपेर्षक र्ें इसके पवपरीत ि◌ै। इससे पररणार् यि तनकलता ि◌ै कि्क भारतीय दार्तशनक इस यूनानी र्त को स्वीकार र्नीींकरता कक गुण परर्ाणु ◌ुर्ें अन्ततनहशित र्नीीं। डेर्ोकिहटस तथा एपपक्यूरस के र्त र्ें परर्ाणु स्वभाव से गततर्ान ि◌ैं, ककन्तु कणाद के र्त र्ें वे रु्ख्यतः स्वयं र्ें तनजष्िय ि◌ैं। एक अन्य र्ौभलक भेद दोनों र्ें यि ि◌ै कक र्िां ◌ंडेर्ोकिटस परर्ाणुओं से आत्र्ाओं का बनना सम्भव र्ानता ि◌ै, विांवैर्ेपेर्षक आत्र्ाओं तथा परर्ाणुओं को तनतान्त भभन्न र्ानता ि◌ै और इसके र्त र्ें दोनों ि◌ी सर्ान रूप से तनत्यसिाएं ◌ंि◌ैं। यूनानी परर्ाणुवाहदयों ने पवश्व के एक यन्त्रवादी पवचार को पवकभसत ककया और ईश्वर को इस र्गत् ◌्सेतनकाल बिार ककया। परर्ाणु,◌ु र्ो संख्या र्ें अनन्त ि◌ैंऔर आकृततयों र्ें भभन्न-भभन्न प्रकार के ि◌ैं, अनन्त आकार् र्ें सेधगरते ि◌ैं और इस प्रकिया र्ें एक-दूसूरे के साथ संघंर्ष शर्ें आते ि◌ैं, क्योंकक बृिदाकार परर्ाणु ◌ुलघुतर परर्ाणुओं की अपेक्षा अधधक र्ीघ्रता के साथ गतत करते ि◌ैं। इस प्रकार एक प्रकार के करते ि◌ैं। कि्ा र्ाता ि◌ै कक परर्ाणुओं की गततयों र्ें पररवतनश भंवरों र्ें पडकर वे सर्ूिों तथा लोकों का तनर्ाणश एक अतनजश्चत पवधध सेिोतेिैं।'[671] यद्यपप प्रारजम्भक वैर्ेपर्षकों ने स्पष्टरूप से ईश्वर की प्रकल्पना को स्वीकार र्नीींककया तो भी उन्िोंनेधर् श(अदृष्ट) को अपनेसर्स्त दर्नश का रु्ख्य भसद्धान्त करके र्ाना ि◌ै। इस प्रकार वैर्ेपर्षक के परर्ाणुवाद र्ें र्िांधाभर्कश प्रवृपि का पुट पाया र्ाता ि◌ै, विां ◌ंउसके प्रततरूप यूनानी दर्नश र्ें इसका सवथशा अभाव ि◌ै। इस प्रकार वैर्ेपर्षक-प्रततपाहदत परर्ाणुवाद र्ें कुछ ऐसेस्पष्ट लक्षण देखे र्ाते ि◌ैं र्ो यूनानी दर्नश के प्रभाव के कारण र्नीींिो सकते। प्रारजम्भक भारतीय पवचारधारा र्ें परर्ाणुवुाद की प्रकल्पना की पूववशतततशा सरलतापूवकश खोर्ी र्ा सकती ि◌ै।

अभी कुछ सर्य पूव शतक भौततक पवज्ञानर्ास्त्र र्ें भी परर्ाणुवाद की प्रकल्पना का प्राधान्य था ककन्तु अभभनंक प्रगतत उक्त परर्ाणुवाद के अनुकूल र्नीीं ◌ंि◌ै। अब पुंर् अपररवतनशीय पररर्ाण र्नीींरि गया ि◌ै, बजल्क

---

670 कीथ: इजण्डयन लॉजर्क एण्ड एटोभर्ज्र्, पृषूठ 17-18।

671 वालेस एपपक्यूररयतनज्र्, पृषूठ 100।

 यि द्रुतुगतत से पररवतततश िोता िै। यि वैद्युत जर्क्त के अत्यन्त सूक्ष्र् केन्द्रों र्ें पररणत िोता िै, जर्न्िें कोई
र्ारीररक सिारा प्राप्त निीं िै, और र्ो अपेक्षाकृत पवस्तृत दूरूरयों र्ें बबखरे िुए िैंतथा इधर से उधर अत्यन्त द्रुतुगतत से उडते ेरिते िैं। उष्णता, प्रकार् और गतत र्ें भी, प्रकृतत से अलग, गुरुत्व पवद्यर्ान िै। अब पररर्ाणुओं को "इलेक्ट्रॉनों" (पवद्युदणुओं) की संतित र्ाना र्ानेलगा िै, और वे पवद्युदणु ुआकार् (ईथर) से अपना स्वरूप प्राप्त करते िैं। पररर्ाणु ुसौरर्ण्डल का एक लघुरूप िै, जर्सर्ें एक केन्द्रीय सूय शि, र्ो घूर्ता िुआ पुंर् िै और जर्सके चारों ओर छोटे-छोटे पवद्यदणु ुगुरुत्वाकर्षणश के तनयर् के अनुकूल उडते िैं और यि गुरुत्वाकर्षणश का भसद्धान्त िी पृथ्वी को सूय शके साथ सम्बद्ध रखता िै। पररर्ाणुवाद की पुरानी प्रकल्पना नवीन तथ्यों की व्याख्या करने र्ें असर्थ शि। तो भी पवज्ञान के क्षेत्र र्ें उक्त भसद्धान्त ने र्ो अभी तक पवर्य लाभ ककया उसे े देखते िुए र्ानना पडेगा कक यि एक सफल प्रकल्पना थी। पररर्ाणुवाद ने 'सवचेशतनवाद' को अपदस्थ कर हदया, क्योंकक र्िां ंतक पवज्ञान का सम्बन्ध िै, 'सवचेशतनवाद' तनःसार िोनेके कारण स्वयं परास्त िो गया। ककन्तु यूनान तथा भारत र्ें भी इस प्रकल्पना को आध्याजत्र्क दृजष्टकोण के आधार पर प्रस्तुत ककया गया था, पवज्ञान की कसौटी पर कसकर एक भसद्धान्त के रूप र्ें प्रस्तुत निींककया गया था। इस प्रसंग र्ें प्रत्यक्षर्ूलक प्रर्ाणीकरण सम्भव निीं िै।'[672] यि एक भावात्र्क योर्ना िै जर्सेप्राकृततक तथ्यों की व्याख्या के भलए स्वीकार ककया गया िै। यि पयवेशक्षण का पवर्षय न िोकर भसद्धान्त का प्रश्न िै। इस प्रकल्पना को इस आधार पर स्वीकार करने के भलए कि र्ाता िै कक पवश्व के अन्दर व्यवस्था तथा सार्ंर्स्य का पवचार इसको र्ानने के कारण िै। इसभलए र्ब िर् देखते िैं कक इसका व्याख्यात्र्क र्ित्त्व अब निींरिा तो कोई कारण निींिै कक अब क्यों न िर् इस प्रकल्पना का प्रत्याख्यान कर दें।

7. गुण

द्रव्य तो अपना स्वतन्त्र अजस्तत्व जस्थर रख सकता िै, ककन्तु गुण पवना आश्रय के निींरि सकता।[673] यि द्रव्य के अन्दर रिता िै और स्वयं अन्य गुणों को धारण निींकरता। कणाद गुण की पररभार्षा इस प्रकार करता िै कक गुण वि िै "जर्सका अधधष्ठान द्रव्य िो, जर्सर्ें और कोई गुण न िो, और र्ो ककसी भी संयोग अथवा पवयोर्न का कारण न िो और न जर्सका इनसे ेकोई सम्बन्ध िो।"[674] वैर्ेपर्षकसूत्र र्ें सत्रि गुण बताए गए िैं, अथात् श ्रूप, रस, गन्ध, स्पर्,श संख्या, पररर्ाण, पृथक्त्व (व्यजक्तत्व), संयोग, पवभाग, पूववशततत्शव (परत्व),

---

672 "पररर्ाणुवाद की प्रकल्पना को प्राचीन काल र्ें और आधुतनक काल र्ें, कभी भी ठीक-ठीक भसद्ध निींककया गया िै। सिी अथों र्ें, भसद्धान्त के रूप र्ें यि न तो कभी थी, न िै और न िटक सकती िै। यि केवल एक कल्पनार्ात्र िै। यद्यपप यि ठीक िै कक इसके सर्ान अन्य ककसी कल्पना र्ें वि क्षर्ता या िटकने ेकी जर्क्त निींिै जर्सके कारण भौततक तथा रासायतनक पवज्ञान दोनों को िी आर् तक आगेअनुसन्धान का एक तैयार क्षेत्र भर्लता गया। कफर भी यि िै एक कल्पना िी, और क्योंकक इसर्ें ऐसेतथ्यों के पवर्षय र्ें धारणाएं बना ली गई िैं र्ो र्ानवीय ज्ञान के क्षेत्र से सुदूर िैं, अतः इसकी धारणाएं कभी कसौटी पर कसो निींर्ा सकती" (गोम्पर्कृशत ग्रीक धथंकंस,श खण्ड I, पृष्ठ 353)।

673 सांख्यदर्नश र्ें गुण र्ब्द एक पवर्ेर्ष अथ शर्ें प्रयुक्त िुआ िै।

674 1:1/1 16। देणखए प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 94 ।

पश्चाद्धतततत्शव (अपरत्व), बुद्धध (ज्ञान), सुख, दुुःख, इच्छा, द्वेर्ष और प्रयत्न।'[675] प्रर्स्तपाद उक्त सूची र्ें और सात गुणों को र्ोडता ि ै और वे ये िैं गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेि (जस्नग्धता), धर्,श अधर्,श ब्दद और संस्कार।[676] लघुता, र्ृदुता और कठोरता को भी गुणों र्ें सजम्र्भलत करने के प्रयत्न ककए गए, ककन्तु उन प्रयत्नों र्ें सफलता निीं भर्ली, क्योंकक लघुता केवल गुरुता का अभाव ि,ै और र्ृदुता एवं कठोरता केवल संयोग की भभन्न-भभन्न र्ात्राओं को दर्ातशी िैं।"[677] नव्य नैय्यातयक पूववशततत्शव, पश्चाद्धतततत्शव और व्यजक्तत्व को छोड देते िैं क्योंकक इनर्ें से पिले ि दो देर् और काल पर तनभरश करते िैं और व्यजक्तत्व अन्योन्याभाव ि।ै गुणों की सूची र्ें र्ानभसक तथा भौततक दोनों प्रकार के गुण सजम्र्भलत िैं।

तनत्य द्रव्यों के र्ो गुण िैंवे तनत्य किे र्ाते िैं, और अतनत्य द्रव्यों के गुण अतनत्य किे र्ाते िैं। ऐसे गुण र्ो दो या दो से अधधक द्रव्यों र्ें पाए र्ाते िैं, सार्ान्य गुण किलातेिैं, तथा र्ो एक िी द्रव्य र्ें रिते िैं, पवर्ेर्ष गुण किलाते िैं। रूप, रस, गन्ध, जस्नग्धता, प्राकृततक तरलता, बुद्धध, सुख, दुुःख, इच्छा, द्वेर्ष, प्रयत्न, धर्,श अधर्,श संस्कार और ब्दद पवर्ेर्ष गुण िैं र्ो अपनेगुणी पदाथों को अन्यों से पवभर्ष्ट करके प्रस्तुत करते िैं। संख्या, परर्ाण, व्यजक्तत्व, संयोग, पवभाग, पूववशततत्शव, पश्चाद्धतततत्शव, गुरुता, कृबत्रर् तरलता, द्रुतुगतत सार्ान्य गुण िैं।'[678] ये गुण सब द्रव्यों र्ें सर्ान िैं और अपनेतनर्ी स्वरूप र्ें र्नोगत गुण िैं। वे ऐसे पवर्षयतनष्ठ निीं ि र्ैसेकक अन्य गुण िैं। उदिारण के रूप र्ें, संख्या को पवर्षयतनष्ठ गुण सर्झा गया ि।ै एक िी पदाथ शएक या अनेक रूप र्ें देखा र्ा सकता ि।ै संख्या, परर्णार्, व्यजक्तत्व, संयोग और पवभाग सब द्रव्यों र्ें पाए र्ाते िैं। काल और देर् र्ें तो अन्य कोई गुण निीं, ककन्तु आकार् र्ें ब्दद गुण भी ि।ै र्न र्ें, र्जसे र्ूतरूशप र्ाना र्ाता ि,ै परर्ाणुओं से बने द्रव्यों के सात गुण िैं और द्रुतु गतत भी ि।ै आत्र्ा र्ें पांच सार्ान्य गुण िैं, और नौ गुण पवर्ेर्ष ि,ैं यथा बुद्धध, सुख, दुुःख, इच्छा, द्वेर्ष, प्रयत्न, धर् शऔर अधर् शऔर र्ानभसक प्रभावोत्पादक क्षर्ता। ईश्वर र्ें पांच सार्ान्य गुण िैं और इनके अततररक्त ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न भी िैं।[679] गुणों र्ें एक भेदे और ककया गया ि ै अथात्श ुएक वे जर्नका प्रत्यक्ष ज्ञान िो सकता ि,ै दूसूरे वेर्ो प्रत्यक्ष द्वारा निींर्ाने र्ा सकते। धर् शऔर अधर्,श गुरुता तथा क्षर्ता प्रत्यक्ष के पवर्षय निीं। एक अन्य प्रकार से भी गुणों र्ें भेद ककया र्ा सकता ि,ै र्ैसे ेरूप, रस, गन्ध और स्पर् शतथा ब्दद। ये केवल एक िी इजन्द्रय के द्वारा र्ानेर्ा सकते िैं, और दूसूरे वे िैं, र्ैसे ेसंख्या, परर्ाण, व्यजक्तत्व, संयोग और पवभाग, पूववशततत्शव, पश्चाद्धतततत्शव, तरलता, जस्नग्धता और गतत, जर्नका ज्ञान दो इजन्द्रयों के द्वारा िोता ि।ै आत्र्ा के गुण-यथा ज्ञान, सुख-दुुःख, इच्छा, द्वेर्ष, प्रयत्न-र्न के द्वारा र्ाने र्ा सकते िैं।'[680]

675 1:1,6 ।

676 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 10।

677 तकशसंग्रिदीपपका, 4 ।

678 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 95-96।

679 र्ायापररच्छेद, पृष्ठ 25-34।

680 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 96।

रूप ऐसा गुण िै जर्सका बोध केवल आंख द्वारा िोता िै और गुण पृथ्वी, र्ल, और अजग्न र्ें पाया र्ाता ै, यद्यपप पपछले ोदो र्ें यि स्थायी रूप र्ें रिता िै। पृथ्वी र्ें ताप देने से इस गुण र्ें पवपवधता आती िै। रूप (रंग) भभन्न-भभन्न िैं, और सात प्रकार के र्ानेगए िैं, यथा श्वेत, नीला, पीला, लाल, िरा, भूरा और धचत्र-पवधचत्र। रस उन पदाथों का गुण िै जर्नका बोध केवल जह्वा के द्वारा िोता िै। पृथ्वी और र्ल र्ें रस िै। इसके पांच प्रकार स्वीकार ककए गए िैंर्ीठा, खट्टा, चरपरा, कसैला और ततक्त (कडुआ)। गन्ध एक पवर्ेर्ष गुण िै जर्सका बोध केवल नाभसका द्वारा िी िो सकता िै। यि या तो सुगन्ध िोती िै अथवा दुगुन्शध िोती िै, और यि पृथ्वी का गुण िै। स्पर् शऐसा गुण िै र्ो केवल त्वचा के द्वारा िी र्ाना र्ा सकता िै। स्पर् शतीन प्रकार का र्ाना गया िै, ठण्डा, गरर् और न ठण्डा न गरर्। इससे िर्ें यि प्रतीत िोता िै कक स्पर् शयथाथ शर्ें तापर्ान िी िै। यि पृथ्वी, र्ल, अजग्न और वायु र्ें रिता िै। कभी-कभी खुरदरापन, कठोरता, धचकनिाट, और कोर्लता भी स्पर् शके अन्दर सजम्भलत कर भलए र्ाते िैं।'[681] बर्द आकार् का गुण िै।

संख्या वस्तुओं का ऐसा गुण िै जर्सके कारण िर् एक, दो, तीन र्ैसे ोब्दों का व्यविार करते िैं। इन संख्याओंर्ें एकत्व तनत्य भी िै और अतनत्य भी, ककन्तुअन्य सब संख्याएं ंअतनत्य िी िैं। र्ब िर् घडे को देखते ो ैं तो िर्ें एकत्व अथवा दृष्ट पदाथ शकी एकता का ज्ञान िोता िै। र्ब िर् दूसूरा घडा देखः िैं तो उसके एकत्व का िी बोध िोता िै और उसर्ें द्पवत्व निींि। दो पदाथों के एकत्वों का एक साथ पवचार करने से द्पवत्व की भावना उत्पन्न िोती िै। पिली संख्ंया के अततररक्त बाकी सब संख्याओंका भाव पवचार की किया के कारण (अपेक्षाबुद्धध) िोता िै।'[682]

आयार् (पररभर्तत) वस्तुओं का वि गुण िै जर्सके कारण िर् वस्तुओंको र्ापतेिैंऔर उन्िें बडा या छोटा, लम्बा या हठगना, करके र्ानते िैं। तनत्य द्रव्यों र्ें आयार् भी तनत्यरूप से तथा अतनत्य द्रव्यों र्ें अस्थायी रूप से रिता िै। आकार् र्ें परर् र्ित्त्व िै, इसी प्रकार एक परर्ाणु ुर्ें परर् क्षुद्रता (पररर्ाण्डल्य) िै। अतनत्य द्रव्यों का आयार् संख्या, पवस्तार तथा उनके बनानेवालेहिस्सों की व्यवस्था से र्ाना र्ाता िै।[683] द्वयणुक सूक्ष्र् िैं, तथा अन्य सब पररभर्त पवस्तार वाले िैं।

पृथुक्त्व पदाथों के परस्पर-भेदे का आधार िै।'[684] यि स्वरूप र्ें यथाथ शिै, भावात्र्क निींि। र्ैसे ोद्रव्य र्ें इसका अधधष्ठान िोता िै उसी के अनुकूल यि तनत्य अथवा अस्थायी िोता िै। रि व्यजक्तत्व अतनत्य पदाथों

---

681 अथाल्येकृत तकशसंग्रि, पृष्ठ 155-56।

682 न्यायकन्दली, पृष्ठ 118-19; उपस्कार, 72, 8। िर्ेंन्याय का यि र्त िै कक द्पवत्व आहद एकत्व के सर्ान िी यथाथ शिैं, यद्यपप उनकी अभभव्यजक्त बोध के द्वारा िोती िै, विांवैर्ेपर्षक का र्त िै कक इन संख्याओं की बुद्धध द्वारा केवल अभभव्यजक्त िी निीं, बजल्क वैर्ेपर्षक यि भूल र्ाता िै कक र्ब तक केवल एक िी पदाथ शरिता िै तब तक एकत्व का पवचार भी उत्पन्न निींि सकता। द्पवत्य के पवचार की भांतत, इसेभी पवचार की प्रयोग की आवश्यकता िोती िै।

683 वैर्ेपर्षकसूत्र, 7:1,8-9 ।

684 वैर्ेपपकसूत्र, 7:2, 2 ।

र्ें भी रिता ि ै, विांपवर्ेर्षत्व तनत्य द्रव्यों का गुण ि ै। व्यजक्तत्व वस्तुओं की संख्या सम्बन्धी भभन्नताओं का प्रततपादन करता ि ै, ककन्तु पवर्ेर्षत्व वस्तुओं की गुणात्क पवर्ेर्षता का प्रततपादन करता ि ै।

संयोग और पवभाग[685], ि र्ें: र्ो वस्तुएं पिलेपृथृक् थीं उनके परस्पर र्ुडने को तथा र्ो पिले ेसंयुक्त थीं उनके पृथृक् ि ोने को बतलाते ि ैं। संयोग ककसी एक पदाथ शकी गतत र्ें ि ोता ि ै, र्ैसे ेकक एक उडती ि ुई चील ककसी खम्भे ेपर आ बैठती ि ै, अथवा दोनों पदाथों की गतत से ि ोता ि ै, र्ैसे ेदो लडतिुेए र्ेढ़े एक-दूसूरे से भसर टकराते ि ैं। संयोग एक अन्य संयोग के द्वारा भी ि ोता ि ै। र्ब ि र् भलखते ि ैं तो कलर् और काग़ के संयोग से िाथ का संयोग भी काग़ के साथ ि ो र्ाता ि ै। क्योंकक संयुक्त ि ोनेवालेदो पदाथों का पिले ेपृथृक् रिना आवश्यक ि ै, इसभलए दो सवव्शयापक पदाथों का परस्पर संयोग निींि ो सकता, क्योंकक वे एक-दूसूरे से कभी अलग निींिाेते। इसी प्रकार पवभाग भी दो पदाथों र्ें से एक अथवा दोनों की गतत से अथवा ककसी अन्य पवभाग के द्वारा िाेता ि ै। पदाथों के अन्दर र्ो पररवतनश ि ोते ि ैं वेसंयोग और पवभाग के कारण िी ि ोते ि ैं।

पूववशततत्शव और पश्चाद्वततत्शव'[686] काल अथवा देर् र्ें दूरू या सर्ीप के भावों के एक सर्ान आधार ि ैं। इन दोनों को वस्तुतः गुण न किकर रूूत शपदाथों के परस्पर सम्बन्ध किना चाहिए। प्रर्स्तपाद स्वीकार करता ि ै कक ये सम्बन्ध तनरपेक्ष निीं ि ैं।[687]

सुख, दुखु, इच्छा, द्वेर्ष और प्रयत्न तथा ज्ञान आत्र्ा के गुण ि ैं। गुरुता पदाथ शका वि गुण ि ै जर्सके कारण पदाथों का झुकाव धगरतेसर्य भूभर् की ओर ि ोता ि ै।'[688] पृथूवी और र्ल के परर्ाणुओंु की गुरुता तनत्य ि ै, र्बकक पदाथों की गुरुता अतनत्य ि ै। तरलता, र्ो प्रवािरूपी किया का कारण ि ै, या तो सांभसद्धधक ि ै अथवा नैभर्पिक ि ै। र्ल स्वभावतः तरल ि ै, ककन्तु पृथूवी की तरलता पवर्ातीय ि ेतुओं के कारण आती ि ै।'[689] जस्नग्धता र्ल का गुण ि ै और संयुक्त ि ोनेतथा धचकनेपन आहद का कारण ि ै।[690] धर् शऔर अधर् शआत्र्ा के गुण ि ैं, जर्नके कारण यि सुख का अनुभव करती ि ै अथवा दुुःख भोगती ि ै। अदृष्ट वि र्जक्त ि ै र्ो आत्र्ाओं तथा वस्तुओं से उत्पन्न ि ुई ि ै और जर्सके कारण पवश्व की व्यवस्था सम्पन्न ि ोती ि ै और आत्र्ाएं अपने पूव शकर्ों के फलों का उपभोग करती ि ैं। वैर्ेपर्षक यि सर्स्त ताककशक कहठनाइयों को दूरू करने की अचूक और्षधध ि ै। जर्स ककसी की भी अन्य ककसी प्रकार से व्याख्या न की र्ा सके उसका कारण अदृष्ट बतला हदया र्ाता ि ै। सुई की गतत चुम्बक की ओर ि ोने, पौधों र्ें आद्रशता के प्रसार, अजग्न के ऊध्वगशारी ि ोने, वायु की गतत और परर्ाणुओंु की प्रारजम्भक गतत-

---

685 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृषूठ 139 से ेआगे, 151 सेआगे।

686 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृषूठ 164 से ेआगे।

687 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृषूठ 99।

688 वैर्ेपर्षकसूत्र, 5, 1, 7-18; 5 2, 3; प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृ ृ 263।

689 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृषूठ 264।

690 प्रर्स्तपादकृत पदाथसंशग्रि, पृषूठ, 266।

इन सबका कारण अदृष्ट ◌ी बताया गया ◌ै।[691] ककसी भी घटना की व्याख्या-पवर्षयक जर्ज्ञासा के सम्बन्ध रे्ं यि कि देना कक यि एक पंजंक्त के कारण ◌ुई पयाप्शत सर्झा र्ाता ◌ै। वैरे्पेर्षक की योर्ना रे्ं अदृष्ट नाटककारों के दैवी सिााय्य के सर्ान ◌ै, र्ो ऐसी अवस्था रे्ं र्बकक उलझन को दूरू करने का और कोई साधन उपलब्ध न ◌ो, स्वग शसे उतर कर दु:खद गांठं को काट कर सर्स्या को सुलझा देते ◌ैं। वैरे्पर्षक दर्नश की सीर्ाओंपर ◌ी अदृष्ट को अपना काय शकरने के भलए क्षेत्र भर्लता ◌ै। पवश्व का आहद, उसकी व्यवस्था तथा सुन्दरता, वस्तुओं का लक्ष्य और उपाय के रूप रे्ं एक-दूसूरे सेर्ुडना-सभी का कारण अदृष्ट बताया गया ◌ै। परवती पवचारकों ने र्ब ईश्वर की यथाथतशा को स्वीकार कर भलया, तो अदृष्ट को वि र्ाध्यर् र्ान भलया गया जर्सके द्वारा ईश्वर की इच्छा अपना काय शकरती ◌ै। संस्कार तीन प्रकार का ◌ै: वेग, र्ो ककसी पदाथ शको गतत रे्ं रखता ◌ै, भावना, जर्सके द्वारा आत्र्ा पूवकशाल रे्ं अनुभूत वस्तुओं को स्र्रण करने तथा पिचाननेयोग्य ◌ोती ◌ै, और जस्थतत-स्थापकता, जर्सके कारण वस्तु छोडी र्ाने पर भी कफर सेअपनी पिली जस्थतत रे्ं आ र्ाती ◌ै। पांच भौततक द्रव्यों रे्ं वेग कर् श अथवा गतत के द्वारा उत्पन्न ◌ोता ◌ै, और इसका प्रततकार स्पर् शयोग्य ठोस द्रव्यों के संयोग से ◌ोता ◌ै। जस्थतत-स्थापकता ऐसेद्रव्यों रे्ं रिती ◌ै र्ो भसकुडते और फैलते ◌ैं।

8. कर् शअथवा किया

कर् शअथवा गतत'[692] को पवश्व का एक ऐसा तत्त्व र्ाना गया ◌ै जर्सेऔर कर् र्नींककया र्ा सकता। यि न तो द्रव्य ◌ै और न गुण ◌ी ◌ै, बजल्क अपने-आप रे्ं एक स्वतन्त्र पदाथ शिै। तर्ार् गततयों का द्रव्यों से उसी तरि सम्बन्ध ◌ै र्ैसे ◌ेकक गुणों का ◌ै। केवल रे्दे यि ◌ै कक गुण द्रव्य का स्थायी स्वरूप ◌ै, र्बकक किया क्षणणक स्वरूप ◌ै। गुरुता र्रीर का एक गुण ◌ै ककन्तु उसका धगरना एक घटना ◌ै। वे गुण र्ो तनरन्तर अपना अजस्तत्व रखतेिैं, गुण किलाते ◌ैं, और जर्नका अजस्तत्व र्नींरिता ये कर् शकिलातेिैं। तनरन्तर रिने वाले ◌ेतथा घहटत ◌ोनेवाले गुणों रे्ं यि एक भेद ◌ै।'[693] कणाद कर् शकी पररभार्षा करते ◌ुए किते ◌ैं कक कर् शवि ◌ै र्ो एक ◌ी द्रव्य रे्ं रिता ◌ै, गुणों से रहित ◌ै तथा संयोग और पवभाग का सीधा तथा तात्काभलक कारण ◌ै।[694] गततयों के पांच प्रकार के भेद बताए गए ◌ैं, अथात् श ◌ऊध्वगशतत, अधोगतत, संकोच, पवस्तार तथा सार्ान्य गतत। कर् शअपनेसरलतर् रूप रे्ं तात्काभलक ◌ोता ◌ै, र्बकक वेगे एक तनरन्तर प्रवृपि ◌ै र्ो गततयों की श्रृंखला की द्योतक ◌ै। कर् शअपनेसभी रूपों रे्ं अस्थायी ◌ै, और अपने आधारभूत द्रव्य के परवती संयीग अथवा पवनार् के साथ ◌ी सर्ाप्त ◌ो र्ाता ◌ै। आकार्, काल, देर् तथा आत्र्ा यद्यपप द्रव्य ◌ैं, तथापप अरू्त शिोनेके कारण कर् शसे रहित ◌ैं।'[695]

---

691 .5:1, 15, 5/2 7, 13; 4: 2, 7। केप्लर नेग्रि-उपग्रिों की गततयों की व्याख्या करते ◌ुए उर्न्े अन्तररक्षब्यापी आत्र्ाओंके कारण उत्पन्न ◌ोनेवाली बताया hat g (केवल-कृत हिस्री आफ हद इण्डजक्टव साइंसेर्, तृतीय संस्करण, खण्ड ।, पृषूठ 315)।

692 कर् शसे तात्पय शयिा गतत से ◌ै, ऐजच्छक कर् शअथवा कायकशारणभाव के नैततक पवधान से र्नीं ◌ै।

693 तुलना काजर्ए, डब्यूई र्ानसन लीजर्क, खण्ड ।, पृषूठ 37।

694 वैरे्पर्षकसूत्र, । 1,7।

695 वैरे्पर्षकसूत्र, 5 |2 21, 21, 21। यि संदिास्पद ◌ै कक कणाद आत्र्ा को कर्पशविीन र्ानते ◌ैं।

9. सार्ान्य

र्ब ि र् द्रव्यों की अनेकता को स्वीकार कर चुके तो प्रकट ि कक उनर्ें पारस्पररक सम्बन्ध भी िैं। द्रव्यों को एक सर्ान िोना चाहिए क्योंकक वे सभी द्रव्य िैं, उन्िें एक-दूसूरे से भभन्न भी िोना चाहिए क्योंकक पृथृक् पृथृक् द्रव्य िैं। र्ब ि र् ककसी गुण को अनेक पदाथों र्ें तनहित पाते िैं तो उसे ि र् 'सार्ान्य' किते िैं। ककन्तु र्ब ि र् उस गुण को इन पदाथों को अन्य पदाथों सेपृथृक् करनेवाला पाते िैं तो ि र् उसे 'पवर्ेर्' किते िैं। ऐसा प्रतीत िोता ै कक कणाद 'सार्ान्य' को एक भावात्रक पदाथ शर्ानते िैं।[696] र्ब ि र् प्रर्स्तपाद के पास पिुंचते िैं तो भावात्रक पवचार का स्थान अधधक प्रचभलत यथाथवशादी भसद्धान्त ले लेता ि, जर्सके अनुसार सार्ान्य तनत्य ि, एक ि, और द्रव्य, गुण अथवा कर् शश्रेणी की अनेकों वस्तुओं र्ें रिता ि। संयोग तथा द्वैत अनेक वस्तुओं से घतनष्ठ रूप से सम्बद्ध िैं, ककन्तु वे तनत्य निीं। आकार् तनत्य ि ककन्तु अनेक वस्तुओं से सम्बद्ध निीं ि। अत्यन्ताभाव तनत्य ि और अनेक वस्तुओं का गुण भी ि, ककन्तु उनके साथ घतनष्ठ सम्बन्ध निीं रखता, अथात्श अनेक वस्तुओं का तनर्ाणश करनेवाला अवयव निीं। इसी प्रकार 'पवर्ेर्', 'सार्ान्य' निीं ि, क्योंकक उस अवस्था र्ें यि अपने स्वरूप को खो बैठेगा तथा तार्ान्य के साथ भर्धश्रत ककया र्ानेलगेगा। घतनष्ठ सम्बन्ध (सर्वाय) को सार्ान्य के साथ भर्धश्रत न करना चाहिए, क्योंकक उस अवस्था र्ें इसे सर्वाय के साथ सर्वाय सम्बन्ध चार आवश्यकता िोगी, और इस भसलभसले का किीं अन्त न िोगा। सार्ान्य, जर्सके धारण करने से पवभभन्न व्यजष्टयों को एक श्रेणी र्ें रखा र्ाता ि, अपने-आप र्ें एक स्वतक घाटाण ि। यि तनत्य ि, एक ि तथा अनेकों के अन्दर रिता ि (अनेकानुगतर्)।[697] यि एक सर्ान स्वरूप के साथ (अभभन्नात्रकर्) अपनी श्रेणी के सब पदाथों र्ें रिता ि (स्वपवर्षयसवगशतर्) तथा अनुवृपिप्रत्यय करानेका कारण ि।'[698] द्रव्य गुण और कर् शर्ें तो सार्ान्य

---

696 2:1 3 से आगे। देणखए 62. 16. प्रर्स्तपाद के अनुसार, गततयों का क्षेत्र केवल भौततक र्रीरों, परर्ाणुओं तथा र्न िी सीभर्त ि।

697 उदयन का किना ि कक र्िां केवल एक िी पवभर्ष्ट ि, र्ैसे आकार् (अभेद), र्िांव्यजक्तत्व का भेद निीं, र्ैसेघट तथा कलर् (तुल्यत्वर्) र्िां भभन्न-भभन्न वगों के पदाथों का सजम्श्रण (संकर) ि, र्िां अन्तपवीन पश्चाद्गतत (अनवस्था) ि, र्िांसार का पवरोध (रूपितान) ि, र्िांकोई सम्बन्ध निीं ि, विांकोई र्ातत अथवा सार्ान्य निीं। देणखए भसद्धान्तर्ुक्तावभल, पृ. 8।

अद्वैत र्ातत को स्वीकार निींकरता। यि स्वीकार करते िुए कक घटत्य स्वयंघडा िी ि, वि यि र्ाननेको उद्यत निीं कक र्ातत अपने-आप र्ें कुछ ि। देणखए वेदान्तपररभार्षा, 1।

698 तुलना कीजए क्लाकश की पररभार्षा से "पदाथ शका सार उस पदाथ शके स्वरूप का नार् ि र्ो इस वग शतथा नार् के अन्यान्य पदाथों र्ें सर्ान रूप से ि। यि एक ऐसा स्वरूप ि र्ो सब र्ें पूण शरूप से एक सर्ान ि और िर्ारी धारणा के अनुसार, सबर्ें केवल एक सर्ान िी निींबजल्क एक िी ि। यि ऐसा स्वरूप ि र्ो सब वस्तुओं के सर्ान गुणों का उदभव-स्थान ि, जर्सके कारण वे एक-दूसूरे के सर्ान हदखती िैं तथा िर्ारे र्न पर एक-सा प्रभाव डालती िैं... यि वि स्वरूप ि र्ो बुद्धध और केवल बुद्धध के द्वारा िी प्राप्त ककया र्ा सकता ि, क्योंकक यि अभौततक और अतीजन्द्रय रूप ि" (लौजर्क)।

र्ैन र्तानुयायी सार्ान्य को बिुरूप, अतनत्य तथा सीभर्त अथात् श असवंगत र्ानते िैं। यि वगशके सदस्यों का एकसर्ान लक्षण ि। न्याय-वैर्ेपर्षक तथा पूवशर्ीर्ांसा के र्त र्ें, सार्ान्य एक यथाथश तत्त्वरूप र्ें इस र्तुर्ें अपना व्यजक्त-तनरपेक्ष प्रततरूप रखता ि, र्ो पवभर्ष्टों से भभन्न ि, एक ि, तनत्य तथा सवगशत ि। र्ैतनयों * अनुसार, सार्ान्य की

 ि, ककन्तु सार्ान्य, पवर्ेर्ष, सर्वाय तथा अभाव र्ें कोई सार्ान्य नििीं िै। एक सार्ान्य अन्य सार्ान्य र्ें

निींरि

सकता। वृक्षत्व तथा घटत्त्व अपने-आप र्ें सार्ान्य िैंऔर इसभलए इन सब र्ें एक सर्ान रिने वाला अन्य कुछ निींिो सकता, क्योंकक उस अवस्था र्ें िर् एक प्रकार की अन्त रहित पश्चाद्गतत र्ें पड र्ाएंगे।

सार्ान्य दो प्रकार का िै, उच्चतर तथा तनम्नतर। उच्चतर् सार्ान्य सिा सम्बन्धी िै।'[699] इसके अन्तगतश अधधकतर् वस्तुएं आ र्ाती िैं। यि अपनेअन्दर सबको सर्ापवष्ट कर लेता िै ककन्तु स्वयं ककसी के अन्दर सर्ापवष्ट निींिोता। यि ककसी उच्चतर र्तत की उपर्तत नििीं िै। सत् ्िी अकेला यथाथ शसार्ान्य िै, और पवभर्ष्ट स्वयं िी यथाथ शपवर्ेर्ष िै। और इन दोनों के र्ध्य र्ें सार्ान्य-पवर्ेर्ष भर्लते िैं, र्ैसे ेकक द्रव्य और र्ेर्ष पदाथ शजनर्ें कुछ पररभर्त वस्तुएं आती िैं। ये पपछलेपदाथ शसवग्रिशी तथा ऐकाजन्तक बोधों का आधार िैं, क्योंकक वे उपर्तत और र्तत दोनों िैं।'[700] पवस्तार से सार्ान्य की कोहट का तनणयश िोता िै।

अखण्ड तथा सखण्ड र्ें और र्तत तथा उपाधध र्ें भी भेद ककया गया िै। र्तत वस्तु के साथ उत्पन्न िुई िै, प्राकृततक तथा तनत्य िै। उपाधध संयोगवर् तथा अन्यायी िै। प्रत्येक सार्ान्य-लक्षण र्तत नििीं िै। क्योंकक कुछ र्नुष्य अन्धे िैं, इसभलए िर् अन्धेपन को 'र्तत' के नार् से निींपुकार सकते। र्नुष्यों का वगीकरण र्ानव के रूप र्ें र्तत िै ककन्तु राष्रीयता अथवा भार्षा की दृजष्ट से उनका पृथृक् पृथृक् वगीकरण उपाधध िै। र्ानव र्तत र्नुष्यों को र्न्तुओं से पृथृक् करती िै, ककन्तुकाला वर्ष शकाले ेलोगों को काली भेडों या काले ेपत्थरों से अलग निींकर सकता।'[701] पिला वगीकरण स्वाभापवक िै, ककन्तु दूसूरा कृबत्रर् िै।

प्रर्स्तपाद के अनुसार, सार्ान्य व्यजक्तरूप पदाथों से स्वतन्त्र एक यथाथ शसिा िै। परवती वैर्ेपर्षक सार्ान्यों की स्वतन्त्र सिा के यथाथवशादी र्त को स्वीकार करते िैं, र्ो कि िा र्ाता िै कक प्रलयकाल र्ें भी पवद्यर्ान रिते िैं। इस र्त के अनुसार, सार्ान्य प्लेटो की काव्यर्यी कल्पना के पृथृक्, अतीजन्द्रय प्रर्ुख आदर्श्य रूपों के अनुकूल िै।[702] रिं ंकणाद ने पवचार की कियार्ीलता पर बल हदया और इसीभलए सार्ान्य

यथाथतशा पवभर्ष्टों के सादृश्य अथवा एकसर्ार् स्वरूप र्ें तनहित िै, और यि एक निींबजल्क अनेक िै तथा अनेक पवभर्ष्टों र्ें पवद्यर्ान िै, और अतनत्य िै अथातश पवभर्ष्ट के साथ-साथ उत्पन्न िोता िै और नष्ट िोता िै. सवातश नारा बजल्क उसी पवभर्ष्ट तक सीभर्त िै जर्सके अन्दर कक यि रिता िै।

699 वैर्ेपर्षकसूत्र, ।: 2, 4, 7-10, 17, प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृष्ठ 311 ।

700 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि पृष्ठ 11। देणखए यूई 'हद वैर्ेपर्षक कफलासफी', पृष्ठ 99-100 । तुलना कीजएं 'सप्तपदाथी', पृष्ठ 5 'सार्ान्यं परर् ्अपरं परापरत्वेतत पवपवधर् ्।

701 न्यायसूत्र, 2: 2,7। र्ैन दार्तशनक सार्ान्य का वगीकरण दो प्रकार का करते िैं, एक स्वजस्तका के सर्ान एक-दूसूरे को काटतिुए और दूसूरा खडा लम्बायर्ान। स्वजस्तका के आकार वाला अनेक अवस्थाओंर्ें एक सपान िै, र्बकक लम्वायर्ान एक ऐसा सादृश्य िै र्ो पदाथ शका पूव शतथा पश्चाद् अवस्याओं र्ें जस्थर रिता िै। पिला जस्थर रूप सार्ान्य िै और पपछला कियार्ील सादृश्य िै। देणखए प्रर्ाणनवित्त्वालोकालंकार, 5: 3-5।

702 अरस्तु से भलए गए तनम्नभलणखत उद्धरण सर्स्या की कहठनाइयों को सर्झनेर्ें सिायक िैं। अपने'र्ेटाकफजजकल' नार्क ग्रन्थ र्ें अरस्तु किता िै "दो वस्तुओं का श्रय यथाथश र्ें सुकरात को हदया र्ा सकता िै- आगर्नात्र्क अनुर्ान-सम्बन्धी तकश और सार्ान्य-पवर्षयक पररभार्षा, र्ो दोनों िी पवज्ञान के प्रारम्भ से ेसम्बद्ध िैं। ककन्तु सुकरात नेसार्ान्यों

तथा पवभष्ट के सम्बन्ध को अपवभाज्य बतलाया, विां प्रर्स्तपाद ने सार्ान्यों के तनत्यस्वरूप पर बल हदया।
इस प्रकार उसे ेबाध्य िोकर यि र्त स्वीकार करना पडता िै कक सृजृष्ट की रचना र्ें सार्ान्य पवभष्टों के अन्दर प्रवेर् करते िैं और अपनेभलए अस्थायी अभभव्यजक्तयों की सृजृष्ट करते िैं।[703] इस प्रकार की जस्थतत की कहठन

श ्तत्त्व अजस्तत्व का सम्बन्ध। प्रर्स्तपाद का र्त प्लेटो के सर्स्या िै सार्ान्य तथा पवभष्ट का सम्बन्ध, अथात्
यथाथवशाद के िी सर्ान िै, जर्सके अनुसार इजन्द्रयगम्य वस्तुओंका र्ो रूप िै वि पवचारों के सार्ान्य रूपों र्ें भाग लेने के कारण िै, और पवचार तनत्य तथा आत्र्तनभरश िै।ै प्लेटो के र्त[704] के पवरुद्ध जर्तनी भी आपपियां ंिैं वे यिांभी लागू िोती िैं-अथात्श ्यि कक यि सझई र्ें आना भी र्ुजश्कल िै कक ककस प्रकार बबना पवभाग अथवा गुणन के पवचार पवभष्टों र्ें भाग ले सकते िैं और पवभष्ट पवचारों र्ें भाग ले सकते िैं, तथा यि कक एक और भी उच्चतर सार्ान्य की आवश्यकता िै र्ो पवचार को उसके अनुकूल पवभष्टों के साथ सम्बद्ध कर सकें, और तथाकधथत तीसरे व्यजक्त की र्ुजक्त।

सार्ान्यों की पदाथशर्ास्त्र-पवर्षयक जस्थतत के प्रश्न पर भारत के पवभभन्न सम्प्रदायों र्ें भी र्ध्यकालीन यूरोप के सम्प्रदायों की भांतत घोर बिस िोती रिी िै। यि स्पष्ट िै कक वैर्ेपर्षक बौद्धों के इस र्त को सवथशा सिर्त निीं िैं कक सार्ान्यता का भाव केवल नार्र्ात्र िी िै। बौद्धों के र्त र्ें, सार्ान्यता का नार्ों के साथ िी सम्बन्ध िै[705] और उसकी पवर्षयतनष्ठ सिा कुछ निीं। पवभष्टों र्ें कोई ऐसेसर्ान लक्षण निींिै ेकक जर्न्िें सार्ान्य किा र्ाता िै। यहद गाय के पवभष्ट व्यजक्तत्व को ककसी सार्ान्य अवयव की आवश्यकता िो तो उस अवयव को ककसी अन्य और कफर उसको भी ककसी अन्य अवयव की आवश्यकता िोगी और इस प्रकार इस श्रृंखला का किीं ंअन्त न िोगा। 'सार्ान्य' प्रत्यक्ष ज्ञान का पवर्षय निीं। सार्ान्यता के भाव का तनर्ाणश िर् भूतकाल के अनुभवों के पररणार् के रूप र्ें करते िैं और उसे ेभूल से बाह्य पदाथों तक फैला देते िैं।[706] श्रीधर इस र्त का

अथवा पररभार्षाओं के अजस्तत्व को पृथक् निींककया। तो भी उसके उिराधधकाररयों न उन्िें पृथक् अजस्तत्व हदया और इसे उन्िोंने पवचारों का नार् हदया।" (रासकृत आंग्लभार्षानुवाद, 1078 बी. 28)। सुकरात के साथ सिर्त िोकर अरस्तु प्लेटो के अनुयातययों की आलोचना करता िै "वे पवचारों को एकसाथ सार्ान्य द्रव्य और पृथक् व पवभष्ट र्ानते िैं। यि चीर् सम्भव निीं, यि पिलेहदखाया र्ा चुका िै। उन व्यजक्तयों नेर्ो किर्ते िैं कक पवचार सार्ान्य िैं, दो र्तों को र्ो एक र्ें भर्ला हदया इसका कारण यि िै कक उन्िोंने आदर् शद्रव्यों तथा इजन्द्रयगम्य वस्तुओं को एक सर्ान निीं र्ाना। उन्िोंने सोचा कक इजन्द्रयगम्य पवभष्ट पदाथ शएक प्रवाि की अवस्था र्ें िै और उनर्ें से कोई र्ेर्ष निींरिता, ककन्तु सार्ान्य इनसेपृथू ्और भभन्न िै। और सुकरात नेइस प्रकल्पना को प्रेरणा दी अपनी पररभार्षाओं के द्वारा। ककन्तुउसने उन्िें पवभष्ट पदाथों से े पृथक् निींककया था, और उधचत िी सोचकर पृथक् निींककया था।" (र्ैटाकफजजक्स, 1080 ए. 32 रौसकृत आंग्लभार्षानुवाद)

703 तुलना कीजए इस र्त से इन्स स्काटस के र्त की कक सार्ान्यता के भाव प्रर्ेय पदाथों र्ें केवल सम्भाव्य क्षर्ता के रूप र्ें िी निीं, बजल्क कियार्ील िैं, और सार्ान्य केवल सझनेका िी पवर्षय निीं, बजल्क र्ानभसक भाव के पूव श याथाथ्य शके रूप र्ें पवद्यर्ान रिता िै और सार्ान्य अथवा पवभष्ट अजस्तत्य की अपेक्षा निींकरता।

704 देणखए प्लेटोकृत 'परर्ेनाइडीर्' ।

705 तुलना कीजए िोब्स 'सार्ान्य कुछ निीं, कैवल नार् िै।' ह्यूर्न नेचर, 5: 6)।

706 देणखए 'भसक्स बुद्धधस्ट' न्याय रैक्ट्स' र्ें सार्ान्यदूरूषणहदक्प्रसाररता। र्यन्त सार्ान्य तथा पवभष्ट के एकात्र्ता सम्बन्धी बौद्धर्त के पवरोध र्ें तकश उपजस्थत करता िै। इस आक्षेप का कक सार्ान्य पवभष्ट से भभन्न निीं क्योंकक यि पवभष्ट से अलग देर् के ककसी भभन्न भाग को निींघेरता, सर्ाधान इस पवचार से िो र्ाता िै कक सार्ान्य पवभष्ट के अन्दर रिता िै। अगला प्रश्न िै कक क्या सार्ान्य पूणरूशप र्ें अथवा अंर्तः पवभष्ट के अन्दर रिता िै? यहद सार्ान्य हिस्सों

 खण्डन करता िुआ किता िै कक "वस्तुतः िर्ें एक ऐसी वस्तुका ज्ञान रिता िै रो सब गौओंर्ें पवद्यर्ान िै और रो उनको अन्य सब परुओं, अथात्श ्घोडे आहद से भभन्न करती िै। यहद सब भभन्न-भभन्न प्रकार की गौओं र्ें कोई ऐसा सार्ान्य लक्षण उपजस्थत न िोता तो एक गाय अन्य गौओं से उसी प्रकार भभन्न हदखाई पडती रै्से ेकक एक घोडा भभन्न हदखाई पडता िै। अथवा इसके पवपरीत, घोडा और गाय दोनों ऐर्सी एकसर्ान हदखाई देते ेरै्से ेदो गीएंहदखाई देती िैं, क्योंकक दोनों अवस्थाओं र्ें कोई भेद न रि र्ाता। ककन्तु वास्तपवक जस्थतत यि िै कक सभी गौए एकसर्ान हदखाई देती ि।ैं इससे यि स्पष्ट िै कक ऐसा अंर् अवश्य िै रो सब गौओं र्ें तो पवद्यर्ान िै ककन्तु घोडेआहद अन्य परुओं र्ें निीं ंिै।"[707] श्रीया का तकश िै कक ब्दों का व्यक्ताथ शसार्ान्य लक्षणों की यथाथतशा का रूप धारण कर लेता िै।'[708] इस प्रकार 'सार्ान्य' केवल नार्र्ात्र निीं।

से भर्लकर बना िै तो इसका नार् भी िो सकता िै, और यि तनत्य निीं िो सकता। इस प्रकार यि पूणरूशप र्ें िी पवभर्ष्ट के अन्दर रिता िै, और इसेएक िी पवभर्ष्ट के अन्दर सर्ाप्त िो र्ाना चाहिए। ककन्तु र्यन्त पवरोध र्ें किता िै कक अनुभव इस तथ्य का साक्षी िै कक सार्ान्य यद्यपप पूण शरूप से ेप्रत्येक पवभर्ष्ट र्ें पवद्यर्ान िै तो भी इतनेसारे पवभर्ष्टों र्ें सदा पवद्यर्ान रिता िै। बौद्धर्तानुयायी बलपूवकश किता िै कक सार्ान्य को या तो व्यापक (सवगशत) िोना चाहिए अथवा कुछ पवभर्ष्टों र्ें र्ो उसी वग शके िैं, सीभर्त (पपण्डगत) िोना चाहिए। ककन्तु दोनों र्ें से कोई भी संभव निीं। यहद सार्ान्य सब पदाथों र्ें पाया र्ाता िै तो गोत्य को पोडों तथा पत्यरों इत्याहद सब र्ें पाया र्ाना चाहिए। इस प्रकार र्ाततयों का सांकय शिो र्ाएगा। यहद सार्ान्य पवभर्ष्टों के एक चुने िुए सर्ूि र्ें पवद्यर्ान रिता िै (स्वव्यजक्त सवगशत), तो यि कैसे िोता िै कक िर् गाय के एक नवर्ात भर्ु र्ें भी गोत्व का प्रत्यक्ष करते िैं, यहद वि गाय के उत्पन्न िोनेसे ेपूव शविांपवद्यर्ान न था? िर् यि निींकि सकते ेकक सार्ान्य पवभर्ष्ट के साथ िी उत्पन्न िुआ क्योंकक सार्ान्य तनत्य िै और न इसेककसी अन्य पवभर्ष्ट से ेआया िुआ कि र्ा सकता िै, क्योंकक सार्ान्य अर्ूत शि और गतत निींकर सकता, और िर् इसेककसी अन्य पवभर्ष्ट से आते िुए देखतेभी निीं। र्ब पवभर्ष्ट का नार् िो र्ाता िै तो क्या सार्ान्य लुप्त िी र्ाता िै? र्यन्त उिर देवाने कक यि सवत्रश अथात्श ्सब पवभर्ष्टों र्ें पवद्यर्ान रिता िै, यद्यपप सब पवभर्ष्टों र् ेंवि न और पन्त उिर देता िै कक यि सवत्रश अ ार्र यद्यपप यि भी किा र्ाएगा कक इसकी अभभव्यजक्त िो इसकी पवद्यर्ानता का प्रर्ाण िै। इसभलए यि कल्पना करना अनुधचत िै कक सार्ान्य 'गाय' इस पवभर्ष्ट अभी-अभी उत्पन्न गाय र्ें इसकी उत्पपि से पिलेनिींथी और इसकी उत्पपि के सर्य िी इसर्ें आती िै, क्योंकक सार्ान्य गतत करनेके अयोग्य िै। यि स्वीकार कर भलया गया िै कक सार्ान्य केवल उपयुक्त पदाथों र्ें िी पवद्यर्ान रिता िै। र्ब एक पवभर्ष्ट र्न्र् लेता िै तो यि सार्ान्य के साथ सम्बद्ध िो र्ाता िै। सार्ान्य यद्यपप तनत्य िै, पर इसका सम्बन्ध पवभर्ष्ट के साथ तभी िोता िै र्बकक पवभर्ष्ट र्न्र् लेता िै (न्यायर्ंर्री, पृष्ठ 311 से आग, 299-300)। र्यन्त नेएक पवभभन्न र्त का वणनश ककया िै, अथातुश, 'रूपरूपपलक्षणसम्बन्ध' रो ब्रांततयों का किा र्ाता िै। सार्ान्य पवभर्ष्ट का रूप िै और पवभर्ष्ट सार्ान्य का रूपी िै। 'रूप' ब्द द्वययंक िै। इसका अथ शरंग निीं िो सकता क्योंकक वणपशविीन द्रव्य भी रै्सेवायु, र्न, गुण और कर् शसार्ान्यता को धारण करते िै. और न इसका अथ श आकार िै क्योंकक तनराकार गुणों र्ें भी सार्ान्यता िै। यहद इसका अथ शअतनवाय शस्वभाव िै तो सार्ान्य और पवभर्ष्ट र्ें कंवल नार् का िी भेद िै। रूप रूपी से ेभभन्न द्रव्य (वस्त्वन्तर) निीं िै, क्योंकक वि इस प्रकार देखा निींर्ाता, और न िी यि विी िै क्योंकक उस अवस्था र्ें उनके बीच सम्बन्ध की कोई बात िी न िोती। रूप रूपी का धर् श(गुण) भी निीं िो सकता, क्योंकक उस अवस्था र्ें इसेरूपी से पृथक् हदखाई दना चाहिए, ककन्तु ऐसा निीं (न्यायर्ंर्री, पृष्ठ 299)।

707 न्यायकन्दली, पृष्ठ 317।

708 प्रभावन्द्र नेअपने'प्रर्ेयकर्लर्ातण्शड' (पृष्ठ 136-37) र्ें बौद्ध र्त की आलोचना की िै। सार्ान्य, पवभर्ष्ट की भांतत, प्रत्यक्ष का पवर्षय िै और केवल कल्पना की सूझ निीं। िर् सार्ान्य तथा पवभर्ष्ट के बोधों र्ें पारस्पररक भेट का अनुभव करते िैं। केवल इसीभलए कक िर् एक िी पदाथ शर्ें और एक िी सर्य र्ें सार्ान्य और पवभर्ष्ट दोनों का प्रत्यक्ष करते िैं, िर् दोनों को परस्पर भर्धश्रत निीं कर सकते े। सार्ान्यों का बोध सजम्र्भलत करने ेवाला (अनुगताकार) िै र्बकक पवभर्ष्टों का

कणाद का सुझाव ि कक सार्ान्य और पवर्ेर्ष बुद्धध की अपेक्षा करते िैं'[709] अथातश ये बुद्धध द्वारा तनभर्तश पवधान िैं जर्नसे िर् अनुभूत पदाथों का वगीकरण करते िैं। उसके इस र्त र्ें कक सिा, द्रव्य, गुण अथवा कर् शसे एक पवभभन्न पदाथ श(अथान्शतर) ि,ै इस जस्थतत र्ें कोई पवरोध निींआता। उसका किना ि ैकक िर् गुण को तब सार्ान्य किते िैं र्ब वि अनेकों व्यजक्तयों र्ें रिता िुआ पाया र्ाता ि ैऔर तव पवर्ेर्ष किते िैं र्ब उसके कारण िर् पदाथों र्ें परस्पर र्ेट कर सकें। घटत्व को िर् सार्ान्य किेंगे र्ेर्ब उसे ेअनेक पदाथों र्ें रिता िुआ पाएंगे,े और उस अवस्था र्ें पवर्ेर्ष किेंगे र्ेर्बकक उसका उपयोग घट को अन्य वस्तुओं से पृथक् करने के भलए ककया र्ाएगा।'[710] गुणों र्ें सार्ान्य तथा पवर्ेर्ष का भेद बौद्धधक पवश्लेर्षण का कार् ि।ै संकेत यि िुआ कक सार्ान्य, पवर्ेर्ष, और सम्बन्ध इनकी सिा उस अथ शर्ें निींजिसर्ें कक द्रव्य, गुण और कर्ों की सिा ि।ै[711] ककन्तु वे भावात्र्क, अभावात्र्क निीं। िर् कणाद को प्रत्ययवाहदयों की कोहट र्ें निीं ेरख सकते,े क्योंकक वि सार्ान्य को यथाथ शका िी अंर् र्ानता ि।ै परर् प्रत्ययवाहदयों के र्त र्ें सार्ान्य का अजस्तत्व केवल र्न र्ें िी ि।ै सार्ान्य गुण, जर्न्िें िर् सार्ान्य किते िैं, उतने िी यथाथ शिैं जर्तनी कक व्यजक्तगत पवर्ेर्षताएं,ं यद्यपप र्िारा पवचार सार्ान्य गुणों को अलग करके उन्िें व्यापक-भाव र्ें एकबत्रत कर देता ि।ै कणाद ने सावधानी के साथ इस पवर्षय को लक्ष्य ककया कक सादृश्य के अंर् िर्ेंतथा िर्ारी पवचारधारा से उतने िी स्वतंत्र िैं जर्तने कक स्वयं पवभर्ष्ट पदाथ।श िर् सब िुीं को एकसर्ान बनाते ेनिीं, बजल्क उन्िें इस रूप र्ें पाते िैं। इस अथ शर्ें अरस्तू के र्त का, अथात्श ्वस्तुजस्थत सार्ान्य का, सर्थनश िोता ि।ै यि भी सत्य ि ैकक सार्ान्य तनत्य ि ैऔर एक ि,ै क्योंकक नर्ूना कायर् रिता ि,ै र्बकक पवर्ेर्ष आते-र्ाते ेरिते िैं। र्नुष्य र्न्र् लेते िैं तथा र्रते िैं ककन्तु र्नुष्यत्व बना रिता ि।ै पवभर्ष्ट सिाओंकी अपेक्ेषा सार्ान्यों र्ें अधधक जस्थर रिने वाली यथाथतशा ि।ै इस प्रकार प्लेटो का भसद्धान्त वस्तुपूव शसार्ान्य भी सत्य ि।ै यि पपछला र्त प्रर्स्तपाद र्ें प्रर्ुख रूप से पाया र्ाता ि।ै सार्ान्य तथा पवर्ेर्ष र्ें र्ो भेद िैं वि यथाथ शिै, क्योंकक उनके सम्बन्ध को घतनष्ठ सम्बन्ध (सर्वाय) किा गया ि।ै[712]

बोध पृथक् करनेवाला (व्याविृाकार) ि।ै सार्ान्यों के बोध से ेसार्ान्यों का अजस्तत्य उपलक्षक्षत िोता ि।ै पवभर्ष्ट संख्या र्ें ककतने भी क्यों न िों, सार्ान्य के पवचार को उत्पन्न निींकर सकते।

[709] 1/2, 3 ।

[710] तुलना कीजर्ए इस र्त की डंस स्काटस के र्त के साथ, र्ो तत्व अथवा रूप के अपनेपन र्ें पवश्वास करता ि ैऔर यि र्ानता ि ैकक वि ककसी व्यजक्तगत अबस्था के अधीन निीं। वि पवभर्ष्ट के एकत्व तथा सार्ान्य रूप के एकत्व र्ें भेद करता ि।ै सार्ान्य पवभर्ष्ट पदाथों र्ें प्रकट िोता ि,ै यद्यपप इसेसार्ान्य के रूप र्ें बुद्धध के द्वारा र्ाना र्ाता ि।ै अपने-आपर्ें यि न पवभर्ष्ट ि ैऔर न सार्ान्य ि,ै ककन्तु र्ो ि ैसो ि,ै एक ऐसी वस्तु ि ैर्ो सार्ान्यता तथा पवभर्ष्टता की पूववशती ि।ै

[711] 1/2 ,7 ।

[712] पाथसशारधथ सार्ान्य और पवभर्ष्ट के पारस्पररक सम्बन्ध के पवर्षय र्ें आपपि उठाता ि।ै र्ब िर् एक गाय को देखतें तो यि ज्ञान इस प्रकार का िोता ि ैकक "यि एक गाय ि ै।" (इयं गौ:), इस प्रकार का निींिोता कक : इस व्यजक्तरूप गाय र्ें गाय वग शका सारतत्व ि"ै (इि गपव गौत्वर्)्। इसभलए सार्ान्य पवभर्ष्ट से ेभभन्न निीं। किा र्ाता ि ैकक दोनों को पृथक् निींककया र्ा सकता। पृथक् ककए र्ा सकने े(युतभसद्धध) से तात्पय शया तो पृथक् अथात् श ्स्वतन्त्र गततयों की योग्यता (पृथग्गततत्व) ि,ै अथवा पवभभन्न अधधष्ठानों र्ें पवद्यर्ानता (पृथगाश्रयाश्रतयत्व) ि।ै दोनों र्ें से ककसी अवस्था र्ें भी पूण श

10. पवरे्ष

पवरे्ष के द्वारा िर् पदाथों का प्रत्यक्षज्ञान उनरे् परस्पर भेदे करके कर सकते िैं।[713] यि पृथक्करण का आधार िै। रो् कुछ भी व्यजक्तरूप पवरे्ष िै वि अनुपर् तथा एकाकी िै। कणाद पवरे्ष को भी उतना िी पवचार पर तनभरश रा्नते िैं जर्तना कक सारा्न्य को।[714] प्रर्स्तपाद इसको एक स्वतन्त्र यथाथतशा के रूप रे् प्रततपाहदत करता िै, रो् तनत्य द्रव्यों रे् रिती िुई उन्िें एक-दूसूरे से पवभर्ष्ट करके बताती िै। िर् लौककक पदाथों रे् परस्पर भेदे करते िैं उन हिस्सों के द्वारा, जर्नसे भर्लकर वे बने िैं। और र्ब पवश्लेर्षण करते–करते िर् सरल द्रव्य तक पिुंचते िैं रो् ऐसेहिस्सा से भर्लकर निंबना कक उनके द्वारा उसे अन्य द्रव्यों से भभन्न करके पिचाना रा् सके, तो िरे् अवश्य रा्नना पडता िै कक इसके अन्दर कोई गुण िै, जर्सके कारण यि अन्य द्रव्यों से भभन्न रूप रे् रा्ना रा् सकता िै। परर्ाणु, काल, देर्, आकार्, आत्र्ाएं और र्न-सब अपनी पवरे्षताएंधारण ककए िैं रो् वगगशत गुण न िोकर व्यजक्तगत गुण िैं। ये भेदेक पवरे्षताएं अजन्तर् तथ्य िैं, जर्नसे परे िर् निंरा् सकते। जर्स तरि परर् (अजन्तर्) अणु असंख्य िैं वैसिी पवरेर्षताएं भी असंख्य िैं।'[715] प्रर्स्तपाद का र्त िै कक योगीर्न सरल द्रव्यों की अजन्तर् पवरे्षताओंको प्रत्यक्ष कर सकते िैं।[716]

इकाई तथा उसके घटक भागों रे् कोई सम्बन्ध न िोगा। क्योंकक पूण शइकाई रे् गतत के बबना भी भागों रे् गतत िो सकती िै और पूण शइकाई और उसके भाग भभन्न-भभन्न अधधष्ठानों रे् सर्वाय-सम्बन्ध से रिते िैं-पूण शइकाई अपनेभागों रे् और भाग अपने घटक परर्ाणुओं रे् रिते िैं। इसी प्रकार, सारा्न्य तथा पवभर्ष्ट के अधधष्ठान भभन्न-भभन्न िैं, क्योंकक सारा्न्य का अधधष्ठान पवभर्ष्ट िै और पवभर्ष्ट का अधधष्ठान उसका तनर्ाणश करनेवाले भाग िैं। इस प्रकार पाथसशारथी भर्श्र सर्वाय की पररभार्षा करते िुए किता िै कक यि आधार और आधेय के बीच ऐसा सम्बन्ध िै जर्ससे आधेय आधार के अन्दर अनुरूप बोध उत्पन्न करता िै। "येन सम्बन्धनाघेयर् आधारे स्वानुरूपांबुद्धध र्नयतत सः सम्बन्धः इतत" (रा्स्त्रदीपपका, पृष्ठ 283-84)। इस प्रकार के कचन का कक सारा्न्य पवभर्ष्ट के अन्दर सर्वाय-सम्बन्ध से िरिता िै, तात्पय शयि िै कक सारा्न्य (गोत्व) पवभर्ष्ट (गाय) के अन्दर इसके बोध को उत्पन्न करता िै। क्योंकक सारा्न्य का प्रत्यक्ष पवभर्ष्ट के अन्दर िोता िै इसभलए वे एक दूसूरे से भभन्न निंिैं। यहद सारा्न्य पवभर्ष्ट से सवयशा भभन्न िोता तो िर् कभी ऐसा कथन न कर सकते कक 'यि एक गाय िै।' कुर्ाररल और पाथसशारधथ भर्श्र के अनुसार सारा्न्य और पवभर्ष्ठ का सम्बन्ध तादात्म्यपरक तथा भेदपरक िै। विीं, पृष्ठ 289 से आगे।

713 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृष्ठ 13।

714 1:2, 3 से आगे।

715 पवरे्पास्तु यावजन्नत्यद्रव्यवृपित्वाद् अनन्ता एव (सप्तपदाथी, पृष्ठ 12)। तुलना कीजए इसकी तीब्नीर् के अभभन्नतावाद के भसद्धान्त के साथ। सारा्न्यों और साध्यों के स्वरूप पर अपने व्याख्यान रे् प्रोफेसर स्टाउर प्रततपाहदत करते िैं कक एक वग शया प्रकार का एकत्व, जर्सरे् उसके सदस्य या दृष्टान्त सजम्भभलत िैं, परर् तनरपेक्ष िै। ये वगसशां तथा रसल से र्तभेद रखते िैं जर्नका र्त िै कक गुण और सम्बन्ध इसी प्रकार के सारा्न्य िैं, और पवरोध रे् उनका किना िै कक एक ऐसा लक्षण रो् एक ठोस वस्तु अधवा व्यजक्त का वैभर्ष्ट्य बतलाता िै, उतना िी पवभर्ष्ट िै जर्तनी कक उसके द्वारा लक्षक्षत वस्तु या व्यजक्त। बबभलयड शखेल की दो गेंदों रे् प्रत्येक की अपनी तनर्ी गोलाई िै, रो् दूसूरों से पृथक् तथा भभन्न िै, जर्स तरि कक गेंदें स्वयंपृथक् तथा भभन्न िैं। ऐसा किनेका कक बिुत-सी वस्तुओं रे् एकसरा्न लक्षण पाया रा्ता िै, वस्तुतः यि तात्पय शिोता िै कक प्रत्येक एक सारा्न्य प्रकार के पवभर्ष्ट उदिारण अथवा लक्षणों के वग शद्वारा लक्षक्षत की गई िै। प्रोफेसर स्टाउद का र्त िै कक द्रव्य एक भर्धश्रत एकत्व िै जर्सके अन्दर वे सब लक्षण सजम्भभलत िैं रो् इसके पवर्षय रे्

कुछ आधुतुनक नैय्यातयक पवर्ऱेर्षताओंको ऱ्ानने के भलए कोई यथोधचत कारण निींदेखते।े यहद अलग-अलग परऱ्ाणुओं के अन्दर परस्पर भेद करने के भलए इनकी आवश्यकता सझ्ीं ऱ्ाए तो कफर पवर्ऱेर्षताओंके अपनेअन्दर कैसे ेभेद िोगा? िर्ें किना िोगा कक पवर्ऱेर्षताओं के अपनेअन्दर एक ऐसा अनुपर् तत्त्व अथवा अन्ततनहशित् ्र्जक्त िै ऱ्ो उनर्ें भेद कराने र्ें सर्थ शि। तो कफर, पवर्ऱेर्षता के भाव को बीच र्ें डालनेकी अपेक्षा, क्यों न परऱ्ाणुओं र्ें िी इस प्रकार की एक र्जक्त ऱ्ान ली ऱ्ाए। कुऱ्ाररल, प्रभाकर तथा वेदान्त के अनुयायी 'पवर्ऱेर्ष' के भसद्धान्त को ऱ्ानने को उद्यत निींिै। यहद वस्तुए ऱ्ौभलकरूप र्ें परस्पर भभन्न िैं तो उनके अन्दर ककसी सऱ्ान लक्षण को पाना असम्भव िै।

11. सर्वाय

कणाद का तात्पय शसर्वाय के उस सम्बन्ध सेि ऱ्ो कारण तथा काय शके ध्र्य िै।'[717] प्रर्स्तपाद की पररभार्षा के अनुसार, यि वि सम्बन्ध िै ऱ्ो उन वस्तुओं र्ें रिता िै, जर्न्िें पृथृक् निीं ककया ऱ्ा सकता, और ऱ्ो परस्पर आधार तथा आधेय के रूप र्ें िैं, तथा ऱ्ो इसक निीं ंके आधार िैं कक "इसके अन्दर वि िै,"[718] श्रीधर का किना िै कक पुण्य तथा सुख परस्पर सर्वाय-सम्बन्ध से सम्बद्ध निींिै, यद्यपप उनका तनवासस्थान आत्ऱ्ा िै, क्योंकक वे आधार और आधेय के रूप र्ें सम्बद्ध निीं िैं। एक वस्तु तथा उसके द्योतक र्ब्द र्ें सर्वाय-सम्यगय निींिै, क्योंकक वे आधार-आधेय निींिै। फल भूभर् पर िो सकता िै, ककन्तु वे दोनों ऐसेनिींिैऱ्ो पृथृक् न ककए ऱ्ा सकें। इसभलए वे भी सर्वाय-सम्बन्ध से सम्बद्ध निींिै। अयुतभसद्धध अथवा पृथृक्त्व की असम्भावना तादात्म्य निीं िै, क्योंकक दो वस्तुएं यथाथ शर्ें एक निींिै। अजग्न का रूप तथा लोि का गोला दोनों एक-दूसूरे से भभन्न िैं। ऱ्िां कणाद सर्वाय-सम्बन्ध के अन्तगतश केवल कायकशारण-संबंधों को िी रखते िैं, विां ं प्रर्स्तपाद कारण-काय-शसम्बन्धों से अन्य सम्बन्धों को भी इसके अन्दर ले आता िै। साऱ्ान्यतः यि सम्बन्ध ऱ्ो द्रव्यों को उनके गुणों के साथ, एक पूण शइकाई को उनके हिस्सों के साथ, गतत को गततऱ्ान पदाथ शके साथ, व्यजक्त को पवश्व के साथ, कारण को काय शके साथ संयुक्त रखता िै, सर्वाय-सम्बन्ध िै। इस प्रकार सर्वेत सदस्य एक इकाई के रूप र्ें अथवा तादात्म्यरूप यथाथसशिा के रूप र्ें िर्ारे सर्क्ष प्रस्तुत िोते िैं।

सर्वाय अथवा आवश्यक सम्बन्ध संयोग अथवा आकजस्र्क सम्पकश से, ऱ्ोकक वस्तुओंका एक गुण िै, भभन्न िै। ऱ्िां ंसंयुक्त पदाथ शसंयोग सेपूव शअपनी पृथृक् पृथृक् सिा रखतिैं, विांसर्वाय-सम्बन्ध वाले पदाथ श

वस्तुतः पवधान ककए ऱ्ा सकते िैं, और इस प्रकार के भर्श्रण का एकत्व एक ठोस एकत्व िै र्बकक इसके लक्षण पवभर्ष्ट िोते े

िुए भी ठोस निींिै।

716 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृषृठ 321, 322। देणखए तकशसंग्रि, 7 और 8।

717 7:2, 26।

718 अयुतभसद्धानार् ्आधायाधशारभूतानां यः सम्बन्ध इि प्रत्ययिेतुः स सर्वायः । प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृषृठ 14)। और देणखए पृषृठ 324; वैर्ऱेर्षकसूत्र, 7 2, 26-28; 5:2, 23।

पृथृक् न िो सकने वाले सम्बन्ध सेरुडे िोते िैं। सर्वाय-सम्बन्ध का कारण सर्वेत पदाथों र्ें से ककसी एक की किया निीं ंिै। रिां ंसंयुक्त पदाथों के अलग-अलग िो राने पर संयोग-सम्बन्ध सराप्त िो राता िै, विांयि सर्वाय-सम्बन्ध अपवनश्वर िै। इसके अततररक्त, संयोग दो स्वतन्त्र द्रव्यों र्ें सम्पन्न िोता िै, बकक सर्वाय-सम्बन्ध से रुडे दो पदाथों र्ें आधार-आधेय का सम्बन्ध िोता िै।'[719] सर्वाय-सम्बन्ध से रुडे दो पदाथों र्ें से ब तक कर् से कर् एक नष्ट न कर हदया राए, वे पदाथ शपृथृक् निींककए रा सकते। संयोग एक िी स्वरूप की दो वस्तुओं के अन्दर िोता िै, रो अलग-अलग पवद्यरान रिती िैं और कुछ सर्य के भलए संयीग र्ें लाई राती िैं। संयोग सम्बन्ध एक प्रकार का बाह्य सम्बन्ध िै बकक सर्वाय-सम्बन्ध आन्तररक िै।'[720] संयोग सम्बन्ध र्ें दो भभन्न पदाथ शरोडेराते िैं, ककन्तु उनके संयोग से ककसी ऐसी यथाथ शइकाई का तनर्ाणश निींिोता रो उनर्ें से प्रत्येक र्ें घुसी िुई िो। सर्वाय-सम्बन्ध यथाथ शसारंर्स्य िै।

सर्वाय को तनत्य किा गया िै, क्योंकक उसके उत्पन्न िोनेर्ें अंतपवीन पश्चाद्-गतत िो राएगी। श्रीधर का किना िै कक यि सम्बन्ध सर्वेत वस्तु के न तो पिले, न पीछे और न साथ-साथ िी प्रकट िो सकता िै। यहद कपडे के बनने सेपूव शसभवाय सम्बन्ध का रिना सम्भव िो सकता, तो वि पवचार र्ें निींआ सकता कक उस अवस्था र्ें यि रिता किां,ं क्योंकक सर्वाय के एक सदस्य का उस सर्य अजस्तत्व िी निींथा। यहद यि कपडे के साथ उत्पन्न िोता िै तो कपडा सर्वाय का अधधष्ठान िोने के अपनेस्वरूप को खो देगा। यहद यि राना राए कक कपडे के बनने के पश्चात् ंयि प्रकट िोता िै, तो भी कपडा इसका अधधष्ठान न रिेगा। काय शके भलए भी इसका (सर्वाय का) अधधष्ठान िोना सम्भव निींिै। सर्वाय इन अथों र्ें तनत्य िै कक उत्पन्न पदाथ शको उत्पन्न या नष्ट ककए बबना इसे ंउत्पन्न या नष्ट निीं ंककया रा सकता। इसकी तनत्यता इस प्रकार सापेक्ष िै। सर्वाय सम्बन्ध का प्रत्यक्ष निींिो सकता। ककन्तु वस्तुओं के पृथृक् न िो सकने वाले सम्बन्ध से इसका केवल अनुरान ककया रा सकता िै।'[721]

रिां ंपिले ंपांच पदाथों र्ें सर्वातयत्व िै, तथा अनेक अथवा ऐसेरूप पाए रातेिैं रो उन्िेंपरस्पर एक-दूसूरे से भभन्न करते िैं, विां ंसर्वाय केवल एक िी िै और इसर्ें अनेकत्व निीं ंिै।[722] यि सर्वाय सम्बन्ध से ककसी वस्तु र्ें निींरिता, क्योंकक ऐसा राननें से एक अन्तपवीन पश्चाद्गतत उपजस्थत िो राएगी। सर्वाय के सम्बन्ध र्ें िरारे रो नानापवध पवचार िैं उनर्ें परस्पर कोई भेद निींिै, रैसा कक सिा के सम्बन्ध र्ें िरारे रो नानापवध पवचार िैं उनर्ें से कोई भेद निींिै। सम्बन्ध का रूप एक िी िै, भले िी सम्बद्ध पदाथ शभभन्न िों।'[723]

वस्तुतः, सर्वाय का पवचार बौद्धधक भेद का पररणार् िै, यद्यपप इसे ंपवर्षयतनष्ठ अजस्तत्व की कोहट र्ें रखा गया िै। इसका उद्भव अपकर्षणश से िुआ िै और द्रव्यों से अलग इसका कोई अजस्तत्व निींिै। र्ंकराचाय श

---

719 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 326।

720 लना कीजए इसकी रानसन द्वारा प्रततपाहदत स्वरूप तनदेर्क बन्धन तथा संयोर्क बन्धन के भेद के साथ।

721 प्राचीन नैय्यातयकों के पवचार र्ें यि प्रत्यक्ष का पवर्षय िै।

722 तकशसंग्रि, 8।

723 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, पृष्ठ 326।

ने सर्वाय की प्रकल्पना की आलोचना की ि ै। उनका तकश ि ै कक जर्स प्रकार का संयोग परर्ाणुओं तथा आकार्

र्ें ि ै वि उतना ि ी तनत्य ि ै जर्तना कक सर्वाय। सर्वाय क्योंकक एक सम्बन्ध ि ै, इसभलए जर्ससे ेइसका

सम्बन्ध ि ै उसके साथ तादात्म्य नि ीं रखता। सर्वाय का सम्बन्ध उन पक्षों र्ें बाह्य ि ै जर्न् ि ें सम्बद्ध ि ोना ि ै,

और इसे ेस्वयं उन पक्षों के साथ सम्बद्ध ि ोनेके भलए एक सम्बन्ध की आवश्यकता ि ोती ि ै, और इस प्रकार इस

भसलभसले ेका कि ीं ंअन्त नि ीं ि ै। इसके अततररक्त, ि र्ें सदा ि ी एक ऐसेसम्बन्ध की कल्पना करनी ि ोगी जर्ससे े

श ्सर्वाय-सम्बन्ध से र्ुडी वस्तुओंर्ें, रिता ि ै। यहद सर्वाय सर्वायी र्ें अन्य

सर्वाय सर्वायी र्ें, अथात्

सर्वाय सम्बन्ध सेनि ीं रिता, बजल्क उसके साथ तदात्र्क ि ै, तो संयोग को भी संयुक्त वस्तुओंके साथ

तदात्र्क र्ाना र्ा सकता ि ै[724]। ऐसा र्त प्रकट करना तनरथकश ि ै कक सर्वाय को सर्वायी वस्तुओं र्ें रिने के

भलए उसे ेउनसे ेर्ोडने वाली ककसी तीसरी चीज़ की आवश्यकता नि ीं बकक संयोग को संयुक्त वस्तुओं से

सम्बद्ध ि ोनेके भलए सर्वाय-सम्बन्ध की आवश्यकता ि ै। एक को पदाथ शतथा दूसूरे को गुण कि देनेसे

कहठनाई दूरू नि ीं ंि ोती। इसर्ें सन्दिे नि ीं ंकक द्वयणुक का अपनेघटक तत्त्वों के साथ अथवा एक उपर्ातत का

अपनेसदस्य व्यजक्तयों के साथ र्ो सम्बन्ध ि ै, वि वैसा नि ीं ंि ै र्ैसेकक र्ेपोर् का र्ू के साथ ि ै। ककन्तु दोनों

श ्कोई भी सम्बन्ध, चािे वि ककतना ि ी घतनष्ठ क्यों न ि ो,

अवस्थाओं र्ें कहठनाई यिी प्रतीत ि ोती ि ै, अथात्

परस्पर सम्बद्ध पक्षों के साथ तदात्र्क नि ीं ि ो सकता। इस युजक्त को कक काय-शकारण के बीच यि सम्बन्ध

अवश्य ि ोना चाहिए, स्वीकार नि ीं ककया र्ा सकता। यहद कारण और काय शपरस्पर इस प्रकार सम्बद्ध ि ों कक

उन्ि ें पृथृक् नि ीं ककया र्ा सकता, र्ैसा कक वैर्ेपेर्षक का र्त ि ै, तो ऐसा र्ानना कि ीं ंअधधक सरल ि ो र्ाता ि ै कक

दोनों के बीच ताजत्त्वकरूप र्ें तादात्म्य ि ै। इसके अततररक्त, अपवभाज्य-सम्बन्ध का पवचार न्यायवैर्ेपेर्षक की

कायकशारण-सम्बन्धी प्रकल्पना के इस आवश्यक स्वरूप के पवरोध र्ें र्ाता ि ै कक कारण का अजस्तत्व काय शके

अवश्य पूव शरिना चाहिए।'[725] कारण अपना पृथृक् अजस्तत्व रखने ेर्ें सर्थ शि ै। यहद सर्वाय कारण के साथ काय श

का सम्बन्ध ि ै र्ो (काय)श अपना पृथृक् अजस्तत्व रखने ेर्ें असर्थ शि ै, तो क्योंकक ककसी भी सम्बन्ध के भलए दो

पक्षों का ि ोना आवश्यक ि ै, और काय शर्ब तक इसका अजस्तत्व नि ीं, कारण के साथ सम्बद्ध नि ीं ि ो सकता,

इसभलए दोनों के ध्य सर्वाय-सम्बन्ध नि ीं ि ो सकता। ऐसा कि ने से भी कोई लाभ नि ीं ि ो सकता कक काय श

उक्त सम्बन्ध र्ें अजस्तत्व र्ें आनेलगने के पश्चात् ्प्रपवष्ट ि ो र्ाता ि ै, क्योंकक वैर्ेपेर्षक यहद यि र्ानता ि ै कक

कारण के साथ सम्बन्ध ि ोने से पूव शभी काय शका अजस्तत्व रि सकता ि ै, तो यि पृथृक् अजस्तत्व के अयोग्य नि ीं ं

ि ै। काय शतथा कारण के ध्य संयोग तथा पवभाग नि ीं ि ोते,े इस भसद्धान्त का प्रत्याख्यान ि ो र्ाता ि ै। यहद

कारण के साथ सम्बद्ध ि ोने सेपूव शकाय शका अजस्तत्व सम्भव ि ै, तो दोनों के नध्य पीछे से ि ोनेवाला सम्बन्ध

सर्वाय न ि ोकर केवल संयोग ि ै। जर्स प्रकार कक सर्वाय नि ीं ककन्तु संयोग ि ी ऐसा सम्बन्ध ि ै जर्सर्ें प्रत्येक

द्रव्य, र्ैसे ि ी उत्पन्न ि ोता ि ै, आकार् इत्याहद सवव्शयापक द्रव्यों के साथ सम्बद्ध ि ोकर अपनी जस्थतत को प्राप्त

कुर्ाररल किता ि ै "यहद सर्वाय वग शसे तथा उस पवभर्ष्ट व्यजक्त से र्ो वग शके अन्दर सर्वाय-सम्बन्ध से रिता ि ै,

---

724 कोई भभन्न वस्तु ि ै, तो यि (सर्वाय) उनर्ें सम्बन्ध के रूप र्ें नि ीं रि सकता। दूसूरी ओर, यहद यि उनके साथ तदात्र्क ि ै, तो वे दोनों भी तदात्र्क ि ैं-इस पवधान के अनुसार कक र्ो वस्तुएंएक ि ी वस्तु के साथ तदात्र्क ि ैं वे आपस र्ें भी तदात्र्क ि ोंगी।" श्लोकवातकतश, प्रत्यक्षसूत्र, 150।

725 र्ांकरभाष्य 2:2, 13-17 ।

करता िै-यद्यपप उक्त सम्बन्ध के भलए उक्त पदाथ शर्् कोई गतत निींिोती-उसी प्रकार काय शका कारण के साथ सम्बन्ध संयोग-सम्बन्ध िी िोगा, सर्वाय-सम्बन्ध निीं।

12. अभाव

कणाद ने अभाव को एक स्वतन्त्र पदाथ शस्वीकार निींककया। उनके र्ानुसार, अत्यन्ताभाव का कुछ अथ शिी निीं। अन्य सब प्रकार के अभाव, यथा प्रागभाव, अथात् श ्काय शको उत्पन्न करने से पूव शकारण की अवस्था, प्रध्वंसाभाव, अथात् श ्काय शकी वि अवस्था र्ब वि अपनेतत्त्वों र्ें पवलय िो र्ाता िै, तथा पारस्पररक अन्योन्यायभाव, अथात्श ्अपनी-अपनी वैयजक्तक पृथक् सिा रखनेवाली वस्तुओं के र्ध्य का सम्बन्ध-ये सब भावात्र्क सिा से सम्बन्ध रखतेिैं।'[726] यद्यपप पवद्यर्ान वस्तुओंके लौककक वगीकरण के भलए अभावरूप ककसी स्वतन्त्र पदाथ शकी आवश्यकता निीं, तो भी पवश्व की ताककशक व्याख्या के भलए तनर्ेध का पववार आवश्यक िै। र्ब वैर्ेपर्षक ने अपनेक्षेत्र को पवस्तृत ककया और र्ुभय की पूणरूशप र्ें सारं्र्स्यपूण शव्याख्या करने का प्रयत्न ककया, तो उसनेअभावरूपी एक पदाथ शका पवकास ककया। सब पवचार-पद्धततयों के अन्दर सम्बन्धों का एक बडा स्थान िै। सम्बन्ध िर्ें एक वस्तु से दूसूरी वस्तु की ओर ले र्ाता िै, और यि संर्णि केवल तनर्ेध निीं। अन्यता तनर्ेध का आधार िै. और र्र्से ेपवरोध किा र्ाता िै यि तनर्षेध का पवपरीत रूप िै। प्रत्येक सम्बन्ध तनर्ेध का एक प्रकार िै. र्ो पवरोध के पवधान का उल्लंघन निीं करता। एक वस्तु अपने सम्बन्धों के साथ घतनष्ठ रूप र्ें सम्बद्ध िै। र्ब िर् ककसी वस्तु के पवर्षय र्ें कितेिैं, तो इसकी सिा अथवा स्वीकृतत के तथ्य की पुजष्ट िोती िै। र्ब िर् सम्बन्ध के पवर्षय र्ें किते िैं, तो इसके अभावरूपी तथ्य पर बल हदया र्ाता िै। एक वस्तु बबना पवरोध के जस्थतत िै. एक सम्बन्ध बबना पवरोध के प्रततकूल जस्थतत िै।

यद्यपप अभाव पदाथपशवज्ञान सम्बन्धी पदाथ शन िोकर अधधकतर एक ताककशक पदाथ शिै, तो भी असत् ्की सत् ्के िी सर्ान अजस्तत्व रखनेवाला पदाथ शर्ानने की एक प्रवृपि िै।[727] इस प्रकार तनर्ेध तथा अभाव को एक िी सर्ान सर्झा र्ानेलगा। पवश्वनाथ का किना िै कक छः पदाथों के पारस्पररक तनर्ेध के कारण असत् ्के भाव की उत्पपि िोती िै।'[728] तनर्ेध सब प्रकार के सम्बन्धों पर लागू िो सकता िै, न कक केवल एकात्र्ता तथा अजस्तत्व िी के सम्बन्धों पर, र्ैसाकक श्रीधर का पवचार िै। वेदान्त तथा प्रभाकर के अनुयायी इसेपदाथ शर्ानने से सवथशा तनर्ेध करते िैं। वे इसे ेएक सरल अधधष्ठान र्ानते िैं, इससे ेअधधक और कुछ निीं।'[729] यहद अभाव एक पृथक् पदाथ शिै तो एक अन्तपवीन पश्चाद् गतत उत्पन्न िोगी, क्योंकक घडे की अनुपजस्थतत (घटाभाव) घडे से भभन्न िै, और घटाभाव का अभाव घटाभाव से भभन्न िै। इस कहठनाई से बचने के भलए प्राचीन नैय्यातयक घटाभाव के अभाव को घडे की उपजस्थतत के सर्ान िी र्ानते ेथे। तनर्ेधात्र्क का तनपेधात्र्क तनश्चयात्र्क िोता िै ककन्तु

---

726 9: 1, 1 से आगे।

727 न्यायभाष्य तथा न्यायवाततकश, 2: 2, 12। देणखए न्यायकन्दली, पृष्ठ 225-30।

728 अभावत्वंद्रव्याहदर्षट्कान्योन्याभाववत्यर्।् (भसद्धान्तर्ुक्तावली , 12)।

729 अधधकरणकैवल्यर्ात्रर् ्।

 इस र्त को सबने स्वीकार र्निंककया। आधुतनक नैय्यातयकों का र्त िै कक एक तनर्ेषेधात्क कभी भी

तनश्चयात्क के सर्ान र्निं िो सकता, यद्यपप प्रथर् तनर्ेषेध के तनर्ेषेध का तनर्ेषेध प्रथर् तनर्षेध के सर्ान िै।'[730]

वात्स्यायन दो प्रकार के अभाव को स्वीकार करता िै। पूववशती, अथात् पदाथ शकी उत्पपि से पूव शका पदाथ श का अभाव, तथा पश्चाद्वती, अथात्श ्पवनार् के पश्चात् ्का पदाथ शका अभाव। र्ब तक पुत्र उत्पन्न र्निं ्िुआ उसका अनजस्तत्व पिले ेप्रकार का अभाव िै। र्ब घडा टूट र्ाता िै तो यि घडे का अभाव दूसूरे प्रकार का िै।[731] वाचस्पतत'[732] अभाव के तनम्न प्रकार सेपवभाग करता िै : (1) तादात्याभाव, अथात् श ्एकात्कता का तनर्ेषेध; (2) संसगाभशाव अथवा सिसम्बन्ध का तनर्ेषेध। और यि दूसूरा अभाव पूववशती, पश्चाद्यती तथा अत्यन्ताभाव-इनर्ें पवभक्त िै। अजन्तर् को सर्वायाभाव के नार् से भी किा गया िै। अपने-आप र्ें पवरोधी पवचारों को-र्ैसे ेबांझं स्त्री का पुत्र या खरगोर् के सींगं अत्यन्ताभाव की कोहट र्ें रखा गया िै। अत्यन्ताभाव र्ें ककसी वास्तपवक पदाथ श की स्वीकृतत तथा उसके सम्बन्ध का तनर्ेषेध रिता िै। अन्योन्याभाव र्ें जर्न पदाथों के र्ध्य एकात्कता के सम्बन्ध का अभाव बतलाया गया िै, वे वास्तपवक र्निंभी िो सकते। अन्योन्याभाव र्ें िर् दो पदाथों, कपडे तथा घडे की एकात्ता का तनर्ेषेध करते िैं, अत्यन्ताभाव र्ें जर्सका तनर्ेषेध ककया र्ाता िै वि एकात्ता से भभन्न सम्बन्ध िै। "घडा कपडा र्निं िै" इस प्रकार के तनणयश र्ें अन्योन्याभाव का पवपरीत िोगा कक "घडा कपडा िै।" वायु के रंग का अत्यन्ताभाव एक तनणायशक वाक्य र्ें इस प्रकार किा र्ाएगा कक "वायु र्ें कोई रंग र्निंिै।" और इसके पवपरीत कथन र्ें वायु तथा रंग दोनों को र्ोडकर किा र्ाएगा कक "वायु र्ें रंग िै।" अन्योन्याभाव का पवपरीत िै एकात्ता, ककन्तु अत्यन्ताभाव का पवपरीत िै सम्बन्ध। भर्वाहदत्य का र्त िै कक अन्योन्याभाव अतनत्य िै, क्योंकक कपडे के नार् िोते िी इसका अजस्तत्व भी लुप्त िो र्ाता िै।'[733] श्रीधर चार प्रकार के अभाव र्ानता िै : पूववशती, पश्चाद्वती, पारस्पररक (अन्योन्य) तथा तनतान्त ।[734] पवश्वनाथ भी इसी प्रकार के र्त का पररष्कार करता िै।'[735] र्ब घडा भूभर् पर िोता िै तो इसके अजस्तत्व का प्रत्यक्ष ज्ञान िोता िै। पवश्वनाथ का किना िै कक अभाव तो विां बराबर था, यद्यपप र्ब घडा भूभर् पर था तो अभाव तछपा िुआ था। इसी प्रकार िर एक वस्तु का अत्यन्ताभाव सब स्थानों पर सदा रिता िै, यद्यपप जर्स सर्य र्ें और जर्स स्थान पर वस्तु आ र्ाती िै, यि तछप र्ाता िै। इस प्रकार सावभशौर् अभाव ककसी हदर्ा र्ें सीभर्त िै। अथवा सवथशा सीभर्त र्निंिै। पीछे का असीभर्त िै और यिी अत्यन्ताभाव िै। सीभर्त अभाव का तनजश्चत प्रारम्भ या तनजश्चत अन्त िो सकता िै। घडे के पूववशती अभाव का प्रारम्भ र्निंिै यद्यपप इसका अन्त िै। पश्चाद्वती अभाव का प्रारम्भ िै ककन्तु अन्त र्निं। आधुतनक न्याय के ताकककशक, अभाव के भभन्न-भभन्न प्रकारों का अत्यन्त सूक्ष्ता के साथ पवकास करते िैं।'[736]

---

730 तकशसंग्रिदीपपका, 80।

731 न्यायभाष्य, 2:2, 12 ।

732 न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 2: 2,9 ।

733 सप्तपदाथी, 189 ।

734 न्यायकन्दली, पृष्ठ 230। और देणखए सार्न्तभद्रकृत आप्तर्ीर्ांसा तथा तकशसंग्रि, पृष्ठ 80।

735 भसद्धान्तर्ुक्तावली, पृष्ठ 12-13 ।

736 देणखए भीर्ाचायकृशत न्यायकोर्-अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभाव तथा अभाव र्ीर्षकशों के नीचे।

रि् देखर्तिं कक अभाव-पवर्षयक सर्स्त पवचार वैरे्पर्षक के आध्याजत्रक पवचार पर अवलजम्बत ि ै। यहद वस्तुएं केवल पवद्यर्ान रिें और उनका अभाव न िो तो वे सब तनत्य िो र्ाएं। यहद पूववशती अभाव का िर् तनर्षेध करें तो सब वस्तुओं तथा उनकी गततयों को आहद-रहित र्ानना चाहिए। यहद पश्चाद्वती अभाव का िर् तनर्षेध करें तो वस्तुएं और उनकी कियाएं भी कभी रुकेंगी निींऔर अन्तपविीन िो र्ाएंगी। यहद अन्योन्याभाव का तनर्षेध करते े ैं तो वस्तुओं र्ें भेदे न िो सकेगा और यहद अत्यन्ताभाव का तनर्षेध करते िैं तो वस्तुओं को सवत्रश सब कालों र्ें पवद्यर्ान र्ानना चाहिए।

13. नीततर्ास्त्र

वैरे्पर्षक स्वेच्छाकृत तथा अनैततक कर्ों र्ें भेदे करता ि ै और उसका र्त ि ै कक आचार पवर्षयक भेद का प्रश्न केवल स्वेच्छाकृत कर्ों के सम्बन्ध र्ें िी उठता ि ै।'[737] ऐसेकर् शर्ो ऐजन्द्रय र्ीवन के कारण िैं, अनैजच्छक अथात्श ्सिर् िैं, और ऐसेकर् शर्ो इच्छा अथवा द्वेर्षपूवकश ककए र्ाते िैं 'स्वेच्छाकृत' िैं। अनैजच्छक कर्ों के लक्ष्य र्ारीररक िैं तथा स्वेच्छाकृत कर्ी का लक्ष्य 'हितप्राजप्त' ि ै।[738] सुख अथवा अनुकूलता की अवस्था सुख देनेवाले पदाथों के प्रतत अनुराग उत्पन्न करती ि ै। दुःख, र्ो बेचैनी ि ै, ऐसेपदाथ शके प्रतत र्ो दुःखदायी ि ै, द्वेर्ष का भाव उत्पन्न करता ि ै। इच्छा और द्वेर्ष, सुखदायी तथा दुःखदायी पदाथों के प्रतत ऐजच्छक प्रततकियाएं ि ैं[739] जर्नके पररणार्स्वरूप अभभलपर्षत पदाथ शको प्राप्त करने तथा घृणृणत पदाथ शसे दूर रिने के भलए कर् शिोता ि ै। वैरे्पर्षक के अनुसार, धर् शसांसाररक वैभव तथा आजत्रक कल्याण (तन श्रे्रेयस) दोनों की प्राजप्त का उपाय बताता ि ै। सांसाररक वैभव कर्कशाण्ड सम्बन्धी पपवत्रता की देन ि ै तथा तनःश्रे्रेयस तत्त्वज्ञान से प्राप्त िोता ि ै।'[740] सबसे उच्च श्रे्रेणी का तुख, प्रर्स्तपाद के र्त र्ें, ज्ञानी पुरुर्षों का सुख ि ै र्ो पदाथ शकी सूतृत, इच्छा, धचन्तन र्ैसे ेसव शप्रकार के र्ाध्यर्ों से स्वतन्त्र ि ै तथा र्ो उनके ज्ञान, र्न की र्ाजन्त, सन्तोर्ष और सद्गुणों के पवभर्ष्ट स्वभाव के कारण िोता ि ै।'[741]

कतव्शय कर्ों की हदनचयाशधर्शास्त्रों से अनुर्ान की र्ाती ि ै। ऐसेकतबश कर्ों र्ें र्ो सावभशौर् रूप र्ें अतनवाय शिै अथात्श ्जर्नर्ें वणभेशद और र्ीवन की अवस्थापवर्ेर्ष की अपेक्षा निीं तथा ऐसेकतव्शय कर्ों र्ें र्ो र्ीवन की पवर्ेर्ष-पवर्ेर्ष अवस्थाओं र्ें अतनवाय शिैं, परस्पर भेद ककया गया ि ै।

---

737 5:1,11 ।

738 प्रज्ञस्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृष्ठ 263।

739 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृष्ठ 259 से ेआगे।

740 1:1, 1-2 और 4।

741 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृष्ठ 59।

ऐसेकतव्शय र्ो सब पर और सब कालों तथा सब देर्ों र्ें लागू िों, ये िैं: (1) श्रद्धा, (2) अहिंसा, अथात् ् ककसी भी र्ीव को िातन न पिुंचाने का संकल्प[742] (3) भूतहित की भावना, अथात् श ्प्राणणर्ात्र के प्रतत दया की भावना (4) सत्यभार्षण; (5) अस्तेय, अथात् श ्ईर्ानदारी, (6) ब्रह्र्चय,श (7) र्न की रु्द्धता, (8) िोध का वर्नश, (9) स्नान द्वारा र्रीररु्द्धध (अभभर्षेचन), (10) रु्द्धधकारक द्रव्यों का प्रयोग, (11) पवभर्ष्ट देवता की भजक्त, (12) उपवास; और (13) कतव्शयपालन र्ें आलस्य न करना (अप्रर्ाद)। चारों वणों और चारों आश्रर्ों के भी पवर्ेर्ष पवर्ेर्ष कतव्शय साधारण रूप र्ें प्रततपाहदत ककए गए िैं।[743] श्रीधर के अनुसार, गिृस्थ आश्रर् र्ें प्रवेर् ककए बबना भी पुरुर्ष संन्यास धारण कर सकता िै।'[744] यि र्ाना गया िै कक संन्यासी वि निीं र्ो संसार को एकदर् भुला देता िै, बजल्क वि िै र्ो सावभशौर् उपकार का व्रत लेता िै।[745] सम्प्का को के स्वरूप का व्यीरेवार वणनश करने के पश्चात् ्प्रर्स्तपाद अन्त र्ें इस पररणकतव्शयों पिुंचता िै कक यहद कतव्शय ककसी दृश्य पररणार् (यथा धन-सम्पपि आहद) की प्राजप्त इच्छा को छोडकर और सवथशा पपवत्र प्रेरणा की भावना से ककए र्ाएं,ं तो उनका पररणार् धर् शिोता िै।'[746] आजत्र्क उन्नतत के भलए आत्र्संयर् आवश्यक िै। यि किा गया िै: "र्ो आत्र्संयर्ी निीं उसे ्केवल पपवत्र भोर्न करने सेअभ्युदय प्राप्त निीं िो सकता।"[747] आत्र्संयर् के साधनस्वरूप योग के भलए आदेर् हदया गया िै।[748] तनयर्ों का पालन केवल याजन्त्रक रूप से करने से भसद्धध न िोगी, बजल्क आन्तररक धाभर्कशता के भाव को पवकभसत करना आवश्यक िै।

पवस्तृत अथों र्ें, अहिंसा िी धर् शिै, और हिंसा अथात्श ्सृजष्ट के प्रतत पवद्वेर्षभाव अधर् शिै। धर्शास्त्र के आदेर्ों र्ें पवर्ेर्ष आकजस्र्क घटनाओंर्ें अपवाद िो सकतेिैं, ऐसा वैर्ेपर्षक र्ानता िै। इसी तथ्य के आधार पर कई पवचार ऐसा सन्देि करने लगतेिैं कक वैर्ेपर्षक दर्नश का उद्भव धर्-शपवरुद्ध कल्पनाओं से िुआ िै।[749]

धर् शसे तात्पय,श वैर्ेपर्षक के अनुसार, केवल सदाचार के तत्त्व से निीं, बजल्क उस र्जक्त (क्षर्ता) अथवा गुण से भी िै र्ो र्नुष्य के अन्दर अवजस्थत िै, कर् शके अन्दर निीं। यि स्वरूप र्ें इजन्द्रयातीत िै और र्ब र्नुष्य इसका फलोपभोग करनेलगता िै तो नष्ट िो र्ाता िै। सत्यज्ञान इसका अन्त कर देता िै। यहद धर् श तनतान्त अपवनश्वर िोता तो परर् र्ोक्ष सम्भव निीं िो सकता था। धर् शसे उन्नतत (अभ्युदय) िोती िै ककन्तु र्ोक्ष िोने से पूव शइसका अन्त िो र्ाना आवश्यक िै। र्ब तक िर् र्ास्त्रपवहित तनयर्ों का पालन इस प्रेरणा को लेकर करते िैं कक अपनी उन्नतत को पूणतशा तक पिुंचाएं अथवा र्ीवन की उन्नत श्रेणी र्ें उठ र्ाएं,ं िर् अपना पुरस्कार प्राप्त कर सकते िैं। ककन्तु र्ो पद िर् प्राप्त करेंगे ्वि बराबर जस्थर निीं रिेगा। ब्रह्र्ा तक भी स्थायी

742 भूतानार्भभद्रोिसंकल्पः (न्यायकन्दली, पृष्ठ 275)

743 प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्शसंग्रि, पृष्ठ 273, वैर्ेपर्षकसूत्र, 62, 3 ।

744 न्यायकन्दली, पृष्ठ 277 ।

745 सवभूशतेभ्या तनत्यर्यं दत्वया... (प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्शसंग्रि पृष्ठ , 273)। और देणखए योगसूत्र 2:30 ।

746 प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्शसंग्रि, पृष्ठ 275। और देणखए वैर्ेपर्षकसूत्र , 6 2, 1-2, 4-6, 8।

747 बैर्ेपपकसूत्र, 6: 2,8 ।

748 वैर्ेपर्षकसूत्र, 5: 2, 16-18 ।

749 यूई कृत वैर्ेपर्षक कफलासफी, पृष्ठ 31।

सुख को प्राप्त र्नीं कर सकते।'[750] र्ो कुछ भी ि्रारा धर् शिो, वि अपररभर्त र्नीं िो सकता और इसीभलए िर्ें वि स्थायी र्ांतंत र्नीं दे सकता। तनःस्वाथ शअन्तदृजशष्ट द्वारा प्राप्त ककया गया वस्तुओं का सत्यज्ञान िी केवल िर्ें अजन्तर् र्ोक्ष हदला सकता िै।[751] र्ब तक इच्छा और द्वेर्ष ि्रारे ऊपर िावी रिते िैं, तब तक िर् धर् शऔर अधर् श अथवा अदृष्ट का संग्रि करते िेरिते िैं, और कर्ों के फल िर्ें बलात् ्दि धारण कराते िैं।"[752] दि भोग का स्थान (भोगायतनर्)् िै। अदृष्ट के साथ संयोग और उसका काय शरूप दि िी संसार िै, उससे पृथक िो र्ाना िी र्ोक्ष िै।'[753]

पृथक् आत्र्िा की भावना से प्रेररत कर् शवस्तुओं के यथाथज्ञशान के अभाव पर आधश्रत िै। ककन्तु ज्योंिी िर् अनुभव करते िैं कक पदाथ,श र्ो इतनेअधधक आकर्षकश अथवा अपकर्षकश प्रतीत िोतेिैं, केवल परर्ाणुओं के क्षणणक भर्श्रणर्ात्र िैं, ि्रारे ऊपर सेउनका प्रभुत्व र्ाता रिता िै। इसी प्रकार र्ब िर् यि अनुभव कर लेतेिैं कक आत्र्ा का यथाथस्शवरूप इस सव दिेधारी िाओं से सवथशा पृथक् तथा भभन्न िै तो िर् यि र्ान लेंगे ेकक सब आत्र्ाएं एकसर्ान िैं। र्ब यथाथज्ञशान स्वाथ शप्रेरणा को दूरू भगा देता िै, तो स्वाथपशरक कर्ों का अन्त िो र्ाता िै. कोई र्ौभलक र्ूल्य उत्पन्न र्नींिोता, और इसीभलए कफर पुनर्न्र् भी र्नींिोता। र्ब वैर्ेपर्षक दर्नश आजस्तकवादपरक िो गया तो र्ोक्ष के आनन्द को दैवीय अनुकम्पा का पररणार् सर्झा र्ानेलगा, और धाभर्कश तनयर्ों को ईश्वरीय इच्छा की अभभव्यजक्त र्ाना र्ानेलगा।[754]

र्ब तक आत्र्ा संसार के अन्दर िै, वि सदा ककसी-न-ककसी दिे को धारण ककए रिती िै। यि दिे प्रलयकाल र्ें सूक्ष्र् और सृजष्ट र्ें र्ूतरूशप िोती िै, और ऐसी कोई अवस्था र्नींिोती र्बकक आत्र्ा 'अदृष्ट' से रहित िो, क्योंकक दिेरचना की श्रृंखला का कोई आहद र्नीं।[755] र्न्र् का सर्य, स्थान और पररजस्थततयां, पररवार तथा र्ाता-पपता, र्ीवन की अवधध-ये सब अदृष्ट के द्वारा िी तनजश्चत िोते िैं।'[756] प्रत्येक आत्र्ा को अपनेपूवकशर्ों के फल भोगने का अवसर हदया र्ाता िै। ककन्तु यि आवश्यक र्नीं कक वतर्शान र्ीवन उससे ठीक पूववशती र्ीवन का पररणार् िो, क्योंकक ि्रारे सब र्ौभलक गुण सब अवस्थाओं र्ें एक िी र्न्र् र्ें वास्तपवक रूप धारण र्नीं कर सकते।[757] यद्यपप संस्कार (र्ौभलक प्रवृपियां) नष्ट र्नीं िोते,े पर उनर्ें से कुछ को आगार्ी र्न्र् के भलए प्रतीक्षा करनी पड सकती िै। यि र्ाना गया िै कक उधचत संयर् द्वारा िर् अपने पूवर्शन्र्ों का स्र्रण कर सकते िैं।[758] हिन्दू पूवचारधारा की अन्य पद्धततयों की भांतंत, वैर्ेपर्षक भी स्वीकार करता िै कक

---

750 न्यायकन्दली, पृष्ठ 281 ।

751 विी, पृष्ठ 6।

752 संसाररू्लकारणयोधर्शाधर्शयोः।

753 5:2, 18। और देणखए न्यायसूत्र, 4:1, 47।

754 ईश्वरचोदनाभभव्यक्तात् ्। प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्शसंग्रि, पृष्ठ 7।

755 न्यायभाष्य, 1:1, 19 न्यायवाततकश, 4:1 , 10, 31, 19, 22, 25-27 ।

756 पववृ ्ते, 6:2, 15।

757 न्यायकन्दली, पृष्ठ 53, 281 और उपस्कार, 6: 2, 16।

758 उपस्कार, 5:2. 18, 62, 16।

ि्रारे भलए यि सम्भव ि ैकक ि्र् र्ीवन के उच्चतर स्तर तक उठ सकें अथवा अपने को र्नुष्य से तनचले ेस्तर र्ें धगरा लें।'[759] सब प्राणी अपने धर्ाधशर् शके अनुसार अपना स्थान प्राप्त करते िैं।

वैर्ेपर्षक र्ें प्रततपाहदत र्ोक्ष के भसद्धान्त तथा न्याय-प्रततपाहदत र्ोक्ष के भसद्धान्त र्ें थोडा-सा भेद ि ै। र्ाधव अपने'र्ंकरपवर्य' र्ें किता ि ैकक कणाद के दर्नश अनुसार, र्ोक्ष की अवस्था र्ें आत्र्ा सब प्रकार के गुणों से असम्बद्ध रिती ि ै, तथा आकार् की भांतंत सब प्रकार की उपाधधयों तथा गुणों से स्वतन्त्र रिती ि ै। ककन्तु नैय्यातयकों के अनुसार, र्ोक्षावस्था आनन्द तथा ज्ञान की अवस्था ि ै।[760] वैर्ेपर्षक के अनुसार, र्ोक्ष की अवस्था को सुख की अवस्था निींसझ्ाा र्ा सकता। यद्यपप इस प्रकार का लक्ष्य आकर्षकश निींि सिकता परन्तु यि उक्त दर्नश के ताककशक उपलक्षणों के अनुकूल ि ै। नार् और रूप (दिे) के सम्पकश से उत्पन्न गुणों से र्ब आत्र्ा र्ुक्त िो र्ाती ि ै'[761] तो यि पुनः अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेती ि ै। ण्र्डनभर्श्र का यि तकश कक दुःख, क्लेर् आहद गुणों का पवनार् आत्र्ा के पवनार् ते भभन्न निींि, अपने अन्दर कुछ बल रखता ि ै।[762] श्रीधर का तकश ि ैकक र्ोक्ष की अवस्था र्ें आत्र्ा अपनी नैसधगकश दर्ा का सुख भोगती ि ै।'[763] आत्र्ा का र्ून्य िोना तो सम्भव निींि; क्योंकक वि तनत्य ि ै, अतः र्ोक्ष की अवस्था पापाण-सरीखी एक र्ड अवस्था के अत्यन्त तनकट पिुंच र्ाती ि ै।'[764] श्रीधर अपने पक्ष के सर्थनश र्ें उपतनर्षदों के उद्धरण देता ि ै।[765]

14. ईश्वर

कणाद के सूत्र र्ें प्रकटरूप र्ें ईश्वर का उल्लेख निींि। उसके अनुसार, परर्ाणुओं तथा आत्र्ाओं र्ें आहदर् गततयां ंअदृष्ट के कारण से िोती िैं।[766] कणाद भले िी पवश्व की व्याख्या अदृष्ट तत्त्वय के द्वारा करके सन्तुष्ट िो गया िो, पर उसके अनुयातययों ने अनुभव ककया कक अदृष्टरूपी तत्त्व अत्यन्त अस्पष्ट तथा धर्पशविीन ि ैऔर इसभलए उन्िोंनेइसे ेईश्वर की इच्छा पर तनभरश बताया। ईश्वर संसार का नैभर्पिक कारण ि ै,

---

759 प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्सशंग्रि, पृष्ठ 280-81।

760 अत्यन्तनार्ा गुणप्तगतयशां जस्थततनभशोवत् ्कणभक्षपक्ष।
र्ुजक्तस्तदीये चरणक्षपक्ष सानन्दपवत्सहिता पवर्ुजक्तः ॥

761 आत्र्पवर्ेर्षगुणानात्यंतोच्छेदः ।

762 पवर्ेर्षगुणतनवृपिलक्षणा र्ुजक्तरुच्छेदपक्षं ंन भभद्यते।

763 आत्र्नः स्वरूपेणावस्थानर् ्।

764 सवभशसद्धान्तसारसंग्रि, 5: 36 ।

765 न्यायकन्दली, पृष्ठ 282-87।

766 कभी-कभी ऐसा किा र्ाता ि ैकक वैर्ेपर्षकसूत्र, 21, 18-19, र्ें ईश्वर के अजस्तत्व के पवर्षय र्ें प्रर्ाण पवद्यर्ान िैं, यद्यपप इस र्त को स्वीकार करना कहठन ि ै। 2 1, 9-14 र्ें अदृश्य तनत्य वायु के अजस्तत्व की भसद्धध की गई ि ैऔर 21, 15-17 र्ें एक आपपि उठाई गई ि ैकक इसका अजस्तत्व प्रत्यक्ष अथवा अनुर्ान का पवर्षय निींि, बजल्क केवल अन्तज्ञानश का पवर्षय ि ै। और 21, 18-19 र्ें किा गया ि ैकक िर्ारे कुछेक पवचारों का र्ूल िर्ारे पूवर्शों के प्रत्यक्ष र्ें रिता ि ैतथा उनसेिर्ें प्राप्त िोता ि ै, और यिींतदनुकूल पदाथों के अजस्तत्व का ताककशक आधार ि ै(देणखए यूई वैर्ेपर्षक कफलासफी, पृष्ठ 164-66)13:2, 4-9 र्ें िर् आत्र्पवर्षयक सर्स्या का ऐसा िी प्रततपादन पाते िैं।

 तथा परर्ाणु ुउपादान कारण ि ै। परन्तु, कणाद ने स्वयं भी एक दैवीय सिा की आवश्यकता को

अनुभव ककया,

ऐसा स्वीकार करना कहठन ि ै। उस प्रभसद्ध वाक्य र्ें,'[767] र्ो दो बार आया ि ै और जर्से परवती टीकाकारों ने आजस्तकवाद का सर्थकश बताया ि ै, ईश्वर का किीं ंउल्लेख निीं ि। यि प्रकट ि ै कक कणाद वेदों को ईश्वरप्रदि न र्ानकर उन्िें ऋपर्षयों द्वारा रधचत ग्रन्थ र्ानता ि ै। प्रर्स्तपाद ने भी अपनी दर्नश-पद्धतत र्ें ईश्वर को प्रधानता निींदी ि ै, यद्यपप वि अपने 'पदाथधशर्संशग्रि' के प्रारजम्भक श्लोक र्ें िी ईश्वर को र्गत् ्का कारण बताता ि ै।[768] वेदान्तसूत्र पर ककए गए अपने भाष्य र्ें र्ंकराचाय शने र्ो सर्ीक्षा की ि ै'[769] उसर्ें भी यिी धारणा बनाई गई ि ै कक वैर्ेपर्षक दर्नश र्ें ईश्वर के भलए कोई स्थान निीं ि, और कक यि दर्नश आत्र्ाओं तथा परर्ाणुओं के तनत्य तथा अतनभर्तश स्वरूप को र्ानता ि ै और उनकी नानापवध अवस्थाओंकी व्याख्या अदृष्ट के द्वारा करता ि ै।

पवरोधी सम्प्रदायों की आलोचना ने अनीश्वरवादी वैर्ेपेर्षक के असन्तोर्षर्नक स्थख्य को स्पष्ट रूप से खोलकर रख हदया। करोडों बुद्धध-रहित परर्ाणु ुइस र्गत् ्की नानापवधता र्ें अद्भुत एकत्व निींउत्पन्न कर सकते। वे एकत्र िोकर पवचार करने र्ें असर्थ शिैं, और एक आजत्र्क र्ासन की सार्ान्य योर्ना को कायाजशन्वत करने र्ें भी असर्थ शिैं। वैर्ेपर्षक पवचारक, र्ो ताककशक र्जस्तष्क रखतेथे, केवल आकजस्र्कता की कल्पना को निींअपना सकते थे। उन्िोंने र्ीघ्र इस बात को सर्झ भलया कक परर्ाणु ुभले िी तनपवकशार और तनत्य क्यों न िों, ककसी प्रयोर्न के निीं, र्ब तक कक उनकी कियाओंका तनयन्त्रण ककसी अधधष्ठाता र्जस्तष्क द्वारा न िो। ईश्वर परर्ाणुओं को प्रत्यक्ष करता ि ै और उसकी पववेकेर्जक्त र्ें पिले ेद्पवत्य का भाव उदय िोता ि ै और तब द्वयणुकों का तनर्ाणश िोता ि ै। अनुर्ान प्रर्ाण तथा धर्र्शास्त्र दोनों की र्ांग ि ै कक िर् ईश्वर के अजस्तत्व को स्वीकार करें।[770] चारों र्िाभूतों से पूव शककसी ऐसी र्जक्त का िोना अतनवाय शि ै र्ो उनका ज्ञान रखती िो, क्योंकक वे काय शिैं।[771] र्ब्दों तथा उनके अथों का परस्पर अनुबन्ध ईश्वर के िी द्वारा तनधारशरत िोता ि ै। इसके अततररक्त, वेद वाक्यों का संग्रि ि ै, र्ो इस पवर्षय का संकेत करता ि ै कक उनका रचतयता कोई बुद्धध-सम्पन्न िोगा।'[772] और क्योंकक वेद का पवर्षय तनभान्शत, प्रर्ादरहित तथा रचतयता की ककसी प्रकार की प्रवंचना की इच्छा से भी रहित ि ै, अतः उसका कता शअवश्य कोई तनत्य, सवज्ञश, पूणतशया पपवत्र अथात् श ्तनदोर्ष पुरुर्ष िोना चाहिए।'[773] इसके अततररक्त प्रलयावस्था र्ें आत्र्ाएं पववेकबुद्धध से रहित िोती िैं, इसभलए वे परर्ाणुओं की गतत को वर् र्ें निीं ं रख सकतीं,ं और परर्ाणु-र्गत् ्र्ें गतत का कोई स्रोत हदखाई निींदेता। यहद िर्ें अनन्त पश्चाद्गतत से बचना ि ै तो िर्ें एक प्राथभर्क गततसंचालक का आश्रय लेना िी िोगा, जर्सेआहदकरण तथा गतत का आहदस्थान र्ाना र्

---

767 तद्वचनादाम्नायस्य प्रार्ाणयर् ्(1:1, 3; 10: 2,9) ।

768 देणखए प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि के प्रारजम्भक तथा अजन्तर् अंर्ों को तथा पृष्ठ 48-49 ।

769 र्ांकरभाष्य, 2: 3, 14 ।

770 कीथ इजण्डयन लोजर्क एण्ड एंटोभर्ज्र्, पृष्ठ 265-66, न्यायकन्दली, पृष्ठ 541।

771 2:1, 18-19।

772 वृद्धधपूववशाक्यकृततवेद देणखए उपस्कार, 6:1, 1।

773 उपस्कार, 10 2. 9। पूरा तकश बेदों की प्रार्ाणणकता को स्वीकार करने पर तनभरश करता ि ै। यहद िर् इसे निींर्ानते,े र्ैसे कक बौद्ध निींर्ानते,े तो तकश र्ें बल निींरिता।

सके।[774] ऐसा गतत-संचांलक केवल एक िी िो सकता िै। अनेक को ्ानना अनावश्यक िै। यहद देवताओं के अनेकत्व को ्ानें तो परस्पर पवरोध अथवा कलि उत्पन्न िोता िै। इसभलए केवल एक िी कता शी और वि ईश्वर िै।

इस प्रश्न का कक क्या ईश्वर के रीर िै, श्रीधर ने पववेचन ककया िै। ईश्वर के भलए रीर धारण करना आवश्यक निीं िै, अरीरी भी कर् शकर सकता िै। अभौततक आत्ा रीर को गतत देने का काय शकरती िी िै। रीर यद्यपप आत्ा सेसम्बद्ध िै तो भी अपनेको काय शर्ें लगाने की र्क्त प्रदान निींकरता। पदाथ शजर्से े प्रेरणा दी गई, रीर िै, और ईश्वर के भलए इस प्रकार का पदाथ शपरर्ाणु िैं। यहद यि युजक्त दी ्ाए कक इच्छा तथा प्रयत्न को उत्पन्न करने के भलए रीर आवश्यक िै, तो श्रीधर उसके उिर र्ें किता िै कक यि उस अवस्था र्ें िोता िै ्िां ंइच्छा और प्रयत्न आगन्तुक िैं, ्िां ंये स्वाभापवक िैं इसकी आवश्यकता का प्रश्न निींउठता। ईश्वर की बुद्धध, इच्छा तथा प्रयत्न तनत्य िैं।[775] ईश्वर द्वारा सृजृष्ट-रचना पर कक अनेकों आक्षेपों के पवर्षय र्ें भी श्रीधर ने पवचार ककया िै। यहद किा ्ाए कक ईश्वर की कोई भी इच्छा ऐसी निीं िै ्ो अपूण शरिी िो और जर्सकी पूतत शकभर् सृजृष्ट-रचना की प्रेरणा िो तो इसका उिर यि िै कक ईश्वर की इच्छाएं ंस्वाथगशयी निीं िैं, बजल्क वि दूसूरों के उपकार के भलए कर् शकरता िै। कर्-शभसद्धान्त के अनुकृत, यि संसार र्ें दु:ख को रिने देता िै। दु:ख वस्तुतः कोई बडा पाप निीं िै, क्योंकक यि िर्ारे भलए सब न्र्ों की पवपवधता के अनुभव करने र्ें सिायक िोता िै। वि ्ो चररत्र का पवचार करता िै और तदनुसार िी प्राणणयों को न्र् देता िै, यि उसकी स्वतन्त्रता र्ें बाधक निीं िै।

ईश्वर के सम्बन्ध र्ें वैर्ेपर्षक का र्त भी लगभग विी िै ्ैसाकक न्याय का िै[776], और इसभलए इसकी सर्ालोचना भी उसी आधार पर िो सकती िै। पिले ेइस संसार की एक यन्त्र के सर्ान ्ाना ्ाता था ्ो पूण श तथा स्वात्रतनभरश िै और जर्सर्ें परर्ाणु ुतथा आत्ाएंअदृष्ट के भसद्धान्त से अपने-अपने स्थान र्ें एकत्र रिते े िैं। वैर्ेपर्षक के सर्ालोचकों द्वारा ्ो कहठनाइयांबार-बार प्रस्तुत की ्ाती थीं अथात् श ुकक एक पववेकरहित तत्त्व संसार के पृथृग्भूत घटकों को एकत्र निींरख सकता- उनसेतनकलनेका ्ाग शढूंढ़ते िुए परवती वैर्ेपर्षकों को एक दैवीय तत्त्व को स्वीकार करना पडा। ईश्वर र्गत् ुका स्रष्टा निीं िै, क्योंकक परर्ाणु ुतथा आत्ाएंउसके सर्ान सिकारी तनत्य िैं। ईश्वर सवज्ञशता तथा सवर्शजक्तर्ा के कारण ्ानवीय आत्ाओं से भभन्न िै और यिी गुण उसे ेपवश्व का ्ासक िोने की योग्यता देते िैं। वि कभी भी न्र्-र्रण के चि र्ें निीं ंआता। वि संसार को कततपय तनयर्ों के अधीन कर देता िै और इसे ेचलने देता िै। ककन्तु वि कफर इसके ्ाग शर्ें िस्तक्षेप निींकरता। संसार एक पवर्ाल घडी के सर्ान िै जर्से ेइसका स्रष्टा एक बार गतत दे देता िै और कफर इसकी गतत र्ें बाधा निीं ं देता। ककंतु एक िस्तक्षेप न करनेवाला ईश्वर संसार के वास्तपवक ्ीवन र्ें सिायक निींिोता। दूसूरी ओर, िस्तक्षेप करने वाले ईश्वर के पवर्षय र्ें यि भय िोगा कक वि किीं ंअपनी िी बनाए िुए पवधान को न उलट दे।

---

[774] तुलना कीजर्ए अरस्तु की इंश्वरपवर्षयक प्रकल्पना के साथ, जर्सर्ें ईश्वर को आहदर् गतत देनेवाला ्ाना गया िै, ्ो आकार्ीय तथा भौभर्क सब प्रकार की गततयों को ्ुरू करता िै।

[775] न्यायकन्दली, पृषृठ 55-58।

[776] देवतापवर्षये भेदो नाजस्त नैय्यातयकैः सर् ुं(िररभद्रकृत पड्दर्नशसर्ुच्चय, पृषृठ 59)

ईश्वर तथा संसार दोनों एक-दूसूरे सेस्वतन्त्र िैं, ककन्तुयहद िर् प्रारजम्भक प्रस्थापना र्ें पररवतनश न करें, तो ईश्वर भी िर्ारी सिायता निीं ंकर सकता। यहद िर् परस्पर असम्बद्ध सिाओं के अनेकत्व को ले कर चलते िैं तो िर् एक ईश्वर की याजन्त्रक योर्ना से भी, र्ो वस्तुओं को बािर से व्यवजस्थत करता िै, उनके पृथक्करण र्ें कोई सुधार कैसे ंकर सकते ि।ैं एक पवर्ातीय र्ध्यर् के यांबत्रक उपाय द्वारा संयुक्त संसार वस्तुओं का एक पुंर्र्ात्र िो सकता िै, एक पूण शआधगक इकाई निींिो सकता। आत्र्ाएंएक-दूसूरे को र्ान तक निीं ंसकतीं। प्रत्येक यथाथ शवस्तु अपने भलए एक लघु र्गत् ्िो र्ाएगी, र्ो अपने आन्तररक तत्त्वय के चि के िी अन्दर बन्द िोगी। आत्र्ाएंतथा उनके पवर्षय आवश्यक रूप से पृथक् िैं, और उनका सम्बन्ध एक बािर से आरोपपत सार्ंर्स्य िै। इससे पूव शकक िर् ककसी अधधक सन्तोर्षर्नक पवचार तक पिुंच सकें, प्रारजम्भक स्थापना को छोड देना आवश्यक िै। यहद ईश्वर का अजस्तत्व िै, तो वि प्रकृतत के परर्तत्त्वों को भी उत्पन्न कर सकता िै, और आत्र्ाओं तथा परर्ाणुओं के तनत्य तथा स्वयंभू स्वरूप को अंगीकार करने की आवश्यकता निींिै। यहद ईश्वर नार् की कोई सिा िै तो स्वग शतथा पृथ्वी सब उसके आधश्रत िैं, और कल्पना र्ें भी न आ सकनेवार प्रकृतत के सूक्ष्तर् कण भी, र्ो अन्तररक्ष के अनन्त क्षेत्र र्ें गतत कर रिे िैं, उसी की रचना िैं।

15. वैर्ेपर्षक दर्नश का सार्ान्य र्ूल्यांकन

वैर्ेपर्षक के सार्ान्य भसद्धान्तों का सूक्ष्र् पववेचन उक्त दर्नश के प्रर्ुख लक्षणों तथा र्ादशाओंको सर्झनेर्ें सिायक िोगा। एक दार्तशनक प्रकल्पना का काय शयथाथतशा द्वारा अभभव्यक्त नानापवध स्वरूपों को एक सार्ंर्स्यपूण शऔर बोधगम्य पररपूण शइकाई के रूप र्ें सुव्यवजस्थत तथा संघहटत करना िै। वैर्ेपर्षक दर्नश "इस सर्स्त दृश्यर्ान र्गत् ्के लक्षणों तथा पारस्पररक सम्बन्धों को एक पद्धतत र्ें प्रदभर्तश करने का प्रयत्न करता िै।"[777] प्रोफेसर व्िाइटिेड के सर्ान, िर्ारे भलए इजन्द्रय-सार्ग्री, प्रत्यक्ष र्गत् ्एवं वैज्ञातनक पदाथों र्ें पृथक्त्व करना उपयोगी िोगा। इजन्द्रय-सार्ग्री र्ें वास्तपवक रंग, रस, र्ब्द तथा ताप िैं, जर्नका िर्ें प्रत्यक्ष ज्ञान िोता िै। इसी सार्ग्री पर िर्ारे सर्स्त अनुभव का आधार िै और इसी इजन्द्रय-सार्ग्री तथा आनुभपवक र्गत् ्की व्याख्या के भलए िर् अनेकों वैज्ञातनक पवर्षयों की कल्पना कर लेतेिैं, र्ो प्रत्यक्ष का पवर्षय निीं ंिैं, यद्यपप वे सर्स्त प्रत्यक्ष ज्ञान की व्याख्या करते िैं। वैर्ेपर्षक र्ें भी िर्ें इजन्द्रयज्ञान की सार्ग्री अथवा प्रत्यक्ष का पवर्षय भर्लता िै जर्ससे सर्स्त अनुभव र्ुरू िोता िै। र्ब िर् इन पवर्षयों पर, द्रव्य, गुण, सम्बन्ध इन पदाथों द्वारा एक साथ पवचार करते िैं तो िर् आनुभपवक र्गत् ्की ओर अग्रसर िोते िैं। र्ैसाकक िर् अनेक बार कि चुके िै, र्ब िर् ककसी वस्तु तथा उसके गुणों के पवर्षय र्ें कुछ कथन करते िैं, तो िर् तथ्यों का कथन निींकर रिे िोते िैं बजल्क उनकी व्याख्या कर रिे िोते िैं। र्ब वैर्ेपर्षक तनत्य द्रव्यों, गुणों आहद को अतनत्य द्रव्यों, गुणों आहद से पृथक करता िै, तो वि िर्ारे अनुभव के क्षणणक स्वरूप पर बल देता िै और कुछेक वैज्ञातनक पवर्षयों की, यथा परर्ाणुओं और आत्र्ाओं, देर् और काल, आकार् और र्न की, कल्पना कर लेता िै। इस प्रकल्पना को सन्तोर्षप्रद र्ाना र्ा सकता िै, यहद इजन्द्रयर्न्य ज्ञान िर्ें अनुभव र्गत् ्की ओर ले र्ाए और आनुभपवक र्गत् ्

[777] व्िाइटिेड हद कंसेप्ट नेचर, पृष्ठ 185।

वैज्ञातनक पदाथों की ओर ले र्ा सके। ककन्तु रै्सा कक ि र् देखेंगे, इस प्रकार का कोई तकशसंगत सम्बन्ध हदखाई निींदेता।

अभाव के भसद्धांत पर बल देनेके कारण वैरे्पर्षक की अनेकवाहदतात्रक पवभर्ष्ट प्रवृपि लक्षक्षत िोती
ी। यिाथशसिा न तो द्रव्य ि, न द्रव्यों का पुंर् िी ि, क्योंकक द्रव्य गुणों के पवर्षय िैं, बजल्क यि एक ताजत्त्वक सम्बन्ध ि रिां िरें पवश्लेर्षण, तुलना, भेदे तथा तादात्म्य की आवश्यकता िोती ि। पररवतनशरील आनुभपवक र्गत् रें ऐसी सिाधारी वस्तुओं की अनेकता ि र्ो एक-दूसूरे के साथ सब प्रकार के सम्बन्धों रें एक र्हटल र्ाल रें बंधी िैं। वैरेपेर्षक का अपना लक्ष्य इस पवश्व को एक व्यवजस्थत पूण शइकाई पवपवधताओं के एक सारंर्स्य के रूप रें प्रस्तुत करना ि। र्ब तक िर् परस्पर टकरातेतत्त्वों रें सारंर्स्य लानेके अयोग्य िैं, तब तक िर् ताककशक आदर् शतक निींपिुंचते। स्वात्रपवरोधी पवचार रें निींआ सकता, और तो भी इस दर्नश के ऐसे अवयव ि र्नि पर िर् एक पूण शइकाई के हिस्सों के रूप रें एक साथ पवचार निींकर सकते।

वैरे्पर्षक अभाव के सापेक्ष स्वरूप को स्वीकार करता ि। र्सि पवर्षय-वस्तु का यि तनर्षेध करता ि, वि सवथशा बहिष्कृत कभी निीं िोती। इससे पूव शकक िर् तनरे्षेध कर, तनपवद्ध पवचार को र्ानना िोता ि। कफर, ऐसा सुझाव र्सिका तनरे्षेध द्वारा प्रत्याख्यान ककया र्ाता ि, एक तनजश्चत अभभज्ञा (पिचान) पर आधश्रत ि र्ो प्रस्तुत वस्तुपवर्षय से संगत िोती ि। िर् भूभर् पर घडे को ढूंढ़ते िैंऔर विांउसे न पाकर उसका अभाव उद्घोपर्षत की देते िैं। यिाथसिशा बहिष्कार करती ि, क्योंकक इसरें असंगततरूप गुण ि। तनपेध (अभाव) अपने आधार रें एक पवभार्न का संकेंत करता ि र्ो यथाथ शि। तनर्षेध का उद्देश्य िर्ारे सर्क्ष एक ऐसी यथाथतशा को रखने का ि र्सिएक व्यवजस्थत पद्धतत के रूप रें सर्झा गया ि। साधारण स्वीकृततसूचक कथन उसी तरि एक पक्षीय भावात्रक सार ि र्सि तरि कक साधारण तनरे्षेधात्रक कथन। केवल सत् एक ररक्त पदाथ श(पवर्षय) का भावात्रकसार ि, र्बकक केवल, 'असत्' ररक्तता के भी परे र्ाता ि। केवल 'असत्' एक 'वि', अथवा एक ऐसी वस्तु का पवचार ि र्ो प्रत्येक 'क्या' अथवा उपाधध को बहिष्कृत करती तथा स्वयं भी बहिष्कृत िोती ि। यि एक ऐसेपदाथ शका भावात्रक सार ि र्ो सब प्रकार की उपाधधयों का तनरे्षेध करता ि और अपना भी तनरे्षेध करने पर बाध्य िोता ि। अभाव पर आग्रि िोनेसेवैरे्पर्षक का आदर् शसंसार को तत्त्वों का सारंर्स्य र्ानना ठिरता ि, यद्यपप वस्तुतः इस प्रकार का आदर् शभसद्धान्तरूप रें परर् सत्य तथा यथाथतशा से न्यून ि। पवपवधता, भेदे तथा अनेकता-ये सब एक इकाई के अन्दर िी कुछ अथ शरखते िैं। र्सि वैरे्पर्षक एक स्वतंत्र व्यजक्त सर्झता ि, वि यथाथ शके स्वरूप के अन्दर िी एक अवयव के रूप रें देखा र्ाता ि। यि भभन्न और पवरोधधयों रें पारस्पररक रर् उत्पन्न करता ि। भभन्न पदाथ शपवरोधी भी िों, यि आवश्यक निीं। भभन्न पदाथ शएक-दूसूरे को बहिष्कृत निीं करते, वे केवल अपनेभेद के तनर्षेध को िी बहिष्कृत करते ि। परस्पर असंगत पदाथ शभी िैं, ककन्तु वे अजन्तर् तथा तनरपेक्ष निीं। सीर्ाओंके अन्दर वे पाए र्ाते िैं, ककन्तु अभभज्ञा के ताककशक पवचार की र्ांग ि कक यथाथ शपवरे्र्ष ितथा सारंर्स्यपूण शऔर आत्रसंगत ि। सर्स्त पदाथों के भलए एक पृथृक् अभभज्ञा की कल्पना करने के कारण, वैरे्पर्षक एक यथाथ शआध्याजत्रक पूण शइकाई के पवचार तक निींउठ सका, र्िांपिुंचकर हिस्सों के अन्योन्य बहिष्कार का भाव लुप्त िो र्ाता ि। यद्यपप यि इस संसार के भलए एकत्व तथा अनेकत्व दोनों को

र्ौभलक र्ानता ि◌ै, परन्तु दोनों को पास-पास रिने हदया गया ि◌ै और इर्न्िे एक पूण शइकाई र्ें निीं लाया गया ि◌ै। वैर्ेपर्षक ज्ञान को सुसंघहटत, पूण शइकाई र्ानने के पवचार को, र्ो उसके अभाव-सम्बन्धी र्त से उपलक्षक्षत िोता ि◌ै, अन्त तक जस्थर निीं रख सका।

ककन्तु वैर्ेपर्षक यि तनदेर् करता ि◌ै कक अनुभव के अन्दर पदाथ शतथा उनके सम्बन्ध दोनों सजम्र्भलत िैं। द्रव्य, गुण और कर् शअपने-आप र्ें अपना अजस्तत्व रखते ि◌ैं और एक-दूसूरे के अन्दर भी अजस्तत्व रखते ि◌ैं, और ये अनेक सम्बन्धों से बद्ध ि◌ैं, र्ो सार्ान्य अथात्श ◌्र्ाततगत स्वरूप, पवर्ेर्ष अथात्श ◌्पवभर्ष्ट लक्षण, और सर्वाय अथात् श ◌्कभी पृथक् न िो सकने वाला सम्बन्ध किलाते िैं। प्रत्येक द्रव्य र्ें एक र्ाततगत गुण रिता ि◌ै, एक पवभर्ष्ट भेद रिता ि◌ै र्ान्य किलाते िैं। प्रत्येक द्रव्य र्ें एक ध से र्ुडा ि◌ुआ ि◌ै। सम्बन्धों को यथाथकश का सर्थनश ककसान दोनों के साथ सर्वाळवादा आध्याजत्क ज्ञान के भलए एक र्ौभलक आवश्यकता ि◌ै। यहद सम्बन्ध अयथाथ शिैं तो संसार र्ें केवल एक िी द्रव्य रि र्ाता ि◌ै र्ो तनरपेक्ष िोगा; अथवा यि र्त् ◌्ऐसे क्र्ाणुओं सेभर्लकर बना ि◌ै र्ो स्वतंत्र तया तनरपेक्ष ि◌ैं; परस्पर असम्बद्ध ि◌ैं तथा कभी भी सम्बद्ध निीं ि सकते।

सर्वाय की प्रकल्पना वैर्ेपेर्षक दर्नश र्ें एक तनबलश कडी ि◌ै। यि निीं ि सकता कक ि◌र् सर्वाय को दो भभन्न वस्तुओं का सम्बन्ध र्ानें और इसे ◌ेसंयोग से भभन्न प्रकार का भी र्ानें। यहद सर्वाय संयोग से भभन्न ि◌ै, तो पूण शइकाई हिस्सों के अततररक्त और उनसे ◌ेभभन्न कोई वस्तु ि◌ै। वैर्ेपर्षक का सर्वाय-सम्बन्धी-र्त, इसके अभाव-पवर्षयक र्त के िी सर्ान इस भाव का संकेत करता ि◌ै कक संसार एक व्यवजस्थत इकाई ि◌ै, जर्सर्ें तत्त्व परस्पर सम्बद्ध ि◌ैं। इस प्रकार इसका अनेकत्ववाद अजन्तर् भसद्धान्त निीं ि।

सार्ान्य तथा पवर्ेर्ष के अन्दर र्ो भेद ि◌ै, वि द्रव्यों के गुणों का भेद ि◌ै। पवर्ेर्ष, अथवा पवभर्ष्टता का स्वरूप क्या ि◌ै? यि बबलकुल सत्य ि◌ै कक ि◌र् पवलक्षण पवर्ेर्षों को र्ीवन के साधारण बुद्धध र्ें आनेवालेस्तर पर र्ान लेते िैं। ककन्तु यि पवर्ेर्ष ि◌ै क्या, इसका सन्तोर्षर्नक पववरण ि◌र् निीं दे सकते। वि क्या ि◌ै र्ो ककसी वस्तु को वस्तुपवर्ेर्ष बनाता ि◌ै? ककसी भी वस्तु के पवर्षय र्ें र्ो कुछ ि◌र् र्ानते ि◌ैं, वि उसके कुछ गुण ि◌ैं और यि कक ककस रूप र्ें वि व्यविार करती ि◌ै। अनुपर्ता की पररभार्षा निीं की र्ा सकती, तो भी यि अक्षय प्रतीत िोती ि◌ै। पवर्ेर्षता र्ात्र एक धारणा प्रतीत िोती ि◌ै, र्ो अभाव के िी बराबर ि◌ै। र्ीवात्र्ा िी को लें। क्या कोई ऐसी वस्तु भी ि◌ै जर्सेयि न बदल सके? यहद इसका पवर्ेर्षत्व कोई ऐसी वस्तु ि◌ै र्ो इसके ऐततिाभसक र्ीवन के साथ बदलती ि◌ै, तो यि पररवततततश िोनेकी क्षर्ता रखती ि◌ै। ककन्तु यहद यि एक अपररवतनशर्ील तत्त्व ि◌ै, तो ि◌र् निीं र्ानते ◌े कक यि क्या ि◌ै। यहद ि◌र् तथ्यों की ओर ध्यान दें तो ि◌र्ें 'नीला' निीं भर्लता, बजल्क सवदशा 'एक नीला' अथात्श ◌्एक पवर्ेर्ष प्रकार का नीला भर्लता ि◌ै। यि न तो स्वयं र्ें सार्ान्य ि◌ै और न यि पवभर्ष्टता िी ि◌ै र्ो पवर्ेर्ष पदाथ शको नीला बनाती ि◌ै। ि◌र् निीं र्ानते ◌ेकक ककस प्रकार ये एक अनुपर् पवर्ेर्ष को बनाने के भलए संयुक्त िोते ि◌ैं। अन्ततोगत्वा, ि◌र्ारा अनुपर्ता से क्या तात्पय शि◌ै, इसकी पररभार्षा ि◌र् निीं कर सकते।◌े यद्यपप 'पवर्ेर्ष' की प्रकल्पना ताकककशक प्रर्ाण के आधार पर भसद्ध निीं ि सकती, तो भी एक अनुभवर्न्य प्रबल पक्षपात ि◌र्ें प्रेरणा

 करता िै कक िर् व्यजक्तयों र्ें अनुपर् तथा अपवनश्वर तत्त्वों को स्वीकार करें। असंख्य तत्त्वों तथा आत्र्ाओं का

पवर्ेर्षत्व सम्पूण शइकाई के पवर्ेर्षत्व का नार् करने वाला िै। इस प्रकार यहद एक संघहटत इकाई के भाव को, र्ो वैर्ेपर्षक के अभाव तथा सर्वाय सम्बन्धी पवचार से उपलक्षक्षत िोता िै, पुष्ट करना िो तो पवर्ेर्षों के भसद्धान्त र्ें पररवतनश करना आवश्यक िै।'[778]

सार्ान्य का भाव कि र्ाता िै कक, पवचार करनेवाली बुद्धध पर तनभरश न रिकर, द्रव्यों, गुणों और कर्ों र्ें रिता िै, और इसे ितनत्य द्रव्यों र्ें तनत्य तथा अतनत्यों र्ें अतनत्य र्ाना र्ाता िै। यहद पवभर्ष्ट व्यजक्त तथा सार्ान्य सर्ान रूप सेयथाथ िैं, और यहद िर्ारी वैर्ैञातनक व्याजप्तयांप्राकृततक व्यवस्था र्ें तनत्यरूप से तनयत इन सिाओं से सम्बद्ध र्ानी र्ाती िैं, तो पवचार र्ें आने योग्य अच्छी, बुरी तथा तटस्थ सर्स्त सिाओं के भलए अनुकूल सार्ान्य िोनेचाहिए। इसके अततररक्त, ऐसेसार्ान्य निीं र्ो तनत्य िों। औपचाररक तकश के प्रभाव के कारण, जर्सकी प्रवृपि पवचारधारा को जस्थर करने की ओर िोती िै, न्याय-वैर्ेपर्षक, सारतत्त्वों, उनके गुणों तथा उनके भेदें पर वल देता िै। कोई भी वस्तु एक िी सर्य र्ें पवद्यर्ान तथा अभावात्र्क दोनों निीं िसकती। यिी पवरोध का पवधान िै, और इसी के प्रभाव से वस्तुएं भभन्न-भभन्न वगों र्ें पवभक्त की गई िैं और यि र्ाना गया िै कक ये वग शर्ब सेयि संसार बना और र्ब तक इसका अन्त निींिोता, इसी प्रकार के िैं और रिेंगे। डापवनश का पवकासवाद र्ाततयों की तनयतता के र्त को िीन र्ानता िै। प्राकृततक चुनाव के अधीन वैयैजक्तक भभन्नताओं के एकत्र िो र्ानेपर एक र्ातत पवकभसत िोकर अन्य र्ें पररणत िो र्ाती िै। वग शर्ैसे िैं, ये लाखों वर्षों की पवकास की प्रकिया के पररणार् िैं। वग शसबसे अधधक पररवतनशर्ील िैं और वतर्शान काल तक र्ें एक से दूसूरे के अन्दर पररवतततश िोते िरिते िैं। डैंल के पैतृक परम्परा-सम्बन्धी भसद्धान्त के अनुसार घोडेका स्वरूप यिांतक पररवतततश िो सकता िै कक पिचान र्ें न आ सके। तथाकधथत सार्ान्य अपररवतनशर्ील व स्वात्र्तनभरश प्रकार निीं, बजल्क पररजस्थततयों की पररवतततश िोती अवस्थाओं के अनुकूल वृद्धध तथा पवकास की र्ंज़लों को प्रदभर्तश करते िैं। र्ब वग शभर्टनेलगतेिैं तो ताककशक की आधारभूभर् िी पवलुप्त िो र्ाती िै, क्योंकक वि तो प्रकारों तथा सारतत्त्वों पर िी अपनेभसद्धान्त का तनर्ाणश करता िै। ककसी एक पवर्ेर्ष अवस्था र्ें सार्ान्य के द्वारा वग शका स्वरूप र्ताया र्ाता िै, यद्यपप यि स्वरूप ककसी भी प्रकार से अपररवतनशीय निीं। र्ब िर् सार्ान्यों को तनत्य किते िैं तो िर्ारा तात्पय शअनन्त सर्य तक उनकी सिा से निींिोता, बजल्क यि िोता िै कक

[778] तुलना कीजए ब्रेडलेसेः िे "अनेकों के स्वरूप, इसभलए, केवल अपनेर्ें (प्रत्येक अपने-आप र्ें) आत्र्-तनभरश निीं, क्योंकक यहद तुर् प्रत्येक र्ें से िउसके परे के प्रत्येक उल्लेख को भर्टा दो तो अनेकत्व किीं भी निींरिता। 'और' र्ब्द का अथ शभसवाय इसके और कुछ निीं किक यि पूण शइकाई के आधार को अभभव्यक्त करता िै, और एकात्र्ता से अलग पवपवधता का अपना कोई अथ शनिीं। इसभलए जर्न पवर्ेर्षों की आवश्यकता िै, वे स्वात्र्-पवरोधी िैं और पृथृक् पृथृक् पक्षों र्ें से िप्रत्येक के अन्दर भेद करने िसेतुर् बच निींसकते, क्योंकक इस प्रकार का र्ाग शिर्ें नये पवर्ेर्षों के पवभाग की ओर ले र्ाएगा जर्नर्ें से प्रत्येक के सम्बन्ध र्ें विी सर्स्या उत्पन्न िोगी। यहद अनेकों र्ें से प्रत्येक अपनेसे िपरे निीं, तो वे अनेक निींरिते। और दूसूरी ओर, र्ो आत्र्तनभरश निींरि सकता वि पवर्ेर्ष अथवा पवलक्षण भी निींकिा र्ा सकता। इसभलए पवर्ेर्ष, जर्नर्ें से प्रत्येक-यहद सम्भव िो सके तो-पवलक्षण िो, केवल अर्ूत शभाव िी भसद्ध िोते िैं और क्योंकक वे भसद्धान्त रूप र्ें स्यात्र्पवरोधी िैं, इसभलए अयथाथश िैं और अन्ततोगत्वा तनरथकश िैं" (लौजर्क, खण्ड 2, पृषूठ 651)। और भी देणखए र्ेंटाइल-कृत थ्योरी आफ र्ाइण्ड ऐर् प्योर एक्ट, अंग्रे ़ी भार्षानुवाद, पृषूठ 113।

काल-पवर्षयक सम्बन्धों से वे स्वतन्त्र ैं। रै्न ताककशकों का किना ै कक न्याय-वैरे्पर्षक भी अभाव के सार्ान्य भाव को, रो् पूववशती अभाव, पश्चाद्वती अभाव आहद रे् एकसर्ान र्ाना र्ाता ै, स्वीकार नीं करता; और न सार्ान्यों के सार्ान्यभाव को ी स्वीकार करता ै। यहद पवभभन्न सार्ान्यों अथवा पवभभन्न प्रकार के अभावों का सार्ान्य र्ात्र उनका सर्ान स्वरूप ै, तो र् कि सकते ैं कक सर्ान स्वरूप के अततररक्त अन्य ककसी प्रकार का सार्ान्य ै ी नीं। सार्ान्य की प्रकल्पना को पररवतनशर्ील तथा अपररवतनशर्ील रे् परस्पर भेदे करने की इच्छा से ी प्रेरणा भर्लती ै। यहद र् सार्ान्यों को उत्कृष्ट यथाथतशा के इजन्द्रयातीत र्गत् की वस्तु र्ानें, तो उनका सम्बन्ध पवरे्र् व्यजक्तयों के साथ, जनरें कक वे रिते ैं, स्थापपत करना कहठन ोगा। एक, तनत्य, सवगशत सार्ान्य तत्त्व का अनेक, अतनत्य, खजण्डत तथा एकाकी व्यजक्तयों के साथ सम्बन्ध स्थापपत करना आसान नींोगा। यहद सार्ान्य पवभर्ष्ट के साथ सि-अजस्तत्व नींरखता तो िर्ारी जस्थतत भी प्लेटो की पवचार-सम्बन्धी प्रकल्पना के ी सर्ान ो र्ाती ै, जर्सेवि 'वस्तुपूव-शसार्ान्य' का भसद्धान्त किता ै। श सार्ान्य तथा व्यजक्त को, एकाकार नींककया र्ा सकता। िरें व्यजक्तरूप तनतान्त पृथक् दो वस्तुओं को, अथात् र्गत् की, यि किकर कक उसका यथाथसशिा के साथ कोई बुद्धधगम्य सम्बन्ध नीं ै, और वि एक व्यथ श प्रतीततर्ात्र ै, अर्ान्य ठिराना ोगा। न्याय-वैरे्पर्षक स्वीकार करता ै कक सार्ान्य तथा व्यजक्त एक-दूसरे से पृथक् नीं ककए र्ा सकते, क्योंकक वे परस्पर सर्वाय-सम्बन्ध से रु्डे ुए ैं। दूसरे ब्दों रें, सार्ान्य तथा पवरे्र् रें भेद केवल पवचार-पवर्षयक ी ै, यथाथभेशद नीं ै, और तो भी असंगत रूप रें सार्ान्यों को स्वतन्त्र अजस्तत्व दे हदया गया ै। कल्पना की गई ै कक संसार के पवनार् के पीछे भी ये पवद्यर्ान रिते ैं और प्रलय की अवस्था रें उनका अधधष्ठानकाल ोता ै, जर्सेयथाथ शवस्तु सर्झा गया ै।

द्रव्य, गुण और कर् शको पवर्षयतनष्ठ र्ाना गया ै, बककक सम्बन्ध ताककशक पवश्लेर्षण की उपर् ैं, जर्नें पवश्व के तथ्यों का रूप देना िर्ारे अधधकार के बिार की बात ै। पिले तीन पदाथों के पवर्षय रें किा र्ाता ै कक वे सि के लक्षण को ग्रिण करते ैं, और सि के पवर्षय रें सर्झा र्ाता ै कक वि उस गुण का, अथात्श सत् से युक्त एक कल्पना का, तीनों पदाथों रें आधान करती ै। पवभभन्न सम्बन्ध-कारण-काय शऔर अन्योन्य तथा सि-उपजस्थतत का केवल एकत्रीकरण-असत् ैं, क्योंकक सब सत् पदाथ शव्यजक्तरूप ैं। गुण और कर् शसिावाची पवरे्ष्य के भभन्न-भभन्न प्रकार या पवरे्र्षण ैं।'[779] कोई भी काल-सम्बन्धी पररवतनश अथवा दभर्क गततयां क्यों न ों, गुण कारणकाय-शसम्बन्ध के सतत घटक र्ानेर्ा सकते ैं, बककक पररवतनशर्ील अवस्थाएं कर् शिैं रो् कारण-काय-शसम्बन्धी आकजस्र्क घटक ैं। द्रव्य के सम्पूणभशाव रें गुण और कर्,श सतत और आकजस्र्क घटक, दोनों सजम्र्भलत ैं, जर्नरें से ककसी का भी धचन्तन दूसरे से पृथक् नींककया र्ा सकता।[780] प्रत्येक द्रव्य की अपनी पवरे्र्ता, अपनेगुण और अपने कर् िोते ैं। साधारण बुद्धध संसार की घटनाओं को कुछ द्रव्यों के गुण सर्झती ै। वस्तु तथा उसके गुणों का भाव िर् सबके भलए इतना पररधचत ै कक िर्ारे सर्स्त अनुभव रें इसका प्रवेर् ै। वैरे्पर्षक इसे एक साधारण, असजन्दग्ध सूत्र के रूप रें र्ान लेता ै जर्सको भसद्ध करनेके भलए न तो ककसी श संर्कि तथा असंर्कि। संर्कि पवरे्र्ण ी

[779] डब्ल्यू. ई. र्ानसन पवरे्र्षणों को दो भागों रें पवभक्त करता ै, अथात् सम्बन्ध ैं। देणखए लोजर्क, खण्ड 1, पृष्ठ 37।

[780] डब्ल्यू. ई. र्ानसन लोजर्क, खण्ड 1, पृष्ठ 37।

अधधक पववेचन और न प्र्ाण की ि्ी आवश्यकता ि्ै। प्रत्येक यथाथ शवस्तु या तो द्रव्य ि्ै या उसका गुण ि्ै। गुण यथाथसशिा के आधश्रत पक्ष ि्ैऔर अपनेस्वतन्त्र रूप र्े रिने के अयोग्य ि्ैं। वे र्ीपवत द्रव्य के एक अधधक र्ौभलक रूप का संकेंत करते ि्ैं जर्सके कक वे गुण ि्ैं। द्रव्यों के अनेकत्व के अजस्तत्व को, जनर्ें से प्रत्येक अपने-आप र्ें पूण शि्ै और अन्य सब सेस्वतन्त्र ि्ै, साधारण बुद्धध का आदेर् र्ानकर स्वीकृत ककया गया ि्ै, यद्यपप इससे ि्र्, द्रव्य अपने-आप र्ें क्या ि्ै-इस पवर्षय र्ें कोई सन्तोर्षर्नक पवचार निींबना सकते।

द्रव्य और गुण की सरल कल्पना के पीछे ऐसी सर्स्याओं की गिराई तछपी ि्ै जर्नका सर्ाधान आर् तक निीं ्ि्ुआ। द्रव्य की पररभार्षा करते ि्ुए किा र्ाता ि्ै कक द्रव्य वि ि्ै र्ो गुणों का अधधष्ठान ि्ो।'[781] इस प्रकार गुणों का स्वतन्त्र अजस्तत्व निीं। ि्र् पवचार र्ें द्रव्य तथा गुण के अन्दर भेद करते ि्ैं, ककन्तु ऐसी धारणा बनाने की कोई आवश्यकता निीं ि्ै कक गुणों तथा कर्ों र्ें सार्ान्य तथा पवर्ेर्ष आहद की अपेक्षा यथाथतशा का अधधक ऊंचा अंर् पवद्यर्ान ि्ै। ककन्तु वैर्ेपर्षक की धारणा ि्ै कक गुणों के पवना भी द्रव्य रि सकता ि्ै। सृजृष्ट-रचना के आरजम्भक क्षण र्ें द्रव्यों को गुणरहित ि्ी बताया गया ि्ै, जर्सका तनदेर् यि ि्ै कक द्रव्य की तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी पिचान उसके गुणों की जस्थर पिचान के सर्ान निीं। द्रव्य के सारतत्त्व का, जर्सके ि्ी कारण वि द्रव्यरूप र्ें ि्ै, उन जस्थर गुणों के साथ, र्ो उसकी अपनी पवर्ेर्षता ि्ै, कोई पवर्ेर्ष सम्बन्ध निीं। द्रव्य के अपने अजस्तत्व के बने रिने के भलए गुणों के स्थातयत्व की अतनवायतशा निीं ि्ै। द्रव्यों के पवभर्ष्ट गुण काय शर्ानेगए ि्ैं, अथात्श ्ऐसे गुणों का उद्भव द्रव्यों के अन्दर से ि्ै। ककन्तु द्रव्य कारण कैसे ्बन सकता ि्ै, अथात्श ्अपने से भभन्न ककसी वस्तु को कैसे ्उत्पन्न कर सकता ि्ै? सर्स्त तनजश्चत और रूत शगुणों से ऊपर र्ो कुछ ि्ै वि ि्र्ारे पवचार के भलए पवर्षय-वस्तु से सवथशा ररक्त ि्ै। यि एक अज्ञात कजल्पत वस्तु ि्ै, अथात्श ्"र् ्ैंनिींर्ानता कक क्या ि्ै" र्ो सब गुणों की पृष्ठभूभर् र्ें ि्ै। पवचार के एक धचरस्थायी स्वभाव की प्रवृपि के कारण ि्र् गुणों की अपेक्षा द्रव्य को अधधक यथाथ शसर्झते ि्ैं। वैर्ेपर्षक के द्रव्य एक अज्ञात अधधष्ठान ि्ैं, जर्सके द्वारा अनुभव र्ें आनेवाले गुणों की व्याख्या ि्ो सके। ये सम्भाव्य कल्पना के पररणार् ि्ैं, वैज्ञातनक तनरीक्षणों के निीं। ककन्तु वैर्ेपर्षक यि भी र्ानता ि्ै कक यहद कोई वस्तु अपनेगुणों को खो दे तो उसका स्वरूप भी नष्ट ि्ो र्ाता ि्ै। द्रव्यों तथा गुणों का परस्पर सम्बन्ध सर्वाय-सम्बन्ध किा र्ाता ि्ै, अथात् श ्इन दोनों र्ें से कोई भी एक-दूसरे के बबना निीं ्रि सकता।'[782]

द्रव्य और गुण के बीच र्ो उक्त प्रकार का सम्बन्ध बताया गया ि्ै, र्ंकराचाय शhat 7 उसकी आलोचना की ि्ै। यहद दोनों इस प्रकार संयुक्त ि्ैं कक उन्िें पृथक् निीं ककया र्ा सकता, तो यि अपवभाज्यता देर्, काल तथा स्वभाव से सम्बद्ध ि्ोगी। दोनों देर्ों के अन्दर अपवभाज्य निीं, क्योंकक धागों से बननेवाला कपडा केवल धागों की र्गि घेरता ि्ै, कपडे का स्थान (देर्) निीं ्घेरता र्बकक कपडे के गुण रै्से ्इसका रंग आहद केवल कपडे का ि्ी

781 र्िांप्राचीन न्याय नेद्रव्य की पररभार्षा करते ि्ुए इसेगुणों तथा कर्ों का अधधष्ठान बताया ि्ै, विांआधुतनक न्याय अपनी पररभार्षा र्ें इसेकेवल गुणों का ि्ी अधधष्ठान बताता ि्ै।

782 देणखए गौडपादकृत काररका, 3 / 5 पर र्ंकराचाय।श

स्थान घेरतिैं धागों का निीं।[783] यहद काल र्् अपवभाज्यता को सर्वाय-सम्बन्ध का सारतत्त्व र्ानें, तो गाय के दाय ेंऔर बाय ेंसींग भी सर्वाय-सम्बन्ध से संयुक्त िोंगे। और यहद यि अपवभाज्यता स्वभाव र्् िै तो द्रव्य और गुण र्् आगे ेकोई भेद असम्भव िोगा, क्योंकक दोनों एक िी िैं।'[784]

यहद द्रव्य अपनेगुणों के आधश्रत िै तो वि वस्तुतः स्वतन्त्र निींिै। द्रव्य केवल अपनेगुणों के साथ सर्वाय-सम्बन्ध से संयुक्त निींिै, बजल्क सभी द्रव्य द्रव्यत्व के एक सार्ान्य भाव से संयुक्त िैं, और व्यजक्तरूप र्् प्रत्येक द्रव्य उसी प्रकार अपनेवग शके भाव से संयुक्त िै।'[785] गुणों से अलग द्रव्य का िर्् प्रत्यक्ष निींिोता, और इस प्रकार की धारणा कक गुणों के पररवतनश िोने पर भी कोई वस्तु अपररवततततश रि र्ाती िै, तकश के पवरुद्ध िै।'[786] यहद िर्् उन गुणों को अपना आधार बनाएं ंर्ो पररवततततश िो र्ाते िैं, तो स्थायी द्रव्य कोई िो िी निींसकता। पिी र्ो आर्् तार्ी, िरे रंग की तथा रस सेपूण शिै, अगले ेहदन म्लान िोकर पीली पड र्ाती िै, और उससेभी अगले ेहदन भूरे रंग की और र्ुरझाई िुई हदखाई देती िै। इसभलए िर्् निींर्ान सकते कक उस पिी का स्थायी गुण क्या िै। दर्नशर्ास्त्र का सम्पूण शइततिास यि भसद्ध करता िै कक वस्तु का अन्तस्तल एक ऐसा रिस्य िैजर्सके अन्दर प्रवेर्् करना कहठन िै।[787] अपनेगुणों तथा कर्ों को छोडकर द्रव्य क्या वस्तु िै, यि र्ाननेकी आर्ा िर्् निींकर सकते। आनुभपवक र्गत् र्््ें िर्् द्रव्य तथा गुण, इन पदाथों का उपयोग करने को बाध्य िोना पिता िै, यद्यपप अजस्तत्व को िर्् गुणों के रूप र्् निीं ंला सकते,े और तो भी वैर्े्पर्षक स्वीकार करता िै कक द्रव्य अपनेगुणों से अलग कुछ निीं ंिै। िर्् द्रव्य की पररभार्षा केवल उसके गुणों के द्वारा िी कर सकते िैं। इसी प्रकार पदाथों र्् परस्पर भेद भी उनके भभन्न-भभन्न गुणों के द्वारा िी कर सकते िैं। िर्् एक पदाथ शको भभन्न-भभन्न सर्यों र्् विी तभी तक कितिैं र्ब तक कक उसर्् विी गुण रिते िैं। र्ब िर्् भभन्न गुणसर्ूिों को पाते िैंतो िर्् किते िैं कक ये वस्तुएं भभन्न िैं। द्रव्य िर्ारे अनुभव के स्थायी तत्त्वों का तनदेर्् करता िै। आत्र्ाएंऔर परर्ाणु, देर््, काल, आकार्् और र्न िर्ारे अनुभव के तनरन्तर रिनेवाले अवयवों का तनदेर्् करते िैं।

वैर्े्पर्षक का प्रयत्न अनुभव के सभी पिलुओं को लेकर उन््िेंएक सार्ान्य योर्ना र्् ठीक-ठीक स्थान पर वैठाना िै। इजन्द्रयगम्य र्गत् ्का एक यथाथ शआधार िै, र्ो प्रत्यक्षदर्ी से स्वतन्त्र िै। सम्बन्ध इन अथों र्् यथाथ शिैं कक इन््िेंर्नुष्य के र्न ने निींबनाया िै, वैर्े्पर्षक की सम्र्तत र्् अनुभव िर्् केवल बिुपवध रूप र्् प्राप्त निीं ंिोता िै। यि तनयर्ों र्् स्थापपत िै, र्ो इस पर केवल आरोपपत निींककए गए िैं। गुण, कर््,श सार्ान्य,

---

783 वैर्े्पर्षकसूत्र, 1/1, 10 ।

784 र्ांकरभाष्य, 2/2, 17 ।

785 श्री िर्ष शपूछता िै कक गुण, र्ो संख्या र्ैसेअन्य गुणों को धारण करते िैं, द्रव्यों के अन्तगतश क्यों निींलाए गए। यहद गुणों की पररभार्षा करते िुए यि किा र्ाता िै कक ये सार्ान्य के अधधष्ठान िैं, तो वि पूछता िै कक पवध्यात्र्क सिाओं, यथा उपाधधयों, के अधधष्ठान िैं या निीं (खण्डन, 4 : 3)। अलेक्रेण्डर गुण को पदाथ शर्ाननेको उद्यत निींिै।

786 परन्तु देखखए न्यायवातततकश, 1 1, 13, र्िां 'पृधथव्याहदगुणाः' की द्वन्द्व सर्ास र्ाना गया िै, र्जर्सका तात्पय शपृथ्वी आहद और गुण िैं, और यि सुझाया गया िै कक द्रव्यों और गुणों का बोध इजन्द्रयों द्वारा िोता िै।

787 सांख्य द्रव्य और गुण को एक िी यथाथतशासम्पन्न र्ानता िै। अद्वैत वेदान्त द्रव्य के पवचार को अताककशक र्ानता िै तथा सर्झता िै कक यि केवल पवचार का एक प्रकार िै। तुलना कीजर्ए लोक : 'ऐस्सेआन हद ह्यूर्न अण्डरस्टैंडडंग' ।

 पवर्ेर्ष और सर्वाय आधश्रत पदाथ र्शिं, र्बकक द्रव्य एक स्वतन्त्र सिा िै जर्स (आश्रय) पर वे सब आधश्रत िैं। द्रव्य

तनतान्त अनाधश्रत िैं। अतनत्य द्रव्य, र्ो कारण से उत्पन्न िैं, यथाथ शर्ें द्रव्य निीं िै। नौ तनत्य द्रव्यों का भसद्धान्त वैर्ेपेर्षक के अनेकवाद का प्रधान प्रततपाद्य पवर्षय बन र्ाता िै। ये नौ तनत्य द्रव्य, प्रोफेसर व्िाइटिैड के अनुसार, वैज्ञातनक पदाथ र्शिं, र्ो प्रत्यक्ष-पवर्षयक पदाथों तथा इजन्द्रयसार्ग्री से भभन्न िैं। इनका र्ित्त्व इसर्ें िै कक ये प्रत्यक्ष की सार्ग्री की व्याख्या करने तथा उसेव्यवजस्थत करने, इजन्द्रयों द्वारा प्रत्यक्ष र्ें आने वाली प्रकृतत को अधधक बुद्धधगम्य बनाने की क्षर्ता रखते िैं। प्रकृततवाद-सम्बन्धी पक्षपात के कारण वैर्ेपर्षक पवचारक अनुभव को एक तनरन्तर पररवतततश िोनेवाले छायाधचत्र की भांतत र्ानने के भलए बाध्य िोते िैं, जर्सकी व्याख्या के भलए बाह्य साधनों की आवश्यकता िै। वे अनुभूत पदाथों को परदे पर पडे िुए छायाधचत्रों की भांतत र्ानते िैं जर्नकी पृष्ठभूभर् र्ें द्रव्य िैं। द्रव्यों के द्वारा, र्ो पृष्ठभूभर् र्ें तछपे रिते िैं, िर्ारे र्न के परदे पर छायाधचत्र प्रकट िोते िैं। यि एक काल्पतनक धारणा िै, जर्सके भलए कोई प्रर्ाण िर्ारे पास निीं। िर्ें अनुभव के पीछे र्ाकर ऐसी वस्तुओं की कल्पना करने की आवश्यकता निीं िै। अपने-आप र्ें रिस्यपूण र्शिं। वैर्ेपर्षक र्िं आदेर् देता िै कक िर्ें आनुभपवक चेतना के तनणयशों को िी सिी र्ानना चाहिए, क्योंकक यि किा र्ाता िै कक वि आहद से अन्त तक यथाथ शतथा पृथक् पृथक् वस्तुओं का प्रततपादन करती िै। ककन्तु वि स्वयं िी चेतना की साक्षी से परे र्ा रिा िै, र्बकक वि आनुभपवक र्गत् ्को एक प्रकार का परदा र्ानता िै, र्ो िर्ारे तथा अदृश्य यथाथसशिाओंके बीच र्ें पडा िुआ िै। वैर्ेपर्षक दृश्य वस्तुओं को सरल करने अथवा संयुक्त करने का काय शअपने ऊपर लेता िै, ककन्तु र्ब वि इस प्रकार की धारणा बनाता िै कक र्गत् ्की अनेकता तक ताजत्त्वक अनेकता का दृश्य र्ात्र िै तो एक भर्थ्या तत्त्वज्ञान का आश्रय लेता िै। ककन्तु र्ब वि एक बार अनुभूत एकत्व को अनेकों पवभभन्न तत्त्वों र्ें भंग कर देता िै, तो उन्िें किर से एक पूण शइकाई र्ें संयुक्त निींकर सकता। एक तततर-बबतर और पवयुक्त पवपवधता एकत्व को उत्पन्न निींकर सकती, र्ब तक कक इसर्ें दैवीय र्जक्त िी का िाथ न िो। ये द्रव्य अपने तनत्य आत्र्-स्वरूप तथा अतनत्य अभभव्यजक्तयों, दोनों अवस्थाओंर्ें िी एक सुसंगत इकाई का तनर्ाणश निींकर सकते। ऐसी कोई श्रृंखला निीं जर्सर्ें िर् इन्िें एकसाथ बांध सकें।

द्रव्यों के अन्तःसम्बन्ध के पवचार को सुचारू रूप से पवकभसत निींककया गया। वैर्ेपर्षक र्िां ंसम्बद्धता को आनुभपवक र्गत् ्का प्रधान लक्षण र्ानता िै, विां ंअसम्बद्ध परर्ाणुओं तथा आत्र्ाओं को वैज्ञातनक पदाथ श र्ानकर वि सब प्रकार के सम्बन्धों को बाह्य तथा स्वच्छन्द बना देता िै। यथाथ शसत्रूपी र्गत् ्अथात् श ्नौ तनत्य द्रव्य, पररवतनश से सदा अप्रभापवत रिते िैं, और दृश्यर्ान पररवतनश का आधार स्वयं यथाथ शके ककसी लक्षण र्ें भी निींखोर्ा र्ा सकता। सम्बद्धता इस प्रकार यथाथसशिाओं की एक बाह्य घटना बन र्ाती िै। असंसक्त परर्ाणु ु दृश्यर्ान र्गत् ्का कारण निीिं सकते। दृश्यर्ान वस्तुओंको उत्पन्न करने के भलए उन्िें अवश्य परस्पर भर्लना तथा टकराना चाहिए। यहद परर्ाणुओं र्ें गतत-सम्बन्धी गुण िै तो वे सिी अथों र्ें असम्पृक्त निीं, क्योंकक परर्ाणुओं की गतत भी उनके असम्पृक्त िोनेका तनर्ेध करती िै। अदृष्ट को र्ाननेका अथ शदार्तशनक व्याख्या की िर संभावना को छोड देना िै। यहद वैर्ेपर्षक सम्बन्धों की यथाथतशा के अपने भसद्धान्त के प्रतत दृढ़ रिना चािता िै, जर्से ेवि पदाथों अथवा अनुभूत र्गत् ्का पववरण देते िुए अंगीकार करता िै, तो उसे ेतनत्य अपररवतनशर्ील द्रव्यों की, र्ो वैज्ञातनक पदाथ र्शि, अपनी कल्पना को त्याग देना िोगा, और सम्बद्धता को भी

 यथाथ शबनाना ि ोगा। यथाथ शसम्बद्धता सम्बद्ध तत्त्वों की तनतान्त स्वतन्त्रता के साथ संगतत निंीखा सकती।

इसभलए तथाकधथत तनत्य द्रव्य अभर्धश्रत, पररवतनशरहित स्थायी तत्त्व निंी ंि ो सकते, बजल्क एक तनरन्तर पररवतनशर्ील पद्धतत के केवल अपेक्षाकृत जस्थर बबन्दु ि ो सकते िैं। यहद पररवतनश और सम्बद्धता का यथाथतशा के सारित्त्व से सम्बन्ध ि ै, तो यथाथतशा अभर्धश्रत यथाथसशिाओं का सर्ुच्चय निंीं। सिी अथों र्ें वैज्ञातनक पदाथ शतनत्य द्रव्य निंीं, बबजल्क स्वयं र्गत् ्की सदा पररवतनशर्ील अभभन्नता ि ै।

ब वैर्ेपर्षक तनत्य परर्ाणुर्ओं को तथ्य रूप र्ें र्ान लेता ि ै तो इसका आर्य इस प्रकार के सुझाव सि ै कक देर्-काल के पवस्तृत क्षेत्रों र्ें ि र् अतीजन्द्रय कणों का एक सर्ूि पाते िैं। ये कण इतनेअधधक सूक्ष्र् ि ैं कक अकेले र्नुष्य के दृजष्टक्षेत्र को स्पर् शनिंीकर सकते, यद्यपप ब ये परस्पर संयुक्त ि ो र्ाते िैं तो दृश्यर्ान कोहट र्ें आ र्ाते िैं। इनके ये संयुक्त रूप न्यूनाधधक पररणार् र्ें स्थायी िोते ि ैं, यद्यपप ककन्र्िीभी अथों र्ें तनत्य स्थायी निंीिंिैं। कायकशारण भसद्धांत के प्रयोग के भलए, कक असत् ्से कुछ उत्पन्न निंीिंिा, इन तनत्य परर्ाणुओं की स्थापना आवश्यक ि ैं। वैर्ेपेर्षक का इस प्रकार का तकश ठीक ि ी ि ै कक रिं ंआयार् (पवस्तार), लम्बाई, आकृतत काल और गतत, देर्-काल सम्बन्धी गुण ि ैं, विंगन्ध, रस, रंग, उष्णता और र्ब्द देर्-काल को भरने वाले गुण ि ैं। कफलिाल र्ब्द को एक ओर रखकर, वैर्ैपर्षक गन्ध, रस, रंग तथा उष्णता को, र्ो ि र्ारे अनुभव की पवर्षयवस्तु ि ैं, परर्ाणुओं से आया बताया ि ै। क्योंकक ि र्ारे अनुभव के ये लक्षण स्थायी ि ैं, इसभलए वि इनकी व्याख्या परर्ाणुओं को तनत्य र्ानकर करता ि ै, अनुभव के पररवतनशर्ील पिलुओं का उद्भव अतनत्य द्रव्यों से तथा स्थायी पिलुओं का तनत्य द्रव्यों से बताता ि ै। अजन्तर् सार्ग्री, जर्सको लेकर वैर्ेपर्षक आगे ंबढ़ता ि ैऔर जर्सकी व्याख्या करनेका वि प्रयत्न करता ि ै, ि र्ारे इजन्द्रयानुभव ि ैं। परर्ाणु अपने-आप र्ें ि र्ारे प्रत्यक्ष ज्ञान की पिंुच से बिार ि ैं, यि स्पष्ट स्वीकार ककया गया ि ै, यद्यपप इस सब दृश्य के प्रादुर्भावश के भलए, जर्सेर् देख सकते ि ैं और देखते ि ैं, उन्िें अतनवाय शसर्झा गया ि ै। ि र् रंगों, र्ब्दों, रसों तथा उष्णताओं का प्रत्यक्ष अनुभव करते ि ैं। इस इजन्द्रय-सार्ग्री को ि र् प्रकृतत के भाग के रूप र्ें प्रत्यक्ष अनुभव करते ि ैं, न कक र्न के भाग के रूप र्ें, र्ैसा कक बौद्ध र्ानते ि ैं ककन्तु क्या ि र्ें परर्ाणुओं को इस इजन्द्रय-सार्ग्री के अतीजन्द्रय कारण र्ानने की आवश्यकता ि ै? यहद ि र् रंगों, र्ब्दों, स्पर्ों तथा रसों का ि र्ें एक-दूसरे से पृथक् प्रत्यक्ष करें तब तो प्रकृतत को परर्ाणुओं के टुकडों सेबना िुआ र्ाननेर्ें कुछ औधचत्य ि ो सकता ि ै। ककन्तु वैर्ेपर्षक इस पर ठीक ि ी बल देता ि ै कक दृश्यर्ान प्रकृतत एक सम्बद्धता ि ै, एक-दूसरे र्ें पवलीन िोती इजन्द्रय-सार्ग्री का एक पुंर् ि ै, एक तनरन्तर बिती धारा ि ै। इसी इजन्द्रय सार्ग्री र्ें सिर् अपनेअनुभव सम्बन्धी पवचार का तनर्ाणश करते ि ैं जर्सर्ें वस्तुएं, उनके गुण और सम्बन्ध सजम्भलत ि ैं। ककन्तु कजल्पत परर्ाणु आनुभपवक र्गत् ्के अन्ततनहशित घटक निंीं। परर्ाणुओं की प्रकल्पना केवल नई कहठनाइयांिी उत्पन्न करती ि ै और वैर्ेपर्षक दर्नश को पवर्षतयपवज्ञानवाद के संकटों की ओर ले र्ाती ि ै। ि र्ें परर्ाणुओं का बोध निंी ंि ोता, तो भी उन्िें एकर्ात्र यथाथसशिा र्ान भलया गया ि ै र्ो अनुभूत पदाथ शको उत्पन्न करती ि ै। कायकशारण भसद्धान्त का व्यविार याजन्त्रक ि ै, और जर्सका ि र् प्रत्यक्ष ज्ञान करते ि ैंवि, जर्सका अजस्तत्व ि ै उसके साथ, अथात्श ्अनुभव के काल्पतनक अप्रर्ाणणत कारणों-परर्ाणुओं के साथ, कोई सम्बन्ध निंीरखता। ये अर्ूत शआधार इन पर तनर्ाणश ककए गए र्ूत शअनुभव के भलए अपयाप्शत ि ैं। ि र्ारा अनुभव घटनाओंकी श्रृंखला से बना ि ै, र्ो देर् और काल से

सम्बद्ध ि। प्रत्येक घटना की एक दैभर्क जस्थतत िोती िै, अथात्श ्वि ककसी स्थान-पवर्ेष पर िोती िै; और उसका कुछ इततिास िोता िै, अथात्श ्यि ककसी काल-पवर्ेष र्े िोती िै। ककन्तु ये देर् और काल सम्बन्धी गुण की घटना का पूण श्स्वरूप निीं। िर्े भौततक पवन्दुओं अथात् श ्परर्ाणुओंके पवषय र्े कुछ भी ज्ञान निीं। र्ो कुछ िर् यि र्ानते िैं, यि िै कक र्रीर एक िी सर्य र्े अनेकों जस्थततयों र्े रिते िैं, और इसभलए िर् यि किते िैंकक वे देर्ीय पवस्तार तथा रूप वाले िैं। सिी-सिी अथों र्े, िर् न तो व्यापक प्रकृतत को र्ानते िैं और न अदृश्य परर्ाणुओं को िी र्ानते िैं, बजल्क केवल पपण्डों को र्ानते िैं। साधारणतः र्ो गतत करता िै उसे िर् पपण्ड किते िैं। यि प्रकृतत का, र्ो अपनेभागों की प्राकृततक जस्थतत को अपररवतततश रूप र्े जस्थर रखती िै, एक हिस्सा िै, ककन्तु अन्य जस्थततयों के साथ उनके सम्बन्ध पररवतततश िो र्ाते िैं। एक पवस्तृत इकाई की सीर्ाएंजस्थर िोती िैं, और र्ब तक आभ्यन्तर तथा बाह्य सम्बन्धों को यि स्वतंत्रता बनी रिती िै उसकी पिचान र्े कोई पररवतनश निींआता। जर्सिर् वस्तु अथवा पपण्ड के नार् से पुकारते िैं वि देर् का एक क्षेत्र-पवर्ेष िै, र्ो ककसी पवर्ेष लक्षण द्वारा लक्षक्षत िोता िै और काल के अन्दर अपररवतततश रिता िै। िर्े अनुभव र्े र्ो भर्श्रण प्राप्त िोता िै, िर् उसर्े देर् तथा काल की घेरनेवालेपपण्ड को स्वयं देर् तथा काल सेभभन्न करते िैं। प्रकृतत वि िै र्ो देर्-काल के सांचे को भरती िै।'[788] वैर्ेपषक उन बौद्ध कल्पनाओं से सिर्त निींिैं जर्नकी तुलना अलेग्रेंडर तथा रसल र्ैसे ेकुछ नव्य यथाथवशाहदयों की कल्पनाओं से की र्ा सकती िै और र्ो व्यजक्त को सार्ान्य से, यथाथ शवस्तुओं को उनके सम्बन्धों से, ब्दों को उनके अथ-शसम्बन्धों से और प्रकृतत को देर् और काल के संयोग से उत्पन्न र्ानती िै। गततर्ान पदाथों के पवना गतत निींिो सकती। वैर्ेपषक परर्ाणु ुको यथाथसशिा र्ानती िै; सीर्ा तनर्ाणश करने वाला केवल पवचार निीं। वैर्ेपषक के र्त र्े परर्ाणु ुरंग आहद गुणों के धारण करने वाला कि र्ाते िैं। र्ंकराचाय श का तकश िै कक जर्सर्े रंग आहद गुण िैं वि अणु ु(सूक्ष्र्) तथा तनत्य निीं ंिो सकता। अनुभव के आधार पर तनणयश करने से भी रंग आहद गुणों से सम्पन्न पदाथ शस्थूलरूशप तथा अस्थायी िै।[789] यहद प्रत्यक्ष न िोना स्थायीभाव का संकेत र्ाना र्ाए तो द्वयणुकों को भी, र्ो इतनेसूक्ष्र् िैं कक प्रत्यक्ष का पवषय निींिैं, स्थायी र्ानना चाहिए।'[790] यहद पवश्व के आधार का तनत्य िोना आवश्यक िै तो परर्ाणु ुतनश्चय िी पवश्व के आधार निींर्ानेर्ा सकते।'[791] र्गत् ्की जस्थरता (तनजश्चत) परर्ाणुओं की पवभभन्नता के कारण बताई र्ाती िै। ककन्तु तनतान्त बाह्य तथा आकजस्र्क सम्बन्ध र्गत् ्के तनजश्चत स्वरूप की व्याख्या निींकर सकते। प्रकृतत के अपनी भभन्न-भभन्न अवस्थाओंर्े रूपान्तरण की प्रकल्पना परर्ाणुओं के तनपवकशार िोनेकी कल्पना के पवरुद्ध र्ाती िै। र्िां ं साधारण धचन्तनपविीन अनुभव र्गत् ्को खण्डों र्े पवभक्त करता िै र्िां ंप्रत्येक वस्तु एक-दूसरी से पृथक् निीं ं तो पवलक्षण अवश्य िै, विां थोडा-सा भी धचन्तन िर्े यि र्ताता िै कक वस्तुएं एक-दूसरी र्े पररणत िो र्ाती िैं। बनना नार् की एक वस्तु िै जर्से ेपवकास भी किते िैं। वस्तु-सम्बन्धी सत्य नर्ूनों की अनेकता निींबजल्क एक वस्तुतः घटनाएं िी ठोस सार्ग्री िैं जर्नसेदेर् और काल का प्रादुभावश िुआ। र्ात्र पवस्तार और र्ुद्ध िभर्क प्रकिया दोनों

---

788 िी अर्ूत शभाव िैं। यहद पवश्व की र्ौभलक इकाइयों कोई िैं तो वे देर्-काल-प्रकृतत िैं, जर्न्िें प्रोफेसर व्िाइटिेड घटनाएं किते िैं। पदाथों की स्थायी सार्ग्री, अथातुश देर् और काल, सब घटनाओं के आधश्रत िैं।

789 वैर्ेपषकसूत्र, 4/1, 1 ।

790 4/1, 5 ।

791 र्ांकरभाष्य, 2/2, 15 ।

 सार्ान्य स्वरूप ि ै। वैरे्पेर्षक को अपनी आनुभपवक प्रवृपि के कारण िोने(सत्)् के पवचार से ऊपर बनने के पवचार

को स्थान देना चाहिए था। यहद िर् ककसी एक वस्तु से दूसूरी की अपेक्ेषा अधधक प्रभापवत िोते िैं, तो यि प्रकृतत के

एकत्व और सब श्रे्रेणणयों के 'परर्ाणुओं' के उद्भव-स्थान की र्ौभलक एकता के िी कारण िै। पवकास का पवचार इस बात का उपलक्षण ि ै कक नाना आकृततयों की अपेक्ेषा उस तत्त्व का र्ित्त्व किीं अधधक ि ै र्ो उन सब आकृततयों र्ें सेगुर्रता िै। यथाथतशा, र्ो िर्ारे सर्क्ष आती ि,ै स्वरूप र्ें परर्ाणु–तनभर्तश निीं, बजल्क एक ऐसी सार्ग्री प्रतीत िोती ि ै जर्सके भभन्न-भभन्न गुणों वालेपिलू एक-दूसूरे र्ें पवलीन िो र्ाते िैं। र्ंकराचाय शका किना ि ै कक भभन्न-भभन्न तत्त्व एक िी परर्तत्त्व की भभन्न-भभन्न अवस्थाएं ि,ैं रै्स ै ेपृथ्वूी ठोस ि,ै र्ल अपेक्षाकृत सूक्ष्र् ि,ै प्रकार् उससेभी सूक्ष्र् ि ै और वायु सबसे सूक्ष्र् िै।'[792] उक्त चारों तत्त्वों के अनुकूल परर्ाणुओं के पवर्षय र्ें यि कल्पना निींकी र्ा सकती कक उनर्ें गुणों की संख्या अधधक अथवा न्यून िोगी, केवल इसभलए कक पृथ्वूी र्ें चार गुण ि,ै र्ल र्ें तीन गुण िैं, और इसी प्रकार इन तत्त्वों र्ें गुण कर् िोते ेगए िैं। कफर सब परर्ाणुओं र्ें सब गुण ि,ैं यि भी निींकिा र्ा सकता। यहद उनर्ें केवल एक िी गुण र्ाना र्ाए तो िर्ें पृथ्वूी र्ें रस का प्रत्यक्ष न िोना चाहिए, अथवा र्ल र्ें रूप का प्रत्यक्ष न िोना चाहिए, क्योंकक कायों के गुण कारणों के पूववशती गुणों के कारण िोते िैं।[793] परस्पर पवलक्षण परर्ाणुओं की अनन्त राभर् एक सार्ंर्स्यपूण श पवश्व को उत्पन्न निींकर सकती। इस कहठनाई को दूरू करने के भलए सर्वाय के रिस्यर्य सम्बन्ध का आपवष्कार ककया गया िै। किा र्ाता ि ै कक द्वयणुक, र्ो दो परर्ाणुओं से भर्लकर बनते िैं, उन परर्ाणुओं से भभन्न िैं, यद्यपप सर्वाय-सम्बन्ध से उनके साथ सम्बद्ध िैं।

परर्ाणु घटनाओं के प्रवाि के स्थायी घटक िैं। प्रकृतत र्ें कुछ ऐसा भी ि ै र्ो गतत निीं ंकरता। िर्ारे अनुभव र्ें कुछ जस्थर तत्त्व िोते िैं जर्न्िें िर् द्रव्यों से सम्बद्ध करते िैं। रै्सा कक िर् पिले ेदेख चुके िैं, द्रव्य उस पवधध-पवर्ेर्ष का नार् ि ै जर्सके अनुसार वस्तुओं का व्यविार चलता िै। िर्ारे अनुभव के कुछ तनत्य लक्षण ि,ैं यद्यपप यि पररवतनशर्ील स्वभाव वाला िै। इस प्रकार अनुभव द्वारा िर् जर्स अतनवाय शपररणार् पर पिुंचतें वि यि ि ै कक प्रकृतत का तत्त्व कुछ ऐसी चीर् ि ै र्ो बराबर पररवतततश िोती रिती ि ै यद्यपप वि तनरन्तर जस्थर रिती िै। परर्ाणुओं की प्रकल्पना से केवल यिी उपयोगी सुझाव दर्नशर्ास्त्र को भर्लता ि ै कक यथाथ शवि ि ै जर्सका स्वयं अपनेर्ें और अपने भलए अजस्तत्व िै। ठोस आदर्वशाद र्ें सम्पूण शइकाई िी इस प्रकार की यथाथतशा रखती ि,ै क्योंकक हिस्सों के पवर्ेर्षत्व का अथ शसम्पूण शइकाई के पवर्ेर्षत्व का नार् िोगा। ककन्तु सम्पूण शइकाई का अपनेहिस्सों के साथ सम्बन्ध कहठनाइयों से खाली निीं ि,ै इसभलए यथाथसशिा का चेतेनता से िी तादात्म्य िो सकता िै।

र्ब वैर्ेपर्षक देर् और काल के व्यापक (सार्ान्य) तथा यथाथरूशप का प्रततपादन करता ि ै तो उसका अभभप्राय यिी ि ै कक यि पवश्व जर्स रूप र्ें िर्ें प्रतीत िोता ि,ै एक अनन्त पवस्तार ि,ै एक ऐसी अवधध ि ै जर्सका

---

792 आधुतनक पवज्ञान परर्ाणुओं को पवद्युत से ेतनकला िुआ बताता ि,ै और प्रकृतत लगभग आत्र्ा िी के सर्ान आकार्ीय तत्त्व बनती र्ा रिी िै।

793 र्ांकरभाष्य, 2/216 |

र्ाप निीं ंिो सकता, एक ऐसा रून्य िै जर्सकी कोई सीर्ाएंनिीं, कोई तल निीं और कोई अन्त निीं।
प्रत्येक घटना के अन्दर देर् तथा काल सम्बन्धी गुण रिते िैं। यहद ककसी वस्तु की दैभर्क जस्थतत विी रिती िै
और काभलक जस्थतत र्ें पररवतनश िोता िै, तो िर् किते िैं कक रीर तनश्चेष्ट िै; ककन्तु यहद यि तनरन्तर
पररवतनश र्ें आती िै जर्स प्रकार कक काल बराबर पररवतततश िोता िै, तो िर् उसे ेगतत कितें। िर्ारे अनुभव का
क्योंकक एक देर्काभलक स्वरूप िै, इसभलए वैर्ेपर्षक अनुर्ान करता िै कक देर् और काल िर् से वाह्य िैंऔर ये
ररक्त पात्रों के सर्ान िैं, जर्नका भरना वस्तुओं तथा घटनाओं से िोता िै। सत्य यि प्रतीत िोता िै कक देर् व काल
पवर्षयक सम्बन्ध देर् तथा काल सम्बन्धी प्रत्यक्षानुभवों से बने िैं। यहद िर्ारे अनुभव के देर् तथा काल
सम्बन्धी स्वरूपों की र्ांग यि िै कक िर् देर् तथा काल को व्यापक द्रव्य स्वीकार करें, तो कोई कारण निींकक
िर् इस पवराट अन्तररक्ष र्ें एक पवराट बुद्धध को, एक पवराट प्रकार् को, एक पवराट अंधकार को और अच्छे-बुरे
तथा तटस्थ उन सब गुणों के पवराट पवश्वीय भण्डारों को भी स्वीकार न करें र्ो िर्ारे वास्तपवक अनुभवों को
स्वरूप प्रदान करते िैं। देर् और काल अनुभवों से उत्पन्न निींर्ानेर्ा सकते, क्योंकक अनुभव उनकी
पूवपशवद्यर्ानता को स्वीकार करता िै। यि किनेते कक देर् और काल व्यापक िैं, सवगशत द्रव्य िैं, उनका
अभभप्राय यिी िै कक र्ो कुछ िै, देर् के अन्दर िै और र्ो कुछ िोता िै, काल के अन्दर िोता िै। र्त् ्के पदाथ श
गततर्ान िैं, अथात्श ्देर् को घेरतें और काल के अन्दर अपने व्यविार र्ें पररवतनश लाते िैं। पपण्डों से पविीन देर्
और घटनाओं से पविीन काल को द्रव्य किा र्ाता िै। अपने अनुभवों की व्याख्या के भलए, र्ो देर्-सम्बन्धी तथा
काल-सम्बन्धी स्वरूप रखते िैं, वैर्ेपर्षक एक अपार तथा असीर् देर् की तथा एक ऐसी अवधध (काल) की कल्पना
करता िै जर्सकी किीं ंसर्ाजप्त निीं। ककन्तु ये अनन्त देर् और काल केवल ताजत्त्वक कल्पनाएं ंर्ात्र िैं, तथ्यों
का पववरण निीं।

यद्यपप देर् काल-सम्बन्धी पररवतनशों के पवना तनरथकश प्रतीत निींिोता, ककन्तु काल बबना पररवतनशों
तथा घटनाओं के कुछ निीं िै, र्ैसे ेकक सम्बद्ध पक्षों के पवना सम्बन्ध कुछ निीं। काल यथाथ शवस्तु से व्याप्त
ै। काल वस्तुओं के अनेकत्व का संकेत निींकरता। एकाकी द्रव्य र्ें भी काल िो सकता िै। एक पुरुर्ष अपनेचररत्र
र्ें पररवतनश कर सकता िै, एक फूल अपना रंग बदल सकता िै। देर् को क्योंकक जस्थतत, दूरी इत्याहद के गुणों से
व्यविार करना िोता िै, इसभलए इसे ेनानापवध यथाथ शवस्तुओं की आवश्यकता िोती िै। सर्य अकेला अपने-आप
र्ें सि-अजस्तत्व की पवपवधता का उपलक्षण निीं। इसका सि-अजस्तत्व के साथ उतना िी सम्बन्ध िै जर्तना
कक एक यथाथवशस्तु का अन्य यथाथवशस्तु के साथ।

जर्स तकश के द्वारा परर्ाणुओं की कल्पना की र्ाती िै, वि देर् तथा काल के सम्बन्ध र्ें लागू निीं
िोता। वैर्ेपर्षक यि निींकिता कक काल की तनरन्तरता अपवभाज्य तथा पृथक् क्षणों से उत्पन्न िोती िै, अथवा
देर् की तनरन्तरता पृथक् बबन्दुओं अथवा देर्ीय इकाइयों से उत्पन्न िोती िै। यहद प्रकृतत के खजण्डत िोतेिोते े
रून्य र्ें पररवतततश िो र्ाने की कहठन सर्स्या का तनराकरण केवल अपवभाज्य परर्ाणुओं की कल्पना के द्वारा
िी िो सकता िै, तो देर् और काल की तनरन्तरता की व्याख्या भी केवल बबन्दुओं तथा क्षणों की कल्पना से िी िो
सकती िै। यहद देर् और काल की अवस्था र्ें एक सावभशौर् देर् तथा एक सावभशौर् काल की कल्पना सम्भव िै,

 तो भौततक पवश्व की व्याख्या के भलए भी एक सावभशौर् प्रकृतत की प्रकल्पना सवथशा युजक्तयुक्त िो सकती िै। िर्ें

वस्तुएं परस्पर देर्ीय सम्बन्ध से सम्बद्ध भर्लती िैं, और घटनाएं काभलक सम्बन्ध से सम्बद्ध भर्लती िैं। देर् और काल िर्ारे अनुभव के भलए पदाथों के पारस्पररक सम्बन्धों के प्रततततनधध िैं। देर् तथा काल सम्बन्धी ये सम्बन्ध तात्काभलक अनुभव के भलए तथ्य िैं, और इस प्रकार की प्रकल्पना की घटनाएं प्रस्तुत देर् तथा प्रस्तुत काल र्ें घटती िैं, जनर्ें प्रस्तुत तथा जस्थर आणपवक सार्ग्री र्ें सम्पन्न िुए पररवतनश भी आ र्ाते िैं, ताजत्त्वक पववेचन का पररणार् िै। एक सावभशौर् देर्, एक सावभशौर् काल तथा तनरन्तर स्थायी परर्ाणु ुये-सब काल्पतनक सर्ाधान िैं, प्रस्तुत तथ्य निीं।'[794] द्रव्य की यि दोर्षपूण शपररभार्षा कक द्रव्य गुणों का अधधष्ठान िै, वैर्ेपर्षक को देर्, काल आहद को द्रव्य र्ानने की ओर प्रवृि करती िै। प्रकृतत वि सार्ग्री िै र्ो देर् तथा काल की पूतत शकरती िै, और यहद िर् ठीक-ठीक सर्झना चािें तो िर्ें यि किना िोगा कक र्ूलभूत पवचार जर्सके ेइस पवश्व की व्याख्या की र्ा सकती िै वि िै देर्-काल-प्रकृतत-रूप सार्ग्री। यि एक ऐसा तनष्कर्ष शिै जर्सका एक धुंधला बोय कततपय वैर्ेपर्षकों को भी था। भर्वाहदत्य का किना िै कक आकार्, देर् और काल वस्तुतः एक िैं, यद्यपप नानापवध कायों के कारण इन्िें तीन प्रकार का पवचार र्ें लाया गया िै।[795] इस र्त का सर्थनश चन्द्रकान्त तकालंशकार ने ककया िै। उनका तकश िै कक कणाद के र्त र्ें देर्, काल और आकार् एक िी द्रव्य िै, यद्यपप इसे ेइसके द्वारा उत्पन्न कायों तया उन पवभभन्न बाह्य पररजस्थततयों के अनुसार, र्ो इसके साथ सम्बद्ध िों, देर् अथवा काल अथवा आकार् के पवभभन्न नार्ों सेपुकारा र्ाता िै।[796] देर् और काल प्रकृतत से िी तनकले िैं। परवती नैय्यातयकों ने देर् और काल को ईश्वर की िी अवस्थाएंबताया िै।'[797]

चेतनता एक कर् शिै, एक ऐसी वस्तु का गुण िै जर्सका र्ुकाबला अन्य वस्तु अथात् श ्र्ड-र्गत् ्के साथ पवस्तार तथा अनुर्ि के सम्बन्ध र्ें िोता िै। आत्र्ा का अपनेगुणों के साथ सर्वाय-सम्बन्ध िै। र्ंकराचाय श ज्ञान आहद गुणों के साथ आत्र्ा के सम्बन्ध का प्रश्न उठातेिैं और आपपि करते िैंकक वैर्ेपर्षक दोनों को एक सर्ान श्रेणी र्ें निींरख सकते, क्योंकक आत्र्ा स्थायी िै और गुण अस्थायी िैं। यहद दोनों को एक िी श्रेणी र्ें रखा र्ाएगा तो आत्र्ा की ऐसी दर्ा कभी न िोगी र्बकक वि गुणों से र्ुक्त िो सके। संक्षेपे र्ें, आत्र्ा को भी गुणों के सर्ान िी अवश्य अस्थायी िोना चाहिए।[798] र्ानभसक र्ीवन की संकीणतशा आणपवक र्न की धारणा के कारण बताई गई िै, ककन्तु आत्र्ा तथा र्न के सम्बन्ध को सन्तोर्षर्नक रूप र्ें पवचार र्ें लाना कहठन िै। र्ब वैर्ेपर्षक आत्र्ारूप द्रव्य को चेतनतारूप गुण से भभन्न करता िै, तो वि एक याजन्त्रक र्न को स्वीकार कर रिा िोता िै।
तुलना कीजए व्हिटिड सेः "घटनाओं के पवर्षय र्ें िर्ें ऐसा पवचार न करना चाहिए कक वे एक प्रस्तुत सर्य र्ें, एक

794
प्रस्तुत देर् र्ें घटती िैं और प्रस्तुत स्थायी सार्ग्री र्ें िुए पररवतनशों वाली िैं। काल, देर् और सार्ग्री घटनाओंके सियक िैं। सापेक्षता की पुरानी प्रकल्पना के आधार पर, काल और देर् सार्ग्री के धर्गत सम्बन्ध िैं। िर्ारी प्रकल्पना के आधार पर वे घटनाओंके धर्गत सम्बन्ध िैं" (इनक्यावरी, पृष्ठ 26)।

795 आकार्ाहदत्रयं तु वस्तुतः एकर्ेव उपाधधभेदान्नानाभूतर्।् (सप्तदर्ी, 17) सांख्यप्रवचनभाष्य 1 : 61।

796 देणखए 'सैड बुक्स आफ हद हिन्दूर्' ग्रन्थर्ाला र्ें पररभर्ष्ट बी., पृष्ठ 4, वैर्ेपर्षकसूत्र, के प्रतत। और देणखए सांख्यप्रवचनसूत्र, 2: 12।

797 ऑयलेतकशसंग्रि, 15।

798 देणखए गौडपादकृत काररका, 3/5 र्ांकरभाष्य पर।

 ककसी बाह्य पदाथ शकी र्न के प्रतत प्रततकिया का पररणार् िी िर्ारा अनुभव िै, इस प्रकार का पवचार, रै्से िेकक

र् पिले िेदेख आए िैं, सर्स्त अनुभव को अज्ञेय बना देता िै। आत्र्ा का अन्तस्तर् सारतत्त्व क्या िै, िर् निीं र्ानते। इसके भभन्न-भभन्न गुण, सुख, दुःख, ज्ञान आहद पववेकर्शून्य आत्र्ाओं की पववेकर्शून्य परर्ाणुओं के साथ पारस्पररक प्रततकिया के द्वारा उत्पन्न िोते िैं। र्ब आत्र्ा र्ुजक्तलाभ कर लेती िै तो ये गुण पवलुप्त िो र्ाते िैं, और सब गुणों सेरहित र्ुक्त आत्र्ा एक ऐसी इकाई िै जर्सके अन्दर कोई पवपवधता निीं और इसभलए वि सवथशा यथाथसशिा भी निीं रि र्ाती। प्रत्र्ेय पवर्षय प्रर्ाता को अपनेअन्दर पवलीन कर लेता िै। र्नुष्य एक उत्पादक केन्द्र िै र्ो संसार की रचना र्ें सियोग देता िै, जर्से िेवि र्ानता िै। अनुभव, र्ोकक दर्नशर्ास्त्र के भलए एक सर्स्या िै, न तो र्न के भलए अगम्य प्रकृतत िै और न प्रकृतत से पृथक् र्न िै। र्नोवैज्ञातनक तथा भौततक यथाथतशा सव स्थानों पर अत्यन्त घतनष्ठ रूप र्ें सम्बद्ध रिती िै। सब का आधार चेतनता िै, बाह्यता निीं। भौततक पवज्ञानी अपनेपरर्ाणुओं तथा र्जक्तयों को लेकर तथा र्नोवैज्ञातनक अपनी आत्र्ाओं तथा क्षर्ताओं को लेकर बार-बार सारतत्त्वों के तनष्कर्षणश के लालच र्ें पडतेरि िैं। अद्वैतवेदान्त तथा सांख्य के द्वारा स्वीकृत इस प्रकल्पना के पवर्षय र्ें बिुत कुछ किा र्ा सकता िै कक अतीजन्द्रय आत्र्ा के अततररक्त िर एक अन्य पदाथ श पवश्व-पवकास के दौरान उत्पन्न िोते िैं।

यहद िर् आत्र्ाओं के अनेकत्व के भसद्धान्त को स्वीकार करते िैं, जर्सके भलए न्यायदर्नश का पववेचन करते िुए िर्ें कोई ताजत्वक औधचत्य निीं भर्ल सका, तो अब िर्ारे सर्क्ष एक ओर आत्र्ाएं िैं और दूसरी ओर देर्-काल-प्रकृतत िै। देर्-काल-प्रकृतत का पवभर्ष्ट लक्षण िै गतत अथवा संर्रण, और सांख्य-दर्नश र्ें इसे िेप्रकृतत नार् से पुकारा गया िै। सांख्यदर्नश अपने पुरुर्षों अथात्श ्आत्र्ाओं तथा प्रकृतत के भसद्धान्त को लेकर न्याय-वैर्ेपर्षक द्वारा प्रततपाहदत पवचार से आगे िेप्रगतत करता िै।

गिनतर् पवश्लेर्षण िर्ारे सर्क्ष इस पवर्षय को प्रकट करता िै कक सम्बन्ध तथा गुण आहद सब सिाधारी तत्त्वों के अधीन िैं, और ये सिाधारी तत्त्व दो प्रकार के िैं, अथात्श ्प्रकृतत तथा अप्रकृतत अथवा आत्र्ाएं, अथात्श ्प्रकृतत और पुरुप। िर् ऋग्वेद के सुझाव से लाभ उठा सकते िैं और उक्त सुझाव बाइबबल के प्रथर् अध्याय र्ें भी, र्िां ंसृजष्टरचना का वणनश िै, भर्लेगा कक सुव्यवजस्थत पवचारर्ग्न आत्र्ा आहदर् अस्तव्यस्तता के अन्दर से र्ीपवत प्राणणयों की नाना श्रेणणयों का तथा प्राकृततक र्गत् ्का आपवष्कार करती िै। केवल उसी को द्रव्य किा र्ा सकता िै र्ो पूणरूशप र्ें अजस्तत्व रखता िै। इस संसार र्ें िर्ें किीं ंभी कोई पूण शइकाई अब और यिां ं की सीर्ा के अन्दर बद्ध निीं ंभर्लती। िर् वस्तुओं की एक-दूसरे से पृथक् करनेवाली र्यादशाओंको धचजह्नत निींकर सकते। तन:सन्देि एकत्व अथवा व्यजक्तत्व के दर्र्े िोते िैं। व्यजक्तत्व का उच्चतर् प्रकार र्ो िर्ें भर्लता िै वि पररभर्त व्यजक्त का िै, ककन्तु यि भी स्वात्र्तनभरश निीं ंिै। यथाथ शद्रव्य वि िै र्ो अपनेअन्दर सान्त र्नों तथा प्राकृततक र्गत् ्को सजम्भलत रखता िै। इस संसार की आधारभूत र्ौभलक यथाथसशिा वि तनरपेक्ष परर् आत्र्ा िै जर्सकी अभभव्यजक्त पवश्व के पवघहटत िोने, गतत के साथ-साथ अपनेको तनर्ाणश करने तथा पररवततशत करने के पवचार र्ें िोती िै। अनुभव एक सतत 'संर्रण' अथवा आन्तररक सम्बद्धता िै। देर् का पवभार्न बबन्दुओं र्ें, काल का क्षणों र्ें, और प्रकृतत का परर्ाणुओं र्ें िो सकता िै। ककन्तु िर् देख आए िैंकक

पवश्व को देर् और काल तथा प्रकृतत र्नीं ंसर्झा र्ा सकता, बजल्क देर्-काल-प्रकृतत सर्झा र्ा सकता ै। इस प्रकार प्रकृतत, अथवा वि र्ो पररवतततश ोती ै, पवश्व की आधारभूत सार्ग्री को बनाती ै तथा इसके अंर्रूप तत्त्वों को वस्तुएं न र्ानकर घटनाएं र्ानना चाहिए।

वैर्ेपर्षक के अभभर्त से पदाथ शदोर्षपूण र्ीं, र्् चिो ककसी भी दृजष्टकोण को अपनाएं। यहद र्् उन्ें भभन्नताओंके रूप र्ें देखें, जर्नका साधारण र्ीवन के स्तर पर कुछ अथ शिो सकता ै, तो र्् ऐसी भभन्नताओं को लक्ष्य करेंगे र्ो सार्ान्य प्रयोग र्ें आती ैं, ककन्तुपदाथों की सूची र्ें र्नींआतीं, र्ैसे र्ूल्य तथा लक्ष्य सम्बन्धी भाव। यहद र्् उन्ें अनुभव की दार्तशनक व्याख्या सर्झें, तो संसार की सर्स्त पवपवधता तथा पररवतनश केवल एक भाव र्ें रखेर्ा सकते ैं। पररभर्त र्ीवात्र्ाएंऔर प्राकृततक र्गत् ्ये तनरन्तर प्रगतत के पिलू ैं र्ो एक-दूसूरे के अनुकूल ैं। वैर्ेपर्षक का यि पवचार कक आत्र्ा यथाथसशिा का-जर्सके तथा भौततक प्रकृतत के बीच बिुत भेद ै-दूसूरा छोर ै, युजक्तसंगत ै।

यहद प्रर्ेय र्गत् ्के अनुभव के सर्स्त स्वरूप को प्राकृततक कि सकें, क्योंकक प्रकृतत घटनाओंकी सदा आगे ेबढ़नेवाली प्रगतत ै, र्ो इस योर्ना के अन्दर आत्र्ा का क्या स्थान ोगा? ज्ञान के भसद्धान्त की यि एक सर्स्या ै और र्् पिले ेदेख चुके ैं कक ककस प्रका व्याय का भसद्धान्त-जर्से ेवैर्ेपर्षक ने भी स्वीकार ककया ै, अथात् श ्र्ीवात्र्ा के पास प तनजष्ियि र्न ै, जर्सके अन्दर, र्ैसे ेककसी भी ररक्त पात्र र्ें, बाह्य र्गत् ्अपने स्वरूप-सम्बन् ्पवचारों को भरता ै-सवथशा पयाप्शत ै। ई पदाथों के अध्ययन वैर्ेपर्षक की सर्स्त दार्तशनक प्रवृपि का तनणायशक ै। भौततकवाद की छाया पृष्ठभूभर् को अन्धकारर्य बनाती ै, और आत्र्ाएंभी उसी स्वरूप की, र्ैसेकक पररर्ाणुिैं, स्वयं र्ें पववेकर्ून्य द्रव्य र्ानी गई ै।

पररर्ाणु और आत्र्ाएं, देर् और काल केवल ब्दर्ात्र ैं और ऐसेप्रतीक ैं जर्नका अनुभव से पृथक् कोई अथ शर्नींर्ी। वैर्ेपर्षक ने उन्ें कृबत्रर् बनाकर रखा ै जर्ससे ेकक उनके ऊपर वि अपने सर्ग्र भसद्धान्त को खडा कर सके। ये र्ारे अनुभव के भभन्न-भभन्न पिलुओंके केवल नार्र्ात्र ैं। जर्स प्रकार र्् अपनी न्यायर्ास्त्र की सर्ीक्षा र्ें देख आए ैं, र्नोवैज्ञातनक तथा भौततक दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं का आधार एक सावभशौभर्क चेतना र्ें ै जर्से ेर्नोवैज्ञातनक चेतनता के साथ भर्धश्रत न कर देना चाहिए। प्रर्ाता (पवर्षयी) तथा प्रर्ेय (पवर्षय) के परस्पर भेद की पृष्ठभूभर् र्ें यिी चेतनता ै। ब तक वैर्ेपर्षक इस र्त को स्वीकार र्नींकरता, तब तक वि उत्पपि-पवर्षयक व्यवस्था, पदाथों की यथाथतशा और सदा पररवतनशर्ील पवश्वीय पवकास की, जर्सके कक अवयव पौधे, पर्ु तथा र्नुष्य ैं, कोई व्याख्या र्नीं कर सकता। व्याख्या के भलए अदृष्ट का आश्रय लेना स्वेच्छाचाररता ै, और ईश्वर अदृष्ट का स्थान र्नींले सकता, ब तक कक उसे ेपरर् चेतेनता का रूप न हदया र्ाए। यहद द्रव्य की एकता इसकी अवस्थाओं की पवपवधता के अनुकूल ै, तब तो संसार र्ें पाए र्ानेवाले े नानापवध अजस्तत्व को एक र्ौभलक सिा के गुणात्र्क पिलू र्ानने र्ें र्ारे र्ाग शर्ें कोई पवर्ेर्ष कहठनाई र्नीं ं रि र्ाएगी। वैर्ेपर्षक का दोर्ष यि ै कक यि अपनेपररणार्ों को एक सार्ंर्स्यपूण शसुगहठत ढांचेर्ें एकत्र र्नींकर सकता। इसे ेप्लेटो को 'ररपजब्लक' के इस प्रभसद्ध कथन के लाक्षणणक अथों र्ें कक वि़ी सच्चा पवद्वान् ्अथवा

भारतीय दर्नश-2 223 दार्तशनक ि रो चीों को एकबत्रत देख सकता िै, दर्नशर्ास्त्र निींकि सकते। पवर्षयों की सूची

व्यवजस्थत दर्नश

निीं। र्नुष्य र्ीवन के अनेक पिलुओं वाले प्रसंग को वैर्ेपर्षक ने दृजष्ट से ओझल कर हदया, और इसके भौततक दर्नश और आचार सम्बन्धी तथा धाभर्कश र्ूल्यों की एक-एक रूप व्याख्या निींकी गई िै। पवश्व की युजक्तयुक्त व्याख्या की बौद्धधक र्ांग के भलए, एक परर्ाणुवादी अनेकवाद अजन्तर् सर्ाधान निीं िो सकता। ककन्तु िर् वैर्ेपर्षक के साथ इस प्रकार का धचन्तन करने र्ें सिर्त िैं कक केवल तकश का आश्रय लेनेवालेपवद्वान् का पवरुद्ध पवश्लेर्षण सम्भावना के पवज्ञान से अधधक कुछ प्रदान निींकरता, और यि अर्ूतभशावात्र्क उपचार र्ात्र ि, जर्सका यथाथ शर्गत् से कुछ सम्बन्ध निीं। दर्नशर्ास्त्र साधारण बुद्धध की सर्ालोचना कर सकता िै ककन्तु उससेअपनेको सवथशा अलग निींकर सकता। साधारण बुद्धध िी सब कुछ निीं िै, ककन्तु यि तनश्चय िी सर्स्त फलप्रद दर्नश की पिली सीढ़ी िै। केवल दर्नश की पवधध र्ें साधारण बुद्धध की पवधध से भेद िै। इजन्द्रयों के ज्ञान द्वारा र्ो तथ्य प्रस्तुत ककए र्ाते िैं, यि यथासंभव उनके अधधक-से-अधधक पार और ऊपर बढ़ने की चेष्टा करती िै। रचनात्र्क तकश, र्ो दार्तशनक प्रततभा का एक साधन िै, संसार को उच्चतर भसद्धान्त का आधार प्रदान करने की कोभर्र् करता िै। उन्िीं तथ्यों की, जर्नको न्याय-वैर्ेपर्षक के पवचारकों ने लक्ष्य ककया, अधधक सन्तोर्षर्नक व्याख्या िो सकती िै; और, र्ैसेकक िर् आगे चलकर देखेंगे, सांख्य और वेदान्त अधधक सन्तोर्षर्नक दार्तशनक रचनाओं तक पिुंचते िैं र्ो 'एक ईश्वर, एक पवधान और एक तत्त्व' र्ें पवश्वास करने को अधधक युजक्तयुक्त बताती िैं।

उद्धृतग्रन्थोंकीसूची

- चैटर्ी : हिन्दू ररयभलज़्र्
- कावेल तथा गफ : सवदशर्नशसंग्रि, 10
- गंगानाथ झा : प्रर्स्तपादकृत पदाथधशर्संशग्रि, श्रीधर की न्यायकन्दली टीकासहित
- फैडीगन : हद वैर्ेपेर्षक भसस्टर्
- कीथ : इजण्डयन लॉजर्क एण्ड ऐटोभर्ज़्र्
- नन्दलाल भसन्ि : हद वैर्ेपर्षकसूत्रा ऑफ कणाद
- रोअर : भार्षा-पररच्छेद एण्ड भसद्धान्तर्ुक्तावली ऑफ पवश्वनाथ
- युई : हद वैर्ेपर्षक कफलॉसफी

चतुथ शअध्याय

सांख्य दर्नश

प्रस्तावना-पूववशती पररजस्थतत-साहित्य-कायकशारणभाव- प्रकृतत-गुण- पवकास-देर् और काल-पुरुर्ष-लौककक र्ीवात्र्ा-पुरुर्ष और प्रकृतत- पुरुर्ष और बुद्धध-ज्ञान के उपकरण- ज्ञान के स्रोत सांख्य की ज्ञान सम्बन्धी- प्रकल्पना पर कुछ आलोचनात्र्क पवचार-नीततर्ास्त्र-र्ोक्ष-परलोक- र्ीवन-क्या सांख्य तनरीश्वरवादी ि-ै सार्ान्य र्ूल्यांकन।

1. प्रस्तावना

सांख्यदर्नश पवचारधारा के क्षेत्र र्ें एक पवभर्ष्ट प्रकार की पद्धतत को प्रस्तुत करता िै र्ो र्न के औपचाररक स्वभाव से भभन्न िै। नैरन्तय शके भसद्धान्त पर पवर्ेर्ष बल देनेके कारण, यि ककसी अंर् र्ें, पवश्व को साफ-सुथरे बण्डलों र्ें बधुँा र्ाननेकी प्रवृपि को त्याग देने का तनदेर् करता िै। न्याय-वैर्ेपर्षक के कडेपदाथों को र्ईटल तथा गततर्ील पवश्व की व्याख्या के भलए पयाप्शत साधन न र्ानकर, सांख्य ने आणपवक अनेकवाद के भसद्धान्त से वस्तुतः आगे पग बढ़ाया िै। सृजृष्टरचना स्थान र्ें पवकासवाद का प्रततपादन करके सांख्य ने अलौककक धर् शकी नींव र्ें िी कुठाराघात ककया िै। इसके अनुसार, यि संसार ककसी सृजृष्ट कता शईश्वर का काय श निीं, जर्सने अपनी इच्छा के चर्त्कार सेअपनेसे सवयशा भभन्न इस संसार को आह्वान करके उत्पन्न ककया, बजल्क यि असंख्य आत्र्ाओं तथा सदा कर्श्रील प्रकृतत की परस्पर प्रततकिया का पररणार् िै। इस प्रकृतत अथवा प्रकृतत की क्षर्ता को प्लेटो 'सर्स्त सन्तत का आश्रय तथा उसकी धात्री' किता िै।'[799]

प्रर्ाता (पवर्षयी) तथा प्रर्ेय (पवर्षय) के र्ध्य र्ो भेद िै उसके ज्ञान के आधार पर सांख्यदर्नश पुरुर्षों तथा प्रकृतत की यथाथसशिा की कल्पना करता िै। यहद िर् ज्ञाता तथा ज्ञात की यथाथसशिा की कल्पना निींकरते ेतो अनुभव की कोई व्याख्या सम्भव निीं िो सकती। सांख्य सर्स्त अनुभव का हिसाब अथात् श ्कक िर् अनुभव क्यों करते िैं और ककस प्रकार प्राप्त करते िैं, देनेका प्रयत्न करता िै। ररचाड शगाबें, जर्सने इस दार्शतनक र्ाखा का पवर्ेर्ष अध्ययन ककया िै, किता िै "कपपल के भसद्धान्त र्ें, संसार के इततिास र्ें सबसे प्रथर्, र्ानव-र्न की पूण शस्वतन्त्रता तथा अपनी र्जक्तयों र्ें उसका पूण शपवश्वास हदखाई हदया।[800] भारत र्ें उत्पन्न यि दर्नश सवाधशधक सारगभभतश पद्धतत िै।"[801] र्ो लोग उक्त र्ूल्यांकन को अततर्योजक्त र्ानते िैं, वे भी यि तो स्वीकार िी करेंगे ेकक यि पवरुद्ध दर्नश के क्षेत्र र्ें एक पवलक्षण प्रयास िै।

---

799 और देणखए 'एनीड्स' 3 6, 13, आंग्लभार्षानुवाद र्ैककेना कृत, खण्ड 2, पृष्ठ 86।

800 कफलासफी आफ ऐंभर्यण्ट इजण्डया, पृष्ठ 30। और देणखए डेवीर् सांख्यकाररका, पृष्ठ 5।

801 सांख्यप्रवचनभाष्य, पृष्ठ 14।

इस दर्नश का नार् 'सांख्य' इसभलए िुआ क्योंकक यि सैद्धाजन्तक अनुसंधान के द्वारा अपनेपररणारों पर पिुंचता िै। कततपय पवद्वानों के अनुसार, 'सांख्य' नार् 'संख्या'[802] के कारण िुआ, र्ो उधचत िी िै, क्योंकक यि दर्नश िर्ें पवश्व के तत्त्वों का पवश्लेर्षणात्रक पररगणन देता िै। ककन्तु यि पररगणन की प्रवृपि सर्स्त हिन्दू ू पवचारधारा की पद्धततयों र्ें सार्ान्य रूप र्ें पाई र्ाती िै। प्राचीन पाठ्य-पुस्तकों र्ें 'सांख्य' का प्रयोग दार्तशनक पवचार के भलए िुआ िै, न कक पररगणन के अथो र्ें।'[803] यि पवभर्ष्ट दर्नश, र्ो सावधानीपूवकश पवचार करके पुरुर्ष अथवा आत्रा तथा अन्य सिाओं के स्वरूप की व्याख्या करता िै,'[804] अपना नार् साथकश करता िै।[805]

2. पूववशती पररजस्थतत

पवचारधारा के इततिास र्ें कोई भी पवर्षय सवथशा नया निींिोता। कोई भी पवचारपद्धतत ककसी एक र्नुष्य के र्जस्तष्क सेअपनी पूणतशा र्ें प्रकट निींिोती। संस्थापक के काय शकरने के भलए आधारस्वरूप दार्तशनक पवचार और भसद्धान्त पिले सेे अवश्य पवद्यर्ान रिते िैं, र्जनसे उसे आवश्यक सार्ग्री प्राप्त िोती िै। र्निऋग्वेद र्ें प्रततपाहदत पवश्वपवज्ञान'[806] का पववरण देते िुए सांख्य के प्रकृतत-पुरुर्ष-भसद्धान्त की कुछ अस्पष्ट पूव शप्रकल्पनाओं का उल्लेखे ककया था। र्ब िर् उपतनर्षदों की ओर आते िैं तो िर् उनकी नानापवध भर्क्षाओंर्ें सांख्यदर्नश के र्ुख्य र्ुख्य पवचारों को पातेिैं।"[807] उपतनर्षदों के रचतयता सब एक सर्ान िी पवचार निींकरते थेे। उनर्ें सेकुछ ने ऐसेसुझाव तो प्रकट कर हदए र्जनका पररष्कार सांख्यदर्नश र्ें ककया गया, ककन्तु वे स्वयं विांतक निीं ंपिुंचे। सांख्यदर्नश र्ब यि दावा करता िै कक उसका आधार उपतनर्षद िैंतो यि एक सीर्ा तक उधचत िै, यद्यपप उपतनर्षदों की र्ुख्य प्रवृपि सांख्य के द्वैतवाद के सवथशा प्रततकूल िै। सांख्य के पवश्व-सम्बन्धी पवचार र्ें उपतनर्षदों की यथाथवशादी प्रवृपि पर बल हदया गया िै। सांख्य के सम्बन्ध र्ें सबसे प्रथर् गावें : कफलासफी आफ ऐंभर्यण्ट इजण्डया, पृष्ठ 44। र्िाभारत सांख्य का पररसंख्यान, अथवा सम्पूण शगणना के साथ

802
सिचय शबताता िै। देणखए 12: 11399; 12: 11409, 11410। पवटरनीर् किता िै ऐसा प्रतीत िोता िै कक यि भसद्ध िै कक

पपथागोरस पर भारतीय सांख्य का प्रभाव पडा था। कैलकटा ररव्यू, 1924, पृष्ठ 21।

803 देणखए भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 430-31। तुलना कीजजए र्िाभारत, 12/11934 1

दोर्षाणाञ्च गुणाञ्च प्रर्ाणं प्रपवभागतः ।
कजञ्चदथर्शभभप्रेत्य सा संख्येत्युपधायतशार्॥ ्

ककसी एक व्याख्या के उद्देश्य से ेदोर्षों तथा गुणों को एक-एक करके तोलना इसेसंख्या सर्झना चाहिए। सांख्य का उल्लेख सदा िी संख्या के सम्बन्ध र्ें निींिोता। पवष्णुसिस्रनार् पर अपनी टीका र्ें र्ंकराचाय शएक वाक्य उद्धृत करते िैं, र्िां सांख्य से ेतात्पय शपवर्ुद्ध आत्रा के स्वरूप का ज्ञान िै। "र्ुद्धात्रत्त्विपवज्ञानं सांख्यभर्त्यभभधीयते ।" देणखए िाल : सांख्यसार, पृष्ठ 5।

804 तुलना कीजजए, सम्यजग्ववेकेनात्रकथनर् ्।

805 यि भी सुझाव हदया र्ाता िै कक उक्त दर्नश का नार् इसके सवप्रशथर् संस्थापक संख के नार् पर पडा, यद्यपप इस कल्पना के भलए बिुत कर् साक्षी भर्लती िै। देणखए िाल : सांख्यसार, पृष्ठ 3।

806 भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 81-85।

807 देणखए भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 213-14।

उल्लेख श्वेताश्वतर उपतनर्षद् र्ें भर्लता ि।'[808] यद्यपप ऐसे ेअंर् जर्नका सर्न्वय उक्त दर्नश र्ें ककया गया ि, उससेपूव शके उपतनर्षदों र्ें भी पाए र्ाते िैं। न केवल पुनर्न्र् तथा संसार की असारता के िी भाव, ककन्तु ऐसे-ऐसे र्ुख्य भसद्धान्त भी र्ैसेकेक ज्ञान र्ोक्ष का साधन ि और पुरुर्ष पवर्ुद्ध प्रर्ाता ि, उपतनर्षदों से भलए गए िैं।'[809] कठोपतनर्षद्'[810] र्ें प्रकृतत के स्तर पर पवकास-श्रृंखंला र्ें सबसे ऊंचा स्थान 'अव्यक्त' को हदया गया ि, जर्ससे े र्िान् ्आत्र्ा, बुद्धध, र्न, पदाथ श(पवर्षय) और इजन्द्रयां ्िर्: उत्पन्न िोती िैं। अिंकार का उल्लेखे निीं, और परर् आत्र्ा (सवोपरर ब्रह्र्) की सिा को स्वीकार ककया गया ि। तो भी पवश्व-पवकास का यि सबसे प्रथर् वणनश िै, जर्सका उपयोग सांख्य के पवचारकों ने ककया प्रतीत िोता ि। प्रकृतत की सबसे प्रथर् उपर् को र्ित् ्का नार् हदया गया और इस पवचार का स्वाभापवक उद्भव उपतनर्षद् के उस भाव से ि जर्नके अनुसार आद्य असंस्कृत प्रकृतत को उत्पन्न करने के पश्चात् ्सवोपरर ब्रह्र् सृजृष्ट र्ें सबसे पूव शउत्पन्न िोकर कफर से अभभव्यक्त िोता िै।'[811] र्ानभसक व्यापारों का वगीकरण प्रश्नोपतनर्षद् के तनद्रा तथा स्वप्न आहद की अवस्थाओं के वणनश से उहदत िुआ, ऐसी सम्भावना की र्ाती ि।'[812] श्वेताश्वतर उपतनर्षद्[813] र्ें सांख्य के पवश्व-सम्बन्धी भसद्धान्तों, तीन गुणों का अधधक पररष्कृत वणनश ककया गया ि, यद्यपप सांख्य ने तत्त्वों को अपनेर्ुख्य भसद्धान्त ईश्वरवाद से गौण स्थान हदया ि। उक्त उपतनर्षद् प्रधान तथा र्ाया एवं ब्रह्र् और पुरुर्ष को सर्ान र्ानती ि।'[814] 'र्ैत्रायणी' उपतनर्षद्, र्ो बौद्धकाल के पीछे की बनी प्रतीत िोती ि[815], पररष्कृत सांख्य से सुपररधचत ि और तन्र्ात्राओं[816], तीन गुणों'[817] (अथात्श ्सत्त्व, रर्स् ्और तर्स्)् और आत्र्ा तथा प्रकृतत के भेदे का उल्लेख करती ि ।'[818] उपतनर्षदों र्ें इन पररभार्षाओं का प्रयोग सार्ान्य तथा अतनजश्चत रूप र्ें िुआ ि, जर्न्िें परवती दर्नश-पद्धततयों ने पवर्ेर्ष अथ शदे हदए िैं।

र्ैकोबी का यि पवचार ि कक सांख्य एक पूववशती भौततकवादी सम्प्रदाय का िी पररष्कृत रूप ि, प्रर्ाणणत निीं िोता। पररर्ाथ शसिा तथा आत्र्ा के स्वातन्त्र्य पर आग्रि रिने के कारण, सांख्य ने र्ानभसक प्रतीतत-

808 6:13।

809 बृिदारण्यक उपतनर्षद्, 24, 14; 34, 2; 4/3 15 और देणखए र्ुण्डक उपतनर्षद्, 3/1, 1।

810 3: 10-11। और देणखए 6 7-11। तुलना कीजए छान्दोग्य उपतनर्षद्, 6: 8, 6।

811 ऋग्वेद, 10: 12, 1। तुलना कीजए र्िाभारत, 12: 311, 31।

812 4। तुलना कीजए, सांख्य के सूक्ष्र् र्रीर की इस उपतनर्षद् की 16 तत्त्वों की सिा के साथ।

813 भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 416-23; देणखए श्वेताश्वतर उपतनर्षद्, 1:4; 4:5 ।

814 1:10; 4/10 3/12 और 4:1।

815 देणखए भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 129। पादहटप्पणी; कीथ सांख्य, पृष्ठ 14-15। 'नृभृसंतापिनीय', 'गभ'श तथा 'चूभलका' ये सब सांख्य के भसद्धान्तों से ेअत्यन्त प्रभापवत िैं।

816 3/2 और देणखए छान्दोग्य उपतनर्षद् 6:3।

817 2:5; 5: 2। कुछ पवद्वान तीन गुणों के पवचार को छान्दोग्य उपतनर्षद् र्ें वणणतश तीन रंगों से सम्बद्ध सर्झते िैं, जर्नकी पुनरावृपि श्वेताश्वतर उपतनर्षद् र्ें भी की गई ि।

818 6: 10 तुलना कीजए कीथ 'सांख्य र्ें ऐसा पवर्षय पववरण-सहित कर् ि र्ो उपतनर्षदों र्ें ककसी न ककसी स्थान पर न भर्ल सके' (सांख्य, पृष्ठ 60)।

भारतीय दर्नश-2 227 सम्बन्धी सर्स्त भौततकवादी पवचारों के पवरुद्ध प्रचार को अपना लक्ष्य बनाया। सांख्य के पवकास र्ें र्ें कोई
भी अवस्था ऐसी प्रतीत निीं िोती कक रिां ंपर इसका भौततकवाद के साथ साम्य प्रदभर्तश ककया रा सके।

प्रारजम्भक बौद्ध दर्नश के साथ सांख्य का सम्बन्ध िोने से अधधकतर इस बात की कल्पना की राती री िै कक दोनों र्ें परस्पर पवचारों का आदान-प्रदान िुआ िै।'[819] यद्यपप रो सांख्यग्रंथ आर् िर्ें उपलब्ध िैं, वे बौद्ध धर्शके प्रादुभावश से बाद के िैंऔर िो सकता िै कक इन पर बौद्ध भसद्धान्तों का प्रभाव पडा िो, परन्तु सांख्य के पवचार बुद्ध से पूव शपवद्यर्ान थे,[820] और बौद्ध र्त को सांख्ंय का उद्भव-स्थान र्ानना असम्भव िै। संसार दुःखर्य िै, वैहदक यज्ञों को गौण स्थान देना तथा कठोर सर्स्र्याओं का त्याग, ईश्वरवाद के प्रतत उदासीनता तथा संसार के सतत बनने (पररणाभर्तनत्यत्व) र्ें पवश्वास, ये सब सांख्य तथा बौद्धर्त र्ें एकसर्ान िैं। ये आकजस्र्क सर्ानताएं परस्पर आदान-प्रदान की कल्पना के औधचत्य को भसद्ध करने के भलए पयाप्शत निीं, पवर्ेर्षतः र्बकक दोनों र्ें परस्पर भेद भी स्पष्टरूप सेलक्षक्षत िोता िै। बौद्धधर् शसांख्ंय के र्ुख्यगुणों की प्रकल्पना र्ें से एक को भी स्वीकार निींकरता। यहद बौद्धों की कायकशारण-श्रृंखंला, ककन्िींअंर्ों र्ें, सांख्य के पवकासवाद के साथ सर्ता रखती िै तो इसका कारण यि िै कक दोनों का िी उद्भव स्थान उपतनर्षदें िैं। क्या बुद्ध के सर्य र्ें सांख्य स्वरूप सेअनीश्वरवादी था, यि ठीक-ठीक निींकिा रा सकता।

र्िाभारत र्ें िर्ें स्पष्टरूप र्ें सांख्य के सर्ान एक तनश्चयात्र्क पवचारपद्धतत भर्लती िै।[821] अनुगीता र्ें पुरुर्ष तथा प्रकृतत के भेद की व्याख्या दी गई िै।'[822] पुरुर्ष ज्ञान का प्रर्ाता (पवर्षयी) िै रो पच्चीसवां ं तत्त्व िै और उसके पवपरीत अन्य चौबीस तत्त्व रो प्रकृतत के िैं वे ज्ञान के पवर्षय (प्रर्ेय) िैं।[823] आत्र्ा तथा प्रकृतत के र्ौभलक भेदे को पिचान लेनेपर िी र्ोक्ष की प्राजप्त िो सकती िै।'[824] आत्र्ाओं की अनेकता अनुभवगम्य िै। र्ीवात्र्ाएं तभी तक अनेक िै र्ब तक कक उनका सम्बन्ध प्रकृतत से िै; ककन्तु र्ैसे िी ये प्रकृतत से अपने पायक्शच का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेती िैं, वे छब्बीसवें तत्त्व अथात् श ्ईश्वर के पास लौट राती िैं।"[825] र्िाकाव्यों के दर्नश

---

819 देणखए भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 986-87।

820 "हिन्दू ूतथा बौद्ध ग्रन्थों, दोनों र्ें इस पवर्षय के पयाप्शत प्रर्ाण भर्लतेिैं कक सांख्य और योगदर्नश तनःसन्देि प्राचीन तथा प्रार्ाणणक ग्रंथ िैं और बुद्ध के सर्य से ेपूव शइनका प्रचलन था।" (रार्ेन्द्रलाल भर्त्र, योगसूत्र, पृष्ठ 16)। बौद्ध ककंवदजन्तयों र्ें किा गया िै कक कपपल बुद्ध के पूववशततयशों र्ें से एक थे। देणखए गाबें कृत 'सांख्यप्रवचनसूत्रवृपि', पृष्ठ 3। तुलना कीजए, ब्रह्र्ालसूत्र से े"ऐसेराता िैं, जनर्ें कुछ तपस्वी और ब्राह्र्ण िैं, रो तनत्यवादी िैं और रो चारों ओर से घोर्षणा करते िैं कक आत्र्ा और र्गत् ्दोनों पवद्यर्ान िैं। उन्िें तकश का व्यसन िै, और अपने तकश के तनष्कर्षों की तनम्न प्रकार से ेघोर्षणा करते िैं, रो उनकी तकशर्ैली से तथा र्ास्त्रीय ज्ञान से ेअच्छी तरि पररर्ाजर्तश िोकर तनकलें। आत्र्ा तनत्य िै; और यि र्गत्,् रो ककसी नई वस्तु को र्न्र् निींदेता, पवतश के भर्खर की भांतत अचल िै, एक सुदृढ़ खम्भेकी भातत जस्थर िै; और ये र्ीपवत प्राणी, यद्यपप ये एक र्न्र् से दूसरे र्न्र् र्ें राते िैं, र्ीवन की एक जस्थतत से ेधगरकर कफर से दूसरी जस्थतत र्ें पिुंच राते िैं, ककन्तु ये सवदशा रिते िैं।"

821 भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 409-11 ।

822 14: 50, 8 से आगे।

823 र्िाभारत, 12 306, 39-40 ।

824 12/307 ,20 ।

825 12/350, 25 - 26; 12/351 2-4।

का स्वरूप तनजश्चत रूप से ईश्वरवादी ि और उसरें् रा् कुछ सांख्य के अंर् पवद्यर्ान ि उर्न्ें ईश्वरवाद की िी ओर लगाया गया ि। किा गया ि कक आत्र्ा अपने-आप रें् गुणों का प्रादुभुावश करता ि, रै्सैकक एक कडी अपने-आप से र्ाला बुनती ि।'[826] प्रकृतत पुरुर्ष के वर् रें् रिकर काय शकरती ि।[827] किा गया ि कक वि पुरुर्ष की िी उपर् ि, जर्सके अन्दर वि (प्रकृतत) सर्य-सर्य पर सर्ा र्ाती ि।'[828] रि्त् ्अिकार और र्न सवोपरर आत्र्ा के पवश्व-सम्बन्धी व्यापार िैं। सांख्यदर्नश के संस्थापक कपपल को एक बिुत बडा रि्ात्र्ा तथा पुण्यसूततपुरुर्ष र्ाना गया ि। यि स्पष्ट ि कक सांख्य ने अपना परवती पवभर्ष्टरूप रि्ाकाव्यों रें् भी प्राप्त निंकया था, क्योंकक उदािरण के रूप रें् उनरें् तन्र्ात्राओंका वणनश निंि। तत्त्वों की व्यवस्था तथा पवकास के सम्बन्ध रें् भभन्न-भभन्न पवचार भर्लते ि।ं इस पवर्षय पर र्ास्त्रीय सांख्य के प्रतत तनकटतर् पिंच अनुगीता रें् पाई र्ाती ि।[829] पंचभर्ख'[830] तथा अभसत देवल"[831] के पवचारों का उल्लेखे ककया गया ि। किा गया ि कक आसुरर ने पंचभर्ख को सांख्य की भर्क्षा दी, और रि्ाकाव्य के उक्त सुझाव की पुनरुजक्त सांख्यकाररका रें् िुई ि। आसुरर तथा पंचभर्ख दोनों िी ईश्वरवादी सांख्य के अनुयायी ि और ब्रह्र् की सवश्रेष्ठता रें् आस्था रखते िैं। र्ीवात्र्ा का स्वातन्त्य् केवल अपेक्षाकृत ि । सांख्य के पवचारों तथा पंचभर्ख के पवचारों रें् ब्यौरे-सम्बन्धी ककतने िी र्ित्त्वपूण शर्तभेद पाए र्ाते।'[832]

र्नु"[833] यद्यपप सांख्य का नार् निंलेते, तो भी प्रथर् अध्याय रें् हदया गया सृजष्ट का वणनश, ज्ञान के तीन उद्भव-स्थान'[834], तथा तीनों गुणों का ब्यौरेवार वणनश[835] सांख्य के प्रबल प्रभाव को दर्ातेश िैं। पुराणों[836] तथा परवती वेदान्त रचनाओं के सांख्य-भसद्धान्तों का उपयोग ककया गया ि, यद्यपप वे इसके अनीश्वरवादी

---

826 12/285 ,40 ।

827 12/314, 12; 12/315, 8 ।

828 12: 303, 31 से ेआगे।

829 14/40 - 42

830 12/219; 12/321 96-112 ।

831 12/274 ।

832 र्न के िी सर्ान, जर्सेवि छठी ज्ञानेजन्द्रय र्ानता ि, पंचभर्ख र्जक्त को छठी कर्ेजन्द्रय र्ानता ि। 12: 219 रें् हदए गए पववरण से 12 318, 96-112 रें् हदया गया पववरण भभन्न ि, जर्सरें् किा र्ाता ि कक पंचभर्ख नेतीस तत्त्वों को र्ाना ि। कभी-कभी यि किा र्ाता ि कक यि पपछला पवचार पंचभर्ख सम्प्रदाय का एक पूणरूशप ि। यि तनणयश करना कहठन ि कक यि पंचभर्ख सम्प्रदाय की परम्परा वाला पंचभर्ख विी ि जर्सका उल्लेख रि्ाकाव्य रें् आया ि या उससे ेभभन्न ि, क्योंकक रि्ाभारत रें् र्ा उसके पवचार हदए गए िैं, उनरें् तथा सांख्य और योग के ग्रन्थों रें् हदए गए पंचभर्ख के पवचारों रें् भेद ि। प्रोफेसर दासगुप्त चरक के धचककत्सार्ास्त्र से ेइससे लगभग भर्लते-र्ुलते पवचारों का एक लम्बा सारांर् देते िैं, 'हिस्री आफ इजण्डयन कफलासफी', पृष्ठ 213 से ेआगे। ककन्तु तन्र्ात्राओं का कोई उल्लेख निंि, और पुरुर्ष तथा प्रकृतत दोनों को अव्यक्त र्ाना गया ि, और न िी पुरुर्ष को तनजष्िय तथा भावनार्ून्य र्ाना गया ि। ब्रह्र् की दर्ा को प्राप्त कर लेनेको र्ोक्ष किा गया ि। इस पववरण पर वेदान्त, न्याय-वैर्ेपर्षक तथा बौद्धदर्नश और सांख्यदर्नश के पवचारों का प्रभाव पडा ि।

833 भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 421-22।

834 12: 105 ।

835 12: 24-25।

836 देणखए भागवत, 3: 5; र्त्स्य, 3; अजग्न, 17; र्ाकशण्डेय, 45।

 तत्त्वज्ञान को कोई प्रश्रय र्निं देते ंऔर उक्त दर्नश की प्राचीनता का तनणयश करने र्ें बिुत कर् उपयोगी भसद्ध

ििति िैं।

सांख्य के पवचार, रै्से ेकक िर्ें उपतनर्षदों, र्िाभारत, भगवद्गीता और र्नुस्रृतत र्ें भर्लते िैं, ईश्वरवाद की ओर झुकुते िैं।'[837] पुरुर्ष और प्रकृतत स्वतंत्र सिाएं ंर्निं ंथीं, बजल्क केवल ईश्वर की िी जस्थततयांथीं। अश्वघोर्ष के बुद्धचररत र्ें िर्ें बुद्ध तथा उसके भूतपूव शभर्क्षक 'अराड' की भेंट का वणनश भर्लता िै र्ो सांख्य-भसद्धान्तों को र्ानता था, यद्यपप उनर्ें ईश्वरवाहदता का पुट था। यि अधधक सम्भव प्रतीत िोता िै कक सांख्य का सबसे पूव श का रूप एक प्रकार का यथाथवशादी ईश्वरवाद था, र्ो उपतनर्षदों के पवभर्ष्टाद्वैत के सर्ीप पिुंचता िै। सांख्य के इस प्रकार के रूप को तो उपतनर्षदों के उपदेर्ों का युजक्तयुक्त पररष्कृत रूप र्ाना र्ा सकता िै। ककन्तु द्वैतवादी सांख्य को, र्ो पुरुर्षों के अनेकत्व तथा प्रकृतत की स्वतन्त्रता पर बल देता िै और परर्तत्व के वणनश को बबल्कुल छोड देता िै, उपतनर्षदों की भर्क्षाओं ंके अनुरूप ककसी भी अवस्था र्ें र्निंकिा र्ा सकता। प्रश्न उठता िै कक सांख्य ने र्ो परर्तत्त्व के भसद्धान्त को सवथशा छोड हदया वि कैसे िुआ, क्योंकक इसको साथ लेकर िी तो सांख्यदर्नश को सन्तोर्षर्नक र्ाना र्ा सकता था। बौद्धदर्नश के उदय के पश्चात् ्तक सांख्य ने एक सुव्यवजस्थत दर्नश का रूप धारण र्निंककया था। र्ब बौद्धधर् शने यथाथवशाद को चुनौती दी तो सांख्य ने उस चुनौती को स्वीकार ककया और आत्र्ाओं तथा प्रर्ेय पदाथों की यथाथतशा के पक्ष र्ें युजक्तयुक्त आधार पर तकश उपजस्थत ककया। र्ब इस दर्नश का पवकास पवर्ुद्ध युजक्तयुक्त आधार पर िुआ तो इसे ेबाध्य िोकर यि स्वीकार करना पडा कक ईश्वर की भसद्धध र्ें कोई प्रर्ाण र्निंिै।

3. साहित्य

परम्परा एकर्त िोकर कपपल को सांख्यदर्नश का रचतयता स्वीकार करती िै।'[838] कुछ किते िैं कक वि ब्रह्मा का पुत्र िै[839], दूसूरे कितेिैं कक वि पवष्णु ्का अवतार िै[840], और कुछ उसे ेअजग्न का अवतार र्ानते िैं।'[841]

837 "र्िाकाव्य तथा अन्य प्राचीन सार्ग्री के अध्ययन नेर्ुझे तनश्चय करा हदया िै कक ऐसा एक वाक्य भी र्निं जर्सके आधार पर सांख्य पर ब्रह्र् अथवा ईश्वर के प्रतत अपवश्वास का दोर्ष लगाया र्ा सकता िो" (फ्रैंकभलन इर्टशन: अर्ेररकन र्नलश ऑफ कफलालॉर्ी, 45/1, sqrt(165) * 8) । र्िाभारत, 12: 11039 को साधारणतः सांख्य और योग के भेद पर बल देनेवाला र्ाना र्ाता िै। सांख्य ईश्वर को र्निंर्ानता तथा योग ईश्वर को र्ानता िै। इर्टशन उक्त सम्र्तत का पवरोध करता िै, ककन्तु र्िाभारत के उन वाक्यों का सर्ाधान करना कहठन िै र्ो छब्बीस तत्त्वों वाले सांख्य को पच्चीस तत्त्वों वाले सांख्य से भभन्न करते िैं। पच्चीस तत्त्वों वाला सांख्य परर्तत्त्व अथवा ईश्वर के प्रतत सवयशा उदासीन िै (12 300)। ककन्तुयि सत्य िै कक र्िाभारत पपछलेर्त का सर्थनश र्निंकरता।

838 श्वेताश्वतर उपतनर्षद्, 5 21 तुलना कीजए, र्िाभारत, र्ोक्षधर्ाश

सांख्यस्य वक्ता कपपलः परर्पर्षःश पुरातनः।

हिरण्यगभो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ॥

839 र्िाभारत, 12 340 , 67; रार्ायण, 1: 40-41।

840 भागवत, 324, 36; 27, 3 ।

841 सांख्यप्रवचनभाष्य, 6: 70 ।

उक्त र्त यद्यपप सब कल्पनात्यि िैं, पर इतना अवश्य िै कक कपपल नार्क एक ऐततिाभसक व्यजक्त अवश्य रिे। र्ो सांख्य पवचारधारा के भलए उिरदायी िैं। यहद िर् उसका सर्य बुद्ध से पूव शकी र्ताब्दी र्ें रखें तो िर् भूल निीं करेंगे।'[842] यि दर्ानेश ेके भलए िर्ारे पास कोई प्रर्ाण निीं ंिै कक 'सांख्यप्रवचनसूत्र' और 'तत्त्वसर्ास' का तनर्ाणश कपपल ने ककया, यद्यपप कपपल को उक्त दोनों ग्रंथों का कता शकिा र्ाता िै। ईश्वरकृष्ण अपनी काररका चेअपने को आसुरर और पंचभर्ख र्ें से गुर्रने वाली कपपल की भर्ष्य-परम्परा र्ें र्ानता िै।"[843] आसुरर सम्भवतः 600 ई. पू. िुआ, यहद यि विी आसुरर िै र्ो र्तपथ ब्राह्मण से सम्बन्ध रखता िै। गावे के पवचार से पंचभर्ख को पिली र्ताब्दी र्ें रखा र्ा सकता िै। कुछ एक इधर-उधर पाए र्ाने वाले सन्दभों के आधार पर र्ो िर् तक पिुंच सके िैं, पंचभर्ख तीन गुणों की प्रकल्पना को र्ानता था। वि पुरुषों[844] को आणपवक आकार का र्ानता था[845], और पुरुषों व प्रकृतत के सम्बन्ध का कारण कर् शनिीं, बजल्क भेदे का अभाव र्ानता था।[846]

ईश्वरकृष्ण की सांख्यकाररक सांख्य-सम्प्रदाय का सबसे प्राचीन तथा सबसे अधधक प्रचभलत पाठ्य-ग्रंथ िै। इसके नार् सेयि स्पष्ट िै कक सांख्यदर्नश का यि पिला ग्रन्थ निीं। चीनी परम्परा के अनुसार, पवन्ध्यवास ने वार्षगशण के ग्रन्थ को कफर से भलखा। यहद पवन्ध्यवास विी िै र्ो काररका का रचतयता िै[847] तो पररणार् यि तनकलता िै कक काररका एक अन्य पूवभशलणखत ग्रंथं पर आधाररत थी, जर्सके पवषय र्ें िर्ें कुछ पता निीं।'[848] वेबर का र्त िै कक सांख्य वतर्शान दर्नशों र्ें सबसे पुराना िै (हिस्री आफ इजण्डयन भलटरेचर, पृष्ठ 235)। र्िाभारत

842

सांख्य तथा योग को बिुत प्राचीन दर्नश बताता िै। सनातने द्वे, 12/13711

843 सांख्यकाररका, 70। र्िाभारत के अनुसार (12/218, 14 - 15) कपपल के उिराधधकारी िैं-आसुरर, पंचभर्ख, गाग्य शऔर उलूक। चीनी परम्परा के अनुसार, एक पंचभर्खी कणाद का भर्ष्य था। यि प्रकट िै कक वि पंचभर्ख से भभन्न था। देणखए यूई वैर्ेपर्षक कफलासफी, पृष्ठ 7-8। र्िाभारत र्ें 'र्नकपंचभर्खसंवाद' पर एक पररच्छेद िै और उसर्ें की कुछ सम्र्ततयों को योगभाष्य र्ें उद्धृत ककया गया िै।

844 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 127।

845 योगभाष्य, तत्त्ववैर्ारद, 1/36

846 सांख्यप्रवचनभाष्य, 6/68

847 तकाकुसु ुका पवचार िै कक पवन्ध्यवासी ईश्वर कृष्ण की एक उपाधध थी (र्नलश ऑफ रॉयल एभर्याहटक सोसायटी, 1905)। गुणरत्न उन्िें भभन्न-भभन्न र्ानता िै। (तकशरिस्यदीपपका, पृष्ठ 102, 104)।

भागवत र्ें िर्ें बताया गया िै कक सांख्यग्रन्थों का केवल एक भाग िी िर् तक पिुंच सका िै और एक बडा भाग काल की 848 गतत से ेलुप्त िो गया िै। 1/3 10। पवज्ञानभभक्षु का र्त िै कक अनेक ग्रन्थों को काल खा गया िै-कालाकशभक्षक्षतर् ् (सांख्यप्रवचनभाष्य, भूभर्का)। सांख्यकाररका की अजन्तर् काररका र्ें इस प्रकार का पाठ भर्लता िै : "सम्पूण शपजष्टतन्त्र के पवषयों का सिर काररकाओंर्ें प्रततपादन ककया गया िै, ककन्तु दृष्टान्त के रूप र्ें सर्झनेवाली कितनयों तथा पववादात्र्क प्रश्नों को छोड हदया गया िै।" यि र्ाना र्ाता िै कक उक्त काररका प्रक्षक्षप्त िै, क्योंकक गौडपाद ने, र्ो काररका का सबसे प्रथर् टीकाकार िै, इसका उल्लेख निीं ककया िै। गुणरल नेर्षजष्टतन्त्रोद्धार का उल्लेख ककया िै। कि र्ाता िै कक आसुरर नेइसे े प्रचभलत ककया और पंचभर्ख ने इसे तनरीश्वरवाहदता का रूप देकर इसेकपपल की रचना बता हदया। तो भी इस सव पवषय र्ें कोई तनजश्चत र्त निींहदया र्ा सकता। वाचस्पतत तथा नारायण की सम्र्तत र्ें षजष्टतन्त्र से ककसी ग्रन्थ का उल्लेख न िोकर केवल साठ पवषयों की ककसी योर्ना का िी उल्लेख िै। संभवतः यिी सर्ाधान र्ैन 'अनुयोग-द्वारसूत्र' र्ें उजल्लणखत षजष्टतन्त्र के पवषय र्ें भी सत्य िो। अहिबुधशन्यसंहिता (12) के अनुसार, सांख्य एक ईश्वरवादी दर्नश िै, जर्सके साठ पवभाग िैं, जर्सके दो भाग िैं अथात् श ्बिीस प्रकृतत के तथा अट्ठाईस पवप्रकृतत-सम्बन्धी पवभाग िैं। वाचस्पतत अपनी तत्त्वकौर्ुदी (72) र्ें रार्वाततकश से एक सन्दभ शउद्धृत करता िै, जर्सका आर्य यि िै कक इसका नार् पजष्टतन्त्र इसभलए पडा क्योंकक

यि तीसरी र्ताब्दी का ग्रन्थ ि।'[849] गौडपाद ने काररका पर एक टीका भलखी। क्या यि टीकाकार विी ि र्ो र्ाण्डुक्योपतनर्षद् पर भलखी गई 'काररका' का रचतयता ि? इसका तनणयश निीं ंककया र्ा सकता, क्योंकक दोनों ग्रन्थों र्ें पवचारों की भभन्नता ि। वि क्योंकक वाचस्पतत से पूव शिुआ, इसभलए उसे ेआठवीं ंर्ताब्दी र्ें रखा र्ा सकता ि।[850] वाचस्पततकृत सांख्यितत्त्वकौर्ुदी (नौवीं ंर्ताब्दी) एक प्रभसद्ध ग्रन्थ ि। नारायणकृत सांख्यचजन्द्रका काररका पर भलखा गया ग्रन्थ ि।

सांख्यप्रवचनसूत्र के, र्ो कपपल का बनाया िुआ किा र्ाता ि,[851]' छः अध्याय िैं। इस र्ें से पिले ेतीन अध्याय सांख्य के भसद्धान्तों की व्याख्या के भलए उपयोग र्ें लाए गए िैं, चौथे र्ें दृष्टान्तरूप र्ें कितनयां ंदी गई िैं, पांचवें र्ें प्रततपक्षक्षयों के पवचारों का खण्डन ककया गया ि. और छठा अध्याय उपसंिार के साथ सर्ाप्त िोता ि। इस ग्रन्या तनर्ाणश चौदिवीं ंर्ताब्दी र्ें िुआ र्ाना र्ाता ि, र्ुख्यतः इस आधार पर कक र्ाधयकृत सवदशर्नशसंग्रि र्ें इसका उल्लेखे निीं, और उक्त ग्रन्थ र्ें सांख्य-पवर्षयक पववाण काररका के आधार पर हदया गया ि।'[852] र्िां ंकाररका र्ें पूणरूशप से द्वैतवाद का पररका ककया गया ि, विांसूत्र र्ें एकेश्वरवाद के प्रतत अधधक

यि प्रकृतत-सम्बन्धी साठ पवर्षयों का, इसके एकत्व का, तथा पुरुर्ष से भेद आहद का प्रततपादन करता ि। एक चीनी परम्परा के अनुसार, पजष्टतन्त्र का रचतयता पंचभर्ख को बताया गया ि, ककन्तु कभी-कभी इसका श्रेय वार्षगशण्य को हदया गया ि। देणखए भार्ती, 2/1, 3 ।

[849] बौद्धभभक्षु परर्ाथ श(छठी र्ताब्दी) नेचीनी भार्षा र्ें इसका अनुवाद ककया और इस पर टीका भी भलखी। चीनी परम्परा के अनुसार, पवन्ध्यवास को वसुबन्धु से पूव शिुआ बताया र्ाता ि र्ो काररका से दूसूरी काररका को उद्धृत करता ि। देणखए यूई वैर्ेपर्षक कफलासफी। चािे पवन्ध्यवास काररका का रचतयता िो, र्ैसाकक कीथ का सुझाव ि, (सांख्य, पृष्ठ 79; इजण्डयन लौजर्क एण्ड एटोभर्ज्र्, पृष्ठ 248; कर्र्शीर्ांसा, पृष्ठ 59), अथवा उस पर टीका करनेवाला िो, र्ैसा बेलवलकर का र्त ि, (भण्डारकर कौर्ेर्ोरेर्न वाल्यूर्, पृष्ठ 175-78), ईश्वरकृष्ण वसुबंधु से पूव शिुआ, जर्सका सर्य अब चौथी र्ताब्दी बताया र्ाता ि। स्वप्नेश्वर ईश्वरकृष्ण तया काभलदास को एक बताता ि। 'ईश्वरकृष्णनाम्ना काभलदासेन कृताः काररकाः।' देणखए िॉल : सांख्यसार, पृष्ठ 29। ईश्वरकृष्ण तनजश्चत रूप से अनीश्वरवादी प्रतीत िोता ि। यद्यपप किा र्ाता ि कक काररका र्ें सिर काररकाएं थीं, तो भी िर् तक केवल उनिर िी पिुंच सकी िैं। बालगंगाधर ततलक नेसांख्यकाररका, 61 पर गौडपाद की टीका से पवलुप्त काररका की पुनः रचना इस प्रकार की ि:

कारणर्ीश्वरर्ेके द्रुवुते कालं परे स्वभावं वा।

प्रर्ाः कथं तनगुणशतो व्यक्तः कालस्यभावश्च ॥

गौडपाद के ध्यान र्ें इस प्रकार की एक काररका थी, और आगेचलकर सम्भवतः इसेदबा हदया गया क्योंकक यि पवर्षर्तापूवकश तनरीश्वरवादी थी।

850 'र्ाठरवृपि' सांख्यदर्नश का एक ग्रन्थ ि, जर्सका संक्षक्षप्त रूप िी गौडपादकृत भाष्य किा र्ाता ि। ककन्तु वृपियां साधारणतः भाष्यों के पीछे आती िैं, और इस तथ्य के आधार पर कक र्ाठरवृपि र्ें सांख्यकाररका की अजन्तर् तीन काररकाओंपर टीका की गई ि, इसका तनर्ाणश-काल पीछे का प्रतीत िोता ि। देणखए भण्डारकर कौर्ेर्ोरेर्न वॉल्यूर् ।

[851] स्वप्नेश्वर अपने'कौर्ुदीप्रभा' ग्रन्थ र्ें 'सांख्यप्रवचनसूत्र' को पंचभर्ख का बनाया िुआ बताता ि और इसके कपपलकृत र्ानेर्ानेका आधार इस तथ्य र्ें देखता ि कक कपपल नेइस परंपरा का प्रारम्भ ककया था। देणखए िॉल रधचत सांख्यसार, पृष्ठ 8।

[852] गुणरत्न (चौदिवीं र्ताब्दी) नेइस ग्रन्थ का उल्लेख निींककया ि। इसके अततररक्त, इस पर 'भाष्य' सोलिवीं र्ताब्दी र्ें प्रकाभर्त िुआ, और यहद सूत्र उससे ेपिलेका था तो यि र्ानना कहठन ि कक भाष्य का तनर्ाशण और पिलेक्यों निींिुआ।

सर्न्वयात्क प्रवृपि हदखाई देती ि।[853] अतनरुद्धकृत सांख्यसूत्रवृपि का सर्य पन्द्रिवीं ंर्ताब्दी ि, र्बकक रिादेवकृत सांख्यसूत्रवृपिसार 1600 ई. के लगभग भलखा गया बताया गया ि। नागेर्कृत लघुसांख्यसूत्रवृपि कुछ अधधक रित्त्व की निीं ि। सांख्यप्रवचनसूत्र पर सबसे अधधक रित्त्वपूण श ग्रन्थ पवज्ञानभभक्षुकृत सांख्यप्रवचनभाष्य (सोलिवींर्ताब्दी) ि। यि ग्रन्थकार सांख्य तथा ईश्वरवादी वेदान्त के अन्तर को न्यूनतर् करने का प्रयत्न करता ि, क्यूंकक ऐसे िी वेदान्त को यि यथाथ शवेदान्त रानता ि । इसकी सम्रतत रें अद्वैत वेदान्त उक्त वेदोन्त का आधुतनक भर्थ्या रूप ि। पवज्ञानभभक्षु ुने और भी ग्रन्थ भलखे, अथात्श ्सांख्यसार, योगवाततकश, योगसारसंग्रि। इनके अततररक्त, उसनेब्रह्मसूत्र पर पवज्ञानरृत नार्क टीका भी भलखी।

4. कायकशारणभाव

अब िर् उन युजक्तयों पर पवचार करेंगे जर्नके आधार पर सांख्य पुरुर्ष और प्रकृतत के द्वैतवाद पर पिुंचता ि। कायकशारणभाव के भसद्धान्त का उपयोग करके सांख्य प्रकृतत के अजस्तत्व की युजक्त देता ि।

यि प्रकल्पना कक काय शवस्तुतः अपनेकारण रें पिले से पवद्यरान रिता ि, सांख्य दर्नश के रुख्य लक्षणों रें से ि। कारण की पररभार्षा करते िुए सांख्य किता 5/6 कक कारण वि सिा ि जर्सके अन्दर काय शगुप्त रूप रें पवद्यरान रिता ि। इसके सर्थनश रें वि तनम्नभलणखत युजक्तयां उपजस्थत करता ि।[854] अभावात्रक ककसी भी किया का पवर्षय निीं ंिो सकता। आकार्कुसुर् उत्पन्न निींककया रा सकता। असत् ्को कभी भी सत् ् निींबनाया रा सकता। नीले को िरारों कलाकार भी पीले ेरें पररवततततश निीं ंकर सकते।'[855] (2) उत्पन्न पदाथ श उस सार्ग्री से भभन्न निींि जर्ससेकक वि बना ि। (3) उत्पन्न िोनेसे पूव शवि सार्ग्री के रूप रें पवद्यरान रिता ि। यहद इसे स्वीकार न ककया राए तो िर ककसी वस्तु से िरएक वस्तु उत्पन्न िो सकेगी। (4) कायकशारणभाव-सम्बन्धी योग्यता उसी से सम्बद्ध रिती ि जर्सके अन्दर आवश्यक क्षर्ता रिती ि। (5) काय शका स्वरूप विी िोता ि रो कारण का िोता ि। अपनेताजत्त्वक रूप रें कपडा धागों से भभन्न निींि। ऐसे पदाथों रें रो एक-दूसरे से

यि अन्य सब दर्नशों का उल्लेख करता ि। वाचस्पतत इससे अभभज्ञ निींि। 'अलबेरुनी' जर्सने अपनी पुस्तक ग्यारिवीं र्ताब्दी के पूवाधश रें भलखी, ईश्वरकृष्ण तथा गौडपाद के ग्रन्थों से तो अभभज्ञ ि, ककन्तु वि 'सूत्र' से अनभभज्ञ प्रतीत िोता ि।

853 तुलना कीजए गार्बे"पवर्ेर्षकर सूत्रों का रचतयता इस तनतान्त असम्भव स्थापना के भलए प्रराण प्रस्तुत करनेरें बिुत िी पररश्रर् करता ि कक सांख्यदर्नश की भर्क्षाएं एक रीरधारी ईश्वर के भसद्धान्त, ब्रह्म की एक सवतशाग्रिी एकता के भसद्धान्त, ब्रह्म को आनन्द-स्वरूप राननेके भसद्धान्त और हदव्यलोक की प्राजप्त को उच्चतर् उद्देश्य रानन के भसद्धान्त के सवचशा पवरुद्ध निीं ि (देणखए 1/95 : 3/64 , 68, 110; 6/51 58, 59)। इसरें सन्दिे निींकक सांख्यसूत्र रें, अनेक स्थानों पर, सरलता के साथ हदखाई देनेवाले वेदान्त के प्रभाव के पररणार् भर्लते ि। सबसे अधधक स्पष्ट रूप रें, 4 / s * 4 रो वेदान्तसूत्र 4 : ।, ।। की अक्षरर्: पुनरावृपि ि; और 5 116 रें रिांसांख्य के प्रचभलत वाक्य के स्थान रें वेदान्त की पाररभापर्षक संज्ञा 'ब्रह्मरूपता' का प्रयोग ककया गया ि" (गावेंकृत एस. बी. पी. की आवृपि, पृष्ठ 11)।

854 सांख्यकाररका, 9 ।

855 नहि नीलंभर्जल्पसिस्रेणापप पीतं ंकतु ंाक्यते(तत्त्वकौरुदी, पृष्ठ 9)।

 ताजत्त्वकरूप र्ें भभन्न िैं, कायकशारण सम्बन्ध निींिो सकता।[856] र्ो कुछ तछपा िुआ िै उसके प्रकार् र्ें आनेका

नार् िी पवकास िै अथवा अरस्तू के ब्दों र्ें, यि सम्भाव्य सिा के रूप र्ें संर्णि िै, अथवा, िेगल के ब्दों र्ें, यि गुप्तावस्था र्ें प्रकटरूप र्ें आना िै। इस र्त को धर्र्शास्त्र का भी सर्थनश प्राप्त िै।'[857] सत्कायवशाद के उक्त भसद्धान्त के अनुसार कारण तथा काय शउसी एक पदाथ शकी अपवकभसत तथा पवकभसत अवस्थाएं ंिैं। सर्स्त उत्पादन उद्भाव अथात्श ्पवकास और सर्स्त पवनार् अनुद्भाव अथात्श ्कारण के अन्दर पवलय िो र्ाना िै।'[858] अत्यन्त अभाव नार्क कोई वस्तु निींि। भूतकाल तथा भपवष्यत् ्की अवस्थाओंका नार् निींिोता िै, क्योंकक उनका प्रत्यक्षज्ञान योधगयों को िोता िै।'[859] सांख्य पवकास (आपवभावश) तथा अन्तलयश (ततरोभाव) की प्रकल्पना को स्वीकार करता िै।

कारण तथा काय शभभन्न-भभन्न अवस्थाएं ंिैं और इसीभलए एक-दूसूरे से भभन्न िैं,[860] यद्यपप इस भेद का आधार िर्ारे कियात्र्क स्वाथ शिैं। घडा अपनेअन्दर र्ल को रख सकता िै, ककन्तु भर्ट्टी निींरख सकती। र्िां ं उपादान कारण तथा काय शर्ौभलक रूप र्ें एक िी िैं, विीं कियात्र्क रूप र्ें वे भभन्न-भभन्न िैं क्योंकक उनसे े भभन्न-भभन्न प्रयोर्न भसद्ध िोते िैं। तादात्म्य र्ौभलक िै, भेद केवल कियात्र्क रूप र्ें िै। सांख्य दो प्रकार के कारणों अथात्श ्उपादान तथा नैभर्पिक र्ें भेद करता िै। र्िांउत्पादन कारण काय शके अन्दर प्रपवष्ट िोता िै, विां ं नैभर्पिक कारण बािर रिते िुए अपना प्रभाव डालता िै। यद्यपप काय शकारण के अन्तगतश िै तो भी एक ऐसी वस्तु की आवश्यकता िोती िै र्ो इस कारणात्र्क जस्थतत से स्वतन्त्र कर सके। बीर् र्ें से तेल तनकालने के भलए उसे े र्ि् पेलते िैं, अनार् को प्राप्त करने के भलए धान को कूटते िैं। र्ब इस सिकारी र्जक्त का अभाव रिता िै तो काय शउत्पन्न निींिोता।'[861] यद्यपप काय शर्जक्तरूप र्ें कारण के अन्दर पवद्यर्ान रिता िै, परन्तु यि र्जक्तर्ां सब एक साथ वास्तपवक रूप धारण निींकरती। रुकावट का दूरू कर देत र्जक्तर्ां के वास्तपवक रूप र्ें आनेका सिचारी कारण िोता िै। व्यास के अनुसार, सिचारी अवस्थाएं ंिैं-देर्, काल, रूप तथा आकार।'[862] एक

---

856 देणखए तत्त्वकौर्ुदी, पृषृठ 9।

857 छान्दोग्योपतनर्षद्, 6/2 2। और देणखए भगवद्गीता, 2: 16।

858 सांख्यप्रवचनसूत्रे,े 1: 120,-21।

859 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/121 ।

860 कारणकायपशवभागात् ्(सांख्यकाररका, 15)।

861 व्यास इन सिचारी कारणों की किया को दृष्टान्त से इस प्रकार हदखाते िैं: "जर्स प्रकार अनेक खेतों का स्वार्ी एक िी खेत से जर्सर्ें र्ल ऊपर तक भर गया िै-अन्य खेतों को, र्ो उसी ऊंचाई पर िैं या उससे ेनीचेिैं, र्ल पिुंचा देता िै, वि अपने िाथों से यिांर्ल निींटेलता, बजल्क केवल बीच की रुकावट रूप बांध को खोल देता िै और र्ल अपनेबल से ेअन्य खेतों र्ें दौड र्ाता िै; अथवा जर्स प्रकार विी व्यजक्त धान के पौधों की र्डों र्ें र्ल तथा भर्ट्टी र्ें घुले िुए रासायतनक द्रव्यों को िाथ से ठेलकर निींपिुंचाता िै, बजल्क केवल बाधा देनेवाली घास आहद को र्ाग शर्ें से िटा देता िै, जर्ससे यि र्ल का घोल स्वयं र्डों र्ें प्रवेर् कर र्ाता िै; इसी प्रकार तनभर्ि कारण की भी किया िोती िै र्ो उपादान कारणों के साथ भर्लकर सिायक का काय शकरता िै।" (योगभाष्य, 4/3) ।

862 . योगभाष्य, 3/14 ।

 पत्थर के टुकडे से पीचा नि तनकल सकता।[863] दो प्रकार के कार्यों र्ें भेद ककया गया िै। दूधू र्ें से

र्लाई का उत्पन

िोना एक सरल अभभव्यजक्त की अवस्था िै। र्ब सोनेसे आभूर्षण बनाया र्ाता िै तो यि पुनरुत्पपि का दृष्टान्त

िै। र्ब ककसी वस्तु के स्वभाव र्ें पररवतनश िोता िै तो िर्ारे सर्ता धर्-शपररणार् की अवस्था आती िै। र्ब गुप्त वास्तपवक रूप र्ें आ र्ाता िै और पररवतनश केवल वाह्य िोता िै तो यि लक्षण-पररणार् की अवस्था िै। केवल सर्य के व्यतीत िोनेपर र्ो अवस्था र्ें पररवतनश िोता िै वि अवस्था-पररणार् िै।'[864] पररवतनश िर र्गि तथा िर एक क्षण र्ें िो रिा िै। िर् एक िी र्लधारा र्ें दो बार पग निींडाल सकते,े क्योंकक र्ल दो क्षण के भलए भी विी निीं ंरिता। और यि भी सत्य िै कक विी व्यजक्त उसी र्लयात र्ें दो बार पग निीं डालता, क्योंकक इस बीच र्ैसे ेर्लधारा र्ें पररवतनश िो गया वैसेिी उस व्यजक्त र्ें भी पररवतनश िो गया। सब वस्तुएं तथा अवस्थाएं,ं बाह्य तथा आभ्यन्तर, इस पररवतनश के पवधान के अधीन िैं।'[865] इसी पररवतनशरूप प्रकिया र्ें से र्नुष्य का र्जस्तष्क पूववशततयशों तथा पश्चाद्धततयशों के सम्बन्ध द्वारा कायकशारणभाव के तनयर् की रचना करता िै।[866]

5. प्रकृतत

सांख्य प्रकृतत की व्याख्या करनेका प्रयत्न करता िै कक यि तत्त्वों का एक अत्यधधक सजम्श्रण 2/6 र्ो सदा पररवतततश िोता रिता िै। भौततक द्रव्य अपने-आप र्ें अंतंभौततक तत्त्वों से उत्पन्न पदाथ शिैं, और उसके रूपों के पवभार्न को प्रकृतत की तनधधयों का प्रकटीकरण किा गया िै। यहद सर्स्त काय शअपने कारणों के अन्दर तछपे े िुए रिते िैं, और यहद िर् एक अनन्त पश्चाद्गतत से बचना चािते िैं, तो एक आहदकारण, र्जसका अन्य कोई कारण न िो, अवश्य स्वीकार करना िोगा। कायकशारणभाव के भसद्धान्त से अनुर्ान द्वारा यि पररणार् तनकलता िै कक इस आनुभपवक पवश्व का परर् (अजन्तर्) आधार अव्यक्त प्रकृतत िै। सांख्ंयकाररका र्ें प्रकृतत के अजस्तत्व को भसद्ध करने के भलए तनम्नभलणखत युजक्तयां दी गई िैं।"[867] (1) व्यजक्तगत पदाथों का पररर्ाण पररभर्त िै। र्ो कुछ पररभर्त िै वि अपने से बाह्य ककसी वस्तु पर तनभरश िै। इसभलए सान्त सान्त के रूप र्ें पवश्व का उद्भव-स्थान निीं िो सकता। (2) सब व्यजक्तगत पदाथ शकुछ व्यापक लक्षण रखते िैं, और इससे वे यि उपलक्षक्षत करते िैं कक उन सबका कोई एक सार्ान्य उद्भव-स्थान िोना चाहिए, र्िां से वे सब तनकलते िैं। सांख्य यि निींर्ानता कक भभन्न-भभन्न तत्त्व एक-दूसूरे से पूणरूशप र्ें भभन्न िैं। (3) वस्तुओं के पवकास र्ें अपने को व्यक्त करता िुआ एक कियात्र्क तत्त्व अवश्य िै। पवकास एक ऐसेतत्त्व को उपलक्षक्षत करता िै र्ो अपनी

---

863 ककन्तु सांख्यदर्नश के अनुसार, कोई कारण भी काय शउत्पन्न कर सकता िै (क्योंकक सब वस्तुएं प्रकृतत के पररवतततश रूप िैं), यहद केवल बाधा उपजस्थत करनेवाली रुकावटों को दूरू कर हदया र्ाए। पवज्ञानभभक्षु का र्त िै कक यहद पत्थर के अन्दर से कणों की वि व्यवस्था र्ो उसके भीतर गुप्त र्जक्तर्ों को पवकभसत िोकर अंकुर के रूप र्ें फूटने से रोकती िै, ईश्वर की इच्छा से ेदूरू िो र्ाए तो पत्थर से भी एक पौधा उग सकता िै।

864 योगभाष्य, 3/13 ।

865 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1/121 ।

866 बुद्धधतनर्ाणश।

867 15 और 16।

ककसी भी जस्थतत के सर्ान निीं िो सकता। र्ो अपनेउत्पन्न पदाथों के अन्दर रिता िुआ भी उनसे ेसभन्न िै। (4) काय शकारण से भभन्न िै और इसभलए िर् यि निीं कि सकते ेकक सान्त तथा सोपाधधक र्गत् ्अपना कारण अपने-आप िै। (5) पवश्व का एकत्व प्रकट िै, जर्ससे ेएक िी कारण का तनदेर् भर्लता िै। सांख्य तनम्नतर् स्तर से उच्चतर् स्तर तक पवश्व के नैरन्तय शको र्ानता िै। पदाथ शएक तनजश्चत व्यवस्था र्ें पवकभसत िोते िैं तथा पवलीन िोते िैं। र्गत् ्को प्रकृतत का पररणार् किा गया िै, और प्रकृतत र्गत् ्का कारण िै। प्रत्येक वस्तु ककसी उत्पादक कारण का काय शिै, क्योंकक असत् ्से कोई वस्तुउत्पन्न निीं िोती। यहद कारण र्ें काय शसे कर् पदाथ िैं तो इस अधधकांर् को असत् ्से उत्पन्न र्ानना पडेगा। इससे पररणार् यि तनकलता िै कक कारण के अन्दर काय श से या तो अधधक या कर् से कर् उतनी िी यथाथतशा अवश्य िोनी चाहिए। डेकाटश के र्ब्दों र्ें, तकश का स्वाभापवक प्रकार् िर्ें यि हदखाता िै कक परर् कारण को काय शकी पूण शयथाथतशा, तात्पय शतथा र्ूल्य को अपने अन्दर रखना चाहिए। ऐसी कोई वस्तु पवकभसत निीं िो सकती र्ो प्रारम्भ र्ें ककसी रूप र्ें अन्ततनहित न िो।'[868] र्बकक प्रत्येक काय शका कारण िै, प्रकृतत का कोई कारण निीं।'[869] बजल्क वि सब कायों का कारण िै और उन्िीं से उसका अनुर्ान ककया र्ाता िै।'[870] इसे ेप्रधान नार् हदया गया िै, क्योंकक यि सब कायों का आधार िै,'[871] ब्रह्म अथवा वि र्ो बढ़ता िै'[872], र्ाया अथात्श ्वि र्ो र्ापती िै या सीर्ा बनाती िै। यि सि की प्रारजम्भक आकृतत िै, जर्ससे ेर्ीवनों की भभन्न-भभन्न व्यवस्थाएं ंतनकलती िैं। सांख्य पुरुष अथवा आत्र्ा का उद्भव अनात्र् अथवा प्रकृतत से तनकलने की असम्भवता को र्ानता िै।

उत्पन्न पदाथों के कारण िोते िैं, ककन्तु प्रकृतत का कारण निीं। उत्पन्न पदाथ शपराधीन िैं; ककन्तु प्रकृतत स्वाधीन िै। उत्पन्न पदाथ शसंख्या र्ें अनेक िैं, देर् और काल र्ें सीभर्त िैं, ककन्तु प्रकृतत एक िै, सवव्शयापक िै और तनत्य िै।''[873] उत्पन्न पदाथ शवे धचह्न िैं जर्नसे ेउनके उद्भव का अनुर्ान ककया र्ाता िै। प्रकृतत कभी नष्ट निीं िो सकती और इसभलए यि कभी पैदा भी निीं िो सकती थी। एक बुद्धधसम्पन्न तत्त्व ऐसी सार्ग्री निीं ंिो सकता जर्ससे ेर्ड र्गत् ्का तनर्ाणश िो सके, क्योंकक आत्र्ा प्रकृतत के रूप र्ें पररवतततश निीं िो सकती। इसके अततररक्त, कतव्शय का सम्बन्ध पुरुष अथवा आत्र्ा के साथ निीं, बजल्क अिंकार के साथ िै, र्ो स्वयं उत्पन्न पदाथ शिै।'[874]

---

868 तुलना कीजए इसके साथ र्ुख्य तथा औपचाररक कारणों के भेदों की, र्ो डेकाटश नेककए िैं।

869 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1/67

870 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1 :110,136 ।

871 प्रधीयते (सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 125)। लोकाचाय शभलखते िैं: इसे प्रकृतत किा र्ाता िै, क्योंकक यि सब पररवतनशों का उद्भव-स्थान िै; अपवद्या किते िैं क्योंकक यि सर्स्त ज्ञान के प्रततकूल िै; र्ाया किते िैं क्योंकक यि धचत्र-पवधचत्र सृजष्ट का कारण िै। प्रकृततररत्युच्यते पवकारोत्पादकत्वाद पवद्या ज्ञानपवरोधधत्वात्, ् र्ाया पवधचत्रसृजष्टकरत्वात् ्(तत्त्वत्रय, पृष्ठ 18)। सर्स्त भौततक आकृततयों के एक सावभशौर्, अदृश्य आहदस्रोत के पवर्षय र्ें प्लेटो का इसी प्रकार का पवचार था। देणखए 'टाइभर्यस', पृष्ठ 24।

872 भगवद्गीता, 14/3 ।

873 सांख्यकाररका, 10; सांख्यप्रवचनसूत्र, 1: 124; और भी देणखए योगभाष्य, 4 : 12 । सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 76।

874 सांख्यप्रवचनसूत्र, 6/54 ।

यि आपपि कक प्रकृतत प्रत्यक्ष र्ें र्नींहदखाई देती, कुछ अधधक र्ित्त्व की र्नीं ि ै। ककतने िी ऐसेपदाथ श िैंजजन्िेंयथाथ शर्ाना र्ाता िै ककन्तु र्ो प्रत्यक्ष ज्ञान के पवषय र्नींिैं। ऐसेपदाथ शके सम्बन्ध र्ें र्ो या तो अत्यन्त तनकट िैं या अत्यन्त दूरू िैं, प्रत्यक्ष सफल र्नीं िो सकता। इजन्द्रयों के अथवा र्न के दोष, ककसी अन्य पदाथ शके बीच र्ें आ र्ानेसे, अयवा ककसी अधधक आकर्षकश, उर्क पदाथ शकी उपजस्थतत से प्रत्यक्ष तनरथकश िो र्ाता िै। प्रकृतत की सूक्ष्ता इसे ेप्रत्यक्ष के अयोग्य करती िै।[875] व्यास प्रकृतत की व्याख्या इस प्रकार करते िैं कक "प्रकृतत वि िै र्ो कभी र्नीं िै और न िी अभावात्र्क िै, जर्सका अजस्तत्व िै और र्नीं भी िै, जर्सके अन्दर कोई अभाव र्नींिै, र्ो अव्यक्त िै, पवर्ेष लक्षण से रहित िै और सबको र्ुख्य पृष्ठभूभर् िै।"[876] यहद उसे ेसत् ्किा र्ाए, र्ो आत्र्ा के प्रयोर्न को भसद्ध करता िो, तो प्रकृतत असत् ्िै, यद्यपप यि वगाकशार्र वि की भांतत असत् ् र्नींिै। किफर, ऐसा कोई पदाथ शर्ो सत् ्िै, नष्ट र्नींिो सकता, और उत्पन्न पदाथ शप्रकृतत के अन्दर अपना अजस्तत्व रखतेिैं यद्यपप एक अव्यक्त दर्ा र्ें। इसके अन्दर सर्स्त व्यवजस्थत अजस्तत्व उपलक्षक्षत िै। भभन्न-भभन्न गुण अपनेको भर्टाते ेर्नींबजल्क साम्यावस्था र्ें रिते िैं, र्ो तनजष्िय्ता र्नींिै, बजल्क एक प्रकार की प्रसारण िै। प्रकृतत इतनी सत् ्र्नींजर्तनी कक र्क्त िै। तीनों गुणों की साम्यावस्या िोनेके कारण'[877] यि सर्स्त भौततक तथा र्ानभसक पररवतनशों का आधार िै। यि पवरुद्ध क्षर्ता िै।[878] िर् प्रकृतत तथा गुणों के यथाथस्शवरूप को र्नीं ंर्ानते,े क्योंकक िर्ारा ज्ञान दृश्यर्ान र्गत् ्तक सीभर्त िै।"[879] यि र्ब्द तथा स्पर् शसे रहित िै,[880] र्ो कियात्र्क रूप र्ें एक सीर्ा िै जर्ससे ेपरे िर् र्नीं ंर्ा सकते। यि आनुभपवक रूप र्ें एक अरूतभशाव िै, केवल नार्र्ात्र िै।[881] ककन्तु इसकी सिा को सर्स्त सृजष्ट की पूव शभूभर्का के रूप र्ें स्वीकार करना िी िोता िै।"[882]

सांख्य र्ें हदया गया र्गत् ्का वणनश, जर्सर्ें इसको एक सर्ांग द्रव्य का रूप हदया गया िै और सर्स्त पदाथ शजर्सके केवल भभन्न-भभन्न पवन्यास (आकृततयां) िैं जर्नका तनर्ाणश इसके परर् घटकों के भभन्न-भभन्न भर्श्रणों के द्वारा िुआ िै, कुछ-कुछ भौततकवाद के भसद्धान्त के साथ सादृश्य रखता िै। सांख्य तथा भौततकवाद दोनों का िी प्रयास उस बिुत कुछ अव्यवजस्थत पवचार की अपेक्षा र्ो ऊपरी रूपों से िर्ारे र्जस्तष्क र्ें बनता िै, पवश्व के साथ अधधक युजक्तयुक्त भाव को प्राप्त करनेकी ओर िै। ये दोनों िी भसद्धान्त एक आद्य द्रव्य की

---

875 सांख्यकाररका, 8।

876 तनःसिासिंतनःसदसजन्नरसदव्यक्तर्भलंगं प्रधानर् ्(योगभाष्य, 2/19 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/61)।

877 साम्यावस्था (सांख्यप्रवचनभाष्य, 1 61)।

878 तुलना कीजए ऋग्वेद, 10: 92।

879 व्यास 'पजष्टतन्त्र' से ेतनम्नार्य का एक श्लोक उद्धृत करतेिैं :-

गुणानां परर् रूपंन दृजष्टपथर्ृच्छतत ।

यिुदृजष्टपथंप्राप्तं तन्र्ायेव सुतुच्छकर्॥ ् (योगभाष्य, 4: 13)।

रस पर हटप्पणी करते िुए वाचस्पतत का किना िै कक प्रकृतत र्ाया र्नीं, अपपतु र्ाया र्ैसी िै-र्ायेव था।

880 सांख्यप्रवचनभाष्य, । 128; पवष्णुपुराण, 1/2,20-21 ।

881 संज्ञार्ात्रर् ्(सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 68) ।

882 प्र=पिले, कृतत सृजष्ट, रचना, अथवा प्रआगे, कृतत बनाना।

परर् यथाथतशा पर बल देते िैं, जर्सेये तनत्य अपवनश्वर तथा सवव्शयापी र्ानते िैं। बत्रपवध वस्तुओं की प्रचुरता, र्ो रर्ें अपने साधारण अनुभव र्ें हदखाई देती िै, इसी अकेलेद्रव्य के कारण िै। ककन्तु सांख्य प्रततपाहदत प्रकृतत की तुलना िर् पवरुद्ध एवं सरल भौततक द्रव्य के साथ निीं कर सकते। सांख्य के पवचारक प्रकृतत की पुरुर्ष को उत्पन्न करने तथा पुरुप की प्रकृतत को उत्पन्न करने की अक्षर्ता से भली प्रकार अभभज्ञ िैं। वे स्वीकार करते िैं, र्ैकक भौततकवादी स्वीकार निींकरते ेकक प्रकृतत का पवकास एक प्रयोर्न को लेकर िोता िै, "यि एक ऐसा तोरणद्वार िै जर्सर्ें से अछूते र्गत् ्की झलक भर्लती िै।" सांख्य-प्रततपाहदत प्रकृतत कोई भौततक द्रव्य निीं, और न िी वि चेतनता-सम्पन्न सिा िै, क्योंकक पुरुप को बिुत सावधानी के साथ इससे पृथक् रखा गया िै। यि केवल भौततक र्गत् ्के पांचों तत्त्वों को िी उत्पन्न, निीं करती, बजल्क र्ानभसक तत्त्वों की भी र्ननी िै। यि सर्स्त प्रर्ेयपवर्षयक र्ीवन का आधार िै। सांख्य इस पवचार पर पवज्ञान के द्वारा निीं, वजल्क अध्यात्र् के द्वारा पिुंचता िै। यथाथतशत्त्व को उसकी पूणतशा के साथ अपररवतनशर्ील प्रर्ाता (पवर्षयी) और पररवतनशर्ील प्रर्ेय (पवर्षय) के रूप र्ें पृथक् ककया गया िै, तथा प्रकृतत पररणार्ील र्गत् ्का आधार िै। यि अपवश्रान्त कियार्ील र्गत् ्के तनाव की प्रतीक िै। यि बबना चेतनता, पवना ककसी पूव-शतनधारशरत योर्ना के बराबर कियार्ील रिती िै, यि ऐसे लक्ष्य के प्रतत कियार्ील िै जर्से ेयि सर्झती निीं।

6. गुण

प्रकृतत का पवकास इसकी अपनी तीन घटक र्जक्तयों अथवा गुणों से िोता िै,'[883] जर्नकी कल्पना प्रकृतत के कायों के लक्षणों के आधार पर की गई िै। प्रकृतत एक बत्रगुणात्र्क (तीन लडों वाली) रस्सी िै। बुद्धध र्ें, र्ो काय शिै, सुख, दुःख तथा सम्र्ोि-ये गुण पाए र्ाते िैं, और इसभलए इसकी कारणरूप प्रकृतत र्ें भी तदनुकूल गुण अवश्य िोनेचाहिए। ये गुण प्रत्यक्ष के पवर्षय निीं, ककन्तुइनके कायों द्वारा इनके अजस्तत्व का अनुर्ान ककया र्ाता िै। इनर्ें से प्रथर् गुण को 'सत्त्व' किते िैं। यि कायक्षशर् चेतना िै और इसभलए चेतेनार्य अभभव्यजक्त की ओर प्रवृि िोता िै तथा र्नुष्य र्ें सुख उत्पन्न करता िै, व्युत्पपिर्ास्त्र के अनुसार, सत्त्व र्ब्द की व्युत्पपि 'सत्'् से िै, अथात् श ्सत् ्वि िै र्ो यथाथ शअथवा पवद्यर्ान िै। क्योंकक चैतन्य को इस प्रकार की संज्ञा दी र्ाती िै, इसभलए सत्त्वगुण को कायक्षशर् चैतन्य किा गया िै। गौण अथों र्ें, 'सत्'् का अथ श'पूणतशा' भी िै और इस प्रकार 'सत्त्व' वि तत्त्व िै र्ो सौन्दर्य एवं सुख को उत्पन्न करता िै। इसे ेऊपर उठने योग्य अथात्श ्िल्का बतलाया गया िै।[884] दूसरा गुण रर्स् ्िै र्ो सर्स्त किया का स्रोत िै और दुःख को उत्पन्न करता िै। रर्ोगुण िर्ें एक उर्न्ार्य सुख तथा सतत उद्यर् के र्ीवन की ओर ले र्ाता िै।'[885] तीसरा तर्ोगुण िै र्ो कियार्ीलता र्ें बाधा पिुंचाता िै तथा उदासीनता अथवा तनरुत्सािा उत्पन्न करता िै। यि अज्ञान तथा आलस्य की ओर ले र्ाता िै। सत्त्व, रर्स् ्और तर्स के काय शिर्: प्रकार् (अभभव्यजक्त), प्रवृपि (कियार्ीलता) और तनयर्न

---

[883] सांख्यकाररका, 16।

[884] सुखप्रकार्लाघव (तत्त्वकौर्ुदी, 13)।

[885] दुःखोपष्टम्भकत्व, प्रवतकशत्व, र्ैकक तर्स् ्का लक्षण बताया िै-र्ोगुरुत्वावरणैः (तत्त्वकौर्ुदी , 13)।

(अवरोध)'[886] ि और के िर्: सुख, दुःख और आलस्य (तन्द्रा) को उत्पन्न करते िैं। तीनों गुण कभी पृथक् निीं रिते ेवे एक-दूसूरे को पुष्ट करतिैं तथा एक-दूसूरे र्ें भर्ले−र्ुले रिते िैं। वे एक-दूसूरे के साथ घतनए रूप से सम्बद्ध िैं, र्ैसे ेकक दीपभर्खा, तेल तथा दीपक की बिी परस्पर सटे िुए रिते िैं।[887] ये तीन गुण िी प्रकृतत के सारभूत तत्त्व िैं। सब वस्तुएं इन तीन गुणों से भर्लकर बनी िैं,[888] और संसार र्ें र्ो भेद पाए र्ाते िैं वे भभन्न-भभन्न गुणों की प्रधानता के कारण िैं। गुणों की इस प्रकार की कल्पना का आहदस्रोत तनःसन्दिे र्नोवैज्ञातनक िै, क्योंकक इनके अन्दर र्ो भेदे कक गए िैं वे भावना के भभन्न-भभन्न प्रकारों के आधार पर िैं। ककन्तु इतनेप्रारजम्भक काल र्ें भी र्ो सांख्यकाररका का सर्य िै, गुण प्रकृतत के घटकों अथवा अवयवों को प्रकट करते ेथे।'[889] इन्ने गुणों की संज्ंञा दी गई िै, क्योंकक प्रकृतत अकेली पवर्ेष्य िै और ये उसके अन्दर केवल अवयव (घटक) रूप से िैं। इर्न्िेंककसी वस्तु-पवर्ेष के पवकास की भभन्न-भभन्न अवस्थाओंके रूप र्ें र्ाना र्ा सकता िै। सत्त्व उस सारभूत तत्त्व अथवा स्वरूप का द्योतक िै जर्सको िर्ें प्राप्त करना िै, और तर्स् ्उन बाधाओं का द्योतक िै र्ो उक्त उद्देश्य की प्राजप्त के र्ाग शर्ें आती िैं। इसी प्रकार रर्स् ्उस जर्क्त का द्योतक िै जर्सके द्वारा बाधाओं पर पवर्य प्राप्त की र्ाती िै तथा सारभूत रूप अभभव्यक्त िोता िै। सांख्य द्वारा प्रततपाहदत सत्कायवशाद के अनुसार, वस्तु सदा उत्पन्न की र्ाती िै, ककन्तु नए भसरे से रची कभी निींर्ाती। उत्पपि केवल अभभव्यजक्तर्ात्र िै और पवनार् ततरोभाव के अततररक्त कुछ निीं। ये दोनों प्रततकियाकारी र्जक्तयों की अनुपजस्थतत तथा उपजस्थतत पर तनभरश करते िैं। बाधाओं के िटा हदए र्ानेपर वस्तु अभभव्यक्त िो र्ाती िै। र्ो अभभव्यक्त िोता िै वि सत्त्व अथवा वस्तु का रूप िै; अभभव्यक्त का कारण रर्ोगुण िै; तर्स् ्वि वाधा िै र्ो सत्त्व की अभभव्यजक्त के र्ाग शर्ें उपजस्थत रिती िै और जर्स पर पवर्य प्राप्त करनी िै।[890] र्िांसत्त्व और तर्स् ्िर्: पवध्यात्र्कं सत् ्तथा

---

[886] प्रकार्कियाजस्थततर्ीलर् ्(योगसूत्र, 2/18) ।

[887] सांख्यकाररका, 13।

[888] बत्रगुणात्र्क ।

[889] तुलना कीजर्ए श्वेताश्वर उपतनर्षद्,। 5। "अर्ार्ेकां लोहितर्ुक्लकृष्णार्.्.." र्ंकराचाय शइसर्ें छान्दोग्योपतनपद् र्ें वणणतश तीन रंगों का आभास पाते िैं, (6/4) । र्ंकराचाय शसांख्य-सम्प्रदाय म्प्रदाय के एक अनुपायी अ द्वारा इसकी व्याख्या इस प्रकार से कराते िैं "इस छन्द र्ें लाल, श्वेत तथा कृष्ण सेरर्स्, ् सत्त्व और तर्् ्का ग्रिण करना चाहिए। लाल रर्स् ् (भावावेर्) िै, क्योंकक यि स्वभावतः र्नुष्य को लाल बना देता िै, बेचैनी उत्पन्न करता िै, रर्यतत । श्वेत सत्त्व िै (अतनवाय श रूप से कल्याणकर), क्योंकक यि स्वभावतः र्नुष्य को उस्स्थत बनाता िै। कृष्णवण शतर्स् ्(अन्धकार) िै, क्योंकक यि अज्ञानान्धकार उत्पन्न करता िै। क्योंकक तीनों गुण आप प्रकृतत के िैं, इसभलए उर्न्िें'अर्ा' किा गया िै, अथात्श ्जर्नका र्न्र् न िुआ dot (र्ांकरभाष्य, 1:4, 9)। गुण नार् इनका इसभलए िै क्योंकक ये आत्र्ा को बांधते िैं (गुण अथात्श ्रस्सी) (सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/61)

[890] डॉक्टर सील भलखतिैं "प्रत्येक घटना र्ें तीन प्रकार के र्ूलतत्त्व िोते िैं बुद्धधगम्य सार, र्जक्त आर घनत्व। तनकट संयोग र्ें ये वस्तुओं के अन्दर अतनवाय शरचनात्र्क अवयवों के रूप र्ें प्रवेर् करते िैं। ककसी वस्तु का सार (सत्त्व) वि िै जर्स रूप र्ें अपने को बुद्धध के आगे अभभव्यक्त करती िै, और इस प्रकोर को अभभव्यजक्त के पवना चेतनार्य गत् ्र्ें कुछ भी निींरि सकता (सर्जष्टबुद्धध)। ककन्तु यि साररत्त्व तीन लक्षणों र्ें से केवल एक िै। यि न तो पुंर् को और न गुरुत्व को धारण करता िै। न यि बाधा िी देता िै और न कोई काय शिी करता िै। उसके बाद तर्स् ्का अंर् िै, र्ो पुंर्, तनजष्यिता, भौततक सार्ग्री िै, र्ो गतत के र्ाग शर्ें तथा चेतनार्य धचन्तन के भी र्ाग शर्ें बाधा देता िै। ककन्तु बुद्धध-सार्ग्री तथा भौततक सार्ग्री कोई कायशनिीं कर सकतीं और अपने-आप र्ें रचनात्र्क कियार्ीलता से रहित िैं। सर्स्त काय शरर्ोगुण से िोता िै र्ो र्जक्त का अंर् िै और र्ो भौततक द्रव्य की बाधा पर पवर्य प्राप्त करके बुद्धध को भी र्जक्त प्रदान करता िै,

 तनरे्षेधात्रक असत् ्के अनुरूप िैं, रर्स् ्उक्त दोनों के र्ध्य संघषश का द्योतक िै। प्रत्येक वस्तु

का अपना आदर्श

सारतत्त्व िोता िै जर्से ेप्राप्त करने का वि प्रयत्न करती िै, और वास्तपवक ढांचा िोता िै जर्ससे ेछुटकारा पाने का

वि प्रयत्न करती िै। पपछली अवस्था इसकी तर्ोऽवस्था िै तथा पिली सत्त्वावस्था िै, और प्रयत्न करने की

प्रकिया रार्सी अवस्था की द्योतक िै। पररणार्स्वरूप, सत्त्व वि िै जर्सके द्वारा कोई भी वस्तु अपनेको चैतन्य र्ें

अभभव्यक्त करती िै। क्योंकक ये लक्षण र्ीवन-र्ात्र र्ें पाए र्ाते िैं, इसभलए ये र्ूल प्रकृतत के कारण र्ानेगए

िैं।'[891]

ये गुण वैर्ेपषक के गुण निीं िैं, क्योंकक इनके अन्दर लघुता, कियार्ीलता आहद गुण पवद्यर्ान िैं।[892]
पवज्ञानभभक्षु इनको यथाथसशिा के प्रकार बताते िैं'[893] तथा प्राचीन उपतनषदों र्ें'[894] इन्िें नैवैज्ञातनक अवस्थाओं

का रूप हदया गया िै। र्ो भौततक तथा र्ानभसक बुराई को उत्पन्न करती िैं। रचना की दृजष्ट से ये गुण अत्यन्त

सूक्ष्र् बताए गए िैं। ये सदा पररवतनशर्ील िैं, यिांतक कक जर्से ेसाम्यावस्था किा र्ाता िै उसर्ें भी ये गुण

तनरन्तर एक-दूसूरे र्ें पररवतततश िोते ेरिते िैं।[895] ककन्तु ये पररवतनश अपने-आप र्ें तब तक कोई पवर्षयतनष्ठ

पररणार् उत्पन्न निीं ंकरते ेर्ब तक कक साम्यावस्था र्ें क्षोभ उत्पन्न निीं ंिोता। गुणों की साम्यावस्था र्ें क्षोभ

उत्पन्न िोनेपर ये गुण एक-दूसूरे पर किया-प्रततकिया करते िैंतथा पवकास िोता िै। गुणों की नानापवध

प्रततकिया के कारण िी र्गत् ्र्ें पवपवधता पाई र्ाती िै। जर्स पवर्ेष घटना र्ें र्ो कोई गुण सवोपरर रिता िै वि

उसर्ें अभभव्यक्त िोता िै, यद्यपप अन्य गुण भी अनुपजस्थत निींरिते। भौततक र्ड पदाथों र्ें तर्ोगुण प्रधान िै

तथा सत्त्व और रर्स् ्गौण िैं। गततर्ान पदाथों र्ें रर्ोगुण प्रधान िै और अन्य गुण प्रच्छन्न िैं। इस प्रकार 'सत्त्व,

रर्स् ्और तर्स्' ्इन पाररभापषक र्ब्दों का प्रयोग प्रधान पक्ष को लक्ष्य करके ककया र्ाता िै, एकाजन्तक तथा

अनन्यस्वरूप को लक्ष्य करके निींककया र्ाता। यद्यपप कायरूशप र्गत् ्की उत्पपि र्ें तीनों गुण एक साथ भाग

लेतेिैं, तो भी वे कभी एकीभूत निींिोते। पारस्पररक प्रभाव अथवा सार्ीप्य के कारण उनके अन्दर पररवतनश

िोता िै। ये पवकभसत िोते िैं, परस्पर भर्लते िैं तथा पृथृक् िोते िैं। उनर्ें से कोई भी अपनी र्जक्त को निींखोता,

भले िी दूसूरे सकिय रूप र्ें क्यों न कायरशत िों।'[896] प्रकृतत तथा तज्जन्य पदाथ शइन गुणों को धारण करते िैं और

जर्सकी आवश्यकता इसेअपने चेतनार्य तनयर्न तथा अनुकूलन के भलए िोती िै" (हद पॉजर्हटव साइंसेर् आफ हद हिन्दू,

पृष्ठ 4)। कुछ लोगों को डॉ. सील का उक्त प्रयास सांख्य की व्याख्या से ेअधधक उसका पुनलेखन प्रतीत िोगा।

[891] कभी-कभी यि किा र्ाता िै कक कियार्ीलता का, र्ो सम्पूण शपवश्व की पवर्ेषता िै, बाधा पिुंचाने वाले से अलग कोई अथ श

िी निीं। इस प्रकार रर्स् ्अथाशत् ्कियार्ील पक्ष तर्स् ्अथात्श ्तनजष्िय पक्ष के अजस्तत्व का संकेत करता िै। उसके बबना

सब वस्तुएं ंतनरन्तर गततर्ान रिंगी। सकियता अपने-आप र्ें युजक्तयुक्त उद्देश्य को पूरा करती िै और इसभलए सत्त्वपक्ष

भी पवद्यर्ान िै (तत्त्वकौर्ुदी, 13)।

[892] सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/61 ।

[893] वाचस्पतत तथा सांख्यकाररका इस प्रकार की व्याख्या निीं देते।

[894] श्वेताश्वतर उपतनर्षद् तथा र्ैत्रायणी उपतनर्षद् ।

[895] सारूपपररणार् ।

[896] योगभाष्य, 2: 18 ।

 इसभलए ये अचेतन ि ैं। वे अपने-आपरें तथा पुरा रें भेद करनेकी र्जक्त से वंधचत ि ैं। वे सदा पवधेय (पवर्षय) कोहट
रें ि ी रिते ि ैं, र्बकक केवलरात्र पुरुप ि ी प्रराता (पवर्षयी) की कोहट रें ि ै।

गुणों के पवर्षय रें पवज्ञानभभक्षु रें एक बबलकुल भभन्न र्त पाया राता ि ै, रो इनको सूक्ष्
सिाएं ंतथा व्यजक्तरूप पदाथों की पवपवधता के अनुसार संख्या रें अनन्न रानता ि ै। इस र्त के अनुसार, ऐसा किना सिी न िोगा कक व्यापक गुण अपने पवपवध संयोगों के कारण पवपवध कायों को उत्पन्न करते ि ैं, क्योंकक इस प्रकार का र्त छोटे-छोटे भेदों की व्याख्या निीं कर सकता।[897] यद्यपप गुणों की अभभव्यजक्तयों असंख्य ि ैं, तो भी कुछ सारान्य लक्षणों, रैसे ेलघुता को धारण करने के कारण इनका तीन प्रकार का वगीकरण ककया गया ि ै।[898] कारण-काय-शसम्बन्धी इन तीनों सत्त्वय आहद द्रव्यों रें से प्रत्येक नानापवध तनरी अभभव्यजक्तयां रखता ि ै।'[899] गुणों की न तो सृजष्ट िोती ि ै और न नार् िी िोता ि ै। यद्यपप ठोस रूत शरूप प्रकारों रें धन एवं ऋण, वृद्धि एवं ह्रास, सम्भव ि ै, रो पररवतनश व्यवस्थापन तथा अन्तहितश से वास्तपवक रें रूपान्तर के कारण िोते ि ैं, तो भी अन्तहितश तथा वास्तपवक भर्लकर सदा एक सरान ि ी रिते ि ैं। यि ठीक उसी प्रकार ि ै रैसे ेकक चौसर के खेल रें िोता ि ै। पासे सदा विी रिते ि ैं, ककन्तु वे क्योंकक भभन्न-भभन्न प्रकार से पडते ि ैं इसभलए उनका अयं िराे भलए भभन्न-भभन्न िोता ि ै। सस्र्त पररवतनश अनन्त काल रें पवद्यरान अतनवाय शसिाओं की जस्थतत, व्यवस्था, उनके वगीकरण, भर्श्रण तथा पृथक्करण से सम्बन्ध रखता ि ै, रो सदा ि ी परस्पर संघहटत तथा पवघहटत िोती रिती ि ैं।[900]

7. पवकास

प्रकृतत वि रौभलक द्रव्य ि ै जर्सरें से यि र्गत् ्पवकभसत िोता ि ै। अव्यक्त दरा रें प्रकृतत केवल प्रततकूलताओं का संगतीकरण ि ै। र्ब वे साम्यावस्था रें एकत्र रिती ि ैंतो उनरें कोई किया निींिोती ि ै। पवश्रार् की अवस्था को प्रकृतत की स्वाभापवक दरा किा गया ि ै।[901] तो भी बाह्य किया की अनुपजस्थतत का तात्पय शयि निीं किक काय शकरने की प्रवृपि का भी अभाव ि ै। व्यक्त िोनेकी प्रवृपियां (सत्त्व) और कियारीलता (रर्स) ् अव्यक्त तथा तनजष्यिता (तर्स) ् की प्रवृपियों से प्रततबद्ध रिती ि ैं। सांख्य र्गत् ्के सवोपरर तत्त्व का पवचार एक ऐसेएकत्व के रूप रें करता ि ै जर्सके साथ तत्त्वों का यथाथ शपवरोध ि ै। एक अरूत शइकाई को या तो तनरन्तर कियारील या तनरन्तर तनजष्यि िोना चाहिए। प्रकृतत स्वरूप से अजस्थर निीं और इसभलए इसे ेअतनवाय शरूप से

---

897 सांख्यप्रवचनभाष्य, ।: 127।

898 सांख्यप्रवचनभाप्य, 1/128 ।

899 विी।

900 तत्त्वकौरुदी, 13-16; तत्त्ववैरारदी ,2/20; 4/13 - 14 और योगवाततकश 4/13 - 14 ।

901 योगभाष्य, 2 / 18

भभन्न-भभन्न िोनेकी आवश्यकता र्निीं।'[902] र्ब गुणों की साम्यावस्था र्ें क्षोभ िोता िै तो प्रकृतत का नार् िोता िै,'[903] एक पक्ष के अत्यधधक बोझ से तनाव कर् िोता िै और पररणर्न की किया प्रारम्भ िो र्ाती िै। पुरुष के प्रभाव र्ें आकर प्रकृतत पवकभसत िोती िै। पुरुष के उद्देश्यों की पूतत शप्रकृतत के तीन पवभष्ट अवस्थाओं र्ें व्यक्त िोनेका कारण िै:[904] क्योंकक प्रकृतत एक िै और सवव्शयापक िै, इसभलए सब वस्तुओं का आधार प्रकृतत िै और, एक अथ शर्ें, प्रत्येक वस्तु अपने लक्षणों र्ें अन्य वस्तुओं के साथ साझा रखती िै। ककन्तु तथ्य यि िै कक वस्तुएं सब कायों को एकसाथ व्यक्त र्निींकरतीं। पवकास का कारण देर्, काल, पवपवध तथा कायकशारणभाव र्ें अनिुर् के एक तनजश्चत पवधान का अनुसरण करता िै।'[905] िर् र्निींकि सकते कक यि पवकास क्यों िोता िै। िर्ें इसे े केवल स्वीकार करना िोता िै। प्रकृतत, र्ो अपनेअन्दर सब वस्तुओं की सम्भाव्यताओं को धारण करती िै, पवचार के उपकरणों के रूप र्ें और पवचार के पवषयों के रूप र्ें पवकभसत िोती िै।

र्ित्,् र्ो सकल पवश्व का कारण िै, प्रकृतत के पवकास र्ें सबसेप्रथर् उत्पन्न पदाथ शिै। यि व्यजक्त की बुद्धध का आधार िै। र्िां ं'र्ित्'् र्ब्द पवश्वीय पक्ष को दर्ातशा िै, विांबुद्धध र्ब्द से , र्ो इसका पयायशवाची िोकर प्रयुक्त िोता िै, तात्पय शतत्सर्ान र्नोवैज्ञातनक पक्ष िै, र्ो प्रत्येक व्यजक्त र्ें रिता िै। सांख्य र्ें 'र्ित्'् के र्नोवैज्ञातनक पक्ष पर वल हदया गया िै। बुद्धध के पयायशवाची र्ब्दों[906] तथा गुणों-धर्,श ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वय-श और इनके पवपरीतों सेयि स्पष्ट िै कक बुद्धध को र्नोवैजै्ञातनक अथ शर्ें लेना चाहिए। ककन्तु इसकी उपाधधयों, यथा र्ित्,् ब्रह्मा आहद से यि उपलक्षक्षत िोता िै कक प्रयोग पवश्व-सम्बन्धी अथ शर्ें भी ककया गया िै।[907] बुद्धध को अर्रीरी पुरुष के साथ भर्धश्रत न करना चाहिए। इसेसर्स्त र्ानभसक प्रकियाओं का सूक्ष्र् द्रव्य र्ाना गया िै। यि वि क्षर्ता िै जर्ससे िर् पदाथों र्ें भेदे करते िैं तथा प्रत्यक्ष ज्ञान से र्ानते िैं कक वे क्या िैं। बुद्धध के व्यापार िैंतनश्चय करना तथा तनणयश पर पिुंचना। और सब इजन्द्रयांबुद्धध के भलए काय शकरती िैं, र्ो सीधे पुरुष के भलए काय शकरती िै। इस प्रकार पुरुष सर्स्त र्ीवन का अनुभव करने योग्य िोता िै तथा अपने व प्रकृतत के अन्दर भेदे कर सकता िै।

प्रकृतत के अन्य उत्पन्न पदाथों के सर्ान बुद्धध र्ें भी तीन गुण िैं। अपने साजत्त्वक रूप र्ें यि कतव्शयपालन, ज्ञान-सम्पादन, इच्छा की अधीनता से स्वातन्त्र्् तथा दैवीय र्जक्तयों से पिचानी र्ाती िै; अपने रार्स रूप र्ें यि इच्छाओं को उत्पन्न करती िै; और अपने तार्स रूप र्ें यि उपेक्षा तथा अज्ञान आहद को उत्पन्न करती िै। पवज्ञानभभक्षु का किना िै कक सब आत्र्ाएंदैवीय िैं,'[908] यद्यपप उनके अन्तःजस्थत ऐश्वय शको

---

902 देणखए स्पेंसर : फस्टश पप्रंभंसपल्स, पृष्ठ 19।

903 प्रकृततनार्् ।

904 त्रयाणां त्ववस्थापवर्ेषाणार्ादौ पुरुषाथतशा कारणंभवतत (योगभाष्य, 2/19) इस पर वाचस्पतत को भी देणखए।

905 पररणार्र्तनयर्् ।

906 र्त, ख्यातत, प्रज्ञा, ज्ञान।

907 परवती वेदान्त र्ें बुद्धध को सर्जष्टरूप र्ें हिरण्यगभ शकी उपाधध करके भलया गया िै।

908 सव शएव पुरुषा ईश्वर इतत।

रर्स् ्तथा तर्स् ्गुण द्वारा रुकावट भर्लती िै।'[909] तत्त्वों द्वारा तनभर्तश सृजृष्ट से प्रत्ययसग शअथवा बौद्धधक सृजृष्ट भर्न्न िै, र्ो चार प्रकार की िै, अथात्श ्अज्ञान (पवपययश), अर्जक्त, तुजष्ट (सन्तोर्ष) और पूणतशा (भसद्धध)। इनके पचास उपपवभाग िैं।'[910] अज्ञान के पांचं प्रकार र्ाने गए िैं, अथातश अपवद्या, अजस्ता (अथवा अिंभाव), इनर्ें से प्रत्येक आठ प्रकार का िै; राग (इच्छा), र्ो दस प्रकार का िै; द्वेर्ष अभभतनवेर् (अथवा भय) र्ो अट्ठारि प्रकार के िैं। अर्जक्त के अट्ठाइस प्रकार िैं, तुजष्ट के नौ प्रकार और भसद्धध के आठ प्रकार िै।ैं

बुद्धध दोनों िी िै, तनत्य भी और अतनत्य भी। यि प्रकृतत की कारणावस्था र्ें बीर्जक्त के रूप र्ें अंकुर बनकर पवद्यर्ान रिती िै और तब इसके व्यापार प्रकट िोंिोंतिे। र्ब यि कायावशस्था र्ें पररवतततश िो र्ाती िै तो यि बुद्धध किाती िै। पवज्ञानभभक्षु ुइसे ेकभी असफल न िोनेवाली तथा सब संस्कारों को धारण करने वाली र्ानता िै।'[911] सूतृतयां बुद्धध र्ें संगृीत रिती िैं, र्न अथवा अिंकार र्ें नििंरितीं। "सत्यज्ञान द्वारा अिंकार तथा र्न के पवलय िो र्ाने पर भी सूतृत र्ेर्ष रिती िै ।'[912]

यि स्पष्ट िै कक काररका ने बुद्धध के र्ो व्यापार बताए िैं वे इसके द्वारा केवल तभी सम्पन्न िो सकते िैं र्बकक यि अिंकार के पीछे िो, तथा र्न और इजन्द्रयों के भी पीठे िो, और ठोस तत्त्वों के सर्ान कोई ज्ञेय पदाथ श पवद्यर्ान िो। ककन्तु सांख्य का र्त िै कक प्रथर् अवस्था र्ें र्ब बुद्धध उपजस्थत िोती िै, ये सब उपजस्थत निं ं ीतिे। इसभलए िर्ें इसको पवश्व-सम्बन्धी अथों र्ें ग्रिण करना चाहिए, अथात् श ्पवर्षयी तथा पवर्षय, प्रत्यक्ष करनेवाले तथा प्रत्यक्ष के पवर्षय र्ें भेदे का आधार सर्झना चाहिए। ककन्तु तब िर्ें एक पवश्वात्र्ा को र्ानना िगो, जर्से ेसांख्य स्वीकार निंकरता। र्ित् ्की जस्थतत को एक अतनजश्चत दर्ा र्ें छोड हदया गया िै। बुद्धध प्रकृतत के उत्पन्न पदाथ शतथा अिंकार की उत्पाहदका के रूप र्ें उस बुद्धध से भभन्न िै र्ो इजन्द्रयों, र्न तथा अिंकार की प्रकियाओंको वर् र्ें रखती िै। यहद दोनों को एकसर्ान र्ाना र्ाए तो प्रकृतत के सम्पूण शपवकास को पवर्षयतनष्ठ र्ानना पडेगा, क्योंकक अिं तथा अनिं दोनों िी बुद्धध से उत्पन्न िैं। इस प्रकार की संहदग्धता प्रकृतत के अन्य पदाथों र्ें भी पाई र्ाती िै।

अिंकार (अिंभाव) अथवा व्यजक्तत्व का तत्त्व बुद्धध के पश्चात् ्उदय िोता िै। इसके व्यापार के द्वारा भभन्न-भभन्न आत्र्ाओं र्ें सेप्रत्येक एक पृथक् र्ानभसक पृष्ठभूभर् से युक्त िो र्ाती िै। िर्ें यिांपर पवश्व-सम्बन्धी तथा र्नोवैज्ञातनक पक्षों र्ें भी भेद करना िै। र्नोवैज्ञातनक दृजष्ट से, अिं का भाव एक अनिं अथवा प्रर्ेय पवर्षय (पदाथ)श के बबना असम्भव िै। ककन्तु पवर्षयतनष्ठ का पवकास सांख्य की पवकास सम्बन्धी प्रकल्पना से अिंकार के उदय के पीछे िी िोता िै। िर्ें एक पवश्वात्र्क अिंकार की संभावना को स्वीकार करना िी िोगा, जसर्ें से व्यजक्तरूप पवर्षय तथा पवर्षयी उदय िोते िैं। अिंकार को भौततक सार्ग्री के रूप र्ें भलया गया िै, और र्िां ंबुद्धध अपनेव्यापार र्ें अधधक ज्ञान-पवर्षयक िै विां अिंकार अधधक कियात्र्क िै। र्नोवैज्ञातनक दृजष्ट से,

---

909 सांख्यप्रवचनभाष्य ,2:15| 3ft देणखए योगभाप्य,1/2 ।

910 सांख्यकाररका ,46

911 सांख्यप्रवचनभाष्य ,2/41 - 42

912 सांख्यप्रवचनभाप्य ,2/42 ।

अिंकार का काय शअभभर्ान अथवा आत्प्रेर्् िै। कतृत्शव का सम्बन्ध इसके साथ िै, आत्रा अथवा पुरुर्ष के साथ निीं।'[913] र्त् ्की अिंकार के प्रतत विी जस्थतत िै र्ो चैतन्य की आत्चैतन्य के प्रतत िै। पिला पपछले ेकत की अिंकार पूवकशल्पना िै। िर् अिंकार के अजस्तत्व का अनुर्ान इसके कार्यों से करते िैं।[914] इसे ेद्रव्य र्ाना गया िै, क्योंकक यि अन्य द्रव्यों का उपादान कारण िै। पुरुर्ष अिंकार के द्वाराका प्रकृतत की कियाओं को अपनी कियाएं ं सर्झनेलगता िै। र्न के द्वारा इसे ेर्ो संवेदनाएं तथा सुझाव भर्लते िैंयि उर्न्िें आत्रा के अपणश कर देता िै। र्ें सिायक िोता िै। अिंकार वि निीं र्ो सावभशौर् चैतन्य को व्यजक्तत्व का

इस प्रकार यि भावों तथा तनराणश
रूप देता िै, क्योंकक सांख्य के अनुसार व्यजक्तत्व पिले िी पवद्यर्ान िै। वाह्य र्गत् ्से र्ो संस्कार आते िैं उर्न्िें यि व्यजक्तत्व प्रदान करता िै। र्ब अिंकार पर सत्त्व की प्रधानता िोती िै तो िर् अच्छे कर् शकरते िैं, र्ब रर्स् ् की प्रधानता िोती िै तब बुरे कर् शकरते िैं; और र्ब तर्ोगुण की प्रधानता िोती िै तब ऐसे ेकर् शकरते िैं जर्न्िें न अच्छे कि सकते िैं, न बुरे। प्रगाढ़ तनद्रा (सुपुजप्त) र्ें अिंकार का काय शअनुपजस्थत रि सकता िै, ककन्तु इच्छाएं ं तथा प्रवृपियां सब रिती िैं।'[915] यि र्ानना कहठन िै कक आत्भाव र्त् ्अथवा बुद्धध से ककस प्रकार उत्पन्न िोता िै।

गुण अिंकार सेपवकभसत िोनेर्ें तीन पवभभन्न र्ागों का आश्रय लेतेिैं, जर्नके कारण इसे ेसाजत्त्वक, रार्स तथा तार्स किा र्ाता िै। अिंकार से इसके साजत्त्वक (वैकाररक) रूप र्ें र्न, पांचों ज्ञानेजन्द्रयां तथा पांचों कर्ेजन्द्रयांपवकभसत िोती िैं, और इसी सेइसके तार्स (भूताहद) रूप र्ें पांच सूक्ष्र् तत्त्व उत्पन्न िोते िैं। रार्स (तेर्स) रूप दोनों र्ें अपनी भूभर्का अदा करता िै और पररणार्ों र्ें उपजस्थत रिता िै।'[916] तन्र्ात्राओंअथवा पांच सूक्ष्र् तत्त्वों से, तर्स् ्से आधधपत्य िोनेसे, स्रूतरूशप पंचभूत उत्पन्न िोते िैं। इन सब पवकासों र्ें यद्यपप कोई एक गुण प्रधान रि सकता िै, ककन्तु अन्य भी उपजस्थत रिते िैं, अपने-अपनेकाय शकरते िैं और अप्रत्यक्ष रूप र्ें पदाथों के पवकास र्ें सिायक िोते िैं।

र्न वि इजन्द्रय िै जर्सका र्ित्वपूण शकाय शइजन्द्रयों से प्राप्त सार्ग्री का संश्लेर्षण करके उर्न्िें पवचार (प्रत्यय) के रूप र्ें पररणत करना, कार्यों के वैकैजल्पक र्ागों का सुझाव देना, तथा इच्छा द्वारा हदए गए आदेर्ों का कर्ेजन्द्रयों द्वारा पालन कराना िै। जर्स प्रकार बुद्धध तथा आत्भाव के पवर्षय र्ें िै, उसी प्रकार र्न के पवर्षय र्ें भी इजन्द्रय तथा उसके कर् शर्ें कोई भेद निींककया गया िै। इजन्द्रयों को द्वार र्ाना गया िै और र्न को

913 सांख्यप्रवचनसूत्र, 6 : 54। पवज्ञानभभक्षु छान्दोग्य उपतनर्षद् का वाक्य उद्धृत करता िै, 'वि स्यां प्रर्ायेय' (र्ें अपने अनेक रूप धारण करूं, उत्पन्न िोऊ)। और इस पर हटप्पणी करता िै: "तत्त्वयों तथा अन्य सबकी रचना से पूव शअभभर्ान का अजस्तत्व िै और इस प्रकार इसे सृजष्ट-रचना का कारण किा गया िै।" (सांख्यप्रवचनभाष्य, 1:63)।

914 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1/63

915 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 63।

916 सांख्यकाररका, 24-25। पवज्ञानभक्षु का र्त िै कक साजत्वक अिंकार र्न को उत्पन्न करता िै, रार्स दस इजन्द्रयों को और तार्स पांच तन्र्ात्राओं को उत्पन्न करता िै (सांख्यप्रवचनभाष्य, 2/18); अतनरुद्ध प्रचभलत र्त को स्वीकार करता िै कक रार्स एक ऐसी दर्ा िै र्ो सर्स्त पवकास से पूव शरिती िै, और अन्य गुण घटक अवयवों के स्वरूप का तनणयश करते िैं । र्िांवाचस्पतत का यि र्त िै कक र्त् ्से ेअिंकार उत्पन्न िोता िै और अिंकार से तन्र्ात्राएं, विां पवज्ञानभभक्षु का र्त िै कक अिंकार का पृथक्करण तथा तन्र्ात्राओं का पवकास ये र्त् ्के अन्दर सम्पन्न िोते िैं।

द्वार रक्षक किा गया ि।ै'[917] प्रत्यक्ष ज्ञान तथा किया दोनों रे्ं िी र्न का सियोग आवश्यक ि।ै[918] भभन्न-भभन्न इजन्द्रयों के सम्बन्ध रे्ं यि नाना आकृततयां धारण करता ि।ै'[919] र्न सवव्शयापक र्नीीं, क्योंकक यि एक यन्त्र िै जर्सरे्ं गतत तथा किया रिती ि।ै'[920] यि हिस्सों से भर्लकर बना िै क्योंकक इसका सम्बन्ध इजन्द्रयों से ि।ै बुद्धध तथा इजन्द्रयांतनत्य र्नीीं। इस अथ शरे्ं कक एक तनत्य पवर्षयी, अथात् श ्ईश्वर पवद्यर्ान िै जर्सके अधधकार रे्ं ये सब ि।ैं'[921]

पांचों ज्ञानेजन्द्रयां ंिरै्ं: दर्नश, श्रवण, गन्ध, रस और स्पर् शके व्यापार िैं। आवश्यकता काय शकी र्ननी ी।ं क्योंकक िरे् इच्छा रखते ि,ैं इसभलए िरे् कियाओंतथा पदाथों की रचना उनकी पूतत शके भलए करते िैं।"[922] इजन्द्रयांतत्त्वों से र्नींबनी ि,ै क्योंकक इजन्द्रयां ंऔर तत्त्व अिंकार से उत्पन्न िोते ि।ैं'[923] इजन्द्रयांतनत्य र्नीीं, क्योंकक उनका उदय तथा पवलोप हदखाई देता ि।ै प्रत्येक इजन्द्रय एक गुण को ग्रिण करती ि।ै इजन्द्रयां,ं र्न के व्यापारों के सर्ान, दर्नश आहद की इजन्द्रयां ंर्नीीं।[924] वेसूक्ष्र् तथा स्थूलरूशप तत्त्वों (भूतों) के तनरीक्षण के साघन ी।ं'[925] करे्जन्द्रयांजह्वा, पाद, िस्त, र्लत्याग तथा र्नन के व्यापार िैं। र्न इजन्द्रयों सहित उनकी कियाओं द्वारा पांचं र्ीवधारक वायुओं को उत्पन्न करता ि,ै[926] जर्न्िें वेदान्तदर्नश रे्ं एक स्वतन्त्र स्थान प्रदान ककया गया ि।ै सूत्र के र्त रे्ं प्राण (र्ीवन) इजन्द्रयों का एक पररवतततश रूप िै और उनके अभाव रे्ं जस्थत र्नींरिता।"[927]

प्रत्यक्ष के पवर्षयरूप इस र्गत् ्रे्ं पांच इजन्द्रयों के अनुरूप पांचं तन्र्ात्राएं ंि।ैं[928] ये र्ब्द, स्पर्,श रूप, रस तथा गन्ध के सारतत्त्व ि,ैं जर्न्िें भौततक तत्त्व र्ाना गया िै और र्ो साधारण प्राणणयों की दृजष्ट के पवर्षय र्नीीं। इनरे्ं से प्रत्येक केवल एक इंहद्रय से सम्बद्ध ि,ै र्बकक स्थूलतशत्त्व एक से अधधक इजन्द्रयों से सम्बद्ध रिते ि।ैं इन अदृश्य सारतत्त्वों का अनुर्ान दृश्यर्ान पदाथों से िोता ि,ै यद्यपप किा र्ाता िै कक ये योधगयों के प्रत्यक्ष का सांख्यकाररका, 35। "बुद्धध, अिंकार और र्न-इनरे्ं सदा सावधानी के साथ भेद र्नींककया र्ाता। इन्िें आन्तररक

---

917 इजन्द्रय (अन्त:करण) र्ाना र्ाता ि।ै केवल अवस्थाओंके बत्रपवध भेद के अनुसार अन्त:करण एक और केवल एक िी ि;ै र्ैसे िे कक बीर्, पौधा या र्िान ्वृक्ष आहद के पवर्षय रे्ं ि,ै यि काय शऔर कारण के पारस्पररक सम्बन्ध के अन्तगतश आ र्ाता ि ै।" पवज्ञानभभक्षु 'वायुपुराण' से एक श्लोक इस आर्य का उद्धृत करता ि:ै "र्नो र्िान् ्र्ततब्रह्शर्ा पूबुद्शधधः ख्याततरीश्वरः

(सांख्यप्रवचन भाष्य, 2: 16)। और देणखए सांख्यप्रवचन भाष्य, 2/40।

918 सांख्यप्रवचन सूत्र, 2/26 ।

919 सांख्यप्रवचन सूत्र, 2/27 ।

920 सांख्यप्रवचन सूत्र, 5: 69-70 ।

921 सांख्यप्रवचन सूत्र, 5 127।

922 तुलना कीजर्ए र्िाभारत रूपरागादभूच्चक्षुः रूप के प्रतत र्ोि के कारण चक्षुइजन्द्रय उत्पन्न िुई। देणखए र्िाभारत, र्ाजन्तपव,श 213, 16।

923 सांख्यप्रवचन सूत्र, 2: 20 ।

924 सांख्यप्रवचन सूत्र, 2/23 ।

925 सांख्यकाररका, 34।

926 सांख्यप्रवचनसूत्र, 2: 31 ।

927 5/13 ।

928 केवल र्िी। देणखए प्रश्नोपतनर्षद् 48। तुलना कीजर्ए एजम्पडीक्लीर् कृत तत्त्वों के तत्त्व की प्रकल्पना साथ।

 पवर्षय बनते िैं ।'[929] सूक्ष्र् तत्त्वों को पवर्ेर्ष (भेद) से रहित किा गया िै, ककन्तु उनसे ेउत्पन्न िोनेवाले स्थूततशत्त्व

एक तनजश्चत गुण रखते िैं।"[930] तन्र्ात्राएं ंतब तक इजन्द्रयों के भलए उर्के निींबन सकतीं ंर्ब तक कक वे परर्ाणुओं का तनर्ाणश करने के भलए एक-दूसरे र्ें संयुक्त न िो र्ाएं। तर्ोगुण से अिान्त भूताहद अथवा अिंकार सवयशा सर्ांग व तनजष्िय िोता िै तथा पुंर् िोने के अततररक्त अन्य सब प्रकार के लक्षणों से रहित िोता िै। रर्ोगुण के सियोग से यि पररवततशत िोकर सूक्ष्र् द्रव्य, कम्पनर्ील, तेर्ोर्य और र्जक्त से पररपूण शिो र्ाता िै और र्ब्द, स्पर््श रूप, रस तथा गन्ध की तन्र्ात्राएं ंउदय िोती िैं। भूताहद तथा तन्र्ात्राओंके र्ध्य आकार् संर्णि की कडी बनता िै। कारणाकार्, र्ो आणपवक निीं िै और सवव्शयापक िै, तथा कायाकशार् अथवा आणपवक आकार्, र्ो भूताहद अथवा पुंर् इकाइयों और र्ब्द के सारतत्त्वों के र्ेल से बना िै, इनर्ें भेद ककया गया िै। र्ब्द के सारतत्त्व कारणाकार् र्ें रुके िुए रिते िैं तथा वायु के अणुओं के पवकास के भलए र्ाध्यर् बनते िैं।'[931] व्यासभाष्य के अनुसार, र्ब्द की तन्र्ात्रा उत्पन्न िोती िै अिंकार से और अिंकारयुक्त र्ब्द की तन्र्ात्रा से स्पर् शकी तन्र्ात्रा उत्पन्न िोती िै, जर्सर्ें र्ब्द और स्पर् शके गुण पवद्यर्ान रिते िैं, और आगे ेभी इसी प्रकार अन्य तन्र्ात्राएं ंउत्पन्न िोती िैं तथा प्रत्येक उत्पपि र्ें एक गुण र्ुडता र्ाता िै।

गौडपाद तथा वाचस्पतत के र्त र्ें स्थूल शतत्त्वों की उत्पपि एकत्रीकरण की प्रकिया द्वारा सूक्ष्र् तत्त्वों के गुणन से िोती िै। तन:सन्देि इसर्ें यि कहठनाई िै कक इस र्त से ईथर को, जर्सर्ें केवल एक िी गुण श्रवण-योग्यता का िै, अनुरूप सूक्ष्र् तत्त्व के स्थूततशत्त्व के रूप र्ें निींरखा र्ा सकता।[932] वाचस्पतत का र्त िै कक ईथर का अणु ुअन्य सारतत्त्व से उत्पन्न िोता िै; वायु का अणुर्ब्द और स्पर् शदोनों के सारतत्त्वों से, जर्नर्ें स्पर् शका सारतत्त्व र्ुख्य िै, उत्पन्न िोता िै; प्रकार् का अणु ुर्ब्द, स्पर् शतथा रूप की तन्र्ात्राओं से, जर्नर्ें रूप की तन्र्ात्रा र्ुख्य िै, उत्पन्न िोता िै; र्ल का अणु ुचार तन्र्ात्राओं से, तथा पृथ्वी का अणुपांचं तन्र्ात्राओं से उत्पन्न िोता िै, जर्नर्ें िर्: रस और गन्ध की तन्र्ात्राएं र्ुख्य िैं।'[933] पवज्ञानभभक्षु का र्त इससे कुछ भभन्न िै। ईथर का अणु, भूताहद की सिायता से, ईथर की तन्र्ात्रा से उत्पन्न िोता िै।'[934]

---

929 तत्त्वकौर्ुदी, 5।

930 तुलना कीजए इसकी छान्दोग्य उपतनर्षद् के इस र्त से (6/4) कक स्थूल शतत्त्वों की उत्पपि तीन तत्त्वों के परस्पर भर्लनेसे िोती िै, और स्थूल शतत्त्वों को उनके अन्दर जर्स तत्त्व की अपेक्षाकृत बडे अनुपात र्ें उपजस्थतत रिती िै उसी के अनुसार पवर्ेर्ष नार् हदया गया िै। वेदान्त के एक र्त के अनुसार, प्रत्येक तत्त्व र्ें एक तत्त्व का आधा तथा अन्य चार तत्त्वों का आठवां ं हिस्सा सजम्भलत रिता िै।

931 देणखए सील: पॉजर्हटव साइंसेस ऑफ हद हिन्दूर्।

932 देणखए तैपिरीय उपतनर्षद्, 2/1

933 तत्त्ववैर्ारदी, 1/44 ।

934 योगवाततकश, 1 : 45। नागेर् भूताहद की इस सिकाररता का पवस्तार सर्स्त अणुओं तक करता िै। सवत्रश तन्र्ात्रैस्तिद्भूतोत्पादानेऽकिरस्य सिकाररत्वं योध्यर्।ु

र्ब रूूत शअणु ुपरस्पर भर्लते ि ैं तो उनके गुण उनसे ेउत्पन्न पदार्थों रें् पाए र्ाते ि ैं, और इस प्रकार वे ककसी तत्त्वान्तर को उत्पन्न निींकरते।[935] आकार् के अणु ुरें् अन्तःप्रवेर् की र्क्त रिती ि ै, वायु के अणु ुरें् याजन्त्रक दवाव, प्रकार् के अणु ुरें् ज्योततष्र्ान उष्णता तथा प्रकार्, र्ल के अणुरें् लसदार आकर्षणश तथा पृथ्वी के अणु ुरें् जस्नग्ध आकर्षणश रिता ि ै। रूूत शअणुओंके संयोग से पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न िोता ि ै।

तन्र्ात्राओंकी सुख तथा दुःख के अनुभव को उत्पन्न करने की योग्यता तब तक प्रत्यक्ष का पवर्षय निीं ं बनती र्ब तक कक वे तन्र्ात्राओं के रूप रें् रिती ि ैं क्योंकक यि रूूत शअणुओं की अवस्था रें् पिचानी र्ा सकती ि ै, इसभलए रूूत शतत्त्वों रें् ि ी र्ान्त, गौर और रूूढ़ का का भेद ककया र्ाता ि ै। पृथ्वी आहद के अणु, ु गुणों के नानापवध पररवतनशों के द्वारा, पवश्वात्र्क सिा के नानापवध रूप प्रतीत िोते ि ैं। वस्तुओंरें् कोई आन्तररक भेदे निींि, क्योंकक वे सब एक ि ी सार्ग्री से बनी िुई ि ैं। क्योंकक प्रत्येक वस्तु की संभाव्यता प्रत्येक वस्तु के अन्दर ि ै।[936] इसभलए पररवतनश सदा पुरुर्ष के तनभर्ज्ञ िोता ि ै। रूूत शअणु[937] तनर्ीव (र्ड) तथा सर्ीव र्ीरों की रचना करते ि ैं, और एक से दूसूरे के पवकास रें् तारतम्य कभी भंग निीं ंिोता। र्ड, वनस्पतत तथा पर्ुगत ये तीन जस्थततयां ं पवकास रें् रिती ि ैं, र्ो घटक अवयवों के केवल गुणों के पररवतनश से लक्षक्षत िोती ि ैं,'[938] ककन्तु घटक अवयवों के अपनेअन्दर पररवतनश निीं िोते। भभन्न-भभन्न गुणों की अभभव्यजक्त अणुओं की भभन्न-भभन्न व्यवस्थाओंके कारण िोती ि ै। साधारणतः चार प्रकार के स्वीकृत र्ीरों रें् सांख्य दो और र्ोडता ि ै, एक इच्छा से उत्पन्न (सांकजल्पकर्) ् और कृबत्रर् (सांभसद्धधकर्) ्। पृथ्वी इन सब र्ीरों का उपादान कारण ि ै,'[939] यद्यपप अन्य तत्त्व सियक के रूप रें् पवद्यर्ान रिते ि ैं। रूूत शर्रीर पांच तत्त्वों से भर्लकर बना ि ै, यद्यपप कुछ के र्त रें् ईथर आवश्यक निींि। इसी प्रकार कुछ का र्त यि भी ि ै कक र्ात्र पृथ्वी ि ी पयाप्शत ि ै। यि भी किा र्ाता ि ै कक र्िां ं र्नुष्य के र्ीर रें् पृथ्वी तत्त्व सबसे प्रधान ि ै, विांसूय शरें् प्रकार् तत्त्व (तेर्स्) ् की प्रधानता रिती ि ै।[940]

तीन गुणों से तनभर्तश प्रकृतत तथा तज्र्न्य पदाथ शअपवववेक, पवर्षय (प्रर्ेय), अनेक पुरुर्षों के भलए सार्ान्य, अचेतन तथा प्रसवधर्ी किलातेि।[941] प्रत्येक पवकभसत पदाथ शपरवती पदाथ शसे सूक्ष्तर तथा पूववशती पदाथ शसे स्थूलतर िोता ि ै। प्रकृतत से लेकर पंचं भूतों तक की श्रृंखला संख्या रें् चौबीस ि ै, और पुरुर्ष को सांख्य

---

935 अपवर्ेर्ष से ेपवर्ेर्ष के पवकास को तत्त्वान्तरपररणार् किा गया ि ै। यि केवल गुणों के पररवतनश, अथात् श ्धर्पशररणार् से भभन्न ि ै।

936 योगभाष्य, 3: 141 ।

937 क्योंकक वे भभन्न-भभन्न प्रकार के तन्र्ात्रों को घटक अवयवों के रूप रें् धारण करते ि ैं, इसभलए रूत शअणुओं को वैर्ेपर्षक के परर्ाणुओं के सर्ान निींसर्झा र्ा सकता। तन्र्ात्राएं, र्नके हिस्से निींिते,े वैर्ेपर्षक के परर्ाणुओं की तलुना रें्

अदृश्य ि ैं।

938 धर्पशररणार्।

939 5/112 ।

940 5/119 सांख्यप्रवचनभाष्य, 3/19

941 सांख्यकाररका, 11 ।

भारतीय दर्नश-2 247 दर्नश का पच्चीसवां ंतत्त्व किा गया िै।[942] प्रकृतत से उद्भूत तेईस तत्त्व काय शिैं क्योंकक वे प्रकृतत और पुरुर्ष से

भभन्न िैं, पररभर्त पररर्ाण के िैं और उनर्ें प्रधान के गुण रिते िैं, रै्से ेकक वृद्धधध तथा आत्रसात् ्कर लेनेकी र्जक्त, और ये तेईस तत्त्व पुरुप के साधनरूप बनते िैं।'[943] संसार की सब वस्तुएं प्रकृतत की पवकृततयां िैं। प्रकृतत की जस्थतत, पवकृततयों के प्रतत वैसी िै रै्सीकक रू्लभूत द्रव्य की अपनेपररवततततश रूपों के प्रतत िोती िै। र्ित्

अिंकार और पंच तन्र्ात्राएंकुछ के काय शतथा कुछ के कारण िैं। पंचभूत तथा ग्यारि इजन्द्रयां केवल काय शिैं, औरों के कारण निीं। र्िां ंप्रकृतत केवल कारण िै, विांग्यारि उत्पन्न पदाथ शकेवल काय शिैं। पदाथों र्ें से सात कारण भी िैं और काय शभी िैं, र्बकक पुरुर्ष न काय शिै, न कारण िै ।[944]

पवकास सेउत्पन्न ये पदाथ शर्ो अपने सर्ान अन्य पदाथों को उत्पन्न करने र्ें सर्थ शिैं, अपवर्ेर्ष किलाते िैं; और र्ो अपने सदृर् अन्य पदाथों को उत्पन्न करने र्ें सर्थ शनिीं वे पवर्ेर्ष किलाते िैं। र्ब अिंकार तन्र्ात्राओं को उत्पन्न करता िै, तो िर् सूक्ष्र् तत्त्वों र्ें अिंकार की पवद्यर्ानता का सिूभलयत के साथ पता निीं ंलगा सकते। अिंकार सेर्ो उत्पन्न िोता िै वि एक सवयशा भभन्न सिा प्रतीत िोता िै , और इस प्रकार के पररवतनश को 'तत्त्वान्तर-पररणार्' किा र्ाता िै। इजन्द्रयां ंतथा रू्त शतत्त्व ककसी सवथशा भभन्न सिा को उत्पन्न निींकर सकते। इस प्रकार र्िांअिंकार पवर्ेर्ष िै, विांइजन्द्रयांआहद अत्यधधक पवर्ेर्ष िै।'[945]

पवकास र्ात्र उसका व्यक्त िो र्ाना िै जर्सका अजस्तत्व पिले ेसे सम्भाव्यता के रूप र्ें पवद्यर्ान था। प्रारम्भ तथा अन्त का एक सर्ान तनणयश िोता िै। उन वस्तुओंके बावरू्द जर्न्िें प्रकृतत उत्पन्न करती िै, प्रकृतत के द्रव्य र्ें न्यूनता निींआती। पदाथों की उत्पपि से पररणर्न का स्रोत तनःर्ेर्ष निींिोता। कोई भी भौततक पदाथ श अपनी अंतहितश र्जक्त के कुछ भाग के व्यय ककए बबना काय शनिींकर सकता। इसभलए प्रकृतत स्वरूप से पवरुद्ध भौततक र्ानना कहठन िै।

सांख्य द्वारा प्रस्तुत पवकास के कारण की ठीक-ठीक साथकशता को सर्झना कहठन िै और िर्ें कोई सन्तोर्षर्नक व्याख्या इस पवर्षय र्ें निींहदखाई दी कक पवकास के र्ो पवभभन्न डग िैं वे ऐसे ेक्यों िैं।

942 (1) पुरुर्ष (2) प्रकृतत (अव्यक्त) = व्यक्त (3) बुद्धध (4) अिंकार अथवा अिंभाव, (5-9) र्ब्द, स्पर्,श गन्ध, रूप (अथवा रंग) और रस की तन्र्ात्राएं, (10) र्न, (11 - 15) पांच ज्ञानेजन्द्रयां, (16-20) पांच कर्ेजन्द्रयां, (21 - 25) पांच रू्त शतत्त्व, अथातश ईथर, वायु, तेर्, र्ल और पृथ्वी ।

943 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1: 129-134; सांख्यकाररका, 1 15।

944 सांख्यकाररका, 3। तुलना कीजए इररर्ेना "वि र्ो सृजष्टरचना करता िै ककन्तु स्वयंअर्न्र्ा िै; यि र्ो रचना करता िै और स्वयंभी उत्पन्न िुआ िै; वि जर्सकी रचना िुई िै और र्ो रचना करता निीं; और वि जर्सकी न तो रचना िुई और न र्ो रचना करता िै" (डी, डडवीर्न नैचुरी, लाइब्रेरी 5)। देणखए गभोपतनर्षद्, 3।

945 देणखए योगभाष्य, 2/19 र्िां तन्र्ात्राओं तथा व्यजक्तत्व के भाव को र्ित् ्के अपवर्ेर्ष रूप बताया गया िै, र्बकक पांचों तत्त्व तन्र्ात्राओं के पवर्ेर्ष रूप िैं और पांच ज्ञानेजन्द्रयों तथा पांच कर्ेजन्द्रयों और र्न को 'अजस्र्ता' के पवर्ेर्ष रूप किा गया िै।

सांख्यदर्नश के पवभभन्न तत्त्व ताककशक अनुर्ान के द्वारा प्रकृतत से निंप्राप्त ककए र्ा सकते, और वे उससेउत्पन्न पदार्थों के रूप र्ें ऐततिाभसक संयोगों के कारण रखे गए लगते िैं। इन पदार्थों का एक प्रकृतत से तकशपूण शपवकास निंिुआ िै । पवज्ञानभभक्षु इस दोर्ष सेअभभज्ञ िै और इसीभलए यि िर्ें सांख्य के पवकास-पवर्षयक पववरण को र्ास्त्र के प्रर्ाण के आधार पर स्वीकार करने की सम्र्तत देता िै।'[946] ककन्तु यि दार्तशनक व्याख्या की सम्भावना को छोड बैठना िै।

बुद्धध, अिंकार, र्न तथा औरों को पवकास की िर्: आगे–पीछे आनेवाली जस्थततयों की श्रृंखला निं ं र्ानना चाहिए। ये पवकभसत आत्र्ाओं के ताककशक पवश्लेर्षण के पररणार् िैं। वाचस्पतत भलखता िै : "प्रत्येक र्नुष्य पिले ेअपनी बाह्य इजन्द्रयों का प्रयोग करता िै। कफर वि (र्न से) पवचार करता िै, कफर वि नानापवध प्रर्ेय पवर्षयों को अिंकार के सर्स्त प्रस्तुत करता िै, और वि अन्त र्ें बुद्धध के द्वारा तनश्चय करता िै कक क्या करना िै।"[947] र्िां ंयि पवश्लेर्षण पवर्षयी (र्ीवात्र्ा) के पक्ष र्ें इन भभन्न-भभन्न तत्त्वों की प्रत्यभभज्ञा का स्पष्टीकरण करता िै, विां ंपवश्व स्तर पर इन तत्त्वों के काय शठीक-ठीक क्या िोंगे,े इसे ेसर्झनेर्ें िर्ें इससे कुछ सिायता निंभर्लती। पवश्व सम्बन्धी योर्ना का तनर्ाणश र्ानवीय आत्र्ा के सादृश्य पर ककया गया िै; क्योंकक र्नुष्य पवश्व का एक संक्षक्षप्त रूप िै, जर्सर्ें एक छोटे पैर्ाने पर यथाथसशिा के सब घटक अवयवों को दोिराया गया िै। िर् से आनेवाली र्ाग्रतावस्था तथा स्वप्नावस्था के अनुरूप िर्ें संसार की रचना तथा संिार को सर्झना चाहिए। सुर्षुजप्त अवस्था र्ें आत्र्ा पवद्यर्ान िै, यद्यपप यि संसार का बोध निंप्राप्त करती। इसी प्रकार संसार के प्रलय र्ें आत्र्ाएं नष्ट निं ंिोतीं,ं यद्यपप प्रकृतत का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त निंिोता। र्ब कोई र्नुष्य प्रगाढ़ तनद्रा से उठता िै और किता िै कक "र्ें अच्छी तरि से सोया, र्ुझे कुछ भी ज्ञान निंिुआ", तो यि 'कुछ निं'ं अनात्र् अथवा अव्यक्त प्रकृतत िै जर्ससे ेकुछ का भाव उत्पन्न िोता िै। प्रकृतत की उस अवस्था को र्ब यि तनजष्िय रिती िै, र्ीवात्र्ा की सुर्षुजप्त अवस्था के सदृर् सर्झना चाहिए। र्ब कोई उक्त अवस्था से उठता िै तो पिले ेचैतन्य का भाव उदय िोता िै, उसके तुरन्त बाद अिं का भाव आता िै तथा इच्छा की बेचैनी आती िै। इजन्द्रयांतथा र्ब्द, स्पर् शआहद के पांच तत्त्व इसके बाद किया करने लगते िैं। स्थूल तत्त्वों का ज्ञान र्नुष्य को तभी िोता िै र्ब वि र्ागा िुआ िोता िै। र्ब आत्र्ा का र्ुकाबबला अनात्र् के साथ िोता िै, तो चैतन्य अथवा बुद्धध र्ून्य आकार् र्ें पिली चर्क िै, र्ो उदय िोती िै। आत्र्ा को पता लगता िै कक कुछ िै। इसके पश्चात् ्इसे ेअनात्र् के भेद सेअपनेव्यजक्तत्व की चेतना िोती िै। इसको यि अनुभव िोता िै कक "र् ैं पदाथ शको प्रत्यक्ष देखता िंूं।" तब िर्ें र्ालूर् िोता िै कक प्रर्ेय (पदाथ)श एक र्ानभसक अवस्थाओं की श्रृंखला िै र्ो र्न के द्वारा संजश्लष्ट िुई िै और तत्त्वों से भर्लकर बनी िै।[948] सांख्य की पवकास की पूरी योर्ना व्यजक्त के

अत्र प्रकृतेर्िान् ्र्तोऽिंकार इत्याहद सृजष्टर्े र्ास्त्रर्ेव प्रर्ाणर् ्(सांख्यसार) और देणखए र्न्तकृत न्यायर्ंर्ी,

946 पृष्ठ 452-466 ।

947 तत्त्वकौर्ुदी, 23।

948 सर आर. र्ी. भण्डारकर सांख्य की पवकास सम्बन्धी प्रकल्पना का कफश्ते द्वारा ककया गया स्पष्टीकरण देते िैं। र्ो व्यजक्त अपनी चेतना र्ें िो रिे व्यापार को साक्षात् ्र्ानता िै, वि कुछ ऐसी संवेदनाओंसे अभभज्ञ िोता िै जर्नका उत्पन्न करने ेवाला वि निंिै। वि इसभलए एक बाह्य प्रकृतत की धारणा कर लेता िै। इसकी यथाथतशा चैतन्य की स्वतंत्र किया की र्यादशाओं से प्रर्ाणणत िोती िै। "चैतन्य की अवस्था र्ें र्ब 'र्'ैं अपने-आप को पररभर्त अनुभव करता िै, तो बुद्धध सबसे

र्नोवैज्ञातनक अनुभव के आधार पर जस्थत िै। ककन्तु र्नोवैज्ञातनक से तत्त्व-पवज्ञान-सम्बन्ध संर्णि के र्ध्य र्ें यि ऐततिाभसक तथ्य आ गया कक उपतनर्षदों र्ें आत्र्चैतन्य-युक्त ब्रह्म परर्चैतन्य का सबसे प्रथर् पवकभसत रूप बताया गया िै। र्ित् के प्रकृतत से प्रथर् उत्पन्न िोनेका पवचार कठोपतनर्षद् र्ें हदए गए अव्यक्त से र्िान् आत्र्ा के पवकास के पवचार सेभर्लता िै।'[949] र्ित् प्रकृतत िै, र्ो चैतन्य से प्रकाभर्त िोता िै। उपतनर्षदों र्ें िर्ें हिरण्यगभ शअथवा ब्रह्मा का पवचार भर्लता िै, र्ो पवश्वात्र्ा िै और जर्सका उद्भव अर्रीरी ब्रह्म से िुआ बताया गया िै। एकर्ात्र उपाय, जर्सकी प्रकृतत से र्ित् के उत्पन्न िोने का पवचार सर्झाया र्ा सकता िै, वेदान्त की जस्थतत को स्वीकार कर लेना िी िै। पवपय (प्रर्ेय) तथा पवर्षयी (प्रर्ाता) से दूरू सवोपरर ब्रह्म पवद्यर्ान िै। र्ैसे िी इसका पवर्षय से सम्बन्ध िोता िै, यि पवर्षयी बन र्ाता िै, जर्सके सार्ने एक पवर्षय िोता िै।'[950] र्िां सवोपरर ब्रह्म का स्वरूप पवर्शुद्ध चैतन्य िै, विांप्रकृतत का चैतन्य-र्ून्यता िै; और र्ब दोनों परस्पर भर्लते िैं तो ये चेतन तथा र्ड का सर्ागर् िै, अथातश पवर्षय-पवर्षयी िै और यिी र्ित् िै। यिांतक कक असत् भी सम्भाव्य सत् िै अथवा संभाव्य चैतन्य िै। ज्यों िी पवर्षयी अपनेको पवर्षय से पवरोध स्वभाव का पाता

िै, इसर्ें अिंभाव का पवचार पवकभसत िोता िै। पिले बुद्धध िै और उसके पश्चात् अिंभाव। अिंभाव का पवचार सृजष्टरचना के पूव शआता िै। "र्ैं अनेक िो र्ाऊंगा; र्ैं प्रर्नन करूंगा।"[951] सांख्य प्रकल्पना की अस्पष्टता कथन के साथ भर्धश्रत कर हदया गया िै। र्नोवैज्ञातनक सार्ग्री को प्रस्तुत करने की व्यवस्था आवश्यक र्निीं कक यथाथ शपवकास की भी व्यवस्था िो र्ब तक कक पवर्षयी परर्-तनरपेक्ष तथा सवोपरर र्निीं। सांख्य अपनी पूवकशजल्पत धारणाओंके साथ उपतनर्षदों से भलए गए पवचारों को भर्ला देता िै, र्ो ताजत्त्वक रूप से इसके भलए पवर्ातीय िैं।

8. देर् और काल

पूव शर्ें' की पुजष्ट करती िै और तब 'र्ें से भभन्न' के साथ पवरोध र्ें आती िै। 'र्ैं' को सीर्ाबद्धता से उसकी पिलेकी स्वतन्त्रता अथवा असीर्ता उपलक्षक्षत िोती िै।" इस प्रकार िर्ारे सर्क्ष सीभर्त अिं, अर्नि, पररभर्तता और परर् आत्र्ा आते िैं। सांख्य का अिंकार सीभर्त अिं से सम्बद्ध िै। सूक्ष्र् और स्थूल तत्त्व तथा उनकी प्रततरूप इजन्द्रयां, जर्न्िें अिं से उत्पन्न बताया गया िै, अर्नि के अनुरूप िैं। स्वतन्त्र, अनन्त, परर् आत्र्ा, पुरुर्ष िै और इसकी सीर्ाएं अर्नि के बन्धन से िैं। लेककन क्योंकक सवधशा स्वतन्त्र पुरुप सीर्ाओं का उद्भवस्थान निीं िो सकता, इसभलए सांख्य एक पवभर्ष्ट कारण के अजस्तत्व को स्वीकार करता िै, र्ो स्वरूप र्ें अनन्त िै, और जर्सकी सान्तता का कारण, अनन्त अिं के साथ उसका घतनष्ठ सम्बन्ध िोनेके कारण, अिं अज्ञान से अपनेको र्ानता िै। देणखए इजण्डयन कफलासकफकल ररव्यू, 2। पृष्ठ 200 से आगे।

949 3:11।

950 तुलना कीजर्ए, बृिदारण्यक उपतनर्षद्, 1:4, 2, ईक्षांचके (उसने चारों ओर देखा)। छान्दोग्य उपतनर्षद् 6/2 2 तदैक्षत (उसे उसनेदेखा)। तुलना कीजर्ए भागवत "जर्सेवे धचि अथवा र्न के नार् से घोपर्षत करते िैं, र्ो वासुदेव अथातश पवष्णु किलाता िै, यि र्ित् से बना िै।" यद्िावासुशदेवाख्यं धचिं तन्र्िदात्र्कर् (5/26, 21)। देणखए सांख्यप्रवचनभाष्य, 6/66

951 छान्दोग्य उपतनर्षद्, 6/2, 3।

 पवश्व के पवकास का प्रत्येक व्यापार कियारीलता, पररवतनश अथवा गतत (पररस्पन्द) के लक्षण से युक्त िोता

ै।"[952] सब वस्तुएं बुद्धध तथा क्षय के अनन्त पररवतनशों र्ें से गुर्रती िैं। क्षण भर र्ें सर्स्त पवश्व पररवतनश र्ें से गुर र्ाता िै। व्याविाररक र्गत् ्र्ें देर् और काल पररभर्त प्रतीत िोते िैंऔर आकार् से उत्पन्न िुए किे र्ाते िैं, र्बकक यि देर् र्ें सिाजस्तत्व वाली वस्तुओं तथा काल र्ें गतत करते िुए भौततक पदाथों से आबद्ध रिता ै।

पवज्ञानभभक्षु ुकिता िै : "तनन्य देर् और काल, प्रकृतत के रूप िैं, अथवा आकार् के आहदकारण िैं, और प्रकृतत के केवल पवभर्ष्ट पररवतततश रूप िैं। इस प्रकार देर् और काल की सावभशौभर्कता भसद्ध िो र्ाती िै। ककन्तु ये देर् और काल, र्ो पररभर्त िैं, एक न एक उपाधध सेयुक्त िोकर आकार् से उत्पन्न िोते िैं।"[953] सीर्ाबद्ध देर् और काल स्वयं आकार् िैं, र्ो एक न एक उपाधध से पवभर्ष्ट िोते िैं, यद्यपप वे इसके काय शकिे र्ाते िैं। देर् और काल अपने-आप र्ें अरूतभशावात्रक िैं। वे द्रव्य निीं िैं, र्ैसाकक न्याय-वैर्ेपर्षक का पवचार िै, बजल्क प्रकृतत के पवकास की घटनाओंको बांधकर रखने ेवाले सम्बन्ध िैं। घटनाओंकी जस्थतत देर् और काल से सम्बद्ध िै। र्िं अनन्त देर् तथा अनन्त काल का प्रत्यक्ष ज्ञान निीं िोता, और इसभलए उनकी रचना िर्ारे सझनेपर िै। प्रत्यक्ष के पवर्षय उन पदाथों सेर्ो परस्पर आगे ेव पीछे के सम्बन्ध से रिते िैं, िर् पवकास के र्ाग शके प्रदर्नशाथ श एक अनन्त काल की व्यवस्था की रचना करते िैं। व्यास किते िैं "र्स प्रकार परर्ाणु द्रव्य की न्यूनतर् सीर्ा ै, उसी प्रकार क्षण काल की न्यूनतर् सीर्ा िै,'[954] अथवा एक गततर्ान परर्ाणु ुको एक पवन्दु ुको छोडने तथा दूसूरे बबन्दु ुतक पिुंचने र्ें र्ो सर्य लगता िै विी क्षण िै। ककन्तु इनका तनरन्तर प्रवाि एक िी िै। क्षण और उनके िर् एक यथाथ शवस्तु के अन्दर निींसंयुक्त िो सकते। इस प्रकार काल, इस पवर्ेर्ष प्रकृतत का िोनेसे, ककसी यथाथ शवस्तु के साथ तुलना निींखाता, बजल्क यि र्न से उत्पन्न िै, और प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा र्ब्दों का पररणार् िै।"[955] ककन्तु क्षण पवर्षयतनष्ठ िै और िर् उसका आधार िै।'[956] िर् का सारतत्त्व िै क्षणों की अबाधधत श्रृंखला, र्से ेपवर्ेर्षज्ञ पवद्वान् ्काल किते िैं। दो क्षण एक साथ निींिो सकते, क्योंकक यि असम्भव िै कक दो ऐसी वस्तुओं का र्ो एक साथ िोती िैं, िर् बन सके। र्ब अगला क्षण पिले ेक्षण के पीछे आता िै तब िर् बनता ै। इस प्रकार वतर्शान काल र्ें एक िी क्षण िोता िै, आगे ेआनेवाला या पीछे का क्षण निीं रिता। और इस प्रकार उनका एकत्रीकरण निींिो सकता। ककन्तु उन क्षणों को र्ो भूतकाल र्ें पवद्यर्ान थेया भपवष्य र्ें िोंगे,े पररवतनशों के अन्तगतश सझना चाहिए। तदनुसार सर्स्त र्गत् ्प्रत्येक क्षण र्ें पररवतनश र्ें से गुर र्ाता ै।"[957] इस प्रकार र्गत् ्के ये सर्स्त बाह्य रूप इस वतर्शान क्षण के सापेक्ष िैं।"[958]

---

952 व्यक्तं ंसकियं ंपररस्पन्दध्वत्, ् 'तत्त्वकौर्ुदी और देणखए योगभाष्य, 3 : 13।

953 सांख्यप्रवचनभाष्य 2 12 2/10 ।

954 योगभाष्य, 3: 52 ।

955 स खल्वयंकालो वस्तुर्ून्योऽपप बुद्धधतनर्ाणशः र्ब्दज्ञानानुपाती (योगभाष्य)।

956 क्षणस्तु वस्तुपततत: िर्ालम्बी ।

957 नैकेन क्षणेन कृत्स्नो लोक: पररणार्नुभवतत ।

958 इस प्रकार योगी प्रत्यक्ष रूप र्ें क्षणों और उनके िर् दोनों को देख सकते िैं (योगभाष्य ,3/52)

यि र्गत् ्न यथाथ शि ै और न अयथाथ शि।ै यि र्नुष्यश्रृंग की भांतत अयथाथ शर्नीं ि,ै और यथाथ शभी र्नीं ं ैं क्योंकक इसका पवलोप ि ोरा्ता ि।ै'[959] तो भी इसे ेऐसा न रा्नना चाहिए कक इसका वणनश र्नीं ि सकता, क्योंकक ऐसी वस्तु की सि ा र्नीं ि सकती।'[960] सांख्य उस र्त का प्रत्याख्यान करता ि ैरो् यि रा्नता ि ैकक यि र्गत् ्उसका प्रततबबम्ब ि ैजर्सका अजस्तत्व र्नीं ि।ै'[961] और न यि र्गत् ्केवल पवचार-रा्त्र ि ी ि।ै[962] यि र्गत् ् प्रकृतत के, अपनेतनत्यरूप र्ें पवद्यरा्न रिता ि ैऔर अपने अस्थायी पररवतततश रूपों र्ें पवलुप्त ि ोरा्ता ि।ै'[963] पररवतनशों के अधीन ि ोनेके कारण इस र्गत् ्की प्रतीयरा्न यथाथसशि ा ि।ै'[964] पवश्व-सम्बन्धी प्रकिया स्वभाव र्ें दो प्रकार की ि,ै रचनात्र्क तथा पवनारा्त्र्क । रू्ल प्रकृतत र्ें से भभन्न-भभन्न व्यवस्थाओं के व्यक्त ि ोनेका नार्् रचना ि ैऔर उनके पवभर्ष्ट ि ोकर रू्ल प्रकृतत र्ें पवलीन ि ो रा्नेका नार्् पवनार्् ि।ै प्रकृतत की साम्यावस्था र्ें पवक्षोर्् ि ोने के पररणार्स्वरूप पवश्व अपनेभभन्न-भभन्न तत्त्वों के साथ पवकभसत ि ोता ि,ै और युग की सरा्जप्त पर पदाथ शपवपरीत गतत द्वारा पवकास की अपनी पूवजशस्थतत र्ें लौट रा्ते ि ैं और अन्त र्ें प्रकृतत र्ें पवलीन ि ो रा्ते ि ैं। प्रकृतत तब तक इसी दरा् र्ें रिती ि ैर्ब तक कक नये पवश्व के पवकभसत ि ोनेका सर्य र्नीं ं आता। पवकास तथा पुनपवलशय का यि चि अनाहद तथा अनन्त ि।ै प्रकृतत का यि नाटक कभी ककसी र्ीवात्रा् के रो्क्ष लेने से सरा्प्त र्नीं ि ोता,[965] यद्यपप रु्क्तात्रा्ओंपर प्रकृतत की किया का कोई असर र्नीं ि ोता। यद्यपप प्रकृतत एक ि ी ि,ै और सब पुरुर्षों के भलए सरा्न ि,ै तो भी वि अनेक रा्गों से अपनेको व्यक्त करती ि।ै बन्धन र्ें पडी ि ुई आत्रा्ओं के भलए यि अपनेको सूक्ष्तर्् से लेकर स्थूलतर्् आकृततयों र्ें पवकभसत करती ि,ै और रु्क्तात्रा्ओं के भलए यि पश्चाद्गतत से पवलय ि ोतेि ोतेअपनी रू्ल जस्थतत र्ें पिुंच रा्ती ि।ै र्र्ब सर्य तक दर्कश रिते ि ैं, प्रकृतत का नाटक भी चलता रिता ि।ै सब आत्रा्एंरो्क्ष लाभ कर लेती ि ैं, तव नाटक सरा्प्त ि ो रा्ता ि ैऔर नाटक के पात्र भी पवश्रार्् प्राप्त कर लेते ि ैं।'[966] लेककन क्योंकक ऐसी आत्रा्एं बराबर रि ेंगी रो् प्रकृतत की उलझन र्ें से बच तनकलने के भलए संघर्ष शकर रिी ि ैं, इसभलए प्रकृतत की किया की तनरन्तर रिने वाली संगीतलिरी बराबर बनी रि ेगी। संसार अपने लक्ष्य तक कभी र्नीं पिुंचेगा।[967] क्योंकक पवलय की दरा् एक साधारण दरा् ि,ै इसभलए पवकास काल र्ें भी पवलय की ओर रा्ने की प्रवृपि बराबर पाई रा्ती ि।ै र्ब सब पुरुर्षों की इच्छाओंको ऐसी आवश्यकता ि ोती ि ैकक सर्स्त अनुभव कुछ सर्य के भलए रुक रा्ए, तो प्रकृतत अपनी रा्न्त दरा् र्ें लौट आती ि।ै गुण इतनी सूक्ष्ता के साथ पवरुद्ध ि ैं कक कोई भी सवप्रशधान र्नीं ि ो पाता। इस प्रकार वस्तुओं की तथा गुणों की कोई नई पीढ़ी र्नीं बनती। प्रलय की अवस्था तक भी पुरुर्षों के हित की भसद्धध के भलए ि।ै प्रलय की अवस्था र्ें प्रकृतत तनजषिय र्नीं रिती, यद्यपप इसके पररवतनश सरा्ंग ि ोते ि ैं।

---

959 सांख्यप्रवचनसूत्र, 5: 52-53 ।

960 सांख्यप्रवचनसूत्र, 5/54।

961 सांख्यप्रवचनसूत्र, 5/55 ।

962 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1/42 ।

963 सदसत्ख्याततवाशधाबाधात् ्(सांख्यप्रवचनसूत्र, 5/56)|

964 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/26 ।

965 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/66

966 सांख्यकाररका, 58 - 59; सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/63।

967 योगसूत्र, 2/22 सांख्यप्रवचनभाष्य, 2/4 सांख्यप्रवचनभाष्य, । :159; 1/67 67668, 69।

9. पुरुर्ष

सर्स्त इजन्द्रयधारी प्राणणयों र्ें आत्रतनणयश का एक तत्त्व पवद्यर्ान ि ै जर्से सार्ान्यतः 'आत्र्ा' नार् हदया गया िै। वस्तुतः प्रत्येक प्राणी के अन्दर, जर्सर्ें र्ीवन िै, आत्र्ा पवद्यर्ान िै; और भभन्न-भभन्न आत्र्ाएं र्ौभलक रूप र्ें स्वरूप सेएक सर्ान िैं। भेद र्ो प्रतीत िोते िैं वे भौततक संस्थानों के कारण िैं, र्ो आत्र्ा के र्ीवन को भर्लन और व्यथ शकरतेंिैं। उक्त भर्लनता का नानापवध श्रेणीपवभाग उन र्ीरों के स्वभाव के कारण िै जनर्ें आत्र्ाओं का तनवास िै। जर्स तत्त्व से भौततक संस्थानों का उद्भव िुआ, आत्र्ाओं का उस तत्त्व से सम्बन्ध निींिो सकता। इस प्रकार सांख्य सान्त र्ीवन की आकजस्र्क घटनाओंसे उन्र्ुक्त तथा काल और पररवतनशों से ऊपर उठे िुए पुरुर्षों के अजस्तत्व का प्रततपादन करता िै। इस पवर्षय र्ें चेतावनी की साक्षी िै कक यद्यपप व्यजक्त एक अथ शर्ें एक पवभर्ष्ट तथा पररभर्त र्जक्त वाला प्राणी िै, र्ो र्णर्ीलता-सम्बन्धी सर्स्त आकजस्र्क घटनाओंतथा पररवतनशों के अधीन िै, तो भी उसके अन्दर ऐसा कुछ अवश्य िै र्ो उसे े इन सबसे ऊपर उठाता िै। वि न तो र्न िै, न. र्ीवन िै, न र्ीर िै, बजल्क र्ौन, र्ान्त सूचना देनेवाली (साक्षीरूप) एवं संभाले े रखने ेवाली आत्र्ा िै, र्ो इन सबको धारण करती िै। र्ब संसार के तथ्यों पर िर् ज्ञानवाद-सम्बन्धी दृजष्टकोण से पवचार करते िैं तो िर्ें एक ओर पवर्षयी (प्रर्ाता) और दूसूरी ओर पवर्षय (प्रर्ेय) का वगीकरण भर्लता िै। ककसी भी प्रर्ाता तथा ककसी भी प्रर्ेय के र्ध्य र्ो सम्बन्ध िै वि बोध-पवर्षय अथवा, पवस्तृत रूप र्ें, अनुभव पवर्षयक िै। ज्ञान प्राप्त करने वाले को सांख्य पुरुर्ष र्ानता िै और ज्ञात पवर्षय को प्रकृतत।

पुरुर्ष के अजस्तत्व को भसद्ध करने के भलए सांख्य अनेक युजक्तयां देता िै'[968]: (1) वस्तुओंका पुंर् ककसी दूसूरे के भलए िोता िै। गौडपाद किता िै कक र्ैसे े एक र्ैय्या, र्ो हिस्सों से भर्लकर बनी िै, उस र्नुष्य के भलए िै र्ो उस पर सोता िै, इसी प्रकार "यि संसार, र्ो पांच तत्त्वों का संग्रि िै, अन्य के उपयोग के भलए िै; एक आत्र्ा िै जर्सके सुखोपभोग के भलए यि उपभोग्य र्ीर, बुद्धध इत्याहद सहित, उत्पन्न ककया गया िै" (2) सर्स्त र्ानने योग्य पदाथों र्ें तीन गुण रिते िैं और इससे उनके एक द्रष्टा आत्र्ा की, र्ो स्वयं गुणों से रहित िै, पूवकशल्पना िोती िै, (3) एक ऐसी अधधष्ठातृ र्जक्त का, एक पवरुद्ध चेतेना का िोना आवश्यक िै, र्ो सर्स्त अनुभवों का सर्न्वय करने वाली िो। (4) क्योंकक प्रकृतत बुद्धधर्ून्य िै, इसभलए प्रकृतत से उत्पन्न पदाथों का अनुभव करने वाला कोई अवश्य िोना चाहिए। (5) कैवल्य (र्ोक्ष) के भलए पुरुर्षाथ शककया र्ाता िै, र्ो इस पवर्षय का उपलक्षण िै कक पुरुर्ष का अजस्तत्व िै, र्ो प्रकृतत से पवरुद्ध गुणों वाला िै। र्ीवन की अवस्थाओंसे छुटकारा पाने के उत्कट अभभलार्षा का िी तात्पय शिै कक ऐसा कोई यथाथसशिावान् ्अवश्य िै र्ो छुटकारा हदला सकता िै।

आत्र्ा अथवा पवर्षयी रूप चैतन्य का स्वरूप क्या िै? यि र्ीर निीं। चैतन्य तत्त्वों से उत्पन्न पदाथ श निीं, क्योंकक यि उनके अन्दर अलग-अलग पवद्यर्ान निीं, इसभलए उन सबर्ें एक साथ भी निीं

---

[968] सांख्यकाररका ,17; सांख्यप्रवचनसूत्र ,1 66; योगसूत्र ,4: 24।

सकता।'[969] यि इजन्द्रयों से भभन्न ि◌ै,[970] क्योंकक इजन्द्रयां दर्नश के साधन ि◌ैं, ककन्तु द्रष्टा निीं ि◌ैं। इजन्द्रयांबुद्धध र्ें पररवतनश लाती ि◌ैं। पुरुर्ष बुद्धध से भन्न ि◌ै, क्योंकक बुद्धध अचेतन ि◌ै। ि◌र्ारे अनुभवों का एक इकाई र्ें सुसंघहटत ि◌ोना आत्र्ा की उपजस्थतत के कारण ि◌ै, र्ो भभन्न-भभन्न चेतन अवस्थाओं को एकत्र रखती ि◌ै। पवर्ुद्ध आत्र्ा ि◌ी आत्र्ा ि◌ै, र्ो र्रीर अथवा प्रकृतत सेभभन्न ि◌ै।[971] यहद यि पररवतनश के अधीन ि◌ोती तो ज्ञान असम्भव ि◌ो र्ाता। क्योंकक इसका स्वरूप चैतन्य ि◌ै, इसभलए यि पवकासात्र्क श्रृंखला के पदाथों को आत्र्चेतनता र्ें लानेर्ें सिायक ि◌ोती ि◌ै। यि पवचार तथा संवदेना के सर्स्त क्षेत्र को प्रकाभर्त करती ि◌ै। यहद पुरुर्ष पररवततनतश ि◌ोता तो सर्य-सर्य पर असर्थ िो सकता और इस पवर्षय की कोई सुरक्षक्षत गारण्टी न ि◌ोती कक प्रकृतत की सुख या दु:ख रूपी अवस्थाओंका अनुभव ि◌ोगा ि◌ी। पुरुर्ष का सदा प्रकार् रूप पररवततनतश निींिोता।'[972] यि सुर्ुजुप्त अवस्था र्ें उपजस्थत रिता ि◌ै।'[973] तथा र्ाग्रत और स्वप्न अवस्था र्ें भी उपजस्थत रिता ि◌ै र्ो सब बुद्धध के पररवतनश ि◌ैं।[974] इस प्रकार पुरुर्ष पवद्यर्ान रिता ि◌ै, यद्यपप यि न कारण ि◌ै, न काय शिै।'[975] यि वि प्रकार् ि◌ै जर्सके द्वारा ि◌र् देखते ि◌ैंकक प्रकृतत नार् की एक वस्तु ि◌ै। प्रर्ेय पदाथों को प्रकाभर्त करने के भलए इसे ◌ेअन्य ककसी पदाथ शपर तनभरश करने की आवश्यकता निीं, प्रकृतत तथा उसके उत्पन्न पदाथ शस्वतः अभभव्यक्त निींिोत,े◌े बजल्क वे व्यक्त ि◌ोनेके भलए पुरुर्ष के प्रकार् पर तनभरश करते ि◌ैं। चैतन्य का भौततक र्ाध्यर् तो ि◌ै ककन्तु भौततक रूप र्ें व्याख्या निींिोती। बुद्धध, र्न इत्याहद साधन ि◌ैं; ये चैतन्य के अजन्तर् लक्ष्य की व्याख्या निींकर सकते, क्योंकक ये उसकी दासता र्ें ि◌ैं। पुरुर्ष केवल चैतन्य ि◌ै, आनन्द निीं, क्योंकक सुख सत्त्वगुण के कारण ि◌ोता ि◌ै, जर्सका सम्बन्ध प्रकृतत पक्ष से ि◌ै। पवर्षय-पवर्षयी का द्वैतभाव सुखकारक तथा दु:खदायक दोनों प्रकार के अनुभव र्ें पवद्यर्ान रिता ि◌ै। सुख और दु:ख का सम्बन्ध बुद्धध से ि◌ै।[976] इसके अततररक्त चैतन्य के साथ-साथ आनन्द का योग पुरुर्ष के स्वरूप र्ें द्वैतभाव प्रपवष्ट कर देगा।[977] यहद पुरुर्ष के स्वरूप र्ें दु:ख को भी स्थान ि◌ै तो र्ोक्ष सम्भव निीं ि◌ोगा। पुरुर्ष गतत के अयोग्य ि◌ै, और र्ोक्ष प्राप्त करने पर यि किीं ◌ंनिींर्ाता।"[978] यि पररभर्त आकार का निीं ि◌ै, क्योंकक उस अवस्था र्ें यि हिस्सों से भर्लकर बना ि◌ुआ तथा पवनश्वर भी ि◌ो र्ाएगा।"[979] यि अणु ◌ुके आकार का निींिै, क्योंकक तब इसेसारे र्रीर की अवस्थाओंका बोध कैसे ि◌ोता ि◌ै-इसका सर्ाधान करना कहठन ि◌ोगा। यि ककसी किया र्ें भाग निींलेता। सांख्य पुरुर्ष को सब गुणों से रहित र्ानता ि◌ै,

---

969 सांख्यप्रवचनसूत्र , 5/1293:20-21 ।

970 सांख्यप्रवचनसूत्र , 2/29।

971 सांख्यप्रवचनसूत्र ,6/1-2 ।

972 सांख्यप्रवचनभाष्य 1/75, योगसूत्र , 4: 18; सांख्यप्रवचनसूत्र 1 : 146।

973 सांख्यप्रवचनसूत्र , 1: 148।

974 सांख्यप्रवचनभाष्य , 1: 148।

975 सांख्यप्रवचनसूत्र , 1:61 ।

976 सांख्यप्रवचनसूत्र , 6/11 ।

977 5:66 ।

978 सांख्यप्रवचनसूत्र , 1/49।, सांख्यकाररका ,3।

979 1/50 ।

क्योंकक अन्यथा इसका र्ोक्ष सम्भव न िोता। वस्तु का स्वरूप अपवच्छेद्य िै, और सुख तथा दु:ख आत्र्ा के निीं ं िी सकते।

आत्र्ाएंअनेक िैं, क्योंकक अनुभव बतलाता िै कक र्नुष्यों र्ें सबको र्ारीररक, नैतत तथा बौद्धधक दृजष्ट से भभन्न-भभन्न र्जक्तयां ंप्राप्त िैं। संसार र्ें चैतन्ययुक्त प्राणी अर् िैं और उनर्ें से प्रत्येक, इसकी पवर्षयीतनष्ठ तथा पवर्षयतनष्ठ प्रकियाओं के अपनेस्वतन्त्र अर्ेय द्वारा, इसे ेअपनी िी पवधध से सर्झता िै। दृजष्टकोण र्ें भेदे प्रकृतत के व्यापर के कारण निीं िो सकते और इसभलए यि युजक्त दी र्ाती िै कक चैतन्यरूप द्रष्टा भभन्न-भभन्न िैं। इनकी भभन्न-भभन्न इजन्द्रयां तथा कर् िैं और ये पृथक् पृथक् र्न्र् तथा र्रण को प्राप्त िोते िैं।'[980] एक स्वग श को र्ाता िै तो दूसूरा नरक र्ें र्ाता िै। सांख्य चैतन्य की धाराओंकी संख्या की दृजष्ट से पवभर्षता पर तथा पृथक् पृथक् धाराओंके व्यजक्तगत एकत्व पर कस देता िै। िर् व्यजक्त के अनुभवों के सुव्यवजस्थत एकत्व का इसके अततररक्त कोई कारण निींवता सकते ेकक एक व्यजक्त रूप पवर्षय के अजस्तत्व को र्ान लेना चाहिए। ककन्तु भभन्न-भभन्न एकत्वों की पवभर्षता का कारण अवश्य िी आत्र्ाओं के अनेकत्व को दर्ातशा िै। यहद आला एक िोती तो ककसी एक के र्ुजक्तलाभ करने पर सब र्ुक्त िो र्ातीं।[981] यहद आत्र्ा स्वरूप र्ें प्रकृतत के पवपरीत िै, र्बकक प्रकृतत एक िी िै और सब के भलए एक सर्ान िै, अथ शस्वत: पररणार् तनकलता िै कक आत्र्ाएंअनेक िैं। धर्र्शास्त्रों के उन वाक्यों का तो र्ो एकेश्वरवाद का सर्थनश करते िैं, यि लगाया र्ाता िै कक वे ताजत्त्वक गुणों का परस्पर अभेद प्रततपादन करते िैं।[982] वे ताजत्त्वक अभेद को उपलक्षक्षत करते िैं, ककन्तु अखण्डता को निीं।[983] र्ोक्ष एक परर् तनरपेक्ष आत्र्ा के साथ भर्ल र्ाना निीं िै, बजल्क प्रकृतत से पृथक् (पवयुक्त) िो र्ाना िै। अनेक व्यजक्तयों के अन्दर जस्थत आत्र्ाओं र्ें एक सार्ान्य गुण िै कक वे प्रकृतत के उत्पन्न पदाथों की कियाओंकी र्ूक दर्कश िैं, जर्नके साथ वे अस्थायी रूप से सम्बद्ध िैं।

सांख्य का पुरुर्ष सम्बन्धी पवचार उपतनर्षदों की आत्र्ा सम्बन्धी धारणा द्वारा तनधारशरत िै।'[984] इसका न आहद िै, न अन्त िै, यि गुणों से रहित (तनगुणश) िै, सूक्ष्र् िै, सवव्शयापी िै, एक तनत्य द्रष्टा िै, इजन्द्रयातीत िै, र्न की पिुंच से परे िै, बुद्धध के क्षेत्र सेपरे िै, काल, देर् तथा कायकशारण की श्रृंखला से भी परे िै, र्ो इस आनुभपवक र्गत् ्की पवधचत्रता का ताना-बाना बुनते िैं। यि अर्न्र्ा िै और कुछ उत्पन्न भी निींकरता। इसकी तनत्यता न केवल सवदशा स्थातयत्व र्ें िै, बजल्क अखण्डता तथा पूणतशा र्ें भी िै। यि धचद्रूप िै, यद्यपप यि व्याविाररक अथों र्ें सब वस्तुओं को निीं र्ानता क्योंकक व्याविाररक बोध केवल र्ारीररक सीर्ाओं के द्वारा िी सम्भव िै। र्ब आत्र्ा इन सीर्ाओं से र्ुक्त िोती िै, तो इसे ेपररवतनशों का कोई बोध निींिोता, बजल्क तव यि अपनेस्वरूप र्ें रिती िै।[985] पुरुर्ष प्रकृतत से सम्बद्ध निीं िै।'[986] यि केवल दर्कश िै, अकेला, उदासीन, तनजष्िय

---

980 सांख्यप्रवचनसूत्र, 6/45 1 149 और 150।

981 सांख्यकाररका, 18 ।

982 सांख्यप्रवचनसूत्र, 5/61 ; सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/154 ।

983 वैधम्र्यपवरि, ककन्तु अखण्डता निीं।

984 वृिदारण्यक उपतनर्षद्, 4/316 श्वेताश्वतर उपतनर्षद् , 6/11 और 19; अर्ूतृबबन्दु , ु5/10 ।

985 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 6/59

दर्कश ।[987] पुरुर्ष तथा प्रकृतत के लक्षण स्वभाव से परस्पर प्रततकूल िैं। प्रकृतत अचेतन िै, र्बकक पुरुर्ष सचेतन िै। प्रकृतत कियार्ील और सदा संर्णिर्ील िै, र्बकक पुरुर्ष अकता शिै। पुरुर्ष बबना ककसी पररवतनश के तनरन्तर रिनेवाला िै, र्बकक प्रकृतत पररवतनशसहित तनरन्तर रिने वाली िै। प्रकृतत बत्रगुणात्र्क िै, र्बकक पुरुर्ष तनगुणश ै। प्रकृतत प्रर्ेय (पवर्षय) िै, र्बकक पुरुर्ष प्रर्ाता (पवर्षयी) िै।

10. लौकककक र्ीवात्र्ा

र्ीव वि आत्र्ा िै जर्सेइजन्द्रयों के संयोग तथा र्ीर द्वारा सीभर्त िोनेसे पृथक् रूप र्ें पिचाना र्ाता ै।'[988] पवज्ञानभभक्षु ुका किना िै कक अिंकारसहित पुरुर्ष र्ीव िै, पुरुर्ष अपने-आप र्ें र्ीव निीं।[989] र्बकक पवरुद्ध आत्र्ा बुद्धध से परे रिती िै, बुद्धध के अन्दर पुरुप का प्रततपवम्ब अिंभाव के रूप र्ें प्रतीत िोता िै, र्ो र्ारी सब अवस्थाओंका, जर्नर्ें सुख और दुःख भी सजम्भलत िैं, बोध प्राप्त करने वाला िै। र्ब िर् यि निीं र्ानते ेकक आत्र्ा बुद्धध से परे िै और लक्षण तथा ज्ञान र्ें इससे भभन्न िै तब बुद्धध को िी आत्र्ा सर्झ लेतेिैं ।'[990] प्रत्येक बुद्धध, इजन्द्रयों आहद को साथ भलए िुए, अपने पूवकशर्ों के अनुकूल तनभर्तश एक पृथक् संस्थान ै।'[991] और उसके साथ पवभर्ष्टरूप से लगी िुई उनकी अपनी अपवद्या रिती िै। अिंभाव उस सचेतन अनुभव की धारा का र्नोवैज्ञातनक एकत्व िै जर्ससे ेएक लौकककक आत्र्ा का आभ्यन्तर र्ीवन बनता िै। यि एकत्व र्ारीररक िै और सदा पररवतनशर्ील िै। ककन्तु पुरुर्ष पररवतनशर्ील निीं, वि कालाबाधधत िोकर र्ारीररक एकत्व के पूवकशजल्पत रूप र्ें उपजस्थत िै। पुरुर्ष वि आत्र्ा िै र्ो तनत्य िै और अपने-आप र्ें एक िै, र्बकक र्ीव प्राकृततक र्गत् ्का एक अंर् िै। अिंभाव सिाओंके र्गत् ्र्ें उनके साथ की सिाएं ंिैं तथा भौततक पदाथों, से अधधक परर् रूप र्ें पथाथ शनिीं ंिैं। अिंभावों का िर् अन्य सिाओं की भांतत, यद्यपप उनसे ेभभन्न रूप र्ें, अनुभव कर सकते िैं। प्रत्येक अिंभाव स्थूलतरूशप भौततक र्ीर के अन्दर, र्ो र्ृत्यु के सर्य पवलीन िोकर भंग िो र्ाता िै, एक ऐसा सूक्ष्र् र्ीर रखता िै र्ो इजन्द्रयों सर्ेत र्ानभसक उपकरण से तनभर्तश िै। यि सूक्ष्र् र्ीर पुनर्न्शर् का आधार िैं[992] और नानापवध र्न्र्ों र्ें व्यजक्तगत प्रत्यभभज्ञा का तत्त्व िै। यि सूक्ष्र् र्ीर, जर्सके अन्दर िर्ारे सब अनुभवों के संस्कार कायर् रिते िैं, भलंगर्रीर किलाता िै, अथात् श ्यि पुरुर्ष की पिचान करानेवाला धचह्न िै। भलंगं पवभर्ष्ट लौकककक लक्षण िै, जर्नके बबना भभन्न-भभन्न पुरुर्षों र्ें भेद निींककया र्ा सकता। प्रकृतत से

---

986 वृिदारण्यकोपतनर्षद्, 4/3 ,15 ।

987 सांख्यकाररका, 19 िररभद्रकृत र्षड्दर्नशसर्ुच्चय ,41 पर र्णभद्र से तुलना कीजर्ए-

अर्ूतश्शचेतनो भोगी तनत्यः सवगशतोऽकियः ।

अकताशतनगुणशः सूक्ष्र् आत्र्ा कापपलदर्नेश॥

988 सांख्यप्रवचनसूत्र, 6/63 ।

989 सांख्यप्रवचनभाष्य, 6/63 ।

990 योगसूत्र, 2/6 ।

991 सांख्यप्रवचनभाष्य, 2:46 ।

992 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3:16 ।

उत्पन्न पदाथ शिोनेके कारण उनर्ें तीनों गुण रिते िैं। भलंगं का पवभष्ट लक्षण गुणों के भर्श्रण पर तनभरश करता ैं, प्रत्येक र्ीवन-इततिास का अपना भलंगं िै। र्ब तक भलंगंर्रीर उपजस्थत िै, र्ारीररक र्ीवन तथा पुनर्न्र्र् भी रिेंगे। अत्यन्त नीचे ेकी परुयोतन र्ें तर्ोगुण प्रधान रिता िै, क्योंकक िर् देखते िैंकक परु के र्ीवन र्ें अज्ञान तथा र्ूखतशा पवभर्ष्ट रूप से लक्षक्षत िोती िै। उनर्ें सूतृत तथा कल्पना की क्षर्ता का पवकास अपूण शरूप र्ें िोता ैं, और इसभलए र्ो सुख या दुुःख परुअनुभव करते िैं वि न तो धचरस्थायी िोता िै और न तीव्र िोता िै। क्योंकक सत्त्वप्रप्रकृतत उनर्ें अत्यन्त न्यून िै, इसभलए परुओं का ज्ञान केवल वतर्शान कर् शका िी साधन िोत िै। र्ब रर्ोगुण अधधक प्रधान िोता िै तो पुरुर्ष र्ानवीय र्गत् ्र्ें प्रवेर् करता िै। र्नुष्य प्राणी बेचैन रिते िैं, और र्ुजक्त तथा दुुःख से छुटकारा पाने के भलए प्रयत्नयान रिते िैं। र्ब सत्त्वगुण प्रधान िोता िै, तो रक्षापरक ज्ञान की प्राजप्त िोती िै तथा प्रकृतत उि को और अधधक र्ीवन की आपदा से बांधकर निीं रखती। र्ुक्तात्र्ा इस संसार के नाटक को एक उदासीन दर्कश िोती िै। र्ृत्यु िोनेपर पुरुर्ष और प्रकृतत के र्ध्य का बन्धन टूट र्ाना िै, और र्ुक्तात्र्ा सवथशा स्वतन्त्र िो र्ाती िै। र्ोक्ष तथा बन्धन रूप पररवतनशों का सम्यन्य सूक्ष्र् र्रीर के साथ िै, र्ो पुरुर्ष के साथ संलग्न िै। पुरुर्ष सदा पवर्ुद्ध चेतन िै, यी र्ब तक सूक्ष्र् र्रीर रर्ोगुण तथा तर्ोगुण से आच्छन्न रिता िै, यि अपनेयथाथ शस्वरूप को भूला रिता िै। सब भलंगंर्रीरों के अन्दर पुरुर्ष एक िी प्रकार के िैं, और भलंगंर्रीर स्वयं, र्ो उनके अन्दर भेद उत्पन्न करते िैं, प्रकृतत के अन्दर िो रि तनरन्तर पवकास से सम्बद्ध िैं। पवकास की पररकल्पना र्नुष्य को अन्य सब र्ीवधाररयों, यथा परु-र्गत् ्और वनस्पतत-र्गत् ्के साथ रक्त-सम्बन्ध र्ें बांधती िै।

लौककक र्ीवात्र्ा स्वतन्त्र आत्र्ा तथा यन्त्रन्यास, पुरुर्ष और प्रकृतत, का सजम्र्श्रण िै, भलंगंर्रीर, र्ो प्रकृतत का उत्पन्न पदाथ शि और अचेतन िै, पुरुर्ष व प्रकृतत के परस्पर संयोग से सचेतन िो र्ाता िै। यि सुख तथा दुुःख कर् शतथा कर्फशलों के अधीन िै, और र्न्र्-र्न्र्ान्तर के चि र्ें र्रण करता िै। आत्र्ा अथवा पुरुर्ष सांसाररक कायव्शयापारों के प्रतत पवलकुल उदासीन रिता िै। कियार्ीलता का सम्बन्ध बुद्धध के साथ िै, र्ो प्रकृतत को उपर् िै। तो भी पुरुर्ष के साथ इसके संयोग से, उदासीन पुरुर्षकता शप्रतीत िोता िै।'[993] अचेतन अन्तःकरण अपने-आप से कता शनिींबन सकता, ककन्तु इसर्ें चेतनता भरी र्ाती िै। अन्तःकरण र्ें चेतनता का भरना, या इसका प्रकाभर्त िोना इसका चेतनता के साथ एक पवभर्ष्ट प्रकार का संयोग िै, र्ो तनत्य प्रकार्ीन ैं। चेतनता अन्तःकरण र्ें प्रपवष्ट निींिोती बजल्क इसर्ें केवल प्रततपवजम्बत िोती िै। तनःसन्देि, पुरुर्ष का प्रकृतत के साथ यि संयोग स्थायी निीं। पुरुप प्रकृतत के साथ गठबन्धन इसभलए करता िै कक इस पर प्रकृतत का स्वरूप प्रकट िो र्ाए और यि प्रकृतत के सिाचय शसे छुटकारा पाकर र्ोक्ष प्राप्त कर सके। र्ानभसक तथा भौततक दोनों िी प्रपंचों की पृष्ठभूभर् र्ें प्रकृतत िै। इसके घटक एक अवस्था र्ें स्थायी अथवा द्रष्टा के रूप र्ें व्यविार करते िैं तथा दूसूरी अवस्था र्ें पदाथ शअथवा दृष्ट के रूप र्ें व्यविार करते िैं। दोनों पवकास की भभन्न-भभन्न

---

993 सांख्यप्रवचनसूत्र ,1:99 ।

व्यवस्थाओंको प्रस्तुत करते िैं।[994] प्रकृतत कर् शकरती िै और पुरुर्ष कर् शके फलों का उपभोग करता िै। सुख और दु:ख प्रकृतत की अवस्थाओं से सम्बन्ध रखतीं और यि किा र्ाता िै कक पुरुर्ष अपनी अज्ञानता के कारण उनको अनुभव करता िै 1।'[995] चैतैन्य का प्रकार् प्रकृतत के कायों से उत्पन्न बताया र्ाता िै; और पुरुर्ष, तनजषियतापूवकश प्रकृतत के कायों का तनरीक्षण करते िुए, अपनेयथाथ शस्वरूप को भूल र्ाता िै और रर् से सझनेलगता िै कक यिी सोचता, अनुभव करता तथा कर् शकरता िै यि अपनेको र्ीवन के एक पररभर्त और पवभर्ष्ट रूप, सर्ीव रीर के साथ तादात्म्यरूप, र्ान लेता िै, और इस प्रकार सत्यर्ीवन से अपनेको वंधंचत कर लेता िै। तनत्यता की र्ाजन्त को खोकर, यि काल की बेचैनी रें प्रपवष्ट िोता िै। पुरुर्ष गतत नींकरता, यद्यपप वि रीर जर्सके अन्दर यि प्रपवष्ट िै, एक स्थान से दूसूरे स्थान तक गतत करता िै। पुरुर्ष र्ो तनजषिय िै, और सिर्तत अथवा तनर्ेषेधात्क आज्ञा देनेवाला र्ाना र्ाता िै, केवल उस गतत का नार् िै र्ो प्रकृतत रें िोती िै। पुरुर्ष यद्यपप कता शनींीं तो भी प्रकृतत के कतृत्शव के साथ रर्वर् कता शप्रतीत िोता िै, जर्स प्रकार पुरुर्ष के साजन्नध्य से प्रकृतत सचेतन प्रतीत िोती िै।'[996] दु:ख का अनुभव (साक्षात्कार) केवल प्रततपवम्व के रूप रें िै, र्ो कक उपाधध की वृपि िै।'[997] वास्तपवक बन्धन धचि का िै, र्बकक पुरुप पर इसकी केवल छाया पडती िै।

र्ीव का संकीण शतथा पररभर्त र्ीवन आत्ा अथवा पुरुप के ताजत्त्वक स्वरूप के कारण नीं ंिै। यि इसके अपने आहदर् क्षेत्र से च्युत िोनेका पररणार् िै। पुरुर्ष के अनुभव का अथ शर्ात्र पदाथों के प्रततबबम्बों का ग्रिण िै।'[998] र्ब प्रकृतत कर् शकरती िै तो उसके फलों का अनुभव पुरुर्ष करता िै, क्योंकक प्रकृतत की किया पुरुर्ष के अनुभव के भलए िै।'[999] सीर्-सीर् अथों रें, यि अनुभव भी अभभर्ान (आत्त्व के भाव) के कारण िै, र्ो अपववेक से पैदा िोता िै।'[1000] र्ब सत्य का ज्ञान िो र्ाता िै तो न सुख िै और न दु:ख िै, कतृत्शव भी नींतथा भोक्तृत्व भी नीं।"[1001]

पुरुर्ष तथा र्ीव के पवर्षय रें सांख्य द्वारा हदया गया पववरण, अनके अंर्ों रें, अद्वैत वेदोन्त के आत्ा तथा अिभाव के वणनश के साथ भर्लता िै। अद्वैत वेदोन्त के अनुसार, आत्ा कर् शसे स्वतन्त्र िै, रीर तथा र्न के वन्धनों से भी स्वतन्त्र िै, र्ो िर्ें कर् शसे भलप्त करते िैं। आत्ा अपनी आकजस्क घटनाओंके कारण कर् श करता िुआ प्रतीत िोता िै। तनरुपाधधक आत्ा अथवा पुरुर्ष को र्ीव र्ाना र्ाता िै, र्बकक इसे व्यजक्तत्व के संकीण शबन्धनों के साथ भर्श्रत कर हदया र्ाता िै। सीर्-सीर् अथों रें, अद्वैत रें व्यजक्तत्व का सम्बन्ध सूक्ष्

[994] तुलना कीजए वाचस्पतत 'गुणानां द्वैरूप्यंव्यवतेयात्रकत्वं, व्यवसायात्रकत्वं च। तत्र व्यवसेयात्रकतां ग्राह्यतार्ास्थाय पंचतन्त्रात्राणण भूतभौततकातन...व्यवसायात्रकत्वं तु ग्रिणस्वरूपर्ास्थाय सिांकडाराणीजन्द्रयाणणः (तत्त्ववैर्ारदी, 3/- 17)

[995] तत्त्वकौर्ुदी, 5।

[996] सांख्यकाररका, 20 और 22; सांख्यप्रवचनसूत्र, 1/162 - 63 योगसूत्र, 2 : 17; भगवद्गीता, 8 : 21: कठोपतनर्षद्, 3 : 41

[997] सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 17।

[998] पुरुर्षस्य पवर्षयभोगः प्रततपवम्वादानर्ात्र् (सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 101)।

[999] सांख्यप्रवचनसूत्र, 1: 105।

[1000] सांख्यप्रवचनसूत्र, 1: 106।

[1001] सांख्यश्वचनसूत्र, 1/107

 रीर से ि और सांख्य रें भलंगंर्रीर से। पवज्ञानभभक्षु ुपारस्पररक प्रततबबम्ब के पवर्षय रें किता

ै, रो ककसी िद
तक अद्वैत वेदान्त के प्रततपवम्बवाद के वग शका ि। अद्वैत वेदान्त का र्त ि कक आत्रा अन्तःकरण रें
प्रततबबजम्बत िोती ि। यि धचदाभास अथवा धचि की प्रतीतत िी रीवात्रा ि।

सांख्य की प्रकल्पना, स्पष्ट रूप से, रोक्षप्राजप्त के भलए संघर्ष शकरती आत्रा के लौककक पवचार तथा अद्वैत वेदान्त केआत्र-पवर्षयक ताजत्त्वक पवचार के ध्र्य एक प्रकार का सझौता ि। अद्वैत वेदान्त के अनुसार, अनन्त तथा वासनापविीन आत्रा बन्धन के अधीन नििीं सकती। इस प्रकार यि किा गया ि कक यद्यपप पुरुर्ष अपनेताजत्त्वक रूप रें तनत्य अपररवतततश रिता ि, तो भी यि दुःख के प्रततबबम्व को, रो बराबर चलता ि, अनुभव करता ि। रैरेरर स्फहटक र्णण रें सेएक लाल फूल देखा रा सकता ि, यद्यपप स्वयं र्णण लाल रंग ग्रिण निींकरती, इसी प्रकार आत्रा अपररवतततश रिती ि, भले िी इसके दुःख अथवा सुख की भांतत चेतनता रें उपजस्थत रिे। पवज्ञानभभक्षु सूयपुशराण से एक श्लोक इस आर्य का उद्धत करता ि : "जर्स प्रकार एक पवरुद्ध र्णण के ऊपर रक्तवण शकी साग्री रखने ेसे वि लोगों को लाल रंग की हदखाई देती ि, इसी प्रकार की अवस्था रिन् ्पुरुर्ष की ि।"[1002] रंकराचाय शस्फहटक के बने गुलदस्तेकी उपरा का प्रयोग करते ि रो अपने अन्दर रखिुए लाल फूलों के कारण लाल रंग का हदखाई देता ि, यद्यपप यि अपने-आप रें सब प्रकार के रंग से रहित ि।[1003] यहद पुरुर्ष प्रभापवत अथवा पवक्षुब्ध प्रतीत िोता ि, तो यि उस र्न के कारण ि रो कुछ सर्य के भलए इसका सिचारी ि। यि सिाचय शआत्रा के ऊपर न तो अस्थायी और न कोई स्थायी प्रभाव िी छोडता ि। क्योंकक सम्पकश यथाथ शनिीं ि, इसभलए उसका कोई प्रभाव भी रेर्ष नििीं रिता।

11. पुरुर्ष और प्रकृतत

सांख्यदर्नश का सबसे अधधक जक्लष्ट अथवा रार्क पवर्षय पुरुर्ष और प्रकृतत के सम्बन्ध की सस्या ि। रि पिले ेदेख आए ि कक प्रकृतत के पवकास रें न केवल एक आकर्षकश सौन्दय शि, बजल्क यि अपनेअन्दर एक ऐसी योर्ना को संरोए िुए ि रो धाभर्कश उद्देश्यों के अनुकूल ि ।'[1004] प्रकृतत एक ऐसेर्गत् ्के रूप रें पवकभसत िोती ै रो पवपपि तथा ध्वंस से पररपूण शि और जर्सका प्रयोर्न आत्रा को उसकी नींद से र्गा देना ि। इस र्गत् ्का

1002 यथा हि केवलो रक्तः स्फहटको लक्ष्यतेर्नैः ।
रञ्काद्यु पधानेन तद्वत्परर्पूरुर्षः।।

(सांख्यप्रवचनभाष्य, 1 i19)

पुरुर्ष रो तनजष्यि रूप से ेउदासीन ि, ऐसा प्रतीत िोता ि कक कताश ि और ऐसा तीन गुणों के प्रभाव से िोता ि। तुलना कीजए।

प्रकृतेः काय शतनत्यैकं तनत्यैका प्रकृततरंडा।

प्रकृतेजस्त्रगुणावेरादुदुासीनोऽपप कतृवशत्॥्

(सवभशसद्धान्तसारसंग्रि, 9: 15)

1003 आत्रबोध ।

1004 सांख्यप्रवचनसूत्र, 2/1 3/58 ।

प्रकट दु:खान्तरूप आत्रा के भलए आवश्यक बताया गया िै, रो तनजष्यि िै, यद्यपप रो कुछ उसके सम्र्ुख आता िै उस सबको वि देखती िै। पुरुर्ष की सेवा के उपयुक्त िोना प्रकृतत की कियाओंका लक्ष्य र्ाना गया िै।'[1005] यद्यपप प्रकृतत को स्वयं इस लक्ष्य का ज्ञान निीिं। सांख्य र्ादू ्के चत्कार की भर्थ्या कल्पना को तो वजर्तश र्ानता िै, ककन्तु यि स्वीकार करता िै कक र्गत् ्के अन्ततनहशित एक उद्देश्यवाद अवश्य िै। पवश्व की ककन्तु यि स्वीकार र्गत् ्की अद्भुत व्यवस्था का कारण प्रकृतत के कियाकलाप के अन्दर देखने का पवचार बिुत उत्कृष्ट िै। यि कियाकलाप यन्त्रवत् ्िोनेपर भी ऐसेपररणार्ों को उत्पन्न करता िै रो प्रबलरूप र्ें संकेत करते िैं कक यि ककसी अत्यन्त र्ेधावी द्वारा की गई पवलक्षण करता का पररणार् िै। ककन्तु सांख्य का र्त इस पवर्षय र्ें स्पष्ट िै कक प्रकृतत का कायकशलाप ककसी सचेतन धचन्तन का पररणार् निीं िंै।[1006] सांख्य द्वारा प्रयुक्त दृष्टान्तों से िर्ारा कुछ अधधक सन्तोर्षर्नक सर्ाधान निीिंिोता। बुद्धधिीन प्रकृतत के पवर्षय र्ें किा र्ाता िै कक वि उसी प्रकार काय शकरती िै र्ैसे ेकक बुद्धधपविीन वृकूष फलों को उत्पन्न करते िैं,[1007] अथवा र्ैसे ेगाय का दूधू बछडे के पोर्षण के भलए थनों सेतनकलता िै। यन्त्र-रचना अपनी व्याख्या अपने-आप निींकर सकती, और न िी प्रकृतत के उत्पन्न पदाथों को तनम्न श्र्ेणी की अवस्थाओंका याजन्त्रक पररणार् सर्झा र्ा सकता िै। यहद प्रकृतत स्वेच्छापूवकश कियार्ील िोती, तो र्ोक्ष सम्भव िी न िोता क्योंकक प्रकृतत की किया का पवरार् िी न िोता। इसी प्रकार यहद यि स्वेच्छा से तनजष्यि िोती तो एिलौककक र्ीवन का प्रवाि चलना तुरन्त बन्द िो र्ाता। सांख्य स्वीकार करता िै कक प्रकृतत की कियार्ीलता इस पवश्व की ओर संकेत करती िै कक गतत देने वाला कोई िै, रो स्वयं गततर्ान निीं िंै, ककन्तु गतत को उत्पन्न करता िै। प्रकृततक पवकास इस पवर्षय का उपलक्षण िै कक कोई आजत्र्क कता शिै। ककन्तु सांख्ंय द्वारा स्वीकृत आजत्र्क केन्द्र प्रकृतत पर कोई सीधा प्रभाव उत्पन्न करने र्ें असर्थ शिैं।

सांख्य का किना िै कक पुरुर्षों की केवल उपजस्थतत-र्ात्र से प्रकृतत को कियार्ीलता तथा पवकास के भलए प्रेरणा भर्लती िै। यद्यपप पुरुर्ष र्ें रचनात्र्क र्जक्त निीं िै, तो भी प्रकृतत, रो अनेकरूप पवश्व को उत्पन्न करती िै, पुरुर्ष के संयोग को सर्झने के भलए एक अच्छी दृजष्ट रखने ेवाले ककन्तु लंगडेर्नुष्य से रो अच्छे पैरों वाले े ककन्तु अंधे र्नुष्य के कन्धों पर सवार िै, तुलना की र्ाती िै।'[1008] असंख्य आत्र्ाओं का, रो प्रकृतत की गतत का

[1005] सांख्यकाररका, 56। प्रकृतत के सम्बन्ध र्ें सांख्य का र्त उससे ेभभन्न िै जर्सका िक्सले ने अपनेरोर्नेस लेक्चर र्ें प्रचार ककया िै अथवा जर्सका िोडी की तनम्नभलणखत पंजक्तयों र्ें प्रततपादन िै-

> "...कोई पवराट र्डता
>
> बनानेव र्ोडनेर्ें र्जक्तर्ाली
>
> ककन्तु देखभाल र्ें सवथशा अर्क्त ...
>
> आत्र्चभलत
>
> िर्ारे दु:खों से अनभभज्ञ।"

[1006] सांख्यप्रवचनसूत्र, 3: 61।

[1007] सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 2: 1।

[1008] सांख्यकाररका, 21। गौडपाद किता िै "र्ैसे, एक लंगडे और एक अंधे ने, रो अपनेसाथी याबत्रयों से बबछुड गए थे, क्योंकक र्ंगल र्ें से गुर्रते िुए डाकुओं नेउन्िें तततर-बबतर कर हदया था, आपस र्ें भर्लनेपर वाताशलाप करके एक-दूसरे का

ज्ञान प्राप्त करती िैं, सारूहिक प्रभाव िी प्रकृतत के पवकास का कारण िै। गुणों की साम्यावस्था के अन्दर पवक्षोभ, जर्सके कारण पवकास की प्रकिया प्रारम्भ िोती िै, प्रकृतत पर पुरुष के प्रभाव से िी िोता िै।'[1009] पुरुषों की उपजस्थतत जक्तयों के संतुलन र्ें, र्ो एक-दूसूरे को तनयजन्त्रत रखता िै, पवक्षोभ उत्पन्न करती िै। पवकास की आरजम्भक प्रकिया र्ें प्रकृतत तनजष्िय दर्ा र्ें रिती िै, और असंख्य पुरुप भी उसी के सर्ान तनश्चेष्ट रिते िैं, ककन्तु वे प्रकृतत पर एक याजन्त्रक जक्त का प्रयोग करते िै।ं यि प्रयोग प्रकृतत की साम्यावस्था को उलट देता िै और एक ऐसी गतत को र्न्र् देती िै र्ो पिले तो पवकास का रूप धारण करती िै और बाद र्ें िास तया कर पुरुषों पवनार् र्ें पररणत िो र्ाती िै। प्रकृतत। कफर अपनी तनजष्िय अवस्था र्ें आती िै। और कफर द्वारा उर्नि प्राप्त करती िै। यि प्रकिया तब तक तनरन्तर चलती रिेगी र्ब तक कक सत्र आत्र्एंर्ोक्ष र्नींप्राप्त कर लेंगी। इस प्रकार पवश्व-सम्बन्धी प्रकिया का पिला और अजन्तर् कारण पुरुष िै। ककन्तु पुरुष की कारणता केवल यन्त्रवत् ्ै, र्ो अपनी इच्छा के कारण न िोकर केवल साजन्नध्य के कारण िै। पुरुष संसार का संचालन एक इस प्रकार के कर् शसे करता िै र्ो गतत र्नीं िै। र्ैसे िलोि का आकर्षणश चुम्बक के प्रतत िोता िै, उसी प्रकार का यि भी एक पवर्ेष

आकर्षणश िै।[1010] सांख्य का पुरुष अरस्तू के ईश्वर से भभन्न र्नीं ंिै। यद्यपप अरस्तू ऐसा र्ानता िै कक संसार के प्रारम्भ र्ें गतत देनेवाला एक सवातशतर्यी ईश्वर िै, तो भी संसार के कायकशलाप र्ें उस ईश्वर का कोई भाग िै, इसको वि र्नींर्ानता। ईश्वर, अरस्तू के र्त र्ें, एक ऐसी पवचारग्नि सिा िै र्ो अपने अन्दर िी सीभर्त िै, और इसभलए वि न तो पवश्व के प्रतत ककसी प्रकार का काय शकर सकती िै और न उसकी ओर कुछ ध्यान िी दे सकती िै। वि सवप्रशथर् गतत देनेवाला ईश्वर, किा र्ाता िै कक, स्वयं एक ऐसा उद्देश्य बनकर जर्सकी प्राजप्त के भलए प्राणी र्ात्र पुरुषाथ शकरते िैं, संसार को गतत देता िै, ककन्तु संसार उसके काय शसे ककसी भी रूप र्ें तनधारशरत

र्नींिोता। यहद वि सांसाररक व्यापारों की धचन्ता करनेलगे तो उसके ईश्वरीय अजस्तत्व की पूणतशा िी नष्ट िो र्ाएगी। इस प्रकार ईश्वर, र्ो पवशुद्ध ज्ञानर्य िै और स्वयं अचल िै, केवल-र्ात्र अपने अजस्तत्व से पवश्व र्ें गतत का संचार करता िै। आगे चलकर वस्तुओं का पवकास उनके अपने-अपनेस्वभाव के कारण िोता िै। ककन्तु पुरुष को प्रकृतत सेबाह्य किा गया िै, और प्रकृतत पर उसका प्रभाव यद्यपप वास्तपवक िै पर बुद्धधगम्य र्नींिै।

पवश्वास प्राप्त कर भलया। उनर्ें पैदल चलनेतथा देखने के कायों का आपस र्ें बांट लेने का सर्झौता िो गया, जर्सके अनुसार लंगडा र्नुष्य अंधे के कंधेपर सवार िो गया और इस प्रकार उसनेअपनी यात्रा पूरी की; और अंधा र्नुष्य भी अपने र्ाग शपर बराबर चल सका क्योंकक उसे अपनेसाथी से िहदर्ा का ज्ञान भर्लता रिा। ठीक इसी प्रकार देखनेकी क्षर्ता आत्र्ा र्ें िै ककन्तु गतत की र्नींि, यि लंगडेर्नुष्य की भातुँत िै; प्रकृतत र्ें गतत पवर्षयक क्षर्ता िै ककन्तुदेखने की क्षर्ता र्नीं, और इसभलए वि अंधे र्नुष्य के साथ सर्ता रखती िै। आगे चलकर र्ैसेलंगडा और अंधा, र्ब उनका प्रयोर्न भसद्ध िो र्ाता िै और वे अपनेगन्तव्य लक्ष्य पर पिुंच र्ाते िैं, अलग-अलग िो र्ाते िैं, इसी प्रकार पुरुष को र्ोक्ष प्राप्त कराकर प्रकृतत काय शकरना सर्ाप्त कर देती िै, और पुरुष भी प्रकृतत का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर र्ोक्ष को प्राप्त िो र्ाता िै। और इस प्रकार उनके आगे अपने-अपने प्रयोर्न पूरे िो र्ानेपर उनका परस्पर सम्बन्ध दूर िो र्ाता िै" (काररका, पृष्ठ 21 पर भाष्य)।

1009 ककसी भी स्वमात्रक पवकासवादी दाशशतनक पद्धतत की एक संघटनकारक भसद्धान्त, एक सार्वप्रवृपि अथवा स्फूतत श की आवश्यकता िोती िै। एलेक्रेण्डर, र्ो पपराभर्ड के आधार र्ें देर्काल को पाता िै, काल को जक्तदायक अवयव प्रततपादन करता िै। िैबिाउस, 'र्ाइंड इन एवोल्यूर्न' की दूसूरी आवृपि की अपनी भूभर्का र्ें, वलपूवकश किता िै कक र्न ककसी-न-ककसी रूप र्ें सर्स्त पवकास की प्रेरक जक्त िै। लायड र्ौरगान नेअपनेइर्ेर्ेण्ट इवोल्यूर्न' नार्क ग्रन्थ र्ें इसका कारण ईश्वर को बताया िै।

1010 साख्यकाररका, 57; साख्यप्रवचनसूत्र, 1:9, 6 ।

 दोनों का पारस्पररक सम्बन्ध एक ऐसा रिस्य ि रो िरें चारों ओर से घेरे रे िुए ि, ककन्तु िर्

इसके अन्दर घुसकर

इसके रिस्य को रान निीं सकते।'[1011] िर् यि निींकि सकते ेकक प्रकृतत पुरुर्षों के उद्देश्य के अनुसार काय श करती ि, क्योंकक पुरुर्ष अनाहदकाल सेस्वतन्त्र िैं और प्रकृतत की कियाओंका सुखोपभोग करने के अयोग्य िैं। पररणार् यि तनकलता ि कक प्रकृतत की कियाएं रीवों के उपयोग के तनभरि िैं, क्योंकक रीच िी पूण शअन्तदृजशष्ट न

रखने ेके कारण अपनेसूक्ष्् (भलंगं) रीरों के साथ तादात्म्य स्थापपत करते िैं, कार्नाएं ंरखते िैं तथा भेदेपरक ज्ञान की आवश्यकता रखते ि।ैं इस प्रकार प्रकृतत प्राणणयों को न्् देती ि, रो दु:ख भोगने के भलए बाध्य िैं, जर्ससे ेकक उर्न्िें अवसर भर्लेकक वे छुटकारा पा सकें।'[1012]

यथाथ शपुरुर्ष के सम्बन्ध एक यथाथ शसंसार के साथ िैं, क्योंकक दोनों के ध्य एक कजल्पत सम्बन्ध ि। र्ब तक यि कजल्पत सम्बन्ध पवद्यर्ान रिता ि प्रकृतत भी उसके प्रतत काय शकरती ि। र्ब पुरुर्ष सदा पवकास तथा पवलय को प्राप्त िोनेवालेप्राकृततक गत् ्से अपने भेद को पिचान राता ि, तो प्रकृतत उसके प्रतत अपना व्यापार बन्द कर देती ि।"[1013] प्रकृतत के पवकास का नैभर्पिक कारण केवल पुरुर्षों की उपजस्थतत र्ात्र निीं क्योंकक वे तो सदा िी उपजस्थत रिते िैं, बजल्क उनका अपने तथा प्रकृतत र्ें भेदे न करना (अभेद) ि।

प्रकृतत के र्िाहद र्ें पररणत िोनेसे पूव शकेवल अभेदे िी रिता ि। अदृष्ट, ऐसा धर्ाधशर् शजर्से िर् देख निींसकते, उस सर्य तक उत्पन्न निींिोता, क्योंकक इसकी उत्पपि भी र्त् ्से िी ि और प्रकृतत के प्रारजम्भक कर् शके पश्चात् ्िी यि प्रकट िोता ि। पूवसृशजृष्ट का संधचत अदृष्ट कुछ सिायक निींिोता, क्योंकक भभन्न-भभन्न व्यजक्तयों का भभन्न-भभन्न अदृष्ट िोता ि, और सृजृष्ट के सर्य भभन्न-भभन्न अदृष्टों का पवभार्न भभन्न-भभन्न व्यजक्तयों र्ें िो निीं ंपाता। अंततर् पवश्लेर्षण र्ें, प्रकृतत की किया का कारण अभेद िी ि,[1014] क्योंकक कर् शके साथ

1011 तुलना कीजर्ए शांकरभाष्य, 22, 6। शंकराचाय शप्रकृतत के कियाकलाप के प्रयोर्न सम्बन्धी प्रश्न का पववेचन करते िुए कक क्या यि आत्र्ाओंका भोग ि अथवा र्ोक्ष ि, किते िैं "यहद किो सुखोपभोग के भलए, तो उस आत्र्ा का सुखोपभोग से क्या वास्ता रो सुख अथवा दु:ख को आत्र्सात् ्करनेर्ें असर्थ शि? इसके अततररक्त र्ोक्ष का भी कोई अवसर प्राप्त न िोगा (क्योंकक तनजष्िय आत्र्ा र्ोक्ष को अपना लक्ष्य निींबना सकती और प्रधान का लक्ष्य केवल यि ि कक आत्र्ा नानापवध अनुभवों र्ें से ेगुर्रे)। यहद उद्देश्य र्ोक्ष िोता तो प्रधान की किया तनरभभप्राय िोती, क्योंकक इसकी पूववशती आत्र्ा र्ोक्ष की अवस्था र्ें ि। यहद सुखोपभोग और र्ोक्ष दोनों उद्देश्य िैं, तो प्रधान के अनेक पदाथ शऐसेिोनेके कारण रो आत्र्ा के सुखोपभोग के भलए िैं, अजन्तर् र्ोक्ष का अवसर प्राप्त न िोगा। और न िी इच्छा की पूतत शप्रधान की कियार्ीलता का प्रयोर्न र्ाना रा सकता ि, क्योंकक न तो बुद्धधपविीन प्रधान और न ताजत्वक रूप से ेपवरुद्ध आत्र्ा िी ककसी इच्छा का अनुभव कर सकते िैं। अन्त र्ें यहद तुर् कल्पना करो कक प्रधान कियार्ील ि, क्योंकक अन्यथा दृजष्टर्जक्त (रो बुद्धधर्ान् ्आत्र्ा के अन्दर ि) और सृर्नात्र्क र्जक्त (प्रधान की) प्रयोर्नर्ून्य िो र्ाएगी, तो पररणार् यि तनकलेगा कक क्योंकक दोनों का ककसी सर्य भी अन्त न िोगा, इसभलए प्रतीयर्ान र्त् ्का भी कभी अन्त न िोगा, और इस प्रकार अजन्तर् र्ोक्ष असम्भव ि।"

1012 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 2 / 1 |

1013 सांख्यकाररका, 61; सांख्यप्रवचनसूत्र, 8/70 |

1014 योगसूत्र, 2/24

 सम्बन्ध अभेद ि ी का काय शि।'[1015] इस अभेद के कारण पुरुर्ष तथा प्रकृतत का अस्थायी सम्बन्ध स्थापपत िोता ि ै।
यि सम्बन्ध तनश्चय ि ी यथाथ शनिीं िीता, क्योंकक सत्यज्ञान के उदय िोनेपर यि टूट र्ाता ि ै।

प्रकृतत ने ककसी-न-ककसी प्रकार से पुरुर्षों को अपने र्ाल र्ें फांस भलया ि ै। तनत्य आत्र्ाओंके प्रारजम्भक बन्धन के कारण की कोई व्याख्या सम्भव निीं, क्योंकक आत्र्ाएंएक सर्य स्वतन्त्र थीं और प्रकृतत उन्िींके सर्ान तनत्य ि ै। केवल यि तथ्य लक्षक्षत िोता ि ै कक पुरुर्ष प्रकृतत के र्ाल र्ें बबना अपनी स्वीकृतत के पकडेर्ाते े ि ैं। यि उस अभेद के कारण ि ै जर्सका कोई आहद निीं ि ै। यहद इसका आहद िोता तो इससे पूव शआत्र्ाएं र्ुक्त अवस्था र्ें िोती और इसके पश्चात् बन्धन र्ें। इसका तात्पय शिोता ि ै कक र्ुक्तात्र्ाएं कफर बन्धन र्ें पडती।

ि र् निीं कि सकते कक अपवद्या का क्या कारण ि ै। इस प्रकार इसे अनारर सर्झा र्ाता ि ै, यद्यपप इसका अन्त ि ै।'[1016] अपवववेके को पुरुर्ष तथा प्रकृतत के संयोग का कारण किा गया ि ै।[1017] अपवववेक, र्ो कारण ि ै, प्रलयकाल र्ें भी रिता ि ै, यद्यपप पुरुर्ष तथा प्रकृतत का संयीग निींरिता। यि संयोग यथाथ शपररणार् निीं क्योंकक पुरुर्ष के अन्दर कोई नये गुण उत्पन्न निीं िोते। पुरुर्ष और प्रकृतत के सम्बन्ध को कभी-कभी भोक्ता तथा भोग्य का सम्बन्ध बताया र्ाता ि ै।'[1018]

12. पुरुर्ष और बुद्धध

प्रकृतत से पवकभसत सर्स्त पदाथों र्ें बुद्धध सबसेअधधक र्ित्त्व की ि ै। इजन्द्रयां अपनेर्ेव पवर्षयों को बुद्धध के आगे प्रस्तुत करती ि ैं, र्ो उन्िें पुरुर्ष के प्रतत प्रदभर्तश करती ि ै। यि बुद्धध ि ी ि ै र्ो प्रकृतत तथा पुरुप के भेद को बताती ि ै और पुरुर्ष के भलए सर्स्त अनुभव योग्य सार्ग्री का उपभोग सम्पन्न करती ि ै।'[1019] बुद्धध उस पुरुर्ष के प्रततबबम्ब से, र्ो इसके तनकट ि ै, वस्तुतः उसी के रूप की बन र्ाती ि ै और सब पदाथों के अनुभव को भसद्ध करती ि ै। वृद्धध यद्यपप प्रकृतत से उत्पन्न पदाथ शि ै और इसभलए स्वरूप से अचेतन ि ै, तो भी ऐसी प्रतीत िोती ि ै र्ानो ज्ञानसम्पन्न िो।[1020] पुरुर्ष अपनी चेतनता का संर्ण बुद्धध र्ें निीं करता। "अपनी साजत्त्वक अवस्था र्ें प्रकृतत के पारदर्ी िोनेके कारण उसके अन्दर प्रततपवजम्बत पुरुप प्रकृतत के अभिभाव तथा कतृत्शव (अभभर्ान) को भूल से अपना सर्झ लेता ि ै। यि राततपूण शभाव आत्र्ा के अन्दर भी ि ै, ककन्तु वि प्रकृतत के अन्दर प्रततपवजम्बत िोनेके कारण ि ी ि ै। वि वस्तुतः आत्र्ा का तनर्ी भाव निीं, जर्स प्रकार न हिलता िुआ भी

1015 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/67 ।

1016 देणखए सांख्यप्रवचनसूत्र, 6/12 - 15

1017 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/19 योगसूत्र, 2/23 - 24

1018 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1:19 पवज्ञानभभक्षु इसका इस आधार पर प्रत्याख्यान करता ि ै कक यहद सम्बन्ध तनत्य ि ै तो ज्ञान से इसका अन्त निीं िो सकता, और यहद यि अतनत्य ि ै तो इसे भी संयोग कि सकते ि ैं।

1019 सांख्यकाररका, 37। सांख्यप्रवचनभाय्य, 1:161।

1020 चेतनावद् इव (सांख्यकाररका, 20)। और देणखए साख्यकाररका, 60।

चन्द्रर्ा र्ल के अन्दर प्रततपबजम्बत िोनेके कारण र्ल की गतत के साथ-साथ हिलता िै।"[1021] वाचस्पतत का र्त िै कक पुरुर्ष तथा बुद्धध की अवस्था र्ें कोई संयोग निीं िो सकता क्योंकक वे दोनों यथाथतशा की दो भभन्न-भभन्न व्यवस्थाओंसेसम्बन्ध रखते िैं। और इसभलए यि किा र्ाता िै कक बुद्धध र्ें पुरुर्ष का प्रततपबम्ब िै, र्ो बुद्धध को चेतनार्य बनाता िै। अभिभाव बुद्धध तथा पुरुप का प्रतीत िोनेवाला एकत्व िै। र्ब पुरुर्ष देखता िै तो उसके साथ िी बुद्धध र्ें भी पररवतनश िो र्ाता िै। र्ब बुद्धध र्ें पररवतनश िोता िै तो उसे पुरुर्ष की झलक भर्लती िै। इस तरि पुरुर्ष तथा प्रकृतत का संयोग प्रततपबजम्बत पुरुर्ष तथा बुद्धध के पवभर्ष्ट पररवतनश के एकत्व के साथ-साथ िोता िै। पुरुर्ष तथा उससेसंलग्न प्रकृतत का सम्पकश इस प्रकार का िै कक र्ो भी र्ानभसक घटनाएंर्न के अन्दर घहटत िोती िैं वे सब पुरुर्ष के अनुभव सर्झी र्ाती िैं, यिां तक कक अभेद का सम्बन्ध भी बुद्धध के साथ िै, और बन्धन र्ें यि पुरुर्ष र्ें प्रततबबजम्बत िोता िै।'[1022]

पुरुर्ष का उस बुद्धध के साथ र्ो इससे संलग्न िै, तात्काभलक सम्बन्ध बतलाया गया िै और अन्यों के साथ अप्रत्यक्ष सम्बन्ध बतलाया गया िै। इस प्रकार पवज्ञानभर्क्षुका किना िै कक र्िां एक ओर पुरुर्ष बुद्धध का साक्षी िै अथातश बबना ककसी र्ध्यस्थ के बुद्धध की अवस्थाओं का साक्ष्य रखता िै, विांयि अन्य सबका बुद्धध की सिायता से द्रष्टा िै। पुरुर्ष अपने-आप र्ें स्वतन्त्र तथा तनरपेक्ष िोते िुए भी र्ब बुद्धध के सम्पकश र्ें आता िै तो साक्षी बन र्ाता िै।[1023] यहद आत्र्ा तथा र्रीर के सम्बन्ध को वास्तपवक सर्झा र्ाए तो र्रीर की त्रुहटयों को भी आत्र्ा की त्रुहटयां र्ानना िोगा। इससे आत्र्ा की अतनवाय शतनपवकशारता के सांख्य के भसद्धान्त के अन्दर त्रुहट आ र्ाएगी। बुद्धध के पवकारों का पुरुर्ष के अन्दर प्रततपबम्ब िी बन्धन िै। इस प्रततबबम्ब का िट र्ाना िी र्ोक्ष िै, र्ो कक बुद्धध के पुनः अपनी र्ौभलक पपवत्रता प्राप्त कर लेनेपर िी, अथातश बुद्धध के प्रकृतत र्ें पवलय िो र्ानेपर िी, सम्भव िै। इस प्रकार का कथन कक प्रकृतत की किया पुरुप के िी हित के भलए िै, केवल इस बात का आलंकाररक रूप िै कक यि बुद्धध की पपवत्रता के भलए िै। बुद्धध अपने-आप र्ें साजत्त्वक िै, ककन्तु व्यजक्त-पवर्ेर्ष के अन्दर र्ाकर, पूवर्शन्र् के प्रभावों के सम्पकश के कारण यिी रार्स अथवा तार्स वन र्ाती िै। दुःख तथा सुख का अनुभव र्ो िर्ें प्राप्त िोता िै, वि बुद्धध तथा पवर्षयरूप र्गत् की किया-प्रततकिया द्वारा िोता िै और पुरुर्ष उसर्ें केवल दर्कश र्ात्र िै। बुद्धध के द्वारा केवल सुख की प्राजप्त िोनी चाहिए, ककन्तु उपाजर्तश प्रभावों के कारण इसके दुःखर्य पररणार् िोते िैं। यिी कारण िै कक एक िी वस्तु भभन्न-भभन्न व्यजक्तयों पर भभन्न-भभन्न प्रकार का असर रखती िै। प्रत्येक ज्ञेये पदाथ शको ध्यान र्ें बंटाने वाला वैयजक्तक प्रयोर्न के र्ाध्यर् से देखा र्ाता िै। इस प्रकार र्ो वस्तु एक के भलए सुखदायी िै, वि दूसरों के भलए दुःखदायी िै, या उसी व्यजक्त के भलए भभन्न सर्य र्ें दुःखदायी प्रतीत िोती िै। िर् साधारणतः अपनी िी दुतुनया र्ें रिते िैं, र्िां िर् अपनी पवर्ेर्ष आवश्यकताओं तथा प्रयोर्नों का आवश्यकता से अधधक र्ूल्यांकन करते िैं, तथा अपनी अभभरुधचयों को अस्वाभापवक र्ित्त्व देते िैं। िर्ारे साधारण र्ीवन िर्ारी स्वाथर्शय इच्छाओं से बंधेिुए िैं और ऐसेदुःख को उत्पन्न करते िैं र्ो

1021 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 6: 59।

1022 तुलना कीजए सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 19। "र्न्र् से तात्पय शिै एक व्यजक्तगत बुद्धध के साथ संयोग। उपाधधरूप बुद्धध के संयोग के कारण िी पुरुर्ष र्ें दुःख का संयोग िोता िै।"

1023 सांख्यप्रवचनसूत्र, 6 : 50।

अतनजश्चत सुख के एक अंर् के साथ भर्धश्रत िोता िै। यहद िर् अपनी बुद्धध को रुद्ध कर लें तथा अपनी पपछली प्रवृपृियों से पवरुक्त िो सकें, तो िर् ऐसी जस्थतत र्ें िोंगेकक वस्तुओंका तनरीक्षण जर्स रूप र्ें वे िर्से सम्बद्ध श ्तनरपेक्ष रूप र्ें कर सकें। र्ब िैं उस रूप र्ें निीं, बजल्क जर्स रूप र्ें वे परस्पर सुम्बद्ध िैं उस रूप र्ें, अथात् बुद्धेध र्ें सत्त्वगुण का प्राधान्य िोता िै तब इसके द्वारा सत्यज्ञान की प्राजप्त िोती िै, रर्ोगुण की प्रधानता र्ें इच्छा उत्पन्न िोती िै और तर्ोगुण की प्रधानता से भर्थ्याज्ञान इत्याहद की प्राजप्त िोती िै।[1024]

13. ज्ञान के उपकरण

सर्स्त ज्ञान र्ें तीन घटक रिते िैं, अथात्श ्ज्ञात पवर्षय, ज्ञाता पवर्षयी और ज्ञान की प्रकिया। सांख्यदर्नश र्ें "पवर्द्ध चेतनता 'प्रर्ाता' (र्ाननेवाला) िै, रूपान्तर (वृपि) प्रर्ाण पररवतनशों का पवर्षयों के रूप र्ें चेतनता के अन्दर प्रततबबंब प्रर्ा िै। ज्ञेय प्रततबबजम्बत वृपियों की पवर्षयवस्तु िै।[1025] अनुभव का संबंध पुरुर्ष से िै ।[1026] बुद्धध, अिंकार, र्न और इजन्द्रयां– ये सब भर्लकर उस उपकरण का तनर्ाणश करते िैं जर्सके द्वारा एक बाह्य पवर्षय का ज्ञान प्रर्ाता (पवर्षयी) को िोता िै। र्ब कोई पदाथ शइजन्द्रयों को उिेजर्त करता िै तो र्न[1027] इजन्द्रयानुभवों को एक बोध के रूप र्ें व्यवजस्थत करता िै, अिंकार इसे ेआत्र्ा को प्रेपर्षत करता िै, और बुद्धध उसे े पवचार के रूप र्ें पररणत कर देती िै।'[1028] बुद्धध सारे र्रीर र्ें व्याप्त िोनेके कारण, पूवर्शन्र्ों के संस्कारों तथा वासनाओं को अपनेअन्दर रखनी िै, र्ो अनुकूल अवस्थाएं ंपाकर र्ाग्रत िो र्ाते िैं। "इजन्द्रयों के र्ागों से पदाथों के साथ सम्पकश िोनेके कारण, अथवा आनुर्ातनक धचह्न इत्याहद के ज्ञान द्वारा बुद्धध का सबसे पूव शरूपान्तर उस पवर्षय के रूप र्ें िोता िै जर्सका ज्ञान प्राप्त करना िै। पदाथ शसे रंजर्त यि रूपान्तर पुरुर्ष के संयोग के क्षेत्र र्ें एक प्रततबबम्ब के रूप र्ें प्रपवष्ट िोता िै और वि प्रकाभर्त िोता िै, क्योंकक पुरुर्ष, र्ो अपररवतनशीय िै, पदाथ शके रूप र्ें रूपान्तररत निींिो सकता।" यहद पदाथ शके ज्ञान का तात्पय शपदाथ शके रूप के साथ तादात्म्य सर्झा र्ाए तो इस प्रकार का पररवतनश पुरुर्ष र्ें सम्भव निीं। इसभलए बुद्धध को रूपांतररत किा र्ाता िै। रूपान्तर को व्यक्त िोनेके भलए बुद्धध का चेतनता के अन्दर प्रततपवजम्बत िोना आवश्यक िै।[1029] इस प्रततबबम्ब का तनणयश

1024 तत्वं यथाथज्ञशानिेतुः, रर्ो रागिेतुस्तर्ो पवपरीतज्ञानाहदिेतुः।

1025 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1:87 ।

1026 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1:143।

1027 र्न को अनेक कारणों से ग्यारिवीं इजन्द्रय र्ाना गया िै। यहद तनत्य पुरुर्ष का सुख तथा दुःख देनेवाले पदाथों के साथ अपना खुद का सम्बन्ध िोता तो र्ोक्ष न िो सकता। यहद पदाथों के साथ सम्बन्ध प्रकृतत पर तनभरशता के कारण िोता तब भी र्ोक्ष न िोता, क्योंकक प्रकृतत तनत्य िै। यहद अतनत्य पदाथ,श घडेआहद पुरुर्ष की तनत्य प्रज्ञा के साथ सम्बद्ध िोते ेतो दृष्ट और अदृष्ट के बीच कोई भेद न िोता, क्योंकक सब पवद्यर्ान वस्तुए आवश्यक रूप र्ें एक िी क्षण र्ें हदखाई दे र्ाती। और यहद पदायों का सम्बन्ध प्रता के साथ केवल बाह्य इजन्द्रयों पर तनभरश करता तो िर् अपनेप्रत्यक्ष ज्ञानों के अयुगपत् ्िोनेका कोई कारण न बता सकते।

1028 3.4. तत्त्वकौर्ुदी, 36। सांख्य की ज्ञानपवर्षयक प्रकल्पना की सर्ीक्षा के भलए देणखए व्याययाततकश और न्यायवाततकशतात्पयटशीका, 3:2. 8-9 ।

1029 सांख्यप्रवचनभाष्य ,1:99 ।

बुद्धध के रूपान्तर द्वारा िोता िै। पुरुष के अन्दर प्रततपवम्ब केवल तभी तक जस्थर रिता िै र्ब तक कक र्ो प्रततपवजम्बत िोता िै वि उपजस्थत रिता िै। बुद्धध के रूपान्तर का पुरुष के अन्दर प्रततबबम्ब रूपान्तर के पीछे निीं, बजल्क साथ के साथ िोता िै। र्ब इजन्द्रयों के र्ाग शसे बुद्धध बाह्य पदाथ शके सम्बन्ध र्ें आती िै और उससे े प्रभापवत िोती िै तो यि उक्त पदाथ शका रूप धारण कर लेती िै। चेतनार्जक्त इस प्रकार रूपान्तररत बुद्धध र्ें प्रततबबजम्बत िोकर बुद्धध के रूपान्तर का अनुकरण करती िै, और यि अनुकरण (तदृत्यनुकार) िी ज्ञान (उपलजब्ध) किलाता िै। पुरुष का प्रततबबम्ब वास्तपवक सर्ागर् निीं, बजल्क केवल प्रतीततरूप िै, और यि पुरुष तथा बुद्धध के भेदे को न र्ानने के कारण िै। बुद्धध के अन्दर प्रततपवजम्बत पुरुष का पदावंके साथ र्ो सम्बन्ध िै उसे िी ज्ञान किते िैं। और इस ज्ञान के साथ पुरुष का र्ो सम्बन्ध िै वि पररणार्स्वरूप इस प्रकार के तनधारशण र्ें कक 'र् ैंकरता िंूं' देखा र्ाता िै,[1030] र्बकक वस्तुतः यि 'र्'ैं अथात्श ्पुरुष काय शनिींकर सकता, और र्ो काय शकरती

ै अथात्श ्बुद्धध वि सोच निीं सकती।[1031]

बुद्धध की कोई भी गतत चेतनापूण शज्ञान निींिो सकती र्ब तक कक यि ककसी पुरुष का ध्यान आकृष्ट न करे। इस र्त के अनुसार, बुद्धध, र्न और इजन्द्रयां ंये सब अचेतन िैं।[1032]

भभन्न-भभन्न व्यापारों का काय शिर्बद्ध िै। यद्यपप कुछेक व्यापारों र्ें यि िर् इतनी र्ीघ्रता के साथ सम्पन्न िोता िै कक ध्यान र्ें भी निींआ सकता। र्ब कोई र्नुष्य अंधेरी रात र्ें एक व्याघ्र को देखता िै तो उसकी इजन्द्रयों र्ें उर्िंा पैदा िोती िै, र्न धचन्तन करता िै, अिंकार पिचान करता िै और बुद्धध पदाथ शके स्वरूप का तनणयश करती िै और उसके बाद वि व्यजक्त अपनेपप्रय र्ीवन की रक्षा के भलए विांसे भागता िै। इस घटना र्ें भभन्न-भभन्न व्यापार इतनी र्ीघ्रता के साथ कम्य िो र्ाते िैंकक वे सब एक साथ िी िोते ेर्ान पडते िैं। इसी प्रकार र्ब कोई र्नुष्य ककसी पदाथ शको र्न्द प्रकार् र्ें देखता िै, उसे ेसन्दिेपूवकश चोर सर्झनेलगता िै और र्नैः-र्नैः अपनेर्न र्ें तनश्चय करके पवपरीत हदर्ा र्ें चला र्ाता िै। इस घटना र्ें भभन्न जस्थततयांपृथृक् पृथृक् ध्यान र्ें आ र्ाती िैं।'[1033]

1030 वृद्ूधावानपपनचैतन्यस्य पवर्षयेण सम्बन्धी ज्ञानर्,् ज्ञानेन सम्बन्धश्चेतर्ोऽ किरोर्ी युपलजब्धः (उदयनकृत कुरुर्ाभ्र्लः । 14 पर िररदास भट्टाचाय)श

1031 र्िांवाचस्पतत का यि पवचार िै कक आत्र्ा पदाथ शका ज्ञान, उस र्ानभसक पररवतनश के द्वारा करती िै जर्स पर यि अपना प्रततपवम्ब डालता िै, विां पवज्ञानभभक्षु का र्त िै कक र्ानभसक पररवतनश, र्ो आत्र्ा के प्रततपवम्ब को ग्रिण करता िै और उसका रूप प्राप्त करता िै, आत्र्ा पर कफर से ेप्रततपवजम्बत िोता िै और यि इसी प्रततबबम्ब के कारण सम्भव िोता िै कक आत्र्ा पदाथ शको र्ानती िै। योगवाततकश, 1:4। तत्त्ववैर्ारदी, पृष्ठ 13।

1032 ककन्तु सांख्य की प्रकल्पना के अनुसार, बुद्धध, अिंकार आहद तब तक उत्पन्न निींिो सकते र्ब तक कक प्रकृतत पर पुरुष का व्यापक प्रभाव न िो। इसभलए ऐसा सोचना अनावश्यक िै कक बुद्धध केवल अचेतन िै। बुद्धध का पवकास स्वयंपुरुष के प्रभाव से िै। बुद्धध और अिंकार आहद को िर्ें पुरुष के प्रयोर्न के भलए बने ेपिलेसे तैयार साधन र्ाननेकी आवश्यकता निींिै र्ो तब तक अचेतन और तनजष्िय रिते िैं र्ब तक कक पुरुष उनके अन्दर से दूरूवीक्षण यन्त्र र्ें र्ैसेदेखा र्ाता िै उस तरि न देखे,े क्योंकक यि सांख्य के इस र्ुख्य भसद्धान्त की उपेक्षा करना िोगा कक प्रकृतत बुद्धध इत्याहद को तब तक उत्पन्न निींकर सकती तब तक कक पुरुष की साम्यावस्था र्ें क्षोभ उत्पन्न निींकरता।

1033 सांख्यकाररका, 30, तत्त्वकौर्ुदी, 30 ।

प्रत्यक्ष और पवचार, इच्छा और चुनाव के र्ानभसक व्यापार वस्तुतः प्रकृततत्न्य पदाथों की याजन्त्रक प्रकियाएं ◌ं ◌ैं, जर्नसे ◌े आभ्यन्तर इजन्द्रयों का तनर्ाणश ◌ुआ ◌ै।'[1034] यहद पुरुर्ष इर्न्ें प्रकाभर्त न करे अथात्श इर्न्ें चैतन्य प्रदान न करे, तो ये अचेतन रिंगी। पुरुर्ष का यि एकर्ात्र काय शिै, क्योंकक कियार्ीलता जर्तनी भी ◌ै प्रकृतत से सम्बन्ध रखती ◌ै। पुरुर्ष एक प्रकार का तनजष्यि दपणश ◌ै, जर्सके अन्दर आभ्यन्तर इजन्द्रय प्रततपवजम्बत ◌ोती ◌ै। पवर्ुद्ध रूप र्ें अभौततक आत्र्ा आभ्यन्तर इजन्द्रय की प्रकियाओं को अपनी चेतना से आप्लापवत कर देता ◌ै और इस प्रकार वे अचेतन निीं ◌ंरितीं। सांख्य बुद्धध के साथ पुरुर्ष के केवल साजन्नध्य ◌ी को निीं ◌ंर्ानता, बजल्क बुद्धध र्ें पुरुर्ष के प्रततबबम्ब की भी कल्पना करता ◌ै। र्ें प्रततबबम्ब चेिरे को देखनेके साथ-साथ रि् चैतन्यरूप घटना का भी ज्ञान प्राप्त करते ◌े।◌ैं केवल इसी प्रकार चेतना अपने को पिचान सकती ◌ै।[1035]

अभौततक पुरुर्ष तथा प्रकृतत के र्ध्य र्ो सम्बन्ध ◌ै उसे ◌ेसर्झना कहठन ◌ै। वाचस्पतत के अनुसार, देर् और काल के स्तर पर इन दोनों र्ें कोई सम्पकश निीं ◌ं◌ो सकता। इसतनत वि सजन्नधध का अथ श'योग्यता' लगाता ◌ैं। पुरुर्ष यद्यपप बुद्धध की अवस्थाओं से पृथृक् रिना ◌ै, परन्तु रांततवर् अपने को बुद्धध के साथ एकात्र् सर्झनेलगता ◌ै और उसकी अवस्थाओंको अपनी ◌ी अवस्थाएं ◌ंर्ानने लगता ◌ै। इसके पवरोध र्ें पवज्ञानभभक्षु ◌ु का किना ◌ै कक यहद इस प्रकार की पवभर्ष्ट योग्यता को स्वीकार ककया र्ाए तो कोई कारण प्रतीत निींिोता कक क्यों पुरुर्ष इस योग्यता को र्ोक्ष की अवस्था र्ें खो बैठैता ◌ै। दूसूरे ब्दों र्ें, र्ोक्ष सम्भव ◌ी न ◌ो सकेगा क्योंकक पुरुर्ष सदा ◌ी बुद्धध की अवस्थाओं को अनुभव करता रिेगा। इस प्रकार उसके र्त से ज्ञान की प्रत्येक घटना के बुद्धध के रूपान्तरों के साथ पुरुर्ष का यथाथ शसम्पकश ◌ोता ◌ै। और इस प्रकार के सम्पकश से आवश्यक निींकिक पुरुर्ष के अन्दर भी ककसी प्रकार का पररवतनश ◌ो, क्योंकक पररवतनश का तात्पय शनये गुणों का उदय ◌ोना ◌ै। बुद्धध के अन्दर पररवतनश ◌ोते ◌ैं, और र्ब ये पररवतनश पुरुप के अन्दर प्रततबबजम्बत ◌ोते ◌ैंतो पुरुर्ष के अन्दर द्रष्टा ◌ोने का भाव उत्पन्न ◌ोता ◌ै और र्ब पुरुर्ष बुद्धध के अन्दर प्रततपवजम्बत ◌ोता ◌ै तो बुद्धध की अवस्था एक चैतन्यर्यी घटना प्रतीत ◌ोती ◌ै। ककन्तुपवज्ञानभभक्षु भी इतना र्ान लेता ◌ै कक पुरुर्ष तथा बुद्धध के र्ध्य र्ो सम्बन्ध ◌ै वि ठीक उस प्रकार का ◌ै रै्सा कक स्फहटक र्णण का अपनेअन्दर प्रततबबजम्बत गुलाब के फूल से ◌ै। उक्त घटना र्ें वास्तपवक संर्णि (उपराग) निींिोता, बजल्क इस प्रकार के संर्णि की र्ात्र कल्पना (अभभर्ान) िोती ◌ै।[1036]

1034 बुद्धध, अिंकार और र्न-इन तीनों आभ्यन्तर इजन्द्रयों को प्रायः एक ◌ी सर्झा र्ाता ◌ै, क्योंकक इन सबका परस्पर तनकट सम्बन्ध ◌ै। तुलना कीजए गायें"यि संयुक्त भौततक आभ्यन्तर इजन्द्रय अपनेअनात्र्स्वरूप र्ें तथा अपनेउन सर्स्त व्यापारी र्ें जर्न्ें सांख्य इसी का बतलाता ◌ै, स्नायुर्ाल (यात-संस्थान) के अनुरूप ** (इ.आर.ई., खण्ड 2, पृषूठ 191)।

1035 'धचच्छायापपि' अथवा चेतनता की छाया का पतन (सवदर्शनशसंग्रि, 15)।

1036 सांख्यप्रवचनभाष्य, 6 28 योगसूत्र, 14. 7। और देणखए योगभाष्य, 2:20; 4:22।

पुरुर्ष यद्यपप असंख्य तथा सावभशौर् िैं और चैतन्य के रूप िैं, कफर भी वे सब वस्तुओं को सब काल र्ें प्रकाभर्त निींकरते, े क्योंकक वे असंग (संगदोर्ष से रुक्त) िैंऔर स्वयं प्रर्ेय पदाथों के रूप र्ें पररवततततश निींि सकते। पुरुर्ष अपनी-अपनी बुद्धधयों के रूपान्तरों को प्रततबबजम्बत करते िैं, औरों के निीं। वि पदाथ शजर्सर्ें बुद्धध प्रभापवत िुई िै, र्ाना र्ाता िै, ककन्तु वि पदाथ शजर्सर्सेयि प्रभापवत निींिुई अज्ञात रिता िै।'[1037]

र्ागरण, स्वप्न, तनद्रा और र्ृत्यु-इन पवभभन्न अवस्थाओं र्ें भेदे ककया गया िै। र्ाग्रत अवस्था र्ें बुद्धध इजन्द्रयों के र्ाग शसे पदाथों के रूप र्ें रूपान्तररत िोती िै। स्वप्न की अवस्था र्ें बुद्धध के रूपान्तर संस्कारों अथवा पूवानुशभवों के प्रभावों का पररणार् िोते िैं। स्वप्नरहित तनद्रा दो प्रकार की िै और यि लय के पूण शअथवा आंभर्क रूप के अनुसार िोती िै। आभर्क लय की अवस्था र्ें बुद्धध पदाथों के रूप र्ें रूपान्तररत निींिोती, यद्यपप यि सुख, दुःख तथा आलस्य के रूपों को, र्ो इसके अन्तगतश रिते िैं, धारण कर लेती िै। यिी कारण िै कक र्ब कोई व्यजक्त नींद से उठता िै तो उसे ज्ञात िो र्ाता िै कक उसे कैसी नींद आई िो उसकी स्र्ृतत रिती िै। र्ृत्यु र्ें पूण शलय की अवस्था रिती िै।'[1038]

14. ज्ञान के स्रोत

ज्ञानपवर्षयक चेतनता पांच प्रकार की िै। प्रर्ाण अथवा यथाथज्ञशान, पवपययश अथवा अवयाथज्ञशान, जर्सका आधार ऐसा रूप िोता िै र्ो प्रर्ेय पदाथ शका निीं िै,'[1039] पवकल्प, अथात्श ्ऐसी ज्ञानपरक, चेतनता र्ो प्रचभलत र्ब्दों से तो प्रकट की र्ाए ककन्तु जर्सका आधार कोई वस्तुन िो,[1040] तनद्रा अथात्श ्ऐसा ज्ञान जर्सका आधार तर्ोगुण िो,[1041] और स्र्ृतत।

सांख्य तीन प्रर्ाणों को स्वीकार करता िै, अथात् श ्प्रत्यक्ष, अनुर्ान तथा र्ब्दप्रर्ाण को।'[1042] इजन्द्रयों की कियार्ीलता से र्ो ज्ञान उत्पन्न िोता िै वि प्रत्यक्ष िै। र्ब कोई पदाथ,श र्ैसेकक एक घडा दृजष्टपथ र्ें आ र्ाता िै तो बुद्धध र्ें इस प्रकार एक पररवतनश िोता िै कक वि घडे का रूप धारण कर लेती िै[1043] और आत्र्ा घडे के अजस्तत्व से अभभज्ञ िो र्ाती िै।'[1044] प्रत्यक्ष के दो प्रकार र्ानेिैं, अथात्श ्तनपवकशल्प और सपवकल्प। वाचस्पतत के अनुर्ान बुद्धध इजन्द्रयों के द्वारा बाह्य पदाथों के स्पर् शर्ें आती िै। उक्त सम्पकश के प्रथर् क्षण र्ें एक अतनश्चयात्र्क चेतनता िोती िै जर्सर्ें कक प्रर्ेय पवर्षय के पवर्ेर्ष लक्षण निींहदखाई देते ेऔर िेर्ें तनपवकशल्प

[1037] सवदशर्नशसंग्रि,15 ।

[1038] सांख्यप्रवचनभाष्य ,1:148 ।

[1039] योगसूत्र, 1:8 ।

[1040] योगसूत्र, 1: 9 ।

[1041] योगसूत्र, 1: 10 ।

[1042] सांख्यकाररका, 4।

[1043] तदाकारील्लेखी।

[1044] सांख्यप्रवचनसूत्र , 1: 89।

प्रत्यक्ष िोता िै। दूसूरे क्षण रें, र्ानभसक पवश्लेर्षण (पवकल्प) तया संश्लेर्षण (संकंल्प) को प्रयोग रें लानेसे प्ररेय पवर्षय एक तनजश्चत स्वरूप रें हदखाई देता िै[1045] और िरें सपवकल्प प्रत्यक्ष िोता िै। रिां ांवाचस्पतत का यि पवचार िै कक प्रत्यक्षज्ञान रें र्न की कियार्ीलता का िोना आवश्यक िै, विां ांपवज्ञानभभक्षु ुइसे ेअस्वीकार करता िै और किता िै कक बुद्धध इजन्द्रयों द्वारा सीधेप्ररेय पदाथों के स्पर् शरें आती िै। वाचस्पतत के अनुसार, र्न का काय शयि िै कक इजन्द्रय सार्ग्री की व्यवस्था करे और उसे ेसपवकल्प प्रत्यक्ष का रूप दे। ककन्तु पवज्ञानभभक्षु ुका पवचार िै कक वस्तुओं के सपवकल्प स्वरूप का ज्ञान सीधे इजन्द्रयों द्वारा िोता िै और र्न केवल इच्छा, संर्य तथा कल्पना की क्षर्ता िै। सांख्य योगी पुरुर्षों के प्रत्यक्ष को र्ानता िै, क्योंकक उसके र्त रें सब वस्तुएं सब कालों रें पवकभसत अथवा अपवकभसत (लीन) दर्ा रें पवद्यर्ान रिती िैं। योगी पुरुर्ष का र्न सर्ाधध द्वारा प्राप्त की गई भसद्धधयों से भूत तथा भपवष्य के प्ररेय पदाथों के सम्बन्ध रें आ सकता िै, क्योंकक वे पदाथ शवतर्शान रें भी अन्तलीन अवस्था रें पवद्यर्ान रिते िैं।"[1046] र्न की भसद्धधयों से प्राप्त ककया गया योगी का प्रत्यक्ष ज्ञान साधारण इजन्द्रयर्न्य प्रत्यक्षज्ञान रैसा निीं। स्र्ृतत रें ज्ञान, र्न, अिंभाव और बुद्धध िी केवल कियार्ील रिते िैं, यद्यपप उनकी कियार्ीलता पूवकशाल के प्रत्यक्ष ज्ञानों के पररणार्ों की कल्पना पिले ेसे कर लेती िै, श ्रो स्र्ृतत रें बनी िुई प्रततकृतत िै। प्रत्यक्ष ज्ञान की बाह्य इजन्द्रयांकेवल ऐसे िी पदाथों पर अपना काय श

अथात् कर सकती िैं रो उनके सर्क्ष प्रस्तुत ककए गए िों, ककन्तुर्न भूत और भपवष्य को भी सकता िै। आभ्यन्तर प्रत्यक्षज्ञान की अवस्था रें इजन्द्रयों के सियोग का प्रभाव र सुख एवं तत्सर्ान अवस्थाओं का ज्ञान बुद्धध को मिता िै।'[1047]

यहद पुरुर्ष भी र्ाना र्ा सकता िै तो इसभलए क्योंकक यि वृद्धध के का प्रततबबजम्बत िोता िै। आंख अपने को केवल उसी अवस्था रें देख सकती िै स दपणश रें उसका प्रततबबंब पडता िो, अन्यथा निीं।ं सब बोध आभ्यन्तर इजन्द्रय िै रूपान्तर िैं। एक प्राथभर्क बोध, रैसे ेकक 'यि घडा िै', उस इजन्द्रय का रूपान्तर र्ब इसका प्रततबबंब पुरुर्ष पर पडता िै तो इसका ग्रिण (ज्ञान) िोता िै। इस प्रथा का ज्ञान कक 'र् ैंघडे को देखता िंूं', आभ्यन्तर इजन्द्रय का रूपान्तरण िै। पुरुर्ष, आभ्यन्तर इजन्द्रय के रूपान्तर के प्रततबबम्ब, अथात्श ्'यि एक घडा िै' सरेत आभ्यन्तर

इजन्द्रयांरें प्रततबबजम्बत िोता िै। यि दूसूरा प्रततबबम्ब आभ्यन्तर इजन्द्रय का रूपान्तर िै, इस प्रकार का ज्ञान तक कक 'र् ैंप्रकृतत से भभन्न िंूं' आभ्यन्तर इजन्द्रय का रूपान्तरण िै।[1048] प्रस्तुत पदाथ शके अनुकूल बुद्धध रें भी पररवतनश आता िै।

अिं की भावना, जर्सका सम्बन्ध िर्ारी सर्स्त र्ानभसक घटनाओंसे िै और के उर्न्िें प्रकाभर्त करती िैं, बुद्धध रें आत्र्ा के प्रततबबम्ब के कारण िै। इस प्रकार जर्सका प्रत्यक्ष बुद्धध ने ककया था उसी का प्रत्यक्ष

1045 तुलना कीजए व्यास : सार्ान्यपवर्र्षसर्ुदायो द्रव्यर् ्(योगभाष्य, 3:44)।

1046 सांख्यप्रवचनर्ाष्य, 1:91 ।

1047 "स्वप्नपवीन तनद्रा रें, र्बकक पदाथों के साथ कोई एप्प निींरिता, रो साजत्त्वक सुख के रूप रें व्यक्त िोता िै और जर्सेर् र्ानन्तसुख के नार् से पुकारते िैं, विी बुद्धध का गुण अथात्श ्आत्र्सुख िै" (सांख्यप्रवचनभाष्य, 165)

1048 योगसूत्र, 2 20. इस प्रकार िै "द्रष्टा के रूप रें आत्र्ा अपनी तनर्लशता रें तनरपेक्ष िै, तो भी अनुभव द्वारा देखे ेर्ानेके योग्य िैं" (प्रत्ययानुपश्य:)।

 आत्र्ा कफर से करता िै, और अपना प्रकार् अि के रूप र्ें देकर बुद्धध को चेतनता प्रदान करता

ि। पुरुर्ष अपनेको

बुद्धध र्ें पड अपनेप्रततपवम्ब के द्वारा िी र्ान सकता िै, क्योंकक उसी अवस्था र्ें यि प्रर्ेव पदाथ शका रूप धारण कर सकता िै। वाचस्पतत के अनुसार, आत्र्ा अपनेको उसी अवस्था र्ें र्ान सकता िै र्बकक र्ानभसक व्यापार से, जर्सर्ें कक आत्र्ा प्रततपवजम्बत िोता िै, सरूचा ध्यान िटा भलया र्ाए, तथा बुद्धध के सत्त्व-स्वरूप र्ें प्रततपवजम्बत आत्र्ा पर पूणरूशप से ध्यान केजन्द्रत कर हदया र्ाए। इस काय शर्ें आत्र्ज्ञान का प्रर्ाता (पवर्षयी) साजत्त्वक-स्वरूप बुद्धध को िी िा र्ाएगा, र्ो अपनेअन्दर प्रततबबजम्बत आत्र्ा के कारण चेतनार्य िो गई िै, और आत्र्ा अपनेतनपवकशार रूप र्ें प्रर्ेय (पवर्षय)[1049] िोगी। व्यास का र्त िै'[1050] कक आत्र्ा का ज्ञान उस बुद्धध के द्वारा जर्सर्ें आत्र्ा प्रततबबजम्बत िो री िै, निीं ंिो सकता, बजल्क यि आत्र्ा िी िै र्ो बुद्धध के पवरुद्ध स्वरूप र्ें पडेअपने प्रततबबम्ब द्वारा स्वयं अपनेको र्ानती िै। पवज्ञानभभक्षु का पवचार िै कक आत्र्ा अपनेको अपनेअन्दर पडिुए र्ानभसक रूपान्तर के प्रततबबम्ब द्वारा र्ानती िै। यि र्ानभसक रूपान्तर आत्र्ा के प्रततपवम्ब को अपने अन्दर ग्रिण कर लेता िै और उसी के रूप र्ें रूपान्तररत िो र्ाता िै। ठीक उसी प्रकार र्ैसे े कक आत्र्ा एक बाह्य पदाथ शका ज्ञान अपने अन्दर पडेउस

र्ानभसक रूपान्तर के प्रततबबम्ब के द्वारा प्राप्त करता िै र्ो उक्त बाह्य पदाथ श(प्रर्ेय) का रूप धारण कर लेता िै।'[1051] क्योंकक आत्र्ा ताजत्त्वकरूप र्ें स्वतः प्रकार् िै, इसभलए यि अपने अन्दर पडे उस र्ानभसक दर्ा के प्रततजम्बब द्वारा र्ो आत्र्ा का रूप धारण कर लेती िै, अपने को र्ान सकती िै। पवज्ञानभभक्षु आत्र्ा के रूप र्ें रूपांतररत नोंदर्ा द्वारा तनणीत आत्र्ा को प्रर्ाता (पवर्षयी) र्ानता िै और आत्र्ा को उसके पवरुद्ध ताजत्त्वक रूप र्ें प्रर्ेय (पवर्षय) र्ानता िै।

प्रत्यभभज्ञा (पिचान) को भी प्रत्यक्ष ज्ञान की िी श्रेणी र्ें रखा गया िै। यि सम्भव इसभलए िै क्योंकक बुद्धध तनत्य िै और र्नुष्यों के अस्थायी ज्ञानों से सवथशा भभन्न िै। तनत्य बुद्धध पररवतनशों र्ें से गुर्रती िै, जर्सके कारण यि भभन्न भभन्न ज्ञानों के सम्बद्ध िो र्ाती िै र्ो प्रत्यभभज्ञा के अन्तगतश िैं। यि आत्र्ा के पवर्षय र्ें सम्भव निीं, क्योंकक आत्र्ा तनपवकशार िै।"[1052]

"सांख्य के अनुसार, एक बोध का ज्ञान दूसूरे बोध से निीं ंिोता िै, ककन्तु आत्र्ा द्वारा िोता िै। क्योंकक बोध को बुद्धध का व्यापार र्ाना गया िै र्ो अचेतन िैं, और इसभलए अपना िी ज्ञेय पदाथ शनिीं िो सकता, बजल्क केवल आत्र्ा के द्वारा र्ाना र्ा सकता िै ।[1053]

[1049] तत्त्ववेर्ारदी, 3:35।

[1050] योगसूत्र 3:35 ।

[1051] योगवाततकश, 3: 35।

[1052] उक्त प्रकल्पना की आलोचना के भलए देणखए, न्यायसूत्र ,3. 2, 1-9 ।

[1053] योगभाष्य, 4: 9 ।

अभाव को भी प्रत्यक्ष ज्ञान की ि ी कोहट र्ें रखा गया ि ै। सांख्य अभाव को तनर्ेषेधात्र्क रूप र्ें न र्ानकर उसकी अजस्तत्ववाची ब्दों र्ें व्याख्या करता ि ै। केवल हदखाई न देना अभाव को भसद्ध नि ीं कर सकता क्योंकक

ऐसा अन्य कारणों से भी सम्भव ि ै; अथात्श् ◌दूरी के कारण, अत्यधधक तनकट ि ोनेके कारण, अत्यधधक सूक्ष्र् ि ोने से अथवा इजन्द्रय र्ें दोर्ष ि ोने से, असावधानी तथा ज्ञेय पदाथ शके तछपे ◌ेरिने से, अथवा अन्य वस्तुओं के साथ भर्धश्रत ि ो र्ानेसे भी न हदखाई देना सम्भव ि ो सकता ि ै।'[1054] आभ्यन्तर ज्ञान, आत्र्चेतेना, पिचान और अभाव का ज्ञान-ये सब प्रत्यक्ष ज्ञान के ि ी अन्तगतश आते ि ैं।

अनुर्ान दो प्रकार का बताया गया ि ै: पवध्यात्र्क (वीत) और तनर्ेषेधात्र्क (अवीत)। वीत अनुर्ान का आधार पवध्यात्र्क सिचय श्ि तथा अवीत तनर्ेषेधात्र्क सिचय श्ि।'[1055] पराथानुशर्ान के पंचांवयवघहटत रूप को स्वीकार ककया गया ि ै।[1056] व्याजप्त, तनरीक्षण ककए गए सिचय शका पररणार् ि ै, जर्सके साथ सिचय शके अभाव का न देखा र्ाना भी रिता ि ै।'[1057] व्यापपत, र्ो तनरन्तर सिचय श्ि, कोई पृथृक् तत्त्व नि ीं ि ै।'[1058] यि वस्तुओंका परस्पर सम्बन्ध ि ै, ककन्तु स्वयं वस्तु नि ीं ि।'[1059] 'अथापशपि' तथा 'सम्भव' को भी अनुर्ान के अंतगतश र्ाना गया ि ै।

आप्तवचन अथवा पवश्वसनीय कथन भी यथाथ शज्ञान का एक स्रोत ि ै। ब्द का अपनेपदाथ शके साथ वैसा ि ी सम्बन्ध ि ै, र्ैसाकक धचजह्नत वस्तु के साथ धचंि का सम्बन्ध यि आप्त पुरुर्षों की भर्क्षा से प्रकट ि ै, प्रयोग तथा प्रथा के पवधान, परम्पराओंऔर तथ्य से भी प्रकट ि ै कक ब्द एक ि ी अथ शको प्रकट करते ि ैं।[1060] वेदों के पवर्षय र्ें का र्ाता ि ै कक वे ककसी पुरुप द्वारा नि ींरचे गए ि ैं, क्योंकक ऐसा कोई भी र्नुष्य नि ीं र्ो वेदों के रचतयता ि ोनेका साथ्र्य शरखता ि ो।'[1061] र्ुक्तात्र्ा का वेदों से कोई सम्बन्ध नि ीं ि,ै और संसार के बन्धन र्ें पडे िुए र्नुष्यों के अन्दर वि योग्यता नि ींकक इस काय शको कर सकें।'[1062] और न ि ी वेद तनत्य ि ैं, क्योंकक उनका स्वरूप अन्य कायों र्ैसा ि ी ि ै। उच्चारण ककए र्ाने के पश्चात् ◌्अक्षर नष्ट ि ो र्ाते ि ैं। ब ि र् कि ते ि ैं 'यि वि ी

1054 और देणखए तत्त्ववैर्ारदी, 1: 9। सांख्यकाररका, 7; सांख्यप्रवचनसूत्र, 1: 108-9 ।

1055 वाचस्पतत पूववशत् ◌्तथा सार्ान्यतया दृष्ट प्रकार के अनुर्ानों को पिली श्र्ेणी र्ें तथा र्ेर्षवत् ◌्को दूसूरी श्र्ेणी र्ें रखता ि।ै देणखए तत्त्वकौर्ुदी, 5।

1056 सांख्यप्रवचनसूत्र, 5:27 ।

1057 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 5 : 28। साध्य और साधन दोनों का, अथवा ककसी एक का तनरन्तर सिचय शियाजप्त ि ै (सांख्यप्रवचनसूत्र, 5 : 29)। पिले प्रकार का दृष्टान्त यि ि ै "उत्पन्न िुए सब पदाथ शअतनत्य: और "र्िां-र्िां धुआं ि ोगा यिां-विांअजग्न ि ोगी", यि दृष्टान्त दूसूरे प्रकार का ि ै ।

1058 तत्यान्तरर् ◌5: 30। पंचभर्ख की सम्र्तत र्ें व्याजप्त ऐसी र्जक्त के धारण करनेका नार् ि ै र्ो जस्थर रिती ि ै (आधेयर्जक्तयोग, 5:32) ।

1059 5:33-35

1060 . सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 5/38

1061 सांख्यप्रवचनसूत्र, 5 46।

1062 सांख्यप्रवचनसूत्र, 5/47

अक्षर ि' तो इसका आर्य यि िोता ि कक यि उसी वग शका ि।"[1063] केवल इसभलए कक वेदों का उद्भव ककसी रीरधारी से निीं िुआ, िर् यि अनुरान निीं कर सकते कक वे तनत्य ि, क्योंकक अंकुर तनत्य निीं ि, यद्यपप इसका पवकास भी ककसी रीरधारी से निीं।[1064] वेदों के पवर्षय इजन्द्रयातीत ि, तो भी "इजन्द्रयातीत पवर्षयों र् भी व्यापक रूपों के द्वारा, जर्नसेपदाथ,श अथवा ब्द द्वारा प्रततपाहदत पवर्षय के स्वरूप का तनणयश िोता ि, अन्तदृजशष्ट िो सकती ि।"[1065] यद्यपप वेद ककसी रीरधारी की रचनाएं निीं, तो भी आप्त पवद्वानों ने अपने भष्यों को पदाथों को व्यक्त करने की उनकी स्वाभापवक जक्त का पता दे हदया ि।"[1066] अरीरी द्वारा रधचत िोनेके कारण, वेद संर्य और परस्पर असंगतत से रहित ि और उन्ि स्वित:प्रर्ाण के रूप र् स्वीकार ककया गया ि। यहद वेदों की प्रार्ाणणकता अन्य ककसी पर आधश्रत िोती. तो वे िर्ारे भलए प्रार्ाणणक ग्रंथं भसद्ध न िो सकते।[1067] कपपल र्ुतन ने कल्प के प्रारम्भ र् उन्ि केवल स्र्रण ककया। उनके अन्तगतश र्ो धाभर्कश उपदेर् ि उनको र्ुक्त पुरुर्षों ने कसौटी पर कसकर तदनुकूल आचरण ककया और उन्ि अन्यान्य र्नुष्यों तक पिुंचाया। यहद वे जर्नसे िर् र्ास्त्रों का अध्ययन करते ि, स्वयं प्रेरणाप्राप्त ऋपर्ष निीं, बजल्क उन्िोंनेभी उस ज्ञान को दूसूरे से भलया ि, तो यि ऐसी अवस्था ि र्ैसेकक एक अंधा दूसूरे अंधेका र्ागप्रशदर्कश िो ।'[1068] िर् आप्त पुरुर्षों को यथाथ शर्ानकर स्वीकार करते ि, क्योंकक उनके वाक्यों की प्रार्ाणणकता ज्ञान की अन्यान्य र्ाखाओं, यथा आयुवेद आहद र् कसौटी पर कसे जानेपर भसद्ध िो चुकी ि।"[1069]

सांख्य यि र्ानता ि कक अन्य भी कततपय ऐसी पद्धततयांिर् ईश्वर की वाणी िोनेका दावा करती ि। इसभलए उसका तकश ि कक इस पवर्षय की खोर् के भलए कक कौन-सा ईश्वरीय पवधान यथाथ शि और कौन-सा निीं, तकश का उपयोग करना चाहिए। वाचस्पतत का किना ि कक "इन पद्धततयों की अप्रार्ाणणकता इस कारण से ि कक ये यजक्तपविीन कथन करती िइन्ि पयाप्शत सर्थनश का अभाव ि. इनके अन्दर किीं–किीं तकश-पवरोधी कथन पाए र्ाते ि तथा इन्ि म्लेच्छ व इसी प्रकार की अन्यान्य नीच र्ाततयों ने स्वीकार ककया ि।[1070] अतनरुद्ध ने अपनी वृपि र् एक श्लोक तनम्न आर्य का उद्धत ककया ि "आकार् से र्िान दैत्य केवल अन्य पुरुर्ष केवल इसभलए निींउतरते ेकक कोई आप्त अथवा योग्य पुरुर्ष ऐसा किता ि । र् तथा तुम्िारे र्ैसेअन्य पुरुर्ष केवल ऐसी कथनों को स्वीकार करते ि जर्नका सर्थनश तकश द्वारा िो सकें।[1071]

1063 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 5/45 स्फोटवाद का खण्डन, 5 57 र् ककया गया ि और ब्द कायरूशप िोन से अतनत्य किा गया ि (5/58)

1064 सांख्यप्रवचनसूत्र, 5 :18।

1065 अतीजन्द्रयेष्वपप पदाथतशाऽयच्छदकेन सार्ान्यरूपेण प्रतीतेवक्षशयर्ाणत्वात् (सांख्यप्रवचनभाष्य, 5 12)।

1066 सांख्यप्रवचनर्ाष्य, 5 : 43 ।

1067 साख्यप्रवचनसूत्र. 5 : 51

1068 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/8 ।

1069 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1: 98, 4:5 ।

1070 तत्त्वकौर्ुदी, 5।

1071 न ह्याप्तवचनान्नभसो तनपतजन्त र्िासुराः ।
युजक्तर्दवचनं ग्राह्यंर्याऽन्यैच भवद्पवधैः ॥ (1: 26)

सांख्य ने वेद को ज्ञान का साधन स्वीकार करके अपनेको नवीन कृतत सके। प्रतीत िोनेसे बचाया िै। ककन्तु रै्सा िर् देखेंगे, इसने ककतनी िी पुरानी सहदयों के रूप र्ें अलग कर हदया िै तथा औरों की, र्ीनभाव धारण करके, उपेक्षा की िै। चों को छाटकर अंती भी वेदों का स्पष्ट रूप र्ें पवरोध निींककया िै. ककन्तु उनकी नींवं को खदेख इसनेदेनेकी किीं अधधक भयानक प्रकिया का आश्रय भलया िै।

बुद्धध का रूपान्तर प्रर्ाण िै और इन रूपान्तरों की ययाथतशा अथवा अवयाथतशा की परीक्षा परवती रूपान्तरों द्वारा की र्ा सकती िै, बाह्य पदाथों के द्वारा निीं।ं रर्ात्र्क बाचुँ का पवर्षय कोई अभावात्र्क पदाथ श निीिं, बजल्क भावात्र्क पदाथ शिै। र्ल की रांतंत का पवर्षय (पदाथ)श र्ल िै और र्ब इस रर्ात्र्क बोध का सूय श की ककरणों के बोध से खण्डन िो र्ाता िै, तो पपछले ेबोध का पवर्षय सूय शकी ककरणें िो र्ाती िैं।[1072] यथाथतशा तथा र्यथाथतशा स्वयं बोध से िी सम्बन्ध रखती िैं।'[1073] कभी-कभी यि किा र्ाता िै कक केवल भुतत िी स्वतः प्रर्ाण िैं, और प्रत्यक्ष तथा अनुर्ान दोनों र्ें िी रर् का रिना सम्भव िै और इसभलए इनकी पुजष्ट की आवश्यकता िोती िै।'[1074] यथाथतशा की परख 'अथकशियाकाररत्व' (अथात्श ्काय शभसद्ध करने की क्षर्ता) िै। इसके अततररक्त, िर्ारा बोध-ग्रिण िर्ारे अिंकार अथवा तनर्ी प्रयोर्न की अपेक्षा करता िै। संसार का अपने से भभन्न तनरपेक्ष ज्ञान प्राप्त करना कहठन िै। र्ीव अपनी िी एकान्त चेतना के अन्दर बद्ध िै, और उससे परे यथाथतशा के ज्ञान को प्राप्त निीं ंकर सकता। पररणार् यि तनकला कक प्रत्येक लौकककक ज्ञान एक र्ुख्य त्रुहट से दूपूर्षत िै। प्रत्येक बोध जसर्ें पुरुर्ष का सम्बन्ध िै उसे ेआभ्यन्तर इजन्द्रय के साथ सजम्र्धश्रत कर देता िै। बुद्धध की छाया रै्से िी पुरुर्ष पर पडती िै वैसे िी पुरुर्ष ऐसा प्रतीत िोता िै कक वि ज्ञानसम्पन्न िै।[1075]

15. सांख्य की ज्ञान-सम्बन्धी प्रकल्पना पर कुछ आलोचनात्र्क पवचार

सांख्य के तत्त्वज्ञान के सर्ालोचनात्र्क र्ूल्यांकन को ककसी आगार्ी अध्याय के भलए स्थापपत रखते े िुए, यिां ंिर् सांख्य की ज्ञानपवर्षयक प्रकल्पना के कुछ आश्चयर्शनक दोर्षों पर संक र्ें दृजष्टपात करेंगे।'[1076] इस तथ्य के आधार पर कक इस आनुभपवक र्गत् ्र्ें व्यजक्त प्रस्तुत सार्ग्री को लेकर िी चलता िै, सांख्य का तकश िै कक पवर्षयी तथा पवर्षय दोनों का स्वतन्त्र अजस्तत्व िै। रै्साकक िर् न्याय की ज्ञानपवर्षयक प्रकल्पना के पववेचेन

1072 प्रभाचद्र इसकी आलोचना इस आधार पर करता िै कक यि यथाथ शतथा अययाथ शबोध के भेद को नष्ट कर देता िै।

1073 नैय्यातयक इस आधार पर इस र्त की आलोचना करता िै कक यि यहद बोध आभ्यन्तर रूप से अवद्याथ शिोते ेतो िर् काय शन कर सकते। और यहद वे आभ्यन्तर रूप र्ें यथाथ शिैं तो िर् रांत बोधों का. र्ो तथ्य िै, कोई कारण निींबता सकते।

1074 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1: 147; और देणखए। 36, 77, 83, 154, 2: 20, 22, 9:15, 80, 4: 22 ।

1075 तत्त्वकौर्ुदी, 5।

1076 सांख्य तथा काण्ट द्वारा प्रततपाहदत ज्ञान-पवर्षयक प्रकल्पनाओं र्ें कुछ-कुछ सादृश्य िै। दोनों र्ें िो इस प्रपंचर्य र्गत् ् का तनर्ाणश अतीजन्द्रय पवर्षयी (पुरुर्ष) तथा पवर्षय प्रकृतत के सियोग से िुआ िै। दोनों से परलाक र्ें आत्र्ाओंकी स्वाधीनता को र्ानते िैं और (प्रकृतत) के अजस्तत्व को स्वीकार करते िैं, क्योंकक पवर्षयी अपनी तनजष्ियता के कारण अपनी संवेदनाओंको उत्पन्न निींकर सकते। दोनों िी का र्त िै कक ईश्या का अजस्तत्व भसद्ध निींककया र्ा सकता। अन्य पक्षों र्ें दोनों के प्रबल र्तभेद भी िैं।

भारतीय दर्नश-2 273 र्ें देख आए िैं, पवरुद्ध पवयतों और पवरुद्ध पवर्षय भर्थ्या अरूतभशाव िैं, जर्नका उस रूत शअनुभव के अततररक्त

जसर्ें वे कावं ंकरते िैं, और कोई अथ शर्निीं। र्ब सांख्य अनुभव के रूत शएकत्व को पवर्षयी तथा पवश्व इन दो अंर्ों र्ें पवभक्त कर देता िै और उर्न्िें काल्पतनक रूप र्ें तनरपेक्ष बना देता िै, तो यि अनुभवरूप तथ्य का कारण र्निींबता सकता। र्ब पुरुर्ष को पवरुद्ध चैतन्य रूप, एक म्यागी प्रकार् र्ाना गया, र्ो सब ज्ञेय पदाथों को प्रकाभर्त करता िै और प्रकृतत का चैतन्य का पवरोधों तथा सवथशा पवर्ातीय र्ाना गया, तो प्रकृतत कभी भी पुरुर्ष का पवर्षय र्निींबन सकती। नाख्य उस खाई को र्ो उसने पवर्षयी और पवर्षय के बीच खोद दी िै कभी भी पार र्निीं ं कर सकता। तनकट जस्थतत, प्रततबबम्ब और इसी प्रकार के अलंकार केवल कृबत्रर् उपाय िैं, र्ो केवल काल्पतनक लोगों की िी धचककत्सा कर सकते िैं। यहद पुरुर्ष और प्रकृतत ठीक उसी रूप र्ें िैं, र्ैसाकक सांख्य उर्न्िें र्ानता िै, तो

पुरुर्ष कभी भी प्रकृतत का ज्ञान प्राप्त र्निींकर सकता। पुरुर्ष यि कभी र्निींप्रकट कर सकता कक उसके अपने चैतन्य र्ें िुए पररवतनश, जर्नको बुद्धध के रूपान्तरों का प्रततपवम्ब किा र्ाता िै, ककस प्रकार सम्पन्न िोते िैं। सांख्य का किना िै कक र्ब बुद्धध का रूपान्तर िोता िै तो इस रूपान्तर का प्रततबबम्ब पुरुर्ष के चैतन्य र्ें पडता िै। यहद केवल तकश के भलए प्रततपवम्ब की इस प्रकल्पना को यथाथ शभी र्ान लें, तो क्या इस प्रकार र्नोवैज्ञातनक पवर्षतय-पवज्ञानवाद के पार र्ें र्निींकडे र्ाते? े प्रततबबम्ब को ग्रिण करना तथा एक ऐसी यथाथतशा का प्रत्यक्ष ज्ञान र्ो केवल र्ानभसक र्निीं ंिै, एक बात र्निीं। बाह्य पदाथ शतथा आभ्यन्ता पवचार र्ें क्या सम्बन्ध िै? यहद दोनों र्ें कायकशारण-सम्बन्ध िै तो दोनों र्ें र्ो तनतान्त पवरोध िै उसका क्या बनेगा? क्या प्रत्यक्ष ज्ञान कभी भी केवल चैतन्य का एक पररवतनश िोता िै। क्या यि सदा पदाथ शकी अभभज्ञता र्निीं? यहद िर् अभभज्ञता तथा पदाथ शको दो भभन्न-भभन्न यथाथसशिाएंर्ान लें तो क्या िर् प्रर्ाणीकृत अनुभव से दूर र्निींचलेर्ाते? े यहद पुरुर्ष और प्रकृतत एक-दूसूरे सेतनतान्त असम्बद्ध िैं, तो िर् चैतन्यपूण शघटना अथवा भौततक प्रकिया की भी व्याख्या र्निींकर सकते। यि तनश्चय िी एक प्रसंगदोघ िै। ककन्तुसांख्य अपनी इस असन्तोर्षर्नक जस्थतत को अनेको अलंकार तथा असंगंतताया प्रस्तुत करके तछपाता िै। र्ब पवर्षयी और पवर्षय एक-दूसूरे के सम्पकश र्ें आते िैं तो किा र्ाता िै कक परस्पर गुणों का प्रततबबम्बीकरण िोता िै, तभी गुणों का संर्िण भी िोता िै। र्ब तक पवर्षयी और पवर्षय एक-दूसूरे के सर्ातीय न िों. एक-दूसूरे को प्रततबबजम्बत कैसे ेकर सकते िैं? बुद्धध, र्ो र्ड पदाथ शिै पुरुर्ष को कैसे े प्रततबबजम्बत कर सकती िै? और तनराकार पुरुर्ष, र्ो सतत द्रष्टा िै, बुद्धध के अन्दर ककस प्रकार प्रततबबजम्बत िो सकता िै, क्योंकक बुद्धध तो पररवतनशर्ील िै। इसीभलए दोनों स्वभाव र्ें परस्पर सवथशा भभन्न र्निींिो सकते। योगसूत्र के पवभूततपाद र्ें अजन्तर् सूत्र र्ें कक र्ब बुद्धध भी इतनी पवरुद्ध िो र्ाती िै िोती िै।[1077] पवरुद्ध बुद्धध पुरुर्ष को बंधंन र्ें डालनेका कारण र्निींबनती, और बुद्धध के पवनष्ट िोनेसे पूव शपुरुर्ष का प्रततबबंबं पवरुद्ध बुद्धध के अन्दर पडता िै। बुद्धध के द्वारा पुरुर्ष और प्रकृतत का सम्पूण शज्ञान तथा उनके परस्पर भेदे का भी ज्ञान सम्भव िोता िै । र्ब तक बुद्धध स्वाथपशरक उद्देश्यों तथा पवर्ेर्ष-पवर्ेर्ष प्रयोर्नों से रंजर्त रिती िै, तब तक िर् सत्य को र्निींर्ान सकते।

[1077] सत्त्वत्पुरुर्षयोः र्ुद्धधसाम्ये कैवल्यर् ्।

सांख्य भसद्धान्त के अनुसार, ज्ञानरूपी तथ्य की व्याख्या र्निंकी र्ा सकती, क्योंकक ज्ञान पवर्षयी और पवर्षय के सम्बन्ध का नार् िै। सांख्य स्वीकार करता िै कक पवर्षय (पदाथ)श ज्ञात िोने के भलए पवर्षयी पर तनभरश करता िै, और पवर्षयी को र्ानने के भलए पवर्षय (पदाथ)श की आवश्यकता िै। दूसूरे ब्दों र्ें, यहद दोनों का संश्लेर्षण न िो तो ज्ञान िो र्निंसकता। पवर्षयी अपनेको पूण शरूप र्ें र्निंर्ान सकता र्ब तक कक वि पवर्षय को पूण शरूप र्ें न र्ान ले। और यि तब तक पवर्षय (पदाथ)श को र्निंर्ान सकता र्ब तक कक पवर्षय पवर्षयी द्वारा व्यक्त न कर हदया र्ाए। इस प्रकार दोनों का सम्बन्ध क्या आवश्यक र्निंि? दोनों एक-दूसूरे के भलए बाह्य र्निं ंिो सकते। बाह्यता की भावना उसी अवस्था र्ें उत्पन्न िोती िै र्बकक िर् इसकी व्याख्या के भलए अनुभवरूपी तथ्य के परे र्ाते िैं।

चैतन्य के तत्त्व का प्रत्यक्षज्ञान अपने-आप र्ें कभी र्निंिोता। इसका ज्ञान द्वारा अनुर्ान ककया र्ाता ि। इसे ेपवरुद्ध अभभज्ञता किा र्ाता िै। ज्ञान के सावभशौर् तत्त्व को िी अरूूत शरूप र्ें पुरुर्ष किा गया िै, अथवा यि ऐसा चैतन्य िै जर्सका कोई आकार र्निं, कोई गुण र्निं और जर्सर्ें कोई गतत र्निं िै। इसे ेपवरुद्ध प्रर्ाता (पवर्षयी) बताया गया िै। चैतन्य के अन्तस्तत्त्व, र्ो सदा घटते-बढ़ते ेरिते िैं, पदाथ-शर्गत् ्से आते िैं, और यि पदाथ-शर्गत् ्ऐसी एक प्रकार की र्ौभलक एकता िै जर्सका स्वभाव िी पररवतनशर्ीलता िै। सर्स्त पवर्षय (प्रर्ेय) भौततक िैं, जर्नके अन्दर इजन्द्रय सार्ग्री और र्ानभसक अवस्थाएं ंभी सजम्र्भलत िैं र्ो अपनेस्वरूप र्ें पररभर्त ि। ये आती-र्ाती रिती िैऔर बाह्य वस्तुओं की प्रकृतत र्ात्र िैं, यद्यपप इनका तनर्ाणश सूक्ष्र् सार्ग्री से िुआ िै। यद्यपप बुद्धधगत पररवतनश उसी वग शर्ें आते िैं जर्सर्ें संसार की अन्य वस्तुएं आती िैं, तो भी पुरुर्ष बुद्धध को प्रकाभर्त करता िै क्योंकक बुद्धध अत्यन्त सूक्ष्र् स्वरूप की िै और उसर्ें सत्त्वगुण प्रचुर र्ात्रा र्ें िैं। प्रकृतत के अन्य पदाथों की अपेक्षा बुद्धध पुरुर्ष के प्रकार को प्रततबबजम्बत करने के भलए अधधक अनुकूल िै।'[1078] र्िां ंतक ज्ञान का सम्बन्ध िै, िर् अन्य वस्तुओं का ज्ञान बुद्धधगत पररवतनशों अथवा र्नः सार्ग्री के द्वारा िी प्राप्त करते िैं। ज्ञान की प्रत्येक किया के दो अंर् िोते िैं-एक चैतन्यरूपी तत्त्व, र्ो इसे ेप्रकाभर्त करता िै और दूसूरा बुद्धध का पररवतततश रूप। बुद्धध अपने-आप र्ें तो अचेतन िै ककन्तु ज्यों िी पुरुर्ष द्वारा प्रकाभर्त िोती िै, त्यों िी चैतन्य का अन्तस्तत्त्व िो र्ाती िै। बुद्धध की गततयां ंअपने-आप र्ें अचेतन िैं ककन्तु पुरुर्ष के साथ सम्बन्ध िो र्ानेसे उर्न्िें व्यजक्त के संगतअनुभव र्ान भलया र्ाता िै। अनुभव के अपनेअन्दर दो तत्त्व िैं, जर्नर्ें से एक तनरन्तर रिनेवाला तथा दूसूरा पररवतनशर्ील िै। िर् दोनों को पृथक् र्निं ंकर सकते और ऐसा तकश उपजस्थत र्निं ं कर सकते कक दोनों का पृथक् अजस्तत्व िै और केवल अनुभव र्ें आकर वे एकत्र िो र्ातेिैं। इस प्रकार की धारणा बनाना कक प्रर्ाता और प्रर्ेय अपने-आप र्ें पूण शिैं, सत्यरूपी बबना र्ोड के वस्त्र को फाड देना िोगा क्योंकक इस प्रकार िर् उसके पवभभन्न घटकों को पूण शइकाई के पवरोध र्ें खडा कर देते िैं र्बकक वे उस इकाई के अतनवाय शअंग

[1078] र्ूत शद्रव्य र्ें पुर् और जर्क्त, र्ो तर्ोगुण तथा रर्ोगुण के प्रततरूप िैं, प्रधान लक्षण िैं। बुद्धध र्ें तर्ोगुण सबसे न्यून ि और सत्वगुण सबसे अधधक िै, और इसभलए इसके अन्दर पारदर्कश का गुण िै । यहद बुद्धध के अन्दर केवल सत्व और रर्स गुण के िी अवयव रितेतो वि एक िी सर्य र्ें सर्स्त पदाथो को प्रकाभर्त कर र्िां-र्िां से तर्ोगुण दूरू िो र्ाता िै । एक अथ शर्ें, बुद्धध अपनेअन्दर सर्स्त ज्ञान को क्षर्ता के रूप र्ें तनहित ककए रिती िै । पररणार्न का सर्स्त िर् वस्तुत: अन्धकार के आवरण के उठ र्ाने पर िी आधश्रत िै ।

 िै। यहद पुरुर्ष आत्र्ा िै और प्रकृतत अनात्र् िै तो पाररभापर्षक दृजष्ट से भी परस्पर ये पवरुद्ध िैं और इनके बीच

कोई सम्पकश निीं िो सकता, और सांख्य र्ो इनके पारस्पररक सम्बन्ध को यन्त्रवत् बतलाता िै, सो ठीक निीं।

एक यन्त्रवत् सम्बन्ध इस पवर्षय का उपलक्षण िै कक चैतन्य के पवर्षयी तथा पवर्षय केवल संख्या की दृजष्ट से िी निीं, बजल्क स्वतः पूणरूशप से एक-दूसूरे के अनाधश्रत तथा परस्पर भभन्न िैं। बुद्धध के याजन्त्रक रूपान्तर र्ानो र्ादू के बल से चेतनता के प्रकार् सेप्रकाभर्त िो र्ाते िैं। इस पवर्षय र्ें िर्ें चेतनतायुक्त ज्ञान का कोई सर्ाधान निींभर्लता।' याजन्त्रक रूपान्ता के अवसर पर चेतनता का उदय तक पवस्र्यकारक रिस्य िै ककन्तु यि सर्स्या िर्ारी अपनी िी बनाई िुई िै। िर्पिले तो िर् एक पवरुद्ध पवर्षयी तथा एक पवरुद्ध पवर्षय की सिा की धारणा बना लेते िैं, र्ो अनुभव के क्षेत्र से सवथशा बािर िै, और कफर उन दोनों को अनुभव के अन्दर एकत्र करने की पूरी चेष्टा करते िैं। एक अधधक सत्य दार्तशनक ज्ञान िर्ेंबताता िै कक पवर्षयी और पवर्षय का भेद चैतन्य अथवा ज्ञान के अन्दर ककया र्ाता िै, इसके बािर निीं। पवर्षयी और पवर्षय एकसाथ निींआते, ककन्तु वस्तुतः वे एक-दूसूरे से पृथृक् निींककए र्ा सकते। यहद अनुभव अपने को व्यक्त कर सकता तो यि िर्ें बताता कक पवर्षयी औ पवर्षय एकत्व रूप र्ें प्रस्तुत ककए र्ाते िैं। यहद िर् इस पवर्षय को सर्झ लें कक सर्स्त चैतन्यर्य अनुभव र्ें र्ौभलक सम्बन्ध उन अवयवों (घटकों) का सम्बन्ध िै र्ो एक ऐजन्द्रय एकता र्ें िैं, र्ो एक-दूसूरे के अन्दर ठीक वैसेिी रिते िैंर्ैसे कक ककसी र्ीपवत प्रकिया र्ें पक्ष (पद) िोते िैं, अथवा र्ो ककसी ऐसे व्यापक के अन्दर रिते िैं

र्ो दोनों के ऊपर िै यद्यपप वि दोनों से सवथशा भभन्न निीं िै, तो ज्ञान को सर्झा र्ा सकता िै। व्यापक चेतनता का र्ौभलक तथ्य सम्पूण शज्ञान की पूवकशल्पना िै। सांख्य का पुरुर्ष वस्तुतः यि व्यापक आत्र्ा िोनी चाहिए, यद्यपप नोंवैर्ज्ञातनक और आध्याजत्र्क आत्र्ा को परस्पर भर्ला देनेसे इसे अनेक र्ान भलया गया िै। तन:सन्देि प्रत्येक र्ीव के अन्दर यि पवश्वात्र्ा काय शकर रिी िै। एक अथ शर्ें, िर्ारा ज्ञान व्यापक तत्त्व की अभभव्यजक्त िै। ककन्तु, एक दूसूरे दृजष्टकोण से, यि एक पववेकपूण शप्रकिया पर तनभरश िै।[1079] जर्सको इसके अनुरूप पदाथों द्वारा बािर से उिर्ना भर्लनी चाहिए। जर्नके अन्दर बुद्धध का पवकास िुआ िै उनर्ें बुद्धध एक िी सर्ान िै, और वि सब स्थानों पर अपनेको व्यजक्तगत सीर्ाओंसे र्ुक्त करने के भलए संघर्ष शकर संस्थान के दृजष्टकोण से निीं, बजल्क पवरुद्ध पवर्षय के दृजष्टकोण से देखती िै। र्िां एक अथ शर्ें िर्ारा ज्ञान िर्ारा अपना िै, विांदूसूरे अथ शर्ें यि िर्से, र्ो इसे धारण ककए िुए िैं, स्वतन्त्र िै।

16. नीततर्ास्त्र

1079 तुलना कीजर्ए "अचेतन अिंकार से आत्र्-प्रकाभर्त आत्र्ा की अभभव्यजक्त िोती िै, यि कथन ऐसा िी िै र्ैसेकक किा र्ाए कक बुझा िुआ कोयला सूय शको अभभव्यक्त करता िै।"

र्ान्तांगार इवाहदत्यर्िंकारो
स्वयंज्योततर्षर्ात्र्ानं व्यनक्तीतत न युजक्तर्त्।

यार्ुनाचाय:श आत्र्भसद्धध, ब्रह्र्सूत्र के रार्ानुर्भाष्य 2:1, 1 से उद्‌धृत।

सांख्य दु:ुख की सावभशौभर्कता को स्वीकार करके अपने दर्नशर्ास्त्र का प्रारंभ करता ि,ै[1080] और यि दु:ख तीन प्रकार का ि:ै 'आध्याजत्र्क', अथातश ऐसा दु:ख र्ो र्नुष्य के आजत्र्क भौततक स्वरूप के कारण उत्पन्न िोता ि:ै आधधभौततक, अथातश र्ो दु:ख वाह्य र्गत के कारण उत्पन्न िो, तथा आधधदैपवक अथातश ्वि दु:ख र्ो अततप्राकृततक कारणों अथातश दैवीय र्जक्तयों से प्राप्त िुआ िो। वि दु:ख र्ो र्रीर सम्बन्धी अव्यवस्थाओं अथवा र्ानभसक अर्ांतत के कारण उत्पन्न िो, प्रथर् कोहट का दु:ख ि,ै द्पवतीय कोहट का दु:ख वि ैर्ो र्नुष्यों, पर्ुओं तथा पक्षक्षयों से प्राप्त िोता ि;ै और तृतीय कोहट के दु:ख का अजस्तत्व ग्रिों तथा पंचतत्वों के कारण ि।ै[1081] प्रत्येक व्यजक्त दु:ख को कर् करने और यथासम्भव उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न करता ि।ै ककन्तु धचककत्सार्ास्त्र र्ें तनहदशष्ट औषधधयों अथवा धर्शास्त्रों र्ें पवहित उपायों से दु:ख को र्डूल से नष्ट निीं ं ककया र्ा सकता ि।ै'[1082] वैहदक कर्कशाण्ड के अनुष्ठान से र्ुजक्त की प्राजप्त निीं िो सकती। बौद्ध तथा र्ैन र्त की भांतत, सांख्य भी इसी पवषय पर बल देता ि ैकक वैहदक कर्कशाण्डों र्ें र्िान् ्नैततक भसद्धान्तों के पवपरीत आचरण पाया र्ाता ि।ै र्ब िर् 'अजग्नष्टोर्' यज्ञ के भलए ककसी पर्ु की ित्या करते िैं तो अहिंसा के नैततक भसद्धान्त का व्याघात िोता ि।ै र्ीवित्या, भले िी यज्ञ र्ें क्यों न की र्ाए, पाप की र्ननी ि।ै इसके अततररक्त यज्ञ के अनुष्ठान से र्जस प्रकार का स्वग शप्राप्त िोता ि ैवि भी अस्थायी ि।ै स्वग शका र्ीवन तीनों गुणों से उन्र्ुक्त निीं।ि धर् शके अनुष्ठान और यज्ञ से िर् कुछ सर्य के भलए पाप को दूर कर सकते िैं, ककन्तु उससे सवथशा छुटकारा निींपाते। र्तृ्यु द्वारा भी िर् पाप से बचकर निींतनकल सकते, क्योंकक विी भाग्य र्न्र्ान्तर र्ें भी िर्ारा पीछा करता ि।ै यहद दु:ख आत्र्ा के भलए स्वाभापवक ि ैतो िर् तन:सिाय िैं; यहद वे केवल आकजस्र्क ि ैतथा अन्य ककसी वस्तु से उत्पन्न िोते िैं तो िर् दु:ख के उद्भवस्थान से अपनेको पृथक् करके दु:ख से छुटकारा पा सकते िैं।

बन्धन का सम्बन्ध प्रकृतत से ि ैऔर यि पुरुष के कारण िोता ि,ै ऐसा किा गया ि।ै "यद्यपप दु:ख के बोधरूप र्ें बन्धन तथा कियाओं के रूप र्ें भेद और अभेदे धचि या आभ्यन्तर इजन्द्रय से सम्बन्ध रखते िैं, तो भी पुरुष का सुख अथवा दु:ख केवल उसके अन्दर पडेदु:ख के प्रततबबम्बरूप र्ें ि।ै"[1083] पुरुष का बन्धन एक भर्थ्या पवचार'[1084] ि,ै और यि इसके धचि के तनकट िोनेके कारण ि।ै इसीभलए इसे े'औपाधधक' किा र्ाता ि।ै यहद दु:ख के साथ पुरुष का सम्बन्ध वास्तपवक िोता तो उसे ेदूर निीं ककया र्ा सकता था। पवज्ञानभभक्षु कूर्पुशराण से एक श्लोक उद्धतृ करता ि',ै[1085] र्जसका आर्य इस प्रकार ि ै: "यहद आत्र्ा स्वभाव से अर्ुद्ध, अर्ुधच तथा पवकारवान िोती तो वस्तुतः इसके भलए सैकैडों र्न्र्ों र्ें भी र्ोक्ष सम्भव न िो सकता।"[1086] बन्धन का कारण

1080 सांख्यप्रवचनसूत्र, 6: 6-8; योगसूत्र, 2: 15।

1081 तत्त्वकौर्ुदी, 1।

1082 सांख्यकाररका, 2,

1083 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1:58।

1084 वाङ्र्ात्र् ्सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 1 : 58।

1085 2: 2, 12 ।

1086 यद्यात्र्ा र्भलनोऽस्वच्छो पवकारी स्यात्स्वभावतः ।
न हि तस्य भवेन्र्ुजक्तर्न्र्ान्तरर्तैरपप ॥ (सांख्यप्रवचनभाष्य ,1/7)

काल अथवा देर्, र्ीरधारण अथवा कर् शर्नर्िीं।'[1087] ये सब अनात्र् के साथ सम्बन्ध रखते िैं। ककसी एक वस्तु का गुण दूसूरी वस्तु के अन्दर पररवतनश निींउत्पन्न कर सकता, क्योंकक उस अवस्था र्ें या तो सभी को सुखानुभव िोगा या सब दुःख का अनुभव करेंगे।'[1088] प्रकृतत का पुरुर्ष के साथ संयोग िोने से िी बन्धन की सृजृष्ट िोती िै, पुरुप स्वभाव से तनत्य तथा रुद्ध िै, ज्ञानस्वरूप तथा बन्धनरहित िै।'[1089] प्रकृतत की केवल उपजस्थतत िी अनुभव के कारण निीं, क्योंकक ऐसा र्ानने से रुक्तात्र्ाओंको भी अनुभव िो सकेगा, बजल्क इसका कारण िै- "अनुभव का पवर्षय, र्ो र्ोक्ष की अवस्था र्ें पवद्यर्ान निींिोता।"[1090] अपववेक बन्धन का कारण िै। अपववेक का सम्बन्ध बुद्धध से िै, यद्यपप इसका पवर्षय िै पुरुर्ष। इससे पररणार् यि तनकला कक र्ब िर्ारा अपववेक दूरू िोगा, केवल तभी दुःख भी दूरू िोगा। ज्ञान तथा अज्ञान िी िर्ें र्ोक्ष तथा बन्धन के तनणायशक िैं।'[1091]

पुरुर्ष सदा से स्वतन्त्र िै। यि न इच्छा करताा िै, न द्वेर्ष करता िै, न र्ासन करता िै, न आज्ञापालन करता िै, न ककसी को प्रवृि करता िै, न रोकता िै। नैततक र्ीवन सूक्ष्र् र्ीर र्ें तनहित िै, र्ो प्रत्येक र्न्र् र्ें पुरुर्ष के साथ र्ाता िै। दुःख र्ारीररक र्ीवन का सार िै।"[1092] र्ब आत्र्ा अकेली रिती िै तो पपवत्र रिती िै। सवोपरर श्रेय र्ो र्ीवात्र्ा का लक्ष्य िै और जर्से ेप्राप्त करने के भलए वि पुरुर्षाथ शकरती िै, पुरुर्ष की पूणतशा प्राप्त करना िै। िर्ारी सर्स्त नैततक कियाएंअपनेअन्तःस्थ पुरुर्ष की पूणतशर अवस्था को ग्रिण करने के भलए िैं। यि संसारचि संघर्ष शऔर पररवतनश सेओत-प्रोत िै और ऐसेअवयवों से भर्लकर बना िै र्ो एक-दूसूरे के प्रतत उदासीन तथा बाह्य िैं। र्ीवात्र्ा अपने अनन्त चिों र्ें बराबर अपने साथ एकत्व-स्थापन के भलए पुरुर्षाथ शकरती रिती िै और असफल िोती रिती िै, अथात्श ्पुरुर्ष के पद को प्राप्त करनेके भलए पुरुर्षाथ शकरती िै, र्ो अनाहदकाल से अपने र्ें एक िै और पररपूण शिै और जर्सेककसी बाह्य वस्तु के साथ सम्बन्ध की आवश्यकता निीं। प्रत्येक र्ीव के अन्दर उच्चतर् पुरुर्ष पवद्यर्ान िै और इसके यथाथ शस्वरूप को ग्रिण करने के भलए अपनेसे बािर र्ानेकी आवश्यकता निीं, बजल्क केवल अपनेवास्तपवक स्वरूप से अभभज्ञ िोना िै। नैततक प्रकिया ककसी नई वस्तु का पवकास निीं, बजल्क केवल उसे ेखोर् तनकालना िै जर्से र्् भूल गए िैं। अपनेयथाथस्शवरूप र्ें लौट आनेका नार् िी र्ोक्ष िै और उस र्ुए को उतार फेंकना िै जर्सके अधीन र्ीवन ने अपनेको कर रखा िै। यि उस रांतत को

यहद दुःख पुरुर्ष के भलए स्वाभापवक िोता तो इससे छुटकारे के र्ो आदेर् हदया गया िै उसकी कोई आवश्यकता न िोती (सांख्यप्रवचनसूत्र, 1/8 - 11)

1087 सांख्यप्रवचनसूत्र, 1/2 - 16

1088 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 1/17 I

1089 1/19 I

1090 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 6: 44I

1091 सांख्यप्रवचनसूत्र, 2/7 अतनरुद्ध अपनी सांख्यप्रवचनसूत्र वृपि र्ें एक श्लोक उद्धृत आर्य यि िै : "वस्तुओं के स्वभाव र्ें बन्धन निीं और न िी उसके अभाव के कारण र्ोक्ष प्राप्त करता िै, जर्सका र्ाता िै। इन दोनों का तनर्ाणश भूल के कारण िुआ िै और इनकी कोई वास्तपवक सिा निीं" (1; 7)

1092 सांख्यकाररका, 55 I

दूरू करना ि◌ै रो ि◌रारे यथाथस्शवरूप को ि◌रारी दृजष्ट से तछपाए ि◌ुए ि◌ै। इस प्रकार का ज्ञान कक 'र्ें निीं' (नाजस्र), 'रे्रा कुछ निीं' (न र् ◌ॆ) और 'अिंभाव निीं' (निार्) ◌्, रोक्ष को प्राप्त कराता ि◌ै।'[1093]

रोक्ष ज्ञान के द्वारा प्राप्त ि◌ोता ि◌ै अवश्य, ककन्तुयि ज्ञान केवल सैद्धाजन्तक निीं। यि वि ज्ञान ि◌ै रो धर्ाचशरण तथा योग आहद से तनष्पन्न ि◌ोता ि◌ै।'[1094] यिां ◌ंबन्धन का रूूल भर्थ्या ज्ञान (पवपययश) ि◌ै, विांइस भर्थ्या ज्ञान के अन्दर केवल अपवद्या अथवा अयथाथ शबोध ि◌ी निीं, बजल्क अजरूता अथवा अिंभाव, राग अथवा इच्छा एवं द्वेर्ष और अभभतनवेर् अबवा भय भी आ रातेिं।[1095] ये अर्जक्त अथवा अयोग्यता के कारण उत्पन्न िोते ि◌ैं, रो अट्ठाईस प्रकार की ि◌ै; जनर्ें ग्यारि का सम्बन्ध इजन्द्रयों से और सत्रि का सम्बन्ध बुद्धध ते ि◌ै।'[1096] तन:स्वाथ शकर् शअप्रत्यक्ष रूप र्ें रोक्ष का साधन ि◌ै।'[1097] अपने-आप यि ि◌र्ें रोक्ष की ओर निींले राता। इसके द्वारा हदव्य लोकों र्ें न्र् भर्लता ि◌ै जर्सेरोक्ष के साथ भर्धश्रत निींकरना चाहिए।[1098] सद्पवववेक के पश्चात् ◌् रो वैराग्य ि◌ोता ि◌ै, वि उससे भभन्न ि◌ै रो उससेपूव शिोता ि◌ै।'[1099] वैराग्य अथवा अनासजक्त द्वारा ि◌ी प्रकृतत के अन्दर पवलय ि◌ोता ि◌ै।"[1100] प्रकृतत के अन्दर इस प्रकार का पवलय परर् रुजक्त निीं ◌ंि◌ै; क्योंकक इस प्रकार प्रकृतत
र्ें पवलीन ि◌ुई आत्राएंककफर से ईश्वरों अथवा प्रभुओं के रूप र्ें प्रकट ि◌ोती ि◌ैं, क्योंकक उनकी भूल ज्ञान द्वारा दग्ध निींिोती। "वि रो पूवसृशजृष्ट र्ें कारण (प्रकृतत) र्ें पवलीन ि◌ो गया था, दूसूरी सृजृष्ट र्ें आहद पुरुर्ष बनता ि◌ै, रो स्वरूप र्ें ईश्वर अथवा प्रभु ि◌ोता ि◌ै, सवज्ञश और सवकशता शिोता ि◌ै।"[1101] नैततक पुण्यकर् शचैतन्य की गिराई तक पिुंचने र्ें ि◌रारे सिायक बनतेिं, र्बकक दुष्कुर् शइस चैतन्य को अन्धकारर्य बनाते ि◌ैं। दुराचरण र्ें भलप्त रिने र्ें आत्रा अपनेको भौततक रीर र्ें अधधकाधधक फंसा लेती ि◌ै।

सांख्यसूत्र र्ें योग की पद्धतत का प्ररुख स्थान ि◌ै, यद्यपप सांख्यकाररका र्ें ऐसा निीं। ि◌र् उसी अवस्था र्ें पववेकर्य ज्ञान प्राप्त कर सकते ि◌ैंर्बकक ि◌रारी भावनाप्रधान उर्िाएं ◌ंवर् र्ें रिें तथा ि◌रारा अपनी बौद्धधक कियाओंपर तनयन्त्रण रिे। र्ब इजन्द्रयांतनयर्पूवकश काय शकरती ि◌ों और र्न राजन्त प्राप्त कर ले तो बुद्धध पारदरी ि◌ो राती ि◌ै और उसर्ें पुरुर्ष का पवरुद्ध प्रकार् प्रततबबजम्बत ि◌ोता ि◌ै। बुद्धध का आभ्यन्तर स्वरूप साजत्त्वक ि◌ै, परन्तु अपने प्राप्त ककए ि◌ुए संवेगों तथा प्रवृपियों (वासनाओं) के कारण उसका अपनी

1093 सांख्यकाररका, 64।

1094 सांख्यप्रवचनभाष्य, 3/77 और 78।

1095 सांख्यप्रवचनसूत्र और सांख्यप्रवचनभाष्य, 3: 37 ।

1096 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/38 सांख्यकाररका, 49।

1097 1/82 ,85 ।

1098 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/52

1099 तत्त्वकौरुदी, 23 र्ें वैराग्य के चार भेद बताए गए ि◌ैं।

1100 वैराग्यात् ◌्प्रकृततलयः (सांख्यकाररका, 4; सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/54)

1101 सांख्यप्रवचनभाष्य, 3:56 । वाचस्पतत नेनाना प्रकार के बन्धनों र्ें भेद ककया ि◌ै, रै्से ◌ेप्राकृततक, वैकृैततक और दक्षक्षणक । प्रथर् प्रकार के प्रकृतत को तनरपेक्ष (परर्) आत्रा रानते ि◌ैं; दूसूरे प्रकार के प्रकृततर्य भौततक पदाथों को तनरपेक्ष आत्रा सर्रू लेते ि◌ैं, तीसरे आत्रा के यथाथस्शवरूप को भूलकर सांसाररक कियाओंर्ें तनरी स्वाथों की भसद्धध के भलए भलप्त रिते ◌े िं। (तत्वकोरुदी, पृषूठ 44, तत्विरास, पृषूठ 19)।

अन्तःस्य पवरुद्धध से िास िो र्ाता िै। बाह्य पदाथों से धचि पर पडे दोर्षधचह्न ध्यान द्वारा दूरू िो र्ाते िैं।'[1102] र्ब धचि अपनी आद्यजस्थतत को कफर सेप्राप्त कर लेता िै और अपनेको इच्छाओंसे रु्क्त कर लेता िै, तो बाह्य पवर्षय प्रेर् अथवा घृणा को उत्पन्न निीं करते। र्ब बाह्य पदाथ शिर्ारे उत्तेजक हितों को उत्तेजित निीं करते े बजल्क अपनेयथाथस्शवरूप को प्रकट करते िैं, तब िर्ें आध्याजत्र्क र्ाजन्त तथा र्ान्तधचिता प्राप्त करना र्ेर्ष रि र्ाता िै। क्योंकक यि सवथशा अनासजक्त साधारण र्नुष्यों की पिुंच से बािर िै, इसभलए वे अवैयजक्ति दृजष्टकोण को कला का आश्रय लेकर पवकभसत करने का प्रयत्न करते िैं। कलापूण शरचनाएं ंप्राकृततक र्गत् ्से एक क्षणणक रु्जक्त प्रदान करने र्ें सर्थ शिोती िैं।

गुणों के भसद्धांत[1103] र्ें बिुत बडा नैततक र्ित्त्व तछपा िै। संसार के प्राणणयों का वगीकरण उनके अन्दर भभन्न-भभन्न गुणों के अनुसार ककया गया िै। देवताओं र्ें सत्त्वगुण की प्रधानता िोती िै तथा रर्स् ्और तर्स् ् न्यून अवस्था र्ें रिते िैं। र्नुष्य र्ें तर्ोगुण का अंर् देवों को अपेक्षा कर् न्यून िोता िै। पर्ुर्गत् ्र्ें सत्त्वगुण बिुत न्यून िो र्ाता िै। वनस्पतत र्गत् ्र्ें औरों की अपेक्ेषा तर्ोगुण अधधक प्रधान रिता िै। ऊपर की ओर उन्नतत करने र्ें सत्त्वगुण के अंर् का िभर्क रूप र्ें बढ़ना और तर्ोगुण का न्यून िोना सजम्भलत िै, क्योंकक दुःख रर्ोगुण का पवर्ेर्ष पररवततततश रूप िै।'[1104] वस्तुतः गुण िर्ारे र्ीवन के प्रत्येक र्ेर् र्ें भर्लते िैं, संयुक्त िोते िैं और चेष्टावान िैं। उनकी सापेक्ष क्षर्ता िी िर्ारे र्ानभसक स्वरूप की तनणायशक िोती िै। िर्ें इस र्गत् ्र्ें बिुत उच्च आध्याजत्र्क र्जक्त रखने ेवाले, आवेर्पूण शउग्र र्जक्त वाले ेऔर उदासीन िीनात्र्ा पुरुर्ष भर्लते िैं। यहद तर्ोगुण प्रधान िो तो वि तनजष्ियता को उत्पन्न करता िै तथा अज्ञान, दुबुलशता, अयोग्यता, पवश्वास के अभाव और कर् शकरने र्ें, अरुधच उत्पन्न करता िै। यि असंस्कृत, आलसी और अज्ञानी र्ानव-स्वभाव को उत्पन्न करता िै। र्जन र्नुष्यों र्ें रर्ोगुण प्रधान िोता िै, वे सािसी, बेचैन तथा कर्शील िोते िैं। सत्त्वगुण के कारण पववेचेनात्र्क, संतुभलत तथा पवचारर्ील स्वभाव का पवकास िोता िै। तीनों गुण भभन्न-भभन्न अनुपात र्ें सब र्नुष्यों र्ें पाए र्ाते िैं ककन्तु ऋपर्षयों, सन्तों तथा र्ित्र्ाओंर्ें सत्त्वगुण बिुत उच्च कोहट की पवकभसत अवस्था र्ें रिता िै। योद्धा र्ें, रार्नीततज्ञ र्ें और कर्वशीर र्जक्तर्ाली र्नुष्य र्ें रर्ोगुण बिुत उच्च कोहट की पवकभसत दर्ा र्ें रिता िै। यद्यपप ये गुण िर्ारे र्ीवन के प्रत्येक भाग र्ें अपना असर रखते िैं, तो भी अपेक्षाकृत तीनों गुण र्ीवन के तीन आवश्यक अवयवों पर, अथात्श र्न, र्ीवन तथा र्रीर पर अपना प्रभुत्व अधधक रखते े ि। सांख्य यज्ञों र्ें ककसी प्रकार का पुण्य निीं र्ानता। उसके र्त र्ें र्ूद्रों के भलए उच्च भर्क्षा का द्वार अवरुद्ध निीं। भर्क्षक ब्राह्मण िी िो यि आवश्यक निीं, बजल्क र्ो र्ुक्तात्र्ा िै विी भर्क्षक िै। योग्य भर्क्षक (गुरु) की प्राजप्त िर्ारे पूवर्शन्र् के सुकृत से िोती िै।

17. र्ोक्ष

[1102] सांख्यप्रवचनसूत्र, 3: 30; सांख्यप्रवचनभाष्य, 3:30।

[1103] र्िांसांख्य र्ें गुणों को ज्ञान-रहित र्ाना गया िै, र्िांवेदान्त के अनुसार वे बुद्धध के स्वरूप को प्रततबबजम्बत करते िैं।

[1104] दुःख रर्: पररणार्पवर्ेर्षः ।

सांख्यदर्नश र्ें र्ोक्ष केवल प्रतीततर्ात्र ि◌ै, क्योंकक बन्धन का सम्बन्ध पुरुर्ष के साथ ि◌ै ि◌ी निीं। बन्धन और र्ुजक्त पुरुर्ष और प्रकृतत के संयोग तथा पवयोग को बतलातेिैं, र्ो अभेद तथा भेदे ज्ञान का पररणार् ि◌ै।'[1105] प्रकृतत पुरुर्ष को बन्धन र्ें निीं ◌ंडालती ककन्तु नानापवध रूपों र्ें स्वयं अपनेको बन्धन र्ें डालती ि◌ै।'[1106] पुरुर्ष तो पाप और पुण्य दोनों के पवरोधों से सवचशा स्वतन्त्र ि◌ै।[1107] इस प्रकार र्िां ◌ंचन्धन प्रकृतत की ऐसे ◌ेव्यजक्त के प्रतत किया ि◌ै र्ो प्रकृतत और पुरुप का भेदज्ञान निीं ◌ंरखता, विां ◌ंर्ुजक्त प्रकृतत की ऐसेव्यजक्त के प्रतत तनजष्िया ि◌ै र्ो भेदज्ञान रखता ि◌ै।'[1108] र्ब प्रकृतत सचेष्ट रिती ि◌ै तो यि पुरुर्ष के प्रततबबम्ब को ग्रिण कर लेती ि◌ै और अपनी छाया पुरुर्ष के ऊपर डालती ि◌ै। कफर भी पुरुर्ष के अन्दर प्रतीत ि◌ोता ि◌ुआ यि पररवतनश कृबत्रर् तथा अवास्तपवक ि◌ै।'[1109] सूक्ष्र् रीर के साथ पुरुर्ष का संयोग ि◌ी संसार का कारण ि◌ै, और पुरुर्ष तथा प्रकृतत के भेदज्ञान द्वारा इस संयोग का उच्छेद करके र्ोक्ष प्राप्त ि◌ो सकता ि◌ै। र्ब प्रकृतत अपनेको पुरुर्ष से पृथक् कर लेती ि◌ै तो पुरुर्ष अनुभव करता ि◌ै कक प्रकृतत के प्रयत्नों को अपना र्ानना र्ूखतशा थी। पुरुप अपना पृथृक्त्व सदा के भलए जस्थर रखता ि◌ै और प्रकृतत कफर सेतनजष्िय ि◌ो र्ाती ि◌ै। र्ब तक वाह्य पदाथ शआत्र्ा के यथाथस्शवरूप को आवृत ककए रिते ि◌ैं तब तक र्ोक्षप्राजप्त निींिो सकती। र्ब प्रकृतत काय शकरना बन्द कर देती ि◌ै तब बुद्धध के पररवतनश भी बन्द ि◌ो र्ाते ि◌ैं और पुरुर्ष अपनेस्वाभापवक रूप र्ें आ र्ाता ि◌ै।[1110] "र्ुक्तात्र्ा के भलए प्रधान द्वारा सृजृष्टकाय शका रोक हदया र्ाना इसके अततररक्त और कुछ निीं िै कक उसके अनुभव के कारण का उत्पादन निींिोता अथात्श ◌्उसकी अपनी उपाधध का पवर्ेर्ष रूपान्तर, जर्सेर्ं किते ि◌ैं, निींिोता।"[1111] र्ुक्त ि◌ो र्ाने पर पुरुर्ष के साथ र्ें कोई निींरिता, वि अपनेअततररक्त और ककसी को निींदेखता तथा ककसी प्रकार के पवर्ातीय पवचारों को भी प्रश्रय निींदेता।[1112] यि अब प्रकृतत अथवा तज्र्न्य पदाथों पर तनभरश निींकरता, बजल्क सवधशा पृथक् एक नक्षत्र के सर्ान रिता ि◌ै, जर्से ◌ेसांसाररक धचन्ताएं बाधा निीं ◌ंदे सकतीं। यथाथ शर्ें बद्ध तथा र्ुक्त के अन्दर कोई भेद निीं ◌ं ि◌ै, क्योंकक र्ुजक्त का अथ शिै उन बाधाओंका दूर ि◌ो र्ाना र्ो पुरुर्ष के पूण शवैभव के अभभव्यक्त ि◌ोने र्ें अडचन डालती ि◌ैं।"[1113] सर्ाधध अथात्श ◌्परर्ानन्ददायक चैतन्य की अवस्था र्ें, सुर्ुषुजप्त और र्ोक्ष की अवस्था र्ें बुद्धध श ◌्ब्रह्र्रूपता र्ें रिता ि◌ै।"[1114] सुर्ुषुजप्त तथा के पररवतनशों के र्ध्य परर्ानन्ददायक चैतन्य की दृजष्ट से भी केवल बाह्य अनुभवों के अवर्ेर्ष पवद्यर्ान रिते ि◌ैं। ककन्तु र्ोक्ष की अवस्था र्ें

1105 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/72।

1106 सांख्यकाररका, 62।

1107 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/64 योगसूत्र, 2/22 ।

1108 सांख्यकाररका, 61।

1109 सांख्यप्रवचनसूत्र, 2 : 8। और तुलना कीजर्ए सांख्यप्रवचनभाष्य, 1 : 164।

1110 सांख्यप्रवचनसूत्र, 2: 34; योगसूत्र, 2: 3।

1111 र्ुक्तं प्रतत प्रधानसृष्टूटयुपरर्ो यत् ◌्तद्भोगिेतोः स्वोर्षाधधपररणार्पवर्ेर्षस्य र्न्र्ख्यस्यानुत्पादनर् ◌् (सांख्यप्रवचनभाष्य, 6: 44) ।

1112 प्रकृततपवयोगी र्ोक्षः ि◌ररभद्र।

1113 सांख्यप्रवचनसूत्र, 6/20 ।

1114 योगसूत्र, 1 : 4:।

 ये अनुपजस्थत रिते िैं।"[1115] र्ोक्ष प्राप्त िो र्ानेपर भेदकारक ज्ञान स्वयं भी पवलुप्त िो र्ाता

ै, क्योंकक यि एक

ऐसी और्षधध के सर्ान िै र्ो रोग के साथ-साथ अपने को भी बिार तनकाल देती िै। र्ोक्ष नार् दु:ख से छुटकारे का ै, सब प्रकार के र्ीवन से छुटकार का निीं। सांख्य का दृढ़ पवश्वास िै कक पुरुर्ष तनरन्तर रिता िै, और इसीभलए रि् साख्य को तनरार्ावादी निीं र्ान सकते। र्ब प्रकृतत का नाटक सर्ाप्त िो र्ाता िै तो इसके पवान अपवकभसत रूप र्ें लौट आते िैं। पुरुप द्रष्टा रिते िैं यद्यपप उनके देखनेके भलए कुछ र्ेंप निींरिता। वे ऐसे दपणश के सर्ान रि र्ाते िैं जर्नके अन्दर कुछ भी प्रततपवजम्बत िोनेको निीं। वे प्रकृतत तथा उसके दूर्षणों से पृथृक् सदास्थायी र्ुक्त अवस्था तथा कालातीत अवकार् र्ें पवर्ुद्ध प्रज्ञा के रूप र्ें पवद्यर्ान रिते िैं। र्ोक्ष की प्राजप्त पर "पुरुर्ष अपवचभलत और आत्र्संयर्ी रूप र्ें एक दर्कश की भांतत उस प्रकृतत के पवर्षय र्ें धचन्तन करता ै जर्सने अपना काय शकरना बन्द कर हदया िै।'[1116]' सांख्य के र्ुजक्त सम्बन्धी आदर् शको बौद्धों के र्ून्यतापरक आदर् शअथवा आत्र्ा के लोप[1117] से, अथवा अद्वैत भसद्धान्त के ब्रह्र् र्ें पवलीन िोने'[1118] के भाव, अथवा योगदर्नश की अलौककक भसद्धधयों'[1119] के साथ न भर्ला देना चाहिए। और न िी र्ुजक्त आनन्द की अभभव्यजक्त ै, क्योंकक पुरुर्ष सवगुशणातीत िै।[1120] धर्श्शास्त्रों के वाक्य र्ो आनन्द के पवर्षय र्ें किते िैं उनका तात्पय शयिी िै कक र्ोक्ष की अवस्था दु:ख सेछुटकारा पाने का िी नार् िै।"[1121] र्ब तक पुरुर्ष के अन्दर गुण पवद्यर्ान रिते िैं वि र्ुक्त निीं।[1122]

भेदज्ञान के उत्पन्न िो र्ानेपर प्रकृतत तुरंत िी पुरुर्ष को स्वतन्त्र निींकर देती, क्योंकक पपछले ेस्वभाव के बल के कारण कुछ और काल तक इसका काय शचलता रिता िै।[1123] िोता केवल इतना िी िै कक र्रीर इसर्ें बाधक निींरि र्ाता। प्रारब्ध कर् शके बल से र्रीर भी चलता रिता िै, यद्यपप नये कर् शसंधचत निींिोते। र्ीवन्र्ुक्त को यद्यपप अपववेके निींव्याप सकता तो भी उसके पूवसंशस्कार उसे ेर्रीर धारण करने के भलए बाध्य करते िैं।"[1124] बन्धन सेर्ुजक्त और र्रीर का चलते ेरिना-ये दोनों अवस्थाएं ंएक-दूसूरे के अनुरूप िैं (अथात्श ्परस्पर-प्रततकूल निीं ंिैं), क्योंकक उनके तनणायशक, भभन्न-भभन्न कारण िैं। र्ृतूयु के उपरान्त र्ीवन्र्ुक्त सम्पूण श

[1115] सांजख्यत्रवचनसूत्र, 5/117 ।

[1116] और देणखए सांख्यकाररका, 65।

[1117] सांख्यप्रवचनसूत्र, 5:77-79।

[1118] सांख्यप्रवटनसूत्र, 5: 81।

[1119] सांख्यप्रवचनसूत्र, 5/82 |

[1120] 5:74 ।

[1121] 5:67 ।

[1122] सांख्य का र्ोक्ष पवर्षयक र्त अरस्तू के परर्ानन्द के र्त से भभन्न निीं जर्सका रूप सब प्रकार की कियाओं से स्वतन्त्र धचन्तनर्ात्र िै।

[1123] सांख्यकाररका, 67 ।

[1124] सांख्यप्रवचनसूत्र, 3 / 82 - 85

 रोक्ष प्राप्त कर लेता ि, जर्से ि'पवदिकैवल्य' किते ि।"[1125] रीवन्रुक्त ि र्े रोक्ष के स्वरूप और उसकी प्राजप्त के
उपायों के पवर्षय र्े उपदेर् करते ि।"[1126]

यहद प्रकृतत के नाटक का अन्त िो राता ि तो पुरुर्ष कफर दर्कश निीं रि राता, क्योंकक उसके देखनेको कफर कुछ निीं रिता। तो भी ऐसा किा गया ि कक रुक्तात्रा को सर्स्त पवश्व का ज्ञान रिता ि।[1127] इस पवर्षय का ज्ञान िर्को निीं कक रुक्तात्राओं र्े परस्पर साराजर्क सम्पकश िोता ि या निीं। ऐसा प्रतीत िोता ि कक वैयजक्तकता का सवधशा लोप िो राना िी लक्ष्य ि, व्यजक्तत्व को ऊंचा उठाना लक्ष्य निीं ि। प्रकृतत तथा अन्य आत्राओं से पृथृक्त्व की सबसेउच्च अवस्था तो तनजष्यिता िी ि, जर्सर्े भावना का कोई पवश्वास अथवा कर् श की कोई चेष्टा क्षोभ उत्पन्न निींकर सकती। बिुत सम्भव ि कक इसे िरूच्छावशस्था के सरान सर्झ भलया राए। प्रर्स्तपाद सांख्य की रोक्षपवर्षयक प्रकल्पना र्े आपपि उठाता ि इस आधार पर कक प्रकृतत, रो अपने स्वभाव से िी कियारील ि, तनजष्यि निीं िरि सकती। यहद प्रकृतत ज्ञानरहित ि तो वि उस पवर्षय का ज्ञान कैसे िप्राप्त कर सकती ि कक पुरुर्ष ने सत्य का साक्षात्कार ककया या निीं? ि'[1128] यहद सांख्य के पत र्े वस्तुओं का केवल ततरोभाव िोता ि, नार् निीं िोता, तो अज्ञान तथा वासना आहद के भी पूणरूशप र्े पवनार् की कोई संभावना निीं िि। दूसूरे र्ब्दों र्े, इसकी पूरी संभावना ि कक वे रुक्तात्रा के अन्दर कफर से फूट तनकलें।'[1129]

18. परलोक-रीवन

सांख्य दोनों दराओं र्े आत्रा के अनन्त रीवन का तनजश्चत रूप र्े प्रततपादन करता ि। यहद आत्रा का रीवन अनन्त काल से न िो तो कोई कारण निींकक इसका रीवन अनन्त काल तक रि। इसभलए आत्रा अर्रा ि। िर् आत्राओं की तनत्यता को जर्तना िी अधधक स्वीकार करेंगे, ि खष्टा ईश्वर की आवश्यकता उतनी िी कर् िोगी।'[1130] सांख्य के र्तानुसार, प्रकृतत और पुरुर्ष र्े भेदे न करना िी संसार का कारण ि। यि अभेदभाव िी अन्तःकरण पर एक संस्कार छोडता ि, रो आगारी र्न्र् र्े उसी सांघाततक दोर्ष को उत्पन्न करता ि। भलंगंदि, अथवा सूक्ष्र् र्रीर, के अन्दर, रो एक स्थूल शरीर से दूसूरे स्थूल शरीर र्े तनरन्तर संर्ण करता ि। बुद्धध, अिंकार और र्न, पांचों ज्ञानेजन्द्रयां ितथा पांचों कर्ेजन्द्रयां, ि पांच तन्रात्राएं िऔर भौततक तत्त्वों के स्थूलतत्त्व पवद्यरान रिते ि, रो बीर् का काय शकरते ि और उनर्े से यि भौततक र्रीर उत्पन्न िोता ि। भौततक तत्त्वों के ये

1125 छान्दोग्य उपतनर्षद्, 8/12, 1 ।

1126 3/79

1127 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, 6/59 ।

1128 वस्तुतः उदिारण के रूप र्े, िर् देखते िैं कक उस अवस्था र्े भी र्बकक यि र्ब्द का प्रत्यक्षज्ञान करवा देती ि, यि उसी प्रत्यक्षज्ञान की ओर भी कायश करती रिती ि और इसी प्रकार यि भेदभाव करा देनेके पश्चात भी उसी उद्देश्य को लेकर काय श करती रिेगी, क्योंकक इसकी कियारीलता का स्वभाव (उक्त ज्ञान से) दूर निीं िोगा" (प्रर्स्तपादकृत पदाथधर्सर्ंग्रि पृष्ठ 7)।

1129 उदयनकृत 'पररर्ुद्धध', 2/2 13, रास्त्रदीपपका, पृष्ठ 323 से िआगे।

1130 कुछ पवचारक, रैसेरैक्टेंगाटश, सवर्शजक्त-रहित एवं अनुत्पादक ईश्वर के पक्ष र्े तकश उपजस्थत करते ि।

सूक्ष्र् भाग र्ानभसक उपकरण के भलए ऐसे िी आवश्यक िैं र्ैसे िेकक ककसी धचत्र के भलए परदा।[1131] यि सूक्ष्र् र्ीर, र्ो स्वरूप र्ें अपाधथवश िै, अपनेनानापवध संर्णि र्ें ककए गए कर्ों के प्रभावों को ग्रिण करता िै। नये र्ीर के रूप का तनधारशण यिी सूक्ष्र् र्ीर करता िै। सुख और दुखु का वास्तपवक अधधष्ठान यिी िै।'[1132] सूक्ष्र् र्ीर, पुरुर्ष से भभन्न िोनेपर भी, र्नुष्य के पवभर्ष्ट लक्षण तथा व्यजक्तत्व को बनाता िै। इसी के अन्दर संस्कार अथवा पूवप्रशवृपृियां तनहित रिती िैं। सूक्ष्र् र्ीर की तुलना नाटक के ऐसेपात्र के साथ की र्ाती िै र्ो नाना प्रकार की भूभर्काओं र्ें काय शकरता िै। इसर्ें यि र्जक्त इसभलए िै क्योंकक यि प्रकृतत के सवव्शयापकत्व गुण र्ें हिस्सा बंटाता िै। सूक्ष्र् र्ीर के साथ पुरुर्ष का संयोग दुःख का कारण भी िै और लक्षण भी िै, और यि तब तक जस्थर रिता िै र्ब तक यथाथ शअन्तदृजशष्ट प्राप्त निीं िो र्ाती। र्िां िेसूक्ष्र् र्ीर बराबर बने रिते िैं, विांर्े र्ीर िोता िै र्ृत्यु के सर्य नष्ट िो र्ाते िैं।'[1133] सूक्ष्र् र्ीर का भौततक र्ीर के साथ सम्बन्ध िी र्न्र् िै, तथा उससेपृथक् िोना र्ृत्यु िै। उन पुरुर्षों की अवस्था को छोडकर र्ो र्ोक्ष को प्राप्त कर लेतिैं, भलंगं-र्ीर का अजस्तत्व एवं पुनर्न्र् सम्पूण शर्न्वन्तर तक रिता िै, जर्सके अन्त र्ें पवश्रार् तथा साम्यावस्था की पुनरावृपृि िोती िै। ककन्तु र्ब सृजष्ट का कफर से आरम्भ िोता िै तो यि पुनः अपनेर्ाग शपर चल देता िै।

जर्नका र्ाता व पपुता के द्वारा तनसपाश

यथािर् र्ीर रूपी ढांचों र्ें प्रततष्ठापन का तनणयश भावों (प्रवृपृियों) द्वारा िोता िै, र्ो उन कर्ों के पररणार् िैं जर्नका सूक्ष्र् तथा भौततक र्ीर के बबना सम्पन्न िोना असम्भव िै।'[1134] बीर् तथा अंकुर की भांतत यि अन्योन्याश्रय-तनभरशता अनाहद िै और इसे िेदोर्ष न र्ानना चाहिए।'[1135] बुद्धध, अिंकार, सूक्ष्र् र्ीर तथा स्थूल र्ीर का पवकास एक भौततक प्रकिया िै और पररणार् भी भौततक िै, यद्यपप इनर्ें से कुछ पदाथ शइतनी

1131 सांख्यकाररका, 41। इसभलए िर् यि निींकि सकते िेकक केवल बुद्धध, अिंकार तथा र्न से िी कार् चल र्ाएगा, क्योंकक इन्िें भी एक सूक्ष्र् र्ीर के आधार िी आवश्यकता िोती िै। कुछ पवद्वानों के र्त र्ें यि वाक्य एक स्थूल र्ीर की र्ांग उपजस्थत करता िै। ककन्तु इस प्रकार की व्याख्या सन्तोर्षर्नक निीं, क्योंकक यि प्रकट तथ्य िै कक एक र्ीवन से दूसरे र्ीवन र्ें संर्णि काल र्ें सूक्ष्र् र्ीर बबना स्थूल र्ीर के भी पवद्यर्ान रिता िै। पवज्ञानभभक्षु का सुझाव िै कक एक तीसरे प्रकार का भी र्ीर िै जर्सेअधधष्ठान-र्ीर किते िैं और जर्सकी रचना भौततक तत्त्वों के सूक्ष्र् रूपों द्वारा िोती िै तथा र्ो सूक्ष्र् र्ीर को ग्रिण करता िै । (वचनभाष्य, 3/12)

1132 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3:8 ।

1133 सांख्यकाररका, 39 ।

1134 सांख्यकाररका, 52। र्िां वाचस्पतत और नारायण भलंगं र्ीर तथा भाव के परस्पर-सम्बन्ध की अनुभवकता शऔर अनुभूत पदाथों के सम्बन्ध के रूप र्ें व्याख्या करते िैं, विां पवज्ञानभभक्ष इसेबुद्धध और इसकी उपाधधयों का सम्बन्ध बताता िै।

1135 इस प्रकार सृजष्ट तीन प्रकार की िै एक, भौततक सग,श जर्सर्ें आत्र्ाएं स्थूल र्ीरों के साथ रिती िैं। इसर्ें आठ उत्कृष्ट प्राणणयों के और पांच तनम्नतर् श्रेणी के प्राणणयों के वग शिैं, र्ो र्ानवीय प्रकार के सहित, जर्सकी अलग िी एक श्रेणी िै, तीनों लोकों र्ें फैले प्राणणयों के चौदि वग शिो र्ाते िैं। दूसरी भलंगंर्ीरों की सृजष्ट (तन्र्ात्रसग)श, और तीसरी बौद्धधक सृजष्ट (प्रत्ययसग शअथवा भावसग)श जर्सके अन्दर बुद्धध की प्रवृपृियां, भावनाएं और क्षर्ताएं, जर्नके चार पवभाग उनके बोधर्जक्त को बाधा देने, अयोग्य बनाने, सन्तुष्ट करने िेतथा सम्पूण शकरने िेके कारण ककए गए िैं, अन्ततनहशित रिती िैं (सांख्यकाररका, 53; सांख्यप्रवचन सूत्र, 3: 16)।

 सूक्ष्् रचना वाले ि ैं कक साधारण इजन्द्रयों द्वारा उनका प्रत्यक्ष निीं ककया र्ा सकता। यि भौततक संघटन िी एक
र्ीपवत प्राणी, देवता, र्नुष्य अथवा पर्ु बन र्ाता िै, र्ब इसका सम्बन्ध ककसी पुरुर्ष के साथ िो र्ाता िै।

धर््शऔर अधर््शप्रकृतत की उपर्् िैं और अंतःकरण के गुण िैं।[1136] ये पवर्ेर्ष र्रीरों तथा इजन्द्रयों के तनर्ाणशर्ें र्ो र्ीपवत प्राणणयों के अनुकूल िों, अथात्् श ्पवकास की श्रेणी र्ें अपने-अपने स्थान के अनुसार िों-सियक िोते िैं। कर््शका पवधान भावों अथात्श ्बुद्धध की प्रवृपियों द्वारा काय्शकरता िै।"[1137] प्रत्येक आत्र्ा अपने र्ारीररक संघटन की अपेक्षा करती िै, और अपनेअदृष्ट के अनुसार उच्चतर् से तनम्नतर् प्राणी तक की श्रेणणयों र्ें से गुर्र सकती िै,'[1138] र्ो संख्या र्ें चौदि िैं। िर्ें एक ऐसा र्ारीररक संघटन प्राप्त िो सकता िै जर्सं ंिर्ारा र्ीवन अस्पष्ट संवेदनाओं, पर्ुओं की सिर्् प्रवृपियों अथवा वनस्पततर्गत की रूढ़ गततयों तक सीभर्त िो। वनस्पततर्गत्् ्भी अनुभव का एक क्षेत्र िै।[1139] ये सब प्रकृततर्न्य वस्तुएं अन्ततनपशवष्ट पुरुर्ष के पवकास को रोक सकती िैं ककन्तु उसे ंनष्ट निीं कर सकतीं।

19. क्या सांख्य तनरीश्वरवादी िै

िर्् देख पाए िैं कक ककस प्रकार सांख्य के रूल तत्त्वों को उपतनर्षदों तथा भगवद्गीता र्ें आदर्पशरक ईश्वरवाद के आगे ंगौण स्थान प्रदान ककया गया िै। र्िाकाव्य के दर्नश ने जर्सं ंसांख्यप्रततपाहदत पवश्व के सृजृष्ट-पवर्षयक भसद्धान्त तथा पुरुर्ष की तनतान्त तनजष्ियता की प्रकल्पना को अपना भलया, विांउसनेपुरुर्ष तथा प्रकृतत को आत्र्तनभरश यथाथसशिाओं के रूप र्ें स्वीकार निीं ंककया, बजल्क इर्न्िें एक परर्् ब्रह्र् की अवस्थाओं के रूप र्ें प्रस्तुत ककया। तो भी सांख्यदर्नश अपनेप्राचीन र्ास्त्रीय रूप र्ें ईश्वरवाद का सर्थनश निींकरता। एक परर्् आत्र्ा के सवोपरर भाव के प्रतत अपनी उपेक्षा, तथा अपवद्या के सम्बन्ध और आत्र्ा के संसार र्ें उलझे े रिने के अपनेभसद्धान्त से सांख्य िर्ें बौद्ध र्त ्रण कराता िै। यि सम्भव िै कक सांख्य का प्रयत्न व्यवजस्थत रूप र्ें इस प्रकार की घोर्षणा करनेर्ें रिा िो कक युजक्तयुक्त पद्धतत का आश्रय िर्ें आत्र्ाओं की यथाथतशा के प्रत्याख्यान की हदर्ा र्ें निींलेर्ाता।

सृजृष्टरचना-सम्बन्धी कहठनाइयों का हदग्दर्नश कराया गया िै। सर्स्त काय्शया तो ककसी स्वाथ्शको लक्ष्य र्ें रखकर ककए र्ाते िैं या उपकार की दृजष्ट से। ईश्वर, जर्सके सब स्वाथ्शपूण्श िो चुके िैं, अब और कोई स्वाथ्शनिीं ंरखता। यहद ईश्वर स्वाथर्शय उद्देश्यों अथवा इच्छाओंसे प्रभापवत िोता िै तो वि स्वतन्त्र निींि और यहद वि स्वतन्त्र िै तो वि सृजृष्टरचना-सम्बन्धी काय्शर्ें अपनेको भलप्त निींकरेगा।'[1140] यि किना कक

1136 सांख्यप्रवचन सूत्र , 5: 25; सांख्यकाररका ,13।

1137 सांख्यकाररका ,40,43, 55, भगवद्गीता ,7:12; 10:4,5 ।

1138 सांख्यकाररका ,44 ।

1139 सांख्यप्रवचन सूत्र , 5: 12 ।

1140 सांख्यप्रवयनसूत्र , 1:93-91।

ईश्वर न तो स्वतन्त्र िै, न बद्ध िी िै, तकश के सर्स्त आधार को िी भर्टा देना िोगा। संसार की रचना को दया काय शनिीं ंर्ाना र्ा सकता, क्योंकक सृजृष्ट-रचना से पूव शआत्र्ाओंको कोई दुःख निींथा, जर्ससे ेछुटकारा पाने की उन्िें आवश्यकता िो। यहद ईश्वर केवल र्ुभ कार्ना से िी प्रेररत िो तो उसके द्वारा उत्पन्न सभी प्राणी सुखी िोने चाहिए थे। यहद यि किा र्ाता िै कक आचरण के भेदें के अनुसार ईश्वर को र्नुष्यों के साथ भभन्न-भभन्न बतावश करना िोता िै, तो इसका उिर यि िै कक कर्पशवधान िी कायकशारी भसद्धान्त िुआ और ईश्वर की सियता अनावश्यक िै।'[1141] कफर भौततक पदाथ शका उद्भव एक अभौततक आत्र्ा से निीं िो सकता। पुरुषों का तनत्यर्ीवन ईश्वर की अनन्तता तथा उसके कतृत्शव के साथ संगतत निींरखता। ईश्वरवाद अर्रत्व र्ें आस्था को दुबुलश करता िुआ प्रतीत िोता िै; क्योंकक यहद आत्र्ाओंका स्रष्टा कोई िै, तो आत्र्ाएं अनाहद न िुई और तब आत्र्ाएं अर्र भी निींिो सकतीं। सांख्य का, र्ो ज्ञान की कडी सीर्ाओंके िी अन्दर रिने के भलए उत्सुक िै, यि र्त िै कक ईश्वर की यथाथतशा ताककशक प्रर्ाणों द्वारा भसद्ध निींकी र्ा सकती।'[1142] ईश्वर के पक्ष र्ें कोई युजक्तयुक्त प्रर्ाण, अथवा आनुर्ातनक ज्ञान अथवा श्रुततपवहित प्रर्ाण निीं। सांख्य इन अथों र्ें अनीश्वरवादी निीं िैकक वि यि भसद्ध करता िै कक ईश्वर निीं। यि केवल यिी प्रदभर्तश करता िै कक ईश्वर िै-ऐसी कल्पना कानेको कोई िेतु निीं ंिै।'[1143] धर्शास्त्रों र्ें र्ो ईश्वरवादपरक वाक्य आते िैं, वे वस्तुतः र्ुक्तात्र्ाओं की स्तुततयां िैं।'[1144]

वैहदक ऋचाओंके पुरातन देवता िेतुवादी सांख्य की छत्रछाया र्ें रि सकते िैं ककन्न वे स्वरूप र्ें तनत्य निीं। सांख्य एक व्यवस्थापक ईश्वर की कल्पना को स्वीकार करता िै, र्ो सृजृष्ट रचनाकाल र्ें प्रकृतत के भिर्क पवकासों की व्यवस्था करता िै। भर्व, पवष्णु ुइत्याहद केवल प्रतीततरूप र्ानेगए िैं।'[1145] सांख्य एक ऐसे ईश्वर को र्ानता िै र्ो पिलेप्रकृतत के अन्दर लीन था और पीछे से प्रकट िुआ।'[1146] आत्र्ाएं, र्ो र्ित् ्आहद के प्रतत अनासजक्त भाव के अभ्यास द्वारा प्रकृतत र्ें लीन िो र्ाती िैं, सवज्ञश तथा सवकशता शकिी र्ाती िैं।[1147] ये वे लक्षण िैं जर्न्िें िर् साधारणतया ईश्वर के बताते िैं, ककन्तु क्योंकक सांख्य के र्त र्ें प्रकृतत सदा दूसूरे के र्ासन र्ें रिती िै,[1148] इसभलए ये देवता स्वतन्त्र निीं।

प्रकृतत का अचेतन ककन्तु अन्तःस्थ िेतुपवज्ञान र्ो िर्ें लीब्नीर् के पूवजशस्थत सार्ंर्स्य के भसद्धान्त का स्र्रण कराता िै, सांख्यदर्नश र्ें एक कहठन सर्स्या िै। यि कैसे िोता िै कक प्रकृतत का पवकास आत्र्ाओं की

1141 सांख्यप्रवचन सूत्र, 5:1 । देणखए तत्त्वकौर्ुदी, 57।

1142 सांख्यप्रवचन सूत्र, 5: 12। तुलना कीजर्ए डापवनश 'सब वस्तुओंके प्रारम्भ-सम्बन्धी रिस्य का िर् उद्घाटन निींकर सकते,े और कर्-से-कर् र्ें तो अवश्य अज्ञानी बने ेरिनेर्ें िी सन्तोर्ष-लाभ करूंगा' (लाइफ एण्ड लेटस शआफ चाल्स शडापवनश)।

1143 वि यि निींकिता 'ईश्वराभावात्' ् ककन्तु केवल यिी किता िै- "ईश्वराभसद्धेः।

1144 सांख्यप्रवचनसूत्रं,ं 1, 95; 3: 54-561।

1145 सांख्यप्रवचनसूत्र, 3:57 ।

1146 प्रकृततलीनस्य न्येश्वरस्य भसद्धधः (सांख्यप्रवचनसूत्र, 3/57)

1147 सवपशवत् ्सवकशताश, (सांख्यप्रवचनसूत्र, 9: 56)।

1148 सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपि, और सांख्य प्रवचनभाष्य, 3 55, और योगसूत्र, 4 / (3)

आवश्यकताओंके अनुकूल ो ऱाता ै? पुरुर्ष के बबना प्रकृतत तनःसिाय ै, और न ी पुरुर्ष प्रकृतत की सियता के बबना ऱोक्ष प्राप्त कर सकता ै। दोनों को एक-दूसूरे से तनतान्त पवलक्षण ऱानना कहठन ै। लंगडेऔर अंधेका दृष्टान्त असंगत ै, क्योंकक वे दोनों चेतन ैं और परस्पर परार्् शकर सकते ैं परन्तु प्रकृतत चेतन निीं ंै।[1149] कफर, अन्त र्ें केवल पुरुर्ष ी ऱोक्ष प्राप्त करता ै ऐसा किा गया ै, प्रकृतत निीं। चुम्बक तथा लोि के टुकडे की उपऱा भी यिांठीक निींबैठ सकती, क्योंकक पुरुर्ष और प्रकृतत के साजन्नध्य का स्थातयत्व ोनेसे पवकास का भी कभी अन्त न ोगा। प्रधान ज्ञानपविीन ै और पुरुर्ष उदासीन ै, और उर्न्े परस्पर सम्बद्ध करने वाला कोई तीसरा तत्त्व निींि। ऐसी अवस्था र्ें दोनों का सम्बन्ध निींिो सकता।"[1150] उस नटी की उपऱा ऱो दर्कशों के आगे ेप्रदर्नश करके अपना नाच बन्द कर देती ै, सम्यक् कल्पना प्रतीत निींिोती। पुरुर्ष भूल से प्रकृतत के साथ सजम्र्धश्रत ो ऱाता ै, और उसके प्रततकार का उपाय इस गडबड को और अधधक गडबडाता प्रतीत ोता ै। किा ऱाता ै कक बुराई को उसका पूण शउपभोग करके दूरू करना ै। पुरुर्ष को ऱोक्ष तब ोगा र्ब इसे ेप्रकृतत के कायकशलाप से सवथशा पवरजक्त ो ऱाएगी।

परवती पवचारकों ने पुरुर्ष की आवश्कताओंतथा प्रकृतत के कर्ों के इस सार्ंस्य की व्याख्या करना असम्भव देखा, और इसभलए बाधाओं को दूरू करके प्रकृतत के पवकास के ऱागप्रशदर्नश का काय शईश्वर के सुपुदश ककया।'[1151] इस प्रकार उर्न्िोंने उक्त दर्नश की ऱौभलक योर्ना को उत्कृष्ट बनाया। सांख्य की ऱांग एक ऐसे सवग्रशिी ऱीवन के भलए ै ऱो भभन्न-भभन्न पुरुर्षों को उनके अपने-अपनेसंस्थान सुपुदश करता ै। वाचस्पतत का र्त ै कक प्रकृतत के पवकास का संचांलन एक सवज्ञश आत्ऱा द्वारा ोता ै। पवज्ञानभभक्षु ुका पवचार ै कक कपपल द्वारा ईश्वर का तनर्ेषेध एक प्रकार का तनयार्क भसद्धान्त ै जर्स पर उसनेइसभलए आग्रि ककया कक जर्ससे े र्नुष्यों को एक तनत्य ईश्वर की ओर अत्यधधक ध्यान लगाना छोडने के भलए फुसलाया ऱा सके, क्योंकक ईश्वर की ओर अत्यधधक ध्यान लगाना सत्य तथा भेदपवधायक ज्ञान के ऱाग शर्ें बाधक ोता ै। अनीश्वरवाद को भी वि एक अनावश्यक रूप से अर्याहशदत दावा (प्रौहढ़वाद) ऱानता ै, यि हदखाने ेके भलए कक सांख्यदर्नश को एक ईश्वरवादी प्रकल्पना की आवश्यकता निींि। किभी-कभी वि सांख्य के अनीश्वरवाद को प्रचभलत तर्ों के प्रतत ररयायत बताता ै[1152] और बिुत ी भोलेपन से यि भी सुझाव देता ै कक तनरीश्वरवाद का आपवष्कार इस तनजश्चत उद्देश्य को लेकर ककया गया ै कक दुरुर्नश पुरुर्षों को भरऱाया ऱा सके, जर्ससे ेकक वे यथाथ शज्ञान को प्राप्त करने से दूरू रिें।[1153] ईश्वर के पवर्षय र्ें सांख्य के भाव को व्याख्या कर डालने का भी प्रयत्न करता ै। अनेक स्थानों पर'[1154] पवज्ञानभभक्षु सांख्य तथा वेदान्त के पवचारों र्ें परस्पर सर्न्वय स्थापपत करने का प्रयत्न

1149 ऱांकरभाष्य, 2:2, 7।

1150 ऱांकरभाष्य, 2/2.7

1151 याचस्पतत, पवज्ञानभभक्षु और नागेर्। तुलना कीजए वाचस्पततः "ईश्वरस्यापप धर्ाधशधष्ठानाथश प्रततवन्धापनय एवं व्यापारः" (तत्त्ववैऱारदी, 4/3) ।

1152 अभ्युपगर्वाद (सांख्यप्रवचनभाष्य-प्रस्तावना)।

1153 पापपनां ज्ञानप्रततबन्धाथर् ्।

1154 सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/122 5: 61, 65; 6/52, 66

करता िै।[1155] वि एक व्यापक पुरुर्ष की यथाथतशा को स्वीकार करता िै। "वि, सवोपरर, अथात् श ्व्यापक सावभशौर्, सारूहिक पुरुर्ष िै, सब कुछ र्ानने तथा सब कुछ करने की र्जक्त रखता िै, और चुम्बक पत्थर के सर्ान केवल साजन्नध्य के कारण गतत देनेवाला िै।"[1156] तो भी सांख्य तत्त्वज्ञान-पवर्षयक र्ौभलक सर्स्या को दृजष्ट से ओझल कर देता िै, क्योंकक यि पयाप्शत रूप र्ें सवागीण निीं ंिै। इसके सर्क्ष इस प्रकार का एक रर्णूर् शपवचार रि कक उक्त जर्ज्ञासा का इसके अपनेप्रयोर्न के साथ कोई सम्बन्ध निीं।

20. सार्ान्य रूल्यांकन

दार्तशनक पवचारधारा के इततिास का पवद्याथी र्ौभलक सर्स्याओंकी पुनरावृपि को तनरन्तर िी पाता िै, भले िी उनके कथन पवपवध प्रकार के क्यों न िों और भले िी उनके रचतयताओंका काल तथा स्थान एक-दूसरे से ककतना िी भभन्न क्यों न िो। सर्स्याओं र्ें पररवतनश निीं ंिोता, सर्ाधानों के अन्दर भी उतना पररवतनश निीं िोता, जर्तना कक उनके प्रयोग र्ें िोता िै। र्ब पवकास की वैज्ञातनक प्रकल्पना र्ीवन के अत्यन्त अपररपक्व अंकुर से लेके पूण शपवकभसत पप्प सर्ान पुरुर्ष तक पवकास की एक सुव्यवजस्थत प्रकिया की खोर् करती िै, तो वि प्रकल्पना ऐसी निीं जर्सेनया सर्झा र्ा सके, क्योंकक यि इतनी िी पुरातन िै जर्तनी कक भारत र्ें उपतनर्षदें अथवा यूनान र्ें अनाजक्सर्ाण्डर, हिरेजक्लटस और एजम्पडोक्लोर िैं। ककन्तु इस पवर्षय र्ें, र्ो नवीन िै वि पवकास के ब्यौरों का परीक्षणात्र्क अध्ययन ग आधुतुनक पवज्ञान द्वारा उक्त प्रकल्पना का प्रर्ाणीकृत ककया र्ाना िै। सांख्य की प्रकल्पना र्नुष्य के र्ानभसक अनुभव की आवश्यकता को कुछ सन्तोर्ष प्रदान करती िै, एक ऐसा दार्तशनक पवचार िै र्ो अधधकतर तत्त्वपवज्ञान-पवर्षयक प्रवृपियों के सांचेके प्रभाव से प्राप्त िुआ िै, न कक पदाथों के अजस्तत्व-सम्बन्धी अध्यवेक्षण से उत्पन्न वैज्ञातनक प्रेरणा द्वारा भर्ला िै। ककन्तु सांख्य का दार्तशनक र्त, र्ो प्रकृतत और पुरुर्ष के द्वैतभाव तथा अनन्त पुरुयों के अनेकत्व का प्रततपादन करता िै और जर्सके अनुसार प्रत्येक पुरुर्ष असीभर्त िै और तो भी अन्यों की असीभर्तता का व्याघात निींकरता और उनसे ेबाह्य तथा स्वतन्त्र अजस्तत्व रखता िै, दर्नशर्ास्त्र की र्ुख्य सर्स्या का सन्तोर्षप्रद सर्ाधान निींर्ाना र्ा सकता। द्वैतवादपरक यथाथवशाद भर्थ्या तत्त्वपवज्ञान का पररणार् िै। िर्ारे भलए प्रारम्भ र्ें िी यि सर्झ लेना ठीक िोगा कक पुरुर्ष और प्रकृतत अनुभवर्न्य तथ्य निीं, बजल्क अनुभव से परे िी इस प्रकार की अरूतभशावात्र्क सिाएं ंिैं जर्न्िेंइस सर्स्या की व्याख्या के भलए र्ान भलया गया िै।

सांख्य की पुरुर्ष-पवर्षयक प्रकल्पना का तात्पय शइस र्ौभलक तथ्य से िै कक चैतन्य गतत, ताप तथा पवद्युत् ्की भांतत र्जक्त का एक रूप निीं। अत्यन्त सर्ुन्नत पवज्ञान र्ात्र एक ऐसे सम्बन्ध को िी भसद्ध कर सका िै जर्सर्ें कततपय स्नायपवक प्रकियाएं कततपय चैतन्यपूण शघटनाओंके साथ सर्जन्वत रिती िैं। रिां ं

1155 संसार के उपादान कारण प्रकृतत को ब्रह्म से अपवभक्त बताया गया िै और यि ब्रह्म आत्र्ाओं से भभन्न िै (सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/69; 3/66)।

1156 स हि परः पुरुर्षसार्ान्यं सवज्ञशानर्जक्तर्् ्सवकशतृतशार्जक्तच्चं (सांख्यप्रवचनभाष्य, (3 : 57)। और देणखए सांख्यप्रवचनभाष्य, 5/12

भौततक र्ीवन से िर्े चैतन्य की प्राजप्त निींिो सकती, विां ंचैतन्य को अपनेएिलौकककक रूप र्े भौततक र्ीवन के र्ाध्यर् का संसग शभर्लता िै। इस अतनवाय शसम्बन्ध को दृजष्ट से ओझल करना भूल िै। पुरुर्ष के पवर्षय र्े किा गया िै कक उसका अजस्तत्व र्ानभसक अवस्थाओं की अपवजच्छन्न गतत से ऊपर तथा उनसे ेपृथक् िै। इस प्रकार का पुरुप न तो अनुभवगम्य िै और न एिलौकककक तत्त्वपवज्ञान के पवचार-क्षेत्र र्े आता िै। यहद िर् पुरुर्ष से उस सबको पृथक् कर दें र्ो भौततक िै, अनुभूत पदाथों के प्रत्येक गुण को उससे िटा दें, तो ऐसी प्रत्येक सार्ग्री जर्सके द्वारा िर् इसको तनजश्चत रूप र्े लक्षक्षत कर सकें, िर्ारे वर् के बिार िो र्ाएगी। तनर्षेधात्र्क पद्धतत का अवलम्बन करके पुरुर्ष की पररभार्षा करते िुए, उसे ेतनत्य तथा अखण्ड किा गया िै, "र्ो पररणार्ी निीं अथांत् ् पवपवधता की छाया से भी रहित िै" और सदा अपनेपवरुद्ध आत्र्स्वरूप र्े अवजस्थत िै। यिा तक कक यि आदर् शकियार्ीलता से भी वंधचत िै और एक पवरुद्ध चेतना की सम्भावना र्ात्र बनता िै। िर्ारे व्यजक्तत्व के अन्दर इसकी कल्पना इस रूप र्े की गई िै कक यि ऐसा एक तत्त्व िै र्ो िर्ारी र्ानभसक प्रकियाओं को, जर्नका उद्गर् िर्ारे भौततक संघटन द्वारा िुआ िै, प्रकाभर्त करता िै। यि उस नाटक के पात्रों र्े सजम्र्भलत निीं जर्सका कक यि साक्षीरूप र्े द्रष्टा िै। वि आत्र्ा जर्सके उपयोग के भलए प्रकृतत की कला का अजस्तत्व िै, कभी रंगर्च पर निींआती, यद्यपप यि किा र्ाता िै कक सर्स्त अनुभव उसकी ओर संकेत करता िै। िर्े र्ो दृजष्टगत िोता िै वि र्ीव िै, र्ो पवरुद्ध पुरुर्ष निीं ंिै, बजल्क प्रकृतत की उपाधध से र्ुक्त पुरुर्ष िै। प्रत्येक आत्र्ा र्ो िर्ारे ज्ञान र्े आती िै, र्रीरधारी आत्र्ा िै। िर् र्ीव की एकता का पवभार्न कर देते िैंर्ब िर् उसे ेउस पुरुर्ष की बगल र्े रखतेिैं र्ो अपनेर्े पररपूण शिै और बाह्य र्गत् ्के पदाथों तथा, प्राणणयों के साथ, र्ो केवल प्रकृततर्न्य पदाथों के संघटन िैं, केवल आनुर्ंषंधगक रूप र्े सम्बद्ध िै। यहद िर् अनुभवर्न्य तथ्यों र्े ठीक-ठीक पवश्वास करें तो िर्े स्वीकार करना िोगा कक एक तनगुणश आत्र्ा, जर्सर्े से सर्स्त वस्तुपवर्षय तनकाल हदया गया िै, केवल एक कजल्पत रचना िै।

पुरुर्ष के अजस्तत्व को भसद्ध करने के भलए दी गई सांख्य की युजक्तयांआनुभपवक व्यजक्तयों के अजस्तत्व का िी प्रर्ाण बनती िैं, अतीजन्द्रय प्रर्ाताओं के अजस्तत्व का निीं। यि तथ्य सांख्य की पुरुर्षों के अनेकत्व की प्रकल्पना र्े स्पष्टरूप र्े प्रकट िो र्ाता िै। पुरुर्षों के अनेकत्व के पवर्षय र्े प्रधान िेतु र्ो हदया गया िैं वि यि िै कक यहद केवल एक पुरुर्ष िोता तो र्ब इसकी बुद्धध रांतं से वापपस लौटती तो सर्स्त सृजष्ट की प्रकिया का अन्त िो र्ाता। ककन्तु ऐसा कुछ निीं ंिोता। यि पवश्वरूपी नाटक अनन्त बद्ध आत्र्ाओं के भलए तब भी तनरन्तर चलता रिता िै र्बकक कुछ एक आत्र्ाएं र्ोक्ष प्राप्त कर लेती िैं। यि युजक्त कक यहद पुरुर्ष अनेक न िोकर एक िी िो तो र्रीरों र्े अवजस्थत सभी र्ीवात्र्ाएंएक िी सर्य र्े र्ृत्यु को प्राप्त िो र्ाएं ंऔर एक िी सर्य र्े र्न्र् ग्रिण करें, इस धारणा के आधार पर िै कक र्न्र् तथा र्ृत्यु र्ाश्वत पुरुर्ष पर लागू िैं, र्ो सांख्यदर्नश को अभभर्त निीं। िर् केवल यिी अनुर्ान कर सकते िैं कक र्रीरधारी आत्र्ाएंअनेक िैं और भभन्न-भभन्न िैं, क्योंकक वे सब एक साथ न र्न्र् लेती िैं, न र्रती िैं। यहद एक र्नुष्य ककसी पवर्ेर्ष पदाथ शको देखता िै तो अन्य र्नुष्य उसे ेउसी सर्य से निींदेखते, क्योंकक प्रत्येक र्ीवात्र्ा का अपना-अपना र्ारीररक

संघटन तथा अपनी-अपनी रुधच िै।'[1157] अनुभवभसद्ध आत्र्ाओं की अनेकता से, जर्से सभी दार्तशनक स्वीकार करते िैं, तनत्य आत्र्ाओं की अनेकता के प्रतत, जर्से ेसांख्य र्ानता िै, र्ाननेकी आवश्यकता प्रतीत र्नींिोती। सांख्य-प्रततपाहदत पुरुर्ष प्रकृतत से सवथशा भभन्न िै। िर् इसके सम्बन्ध र्ें ककसी प्रकार के पवभर्ष्ट लक्षणों, र्ैसे े व्यजक्तत्व अथवा सूर्नर्जक्त आहद का प्रयोग र्नीं ंकर सकते। पुरुर्षों के पवर्षय र्ें सब प्रकार के पवभर्ष्ट लक्षणों का प्रयोग सम्र्र् के कारण िै। आत्र्ा सब प्रकार के गुणों से रहित िै, अखण्ड िै, अपवनश्वर िै, अचल िै, सवथशा तनजष्यि तथा धीर िै, सुख-दुुःख तथा अन्य ककसी प्रकार की भावना से अप्रभापवत रिती िै। सर्स्त पररवतनश तथा लक्षण प्रकृतत से सम्बद्ध िैं। पुरुर्षों के अन्दर भेद प्रततपादन करने का कोई आधार प्रतीत र्नींिोता। यहद प्रत्येक पुरुर्ष के अन्दर एक िी सर्ान चैतन्य तथा सवव्शयापकता के लक्षण िैं, एक-दूसूरे के अन्दर न्यूनाततन्यून भेद भी र्नीं ंिै, क्योंकक वे सब प्रकार की पवपवधता से उन्र्ुक्त िैं, तो पुरुर्षों के अनेकत्व की कल्पना करने का कोई भी कारण र्नींरिता। बबना भेदे के बिुत्व असम्भव िै। यिी कारण िै कक गौडपाद सरीखे ेसांख्य के टीकाकारों का भी झुकाव एक पुरुर्ष की प्रकल्पना की ओर िै।'[1158] वस्तुओं का सुखोपभोक्ता एक अवश्य िोना चाहिए, वि यि दर्ातशा िै कक एक सुखोपभोक्ता आत्र्ा िै, तनजष्यि पुरुर्ष र्नींि। रूप, र्न्र्, र्ूतूयु, उद्भव स्थान तथा भाग्यसम्पद् के पृथृक् पृथृक् पववरण िर्ें केवल अनुभूततभसद्ध इिलौककक र्ीवों के बिुत्व की ओर ले र्ाते िैं। तीन वृपियों की भभन्न-भभन्न अवस्थाओंसे िर् र्ौभलक अनेकत्व का अनुर्ान र्नीं कर सकते, क्योंकक वे तो केवल प्रकृतत के रूपान्तर िै। यि किा र्ाता िै कक प्रकृतत के पवर्षय र्ें र्ो सांख्य का यि र्त िै कक प्रकृतत पुरुर्षों के भोग तथा र्ोक्ष के भलए प्रवृि िोती िै, इस र्त की र्ांग िै कक पुरुपों को अनेक िोता चाहिए। यहद पुरुर्ष केवल एक िी िोता तो बुद्धध भी एक िोती। ककन्तुिर्ें याद रखना चाहिए कक पवरुद्ध पुरुर्ष अर्र तथा उदासीन िै और उसे े ककसी पवर्षय की कार्ना र्नीं िै। प्रकृतत का नाटक सदा स्वतन्त्र पुरुर्षों के भलए र्नीं ंिै, बजल्क केवल प्रततपवजम्बत अिभावर्ा र्ीवात्र्ाओं के भलए िै। र्ीवात्र्ाओं के अनेकत्व के पवर्षय र्ें कोई पववाद र्नीं िै। अधीक्षण तथा र्ोक्ष के भलए उत्कण्ठा उन आत्र्ाओं के भलए िी ठीक िै र्ो भेदे न करने के कारण दुुःख पा रिी िैं, भभन्न-भभन्न युजक्तयां प्रकृतत सेसम्बद्ध वास्तपवक आत्र्ाओं के िी बिुच को भसद्ध करती िैं, उस पुरुर्ष को र्नींजर्सेर् नेतत-नेतत के र्ाग शसेप्राप्त करतेिैं। अनेकत र्ें सीभर्तताएं ंभर्धश्रत रिती िैं, और एक परर्, अपवनश्वर, र्ाश्वत तथा आनुपाधधक पुरुर्ष एक से अधधक र्नीं ंिो सकता। यि पुरुर्ष की सिा प्रकृतत के अभभनय के भलए आवश्यक िै तो एक पुरुर्ष पयाप्शत िै।'[1159] यि प्रकट िै कक सांख्य पुरुर्ष की यथाथसशिा को स्वीकार करनेके भलए बाध्य िै, क्योंकक इसका र्ित्त्व र्त् ्िी व्याख्या करने के भलए िै। प्रत्येक चैतन्यपूण शअवस्था का सम्बन्ध एक सचेतन व्यजक्त के साथ िोता िै। िर्ें केवल तभी संवेदना िोती िै र्ब आत्र्ा ककसी एक रूप र्ें संवेंदना प्राप्त करती िै,

---

[1157] सवभशसद्धान्तसारसंग्रि, 12 : 68-69।

[1158] देणखए सांख्यकाररका,11 और 44 पर गौडपाद।

[1159] सवव्शयापक आत्र्ाओंके अनेकत्व के पवर्षय र्ें, जर्नका स्वरूप तनगुणश तथा सवातशतश्शे्रेष्ठ पवरुद्ध प्रज्ञा िै. र्ंकराचायश किते िैं, "यि भसद्धान्त कक सब र्ात्र्ाएं प्रज्ञारूप िैं और उनर्ें प्रकृतत से साजन्नध्य आहद (तनजष्यिता अथवा आत्र्ाओंके आदासीन्य) के पवर्षय र्ें कोई भेद र्नींि, यि उपलक्षक्षत करता िै कक यहद एक आत्र्ा का सम्बन्ध सुख और दुुःख से िै तो सब आत्र्ाएं सुख-दुुःख से ेसम्बद्ध र्िेंगी" (ज्ञांकरभाष्य, 2:3, 50)। "यि र्ानना कक अनेकों सवव्शयापी आत्र्ाएं िैं, असम्भव िै, क्योंकक इस प्रकार का कोई दृष्टान्त र्नींभर्लता" (र्ांकरभाष्य, 2:3.53)। आत्र्ाएं यहद एकसर्ान सवत्रश व्यापक िैं तो सब एक िी स्थान को घेरेंगी।

 अन्यथा कभी निींिीती ककन्तु िर् पुरुर्ष की आत्र्ा को उसके अनुभवों से पृथक् करके कैसे ेर्ान सकते िैं? रिां ं

रि् र्ानभसक तथ्यों का पववरण बबना ककसी र्ानभसक प्रर्ाता (पवर्षयी) की कल्पना ककए निींदे सकते, विांर् उनका पववरण सिी-सिी निीं ंदे सकते, यहद उस प्रर्ाता (पवर्षयी) को ककसी अभौततक द्रव्य का ररक्त केन्द्र बना दें या उसे ेएक ऐसा सावभशौभर्कता अपररवतनशीय तत्त्व र्ान लें र्ो सम्बजन्धत पवभष्ट तथ्यों से सवथशा असम्बद्ध िो। पुरुर्ष की उपजस्थतत के द्वारा अपने चैतन्य पूण शअनुभवों की संगतत की व्याख्या करना वस्तुतः, तथ्य के पवभष्ट स्वरूप को कफर सेदोिराना िै और सारांर् र्ें इसे ेअपना कारण आप बताना िै। पुरुर्ष कोई ऐसा अततप्राकृततक आच्छादन निीं िै र्ो अपनेअन्दर सर्स्त चैतैन्य अनुभवों को सर्ापवष्ट कर ले। सर्स्त सांख्य र्ें पुरुर्ष और र्ीवन के बीच कोई स्पष्ट भेद निींभर्लता। यहद पुरुर्ष अनाहदकाल से अपररवतनशीयः तनजष्िय तथा सवयशा पृथक् िै तो यि ज्ञाता अथवा उपभोक्ता निीं िो सकता, क्योंकक उस अवस्था र्ें वि अध्यारोपण के आधार पर भूल भी कर सकता िै।[1160] ककन्तु ये गुण प्रकृतत के निीं िो सकते, क्योंकक ये प्रज्ञावान प्राणणयों के गुण िैं। अध्यारोपण अथवा अभ्यास का तात्पय शिै ककसी प्रज्ञासम्पन्न प्राणी द्वारा एक पदाथ शके गुणों का दूसूरे पदाथ शर्ें आधान ककया र्ाना। इस प्रकार र्ीवात्र्ा के पवचार का पवकास िुआ। र्ीवों का अजस्तत्व व्यजक्तयों के रूप र्ें िै। परन्तु इससे िर् यि पररणार् निींतनकाल सकते ेकक पुरुर्ष अपना स्वतन्त्र अजस्तत्व ककसी अन्य लोक र्ें, र्ो देर् और काल की पररधध से बािर िै, रखतेिैं। पुरुर्ष पूण शआत्र्ा का नार् िै, जर्से ेर्नुष्य दिेस्थ आत्र्ा के साथ न भर्ला देना चाहिए। पुरुर्ष तनश्चय िी रु्झ र्ें, इस व्यजक्तरूप रु्झ र्ें िै र्ो र्ेरा अन्तस्तत्त्व तथा सारतत्त्व िै और र्ीव अथवा व्यजक्त, अपनी सर्स्त अपववेकपूण शसनकों तथा स्वाथपशरक उद्देश्यों सहित, उस पुरुर्ष की केवल पवकृतत िै। इस प्रकार का कथन कक प्रत्येक र्ीव अपनेपुरुर्ष को सर्झनेके भलए प्रयत्नर्ील िै, यि तनदेर् करता िैकक प्रत्येक र्ीय र्ौभलक रूप र् ेंपुरुर्ष िै, प्रत्येक र्ानव र्ौभलक रूप र्ें हदव्य िै।

प्रकृतत भी अनुभव से एक अपकर्षणश िै। पदाथ शर्गत् ्के पक्ष र्ें यि एक प्रततबन्धकभोव िै। यि उस अज्ञात तथा पदाथ-शर्गत् ्के कल्पनात्र्क कारण की संज्ञा िै। यहद यथाथ शअनुभवभसद्ध िै, तो प्रकृतत पवरुद्ध प्रर्ेय पवर्षय का ऐसा अपकर्षणश िै र्ो बुद्धधगम्य निीं। र्ब प्रकृतत के भलए 'अव्यक्त' र्ब्द का प्रयोग ककया र्ाता िै तो प्रकृतत का उक्त स्वरूप स्वीकार कर भलया र्ाता िै। यि र्ात्र ररक्तता िै, क्योंकक यि वस्तुओंका रूपरहित अधधष्ठान िै। पदाथ शर्गत् ्के सवाधशधक सार्ान्य लक्षण प्रकृततपवर्षय पवचार के अन्दर संक्षक्षप्त रूप र्ें आ र्ाते िैं। र्ारीररक तथा र्ानभसक सृजष्ट का प्रत्येक भाग उस तनाव का'[1161] प्रतीक िै र्ो एक गुण और उसके पवरोधी के र्ध्य पवद्यर्ान िै और र्ो कियार्ीलता को उत्पन्न करता िै। यहद पररवतनश अन्ततनहशित क्षर्ता का वास्तपवकता तक पिुंचने का र्ाग शिै, तो इसे ेएक प्रकार का ऐसा संघर्ष शर्ानना चाहिए र्ो ककसी भी आकृतत को अपनेयथाथ शरूप को प्राप्त करनेके भलए र्ाग शर्ें आनेवाली बाधाओं पर पवर्य पाने के भलए करना िोता िै। तीनों गुण सर्स्त सिा के तीन क्षणों को दर्ातेश िैं; और प्रकृतत, जर्से ेतीनों गुणों की साम्यावस्था किा गया िै, सर्स्त र्ीवन का केवल ढांचा र्ात्र िै। र्ैसाकक र्ािदेव किता िै, यि ऐसी कोई वस्तु निीं िै र्ो गुणों की पृष्ठभूभर् र्ें

1160 सांख्यकाररका, 20-21

1161 पवर्षर्त्य। देणखए र्ैत्रायणी उपतनर्षद् 5 : 2।

रिती ि, ककन्तु गुणों की बत्ररूतत शि।[1162] तीनों गुण प्रकृतत के रूप िैं, धर् शनिीं। यथाथ शर्ें रो एक भावात्रक अपकर्षणश िै वि, व्याविाररक दृजष्टकोण से देखने ेपर, एक भेदरहित बिुगुण बन राता िै, जर्सके अन्दर सब वस्तुओं को उत्पन्न करने की क्षर्ता पवद्यर्ान िै।

सांख्य र्ें प्रततपाहदत प्रकृतत तथा गुणों की पररभार्षा से ऐसा र्त बनाने की प्रवृपृ िोती िै कक प्रकृतत तथा उसका पवकास ये अन्ततोगत्वा सिी अथों र्ें यथाथ शनिींिैं। तीनों गुण सर्स्त रीवन की आवश्यक अवस्थाओं के उपलक्षण िैं। प्रकृतत के पवकास की प्रत्येक जस्थतत र्ें सजन्नहित िैं-एक आदर् शअथवा आर्य (सत्त्व); उसे ेप्राप्त करने का प्रयत्न (रर्स्); और एक भौततकता (तर्स्)। ये अपकर्षणश निींिैं, बजल्क कर्-से-कर् पवज्ञानभभक्षु की सम्रतत र्ें, तनजश्चत पवध्यात्रक सिाएं ंिैं। बबना इनके कुछ भी निींरि सकता। सांख्य के अनुसार, ये संघर्ष शकी स्वाभापवक जस्थतत र्ें रितेिैं। प्रकृतत के अन्दर पवरोधी क्षर्ताएंरिती िैं। इनर्ें केवल कियारीलता की प्रवृपृ िी निीं, बजल्क कियारीलता का पवरोध करनेवाली पवपरीत प्रवृपृ भी िै। तर्स् एक तनरोधक र्जक्त िै। कियारीलता र्ें बाधा डालनेके कारण यि कियारीलता का आधार भी बन राता िै। सिावान, अथवा वि जर्सके अन्दर तीन गुण िैं अधधक-से-अधधक यथाथतशा का निींबजल्क एक जस्थतत का प्रततततनधधत्व करता िै। सत्त्व, रर्स् और तर्स् को एक ओर पवरोधी जस्थतत र्ें पवद्यर्ान र्ानना और दूसूरी ओर पदाथ शके घटक र्ानना केवल कभी सम्भव िै र्बकक िर् यि स्वीकार करें कक प्रत्येक पदाथ,श जर्सके अन्दर गुण िैं, एक संघर्ष शि, एक अयथाथसशिा िै रो अपने-आपको अततिर्ण करने का प्रयत्न कर रिी िै। इस प्रकृततरूप र्गत् र्ें कोई व्यजक्त ऐसा निींरो पररपूण शिो और सार्ान कारण ककए िो, क्योंकक सदा िी एक गुण अन्य गुणों को अपनी अधीनता र्ें रखता िै। का तक कक र्ब सत्त्व का प्राबल्य िोता िै िै तब भी तर्स् पवद्यर्ान रिता िै यद्यपप वि सत्त्व की अधीनता र्ें रिता िै। पवकास इससे अधधक और कुछ निींिैकक ककसी एक गुण का प्राधानग िो, अथवा ककसी एक गुण का दर्न िो ककन्तु दर्न सवथशा दर्न निींिै। कोई एक गुण र्न गुणों का रूलोच्छेदन निींकर सकता। िर् ऐसी ककसी अवस्था को पवचार र्ें निीं ला सकते र्बकक, सत्त्व, रर्स् और तर्स् अन्यों पर पवर्य प्राप्त करके अपने-आप र्ें अजस्तत्य रखने िों, या सार्ंर्स्य भाव सेरिते िों। प्रलय काल र्ें वे तनतान्त सार्ंर्स्यपूण शअवस्था र्ें रित प्रतीत िोते िैं। ककन्तुयि केवल प्रतीततर्ात्र िी िै, क्योंकक प्रकृतत के पवर्षय र्ें कि गया। कक यि प्रलय र्ें तनाव की जस्थतत र्ें रिती िै। इसर्ें तीन गुण िैं, परन्तु क्योंकक तीनों एक सर्ान र्जक्तर्ाली िैं, इसभलए कोई पवकास निींिोता। पवकास तब िोता िै र्बकक इनर्ें से ककसी एक गुण का अधधक प्राधान्य िो राता िै। र्ब तक सार्ंर्स्य निींिो राता, पवकास-काई का अन्त निींिोता ।। सांख्यदर्नश ऐसी एक अवस्था की आर्ा निींरखता रो पूणतशा की अवस्था िो और जर्सर्ें तीनों गुण सार्ंर्स्य-भाव र्ें रिें। प्रकृतत की रूल अवस्था सार्ंर्स्य की श ऐसी अवस्था जर्सने प्रकृतत को न तो िर् कियारील िी कि सकतिैं और न तनजष्िय िी कि सकते िैं। परसा असंगत एक-दूसूरे के सवथशा पवरोध र्ें अवस्था निींकिी रा सकती। यथाथ शर्ें, यि असर्ंर्स की अवस्था िै, अथात् श असम्भावना िै, रिां ंसम्भावनाएं ं इतनी अधधक पवभक्त रिती िैं कक वे परस्पर-पवरोधी िोती िैं। प्रकृतत को ककसी भी अथ शर्ें न तो एकत्व और जस्थत प्रतीत िोते िैं। यि इतनी सम्भावना निींबधच उसकी सीरा।**अुसान** कीजए : गुण एवं प्रकृततर्ब्दयाच्या न तु तदततररक्ता

[1162] सांख्यप्रवचनसूत्र, वृपृसार । , :61 । और देणखए6 : 39
प्रकृततरजस्त (योगवाततकश् ,2:18) ।

सार्ंर्स्य िी र्ाना र्ा सकता िै। यि रूतरूशप सार्ान्य निीं, र्ो भभन्न-भभन्न सिाओं को बन्धन र्ें एकत्र रखता िै, अथवा सत् ्का नग्न एकत्व भी निीं ंिै र्ो उन सबका लक्षण िै। यि गुणों की एक क्षुब्ध अवस्था िै। प्रकृतत के क्षेत्र र्ें व्यवस्था लानेतथा उसे ेसाथकश करने के भलए पुरुर्ष की आवश्यकता िै। पुरुर्ष के प्रभाव से असर्ंर्स की अवस्था लुप्त िो र्ाती िै; कोई न कोई गुण औरों को दवा कर सवोपरर िो र्ाता िै। पूणतशा की अवस्था कभी निीं िो सकती। गुणों के भलए सार्ंर्स्य असम्भव िै। र्िां ंपूणतशा की अवस्था निीं ंिै, विां ं पररवतनश, पवकास अथवा उलझाव का प्रकट िो र्ाना आवश्यक िै। प्रकृतत का र्गत् ्अपने आप र्ें निीं ंिै। इसके तीनों गुणों को धारण करने से िी इसका आत्र्पवरोधी स्वरूप प्रकट िोता िै क्योंकक पूणतशा अथवा यथाथतशा वि िै जसर्ें तीनों गुणों के पवरोध का दर्न कर हदया गया िो अथवा अततिर्ण कर भलया गया िो, और प्रकृतत का स्वरूप ऐसा निीं; इसभलए यथाथ शनिीं। प्रकृतत की प्रकिया की अन्तपविीनता िी इसे ेअयथाथ शतथा सापेक्ष बना देती िै। अद्वैत वेदान्त इस पररणार् का सार्ना करता िै और प्रकृततर्गत् ्को र्ाया र्ानता िै।

यहद प्रकृतत के सम्बन्ध र्ें िर् सांख्य के र्त को तथा पुरुर्ष से इसकी तनतान्त स्वतन्त्रता को स्वीकार करें, तो प्रकृतत के पवकास की व्याख्या करना असम्भव िो र्ाएगा। िर् निीं र्ानते ेकक ककसी तनदेर्क चैतन्य के बबना अन्ततनहशित क्षर्ताएं ककस प्रकार फलवान िो र्ाती िैं। र्ैसाकक सांख्य किता िै, र्िां ंकोई बुद्धधसम्पन्न तत्त्व उपजस्थत निीं विा ककसी प्रकार की कियार्ीलता निीं िो सकती। "र्ब सांख्यर्ाजस्त्रयों के तीनों गुण साम्यावस्था र्ें िोते िैं तो वे 'प्रधान' की रचना करते िैं। प्रधान के परे कोई ऐसा बाह्य तत्व पवद्यर्ान निीं र्ो प्रधान को कियार्ीलता के भलए बाध्य करे अथवा उससे रोके। पुरुर्ष उदासीन िै, वि न तो कर् शर्ें प्रवृि करता िै और न कर् शसे रोकता िै। क्योंकक प्रधान ककसी सम्बन्ध र्ें जस्थत निीं, इसभलए यि सर्झना असम्भव िै कक क्यों यि ककसी सर्य तो अपने को र्ित् ्के रूप र्ें पररवतततश करता िै, और कभी निीं ंकरता।"[1163] और न िर् यिी कि सकते िैं कक प्रधान अपनेको र्ित् ्आहद र्ें इस तरि रूपान्तररत करता िै र्ैसेकक घास दूध के रूप र्ें पररणत िो र्ाता िै, क्योंकक घास को अन्य कारणों की आवश्यकता रिती िै र्ो गाय के अन्दर िी उपलब्ध िै। बैल के अन्दर निीं।"[1164] यि तकश कक सीभर्त कायों से असीभर्त कारण का अनुर्ान ककया र्ा सकता िै, आवश्यक निीं कक तीन गुणों से भर्ल कर बनी प्रकृतत की यथाथतशा को भसद्ध कर दे। गुण परस्पर र्ें एक-दूसरे के प्रततवन्धक िैं और इसभलए काय शिैं। यहद गुण असीभर्त िैं, तो कोई असर्ानता उत्पन्न निीं िो सकती और इस प्रकार कोई काय शउत्पन्न निीं िो सकता।'[1165] यहद तीनों गुण साम्यावस्था र्ें प्रधान की रचना करते िैं, और यहद उनर्ें परस्पर श्रेष्ठता अथवा तनकृष्टता का सम्बन्ध निीं ंिै, तो वे पारस्पररक अधीनता के सम्बन्ध र्ें निीं ं आएंगे, क्योंकक तब वे अपनी तनतान्त अधीनता से वंधचत िो र्ाएंगे। क्योंकक ऐसा कोई बाह्य तत्त्व निीं र्ो गुणों को उिेजर्त करके उन्िें क्षुब्ध अवस्था र्ें पिुंचा दे, इसभलए कियार्ीलता असम्भव िै।[1166] अचेतन प्रकृतत

1163 र्ांकरभाष्य, 2/2 4। और देणखए र्ांकरभाष्य, प्रश्नोपतनर्षद्, 6/31

1164 र्ांकरभाष्य, 2/2.5

1165 ब्रह्र्सूत्र पर रार्ानुर्भाष्य, 2/2 1।

1166 र्ांकरभाष्य, 2/2 8। रार्ानुर् किते िैं: "यहद सांख्य के अनुयायी र्ानते िैं कक र्ित् ्का उद्भव र्ुख्य और उसकी अधीनस्थ सिाओंके एक पवर्ेर्ष सम्बन्ध (अंगाधगभाव) का पररणार् िै, र्ो गुणों की अपेक्षाकृत उत्कृष्टता तथा िीनता पर

 अनायास ि कायों को उत्पन्न निींकर सकती, र्ो पुरुर्षों के प्रयोर्नों को भसद्ध करते िैं। प्रज्ञा

प्रकृतत का धर् श

निींिो सकती, क्योंकक इससे सांख्य के र्ुख्य वैभर्ष्ट्र्य का प्रत्याख्यान िोगा।[1167] श्रुततग्रन्थ िर्ें ऐसी प्रकृतत के पवर्षय र्ें, र्ो संसार के पवकास का कारण िै ककन्तु र्ो ककसी प्रज्ञावान द्वारा प्रेररत निीं ंिोती, कुछ निींकिते।े सांख्य की प्रकल्पना पवकास के अन्दर एक योर्ना का िोना स्वीकार करती िै, क्योंकक प्रकृतत की कियार्ीलता का अजन्तर् कारण पुरुर्षों को अपनी र्ुजक्त प्राप्त करने के योग्य बनाना िै। अचेतन प्रकृतत की कल्पना के आधार पर, प्रकृतत का नैभर्पिक कारण अथवा अजन्तर् कारण िोना सझ्ं र्ें निींआ सकता। कभी-कभी यि सुझाव हदया र्ाता िै कक प्रकृतत की कियार्ीलता स्वयंभूत िै अथवा स्वाभापवक िै। घोडा गाडी को स्वभाव से खींचंता िै, र्बकक कोचवान केवल घोडे की चाल तनरीक्षण करता िै और कुछ निीं। ककन्तु स्वभाव hat H भूतकाल के कर्ों की पूवकशल्पना िोती िै। घोडे बुद्धधर्ान र्नुष्यों द्वारा प्रभर्क्षक्षत ककए र्ाते िैं। ककन्तु सांख्य की प्रकल्पना के आधार पर पुरुर्ष का तनदेर्कत्त्व र्ानना सम्भव निींिै। बछडे की र्ारीररक पुजष्ट के भलए गाय के धनों र्ें से दूधू के स्वतः तनकलने की उपर्ा यिांलागू निींिोती, क्योंकक तनकटतर् तथा अजन्तर् कारणों र्ें भेदे करना चाहिए।'[1168] एक तथ्य का कथन करना रिस्य का िटाना निींिै। िर्ें कुछ ऐसे पवधान भर्लते िैं जर्नसे वस्तुएं र्ेल खाती िैं, ककन्तु र्ब तक िर् इन सब पवधानों के अजन्तर् स्रोत को स्थापपत न करें तब तक सर्ाधान अपूण श िै। अंधे ेऔर लगडे र्नुष्य की उपर्ा रांततपूण शिै क्योंकक वे दोनों बुद्धध-सम्पन्न और कियार्ील कता शिैं र्ो अपने सार्ान्य प्रयोर्न को भसद्ध करने के भलए योर्ना बना सकते िैं। पुरुप और प्रकृतत का ऐसा कोई एक सार्ान्य प्रयोर्न निींिै, अचेतन प्रकृतत को दुःख निींिो सकता; उदासीन पुरुर्ष दुःख का अनुभव निींकर सकता। दोनों संसार के त्राण के भलए ककस प्रकार सियोग कर सकते िैं, इस प्रश्न का उिर तब तक निींहदया र्ा सकता र्ब तक कक सांख्य एक उच्चतर एकत्व को स्वीकार करने सेतनर्षेध करता िै।'[1169]

पवर्षयी (प्रर्ाता) और पवर्षय (प्रर्ेय) एक उच्चतर एकत्व के पक्ष िैं, भभन्न िैंतो भी एक सम्पूण शइकाई के िी अन्तगतश िैं। यहद िर् आनुभपवक स्तर पर िैं तो भी िर्ें किना िोगा कक सर्स्त चैतन्य एक प्रर्ेय पवर्षय का चैतन्य िै और सर्स्त यथाथतशा चैतन्य का प्रर्ेय पवर्षय िै, अपनेको पदाथ-शर्गत् ्से भभन्न करने तथा उससे सम्बद्ध करने र्ें िर् आत्र्ा को र्ान सकते िैं अन्यथा निीं। अपनेर्गद्-पवर्षयक अनुभव को पवस्तृत करने र्ें िी आत्र्ा के अपनेचैतन्य को गिन बनाते िैं। यहद िर् प्रर्ाता (पवर्षयी) तथा प्रर्ेय (पवर्षय) की सम्बन्धपविीनता

तनभरश िै और यि भेद अनेक गुणों के स्थानों के भेद के कारण िै (सांख्यकाररका, 16), तो क्योंकक प्रलय-अवस्था र्ें तीनों गुण साम्यावस्था र्ें िैं, उनर्ें न कोई दूसरों से ेश्रेष्ठ िै, न िीन िै, अतः अंगाधगभाव का वि सम्बन्ध तब निींरि सकता और इसभलए र्गत् ्का उद्भव निीं िो सकता। यहद यि र्ाना र्ाए कक प्रलयावस्था र्ें भी कुछ असर्ानता रिती िी िै, तो उससे े पररणार् यि तनकलेगा कक यि सृजष्ट र्ाश्वत िै" ब्रह्र्सूत्र पर रार्ानुर्भाष्य, 2/2, 6) ।

1167 र्ांकरभाष्य, 2/2.9 ।

1168 र्ांकरभाष्य, 2: 2, 3। और "गाय, र्ो एक बुद्धध-सम्पन्न प्राणी िै, अपनेबछडेसे ेप्रेर् करती िै; अपनी इच्छा से दूधू को बिने देती िै; इसके अततररक्त बछडेके चूसने से ेभी दूधू तनकलता िै।"

1169 पवज्ञानभभक्षु, र्ो एक ईश्वरवादी िै, पुरुर्ष तथा प्रकृतत के संयुक्त कर् शकी व्याख्या करने र्ें सर्थ शिै। वि भलखता िै: "प्रकृततस्वातन्त्र्यवाहदभ्यां ंसांख्ययोधगभ्या पुरुर्षाथप्रशयुक्ता प्रवृपिः स्वयर्ेव पुरुर्षेणाद्यर्ीवेन संयुज्यते... अयस्कान्तेन लोिवत्.्.. अस्र्ाभभस्तु प्रकृततपुरुर्षसंयोग ईश्वरेण कियते ।" (पवज्ञानार्ृत, । : 1, 2)।

की कल्पना करें, तो एक से दूसूरे की ओर संर्णि असम्भव ि◌ोगा। दो पक्षों की एकता उनके भेद की पूवकशल्पना ै। यि केवल ि◌र्ारी अपवद्या, ि◌र्ारे अज्ञान अथवा ि◌र्ारे अनुभव के स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओंपर पवचार न करने के कारण ि◌ी ि◌ै कक ि◌र् प्रर्ाता तथा प्रर्ेय से परर् एकत्व को पिचाननेर्ें असफल रिते ि◌ैं। यि बबल्कुल सत्य ि◌ै कक र्न तथा पदाथ शका द्वैतपरक पवचार ि◌र्ारे र्नों के भलए स्वाभापवक ि◌ै, ककन्तु ि◌र्ें थोडा-सा भी धचन्तन यि बताता ि◌ै कक यहद दोनों पृथक् ि◌ैं तो ि◌र्ें उनर्ें र्ोडनेके भलए एक तृतीय वस्तु की आवश्यकता ि◌ै। ज्यों िी ि◌र् इस तृतीय वस्तु की कल्पना को असन्तोर्षप्रद सझ्ंा लेतेिैं, त्यों ि◌ी ि◌र्ारे पास एक ि◌ी र्त स्वीकार करने को र्ेर्ष रि र्ाता ि◌ै कक दोनों एक ि◌ी परर् चैतन्य के पक्ष ि◌ैंर्ो सर्स्त ज्ञान तथा र्ीवन का भी आधार ि◌ै। इस परर् एकत्व के पिचाननेर्ें र्ो असफलता ि◌ै, यिी सांख्य की प्रकल्पना र्ें एक र्ौभलक भूल ि◌ै। सर्स्त प्रर्ाण र्ो ि◌र्ारे पास ि◌ैं, यि प्रदभर्तश करते ि◌ैंकक द्वैतभाव परर् निीं िैकक पुरुर्ष और प्रकृतत आनुर्षंधगक रूप से सम्बद्ध निीं िै। ि◌र् यिांपर सांख्य के कुछ थोडे–सेसूक्ष्र् पववरण उक्त र्त के सर्थनश र्ें दे रि ि◌ैं। प्रकृतत पुरुर्ष के अन्दर एक साथ ि◌ी अपनेपवर्षय र्ें तथा र्गत् ◌्के पवर्षय र्ें, जर्सर्ें यि तनवास करता ि◌ै, सत्य अजस्तत्व के ज्ञान को उत्पन्न करती ि◌ै। क्या यि दोनों के भेद की पृष्ठभूभर् र्ें र्ो एकत्व ि◌ै, उसकी साक्षी निीं ि◌ै? प्रकृतत तभी व्यक्त िोती ि◌ै र्ब इसका सम्बन्ध प्रर्ाता (पवर्षयी) के साथ ि◌ोता ि◌ै। र्ब यि प्रर्ाता (पवर्षयी) से असम्बद्ध रिती ि◌ै तो अव्यक्त रिती ि◌ै।[1170] यहद प्रकृतत वि ि◌ै र्ो करती ि◌ै[1171] तो इसकी सूचना पुरुप द्वारा भर्लती ि◌ै। दूसूरे ब्दों र्ें, पुरुर्ष से स्वतन्त्र पवचार सझ्ंा र्ें निींआ सकता। इस प्रकार का पवचार स्वतः पवरोधी ि◌ै। स्वांख्य प्रकृतत का ि◌ै कक प्रकृतत भी पुरुर्ष के सर्ान, आद्य (र्ूलभूत), अनुत्पन्न तथा स्वतन्त्र ि◌ै। यारख्य का किक किना चािें तो ि◌र्ें किना ि◌ोगा कक प्रकृतत और पुरुर्ष परस्पर प्रततकूल ि◌ैं, यद्यपप वे यथाथ शकी एक-दूसूरे पर तनभरश दो ग्रजन्थयांि◌ैं सृर्ूनात्र्क पवकास के भलए दोनों की पूवकशल्पना आवश्यक ि◌ै। यहद तनत्य प्रकृतत आधाररूपी गभ शर्ें पुरुर्ष पवद्यर्ान ि◌ो तो कोई अनुभव ि◌ो निींसकता। प्रकृतत की धूभल को पुरुर्ष के र्ादू ◌ूके वर् र्ें ि◌ोना ि◌ी ि◌ोगा, यहद इसे ◌े अपनेपदायों के रूप र्ें पवकभसत ि◌ोना ि◌ै। कफर, प्रकृतत के पवकास के अन्दर र्ो एक उद्देश्यवाद रिता ि◌ै उसका कारण भी पुरुर्ष का प्रभाव ि◌ै। प्रकृतत के पवकास को आत्र्ा की र्ोक्षप्राजप्त का साधन र्ाना गया ि◌ै। सांख्य यि तो निींस्वीकार करता कक प्रकृतत ज्ञानपूवकश कोई योर्ना बनाती ि◌ै तथा उसे ◌ेप्रयोग र्ें लाती ि◌ै, तो भी यि तो र्ानता ैकिक प्रकृतत का पवकास आत्र्ा के उद्देश्यों की पूतत शके भलए बनाई गई योर्ना का कियात्र्क रूप ि◌ै। प्रकृतत, र्ो पदाथों की पवरुद्ध सम्भाव्य क्षर्ता ि◌ै, क्या बनती ि◌ै, यि इस पर तनभरश करता ि◌ै कक पुरुर्ष का कौन सा रूप या लक्ष्य उसे ◌ेप्रभापवत करता ि◌ै। प्रकृतत, र्ो सम्भाव्य क्षर्ता के रूप र्ें सब कुछ ि◌ै, पुरुर्षों द्वारा तनणीत रूप की प्राजप्त से ि◌ी इस या उस वस्तु के रूप र्ें आ र्ाती ि◌ै। प्रकृतत की श्रृंखंला र्ें पुरुर्ष यद्यपप किीं ◌ंनिींआता, तो भी यि उसकी कडडयों से एकसर्ान सम्बद्ध ि◌ै। इसका प्रभाव न केवल प्रकृतत के पवकास को प्रारम्भ करता ि◌ै, बजल्क तनरन्तर इसे ◌ेसिारा हदए रिता ि◌ै। यहद तनणयश की भूल से पुरुर्ष संसार की इस नाट्यर्ाला र्ें ि◌ठात न आ र्ाता, और यहद ि◌र्ारे रांत र्न प्रकृतत के तर्ार्े ◌ेको ध्यानपूवकश न देखते, तो प्रकृतत का कोई भी काय शकतई न ि◌ोता।

[1170] सांख्य प्रवचनसूत्र ,1/79

[1171] प्रकरोतीतत प्रकृततः ।

रिां ◌ंपुरुर्ष और प्रकृतत का द्वैतैभाव रा्नने सेर्नुष्य के चैतैन्य का उनके स्वभाव के अन्य तत्त्वों से पवभाग भी रा्नना िोता िै, जर्ससे ज्ञान, री्वन और नैततकता बुद्धध को चकरा देनेवाले रिस्य बन रा्ते िैं, विां ◌ं सांख्य ने उक्त सबको बुद्धधगम्य केवल इसभलए कर हदया िै कक यि अपने अभभर्त के सवथशा पवपरीत भाव को रा्न लेता िै, अथात्श ◌्र्नुष्य-स्वभाव के एकत्व को रा्न लेता िै। िर् पिले ◌ेदेख चुके िैं कक यहद बुद्धध अनाजत्र्क और अचेतन िोती, तो यि चैतन्य को भी प्रततबबजम्बत न कर सकती। री्वन के दो भभन्न-भभन्न स्तरों से सम्बद्ध वस्तुएं वास्तपवक तथा प्रततबबजम्बत के रूप रे् काय शर्नीींकर सकतीं। पुरुर्ष को बुद्धध की अवस्थाओंका अनुभव करनेवाला र्नीींकिा रा् सकता, क्योंकक बुद्धध के अन्दर इसका प्रततबबम्ब यथाथ शर्नीीं। सांख्यप्रततपाहदत पुरुर्ष का बुद्धध से सम्बन्ध यि सुझाव देता िै कक दोनों रे् बन्धुता िै, सवथशा प्रततकूलता र्नीीं। पुरुर्ष और प्रकृतत के सम्पकश का अत्यन्त घतनष्ठ बबन्दु ◌ुबुद्धध रे् िै, रो् ब्रह्माण्ड की र्जक्त के व्यापारों रे् भेदे करती िै तथा सर्न्वय स्थापपत करती िै और, अिंकार की सियता से, साक्षीरूप आत्र्ा का पवचार, इजन्द्रय तथा काय-शसम्बन्धी कियाओंके साथ तादात्म्य करती िै। यि बुद्धध िी िै रो् अपनेसत्त्वरूप रे् भेदपरक ज्ञान के भलए प्रयत्न करती िै। र्ब बुद्धध को यि ज्ञान िो रा्ता िै कक तादात्म्य एक भूल िै और देखती िै कक सब कुछ केवल गुणों की पवक्षुब्धता िै, तो बुद्धध उस भर्थ्या प्रदर्नश से जर्से ◌ेयि सर्थनश देती रिी िै, पवरत िो रा्ती िै। पुरुर्ष पवश्वनाट्य से अपना सम्पकश त्याग देता िै, और प्रकृतत भी पुरुर्ष के अन्दर प्रततपवजम्बत िोने की अपनी र्जक्त खो देती िै क्योंकक अिंकार के नष्ट िो रा्ते िैं, इसभलए बुद्धध उदासीन िो रा्ती िै और गुण साम्यावस्था रे् चले ◌ेरा्ते ◌ेिैं। यहद बुद्धध असरं्रं्स रे् पड रा्ती िै तो किा रा्ता िै कक यि पुरुर्ष के भलए संकर िै और यहद बुद्धध असरं्र्स को काट देती िै तो किा रा्ता िै कक पुरुर्ष बच गया। वृद्धध लगभग पुरुर्ष के सर्ान की काय शकरती प्रतीत िोती िै। इसभलए प्रर्े्य की अपेक्षा इसका बन्धुत्व प्रर्ा्ता के साथ अधधक िै।'[1172]

इस र्त के नैततक पररणार् भी इसी प्रकार अथपूशण रिैं। यहद प्रकृतत पूणरूशप से याजन्त्रक िै, तो इच्छा-स्वातन्त््य एक रांतत िै, क्योंकक इच्छा प्रकृततर्न्य िै। नैततक भेद तनरथकश बन रा्तें, क्योंकक पाप और पुण्य गंधकाम्ल अथवा चीनी के सर्ान उत्पन्न पदाथ शिो रा्एंगे। ककन्तु सांख्य यि स्वीकार न करेगा कक एक र्नुष्य को ित्या के भलए पवनार्कारक एक पत्थर से अधधक दोर्ष र्नीींहदया रा्ना चाहिए। र्नुष्य के अन्दर ऐसा कुछ अवश्य िै रो् पत्थर अथवा पौधेरे् र्नीीं। प्रकृतत के अन्दर भी याजन्त्रकता से अधधक कुछ अवश्यर्ेव िै, अन्यथा यि िर्ारे भलए र्ोक्ष का साधन र्नीींबन सकती थी। सांख्य बलपूवकश किता िै कक वि ज्ञान रो् िर्ारा रक्षक िै, प्रकृतत का दान िै।

पुरुर्ष और प्रकृतत के र्ध्य रो् काल्पतनक सम्बन्ध िै और रो् अपववेके अथवा अभेद के कारण बताया रा्ता िै, वि सम्भव न िोगा यहद दोनों एक-दूसरे से सम्बद्ध न िों। यि पवचार रे् आना कहठन िै कक ऐसी दो

1172 पवद्यारण्य अपने'पववरणप्रर्ेयसंग्रि' (पृष्ठ 63) रे् किता िै: "यहद बस्तुएं ऐसी िोती रै्साकक सांख्य उन्िें प्रस्तुत करता िै, यहद अिंकार (अिंभाव) और वि सब रो् उस पर तनभरश िै, सर्स्त कर्,श सर्स्त सुखभोग इत्याहद, अपनेको चैतन्य के सर्क्ष पवरुद्ध वस्तुपरक रूप रे् प्रस्तुत करते,◌े अथात्श ◌्'यि एक कताश िै', 'यि एक सुखोपभोक्ता िै', और ऐसेरूप रे् प्रस्तुत न करते ◌ेर्ैसेकक कुछ आत्र्ा पर अध्यारोपपत ककया गया िो, तो चैतन्य के वास्तपवक रूप अथात्श ◌्'र् ◌ैंकताश िं◌ूं', 'र् ◌ैं सुखोपभोक्ता िं◌ूं' कभी उत्पन्न न िोते ◌े('इजण्डयन थॉट' खण्ड 1, पृष्ठ 376)।

सिाओं के परस्पर सम्बन्ध की भर्थ्या धारणा र्ो एक-दूसूरे से ककसी प्रकार का वास्ता निींरखती, ककस प्रकार पैदा िो सकती िै। इस सम्बन्य को पयाप्शत रूप र्ें यथाथ शिोना चाहिए जर्ससे ेप्रकृतत का पवकास आगे ेबढ़ सके। इसभलए भी इसे ेपयाप्शत र्ात्रा र्ें यथाथ शिोना चाहिए जर्ससे कक पुरुर्ष अपनी पवरुद्धता तथा प्रकृतत रूपी साधन द्वारा अपने पृथृक्त्व को पिचान सके। ऐसी वस्तुजर्ससेपुरुर्ष को सियता भर्लती िै, इससे सवथशा बाह्य निीं ं िी सकती। सांख्य पुरुर्ष और प्रकृतत को एक-दूसूरे के इतना सर्ीप लानेके भलए बाध्य िैं जर्तना कक द्वैतवाद पर उसके आग्रि के कारण िर् पवश्वास भी निींकर सकते। प्रकृतत और पुरुर्ष की पारस्पररक अनुकूलता वस्तुतः आश्चयर्शनक िै। दृष्टान्त के रूप र्ें, ऐसी इच्छा के बल से, जर्सेर् अचेतन कि सकते िैं, प्रकृतत थोडे–से याजन्त्रक णखलौनों का पवकास करती िै, जर्नके द्वारा वि पुरुर्षर्गत् ्के दृश्य को देख सके। चेतनापूण शआत्र्ा और अचेतन प्रकृतत एक िी पवकास की दो जस्थततयााँ। यि र्ीव िै र्ो र्ुक्त िोने के भलए प्रयत्न करता िै; क्योंकक सीभर्त चैतन्य से एक अनन्त चैतन्य की पूवकशल्पना िोती िै, र्ो प्रकृतत के स्वभाव से सीभर्त िो गया िै, और सीभर्त आत्र्ा, अपने अन्दर पवद्यर्ान अनन्त चैतन्य की खोर् करके अपनी सत्य सिा को सर्झ लेती िै।

र्ब सांख्य यथाथतशा की प्रकिया को प्रकृतत की यंत्र-रचना तथा आत्र्ा के स्वातन्य् की दो ग्रजन्थयों र्ें पवभक्त करता िै, तो यि सर्झ लेना चाहिए कक ये यथाथ शभावात्र्क िैं, ऐततिाभसक निीं। वे िर्ें बताते िैं कक आनुभपवक र्गत् ्र्ें दो भभन्न-भभन्न प्रवृपियां िैं र्ो परस्पर इस प्रकार सम्बद्ध िैं कक उर्न्िें पृथृक् निींककया र्ा सकता। पुरुर्ष और प्रकृतत सर्स्त अनुभव के ये दो पिलूिैं। यहद पुरुर्ष चैतन्यस्वरूप िै तो प्रकृतत अचेतन िै, क्योंकक वि पुरुर्ष के पवपरीत लक्षणों वाली िै। ये दोनों, अथात्श ्चैतन्य और र्डता, एक पररणर्न के दो पिलू िैं। यथाथसिा न तो केवल पुरुर्ष िै और न केवल प्रकृतत िै। ये अजस्तत्वपविीन िैं, क्योंकक र्ो अजस्तत्ववान िै उसके नार् व रूप िोते िैं। अभौततक रूप और रूपिीन प्रकृतत-ये दोनों प्राणणयों की िर्व्यवस्था की उच्चतर और तनम्नतर सीर्ाएं ंिैं, यद्यपप उनर्ें सेककसी का भी अजस्तत्व निींिै। सबसे प्रथर् अजस्तत्ववान र्ित् ्िै, जर्ससे े र्ेर्ष सब पवकभसत िुआ कि र्ाता िै। यि र्ित् ्पवरुद्ध प्रकृतत निींिै किन्तु रूपधाररणी प्रकृतत िै। र्ित् ् तनपवकशल्प प्रकृतत की सपवकल्प अभभव्यजक्त िै। यहद पुरुर्ष तथा प्रकृतत दोनों परस्पर सियोग न करें तो िर्ें र्ित् ् की प्राजप्त निींिो सकती। यि सबसे प्रथर् उत्पन्न पदाथ,श अथवा आनुभपवक सिा िै, र्ो तब पैदैा िोती िै र्ब पुरुर्ष प्रकृतत को सूधचत करता िै। ईश्वर, जर्सको सांख्य स्वीकार करता िै, पवरुद्धध प्रर्ाता (पवर्षयी) निींिै, बजल्क अपने अन्दर प्रर्ेय (पवर्षय) की संभाव्य क्षर्ता रखता िै। यहद िर् र्गत् ्के उत्पन्न पदाथों के उद्भव का पीछे तक पता लगाते–लगातेउच्चतर् कोहट तक पिुंचें, तो िर् एक पूणचैशतन्यस्वरूप आत्र्ा तक पिुंचते िैं, श ्र्ो पवर्षयी-पवर्षय (प्रर्ाता-प्रर्ेय) िै। सब वस्तुएं र्ो पवश्व की घटक िैं, प्रर्ाता-प्रर्ेय िैं। ईश्वर तथा तनम्नतर्द्रव्य-दोनों र्ें िर्ें पुरुर्ष और प्रकृतत की दो प्रवृपियां जर्सके अन्दर सब वस्तुओं की सम्भाव्य क्षर्ता िै, अथवा भर्लती िैं। बकजनके अन्दर द्रव्य का प्राधान्य िै, तनम्नतर स्तर र्ें आते िैं और वे जर्नके अन्दर रूप का प्राधान्य िैं, उच्चतर स्तर र्ें आते िैं। आत्र्ा की सफलता के अनुपात र्ें प्राणी सृजृष्ट की िर्-व्यवस्था र्ें ऊंचा स्थान पाता िै। प्रकृतत की तनम्नतर् जस्थतत र्ें िर् वस्तुओं की वस्तुओं के प्रतत पवरुद्ध बाह्यता पाते िैं, यद्यपप प्रकृतत का यि साम्राज्य भी आत्र्ा के उद्देश्यों के उपयोग र्ें आता िै। िर् पौधों, पर्ुओं तथा र्नुष्यों र्ें एक श्रेर्णीबद्ध चढ़ाव पाते िैं र्बकक ऐंहद्रय र्ीवन की श्रेर्णी र्ें पौधा नीचे ेजस्थत िै। पर्ु अपनेसंवेदनर्ील भाग को भलए िुए

उससेऊंचे ेर्् आता िै, र्नुष्य अपनी पववेकयुक्त तथा इच्छापरक प्रकृतत के साथ उससे भी ऊपर आता िै। सब वस्तुएं तनरन्तर ऊंचा-ऊंचा उठनेके भलए प्रयत्न करती िैं। पवकास की प्रकल्पना व्यजक्त को एक जस्थर पररणार्् के रूप र्ें निींर्ानती, बजल्क एक अस्थायी िर्ावस्था के रूप र्ें र्ानती िै, र्ो पूण शपुरुर्ष की अभभव्यजक्त तक पिुंचानेवाली िै। ये पवपरीत तत्त्व एक र्ूल शपरररणर्न की परस्पर पवरोधी गततयों द्वारा आपस र्ें एक-दूसूरे पर तनभरश िैं। यहद िर्् पुरुर्ष को प्रकृतत से पृथृक् कर दें, तो यि अयथाथ शिो र्ाता िै। इसी प्रकार प्रकृतत भी पुरुर्ष से पृथृक् िोकर अयथाथ शिो र्ाती िै। सब वस्तुएं पुरुर्ष और प्रकृतत को संयुक्त करती िैं और पुरुर्ष को अधधकाधधक अभभव्यक्त करने के भलए संघर्ष शकरती िैं, और यि संघर्ष शर्गत् ्की प्रकिया िै।

र्ब सांख्य के पवचारक यि र्त प्रकट करते िैं कक अनुभवभसद्ध उच्चतर् श्र्ेणी का पदाथ शभी तनरपेक्ष् निींिै, तो उनका तात्पय शयि िोता िै कक इस आनुभपवक र्गत् ्को र्िां ंदो प्रवृपियां एक-दूसूरे पर प्राधान्य प्राप्त करने के भलए संघर्ष शकरती िैं, अपनेताककशक आधार के रूप र्ें ककसी अन्य तत्त्व की आवश्यकता िै। उनका यि सुझाव कक इस संघर्षशर्य र्गत् ्की पृष्ठभूभर् र्ें तथा इससे परे एक ओर तो पुरुर्ष िै और दूसूरी ओर प्रकृतत िै र्ो सम्भापवत पवर्षयी' और पवर्षय िैं और तनत्य एक-दूसूरे के पवपरीत िैं, न तो अनुभव-पवर्षयक तथ्यों के अनुकूल िै और न िी सांख्य के भसद्धान्तों के अनुकूल िै। यहद पवश्वीय आत्र्ा (र्ित्) ् व्यजक्तरूप प्रर्ाताओं(अिंकार) के अनेकत्व और व्यजक्तरूप प्रर्ेयों (तन्र्ात्राओं) को र्न्र् देता िै, तो र्ित् ्की पृष्ठभूभर् र्ें प्रर्ाताओंतथा प्रर्ेयों के अनेकत्व की कल्पना करना आवश्यक िै। यहद सब प्रर्ेयों को घटाकर एक प्रकृतत के रूप र्ें पररणत कर हदया र्ाता िै, तो प्रर्ाताओं को भी घटाकर एक सावभशौभर्क आत्र्ा के रूप र्ें पररणत ककया र्ा सकता िै, र्जसे िर्गत् ् के लौकककक व्यजक्तयों र्ें अनेकपवध प्राकृततक बाधाओंका पवरोध करना िोता िै। यहद पुरुर्ष के अक्षुब्ुध चैतन्य तथा प्रकृतत की तनरन्तर गतत को एक-दूसूरे से स्वतन्त्र र्ाना र्ाता िै, तो दर्नशर्ास्त्र की सर्स्या का सर्ाधान असम्भव िै। ककन्तु सांख्यदर्नश प्रत्यक्षतः केवल इसभलए न्यायसंगत प्रतीत िोता िै कक यि इनके भभन्न-भभन्न पक्ष िैं। वि अद्भुत पवधध र्जससे ये एक-दूसूरे की सिायता करते िैं, यि प्रदभर्तश करती िै कक ये परस्पर-पवरोधी एक िी पूण शइकाई के अन्ततनपशवष्ट िैं। पारदर्कश द्वैतभाव ककसी एकत्व पर अवजस्थत िै, र्ो उससे ऊपर िै। यहद ककसी चीज़ को सर्स्त अनुभव की पूवकशल्पना र्ाना र्ा सकता िै, तो यि एक सावभशौभर्क आत्र्ा िै, र्जस पर पुरुर्ष और प्रकृतत की दोनों प्रवृपियां अवजस्थत िैं, क्योंकक ये दोनों, पुरुर्ष और प्रकृतत, एक-दूसूरे के सवथशा पवरुद्ध तथा प्रततकूल निींिै। र्गत् ्के पररणर्न र्ें उक्त पवरोध भर्ट र्ाता िै। यि प्रदभर्तश करता िै कक दोनों वस्तुए र्ौभलक एकरूपता पर अवजस्थत िैं। सांख्य का पुरुर्ष पर बल देने का तात्पय,श र्िां ंइसेर्ीव के साथ भर्श्रत निीं ककया गया िै, इससे अधधक और कुछ निींिै कक वि एक पवरुद्ध तथा पूणसशिा की उपजस्थतत को र्ानता िै, र्ो वस्तुओं के पवभाग से पवभक्त निींिै और पवश्वीय अभभव्यजक्त के तनाव व संघर्ष शसे प्रभापवत निींिै, र्ो इन सबके अन्दर िै और इन सबसेऊपर िै। तनरपेक्ष आत्र्ा इतनी र्िान् ्िै कक वि काल और देर् र्ें िोती गतत से, र्जसेंवि धारण करती िै, सीभर्त निींिो सकती। ककन्तु संसार उसके ऊपर आधश्रत िै। िेगल के र्ब्दों र्ें, प्रकृतत 'तनर्ेषधपरक अतनष्टसूचक र्जक्त' िै, र्ो संसार को अजस्तत्व र्ें लाती िै। यहद िर्् ऐसी खाई को लेकर चलें र्ो भरी निीं ंर्ा सकती, तो संसार का एकत्व कभी बुद्धधगम्य न िोगा। र्ैसे िी वि तनरपेक्ष आत्र्ा एक प्रर्ेय के पवर्षय र्ें अभभज्ञ िोती िै, वि सवोपरर प्रर्ाता (पवर्षय) बन र्ाती िै और प्रर्ेय पर, र्जसे र्ित् ्की संज्ञा दी गई िै,

काय शकरने लगती ि।'[1173] पवज्ञानभभक्षु रि्भारत से एक श्लोक[1174] उद्धतृ करता ि, जर्सरें प्रततपादन ककया गया ि कक प्रकृतत, रो् पररवतततश िोती ि, अपवद्या ि और पुरुर्ष रो्, सब प्रकार के पररवतनश से उन्रुक्त ि, पवद्या

श ्

ि।'[1175]सांख्य यि भसद्ध करने के भलए उत्सुक ि कक प्रकृतत ऐसी कुछ वस्तु निीं रो् पवर्षयीतनष्ठ अथात् अयथाथ शिो, क्योंकक एक ऐसी अयथाथ शवस्तु बन्धनरूप यथाथतशा का कारण निींबन सकती।'[1176] रै्से ेभी िो, प्रकृतत पुरुप के प्रतत तनर्ेषेधात्रक ि, आत्रा् का अनात्ररूप ि। आत्रा् का अनात्र् को देखना'[1177] इस पवर्षय का प्रर्ाण ि कक आत्रा् अनात्र् अथात्श ्प्रकृतत के अजस्तत्व को स्वीकार करती ि। यि स्वीकृतत िी प्रकृतत को रो् कुछ भी इसका अजस्तत्व ि, वि प्रदान करती ि। प्रर्ेय का उदय प्रर्ाता के उदय के साथ सिाचय-शसम्बन्ध रखता ि। यि स्वतः चेतन आत्रा्, जर्सका रि्त् ्के उदय के साथ सि-सम्बन्ध ि, कोई र्ीव निीं ि, क्योंकक यि प्रकृतत को कियार्ीलता के भलए तनरन्तर बलात् ्प्रेरणा करती रिती ि, भले िी अनेकों र्ीव क्यों न रो्क्ष प्राप्त कर लें। सवोपरर प्रभु के तनयन्त्रण द्वारा प्रकृतत के अनेकत्व र्ें बराबर उन्नतत िोती रिती ि, रै्सेकक बगसशां ंकी प्राणर्जक्त का एक िी स्पन्दन पवभक्त िोकर प्रकृतत र्ें नानापवध प्रततध्वतनयों से पररणत िो र्ाता ि। पवज्ञानभभक्षु सृजष्ट के प्रारम्भ र्ें उत्पन्न िुए एक सवोपरर पुरुर्ष का उल्लेख करता ि, रि्त्व उसके साथ उपाधध अथवा बाह्य पवतनयोग के रूप र्ें था।[1178] यि सवोपरर व्यजक्तत्व अपनेअन्दर एक ओर पुरुर्ष की र्ाजन्त और आनन्द को, जस्थरता तथा र्ौन को, और दूसूरी और प्रकृतत के कोलािलपूण शबािुल्य, संघर्ष शतथा दुःख को एकत्र संयुक्त ककए रिता ि। सवोपरर प्रभु अपनेअन्दर सर्स्त र्ीवनों तथा र्ीरों को[1179] धारण ककए िुए ि, और प्रत्येक व्यजक्तरूप प्राणी इस अनन्त सागर को केवल एक लिर से अधधक और कुछ निीं- पवश्वात्रा् का अंर्ात्र ि। ईश्वर-रि्त् ्प्रारजम्भक एकत्व ि, जर्सर्ें दो भभन्न-भभन्न प्रवृपियांएक-दूसूरे के अन्दर प्रपवष्ट िोकर एक िो गई ि। इस प्रकार वेदोन्त और पुराण भी प्रकृतत को सवोपरर यथाथसिशा पर तनभरश र्ानते ि।'[1180] केवल

1173 त्स्यपुराण किता ि कक ब्रह्मा, पवष्णु और रि्श्वर रि्त्व से ेउत्पन्न िोते ि, रै्से-रै्सेवि ि्र्: रर्तु, सत्त्व तथा तर्स् ्की प्रधानता से ेयुक्त िोता ि।

सपवकारात् ्प्रधानािु रि्त्वं प्रर्ायते।

रि्ातनत्ययतः ख्याततलोंकानां र्ायते ेसदा।

गुणेभ्यः क्षोभ्यर्ानेभ्यस्त्रयो देवा पवर्क्षज्ञरे।

एकरू्ततस्शत्रयो भागा ब्रह्मपवष्णुरि्श्वराः ॥

देणखए इजण्डयन कफलासोकफकल ररव्यू, खण्ड 2, पृष्ठ 200 की पादहटप्पणी, और देणखए भागवत, ।: 3,223)

1174 12, 11419 ।

1175 सांख्यप्रवचन भाष्य, 1:69।

1176 तुलना कीजए : न हि स्वाप्नरज्वा, बन्धनं दृष्टर् ्(सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/20) ।

1177 प्रकृततं ंपश्यतत पुरुर्षः (सांख्यकाररका, 65)।

1178 सांख्यप्रवचनभाष्य, 5/12

1179 वायुपुराण के चौथेर्ें सांख्य-प्रततपाहदत रि्त् ्को ईश्वर अथवा ब्रह्म बताया गया ि। तुलना वीजए पवष्णुपुराण :

"अपवजे्ञेयंब्रह्माग्रे सर्वततश"। सूर्नात्क रुद्रा र्ें हदव्य र्न िी र्गत् ्की आहदस्रोत (र्गद्योतन) ि।

1180 पवष्णु पुराण से ेइसेकायकशारणर्जक्तयुक्त किकर वणनश ककया गया ि। यि सवोपरर प्रभु का (1/2) बाई ि तथा र्ेर्ष से इसेकायकशारणार्जक्त उपतनर्षद् प्रकृतत के पवर्षय र्ें करती ि "पवकारर्ननी र्ायार्दृष्टरूपार्ी धुरुवार"् । और देणखए सांख्यप्रवचनभाष्य, 1/26 ।

इस प्रकार का र्त ि ी सांख्यदर्नश को अधधक संगततपूण शबना सकता ि ै। सांख्य अद्वैतैपवर्षयक आदर्वशाद के सत्य की ऊंचाई तक निींउठता, बजल्क केवल बोघ के उस स्तर तक रिने र्ें ि ी सन्तुष्ट ि ै र्ो सत् ्और असत् ्के भेद पर बल देता ि ै, और दोनों के पवरोध को यथाथ शतथा तादात्म्य को अयथाथ शर्ानता ि ै। इसनेर्ो प्रश्न उठाए ि ैं, उनके अन्दर क्या-क्या तनहित ि ै, इसे ेयि अनुभव निींकर सका। उन प्रश्नों की कहठनाई तथा रि्त्त्व को युग-युग के पवरोध तथा पववाद प्रकार् र्ें लातेरिे ि ैं, ककन्तु बुित कर् सन्तोर्षप्रद सर्ाधान तक पिुंच सके ि ैं। तो भी पवश्व के सम्बन्ध र्ें एक सवतशोग्रिी पवचार तक पिुंचना, जसर्ें न तो यथाथसशिा के ककसी अंर् का दर्न ककया गया ि ै और न ि ी उसे ेखजण्डत ककया गया ि ै, र्ानव-र्जस्तष्क का एक रिान् ्प्रयास ि ै। इससे पूव शकक उनके सत्य सम्बन्ध दृजष्टगत ि ो सकें, वस्तुओं के भभन्न-भभन्न पिलुओंकी स्पष्ट रूप र्ें पररभार्षा ि ोनी चाहिए और उनर्ें भेद हदखाना चाहिए। सांख्य द्वारा ककए गए अनुभव के पवश्लेर्षण ने इस प्रकार एक अधधक उपयुक्त दर्नश के भलए भूभर्तैयार कर दी।

पाचुँवाुँ अध्याय

पतंर्भल का योगदर्नश

प्रस्तावना-पूववशती पररजस्थतत-तनर्ाणशकालऔरसाहित्य-सांख्ंय औरयोगर्नोपवज्ञान-प्रर्ाण-योग की कला-

-

नैततक साधन-र्रीर का तनयन्त्रण- प्राणायार्-इजन्द्रय-तनग्रि- ध्यान-सर्ाधध अथवा एकाग्रता र्ोक्ष कर्-श अलौककक भसद्धधयां- ईश्वर-उपसंिार।

1. प्रस्तावना

तथाकधथत 'आजत्रक' व्यापार के पवर्षय र्ें र्नोव्यापार की अनुसन्धान-सभर्तत के अन्वेर्षणों ने ऐसी प्रकल्पनाओंको जर्न्िें आर् तक वैज्ञातनक सत्य सर्झा र्ाता रिा िै, हिला कर रख हदया, र्ैसेकक यि प्रकल्पना कक बौद्धधक तथा सूतृत सम्बन्धी व्यापार र्जस्तष्क सम्बन्धी उपकरण की अपवकलता पर िी आधश्रत िैं और उसके क्षय के साथ-साथ िी नष्ट िो र्ाते िैं। अतः अब कुछ पवचारक ऐसा पवश्वास करने लगेिैं कक चैतन्य-पवर्षयक कियाओंके भलए र्जस्तष्क का अजस्तत्व सवथशा अतनवाय शनिींिै। र्नुष्य का र्न उन क्षर्ताओं के अततररक्त र्ो पांचं ज्ञानेजन्द्रयों द्वारा प्राप्त िोती िैं, प्रत्यक्षज्ञान सम्पादन की अन्यान्य क्षर्ताएं ंभी रखता िै- यि िर्ें र्नोपवज्ञानर्ास्त्र के वेिा बताते िैं। दार्तशनक भी र्नैः र्नैः इस पवचार को र्ानने लगेिैं कक िर्ारे अन्दर र्जस्तष्क द्वारा तनयजन्त्रत तकश-पवतकश तथा सूतृत के अततररक्त भी अन्यान्य र्ानभसक र्जक्तयांपवद्यर्ान िैं। भारत के प्राचीन पवचारक, जर्न्िें िर् 'तत्त्वज्ञान-पवर्षयक र्नोपवज्ञान' कि सकते िैं, उसके सम्बन्ध र्ें पयाप्शत कियात्र्क ज्ञान रखतेथेऔर 'अदभुत दृजष्ट' तथा तत्सर्ान अन्यान्य र्जक्तयों से भी बबलकुल पररधचत थे। वे र्िें बताते िैंकक िर् बाह्य इजन्द्रयों की सिायता के बबना भी देखने ेतथा र्ानने की र्जक्त प्राप्त कर सकते िैं और उन प्रकियाओं की, जर्नका उपभोग िर् भौततक इजन्द्रयों तथा र्जस्तष्करूपी साधनों द्वारा करते िैं, अधीनता से सवथशा उन्र्ुक्त िो सकते िैं। वे यि स्वीकार करते िैं कक साधारणतया र्ो र्गत् ्िर्ें दृजष्टगोचर िो सकता िै उससेअधधक पवस्तृत र्गत् ्का अजस्तत्व िै। र्ब ककसी हदन िर्ारी दृजष्ट उक्त र्गत् ्को प्रत्यक्ष करने के भलए खुलेगी तो िर्ें पता लगेगा कक िर्ारे प्रत्यक्षज्ञान का क्षेत्र ककतना अधधक पवलक्षण एवं र्िान् ्िै; ककसी अंधेपुरुर्ष को र्ब पिले–पिले ेदृजष्ट प्राप्त िोती िै तो र्ैसा भासता िै, ठीक विी दर्ा िर्ारी भी िोगी। इस र्ित् ्दृजष्ट तथा अन्ततनहिशत र्जक्तयों की अभभव्यजक्त को प्राप्त करनेके भलए पवर्ेर्ष पवधान िै। 'योग' के तनयर्ों का पालन करने से-र्ैसे ेध्यान की र्जक्त को उच्चता तक पिुंचाने, अपने ध्यान को र्जक्त के अगाध स्रोत के ऊपर हटका कर र्न की चपलता का तनग्रि करनेसे व्यजक्त, र्ैसे ेव्यायार् करने वाला अपनेर्रीर को साध लेता िै उसी प्रकार अपनी आत्र्ा को पूणरूशप सेसाधने र्ें सर्थश िो सकता िै। योग की सिायता से िर् चैतन्य के उच्चतर स्तर पर

भारतीय दर्नश-2 301 पिुंच सकते िैं, जर्सका र्ाग शर्ानभसक उपकरण र्ें पररवतशन के द्वारा प्रर्स्त िोता िै, और इस प्रकार वि उन
सीर्ाओंका अततिर्ण कर सकता िै जर्न्िें र्ानवीय अनुभव की साधारण सीर्ाएं ंसर्झा र्ाता िै। योग र्ें िर्
हिन्दू–पूवचारधारा के उन आधारभूत भावों-यथा भौततक र्गत् ्की अपेक्षा आजत्र्क र्गत् ्की श्रेष्ठता, र्ौनसाधन तथा एकान्तसेवन, ध्यान, सर्ाधध और बाह्य अवस्थाओंके प्रतत उदासीनता आहद को स्पष्ट रूप र्ें लक्ष्य कर सकते िैं, जर्नके कारण आधुतनक पवचारकों को हिन्दू ्र्ूरातत की, र्ीवन के प्रतत, परम्परागत प्रवृपि अद्भुत तथा सनकी प्रतीत िोती िै। ककन्तु र्ो उससेपररधचत िैंवे यि स्वीकार करते िैंकक िर्ारी वतर्शान र्नोवृपि को, र्ो बाह्य वस्तुओं के बोझ सेअत्यधधक आिान्त िै और र्ो नीरस, कठोर पररश्रर्, भौततक भलप्सा और इजन्द्रयर्न्य उिेर्ना के कारण आत्र्ा के यथाथ शर्ीवन से सवथशा पवरक्त िै, सुधारने के भलए इस साधना की तनतान्त आवश्यकता िै।

योग बव्द का प्रयोग नाना अथों र्ें िोता िै।'[1181] साधारण रूप र्ें इसका तात्पय श'कियापवधध'[1182] िो सकता िै। कभी-कभी इसका प्रयोग संयोजर्त करने के भलए िोता िै।'[1183] उपतनर्षदों तथा भगवद्गीता र्ें आत्र्ा के पवर्षय र्ें किा गया िै कक वि अपनी सांसाररक और पापर्य अवस्था र्ें सवोपरर आत्र्ा से पृथक् तथा पवरक्त रिती िै। सब पापों तथा दुःख की र्ड यि पृथृक्त्व, भेटभाव तथा पवरजक्त िी िै। दुःख तथा पाप से छुटकारा पाने के भलए िर्ें आध्याजत्र्क एकत्व, अथात्श ्एक के अन्दर दो की भावना, अथात्श ्योग को प्राप्त करना चाहिए। पतंर्भलकृत योगदर्नश र्ें योग का अथ शर्ुडना (एकत्व) निीं, बजल्क र्ात्र प्रयत्न िै, अथवा, र्ैसा कक भोर् का किना िै, पुरुर्ष तथा प्रकृतत के र्ध्य पवयोग िै। यि एक खोर् िै उसकी जर्से ेनावभलस ने 'िर्ारे अतीजन्द्रय अिर्' ्के नार् से पुकारा िै, र्ो िर्ारे अजस्तत्व का दैवीय तथा तनत्य अंर् िै। इसका अथ शप्रयत्न, कठोर पररश्रर् भी िोता िैऔर इस प्रकार इसका प्रयोग इजन्द्रयों तथा र्न के तनग्रि के अथ शर्ें िोनेलगा।'[1184] यद्यपप कभी-कभी इसका सर्ाधध के लक्ष्य के पयायशवाची अथों र्ें भी व्यविार ककया गया िै, पर अधधकतर इसका प्रयोग उस तक पिुंचनेके र्ाग शके अथों र्ें िी ककया गया िै। ऐसेस्थल कर् निीं िैं र्िां ंईश्वर की सवोपरर र्जक्त के भलए इसका प्रयोग ककया गया िै।[1185] पतंर्भल के अनुसार, र्ानवीय प्रकृतत (भौततक तथा आजत्र्क) के भभन्न-भभन्न तत्त्वों के तनयन्त्रण द्वारा पूणतशा-प्राजप्त के भलए ककया गया पवधधपूवकश प्रयत्न िी योग िै। भौततक र्रीर, सकिय इच्छार्जक्त और सर्झने की र्जक्त रखनेवाले र्न को तनयन्त्रण के अन्दर लाना आवश्यक िै। पतंर्भल ने कुछ ऐसेअभ्यास पर बल हदया िै जर्नसे र्ारीररक चंचलता की धचककत्सा िो सकती िै तथा र्भलनता दूर की र्ा सकती िै। और र्ब इन अभ्यासों से िर्ें अधधक र्जक्त, दीघकशालीन युवावस्था और दीघर्शीवन प्राप्त िो र्ाए, तो इनका प्रयोग आध्याजत्र्क र्ुजक्त के भलए करना उधचत िै। धचि की र्ुद्धध तथा र्ाजन्त के भलए अन्य पवधधयों का

1181 देणखए भारतीय दर्नश, खण्ड 1, पृष्ठ 434 - 35।

1182 भगवद्गीता, 3:3 ।

1183 देणखए भारतीय दर्नश, खण्ड 1, पृष्ठ 435। देणखए ऋग्वेद 1/34, 9 , 7:67-68;3:27, 11, 10:30, 11; 10:114,4; 1:5, 3; 1 : 30, 7; र्तपथ ब्राह्मण, 14 : 7, 1, 11। याज्ञवल्क्य के अनुसार र्ीवाला , 114,4 साल का नार् िी योग िै। संयोगो योग इत्युक्तो र्ीवात्र्परर्ात्र्नोररतत 9; 4/24 (सवदशर्नशसंग्रि, 15)।

1184 योगसूत्र, 1 : 1।

1185 भगवद्गीता, 9 : 5। बलदेवकृत प्रर्ेयरत्नावभल, पृष्ठ 14 भी देणखए।

प्रयोग ककया र्ाता ि्ै। पतंर्भल का र्ुख्य लक्ष्य आध्याजत्र्क भसद्धान्त का प्रततपादन निीं, बजल्क कियात्र्क रूप र्ें यि संकेत करना ि्ै कक संयर्ी र्ीवन द्वारा ककस प्रकार र्ोक्ष प्राप्त ककया र्ा सकता ि्ै।'[1186]

2. पूववशती पररजस्थतत

प्राचीन सर्य सेभारत र्ें यि पवचार चला आया ि्ै कक ि्र् साधना द्वारा ऐसी अनेक भौततक और र्ानभसक भसद्धधयां ्प्राप्त कर सकते ि्ैं र्ो साधारण र्नुष्यों र्ें निींपाई र्ातीं, ् और र्ारीररक तथा र्ानभसक कियाओं के संयर् सिेर्ें दु्ःख सेछुटकारा पाने र्ें सिायता भर्लती ि्ै। सर्ाधध और सर्म्ाकि रूछा शके र्ित्त्व के सम्वन्ध र्ें अपररपन पवचार ऋग्वेद र्ें पाए र्ाते ि्ैं, जर्सर्ें 'र्ुतन' र्ब्द भी आया ि्ै।[1187] इसके अनुसार हदव्य प्रकार् पर ध्यान लगाना भजक्त का एक पपवत्र काय शि।[1188] अथववेशद र्ें या पवचार कक कठोर साधना द्वारा अलौककक र्जक्तयांप्राप्त की र्ा सकती ि्ैं, बिुत आया ि्ै।'[1189] उसके पश्चात् ्र्ीघ्र ि्ी तपस्या का भाव उत्पन्न ुिआ, जर्ससे ्ेतनग्रि को एक नैततक स्वरूप हदया र्ानेलगा। अपनेर्न को तनत्य र्ें केजन्द्रत करने के भलए र्नुष्य को सर्स्त सांसाररक सुखोपभोग का त्याग करना चाहिए। उपतनर्षदों के अनुसार योगाभ्यास यथाथसशिा के सत्यज्ञान की चेतनापूण शआन्तररक खोर् ि्ै। ध्यान तया एकाग्रता पर बल हदया गया ि्ै,[1190] क्योंकक आत्र्ा का पवर्षयीरूप र्ें प्रत्यक्ष ज्ञान अन्यवा सम्भव निीं। उपतनर्षदों ने तप और ब्रह्र्चय शको र्िान् ्र्जक्त के उत्पादक गुण बताया ि्ै।'[1191] ऐसी उपतनर्षदें जनर्ें सांख्य के भसद्धांत आते ि्ैं, योग-सम्बन्धी कियाओंका भी वणनश करती ि्ैं। कठ, श्वेताश्वतर और र्ैत्रायणी उपतनर्षदें धाभर्कश भसद्धध के कियात्र्क पक्ष का उल्लेख करती ि्ैं, र्ोकक सांख्य के सैद्धैाजन्तक अन्वेर्षण सेभभन्न ि्ैं। 'योग' एक पाररभापर्षक र्ब्द के रूप र्ें कठ, तैपिरीय और

1186 योगतत्त्व उपतनर्षद् र्ें योग चार प्रकार का बताया गया ि्ै र्ंत्रयोग, लययोग, ि्ठयोग और रार्योग पतंर्भल प्रततपाहदत योग अजन्तर् प्रकार का ि्ै, क्योंकक यि र्न को तनश्चल करनेतथा सर्ाधध अवस्था प्राप्त करनेकी प्रकिया का पवस्तार से ्े प्रततपादन करता ि्ै। ि्ठयोग के र्त र्ें र्ारीररक कियाओंपर आधधपत्य प्राप्त ककया र्ा सकता ि्ै। र्रीर को वर् र्ें करना पतंर्भल के योग का एक भाग ि्ै। र्ंत्रयोग पवश्वास-धचककत्सा पर आधाररत ि्ै । यद्यपप ईसाई पवचारक, र्ो इस पवधध का प्रयोग करते ि्ैं, ऐसा किते ि्ैं कक यि ईसाई र्त तथा पादररयों के प्रभाव का पररणार् ि्ै, तो भी इस पवर्षय का प्रर्ाण भर्लता ि्ैकक पवश्वास-धचककत्सा ककतं एक धर् शतक सीभर्त निीं। र्. क्युई ि्र्ें प्राचीन धचककत्सक का स्र्रण कराता ि्ै। पवश्वास के द्वारा धचककत्सा प्रकृतत की व्यवस्था र्ें ि्स्तक्षेप निीं, जर्सर्ें साक्षात् ्ईश्वर का ि्ाथ अथवा ककसी गौण अततप्राकृततक का प्रवेर् कार् करता ि्ो। र्न्त्रों द्वारा धचककत्सा केवल ऐसी अवस्थाओंर्ें ि्ी सम्भव ि्ै र्िां रोग स्नायु से सम्बन्ध रखता िो और र्जस्तष्क इच्छा की असफलता के कारण, ककसी एक बात के ि्ठात् ्हृदय र्ें र्ानेसे, र्वा र्ानभसक आघात के कारण पवकृत ि्ो गया ि्ो। तुलसी र्सखरे का यि कथन कक "र्ुझेको ऐसी टूटी ि्ड्डी हदखाओ जर्से पवश्वास के द्वारा कफर से ्े र्ोड हदया गया ि्ो, तो र् ्ैंतुम्िारि दायों को सुन सका ि्ंू्ू", एकदर् तनरथकश निीं।

1187 10: 136, 4-5, देणखए भारतीय दर्नश, खण्ड 1, पृषृठ 89-90।

1188 ऋग्वेद, 3/3, 9 10 र्ें गायत्री का उल्लेख आया ि्ै। और देणखए र्ुक्ल यर्ुवेद, 3: 35: 2:8, 12 ।

1189 भारतीय दर्नश, खण्ड 1, पृषृठ 98-99 ।

1190 बृिदारण्यक उपतनर्षद 4 14:35:44: तैपिरीय उप. 1; कठ 3/12 प्रश्न : 5:5 ।

1191 छान्दोग्य उपतनर्षद्, 3/17 4; बृिदारण्यक, 1: 2,6; 3 8, 10; तैपिरीय, 19, 1; 3: 2, I, 3/3 ,1: तैपिरीय ब्राह्र्ण, 22, 3, 3; र्तपथ ब्राह्र्ण, 11/5, 8, 1 ।

रैत्रायणी उपतनर्षदों रें आता िै,[1192] ककन्तु यि निींकिा रा सकता कक उनरें वणणतश योग तथा पतंर्भल का योग एक सरान िै। िो सकता िै कक सराधध का पवचार उपतनर्षदों के उस भसद्धांत से पवकभसत िुआ िो रो परब्रह्र की प्राजप्त अथवा आनुभपवक रीवन की वस्तुओं से रुजक्त की तुलना सुरुषुजप्त के साथ करता िै। कठोपतनर्षद् रें योग की उच्चतर् अवस्था का वणनश करते िुए किा गया िै कक उसरें इजन्द्रयों को रन तथा बुद्धध के साथ सवथशा रान्त भाव रें लाया राता िै।'[1193] इसभलए यि स्वाभापवक िी था कक ऐसेव्यजक्त थेजन्िोंने कृबत्रर् उपायों द्वारा ऐसी रूतछशतावस्था लानेका प्रयत्न ककया। रैत्री उपतनर्षद् रें छः प्रकार के योग का उल्लेखे आता िै और पतंर्भल योगदर्नश के पाररभापर्षक र्ब्दों का प्रयोग पाया राता िै।'[1194] यि प्रकट िै कक पतंर्भल का योग आरजम्भक उपतनर्षदों के काल रें पूणतशा तक निींपिुंचा था, यद्यपप परवती उपतनर्षदों रें िरें इसकी िभर्क उन्नतत हदखाई देती िै।

बुद्ध ने योग का अभ्यास दोनों अथों रें ककया। उन्िोंनेकठोर तपस्याएं भी कीं ंतथा उच्च श्रेणी का धचन्तन भी ककया। लभलतपवस्तर ग्रन्थ के अनुसार, तपस्या की नानापवध पवधधयांबुद्ध के सर्य रें प्रचभलत थीं।[1195] बुद्ध के कुछेक गुरु, रैसे े'आलार', योगपवद्या रें तनपुण थे। बौद्धसूत्र एकाग्रता की योग की पवधधयों से अभभज्ञ िै। बौद्ध र्त रें प्रततपाहदत ध्यान की चार अवस्थाएं ंसाधारण रूप रें र्ास्त्रीय योग की चेतनापूण श एकाग्रता की चार जस्थततयों के साथ अनुकूलता रखती ि।ै[1196] बौद्धर्त के अनुसार, श्रद्धा, र्जक्त, पवचार, एकाग्रता तथा बुद्धध इन पांच गुणों के धारण कर लेनेसेयोग के लक्ष्य की प्राजप्त िो सकती िै'[1197] और योग भी इस र्त को स्वीकार करता िै।'[1198] बौद्ध र्त की योगाचार र्ाखा बौद्ध भसद्धान्त को योग के पववरणों के साथ स्पष्ट रूप रें भर्लाती िै। रवती बौद्ध ग्रन्थ एक पररष्कृत योग पद्धतत का आश्रय लेते ि।ै[1199]

रिाभारत रें सांख्य और योग का उपयोग एक िी पूण शइकाई के दो पूरक अंर्ों के रूप रें ककया गया िै, और ये िरर्ः भसद्धान्त तथा व्यविार अथवा दर्नश तथा धर् शके प्रतीक िैं। ऐसा किा राता िै कक योगदर्नश ईश्वर को छब्बीसवें तत्त्व के रूप रें स्वीकार करता िै। इसके अततररक्त रोक्ष जर्सेप्रारम्भ रें परब्रह्र के साथ तादात्म्य राना कया था, अब आत्रा का प्रकृतत से पृथक्करण िो राता िै, र्बकक परब्रह्र का यि सवतशोग्रिी स्वरूप निींरिा जर्सरें से व्यजक्तरूप आत्राएंप्रादुभूतश िुई, बजल्क वा ईश्वर अथातश ्सिायक िो गया। रिाभारत

[1192] 6/10 |
[1193] छान्दोग्य, 68, 6 भी देणखए।
[1194] 6:18।
[1195] भारतीय दर्नश, खण्ड 1, पृष्ठ 288, हटप्पणी 2।
[1196] योगसूत्र, 1: 17। देणखए भारतीय दर्नश, खण्ड 1, पृष्ठ 346-347।
[1197] र्न्झर्तनकाय, 1: 164 ।
[1198] योगसूत्र, 1/33
[1199] पवस्तृत पववरण भलए देणखए िॉपककंस कृत 'योग टैक्नीक इन हद ग्रेट एपपक' र्नलश आफ हद अरेररकन ओररयण्टल सोसाइटी, 22।

र्ें धारण, प्राणायार् का उल्लेखे ि।'[1200] उक्त र्िाकाव्य के अनेक तपजस्वयों ने चर्त्कारी र्जक्तयों को प्राप्त करने के भलए योग-साधन का आश्रय भलया।[1201] र्िाभारत र्ें इनका बार-बार उल्लेख िुआ ि।'[1202]

उपतनर्षद्, र्िाभारत-जर्सर्ें भगवद्गीता भी र्ाभर्ल ि-र्ैनर्त तथा बौद्धर्त योग सम्बन्धी कियाओं को स्वीकार करते िैं। योग-भसद्धान्त को इतना पुरातन बताया र्ाता ि, जर्तना कक ब्रह्मा ि। पतंर्भल के योग र्ें, तपस्या तथा गिन धचन्तन-पवर्षव र्ो पवचार उस सर्य अस्पष्ट तथा अतनजश्चत रूप र्ें पवद्यर्ान थे ेउन सब का तनचोड पाया र्ाता ि। उन्िोंने उस अस्पष्ट परम्परा को र्ो र्ीवन तथा अनुभव के दबाव से पवकभसत िुई, एक पवधान का रूप दे हदया। पतंर्भल का दर्नश जर्स युग र्ें प्रादुभूतश िुआ, वि उसके धचह्नों को धारण ककए िुए ि। र्िां एक ओर इसर्ें िर्ें अत्यन्त परररष्कृत रिस्यवाद भर्लता ि, विांउससेभर्धश्रत ऐसे अनेक र्त भी भर्लते िैं, र्ो कक उस काल र्ें प्रचभलत धाभर्कश सम्प्रदायों र्ें से तनकले िैं।

वात्स्यायन इसके भी पूववशती एक योग का उल्लेखे करता ि, जर्सके अनुसार आत्र्ा के कर् शके अनुरूप सृजृष्टरचना सम्पन्न िोती ि, और विी राग तथा द्वेर्ष आहद बुराइयों तथा किया की प्रेरणा के भलए जर्म्र्ेवार ि और उसी के कारण असत् का सद्भाव र्ें प्रकट िोना और पवद्यर्ान वस्तुओंका लोप िो र्ाना सब कुछ सम्भव िोता ि।'[1203] यि योग र्ानवीय किया पर बल देता ि, और सांख्य की अपेक्षा कर्र्ीर्ांसा के अधधक तनकट ि, र्ो सत्कायवशाद को र्ानता ि, आत्र्ा के परर् रूप र्ें पवश्वास रखता ि तथा र्रीर, इजन्द्रयों, र्न और भौततक गुणों के साथ संयोग को चेतना व्यापारों का कारण र्ानता ि। इस प्रकार वात्स्यायन के अनुसार, सांख्य तथा योग र्ें परस्पर अत्यधधक र्तभेदे ि; यिांतक कक आत्र्ा के स्वरूप, कियार्ीलता और काय-शकारण-सम्बन्ध र्ैसे र्ूल प्रश्नों पर भी र्तभेद ि। यहद सांख्य दर्नश के साथ कियार्ीलता के भसद्धान्त पर बल देनेका भाव संयुक्त कर हदया र्ाए तो िर् प्राचीन र्ास्त्रीय योग का नर्ूना प्राप्त कर सकते िैं।

3. तनर्ाणशकाल और साहित्य

पतंर्भल का योगसूत्र योग-सम्प्रदाय का प्राचीनतर् पाठ्यग्रन्थ ि। इसके चार भाग ि जर्नर्ें पिले भाग र्ें सर्ाधध के स्वरूप तथा लक्ष्य का प्रततपादन ककया गया ि। इसे 'सर्ाधधपाद' किते िैं। द्पवतीय भाग 'साधनापाद' र्ें लक्ष्य प्राजप्त के साधनों की व्याख्या ि। तीसरे र्ें उन अलौककक भसद्धधयों का वणनश ि र्ो योग की कियाओं द्वारा प्राप्त की र्ा सकती िैं। यि 'पवभूततपाद' किलाता ि। और चौथेर्ें र्ोक्ष का स्वरूप बताया गया

1200 12 :11683-84 ।

1201 12/326, 8 ।

1202 12:340-55; 12.303, 163; 13.14, 420.

1203 पुरुर्षकर्ाहदशदतनभर्त्ता भूतसगःश, कर्िेतवो दोर्षाः, प्रवृपिश्च स्वगुणपवभर्ष्टाश्चेतना असदुतुपद्यत उत्पन्नंतनरुध्यत इतत योगानार् (न्यायभाष्य, 1 1, 29)। उद्योतकर का किना ि कक इस योग के अनुसार इजन्द्रयों के अंग पंचभूतों से तनभर्तश िुए िैं।

ेि यि 'कैवल्यपाद' िै।'[1204] याज्ञवल्क्यसूतृत के अनुसार, योगदर्नश का आहद संसं्थापक हिरण्यगभ शथा, और राघव तनदेर् करता िै कक 'इसके साथ पतंर्भल के योगदर्नश का रचतयता िोनेरं् कोई पवरोध यों निंीिंता क्योंकक स्वयं पतंर्भल ने अपने ग्रन्थ को 'अनुर्ासन' किा िै, जर्सरं् 'अनु' उपसग शका अथ शिी बताता िै कक पतंर्भल का कथन एक प्रारजम्भक रिस्योद्घाटन के पीछे आता िै और यि उक्त दर्नश-पद्धतत का अपनेआप रं् श ्र्भिाष्यकता)श पतंर्भल का काल द्पवतीय तर्ाब्दी ई. पू. प्रथर् सूत्रीकरण निंीिं।[1205] वैय्याकरण (अथात बताया गया िै,'[1206] यद्यपप उक्त वैव्याकरण पतंर्भल और योगसूत्र के रचतयता पतंर्भल दोनों एक िी व्यजक्त थे-यि अभी भसद्ध निंीिं सिका िै।[1207] योगसूत्र पर व्यास का भाष्य (चौथी तर्ाब्दी ई.) योग के भसद्धान्तों की सवर्शान्य व्याख्या िै। वाचस्पतत ने व्यास के भाष्य पर एक वृपि 'तत्त्ववैर्ारदी' (नौवीं ्र्ताब्दी) भलखी िै। भोर्कृत 'रार्तण्शड' एक अत्यधधक रि्त्वपूण शग्रन्थ िै। पवज्ञानभभक्षुका 'योगवाततकश', र्ो योगभाष्य पर एक प्रचभलत टीका िै, और 'योगसारसंग्रि- दोनों पुस्तकें उपयोगी िैं। उक्त ग्रन्थकता शकुछ पवर्षयों पर वाचस्पतत के पवचारों को आलोचना करता िै और योगदर्नश को उपतनर्षदों के दर्नश के सर्ीप लाने का प्रश्न करता िै।'[1208]

1204 क्योंकक अन्य सम्प्रदायों की सर्ीक्षाएं योगसूत्र के चौथे भाग रं् आती िैं और 'इतत' र्ब्द र्ो ग्रन्य की सर्ाजप्त का द्योतक िै, तीसरे भाग के अन्त रं् आया िै, इससे यि प्रतीत िोता िै कक चौथा भाग पीछे ते भर्लाया गया िै। देणखए दास

गुप्ता हिस्री आफ इंडडयन कफलासफी, पृषृठ 230 ।

1205 सवदर्शनर्शसंग्रि, 15।

1206 पतंर्भल का योगसूत्र दूसूरी तर्ाब्दी ई. पू. रं् रचा र्ाना र्ाता िै, यद्यपप कुछ की सम्रतत यि िै कक यि बिुत पीछे का अथात्श ्चौथी तर्ाब्दी ई. का िै। परर्ाणुवाद (140), सौत्राजन्तकों की सर्य-सम्बन्धी प्रकल्पना कक काल क्षणों की श्रृंखला िै (3:52), स्फोटवाद (देणखए योगभाष्य, 3: 17) तथा बौद्ध आदर्वशाद (4: 15-17) का उल्लेख योगसूत्र रं् आया िै।

यि र्ानकर कक वैरे्पर्षकसूत्र रं् वसुबन्धु के आदर्वशाद की सर्ीक्षा की गई िै, प्रोफेसर वुडु्स योगसूत्र के तनर्ाणशकाल की पूवतशर सीर्ा चौथी तर्ाब्दी ईः रखतेिं। उनकी सम्रतत इस तथ्य से पुष्ट िोती प्रतीत िोती िै कक नागारु्नश नेअपनी 'काररका' रं् 'योगदर्नश' का उल्लेख निंीकिया िै। यि तकश िरं् दूरू तक निंीले र्ाता, क्योंकक यि स्वीकृत तथ्य िै कक नागारु्नश के 'उपायकौर्ल्यहृदयर्ास्त्र' के चीनी अनुवाद रं् योग का उल्लेख दर्नशर्ास्त्र की आठ र्ाखाओं रं् से एक र्ाखा के रूप रं् भर्लता िै, और बौद्ध आदर्वशाद का सर्य वसुबन्धु तथा असंग से पूववशती र्ाना र्ा सकता िै। रै्कोबी के पवचार रं्, योगदर्नश 300 ई. पू. रं् पवद्यर्ान था। उर्ास्वाततकृत 'तत्त्वाथसूशत्र', 2: 52, रं् योगसूत्र, 3 22 का उल्लेख िै। उर्ास्वातत, र्ो अपनेटीकाकार भसद्धसेन (पांचवीं तर्ाब्दी) सेपूव शका िोना चाहिए, साधारणतः तीसरी तर्ाब्दी ई. का र्ाना र्ाता िै। इस प्रकार पतंर्भल का सर्य 300 ई. के पश्चात् ्का निंीं िो सकता।

1207 भोर् योगसूत्र पर अपनी टीका, 'रार्तण्शड' (प्रस्तावना, पृषृठ 5) रं् किता िै कक उसनेव्याकरण, योग और वैद्यक पवर्षयों पर ग्रन्थ भलखे,े और इस प्रकार "पतंर्भल के सर्ान िर्ारी वाणी, धचिों तथा र्ीरों के रिं् को दूरू ककया।" इस तरि वि व्यक्त करता िै कक पतंर्भल ने व्याकरण (वाणी), योग (धचि) और वैधक (र्ीर) के पवर्षयों पर ग्रन्थ भलखे। यि सबसे पूववशती उल्लेख िै, तो भी इस पवर्षय रं् सन्दिे िै कक प्रस्तावना। भोर् की भलखी िुई िै। बुडूस नेअपने 'उण्रोडक्र्न टू हद योग भसस्टर्' (िावडश शओररयण्टल सीरीर्) नार्क धन्य रं् र्िाभाष्य के रचपविस अपनेपतंर्भल तथा योगसूत्र के रचतयता पतंर्भल को एक र्ाननेका पवरोध ककया िै। उक्त दोनों ग्रन्थों रं् र्ाकर भार्षा-सम्बन्धी और न भसद्धान्त-सम्बन्धी िी सर्ानताएं पाई र्ाती िैं। र्िान वैव्याकरणों, रै्सेभतृिशरर, कैय्यट, वार्न और गंगेर् नेयोगसूत्र के रचतयता की वैय्याकरण के साथ एकात्र्ता का किंीउल्लेख निंीककया।

1208 योगदर्नश पर भलखे ेगए अन्य ग्रन्थों रं्, रै्साकक नागोर्ी भट्ट (नागेर् भट्ट), नारायण भभक्षु और र्िादेव के ग्रन्थों रं्, अपनी पूवधशारणाओं के अनुरूप, पतंर्भल के पवचारों को पररवतततश ककया गया िै।

प्रत्येक पवचार-पद्धतत योग की पवधधयों का उपयोग अपनेहित के भलए करती िै। कुछ परवती उपतनर्षदें-यथा रैत्री, र्ाजण्डल्य, योगतत्त्व, ध्यानपवन्दु, ु रंग, वरिा और नादबबन्दु–योग के भसद्धान्तों को बिुत र्ित्त्व देती िैं।

4. सांख्य और योग

पतंर्भल ने योग के पवचारों को व्यवजस्थत रूप हदया और उन्िें सांख्य की तत्त्वज्ञान-सम्बनों पृष्ठभूभर् पर जस्थत ककया, जर्से ेउन्िोंने पररवतनश के साथ स्वीकार कर भलया। प्रारजम्भक ग्रन्दों र्ें योग के भसद्धान्त सांख्य के पवचारों के साथ िी भर्लते िैं।[1209] योग ने पच्चीस तत्त्वों को स्वीकार कर भलया और उनके सम्बन्ध र्ें पववाद की कोई आवश्यकता अनुभव निींकी। पवश्व की रचना निींिुई और यि तनत्य िै। इसर्ें पररवतनश अवश्य िोते ेरिते िैं। अपनी ताजत्त्वक अवस्था र्ें इसे ेप्रकृतत के नार् से पुकारा र्ाता िै, जर्सका सिचय शगुणों के साथ िै और उस रूप र्ें यि सदा वैसा िी िै। र्ीवात्र्ाएं असंख्य िैं, र्ो र्ीपवत प्राणणयों र्ें र्ीवन फूंकती िैं और स्वभाव से तनर्लश, तनत्य और तनपवकशार िैं। ककन्तु पवश्व के साथ सम्बन्ध िोनेसे वे परोक्ष रूप र्ें सुखों तथा दु:खों के अनुभव करनेवाली बनती िैं और अपने सांसाररक र्ीवन र्ें नाना प्रकार की र्ीराकृततयों को धारण करती िैं। प्रकृतत के पवकास के पवर्षय र्ें योग का र्त िै कक पवकास की दो सर्ानान्तर पद्धततयााँ र्ित् ्से आरम्भ करती िैं और एक पक्ष र्ें अिंकार, र्न, पांचं ज्ञानेजन्द्रयों तथा पांचं कर्ेजन्द्रयों के रूप र्ें पवकभसत िोती िैं, तथा दूसूरे पक्ष र्ें, पांच सूक्ष्र् तन्र्ात्राओंद्वारा पांच र्िाभूतों र्ें पवकभसत िोती िैं। व्यास के अनुसार, र्िाभूत पांच सारतत्त्वों से तनकले िैं, और ग्यारि इजन्द्रयां ंअिंकार अथवा अजस्र्ता से तनकली िैं। तन्र्ात्राएं ंअिंकार से निींतनकलीं,ं बजल्क वे अजस्र्ता के साथ छः अपवर्ेर्ष किाती िैं और उनकी उत्पपि र्ित् ्से िुई िै। पवज्ञानभभक्षु ुका पवचार िै कक व्यास ने केवल बुद्धध के पररवतनशों को दो पवभागों र्ें वणणतश ककया िै, ककन्तु उनका तात्पय शइस प्रकार का सुझाव देनेसे निीं कक र्ित् ्से तन्र्ात्राओं की उत्पपि अिंकार पर आधश्रत निीं ंिै।'[1210] सांख्य र्ें, अिंकार साजत्त्वक रूप र्ें इजन्द्रयों को र्न्र् देता िै, और तर्ोरूप र्ें तन्र्ात्राओंको र्न्र् देता िै, और ये दोनों िी र्ित् ्र्ें अवरुद्ध रिते िैं। इस प्रकार सांख्य और योग का पवकास-पवर्षयक यि भेद कुछ अधधक गम्भीर निीं। िर् देखते िैं कक योग सांख्य-प्रततपाहदत तीन आभ्यन्तर इजन्द्रयों को 'धचत्'् का नार् देता िै। यि अिंकार और र्न की बुद्धध से पृथक् निींसर्झता। इजन्द्रयों को भी यि स्वरूप र्ें भौततक िी र्ानता िै और इसभलए सूक्ष्र् र्ीर र्ानने की कोई आवश्यकता निींरि र्ाती। वस्तुओं के यथाथ शस्वरूप के पवर्षय र्ें अज्ञान िी इच्छाओं आहद को र्न्र् देता िै, और ये इच्छाएं ंिी संसार र्ें सर्स्त दु:ख का आधार िैं। अज्ञान का आहद-उद्भव क्या िै इस प्रकार का प्रश्न उठाना तनरथकश िै, क्योंकक स्वयं संसार िी अनाहद िै। प्रलयकाल र्ें भी र्ीवात्र्ाओं के धचि प्रकृतत की अवस्था र्ें लौट र्ाते िैं और उसकाहद िै। प्रलयकाल र्ें अपवद्याओं के साथ सर्ापवष्ट रिते िैं। प्रत्येक नई सृजष्ट अथवा पवश्व के पवकास के सर्य इनकी रचना नये भसरे से िोती िै, जर्नर्ें व्यजक्तगत अपवद्याओं के कारण उधचत

[1209] देखें कठोपतनर्षद् । योगसूत्र पर व्यासकृत वृपि का नार् सांख्यप्रवचनभाष्य िै, र्ो सांख्य तथा योग र्ें परस्पर घतनष्ठ सम्बन्ध प्रदभर्तश करता िै।

[1210] योगवाततकश, 1/45 ।

कारवलय िो राते िैं। वे अपवद्याएं अपने को धचिों के अन्दर क्लेर् के रूप रें अभभव्यक्त करतान पवनते ेआगे े चलकर कर्ाशय, रातत, आयु और भाग प्राप्त िोते िैं। योगदर्नश के अनुसार, ईश्वर तथा अपवद्या इन दो प्रेरक र्जक्तयों के द्वारा सृजृष्ट की रचना िोती िै। अपवद्या के बत से प्रकृतत की सदा चि रें रिनेवाली र्जक्त अपने-आपको रानभसक तथा भौततक र्गत् ्के पररवतनशों रें पररवतततश कर लेती िै, तथा ईश्वर प्रकृतत के आधधपत्य के बिार रिते िुए भी प्रकृतत द्वारा उपजस्थत की गई बाधाओंको दूरू कर सकता िै। अपवद्या बुद्धधरून्य िोनेके कारण असंख्य पुरुर्षों की इच्छाओंसेअनभभज्ञ िै। ईश्वर प्रज्ञासम्पन्न िोनेसे प्रकृतत िे पररवतनशों को पुरुर्षों के लक्ष्यों के अनुकूल बनाता रिता िै। रीवात्रा प्रकृतत रें भलप्त रिने के कारण अपनी तनर्लशता तथा तनदोर्षता से च्युत िो राती िै। योगदर्नश के अनुसार, र्नुष्य प्रकृतत के इतना अधीन निींिै जर्तना कक सांख्य के अनुसार िै। उसे ेअधधक स्वातन्य् प्राप्त िै और ईश्वर की सिायता से, वि अपनी रुजक्त प्राप्त कर सकता िै। सांख्य और योग दोनों रें िी एक सरान र्र् का चि, अपनेनाना दुःखों के साथ, एक ऐसा पवर्षय िै जर्ससे ेछुटकारा पाना िै। प्रधान आत्रा का संयोग इस संसार का कारण िै। इस संयोग के पवनार् का नार् िी रोक्ष िै और उसका साधन िै पूण शअन्तदृजशष्ट।'[1211] आत्रा द्रष्टा िै और प्रधान ज्ञान का पवर्षय (प्ररेय)[1212] िै। इन दोनों का संयीग िी संसार का कारण िै।

रोक्ष का लक्ष्य पुरुर्ष का प्रकृतत से पृथृक् िो राना िै, और इस लक्ष्य की पूतत शदोनों रें भेदे करने से िोती िै। रिां ेसांख्य के र्त रें ज्ञान िी रोक्ष का साधन िै, विां ेयोगदर्नश धचि की एकाग्रता तथा कियात्रक प्रयत्न पर बल देता िै।'[1213] रैसाकक िर् देख चुके िैं, भगवद्गीता तथा श्वेताश्वतर उपतनर्षद् 'योग' कियात्रक प्रयत्न अथवा अनासजक्तभाव से कर् शकरने के राग शसे रोक्ष प्राप्त क का नार् िै।[1214] इस प्रकार रिां ेसांख्य ताककशक अन्वेर्षणों रें व्यग्र िै, विांयोग भजक्तया का नार् िै। िर् प्र तथा रानभसक तनग्रि का पववेचेन करतीभलए इस कोर सुश्वरपरक पवचार प्रकट करने के भलए बाध्य िोना पडा, इसीभलए इसे ेकपपल के तनरोग सांख्य से भभन्न करके

1211 दुःखबिुलः संसारो िेयः, प्रधानपुरुर्षयोः संयोगो िेयिेतुः। संयोगस्यात्यजन्तकी तनवृपिृिाशनर्् ् िानोपायः सम्यग्दर्नशर् ् (योगभाष्य, 2:15)।

1212 2:18 ।

1213 र्धुसूदन सरस्वती ज्ञान और योग को रोक्षप्राजप्त के भलए भभन्न-भभन्न प्रकार के दो साधन बताता िै, को भगवद्गीता, 6: 29, पर अपनी टीका रें योगवाभसष्ठ रें से इस प्रकार का एक उद्धरण देता िै : "र्न को जिभाव आहद के साथ दर्न करने के योग और ज्ञान दो साधन िैं। रानभसक किया के दर्न का नार् और वयाथग्रशिण का नार् ज्ञान िै। कुछ र्नुष्य ऐसे िोते िैं जर्नके भलए योग सम्भव निीं िै, और अन्य कुछ ऐसेिैं जर्नके भलए ज्ञान सम्भव निींिै।"

द्वौ िरो धचिनार्स्य योगो ज्ञानंच राघव ।
योगो वृपिृतनरोधो हि ज्ञानंसम्यगवेक्षणर् ्।
असाध्यः कस्यधचद् योगः कस्यधचत् ्तत्त्वतनश्चयः ।

तुलना कीजए भागवत : तनवाणशानां ज्ञानयोगो न्याभसनाभरि् कर्सुश (भगवद्गीता, 5: 5; योगसारसंग्रि, 1: 7) यि सब िरारी र्नोवैज्ञातनक वृपिृ पर तनभरश करता िै । सम्भवतः अन्तर्ुखश व्यजक्त योग का आश्रय लेगा, र्बकक बहिर्ुखश व्यजक्त सांख्य की ओर प्रविृ िोगा।

1214 भगवद्गीता, 13 24 र्िाभारत भी देणखए 12/11697 - 11707 और देणखए सवभशसद्धान्तसारसंग्रि, 10:4-6, रिां योगदर्नश के अनुसार केवल ज्ञान को अपयाप्शत बताया गया िै ।

सेश्वर सांख्य की संज्ंञा दी गई। योग का उद्देश्य र्ानव को प सांख्यचन से र्ुक्त कराना ि ै। प्रकृतत का उच्चतर् रूप धचि ि ै, और योग उस र्ाग शतनदेर् करता ि ै जर्सके द्वारा र्नुष्य अपनेको धचि के बन्धनों से उन्र्ुक्त कर सकता। तनदेधचस को उसके स्वाभापवक व्यापारों से िटाकर सांसाररक दु्ःख पर पवर्य प्राप्त क सकते ि ैं तथा संसार से छुटकारा पा सकते ि ।ैं

5. र्नोपवज्ञान

सांख्य जर्से े'र्ित्'् किता ि ै, योग उसे ि ी 'धचि' किता ि ै।'[1215] इसकी उत्पपि प्रकृतत से सदर पिले ि ुई, यद्यपप इसे ेसवतशोग्रिी अथों र्ें भलया र्ाता ि ै। जर्ससे ेइसके अन्तगतश बुद्धध, आत्र्वैगन तथा र्न भी सजम्र्भलत ि ैं।'[1216] यि तीनों गुणों के अधीन ि ै और तिद् गुण के प्राधान्य के बात नानापवध पररवतनशों र्ें से गुर्रता ि ै। ताजत्त्वकरूप र्ें यि अचेतन ि ै, यद्यपप यि तनकट जस्थत आत्र्ा के प्रततबबम्ब से सचेतन ि ो र्ाता ि ै। र्ब यि इजन्द्रयों द्वारा प्रर्ेय पदाथों से प्रभापवत ि ोता ि ै तो पररवतनशों र्ें आ र्ाता ि ै। इसके अन्दर प्रततबबजम्बत पुरुर्षों के चैतैन्य से ऐसा आभार ि ोनेलगता ि ै कक यिी अनुभव का कििशी। यथाथ शर्ें, धचि दृश्य ि ै जर्सका प्रततपवम्व इं कारण आत्र्ा द्रष्टा ि ै। कारणरूप धचि आकार् के सर्ान सवव्शयापक ि ै, और जर्तने पुरुर्ष ि ैं उतनिी धचि भी ि ैं क्योंकक प्रत्येक पुरुर्ष के साथ एक-एक धचि सम्बद्ध ि ै। धचि पूवानुशर् र्ीवनों र्ें नानापवध आश्रयस्थानों के अनुकूल भसकुडता तथा फैलता रिता ि ै। र्ब पुरुर्ष एक पर्ु र्ीर धारण करता ि ै तो यि संकुधचत प्रतीत ि ोता ि ै और पुरुर्ष के र्नुष्यदेि धारण कार पर यि अपेक्षाकृत प्रसाररत प्रतीत ि ोता ि ै। इस प्रकार का संकुधचत अथवा प्रसाररत धचि कायधशचत ि ै, र्ो चैतन्य की दर्ाओं र्ें अपनेको व्यक्त करता ि ै। र्ृत्यु के सर्य कारणधचि, र्ो सय पुरुर्ष के साथ सम्बद्ध रिता ि ै, अपनेको कायधशचि के रूप र्ें नये र्ीर र्ें अभभव्यक्त करता ि ै, जर्सका तनर्ाणश पूवर्शन्र् के पुण्य व पाप कर्ों के अनुसार प्रकृतत द्वारा ि ुआ ि ै। योग इस प्रकार के पृथृक् सूक्ष्र् र्ीर के अजस्तत्व को स्वीकार निींकरता जर्सर्ें धचि बन्द रि।[1217] र्िां ेकारणधचि सदा पवभु अथात्श ्सवव्शयापी रिता ि ै, यि कायधशचि अपनेआश्रयरूप र्ीर के अनुकुल भसकुडा अथवा फैला ि ुआ प्रतीत

ि ोता

ि ै।'[1218]

योगसाधन का यि उद्देश्य ि ै कक रर्ोगुण तथा तर्ोगुण का दर्न करके धचि को उसके र्ूल स्वरूप, अथात्श ्सवव्शयापी कारणधचि, र्ें लौटा दे। र्ब धचि को अपना सवव्शयापी रूप पुनः प्राप्त ि ो र्ाता ि ै तो योगी सवज्ञशता प्राप्त कर लेता ि ै। र्ब यि पुरुर्ष के सर्ान तनर्लश ि ो र्ाता ि ै तो पुरुर्ष को र्ोक्ष प्राप्त ि ो र्ाता ि ै। धचि

1215 वेदान्त र्ें धचि का प्रयोग बुद्धध के पयायशवाची रूप र्ें या इसके पररवतनशों के भलए ि ुआ ि ै। देर वेदान्तसार।

1216 धचिर्बेनान्तःकरणं बुद्धधरुपलक्ष्यतत (वाचस्पतत), योगसूत्र, 1 : 1 पर।

1217 तत्त्ववैर्ारदी, 4:10 ।

1218 परन्तु सांख्य धचि को अतनवाय शरूप र्ें सवव्शयापक निीं र्ानता। योगसूत्र, 4: 10, पर व्यास तथा पाच को देणखए । तुलना करें, नागेर्: सांख्याः प्रततपुरुर्ष सवर्शरीरसाधारणर्ेकैकर्ेव धचिर् ्। ककन्तु घटप्रसादरूपं स्वत्यर्िदाश्रयभेदेन प्रदीपवत स्वल्पर्िच्छरी रर्ेदेन, संकोचपवकासचाभलतया स्वल्पर्ित्पररर्ाणज्च, न तु पवभु, 4:10 ।

के द्वारा ि◌ी पुरुर्ष पदाथों से अभभज्ञ ि◌ोता ि◌ै तथा इस गत् ◌्के सम्बन्ध र्◌् प्रपवष्ट ि◌ोता ि◌ै।'[1219] धचि का अजस्तत्व पुरुर्ष के भलए ि◌ै, र्◌ो पवचार, संवेदना तथा इच्छा से भी अधधक अगाध ि◌ै।[1220] ज्ञान र्◌् पुरुर्ष अथात्श ◌्आत्र्◌ा का स्वरूप पररवतततश निीं ◌ंि◌ोता, यद्यपप इसे ◌ेज्ञान का अधधष्ठान किा र्◌ाता ि◌ै।'[1221] र्ब चैतन्य पवचार करनेवाले द्रव्य अथात्श ◌्धचि रूपी दपणश र्◌् प्रततबबजम्बत ि◌ोता ि◌ै तथा तदाकार ि◌ो र्◌ाता ि◌ै, र्◌ैसेकक धचि पदाथ शके आकार को धारण कर लेता ि◌ै, तब पररणार्स्वरूप ज्ञान उत्पन्न ि◌ोता ि◌ै। धचि पररवतततश ि◌ो र्◌ाता ि◌ै और र्◌ो पदाथ शउसके सर्क्ष प्रस्तुत ि◌ोते ि◌ैं उनका रूप धारण कर लेसकता ि◌ै, ककन्तुयि र्◌ो देखता ि◌ै उसका प्रत्यक्षज्ञान निींप्राप्त कर सकता, क्योंकक यि अपने स्वरूप र्◌् अचेतन ि◌ै ।'[1222] इस पर पडता ि◌ुआ आत्र्◌ा का प्रततबबम्ब ि◌ी इसे ◌ेप्रस्तुत पदाथ शका प्रत्यक्ष ज्ञान कराता ि◌ै। सर्स्त पवर्षयतनष्ठ ज्ञान र्◌्, धचिपवर्षय तथा पवर्षयी दोनों से प्रभापवत ि◌ोता ि◌ै। धचि के सदा पररवतनशर्◌ील ि◌ोनेपर भी ि◌र्◌ारा ज्ञान जस्थर ि◌ोता ि◌ै, क्योंकक आत्र्◌ा, र्◌ो वास्तपवक ज्ञाता ि◌ै, जस्थर ि◌ै। किफर क्योंकक धचि र्◌् एक सर्य र्◌् एक ि◌ी पररवतनश ि◌ो सकता ि◌ै, इसभलए आत्र्◌ा एक सर्य र्◌् एक ि◌ी ज्ञान प्राप्त करती ि◌ै। इस प्रकार ि◌र्◌् धचि तथा पदाथ शदोनों का ज्ञान एक ि◌ी साथ प्राप्त निींकर सकते।[1223] प्रत्यक्ष देखे गए पदाथ शिर्◌ारे प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वतन्त्र अपना अजस्तत्व रखते ि◌ैं। र्◌ो वस्तु के ज्ञान को उत्पन्न करता ि◌ै वि स्वयं वस्तु को उत्पन्न निीं करता।[1224] दो भभन्न-भभन्न पवचार एक काल र्◌् उत्पन्न निीं ि◌ो सकते।'[1225] धचि र्◌् उत्पन्न ि◌ुए प्रभाव अपने अवभर्ष्टांर्◌् छोड र्◌ाते ि◌ैं, र्◌ो प्रयोनों, इच्छाओं, नये र्न्र्◌ों और आगार्◌ी अनुभवों के कारण ि◌ोते ि◌ैं। धचि के व्यापार (कियाएुँ) सम्भाव्य क्षर्ताएं उत्पन्न करते ि◌ैं, और वे अपनी ओर से अन्य सम्भाव्यताओंको उत्पन्न करती ि◌ैं, और इस प्रकार यि संसारचि बराबर चलता रिता ि◌ै।'[1226] इन सम्बन्धों से वासनाएं ◌ंतथा इच्छाएं ◌ंउदय ि◌ोती ि◌ैं, और व्यजक्तत्व का भाव उत्पन्न ि◌ोता ि◌ै। यि सांसाररक र्◌ीवन वासनाओं तथा इच्छाओंसेबना ि◌ै। पवर्षयी अिभाव सेभभन्न ि◌ै, र्◌ोकक सांसाररक अनुभव पर तनभरश ि◌ै। अिभाव का र्◌ीवन श ◌्अतनत्य को बेचैन तथा असन्तुष्ट ि◌ै, क्योंकक यि इन पांच प्रकार के क्लेर्◌ों के अधीन ि◌ै : अपवद्या, अथवा सर्झना, अपपवत्र को पपवत्र सर्झना, दु:खदायी को सुखदायी सर्झना, तथा अनात्र् को आत्र् र्◌ानना।[1227]

1219 1/2 2:6, 17 और 20।

1220 धचत आत्र्◌ा के संसग शर्◌् निीं, ककन्तु केवल इसके सर्◌ीप ि◌ै। यि सार्◌ीप्य इसके साथ आत्र्◌ा के ककसी दैभर्क अथवा काभलक सि-सम्बन्ध का पररणार् निीं। पवभर्ष्ट लक्षण यि ि◌ै कक आत्र्◌ा धचि के साथ नैसधगकश सार्◌ंर्स्य (योग्यता) धारण ककए ि◌ुए रिती ि◌ै। आत्र्◌ा अनुभव कर सकती ि◌ै और धचि अनुभव का पवर्षय ि◌ै। । धचि को, र्बकक यि पररवतततश ि◌ोकर नानापवध पदाथों का रूप धारण करता ि◌ै, अनुभव का पवर्षय बताया गया ि◌ै (वाचस्पतत, 1/4)

1221 2:20 ।

1222 4/17 - 19 ।

1223 4:20 ।

1224 4/16 ।

1225 4:19 ।

1226 एव वृपिसंस्पच्चिर्तनर्◌ावततेश। (योग्यभाष्य, 1/5)

1227 2:51 पुरुर्ष तथा बुद्धध के र्ध्य र्◌ो भेद ि◌ै उसकी केवल अख्यातत (न देखना) ि◌ी अपवद्या निीं, बजल्क उसकी अन्यथाख्यातत (भर्थ्यारूप र्◌् देखना) भी अपवद्या ि◌ै, जर्सके कारण ि◌र्◌् बुद्धध को आत्र्◌ा र्◌ान लेते ि◌ैं, और उसे ◌ेतनर्लश, तनत्य तथा सुख का उद्भव-स्थान सर्झनेलगते ि◌ैं। अपवद्या क्लेर् तथा कर्◌ाशय और इनके फलों की सनातन श्रृंखला का र्◌ूल ि◌ै (योगभाष्य, 2/5) ।

अजस्ता, अथात्श ्रीर तथा र्न के उपकरणों रें आत्रभाव रर्वर् र्ान लेना।[1228] राग, अथात्श ्सुखकारी पदाथों रें भलप्त िो र्ाना। द्वेर्, अथात्श ्दु:खदायी पदाथों से घृणा। अभभतनवेर् अथात्श ्र्ीवन के प्रतत सिर् आसजक्त तथा रृत्यु का भय ।'[1229] आत्रा तथा धचि के सम्बन्ध का पृथक् िो र्ाना िी रोक्ष िै। र्ब आत्रा धचि से स्वतन्त्र िो र्ाती िै तो यि अपनेस्थान पर लौट आती िै-वासना से रहित, तनष्प्रयोर्न तथा अर्रीरी िो र्ाती िै। पुरुर् अपनेसत्त्वस्त्वरूप रें केवल र्न की कियाओंका दर्कश िै। और र्ब र्न (धचि) कियार्ील िोता िै तो आत्रा नानापवध अवस्थाओंका अनुभव करती प्रतीत िोती िै, और र्ब र्न (धचि) सराधध के अन्दर र्ान्त तथा तनश्चल रिता िै तो आत्रा अपने यथाथरूशप रें तनवास करती िै।

रिां ्योग एक ओर सांख्य की भेदज्ञान द्वारा रोक्ष की प्रकल्पना को र्ान लेता िै, विांइसका रुख्य बल रोक्षप्राजप्त के अन्य साधनों अथात् श ्र्ानभसक कियाओंके दर्न पर िै। र्ानभसक कियाओं के दर्न को सुरुषुजप्त अवस्था के सर्ान न र्ान लेनो चाहिए। वोग अथवा एकाग्रता द्वारा िर् कृबत्रर् स्तरों को िटाते िुए आन्तररक आत्रा तक पिुंचते िैं। एकाग्रता धचि का इसकी पांचों जस्थततयों रें एक गुण िै।"[1230] र्ब रर्ोगुण का आधधक्य िोता िै तो धचि क्षक्षप्त अथवा बेचैन िोता िै तथा पदाथों द्वारा इतस्ततः चलायर्ान रिता िै। िर् अपनी वासनाओं तथा प्रयोर्नों सेप्रेररत िोकर पदाथों पर ध्यान गडा सकते िैं, ककन्तु इस प्रकार की एकाग्रता िरें यथाथ शरुजक्त रें सिायक निीं िो सकती। र्ब तर्ोगुण का आधधक्य िोता िै तो धचि रूढ़ िो र्ाता िै और तनद्रारूप पररवतनश के अधीन िो र्ाता िै। वि पवक्षक्षप्त िोता िै, क्योंकक प्रायः प्राकृततक दोर्ों अथवा आकजस्क आपपियों के कारण यि अजस्थर रिता िै। साधारण र्न इस अवस्था रें सुखदायक पवर्यों का पीछा करता िै तथा दु:खदायी पवर्यों से दूरू िटता िै। इन तीनों को अपूण शकिा गया िै क्योंकक ये तीन गुणों से सम्बद्ध िैं। र्ब र्न ध्यान के योग्य ककसी एक िी पवर्य रें र्ग्न रिता िै और सत्त्वगुण से व्याप्त िोता िै तो उसे े'एकाग्र' किा र्ाता िै। यि अवस्था र्न को रिर् पुरुर्ाथों के योग्य बना देती िै। र्ब इसके पवकारों पर रोक लग र्ाती िै तो यि तनरुद्धावस्था रें रिता िै। यद्यपप अंततनहशित संस्कार बने रिते िैं,'[1231] पर र्ानभसक पररवतनशों का प्रभाव रुक र्ाता िै। योग के र्नोवैज्ञातनक स्वीकार करते िैं कक एकाग्रता र्न की सब अवस्थाओंका एक सार्ान्य लक्षण िै, यद्यपप सराधध की अवस्था रें यि अपनेसबसे गिनरूप रें पाई र्ाती िै। प्रत्येक र्ानभसक पररवतनश (वृपि) अपनेपीछे एक संस्कार अथवा अंततनहशित प्रवृपि छोड र्ाती िै र्ो उधचत अवसर आने पर अपने को सचेतन अवस्था रें अभभव्यक्त कर सकती िै। सर्ान वृपियां सर्ान प्रवृपियों को र्जक्त प्रदान करती िैं। योगी को उधचत िै कक वि न केवल वृपियों की रोकथार् करे, बजल्क प्रवृपियों का भी नार् करे, अन्यथा वे पुनः फूट पड सकती िैं। र्ब र्न अपनी वृपियों सेरहित िोता िै तो इसे ेसर्ापपि अवस्था रें किा र्ाता िै, और यि भी पदाथ शके रूप को,

---

1228 2/6

1229 2/7 - 9

1230 सवसावभशीर्जश्चिस्य धर्:श (योगभाष्य । : ।)।

1231 र्ब दोनों सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात सराधध के अनुरूप ... र्ाग्रदवस्था रें भी ककसी न ककसी अंर् रें पाई र्ाती िै। ... (योगसारसंग्रि, 5) िै क्योंकक एकाग्रता

र्ो इसके सर्क्ष ककसी प्रस्तुत ककया गया िो, धारण कर लेतो िै।'[1232] यि पदाथ शके स्वरूप को, रै्सा वि अपने-आप र्ें िै, धारण कर लेता िै।

इस सर्ापपि अवस्था के तनम्नतर् रूप भी िैं। सपवतकश सर्ापपि र्ें र्ब्द, पदाथ शतथा उनके अथ श (र्ब्दाथज्ञशान) सब भर्ले िरितें।[1233] र्ब र्ब्द और अथ शिट र्ाते िैं, अथात्श र्ब स्मतृत उनसे र्ून्य िो र्ाती िै, तो पदाथ शर्न के अन्दर अपने पवभर्ष्ट रूप र्ें प्रकट िोता िै और वि र्न की तनपवतशकश सर्ापपि अवस्था िै।[1234] व्यास किते िैं : "र्ब स्मतृत र्ब्दों के परम्परागत प्रयोग के स्मरणों से रहित िोकर तनर्लश िो र्ाती िै, और र्ब संकेजन्द्रत अन्तदृजशष्ट (सर्ाधधप्रज्ञा) अनुर्ान-सम्बन्धी पवचारों के सम्बन्धों (पवकल्पों) अथवा र्ो कुछ सुना गया उस सबसे उन्र्ुक्त िो र्ाती िै, तो अभभप्रेत पदाथ शअपने वास्तपवक स्वरूप र्ें रिता िै, उससेअधधक कुछ निीं ं और इस जस्थतत के पवर्षय र्ें पवर्ेर्ष रूप से किा र्ाता िै कक पदाथ शअपनेवास्तपवक रूप र्ें िै, इसके अततररक्त कुछ निीं।"[1235] यि उच्चश्रेणी का (परर्) प्रत्यक्ष िै और सर्स्त आनुर्ातनक तथा र्ाजब्दक (आप्त) ज्ञान का आधार िै। इसी से इनका अजस्तत्व िै।[1236] इस ज्ञान के साथ न तो आनुर्ातनक और न आप्त ज्ञान का िी पवचार रिता िै।[1237] सपवचार अथवा तनपवचशार सर्ापपि अवस्थाएं ंभी िैं। पिली अथात्श सपवचार सर्ापपि का सम्बन्ध उन सूक्ष्र् तत्त्वों से िै जर्नकी आकृततयां व्यक्त िो गई िैं और देर्, काल तथा कारण सम्बन्धी अनुभव से लक्षक्षत िैं। इसर्ें एक सूक्ष्र् तत्त्व, र्ो एक पवचार से र्ानने योग्य िोता िै और अभभव्यक्त आकृततयों से पवर्ेर्षत्व प्राप्त करता िै, अन्तदृजशष्ट का पवर्षय िोता िै। तनपवचशार सर्ापपि का सम्बन्ध सब प्रकार से और िर िालत र्ें ऐसेसूक्ष्र् तत्त्वों से िै र्ो ककसी भी प्रकार की आकृततयों से- अथात्श अभभव्यजक्त अथवा अन्ततनहशित अथवा अव्यपदेश्य से लक्षक्षत निींिैं और कफर भी सब आकृततयों के अनुकूल िैं और सबका सारतत्त्व िैं। तनपवकशार सर्ापपि र्ें अन्तदृजशष्ट अभभप्रेत पदाथ शबन र्ाती िै, इससे अधधक कुछ निीं।[1238] सपवचार सर्ापपि तथा तनपवचशार सर्ापपि के प्रततपाद्य पवर्षय सूक्ष्र् पदाथ शिैं, र्बकक सपवतकश सर्ापपि तथा तनपवतशकश सर्ापपि स्थूल पदाथों का प्रततपादन करती िैं। और ये सब सबीर् सर्ाधध के रूप र्ें किी र्ाती िैं, क्योंकक ये एकाग्रता के भलए पवर्षय प्रस्तुत करती िैं। पुरुर्ष, यद्यपप सूक्ष्र् िै, ककन्तु उक्त प्रकार की सर्ाधधयों का पवर्षय निीं।

र्रीर र्न पवरोधी र्जक्तयों का एक रणक्षेत्र िै, जर्न्िें अधीन करने की आवश्यकता िै ताकक एकत्व स्थापपत िो सके। कुछ इच्छाएंऐसी िैं र्ो तृजप्त चािती िैं; कुछ र्ीवन की प्रबल प्रेरणाएं ंिैं, रै्सेकक आत्र्रक्षा तथा पुनर्नशन की प्रेरणाएं, र्ो सरलता से वर् र्ें भी आ सकतीं। सर्ाधध के र्ाग शर्ें बाधाएंभभन्न-भभन्न प्रकार के

1232 1/41 ।

1233 1/42 ।

1234 1/43 ।

1235 योगभाष्य 1/43 ।

1236 तच्च शुरुतानुर्ानयोवीर्ं। ततः शुरुतानुर्ाने प्रभवतः (योगभाष्य , 1 : 43)।

1237 न च शुरुतानुर्ानज्ञानसिभूतं तद्दर्नशर्ं(योगभाष्य, 1:43)।

1238 योगभाष्य, 1: 44

 भर्थ्या पवश्वास िैं।[1239] अथातश अज्ञान (अपवद्या), अिभाव (अजस्ता), राग, द्वेर्ष और र्ीवन से धचपटे रिना (अभभतनवेर्) इसके अततररक्त और भी बाधाएं ंिैं, यथा रुग्णता, आलस्य, संर्य, प्रर्ाद, दीघवृशबृत्रता सांसाररकता, रांततर्य प्रत्यक्ष, एकाग्रभाव र्ें असफलता और उसर्ें सफलता प्राप्त करने पर भी अजस्थरता।[1240] रिां ंभर्थ्या पवश्वासों के भभन्न-भभन्न रूप सर्ाधध के अयोग्य र्ीवन को सार्ान्य प्रवृपृ को बताते िैं, विांदूसूरी सूची ब्यौरेवार ऐसी दर्ाओं का वणनश करती िै। र्ो सर्ाधध की प्रकिया र्ें बाधक िोती िै।

6. प्रर्ाण

प्रत्यक्ष, अनुर्ान तथा आप्त प्रर्ाण-ये ज्ञान के तीन साधन स्वीकार ककए गए िैं।[1241] र्ब धचि इजन्द्रयर्ाग शद्वारा ककसी बाह्य पदाथ शसे प्रभापवत िोता िै, तो यि प्रत्यक्षज्ञान की अवस्था िै। र्ानभसक वृपृ का सीधा सम्बन्ध पदाथ शके साथ िोता िै। यद्यपप पदाथ शर्ें र्ाततगत तथा पवभर्ष्ट दोनों प्रकार के लक्षण पवद्यर्ान ैं, तो भी प्रत्यक्ष र्ें िर्ें पवभर्ष्ट से अधधक वास्ता रिता िै। योग बाह्य पदाथों की यथाथतशा को स्वीकार करता िै। पवश्व के सर्ान, सर्स्त इजन्द्रय-ग्राह्य पदाथों के अपने-अपने तनत्य स्थूलादर् र्िैं, र्ो इजन्द्रयगोचर पररवतनशों र्ें से गु रते िैं, ककन्तु कभी सवथशा नष्ट निींिोते। र्ब एक पदाथ शदूसूरे र्ें पररवततशत िोता िै तो केवल इसके रूप र्ें िी पररवतनश िोता िै, और र्ब सब रूप नष्ट िो र्ाते िैं तो पदाथ शअपनेप्रारजम्भक अथात्श ंस्थूल आदर् शरूप र्ें लौट आता िै। रूप तन:सन्दिे भर्थ्याभात निींिै। र्ब कभी इजन्द्रयों को उिर्ना देनेवालेपदाथ शउपजस्थत रिते िैं तो संवेदनाएं उत्पन्न िोती िैं। ककन्तु यि भी सत्य िै कक यद्यपप प्रस्तुत पदाथ शविी िै पर उससेउत्पन्न िोनेवाली संवेदनाएं भभन्न िो सकती िैं, क्योंकक धचि तीनों गुणों र्ें से कभी ककसी और कभी ककसी गुण से प्रभावाजन्वत िोकर प्रस्तुत पदाथ शके प्रभाव को ग्रिण करता िै।'[1242]

अनुर्ान वि र्ानभसक वृपृ िै जर्नके द्वारा िर् पदाथों के र्ाततगत स्वरूप का बोघ प्राप्त करते िैं। अतनवाय शसािचय शका बोध अनुर्ान का आधार िै। ऐसी दो वस्तुओं र्ें से र्ो एक-दूसूरे से अतनवायरूशप से सम्बद्ध रिती िैं, एक का प्रत्यक्ष दूसूरे के अजस्तत्व को भसद्ध करनेके भलए पयाप्शत िै।

एक पवश्वस्त पुरुर्ष द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अनुर्ान से प्राप्त ककया गया एक पदाथ शका ज्ञान र्ब्दों द्वारा अन्यों तक पिुंचाया र्ा सकता िै। यि ज्ञान का तीसरा साधन िै। प्रार्ाणणक बोध को चार अन्य प्रकार की र्ानभसक वृपियों से भभन्न ककया गया िै। पवपयय़श एक रांत पवचार िै, र्ो पदाथ शके स्वरूप के प्रतत सत्य निीं ं ै।'[1243] पवकल्प (कल्पना) र्ब्दों का एक ऐसा रूप िै ।र्सकी अनुकूलता ककसी तनजश्चत तथ्य से निींिै।'[1244]

1239 1/30

1240 योगभाष्य, 2/3 और देणखए योगभाष्य ,1/81

1241 योगसूत्र ।: 7।

1242 4/15 - 17 ।

1243 1:8 ।

1244 1/9 ।

 तनद्रा वि ऱ्ानभसक वृपि ि जर्सका सर्थनश ऱ्ागररत तथा स्वप्नर्य वृपियों के अभाव से िोता ि।

[1245] इसे ेएक

ऱ्ानभसक वृपि इसभलए किा गया ि क्योंकक ऱ्ागनेपर िर्ें इस पवर्षय की सूतृत रिती ि कक िर्ें ककस प्रकार की नींद आई। व्यास किते िैं "ऱ्ागने के ठीक पश्चात् र्नुष्य को तनश्चय िी यि संयोरी् सूतृत उत्पन्न न िो सकती, यहद नींद के अन्दर एक कारण का अनुभव न िोता, और न ऱ्ागररत अवस्था र्ें उसे इस पर आधाररत अथवा इसके अनुकूल सूतृतयां िो सकतीं।"[1246] इस प्रकार तनद्रा एक पवर्ेर्ष प्रकार का प्रस्तुत पवचार (प्रत्यय) ि और सऱ्ाधध र्ें इस ऱ्ानभसक वृपि का भी पवरोध करना िोगा। ककसी पदाथ शका उसके पूव-शअनुभव द्वारा छोडे गए संस्कार द्वारा कफर से संग्रि (स्र्रण) करना सूतृत ि।

योग का र्त ि कक प्रत्यक्ष, अनुऱ्ान तथा आप्त प्रऱ्ाण द्वारा प्राप्त ज्ञान सवथशा प्राऱ्ाणणक नि ीं ि, क्योंकक, सांख्य के सऱ्ान, यि ऱ्ान लेता ि कक आनुभपवक ज्ञान पुरुर्ष और बुद्धध के रांततर्य भर्श्रण से उत्पन्न िोता ि। वस्तुएं र्ैसी िैं उनके पवर्षय र्ें सत्य ज्ञान केवल योगाभ्यास से िी प्राप्त िो सकता ि। व्यास एक श्लोक इस आर्य का उद्धृत करते िैं: "धर्शास्त्रों द्वारा, अनुऱ्ान द्वारा तथा गिन धचन्तन के अभ्यास की उत्कट इच्छा द्वारा-इन तीन उपायों सेवि अपनी अन्तदृजशष्ट को आगे ेबढ़ाता ि तथा उच्चतर् योग को प्राप्त करता ि।"[1247]

7. योग की कला

आत्र्पवर्षयक यथाथतशा की प्राजप्त र्न के पवर्षयतनष्ठ प्रयोग द्वारा नि ीं िोती बजल्क इसकी कियाओंके दर्न द्वारा तथा उस ऱ्ानभसक अधधष्ठान के नीचे अन्तःप्रवेर् करने से िोती ि जर्ससे िऱ्ारा साधारण र्ीवन तथा कियाकलाप िऱ्ारी अपेक्षाकृत दैवीय प्रकृतत को तछपाए रखते िैं। यद्यपप िर्ें से प्रत्येक के अन्दर आत्ऱ्ा का बीर् उपजस्थत ि, पर िऱ्ारा चैतन्य इसे ेग्रिण नि ीं कर सकता, क्योंकक यि अन्य वस्तुओं र्ें अत्यन्त व्यग्रता के साथ रऱ्ा रिता ि। इससे पूव शकक िर् चैतन्य को कफर से अन्य हदऱ्ा र्ें ऱ्ोडने र्ें सर्थ िो सकें, िर्ें कठोर अनुऱ्ासन र्ें सेगुरना िोगा। योगदर्नश प्रेरणा करता ि कक ऱ्ानभसक अवस्थाओं का आवश्यक दर्न अभ्यास तथा इच्छाओंपर पवर्य प्राप्त करके ककया ऱ्ाता ि।'[1248] इच्छाओंपर पवर्य की प्राजप्त तो सदाचारर्य र्ीवन का पररणाऱ् ि, ककन्तुअभ्यास का सम्बन्ध पवचार[1249] र्क्त की जस्थरता की ओर प्रयत्न करने से ि, जर्सकी

1245 अभावप्रत्ययावलम्बना वृपितनद्रशा, (1/10) ।

1246 योगभाष्य, 1/10।

1247 आगर्ेनानुऱ्ानेन ध्यानाभ्यासरसेन च।
धचंधां प्रकल्पयन् प्रज्ञांलभते ेयोगर्ुर्र्॥ (योगभाष्य, । / 48)
वाचस्पतत उक्त तीन तथा श्रवण, र्नन और तनहदध्यासन के र्ध्य ऱ्ो अनुकूलता ि उसका उल्लेख करता ि।

1248 1/12 ।

1249 1/13 - 14

प्राजप्त पपवत्रताकारक कर् शसे, जर्तेजेन्द्रयता, ज्ञान तथा पवश्वास से िोती िै।[1250] वैराग्य अथवा वासनाऽभाव उस परर्पद का अवबोध िै र्ो व्यजक्त को दृजष्ट या प्रकाभर्त पदाथों की लालसा से रु्क्त िोकर प्राप्त िोता िै।'[1251] इस प्रकार का व्यजक्त स्वग शतथा र्त्योक के सुखों को तनतान्त उपेक्षाभाव से देखता िै। वैराग्य के उच्चतर् रूप र्ें बकक आत्र्दर्नश उदय िोता िै, पदाथों अथवा उनके गुणों की इच्छा के अधीन िोने का कोई भय निीं ं रिता।[1252] यि परर् र्ोक्ष की ओर ले र्ाता िै, बकक तनम्न श्रेणी का वैराग्य, जर्सर्ें रर्ोगुण (और इस प्रकार प्रवृपि) का अंर् र्ेर्ष रिता िै, प्रकृतत र्ें लय िोनेकी दर्ा र्ें पररणत िो र्ाता िै। कार-नवीय संस्थान के अन्दर रि पुरुप के अततररक्त भौततक र्ीर, र्ीवनप्रद गततवाद तथा र्ानभसक तत्त्वों को पाते िैं।'[1253] पुरुर्ष दूरू्षणीय र्ीर और अर्ान्त र्न के पदों के पीठ तथ्या िुआ िै, और ये सब योग की पवधध की बाधाएंउपजस्थत करते िैं। र्ीर तथा र्न के घतनष्ठ सम्बन्ध पर बल हदया गया िै, क्योंकक 'दु:ख, तनरार्ा, र्ीर की अजस्थरता, उच्वास और तन:श्वास-ये सब ध्यानापकर्षणशों के सियक िैं ।'[1254] यद्यपप र्ारीररक स्वास्थ्य र्ानवीय र्ीवन का लक्ष्य निीं, तो भी यि इसकी एक अतनवाय शदर्ा िै। िर् र्नुष्य को एक ऐसा भौततक यन्त्र निींबना सकते ेजर्सर्ें आजत्र्क र्ीवन बिार से र्ोड हदया गया िो। र्ेरीर आजत्र्क र्ीवन की अभभव्यजक्त का साधन िै। इस प्रकार भौततक आधार को त्याग देने की अपेक्षा, योग इसे ेआजत्र्क र्ीवन की सर्स्या का एक भाग र्ानता िै। बाधाओं पर पवर्य पाने के भलए योग िर्ें आठ प्रकार के उपाय बताता िै, र्ो ये िैं : यर्, तनयर् आसन, प्राणायार्,

---

1250 योगभाष्य, 1/14 ।

1251 1:15।

1252 1/16

1253 योग र्ेरीरपवज्ञान की एक ऐसी पद्धतत का पररष्कार ककया िै र्ो नाडडयों अथवा अनन्त छोटी-छांटे नसों से,े र्ो सारे र्ीर र्ें व्याप्त िैं और संख्या र्ें 70 करोड से ेभी अधधक िैं, सम्बन्ध रखती िै, तथा के र्ानभसक केन्द्रों अथात्श ्चक्रों से, एक प्रसुप्त जक्त से जर्सेकुण्डभलनी की संज्ञा दी गई िै और जर्सका स्यार र्ेरुदण्ड के रू्लाधार र्ें किा गया िै, तथा र्ागररत ककए र्ानेपर चिों को उजर्त करके किया र्ें प्रदूरू कर देती िै, सम्बन्ध रखती िै। र्ानवीय र्ीर के दो र्ुख्य भाग िैं, एक ऊपर का दूसूरा नीचेका। भसर घड और बाँिें ऊपर के भाग का तनर्ाणश करते िैं और टांग तथा पैर नीचेके भाग र्ें आते िैं। र्ोर क केन्द्र, पवर्ेर्ष करके र्नुष्यों र्ें, जर्स्तष्क र्ेरुदण्ड स्कन्ध के, र्ो र्ीर के दोनों भागों को धारण तथा तनयन्त्रा करता िै, आधार र्ें जस्थत िै। नसों और स्नायुर्ाल की ग्रजन्थ-पवर्षयक सार्ग्री की व्यवस्था दो बृित् ्पद्धततचं र्ें िै, अथात्श ् संवेदनासूचक तथा जर्स्तष्क-सौर्षुजम्नक। जर्स्तष्क और सुर्षुम्ना, र्ो िर्: कपाल तथा र्ेरुदण के अजस्थर्य गिर र्ें जस्थत िैं, जर्स्तष्क-सौर्षुजम्नक संस्थान के बृित् ्केन्द्र िैं। हिन्दू ्र्ीरपवज्ञान का ब्रह्मण र्ेरुदण्ड िै। यि सुर्षुम्ना नाडी का आसन-स्थान िै, र्ो रू्लाधार से,े अथात्श ्र्ेरुदण्ड की र्ड से लेका र्ा जर्स्तष्क-क्षेत्र के अन्तभागश र्ें अवजस्थत सिस्रार तक फैली िुई िै। अन्य चार चि ये िैं स्वाधधष्ठान, र्णणपुर अनिात और पवर्ुद्ध । र्ेरुदण्ड के अन्दर तीन योगनाडडयां पवभर्ष्ट र्ित्त्व की िैं, अथाशत्–्इडा, पपंगंला वी सुर्षुम्ना। इनर्ें भी सुर्षुम्ना प्रधान िै। इसके दक्षक्षणपाश्व शर्ें पपंगंला, तथा वार्पाश्व शर्ें इडा िै। इस निी छ: सूक्ष्र् केन्द िैं, जर्न्िें पद्र् अथवा चि की संज्ञा दी गई िै। इन पद्र्ों का प्रत्यक्षज्ञान िर्ारी इजन्दयों निीं िो सकता, ककन्तु योग के नेत्रों से ेइनका अनुभव िो सकता िै।

1254 1:31।

अन्त के तीन उपाय अन्तरंग (सीए) सियक िैं और पिले ेपांच प्रत्यािार, ध्यान, धारणा और सर्ाधध ।'[1255] अप्रत्यक्ष अथवा बहिरंग सियक िैं।"[1256]

8. नैततक साधना

पिले ेदो, अथात्श ्यर् और तनयर्, नैततक साधना पर बल देते िैं, र्ो योगाभ्यास के भलए आवश्यक िै। सिं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, चोरी, जर्तेजन्द्रयता तथा अपररग्रि का पालन करना चाहिए, अथात् इजन्द्रयलोलुपता तथा लालच सेबचना चाहिए।'[1257] इन सबर्ें रुख्य िै अहिंसा। र्ेर्ष सब सद्गुण अहिंसा र्ें िी बद्धरूल िैं। पवस्तृत अथों र्ें अहिंसा का तात्पय शभलया र्ाता िै–र प्रकार से और िर सर्य र्ें सर्स्त र्ीपवत प्राणणयों के प्रतत द्वेर्षभाव सेपरिे करना।[1258] यि केवल क्षतत पिुंचानेका अभाव िी निींककन्तु वैर का त्याग भी िै।'[1259] र्ैत्री का भाव, सिानुभूतत, प्रसन्नधचिता तथा सुखदायक एवं दु:खदायक, अच्छी और बुरी सब वस्तुओं के प्रतत र्ानभसक पवकाररून्यता-इन सब गुणों को बढ़ाने व धारण करने से पविप्रसाद की प्राजप्त िोती िै। ि्ारे भलए ईष्या शके भाव से उन्र्ुक्त िोना आवश्यक िै, तथा िर्ें दूसूरों के दु:खों के प्रतत उपेक्षाभाव भी न रखना चाहिए। पाप से घृणा करते िुए भी िर्ें पापी के प्रतत भद्र व्यविार का िी आचरण करना चाहिए। उक्त भसद्धान्तों का र्ो कक स्वभावतः तनरपेक्ष िैं, कोई अपवाद निीं िो सकता। 'ककसी को र्त र्ारो' यि एक सुतनजश्चत तथा तनरपेक्ष आदेर् िै, और िर् इस प्रकार का र्त प्रकट करके कक िर् अपनेदेर् के र्त्रुओं को र्ार सकते िैं, अथवा सेना से भागे िुओं, धर्पशररवतनश करनेवालों अथवा ब्राह्मणों की तनन्दा करनेवालों को र्ार सकते िैं, इसकी तनतान्तता र्ें िस्तक्षेप निीं कर सकते। आत्र्रक्षा के भलए भी ित्या करना धर्सशम्र्त निींकिा र्ा सकता। यर्ों का पालन सावभशौर् धर् िै। इसर्ें र्ाततभेद, देर्भेद, आयुभेद और अवस्थाभेद के कारण कोई अपवाद निीं िो सकता।'[1260] इनको प्राप्त करनेका पवधान र्ुष्यर्ात्र के भलए ककया गया िै, चािे ध्यानर्य व धचन्तनर्य उच्च र्ीवन के भलए सबको न चुना र्ा सके। तनयर्ों के अन्तगतश र्ौच (आभ्यन्तर तथा बाह्य दोनों प्रकार की र्ुद्धध), सन्तोर्ष, तपस्या तथा ईश्वरभजक्त ये सब आते िैं।'[1261] ये ऐजच्छक पवर्षय िैं, यद्यपप उन सबके भलए र्ो योगसाधना के र्ाग शका अवलम्बन करते िैं, तनयभर्त रूप से इनका अभ्यास आवश्यक िै। इन दोनों, अथात्श ्यर्

1255 2:29।

1256 पतंर्भल के योग र्ें इन सबको एक िी योर्ा के अन्तगतश ले भलया गया था, पर परवती इच् ्भेद ककए गए। कर्यशोग कर् शके द्वारा र्ोक्ष की पद्धतत िै। भजक्तयोग ईश्वर के प्रतत भजक्त के गा की प्राजप्त पर बल देता िै। ज्ञानयोग ज्ञान के द्वारा र्ोक्ष बताया िै, र्बकक रार्योग र्न तथा र्ानभसक र्जक्त के प्रभर्क्षण का प्रततपादन करता िै। िठयोग र्ारीररक तनयंत्रण, प्राणायार् और न्र्ों की पवधध के पववेचन करता िै। र्ारीररक प्रकियाएं आध्याजत्र्क पररणार् उत्पन्न कर सकती िैं-इस प्रकार के पवचार का पराकाष्ठा तक पिुंचा िुआ एक पररष्कार रसेश्वरदर्नश र्ें भर्लता िै (सवदशर्नशसंग्रि, 9)।

1257 2:30

1258 सवथशा सवदशा सवभूशतानार्नभभद्रोिः (योगभाष्य, 2/80)

1259 2/35 ।

1260 2/31 ।

1261 2/32।

 और तनयर्, के अभ्यास से वैराग्य, अथात्श ्वासना का अभाव, सुलभ िो र्ाता िै, अथात्श ्इच्छा से, चािो वि सांसाररक पदाथों के भलए िो चािो स्वग शके सुखों के भलए, रुजक्त भर्ल र्ाती िै।"[1262]

र्ब कभी िर्ें नैततक आदेर्ों को भंग करने का प्रलोभन िो तो उस सर्य, योगदर्नश के आदेर् के अनुसार, िर्ें अनेक प्रततपक्ष की भावना अपनेअन्दर उत्पन्न करनी चाहिए।'[1263] र्नोपवज्ञान के पवश्लेर्षक िर्ें बताते िैं कक सिर् प्रवृपियों को वर् र्ें करने के तीन उपाय िैं। अथात् श ्प्रततरक्षाथ शप्रत्यािर्ण, प्रततस्थापन तथा उदिीकरण। पिले ्के अनुसार, र्न ऐसी प्रवृपि धारण कर लेता िै र्ो आवेग के स्पष्ट रूप र्ें प्रततकृत िो, और उसका र्ाग शअवरुद्ध कर देता िै। र्िां ंअवचेतना के अन्दर ककसी पवर्ेर्ष आवेग की प्रबल धारा पवद्यर्ान िै, विां ं र्न सचेतन िोकर उसके सवथशा पवपरीत कियावान आवेग का अवलम्बन करता िै। योग का अजन्तर् उद्देश्य र्रीर प्रकृतत के सारतत्त्व की सवथशा कायापलट कर देना िै।

श ्वि बुराई की हदर्ा र्ें भी विा सकती िै, और अच्छाई की हदर्ा र्ें भी। र्ब इसकी गतत र्ोक्ष तथा ज्ञान की हदर्ा र्ें िोती िै तो किा र्ाता िै कक इसका प्रवाि अच्छाई की ओर िै; और र्ब यि र्ीवन के र्ंदर र्ें फंसकर नीचे को, भेदज्ञान के अभाव की ओर िोती िै तो िर् किते िैं कक प्रवाि बुराई की ओर िै।[1264]

कर् शकी कियाएंया तो बाह्य िोती िैं या र्ानभसक अथात्श ्आन्तररक। उनके चार प्रकार के भाग ककए गए िैं। कृष्ण कर् शदुष्ट कर् िैं, र्ो बाह्य, र्ैसे ्दूसरों की तनन्दा करना, अथवा आन्तररक, र्ैसे ्पवश्वास (श्रद्धा) का अभाव, दो प्रकार के िैं। र्ुक्ल कर् शधाभर्कश कियाएं िैं और वे आंतररक िैं, र्ैसे ्श्रद्धा, ज्ञान आहद। र्ुक्ल-कृष्ण वे बाह्य कर् श िैं र्ो चािो ककतने भी अच्छे क्यों न िों, बुराई के अंर्ों से सवथशा रहित निीं। वैहदक कर्ों तक र्ें भी अन्य प्राणणयों को कुछ-न-कुछ क्षतत पिुंचाना सजम्भलत िै। अर्ुक्ल, अकृष्ण, अथात् श ्न अच्छे न बुरे, कर् शउनके िैं जर्न्िोंने सब कुछ त्याग हदया िै।'[1265] उच्चतर् श्रेणी की कियार्ीलता का सम्बन्ध अजन्तर् प्रकार के कर्ों से िै।

9. र्रीर का तनयंत्रण

योगदर्नश अनुभव करता िै कक िर्ारे र्रीर का भी उतना िी र्ित्त्व िै जर्तना कक र्न का िै। आसनों से र्न की एकाग्रता र्ें सिायता भर्लती िै।'[1266] दौडतेसर्य अथवा तनद्पवतावत्या र्ें िर् ककसी वस्तु पर ध्यान जस्थर निीं ंकर सकते। ध्यान र्ें बैठने ्सेपूव शिर्ें अपने को सुपवधार्नक जस्थतत (आसन) र्ें जस्थत करना चाहिए। पतंर्भल केवल यिी किते िैं कक आसन दृढ़, सुखावि और सरल िोना चाहिए। टीकाकारों ने भभन्न-भभन्न

1262 1/15 ।

1263 2/33

1264 योगभाष्य, 1:12

1265 4/7

1266 देणखए भगवद्गीता, 6: 10 से ्आगे; 2: 46-48

 प्रकार के आसनों के पववरण पीछे से बिुत पवस्तार से हदए िैं। र्ब भारतीय संस्कृतत के एक आधुतनक सर्ालोचक
ने अपने पाठकों को पवश्वास हदलाया कक भारतीय दार्तशनकों का पवचार िै कक आलथी-पालथी र्ार कर बैठना और नाभभ र्ें ध्यान लगाना पवश्व की गिराई को सर्झनेका सबसेउिर् र्ाग शिै, तो उसके ध्यान र्ें योग के आसनों र्ें से िी कोई एक रिा िोगा।

र्रीर को या तो पर्ुओं के सर्ान असंयत छोडा र्ा सकता िै या दैवीय र्जक्त सम्पन्न बनाया र्ा सकता िै। िर्ें बताया गया िै कक अपने र्ीवन के पवर्षय र्ें िर्ें बिुत ध्यान देना चाहिए। ऐसे पदाथों को िर्ें अपने खान-पान का भाग न बनाना चाहिए र्जनसे िर्ारे स्नायुर्ाल को उिर्ना भर्ले ेअथवा रूूछा शआ र्ाए। र्ीवन के तनम्नश्रेर्णी के तृजृप्तदायक साधन, साधारणतः आत्र्ा के सच्चे सुख को दबाकर नष्ट कर देते िैं। यहद बौद्धधक र्ीवन और नैततक व्यापार सच्चे अथों र्ें र्नुष्य के लक्ष्य िैं, तो र्ारीररक आवश्यकताओं को उनके अधीन रखना चाहिए। योग की अजन्तर् अवस्थाओं के भलए र्ारीररक सिनर्ीलता की र्िान् ्र्जक्तयां आवश्यक िैं और ऐसे दृष्टान्तों की कर्ी निीं िैं र्िांकक कठोर आजत्र्क र्ीवन का अत्यधधक बोझ इस र्रीर रूपी भट्टी के पात्र को टूटने की सीर्ा तक पिुंचा देता िै। इसभलए सबसे पूव शर्रीर को वर् र्ें रखना िोगा। िठयोग का लक्ष्य र्रीर रूपी यन्त्र को पूणतशा तक पिुंचाना िै, जर्ससे ेकक यि थकावट से पवरत िो सके तथा इसके क्षय को र्ुरा और रोका र्ा सके।

योग िर्ें र्रीर को वर् र्ें करनेके भलए किता िै, र्ारनेके भलए निीं। इजन्द्रयभोग से दूरू रिना तथा र्रीर को कष्ट देना एकसर्ान निीं िैं परन्तु कभी-कभी हिन्दू ूभारत र्ें तथा ईसाई यूरोप र्ें इन दोनों को भर्ला हदया र्ाता िै।'[1267] योग का किना िै कक र्रीर की पूणतशा सौन्दय,श र्ोभा, र्ारीररक बल तथा दुभेद्य कठोरता र्ें िै।[1268]

1267 तुलना कीजर्ए सूसो के आत्र्चररत्र के उस अंर् के साथ जर्सर्ें उसनेअपना अनुभव अन्य पुरुर्ष के रूप र्ें प्रकट ककया िै: "वि अपनी युवावस्था र्ें र्ीवन के र्ोर्भरे स्वभाव र्ें था और यि र्ोर् र्ब अधधक उर्डने लगा तो उसे ेबिुत दुुःख िुआ। उसनेअनेक यत्न ककए कक ककसी प्रकार से र्रीर को वर् र्ें ककया र्ा सके। उसनेदीघकशाल तक एक बालों वाली कर्ीर् और लोिे की र्ंर्ीर धारण की, यिां तक कक उसके र्रीर से खून बिनेलगा और उसे ेउन दोनों को उतार फेंकने ेके भलए बाध्य िोना पडा। उसनेगुप्तरूप से ेअपने भलए नीचेपिनने की पोर्ाक तैयार कराई जर्सर्ें चर्डेकी पट्हटयां थींऔर उनर्ें 150 पीतल की कीलें ठुकवा दीं,ं जर्नकी नोकें खूब पैनी थींऔर सदा र्रीर के र्ांस की ओर रिती थीं। यि पोर्ाक उसनेबिुत िी तंग बनवाई, जर्ससे बदन र्ें चारों ओर कसी र्ाकर नोकीली कीलें सदा उसके र्ांस के अन्दर गि सकें। यि पोर्ाक उसनेकाफी ऊंची, नाभभ तक पिुंचानेवाली बनवाई। इसी प्रकार पिनकर वि रात को सीता था।" (लाइफ आफ हद ब्लैसेड िेनरी सूसो, बाई हिर्सेल्फ, टी. एफ. नौक्स द्वारा अनूहदत)। इस पुस्तक र्ें इससे भी अधधक हृदय-पवदारक पववरण िैं। बभलदानी ईसा के र्ीवन के पप्रय साथी रिे िैं-दाररद्र्य, कष्ट और अपर्ान, अतः ईसाई संतों र्ें उनका अनुकरण करने ेके भलए कष्ट और यातनाओंको झेलनेकी प्रततस्पधाश-सी रिी िै । सटें बनाडश शअपने र्रीर पर इतनेकोडेलगाते ेथे कक र्ृतप्रायः िो र्ाते ेथे। सटें टेरेसा अपने भीर्षण दुखोन्र्ाद र्ें धचल्लातेथे : "र्ुझे कष्ट झेलने दो या र्र र्ानेदो।" सटें र्ान आफ हद िोस नेअपनेर्रीर को र्ो यातनाएं दीं,ं वे अवणनशीय िैं।

1268 रूपलावण्यबलवर्संनिनत्वातन कायसम्पत् ्(9/46)

10. प्राणायार्

प्राणायार् पर पयाप्शत बल हदया गया िै, यद्यपप पतंर्भल ने इसे ेएक ऐजच्छक साधन के रूप र्ें िी रखा
ि।'[1269] र्न की अपवक्षुब्धता या तो धाभर्कश कायों के सम्पादन से या प्राणायार् से प्राप्त की र्ा सकती िै।'[1270]
इस प्रकार जर्न व्यजक्तयों को इसर्ें श्रद्धा िै, उनके भलए छूट दी गई िै। प्राणायार् का प्रयोग र्न पर प्रभाव
जस्थर रखने ेके भलए िोता िै ऐसा र्ाना गया िै, और िठयोग र्ें इसका र्ित्त्वपूण शभाग िै। विांइसकी अत्यंत
प्रततष्ठा इसभलए कक इसर्ें अलौककक र्जक्तयों को उत्पन्न करने की अपूव शक्षर्ता िै। श्वास-प्रश्वास सम्बन्यो
व्यायार् को आधुतनक सर्य र्ें भी स्वास्थ्य के भलए बिुत उपकारी सर्झा र्ाता िै।[1271] श्वास र्ें एकसर्ानता
कभी-कभी सर्ाधि की प्राजप्त का साधन बन र्ाती िै। र्ीर से दुवुचश पुरुर्ष र्ब इस प्रकार के प्राणायार् का
अभ्यास करने लगते िैं तो अत्यन्त भय रिता िै। यिी कारण िै कक योगपवद्या को इतना अधधक गुप्त रखा गया
ि।[1272]

11. इजन्द्रय-तनग्रि

चीनी दार्तशनक लाओ-त्से ेने पूछा, "ऐसा कौन िै र्ो कीचड-सनेर्ल को तनर्लश कर सकता िै?" और
उिर हदया, "यहद तुर् उसे ेवैसे िी छोड दो तो वि स्वयं तनर्लश िो र्ाएगा।'[1273] प्रत्यािार अथवा इजन्द्रयों को बािर
की उनकी प्राकृततक कियाओं सेिटा लेना, आधुतनक र्नोपवज्ञान की अन्तर्ूखशतशा की प्रकिया के अनुरूप िै।[1274]
दृढ़ संकल्पपूवकश र्न को सर्स्त बाह्य प्रभावों के भलए बन्द कर लेना चाहिए। स्तोत्रकार ने किा िै "तनश्चल िो
और र्ानो।" तनयन्त्रण िर्से चािता िै कक िर् स्वेच्छाचारी र्ानभसक आवेगों तथा आग्रिपूण शपवचारों को दूर िटा
दें। िर्ें उस दर्ा को प्राप्त करना िै जर्सेसटें र्ॉन ऑफ हद िॉस ने 'नाइट आफ ससैं' किा िै। प्रत्येक सत्यान्वेर्षी

1269 1/34

1270 1/33 - 39

1271 'दीघ शर्ीवन के साधन' इस पवर्षय पर हदए गए डॉक्टर वैबर के व्याख्यान र्ें से भलया गया तनम्नभलणखत उद्धरण इस पवर्षय पर कुछ रुधचकर पवचार प्रकट करता िै "र् ैंसोचता िूं कक हृदय का पुजष्ट तथा काय शर्ें अद्भुत उन्नतत का कारण बिुत अंर्ों र्ें दीघ शश्वास िै, र्ो ऊपर चढ़नेर्ें लेनी आवश्यक िै, पवर्ेर्षकर र्ब चढ़ाई तनयर्पवकश तथा धचरकाल तक र्ारी रिे। उक्त पवचार ने िी र्ुझे श्वास-सम्बन्धी व्यायार् (प्राणायार्) पर पवर्ेर्ष ध्यान देने की प्रेरणा दी। यि व्यायार् र्ुझे तो लाभप्रद िुआ िी, ककन्तु अनेक ऐसेव्यजक्तयों के भलए भी लाभप्रद भसद्ध िुआ जर्नके हृदयों की र्ांसपेभर्यां बिुत दुबुलश थीं।... र्ैंप्रारम्भ र्ें हदन र्ें एक या दो बार गिरा श्वास तथा उच्वास 3 से 5 भर्नट तक र्ारी रखा और र्ैं: र्ैं: इसे बढ़ाकर 10 या 15 भर्नट तक कर हदया..." (बब्रहटर् र्ेडडकल र्नलश, हदसम्बर 5, 1903)।

1272 देणखए धचन्तार्णणकृत िठप्रदीपपका ।

1273 ताओ-ति-ककग ।

1274 और पवचार सबसे उिर् तब िोता िै र्बकक र्न अपने-आप र्ें संयत िोता िै, और कुछ भी उसे ेतंग निींकरता-न र्ब्द, न दृश्य, न दुःख और न कोई सुख। र्ब र्ीर के साथ उसका यथासंभव कर् से ेकर् वास्ता रिता िै तथा कोई र्ारीररक बोध या अनुभूतत निींरिती और वि केवल सत् ्को प्राप्त करनेकी र्ित्त्वाकांक्षा रखता िै (प्लेटोकृत फीडो, र्ावेट का आंग्लभार्षानुवाद)।

 को अपने हृदय के अन्दर एक आश्रर्कुटी तनभर्तश कर लेनी चाहिए और प्रततहदन उसर्ें अवकार् ग्रिण करना
चाहिए।

नैततक साधना (यर् और तनयर्), आसन, प्राणायार् और प्रत्यािार योग के सियक साधन िैं, इसके अन्ततनहशित अंर् निीं।[1275]

12. ध्यान

र्नुष्य के चंचंल और पवव्ध र्न को, र्ो पृथ्वी और स्वग शके गूढ़तर् रिस्यों को र्ानना िै, योग का किना िै कक सिैटाकर िी सिवार को र्ाना र्ा सकता िै। र्न (धचि) कया तथा आभ्यन्तर पररवतनशों करने का
नार् 'धारण' िै। यि र्न की जस्थरता िै। साधारण दैतनक र्ीवन या पवचार आते ितथा र्ाते िैं, परन्तु दीघकशाल तक निीं ंठिरते। साधारणतः एकाग्रता केवल पवचार आतेभलए िी अपनी पूणतशा र्ें रिती िै। ध्यान की अवस्था, पवना ककसी पवघ्न के, सर्रूप सेबि रिी पवचारधारा का पररणार् िै। यि ध्यान, र्नन अथवा धचन्तन किता
र्रूप से पराकाष्ठा तक पिुंचकर सर्ाधध र्ें पररणत िोता िै, र्िां ंअभभज्ञा का भाव लुप्त िो र्ाता िै। र्रीर और र्न सर्स्त बाह्य प्रभावों के भलए तनश्चेष्ट िो र्ाते िैं और केवल ध्यान का पवर्षय, वि कुछ भी क्यों न िो, प्रकाभर्त रिता िै। र्ब ये तीनों एक िी पवर्षय की ओर बेररत िोते िैं तो उसे ेसंयर् कितेिैं।'[1276] र्ब यि संयर् पवर्षयों की ओर प्रेररत िोता िै -चािे वे पवर्षय बाह्य िों अथवा आभ्यन्तर िों तो असाधारण र्जक्तयां(भसद्धधया), र्ैसे ेबन्द के अन्दर सेदेखना, अदृश्य िो र्ाना, अन्य पुरुर्षों के पवचार को र्ान र्ाना आहद, प्राप्त िो र्ाती िैं। र्ोक्ष का अभभलार्षी यहद इन भसद्धधयों के प्रलोभनों र्ें पड र्ाता िै तो अपनेउद्देश्य को भूल र्ाता िै। ऊध्वहशदर्ा र्ें गतत करने के भलए उक्त प्रलोभनों को रोकना चाहिए।''[1277]

13. सर्ाधध अथवा एकाग्रता

सर्ाधध उस हदर्ा का नार् िै जसर्ें से र्ोक्षप्राजप्त से पूव शगुर्रना आवश्यक िै। क्योंकक योग सर्ाधध द्वारा र्ोक्षप्राजप्त पर आग्रि करता िै, इसभलए इसेपाररभापर्षक रूप र्ें 'सर्ाधध' किा गया िै (योगः सर्ाधधः)।'[1278] यि सर्ाधधस्थ की हदर्ा िै जसर्ें बाह्य र्गत् ्के साथ सम्बन्ध टूट र्ाता िै। योग की साधना का यि लक्ष्य िै, क्योंकक यि आत्र्ा को उसके र्त-सम्बन्धी, सोपाधधक तथा पररवतनशर्ील र्ीवन से ऊपर

[1275] ये आत्रुद्धध की अवस्था को प्रस्तुत करते िैं, ध्यान और धारण प्रकार् की अवस्था को प्रस्तुत करते िैं, तथा सर्ाधध योग को प्रस्तुत करती िै।

[1276] 3:4 ।

[1277] 3/5, 1।

[1278] योगभाष्य, 1 : 1।

उठाकर एक सरल, तनत्य तथा पूण शऱ्ीवन प्राप्त कराता िै।[1279] इसके द्वारा पुरुर्ष तनत्यपद को पुनः प्राप्त कर लेता िै। एकाग्रता बवा सऱ्ाधध की शे्रेणणयां िैं सम्प्रज्ञात अथात्श ्सचेतन और असम्प्रज्ञात अथात्श ्चैतन्यातीत ी। पिली र्ें र्न पवर्षय से अभभन्न रिता िै। वि अवस्था जर्सर्ें धचि अपनेउद्देश्य र्ें एकाकी िोता िै और एक स्पष्ट तथा यथाथ शपदाथ शको पूणरूशप सेप्रकाभर्त करता िै, दुखों को दूरू करता िै तथा तथा कर् शके बन्धनों को ढीला कर देता िै और सब प्रकार की ऱ्ानभसक वृपियों का दर्न अपना लक्ष्य रखता िै, सम्प्रज्ञान सऱ्ाधध िै ।'[1280] इसके अंदर ज्ञाताऔर ज्ञात का संयोग िोता िै. जर्सर्ें ज्ञाता पवर्षय को ऱ्ाननेवाला केवल इसभलए किलाता िै कक यि स्वयं विी िै। पवचार और पवचार का पवर्षय एक िी िै। इस अवस्था र्ें पवताई पवचार, आनंद व अजस्ता के भाव संलग्न रिते िैं।[1281] ये सऱ्ाधध के ऐसेरूप िैं जर्नके तनजश्चत पवर्षय िैं, जर्न पर इनका आधार िै। सम्प्रज्ञात सऱ्ाधध के सूक्ष्र् भेदों को भभन्न-भभन्न नार् हदए गए िैं, रै्से ्सपवतकश, सपवचार, सानन्द और साजस्ता। र्ब तक िर् क्या अच्छा िै क्या बुरा, क्या उपजस्थत िै क्या अनुपजस्थत, इस प्रकार का तकश-पवतकश करते िैं, र्ब ति ऱ् आनन्द और अजस्ता के भावों को अनुभव करते िैं, तब तक िर् सम्प्रज्ञात सऱ्ाधध र्ें रिते िैं। र्ब आनन्द का अनुभव दूरू िो ऱ्ाता िै और उच्चशे्रेणी की सर्वृपि र्ें तुर् िो ऱ्ाता िै तो वि अवस्था उत्पन्न िोती िै जर्से ्धर्ेशघ किते िैं, जर्सर्ें आत्र्ा का प्रवक्त तथा इसका प्रकृतत से पूणरूशप र्ें भेद प्रत्यक्ष िो ऱ्ाता िै और कर् शऔर आगे ्अपना सव शर्नींकरता। वेदान्त के अनुसार, यि वि अवस्था िै जर्सर्ें पवचारों का प्रवाि अत्यन्त पवर्दरूप र्ें रिता िै।

ऐसेव्यजक्त को जर्सने आन्तररक ऱ्ाजन्त प्राप्त कर ली िै, वस्तुओं के सत्यज्ञान की अन्तदृजशष्ट प्राप्त िो ऱ्ाती िै। रै्साकक व्यास ने किा िै: "बुद्धध का सत्त्व, जर्सका सारतत्त्व प्रकार् िै, र्ब अरुद्धध के र्ल से उन्र्ुक्त िो ऱ्ाता िै तो एक स्फहटक के सदृर् तनर्लश तथा जस्थर प्रवाि का रूप धारण कर लेता िै, जर्स पर रजोगुण तथा तर्ोगुण अपना आधधपत्य र्नींकर सकते। र्ब तनपवचशार सऱ्ाधध र्ें इस प्रकार की स्पष्टता (वैर्द्य) उहदत िोती िै तो योगी को आन्तररक र्ांतत (अध्यात्र्प्रसाद) की प्राजप्त िो ऱ्ाती िै; और अन्तदृजशष्ट के प्रकार् से प्राप्त िोती िै ऐसी दर्नशर्जक्त जर्सको साधारण, र्ांततपूण शअनुभवज्ञान की िभर्क अवस्थाओं र्ें से गुर्रना र्नीं ं िोता, और उसका अभभलपर्षत पवर्षय उसके सम्र्ुख अपने यथाथ शरूप र्ें िोता ि।'[1282] यि अन्तदृजशष्ट सत्य से

1279 बबलकुल बाल्यावस्था से, र्ें र्ब कभी सवथशा अकेला रिा िूं ूं तो प्रायः एक प्रकार की ऱ्ागररत अन्तनीनता (र्ाचे) को अनुभव करता िूं ूं। साऱ्ान्यतः यि अवस्था र्ुझे चुपचाप दो-तीन बार अपना नार् दोिराने से ्कती िै। ऱ्ाना करता िै। साऱ्ान्यतः यक अव स्वयं जि अनन्त सिा के अन्दर लुप्त िोता िुआ प्रतीत िाता िै और अजस्ता के चैतन्य के आधधक्य देवय िोकर स्पष्टों \mathfrak{pi} भी सबसे स्पष्ट, तनजश्चतों र्ें भी कालोप (यहद यि ऐसा था) सवथशा लोप र्नींबजल्क एकर्ात्र सत्यऱ्ीवन लगता िै" (लाइफ ऑफ सानेतनजश्चत, अलौकककक, सवयशा, र्दातीत दऱ्ा िोती िै, र्िांर्ृत्यु एक उपिासास्पद असम्भावना िो, तथा खण्ड, पृष्ठ 320)। देणखए उसकी 'हद एभर्यण्ट ऐर्' ।

1280 योगभाष्य, 1:1 ।

1281 क्योंकक नींद र्ें िर् ककसी यथाथशपवर्द पवर्षय पर एकाग्र र्नींिोते ्इसभलए तनद्रा एकाग्रता की अवस्था र्नीं। देणखए वाचस्पतत, 1:1।

1282 योगभाष्य, 1: 47। और देणखए 2: 45; 3:54 ।

 आपूररत िै तथा सत्य को धारण ककए िुए िै।'[1283] भर्थ्या ज्ञान का इसर्े लेर्ात्र भी निीं। इस

अन्तदृजशष्ट को

पतंर्भल ने उस ज्ञान से पृथक् किा िै रो िर्े अनुर्ान और आगर् (र्ास्त्र) प्रर्ाण से प्राप्त िोता िै, क्योंकक पतंर्भल के र्त र्े इसका पवर्षय एक स्रूत शयथाथसशिा िै, केवल एक सार्ान्य धारणार्ात्र निीं।'[1284] रिां ंतक इसका अपनेपवर्षय के भलए एक पवर्ेर्षाथ शिी, प्रत्यक्ष से इसका सम्बन्ध अधधक घतनष्ठ िै। अन्तर केवल यिी िै कक अन्तदृजशष्ट द्वारा ज्ञात पदाथ शभौततक प्रत्यक्ष के भलए अत्यन्त सूक्ष्र् िोते िैं।"[1285] यि परर् प्रत्यक्ष िै।'[1286] इस प्रकार प्रर्ेय, चािे उसका सम्बन्ध सूक्ष्र् तत्त्वों से िो अथवा आत्र्ा से, केवल इसी एकाग्र अन्तदृजशष्ट द्वारा र्ाना र्ाता िै। र्ब िर्ारे भौततक चक्षुबन्द िों तो इस प्रकार का दर्नश आत्र्ा से सम्पन्न िोता िै। यि अन्तदृजशष्ट र्ब एक बार उत्पन्न िो र्ाती िै तो इसके प्रभाव के आगे ेसब प्रभाव फीके पड र्ाते िैं, जर्ससे कक उनके पवचार कफर सार्ने निींआते।[1287] र्ब िर् उच्चतर् कोहट के अन्तदृजशष्टर्न्य ज्ञान को प्राप्त कर लेते िैं. रो एकसाथ िी भूत, वतर्शान और भपवष्य को उनकी सर्स्त अवस्थाओं सर्त कर लेनेइकाई र्े ग्रिण कर लेता िै, तो यि िर्ें अंततर् पूणतशा तक पिुंचा देता िै।[1288]

सर्ाधध एक सरल अनुभव निीं, र्ो र्ब तक रिे एकसर्ान िो। इसके पवपरीत, यि ऐसी र्ानभसक अवस्थाओं की श्रृंखंला िै रो अधधकाधधक सरल िोती िुई उसके पवपरीत, अवस्था र्े पररणत िो र्ाती िै। असम्प्रज्ञात सर्ाधध ऐसी एकाग्रता िै जर्सर्े कोई धचिवृतत उपजस्थत निींरिती, यद्यपप प्रसुप्त संस्कार रि सकते िैं।'[1289] सम्प्रज्ञात सर्ाधध र्े जर्स पवर्षय का धचन्तन ककया र्ाता िै उसकी चेतना स्पष्ट रिती िै और प्रर्ाता (पवर्षयी) से भभन्न रूप र्े रिती िै, ककन्तु असम्प्रज्ञात सर्ाधध र्े यि भेद पवलुप्त िो र्ाता िै।'[1290]

1283 ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा (1/48)

1284 1:49 ।

1285 योगभाष्य, 1:49 ।

1286 योगभाष्य, 1/43

1287 1:50 ।

1288 3:54।

1289 1:18 ।

1290 "आत्र्ा अब र्ीर अधवा र्न से ेअभभज्ञ निींरिती, बजल्क र्ानती िै कक जर्सकी उसे ेइच्छा थी वि उसके पास िै, और कक वि ऐसी जस्थतत र्े िै रिां कोई छल निींआ सकता, और कक वि अपनेपरर्ानन्द िो स्वग शके भी स्वग शके साथ वदलने को तैयार न िोगी" (प्लाहटनस एनीड्स, 6/7, 24) । र्ेभलंगं अपनी ककतीताकफकल लेटस शअपीन डीग्र्ेहटज्र् एण्ड किहटभसज्र्' नार्क पुस्तक र्े किता िै: "िर् सबके अन्दर एक गुप्त तथा अद्भुतु र्जक्त तनवास करती िै, जर्सके द्वारा िर् अपने को कालर्तनत पररवतनशों से ेस्वतन्त्र कर सकते िैं, अपनेको बाह्य वस्तुओं से िटाकर अपनी गुह्य आत्र्ा र्े सर्ेट सकते िैं, और िर्ारे अन्दर अपररवतनशर्ीलता के रूप र्े रो तनत्य िै उसे ेखोर् सकते िैं। अपनेको अपने-आप के सर्क्ष इस तरि प्रस्तुत करना यथाथ शर्े सवधशा तनर्ी अनुभव िै, जर्स पर वि सब कुछ तनभरश करता िै रो िर् अतीजन्द्रय लोक के अन्वन्ध र्े र्ानते िैं। यि प्रस्तुतीकरण िर्ें पिली बार यि हदखाता िै कक यथाथ शक्या िै, र्बकक अन्य सब कुछ केवल प्रतीततर्ात्र िै। यि प्रस्तुतीकरण अन्य सब इजन्द्रयर्तनत प्रस्तुतीकरणों से भभन्न िै, क्योंकक यि सम्पूणरूशप र्े सातत्व िै, र्बकक अन्य सब प्रस्तुतीकरण बद्ध िैं, पदाथों के भार से बुरी तरि दबे िुए िैं, यि बौद्धधक र्ीकरण तब सम्पन्न िोता िै र्ब िर् अपने िी प्रर्ेय बनने बंद िो र्ाते िैं, र्ब अपनेअन्दर भसर्टकर प्रत्यग्रष्टा रूतत शप्रत्यक्षीकृत आत्र्ा र्े आत्र्सात िो र्ाती िै। उस सर्य िर् काल तथा कालावधध को सवथशा जस्थ देते िैं। िर् तब काल के अन्दर निीं ं

ऐसी सर्ाधध की अवस्था जर्सर्ें भावी र्ीवन का वीर् पवद्यर्ान रिता िै, अथात् श ्'सबीर् सर्ाधध', तथा जर्सर्ें यि पवद्यर्ान निीं ंरिता, अथात् श ्'तनबीर् सर्ाधध' - दोनों र्ें भेद ककया गया िै। वाचस्पतत के अनुसार, बीर् "कर् शका प्रसुप्त आर्य िै, र्ो र्न्र्, र्ीवन की अवधध तथा सुखों के नाना रूपों की बाधाओं के अनुरूप िै।"[1291] जर्सका यि आधार िै वि सबीर् िै और र्ो इससे पवरहित िै वि तनबीर् िै। प्रकृततर्न्य अन्य सव पदाथों की भांतत धचि के भी तीन पाश्व शिैं, अथात्श ्सत्त्व, रर्् ्और तर्् ्। व्यास के अनुसार, "इसका साजत्त्वक पाश्व,श र्ो प्रकार्य िै, र्ब रर्् ्और तर्् ्के साथ संयुक्त रिता िै तो र्क्त तथा ऐजन्द्रय पवषयों की कार्ना करता िै। ककन्तु र्ब र्ब तर् सेअभभभूत रिता िै तो बुराई, अज्ञान और आसजक्त की ओर प्रवृि िोता िै तथा अपनेप्रभुत्व को अनुभव करनेर्ें असफल रिता िै। र्ब रर् का आवरण दूरू िो र्ाता िै तो विींचारों ओर से प्रकाभर्त िोता िै, और क्योंकक इसर्ें थोडा-सा रर्् का अंर् सजम्भलत रिता िै इसभलए धर्,श ज्ञान, अनासजक्त तथा प्रभुत्व के प्रतत प्रवृि िोता िै। र्ब सत्त्व, र्ब रर्् ्का लेर्र्ात्र भी र्ेष निीं रिता तो, अपने-आप र्ें अवजस्थत िो र्ाता िै। (स्वरूपप्रततष्ठर्)्, और सत्त्व तथा आत्र्ा के भेदे को पिचानने के अततररक्त अन्य कुछ न िीनिेसे (सत्त्वपुरुर्षान्यताख्याततर्ात्रर्)् धर्र्ेशघ के धचन्तन के प्रतत प्रवृि िो र्ाता िै (धर्र्ेशघध्यानोपगं भवतत)। इसको धर्र्ेशघ इसभलए किा गया िै क्योंकक यि धर् शअयांन सत्य से पररपूण शिै तथा नीचे के स्तरों पर वरदानों की वर्षा शकरता िै, र्बकक र्नुष्य स्वय तनत्य स्वरूपी सूय शकी धूप का आनन्द लेता िै और सब प्रकार के कष्टों तथा कर्ों से ज्या उठ गया िोता िै। ध्यानी पुरुर्ष इसे ेउच्चतर् श्ेरेणी की बोधप्रकिया (प्रसंख्यान) र्ानते िैं। ककन्तु धचततर्जक्त तनपवकशार िै और पदाथों के साथ संयुक्त निीं ंिोती। पदाथ शइसके सम्र्ुख आते िैं, ककन्तु यि तनदोर्ष रिती िै और इसका अन्त निीं ंिै, र्बकक पववेकेख्यातत, जर्सका सारतत्त्व सत्त्व िै, इसकी प्रततपक्षी िै।" यद्यपप यि उच्चतर् ज्ञान िै र्ो सम्भव िो सकता िै, ककन्तु इसका भी दर्न करना आवश्यक िै।'[1292] इस प्रकार इससे भी तनरार् िोकर धचत इस अन्तदृजशष्ट को तनयजन्त्रत करता िै। इस अवस्था र्ें इसके अन्दर संस्ंकार रिते िै।ं सबीर् सर्ाधध का उपयोग, जर्सके द्वारा वस्तुओं का ज्ञान ग्रिण करने की र्िान् ्र्जक्त प्राप्त िोती िै, तनबीर् सर्ाधध तक पिुंचने के भलए एक आवश्यक सोपान के रूप र्ें करना िोगा क्योंकक इस अवस्था र्ें ककसी भी प्रर्ेय की चेतना निींरिती इसभलए इसे ेअसम्प्रज्ञात भी किा गया िै।" यद्यपप कुछ संस्कार रिते िैं, ककन्तु उनका र्ूल नष्ट िो र्ाता िै। परन्तु भोर् की सम्र्तत िै कक पूण शअसम्प्रज्ञात सर्ाधध र्ें सर्स्त संस्कार नष्ट िो र्ाते िैं।[1293] व्यास और वाचस्पतत का र्त िै कक उस अवस्था र्ें संस्कार पवद्यर्ान रिते िैं।'[1294] ककन्तु अजन्तर् र्ोक्ष के भलए िोते,े बजल्क काल अथवा स्वयं अनन्तता िर्ारे अन्दर िोती िै। बगत िर्ारे भलए प्रर्ेय निींरिता, बजल्क िर्ारे अन्दर लुप्त िो र्ाता िै।" इस प्रकार यि प्रकट िै कक एका साधना कक केवल पूव शके लोगों का िी र्जस्तष्क इस प्रकार के भावुकतार्य पवचारों के भलए उपयुक्त िै, र्ो अतीजन्द्रय सौन्दयपशरक धचन्तन र्ें पररणत िो र्ाते िैं, ठीक निीं िै।

1291 तत्ववैर्ारदी 1/2।

1292 व्यास (1: 4) पंचभर्ख से इस प्रकार का एक उद्धरण देतेिैं: "ज्ञान केवल एक िै, भेदज्ञान िी ज्ञान िै।" "एकर्ेवदर्नंश ख्याततरेव दर्नशर्।्"

1293 भोर्वृपि, 1: 18।

1294 रार्ेन्द्रलाल भर्त्र भलखते िैं: "इस पवरोध का सर्ाधान यों ककया र्ा सकता िै कक र्ानो पातंर्लभाष्य की दृजष्ट र्ें एक वि सर्ाधध िै जर्ससे र्ागना िोता िै, र्बकक भोर् ऐसी अजन्तर् सर्ाधध की प्रारजम्भक अवस्थाओं र्ें कुछ पवभर्ष्ट संस्कार

उन्हें दूरू करना आवश्यक िै, क्योंकक योगसूत्र का किना िै कक र्ब अन्तदृजशष्ट के अवचेतनावस्थागर् संस्कार का भी दर्न िो गया, अथात्श ्र्ब सब कुछ दर्न िो गया, तो योगी तनबीर् सर्ाधध को प्राप्त कर लेता िै।'[1295]

श ्पुरुर्षकोप्रकृतिससे सर्ाधध की अवस्था को निींपिुँचते, िर्ारा प्रयत्न तनर्षेधपरक, अथात् भभन्न र्ानना, रिता िै। ककन्तु र्ब इस पारस्पररक भेद का पूरा ज्ञान िो गया तो आत्र्ा का पवध्यात्र्क स्वरूप अपनेको अभभव्यक्त करता िै। आत्र्ा के स्वरूप की उसके अपने स्तर पर यि अभभव्यजक्त, र्ो प्रकृतत के साथ सब प्रकार के भर्श्रण से ऊपर िै, सर्ाधध की सबसे उन्नत अवस्था िै। इस अत्युत्कृष्ट चेतनार्य सर्ाधध र्ें द्रष्टा अपनेस्वरूप र्ें अवजस्थत रिता िै।'[1296] उस अवस्था र्ें आत्र्ा तथा पवि की किया के भर्श्रण की सर्स्त सम्भावना भर्ट र्ाती िै।[1297] योग का यि र्त िै कक र्नुष्य का धचि एक चक्की के पाट के सर्ान िै। यहद िर् उसके नीचे गेिूँ रखेंगे ेतो वि उसे ेपीसकर आटश के रूप र्ें पररणत कर देगा, और यहद िर् उसर्ें पीसने को कुछ न रखेंगे ेतो वि चलते–चलतेअन्त र्ें अपने-आप को िी पीस डालेगा। र्ब िर् धचि को उसके उतराव-चढ़ाव से पवीन कर देते िैं तो उसकी चेष्टा पवरार् को प्राप्त िो र्ाती िै, और वि तनतान्त अकर्ण्यता की अवस्था र्ें आ र्ाता िै। उस सर्य िर् एक ऐसेर्ौन र्ें प्रवेर् करते िैं जर्स पर बाह्य र्गत् ्का सतत कोलिाल कोई प्रभाव निीं डालता। धचि तो तनराश्रय िो गया, ककन्तु आत्र्ा बबलकुल स्वस्थ िै। यि एक ऐसी अवस्था िै र्ो रिस्यर्य िै और प्रगाढ़ एकाग्रता के पररणार्स्वरूप िोती िै। इसका िर् ठीक-ठीक पववरण निीं दे सकते क्योंकक र्ैसे ेकक व्यास ने उद्धरण हदया िै, "योग के द्वारा िी योग र्ाना र्ाता िै, और योग की अभभव्यजक्त भी योग के िी द्वारा िोती िै, और र्ो योग के प्रतत तत्पर िै वि सदा इसी र्ें रर्ा रिता िै।"[1298] सर्ाधध एक ऐसी अवस्था िै र्ो बिुत कर् व्यजक्तयों को प्राप्त िोती िै और प्रायः कोई भी इसेदेर तक धारण ककए निींरि सकता, क्योंकक र्ीवन की र्ांगों के कारण यि भंग िो र्ाती िै। इसभलए यि किा गया िै कक अजन्तर् र्ोक्ष तब तक सम्भव निींिै, र्ब तक कक इस र्रीर का त्याग निीं िोता।

उन्र्ाद की अवस्थाएं ंआती िैं, इस पवर्षय र्ें कोई भी संदेि निींकर सकता। प्लेटो के अनुसार, "यि दैवीय उन्र्ाद र्नुष्य को हदए गए वरदानों का र्ुख्यतर् स्रोत िै।" सवोच्च अन्तःप्रेरणाओंका आपवभावश र्ीवन के ऐसे िी क्षणों र्ें िुआ िै। िोरेब पवतश पर र्ोर्ेर् ने अनाहद, अनन्त पवश्वात्र्ा के र्ब्द को 'र् ैंिींूंू' इस ध्वतन र्ें सुना। ईसाईयि ने

र्ेर्ष रि र्ाते िैं। योगीर्न स्वीकार करते िैं कक असम्प्रज्ञात सर्ाधध से पुरुर्ष र्ागते िैं, और कक उस सर्ाधध का प्रायः अभ्यास ककया र्ाता िै, और इस प्रकार की अवस्थाओंर्ें संस्कार अन्ततनहित अवस्था र्ें अवश्य रि र्ातीं, र्ोकक सर्ाधध से ेउठने े पर उधचत उिर्ना भर्लनेपर पुनरुज्र्ीपवत िो उिेंगे। यि सन्तोर्षर्नक रूप से किना कक पतंर्भल स्वयंककस सर्ाधध की अवस्था के पवर्षय र्ें किते िैं, कहठन िै। जर्स प्रकार उन्िोंने 'र्ेर्ष' र्ब्द का प्रयोग ककया िै उससे ेइस प्रकार का सुझाव भर्लता िै कक पातंर्लभार्षा ने उनका ठीक िी अथ शलगाया िै" (योगसूत्र, पृष्ठ 23)।

1295 1: 51। तस्यापप तनरोध सवतशनरोधाजन्नबीर्ः सर्ाधधः।

1296 1:3 ।

1297 1:3-4।

1298 योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगालावततेश ।
पीप्रर्िस्तु योगेन स योगे रर्तेधचरर् ्॥ (योगभाष्य, 5 / 6) ।

 यथाथसशिा के रिस्य को 'पपवत्र, पपवत्र, पपवत्र', इन ब्दों द्वारा प्रत्यक्ष ककया। सन्त पीटस शने सडक के दर्नश से

ी यि ज्ञान प्राप्त ककया कक ईश्वर सब नुष्यों तथा सब राष्रों के भलए एकसर्ान ि। किा र्ाता ि कक सन्त पॉल अपनी दीक्षा लेतेसर्य सर्ाधध की रूच्छा शर्ें आ गए थे। ध्यर्युग के रिस्यवादी प्रायः ि अद्भुत दर्नश तथा अद्भुत वाणणयों के पवषय र्ें किते ेसुनेगए ि। आधुतुनक काल के कपवयों र्ें वड्सशवथ शऔर टैनीसन उन्र्ाद की दर्ाओं का प्रायः उल्लेख करति। इन अद्भुत दर्नशों तथा अद्भुत वाणणयों को साधारणतः ईश्वर से साक्षात्कार र्ाना गया ि, र्ोकक बाधाओं के साथ रूझूते िुए सन्तों को सिाय्य प्रदान करने तथा आवश्यकता के सर्य बल प्रदान करने के अभभप्राय सेप्रकट िोते ि, जर्ससे ेकक ईश्वर र्ें श्रद्धा रखनेवालों के भलए उन्र्ाद की अवस्था दैवत्वप्राजप्त ि का दूसूरा नार् ि।'[1299] ककन्तु योग का र्त ऐसा निीं। प्रत्येक आत्र्ा रूलरूप र्ें दैवीय ि, और उसके दैवत्य की अभभव्यजक्त तव िोती ि र्बकक बात तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकार के स्वभाव पर नुष्य तनयन्त्रण कर लेता ि।'[1300] अद्भुत दर्नशों तथा अद्भुत वाणणयों को योग र्ें नुष्य के अपनेअन्दर के सूरूनात्र्क भाव का प्रकार्न र्ात्र र्ाना गया ि। उक्त दर्नश अथवा अद्भुत वाणणयां ंप्रार्ाणणक िया निीं, इसका तनणयश तकश के प्रकार् से करना चाहिए।

14. र्ोक्ष

र्ोक्ष का नार् योगदर्नश र्ें 'कैवल्य' अथात् श ्परर् स्वातन्त्र्य ि। यि अवस्था केवल तनर्ेषेधात्र्क निीं, बजल्क पुरुष का वि तनत्यर्ीवन ि र्ो प्रकृतत के बन्धनों से रुक्त िोकर प्राप्त िोता ि। इसकी व्याख्या करते िुए किा गया ि कक यि गुणों का पूवावशस्था को प्राप्त िो र्ाना ि, क्योंकक उस सर्य आत्र्ा का कोई प्रयोर्न निीं ं रिता, अथवा बुद्धध की र्क्त अपने-आप र्ें जस्थत िोती ि।'[1301] पुरुष अपनेयथाथस्शवरूप र्ें रिता ि। हिन्दू ू पवचारधारा को अन्यान्य दर्नश-पद्धततयों की भांतंत, योगदर्नश र्ें भी सर्स्त इच्छा का कारण वस्तुओं के यथाथस्शवरूप का अज्ञान ि। र्ीर इसी अज्ञान के कारण ि। इसका सर्थकश धचि ि और इसका पवषय सांसाररक सुखोपभोग ि। र्ब तक अपवद्या का अजस्तत्व ि, नुष्य अपनेबोझ को उतारकर निीं ंफेंक सकता ि। अपवद्या का पररिार पववेकज्ञान (पववेकख्याातत) के द्वारा िो सकता ि।'[1302] र्ब नुष्य ज्ञान प्राप्त कर लेता ि तो सब

1299 "कततपय र्िन् ्ईसाई रिस्यवाहदयों नेईसार्सी अथवा ईश्वर की स्वत:सम्भूत कायर्शजक्त को ि दैवत्व का नार् हदया ि" (र्ें.े एच. ल्यूबा र्नलश आफ कफलासफी, 21 पृष्ठ 702)।

1300 बनाडश शर्ा कृत 'सटें र्ोन' की प्रकार् डालनेवाली प्रस्तावना देणखए।

1301 पुरुर्षाथरूशन्यानां ंगुणानां प्रततप्रसवः कैवल्यंस्वरूपप्रततष्ठा वा धचततर्जक्तररतत (योगसूत्र, 34)।

1302 किा र्ाता ि कक इसकी सात जस्थततयां ि, र्ो इस प्रकार ि (1) वस्तु, जर्ससे छुटकारा पाना ि र्ान ली गई ि और इस प्रकार उसे ेकफर से ेर्ानने की आवश्यकता निीं। (2) जर्स बस्तु से छुटकारा • पाना ि उसके कारण क्षीण िो चुके ि और इसभलए उर्न्ें और क्षीण िोने की आवश्यकता निीं। (3) छुटकारे का सीधा प्रत्यक्ष तनरोध सर्ाधध द्वारा िोता ि । (4) पवभेदज्ञान के रूप र्ें छुटकारे के साधन को भसद्ध ककया गया ि। र्िंवे चारों चार प्रकार की बाह्य प्रपंच से रुजक्त (कायपशवरुजक्त) से ेसम्बन्ध रखती ि, र्िां अन्य तीन का सम्बन्ध अजन्तर् र्ोक्ष (धचिपवरुजक्त) से ि और वे ि- (1) बुद्धध का अधधकार सर्ाप्त िो गया; (2)गुणों को पवश्रार् भर्ल गया; (3) आत्र्ा, जर्सनेगुणों से अपना सम्बन्ध तोड भलया ि,

प्रकार के भर्थ्या पवचार पवलुप्त ि◌ो र्ाते ि◌ैं। आत्र्ा पपवत्र ि◌ो र्ाती ि◌ै और धचि की अवस्थाओं से अभलप्त रिती ि◌ै। गुण भी अवकार्‌ प्राप्त कर लेतेि◌ैं और आत्र्ा अपनेसारतत्त्व र्ें प्रततजष्ठत ि◌ो र्ाती ि◌ै।'[1303]

र्ीव का लक्ष्य अनासजक्त तथा स्वाधीनता प्राप्त करना ि◌ै। यि पाररवाररक र्ीवन, सर्ार्‌ आहद र्ानवीय सम्बन्धों के अनुकूल निीं ि◌ै, और इसीभलए योग एक ऐसा दर्नश किा गया ि◌ै जर्सको नीततर्ास्त्र से कोई सरोकार निीं ि◌ै। एक ऐसेदर्नश र्ें, जर्सका लक्ष्य ि◌ी र्नुष्य के संसार-सम्बन्धी सर्स्त बन्धनों को तोडनेका ि◌ो, नैततक, पवर्षयों पर पववेचन के भलए कोई स्थान निीं ि◌ं◌ो सकता।'[1304] इस प्रकार की सर्ालोचना का ि◌र्ें प्रायः ि◌ी सार्ना करना पडा ि◌ै। नैततक र्ाग शिी एकर्ात्र ि◌र्ें पूणतशा तक पिुंचानेर्ें सिायक ि◌ोता ि◌ै, यद्यपप पूणतशा की प्राजप्त के पश्चात्‌ ि◌्र्‌ ऐसेक्षेत्र र्ें पिुंच र्ाते ि◌ैं र्ो अच्छाई और बुराई दोनों से परे ि◌ै। आत्र्ा के यथाथस्शवरूप को, र्ो अनेक प्रकार के आवरणों र्ें र्भलन बना रिता ि◌ै, र्ान लेनेका ि◌ी नार्‌ र्ोक्ष ि◌ै। ि◌र्‌ केवल पुरुर्षाथ शतथा आत्र्संयर्‌ के द्वारा ि◌ी उनसे र्ुजक्त पा सकते ि◌ैं। अन्यान्य अनेकों दर्नश-पद्धततयों की अपेक्षा योगदर्नश इस र्त को स्वीकार करने र्ें किीं ि◌ंअधधक बल देता ि◌ै कक दार्तशनक ज्ञान ि◌र्ें त्राण निींपिुंचा सकता। जर्स बस्तु की ि◌र्ें आवश्यकता ि◌ै वि अनुसन्धान अथवा पववेचन की सूक्ष्ताएंनिीं ि◌ै, बजल्क इच्छार्जक्त को वर्‌ र्ें करना ि◌ै। ि◌र्ें अपनी आन्तररक भावनाओं तथा वासनाओंपर पवर्य पानी ि◌ै। सच्चा दार्तशनक वि ि◌ै र्ो आत्र्ा का धचककत्सक ि◌ो, र्ो ि◌र्ें इच्छाओं के बन्धन ते र्ुजक्त हदलाने र्ें सिायक ि◌ो।

योगदर्नश इस बात को र्ानता ि◌ै कक सब र्नुष्य उस आत्र्संयर्‌ को पालन करने के योग्य निीं ि◌ोते ि◌ै जर्स पर कक वि बल देता ि◌ै। कुछ व्यजक्त ऐसेिैंजर्न्िें आधुतनक र्नोपवज्ञान की भार्षा र्ें 'बहिर्ुखश' किा र्ाता ि◌ै। उनके भलए कियायोग का पवधान ि◌ै, जर्सर्ें तपस्या, स्वाध्याय तथा भजक्त (ईश्वर-प्रणणधान) र्ाभर्ल ि◌ैं।[1305] तपस्या वि ि◌ै र्ो क्लेर्‌ तथा कर्‌ शके पररणार्स्वरूप अन्तस्तल र्ें बैठे ि◌ुए अज्ञात संस्कारों सर्ेत सर्स्त र्लों को भस्र्सात्‌ ि◌्कर देती ि◌ै। योगान्तगतश र्नोपवज्ञान की धारणा ि◌ै कक चेतन र्न के अततररक्त भी एक अचेतन ककन्तु सकिय आजत्र्क क्षेत्र ि◌ै, और तपस्या का लक्ष्य इस अचेतन क्षेत्र के पवर्षयों को भी वर्‌ र्ें करना ि◌ै।'[1306]

स्वतः प्रकाभर्त ि◌ोती ि◌ै इससे अधधक कुछ निीं, और यि तनर्लश तथा पृथक्‌ ि◌ो गई। (गुणसम्बन्धातीतः स्वरूपर्ात्रज्योततर्र्तः केवती पुरुर्ष इतत) (योगभाष्य, 2/27)

[1303] 3/24 - 33

[1304] "तार्कशक दृजष्ट से ि◌एक नैततक प्रयोर्न तथा आचरण योग के लक्ष्य की र्ांग ि◌ै, क्योंकक सत्य-व्यविार तथा र्ैत्रीभाव इत्याहद ऐसेव्यजक्त के भलए ककसी प्रयोर्न के निीं र्ो तनतान्त अनासजक्त तथा एकाकीपन चािता ि◌ै। नैततक ि◌र्ाओं की धचंतां का व्यजक्तत्व के दर्न की कार्ना के साथ संयोर्न उन पवर्षर्ताओं र्ें से ि◌ै र्ो पवचार की अव्यवस्था को प्रकट करती ि◌ैं, और यि इस दर्नश र्ें एक त्रुहट ि◌ै।" (र्नलश आफ पवलासफी, अध्याय 16, संख्या 8, पृष्ठ 200)।

[1305] 2/1 ।

[1306] चैतन्य की सीर्ारेखा के ऊपर र्ो कुछ आता ि◌ै वि नीचेकी ओर ि◌ो रि र्जक्तयों के नाटक का प्रतीक ि◌ै। योगपवद्या र्ें तनपुण पुरुर्ष, र्ानभसक रोग (स्नायुरोग) तथा 'भूतबाधा' की अवस्थाओं र्ें, र्ो कुछ साधारणतः अचेतन के अन्दर तछपा ि◌ै उसे ि◌सम्र्ोकि र्ूखा शअथवा अन्य साधनों से ि◌ऊपर की ओर आने देते ि◌ैं और खोर्‌ तनकर्ा को अन्दर तछपा ि◌ै उसे ि◌सार्ोतार, र्ो ि◌र्ें आधुतनक र्नोपवश्लेर्षण का स्र्रण कराती ि◌ैं, भारत र्ें बिुत प्रचभलत ि◌ैं।

एक योगी, जर्से ेसर्ाधध की जक्त प्राप्त िो गई िै, कर् शको नष्ट करने के भलए उद्यत िो र्ाता िै। और वे कर् शतीन प्रकार के िैं: (1) भूतकाल र्ें ककए िुए कर्,श जर्न्िोंने वतर्शान र्ीवन र्ें अपना फल देना प्रारम्भ कर हदया िै (ये प्रारब्ध कर् शिैं); (2) वे कर् शर्ो भूतकाल र्ें ककए गए िैं ककन्तु जर्नके फल ककसी भावी र्ीवन र्ें भर्लने के भलए संधचत िैं(ये संधंचत कर् शिैं); और (3) वे कर् शर्ो इस र्न्र् र्ें ककए गए और जर्नका फल इस र्ीवन र्ें अथवा ककसी भावी र्ीवन र्ें भर्लने की 3/6 (ये आगार्ी कर् शिैं)। अजन्तर् प्रकार के कर् शईश्वरभजक्त तथा सर्ार्सेवा द्वारा रोके र्ा सकते िैं। पके िुए कर् शफल दे चुकने पर इसी र्ीवन र्ें र्ेर्ष िो र्ाते िैं, और अपररपक्व कर्ों के पवर्षय र्ें, जर्नके भलए आगार्ी र्ीवन की आवश्यकता िै, यि किा र्ाता िै कक योगी पुरुर्ष ऐसे सब र्ीरों की सृजृष्ट कर सकता िै जर्नसे पुराने सव ऋणों का र्ोध िो र्ाए। इनर्ें से प्रत्येक र्ीर का एक अपना धचि अथवा कृबत्रर् र्न किते िैं। कृबत्रर् र्ीरों की, उनके धचिों सहित, धचि अथवा र्न रिता िै, जर्से ेतनर्ाणश पिचान साधारण र्ीरों से स्पष्ट रूप र्ें की र्ा सकती िै, क्योंकक वे अपनेकर्ों र्ें पूणतशया व्यवजस्थत िोते िैं। योगी की चेतना इन सब पवभभन्न इच्छारहित कायर्शरीतं का संचालन करती िै। ज्योंिी यि यन्त्रवत् ्प्राणी, जर्सका पवर्ेर्ष लक्ष्य संधचत कर् शके एक पवर्ेर्ष भाग की सर्ाजप्त िोता िै, अपना उद्देश्य पूरा कर चुकता िै, योगी उस पर से अपना तनयन्त्रण उठा लेतो िै और 'र्नुष्य' िठात् ्र्ृत्यु को प्राप्त िो र्ाता िै। प्राकृततक र्न के पवपरीत, कृबत्रर् र्न के अनुभव अपनेपीछे कोई धचह्न निीं छोडते।'[1307]

15. कर्श

र्ब तक अपवद्या पर पवर्य निींप्राप्त की र्ाती, तब तक संसार र्ें र्न्र् िोता रिेगा। कर् शका पवधान प्रार्ाणणक र्ाना गया िै, और िर्ारे र्ीवन, इसके स्वरूप तथा इसकी अवधध-सबका तनणयश इस कर्पशवधान से िी िोता िै।[1308] यद्यपप िर् अपने पूवर्शन्र्ों को स्र्रण निींकरतेतो भी िर् उनकी पवर्ेर्षताओंका अनुर्ान वतर्शान र्ीवन की प्रवृपियों द्वारा कर सकते िैं।[1309] और ये प्रवृपियां अपनेकारण (िेतु), प्रेरक भाव (फल), आश्रय और पवर्षय (आलम्बन) के लुप्त िो र्ानेपर नष्ट िो र्ाएंगी। र्ूल कारण िै अपवद्या, यद्यपप अन्य भी उसके साथ संसक्त कारण िो सकते िैं। प्रेरक भाव से तात्पय शउस प्रयोर्न से िै जर्सके सम्बन्ध र्ें कोई भी र्ानभसक प्रकिया वतर्शान र्ें कायकशारी बनती िै। धचि अवभर्ष्ट का अधधष्ठान िै और पवर्षय (प्रर्ेय पदाथ)श वि िै र्ो क्षर्ताओं को उिेजर्त करता िै।'[1310]

16. अलौककक भसद्धधयां

[1307] 4/4-5 ।

[1308] 2/12 -14 ।

[1309] 4/9

[1310] योगभाष्य , 4/11 ।

प्रचभलत इन्द्रर्ाल (र्ादू)ू के सम्प्रदाय को र्ुजक्त की योग-पवहित धाभर्कश योर्ना के साथ भर्ला हदया र्ाता िै। योगसाधना के र्ाग शर्े कुछ र्ादू ूकी र्जक्तयां प्राप्त िो र्ाती िैं, ऐसा प्रारजम्भक बौद्ध ग्रन्थों र्ें र्ाना गया िै, यद्यपप स्वयं बुद्ध ने उन र्जक्तयों की खोर् को पूण शर्ोक्ष के भलए अनुपयोगी बताया था। हिन्दूधर्ूर्शास्त्र िर्ें ऐसेव्यजक्तयों के पवर्षय र्ें बताते िैं जर्न्िोंनेकेवल कठोर तपस्या से अद्भुत र्जक्तयां ंप्राप्त कीं। योगदर्नश र्ें इन र्जक्तयों की प्राजप्त को सर्ाधध के र्ुख्य लक्ष्य से तनम्नस्तर का बताया गया िै। यद्यपप उच्चतर् लक्ष्य न भी प्राप्त िो, तो भी नीचे की जस्थततयों का अपना र्ित्त्व िै िी। प्रत्येक जस्थतत अपना पुरस्कार प्रस्तुत करती िै। आसनों द्वारा र्रीर के तनयन्त्रण से अत्यधधक र्ीत तथा अत्यधधक उष्णता साधक को निीं ं सताते।'[1311] जर्स ककसी चीर् पर भी िर् अपनेध्यान को एकाग्र करेंगे ेउसका पूरा अन्तदृजशष्टर्न्य ज्ञान िर् प्राप्त कर लेंगे। संयर् अथवा एकाग्रता ऐसेसाधन िैं जर्नके द्वारा िर् अतीजन्द्रय पवर्षयों का ज्ञान प्राप्त करतात अथवा द्वारा िर् वस्तुओं के अन्तस्तर् र्ें शका भी ज्ञान प्राप्त कर सकते िैं तथा र्िान प्रज्ञालोक सक पिुंच र्ाते िैं। भर्त्रता, अनुकम्पा एवं ंसुख पर तनयन्त्रण का प्रयोग करने से प्रज्ञा लोक र्ें वृद्धध िोती िै।[1312] यहद िर् र्ांसपेभर्यों की र्जक्त पर ध्यान को केजन्द्रत करने से इन गुणों के सर्ान र्जक्त प्राप्त िोगी[1313]। इजन्द्रयों की बढ़ी िुई र्जक्तयां, जर्नसे ेयोगी दूरू से देख देव्या सुन सकता िै, एकाग्रता का िी पररणार् िै।[1314] िर् अचेतन संस्कारों का भी सीधा ज्ञान तथा कर सकते िैं तथा उनके द्वारा अपनेपूवर्शन्र्ों के पवर्षय र्ें भी र्ान सकते िैं।[1315] ककसी भी प्रस्तुत पवचार पर एकाग्रता के साथ संयर् करने से पररणार्स्वरूप दूसूरे के र्न को भाव र्ाना र्ा सकता िै। (परधचिज्ञानर्)्।'[1316] एक व्यजक्त से दूसूरे व्यजक्त तक पवचार का संर्िण बबना ककसी साधारण संचारसाधन के सवथशा सम्भव िै। तीन प्रकार के पररवतनशों पर ध्यान र्गाने से, जर्नर्ें िोकर सब पदाथ शबराबर गुर्रते रिते िैं, र्ि भूत, भपवष्यत् ्तथा वतर्शानकाल के पवर्षय र्ें र्ानने की र्जक्त प्राप्त करते िैं।"[1317] योगी अपनेर्रीर को अदृश्य बना सकता िैं।[1318] दो प्रकार के कर्ों पर संयर् करने से, अथात् श ्उन क्षर्ताओं पर र्ो र्ीघ्र िी सर्ाप्त िो र्ाएंगी तथा उन पर जर्न्िें सर्ाप्त िोनेर्ें अधधक सर्य लगेगा, वि र्ान र्ाता िै कक वि कब र्रेगा। वि सूक्ष् को, तछपे िुए को, अस्पष्ट को, अन्तररक्ष को, नक्षत्रर्ण्डल को, ध्रुव तारे को, र्ारीररक संघटन को तत्सम्बन्धी संयर्ों को करने सेर्ान लेता िै। पतंर्भल के अनुसार, ऐसा र्नुष्य र्ो आत्र्ा तथा पदाथ-शर्गत् ्के पृथक्त्व को

1311 2/48 ।

1312 3:23 ।

1313 3/24 ।

1314 3:35 ।

1315 3/18 ।

1316 3/19 ।

1317 3:16 ।

1318 योगसूत्र, 3: 21। "गोरेस का र्ो पांच खण्डों र्ें बडा ग्रन्थ िै उसे ेदैवीय, प्राकृततक और नारकीय (संधातनक) र्िस्यवाद र्ें पवभक्त ककया गया िै। पिले र्ें दृजष्ट, श्रवण, गन्ध आहद की र्जक्तयों के चात्कर्ाररक रूप र्ें बढ़ र्ानेके सम्बन्ध र्ें, र्ो अत्यधधक पपवत्रता का पररणार् िै, ककतनयां दी गई िैं, और उनर्ें बतताया एना िै कक ककस प्रकार एक र्ित्र्ा को अदृश्य िो र्ानेकी र्जक्त प्राप्त थी, एक दूसूरे सन्त को बन्द दरवार्ों के अन्दर से गुर्र र्ाने की और तीसरे को वायु र्ें उडनेकी र्जक्त प्राप्त थी" (डीन इंगे : किजश्चयन भसजस्टभसज्र्, पृषूठ 264-65)।

ठीक-ठीक र्ान लेता ि, र्ीवन की तर्ार् अवस्थाओं और सवज्ञशता पर अधधकार प्राप्त कर लेता ि।[1319] पूण शज्ञान की प्राजप्त से पूव शिरें् कभी-कभी सत्य के पवर्षय र्ें एक प्रकार की पूव शअन्तदृजशष्ट भर्ल र्ाती ि। इसे प्रततभा किते ि।"[1320]

अलौकिकक भसद्धधयां वस्तुतः सर्ाधध के र्ाग शर्ें बाधक िैं, यद्यपप र्नुष्य इन्िें प्राप्त करता ि तो इन्िें पूणतशा का िी रूप सर्झने लगता ि।[1321] ये उच्च र्ीवन की आनुर्ंषंधगक उपर् िैं। ये वे फूल िैं र्ो िर्ें र्ाग शर्ें भर्ल र्ाते िैं और जर्न्िें िर् चुन लेतिैं, यद्यपप तत्य का अन्वेर्षक इन्िें चुनने के भलए नीिंतनकला था। इन पूणतशाओं की उपेक्षा करने सिी र्ोक्ष प्राप्त िो सकता ि ।'[1322] बतनयान के रूपकालंकार र्ें हदव्यनगर के तीथ श याबत्रयों को स्वयं स्वग शके र्ुख्य द्वार पर िी एक छोटी-सी णखडकी भर्लती ि, जर्सर्ें से िोकर एक र्ाग शनीचे नरक तक चला गया ि। र्ो पुरुर्ष इन चत्र्कारपूण शर्जक्तयों का भर्कार िो र्ाता ि उसका अधःपतन र्ीघ्र िोता ि।

योगदर्नश र्ें इन अलौकिकक भसद्धधयों को प्रकृतत के तनयर्ों र्ें चात्र्काररक रूप से पवघ्न डालनेवाली निीं र्ाना गया ि। र्ो र्गत् िर्ारे भलए इजन्द्रयगोचर ि यिी सम्पूण शप्राकृततक र्गत् निीं ि। र्ो भौततक र्गत् के भसद्धान्तों का व्याघात प्रतीत िोता ि, वि पवश्व-व्यवस्था के दूसूरे भाग के भसद्धान्तों द्वारा उसकी केवल पूततर्शात्र ि। भौततक र्गत् से परे र्ो र्गत् ि उसका अपना िी पवज्ञान तथा पवधान ि। असीर् भौततक एवं बौद्धधक र्जक्त के आकर्षणशों का उपयोग सम्भवतः सांसाररक र्ीव को उच्चतर् र्ीवन तक ले र्ानेके भलए ककया गया िो, क्योंकक र्ूख शलोग सदा धचह्नों की िी खोर् करते िैं।

"भसद्धधयां, र्न्र् से, और्षधधयों से र्न्त्रों द्वारा, तपस्या से अथवा सर्ाधध द्वारा प्राप्त िोती िैं।"[1323] कुछ व्यजक्त र्जक्तयों के साथ िी उत्पन्न िोते िैं, क्योंकक उन्िोंनेपूवर्शन्र् र्ें योग का अभ्यास ककया िोता ि। ये र्न्र्ीत आजत्र्क व्यजक्त थोडे–सिी प्रभर्क्षण से उत्कृष्ट योगी बन र्ाते िैं। कभी-कभी आजत्र्क र्जक्तयों की प्राजप्त और्षधधयों और चेतनार्ून्य करनेवाली और्षधधयों के प्रयोग से भी िोती ि। प्रचभलत पवचार र्ें नर्ीली दवाइयों से प्राप्त र्ूच्छाशऔर उन्र्ाद की अवस्था र्ें कोई भेदे निींककया र्ाता। पतंर्भल ने और्षधधयों के प्रयोग का पवधान निींककया ि, यद्यपप भसद्धधयों के प्राप्त करने के उपायों र्ें इसका उल्लेखे अवश्य ि।[1324] इस प्रकार और्षधध द्वारा नर्ा लानेकी आदत, र्ो आहदर् र्ाततयों र्ें प्रचभलत थी, योग के उच्चतर रिस्यवाद के साथ

1319 योगभाष्य, 3/33, 3:37 3/49

1320

1321 3:37

1322 3:50-51

1323 4:1 ।

1324 नाइरस ऑक्साइड उन्र्ादपरक चेतना को उत्तेजर्त करता ि। पवभलयर् र्ेम्स के अनुसार, "र्द्य अपनेउपासक को वस्तुओं की भावर्ून्य (ड) पररधध से दीजप्तर्ान अन्तरित्त्व तक पिुंचा देता ि। यि उसे क्षणर्ात्र के भलए सत्य के साथ तादात्म्य प्राप्त करा देता ि" (वैराइटीर् आफ ररभलजर्यस एक्सपीररयंस, पृष्ठ 387)।

भर्धश्रत कर दी गई। न्त्र[1325] तथा तपस्या भी िर्ें इन र्जक्तयों को प्राप्त करने र्ें सियता देते िैं ककन्तु बल केवल धचि की एकाग्रता पर िी हदया गया िै, औरों पर निीं। और्षधधयों अथवा अव्यवजस्थत स्नायुर्ाल द्वारा प्राप्त अद्भुत दर्नश को दूपूर्षत ठिराया गया िै। योगदर्नश अपनी पररजस्थततयों से सवथशा सम्बन्ध-पवच्छेद करने को उद्यत निीं ◌ंथा, इसभलए ऐसेअंर्ों को भी उसने अपने अन्दर सजम्भलत कर भलया र्ो उसके अन्तस्तर् अजस्तत्व के साथ सम्बन्ध निींरखते ◌ेथे। इसी सर्झौते ◌ेके भाव के कारण योगदर्नश का यि पवपवधतापूण शस्वरूप िै, र्ो तनम्नस्तर के प्रकृततवाद तथा उच्चस्तर के आदर्वशाद के एक भर्धश्रत रूप को प्रस्तुत करता िै। वातावरण से भी अनर्ाने सुझाव भर्ल र्ाना स्वाभापवक िै, और इसभलए योगदर्नश कुछ ऐसी पवर्ेर्षताओं को प्रस्तुत करता िै र्ो उस युग की जर्सर्ें इसका प्रादुभावश िुआ, अवस्थाओं के कारण उत्पन्न िुई थीं।◌ं ककन्तु िर्ारे भलए यि आसान िै कक िर् इन गौण तथा आकजस्क लक्षणों को र्ुख्य तथा आन्तररक लक्षणों से पृथक् कर सकें। योगसूत्र इन और्षधधयों तथा न्त्रों पर आगे ◌ेततनक भी ध्यान निींदेता, जर्ससे ◌ेसुझाव यि भर्लता िै कक उसका तनजश्चत र्त यि िै कक धचह्न और पवलक्षणता-जर्नको असंस्कृतर्न खोर्ते िैं-चािे सम्यक् रूप से प्रर्ाणणत िी िों, तो भी उनका आध्याजत्र्क र्ित्त्व कुछ निीं।

17. ईश्वर

पतंर्भल ने ईश्वर भजक्त को योग के सियकों र्ें अन्यतर् र्ाना िै।[1326] ईश्वर केवल ध्यान का िी पवर्षय निीं, बजल्क बाधाओं को दूरू करके लक्ष्य प्राजप्त र्ें सियता करनेवाला भी र्ाना गया िै। ककन्तु ईश्वरवाद पतंर्भल के सम्प्रदाय का अन्तरंग भाग निीं। पतंर्भल के कियात्र्क प्रपोर्न एक र्रीरधारी ईश्वर से पूरे िो र्ाते िैं, और वि ईश्वरवाद की कल्पनात्र्क रुधचयों से अधधक वास्ता निींरखता । व्यास ने एक ऐसा िेतु प्रस्तुत ककया िै र्ो िर्ें र्ास्त्रीय ताजत्वक िेतु का स्र्रण कराता िै ।[1327] ईश्वर पूण शस्वभाव वाला (प्रकृष्टता) िै। उसकी प्रष्टता उसके तुल्य अथवा उससे उत्कृष्ट दूसूरे ककसी के न िोनेर्ें िै। प्रथर् तो, कोई अन्य प्रकृष्टता इससे बढ़ निींसकती, क्योंकक र्ो कोई इससे अधधक प्रकृष्टता का दावा करेगा उसे ◌ेउतनी प्रकृष्टता अपनी भसद्ध करनी िोगी। इसभलए जर्सर्ें कोई प्रकृष्टता की इस प्रकार की पराकाष्ठा पाई र्ायेगी विी ईश्वर िै।" कफर, उसके सर्ान प्रकृष्टता भी ककसी अन्य र्ें निीं। "क्योकक र्ब एक िी वस्तु की इच्छा सर्ान श्रेणी के दो व्यजक्त करते िैं, जर्नर्ें से एक तो किे कक 'यि नई िोनी चाहिए' और दूसूरा किे कक 'यि पुरानी िोनी चाहिए' तो यहद एक की पवर्य िोती िै तो दूसूरे को अपनी इच्छा र्ें असफलता भर्लती िै और वि िीनतर िो र्ाता िै। और दो सर्ान श्रेणी के व्यजक्त उसी इजच्छत वस्तु को एक साथ प्राप्त भी निींकर सकते, क्योंकक इस प्रकार की प्राजप्त परस्पर पवरोधी िोगी। इसभलए िर्ारा र्त िै कक जर्स ककसी र्ें ऐसी प्रकृष्टता जर्सके न तो कोई बराबर िै और न कोई

1325 'अर्ेररकन न्यू थौट' सावधानी से ◌ेचुने िुए र्ब्द अथवा छन्दोबद्ध सूत्र पर ध्यान एकाग्र करने ◌ेका सुझाव देता िै, और यि पवधध न्त्रोच्चारण के अनुरूप िै।

1326 1:23 ।

1327 योगभाष्य, 1: 24 ।

उससेअधधक िै, विी ईश्वर िै।[1328] पतंर्भल ईश्वर की सवज्ञश ता को तनरन्तरता के पवधान द्वारा भसद्ध करते िैं, क्योंकक तनरन्तरता की ऊपर किीं–न-किीं ◌सीर्ा आवश्यक िै। रिां ◌र्ित् ◌्ि ै और मर्र िै, विांमर्र् भी अवश्य िै। जिस ककसी र्ें भी उत्कृष्टता की श्ेर्णयां िैं, वि उच्चतर् सीर्ा तक अवश्य पिुंच सकता िै। सवज्ञशता र्ें उत्कृष्टता की श्ेर्णयां ◌ंिैं। यि र्नैः-र्नैः अनुपात र्ें बढ़ते–बढ़तेउस सोपान तक पिुंचाती िै रिां ◌भौततक सार्ग्री (तर्ोगुण), जिसनेसारतत्त्व (सत्त्व) को ढका िुआ िै, दूरू िो र्ाती िै। और र्ब सवज्ञशता का अंकुर अपनी पूणतशा की ऊंचाई पर पिुंच र्ाता िै तो िर्ें सवज्ञश ईश्वर को पाते िैं। "उसर्ें सवज्ञशता का अंकुर पूणतशा तक पिुंचा िुआ िै।"[1329] र्ड प्रकृतत की उद्देश्यिीन प्रवृपि इस पवश्व र्ें, रिां ◌र्नुष्य अपनेकर्ों के अनुसार कष्ट भोगते िैं, व्यवस्था तथा सार्ंर्स्य निींला सकती। ईश्वर प्रकृतत के पवकास का र्ागदशर्कश िै। वि सदा इसके भलए तत्पर रिता िै कक प्रकृतत का पवकास पुरुषों के प्रयोर्नों को भसद्ध करनेवाला िो। ककन्तु ईश्वर र्गत् ◌्का स्रष्टा निीं, क्योंकक ऐसे र्गत् ◌्की सृजष्ट र्ो दुःखों से भरपूर िै, ककसी ऐसी सिा के द्वारा निीं िो सकती थी र्ो अनन्त . करुणा का आगार िो। श्ुतत ईश्वर के अजस्तत्व को भसद्ध करने का यत्न करती िै। ककन्तु इसके द्वारा हदया गया प्रर्ाण चिक दोर्ष से पूण िै, क्योंकक वेदों का प्रार्ाण्य स्वयं इस आधार पर िै कक उन्िें ईश्वर ने बनाया िै। ये प्रार्ाणणक किे र्ाते िैं, क्योंकक उनकी भर्क्षाएं ◌ंतथ्यों के अनुकूल िैं।[1330] सांख्य वेदों की प्रार्ाणणकता को र्ानता तो िै, ककन्तु उसके औधचत्य का सर्थनश निीं करता। योग ईश्वर को वेदों के प्रादुभावश का आहदस्रोत र्ानने र्ें कुछ-न-कुछ प्रर्ाण उपजस्थत करता िै।

पतंर्भल के ईश्वर का वणनश करना सरल कायश निीं िै। उसे ◌ेएक पवर्ेर्ष प्रकार की आत्र्ा किा गया िै, जिसर्ें अपूणतशा का लेर्र्ात्र भी निीं और र्ो कर्शके पवधान के ऊपर िै।'[1331] सांसाररक र्ीवन की तर्ार् उलझनों से स्वतन्त्र, ईश्वर तनत्य परर्ानन्द र्ें रिता िै। उसका धर्शऔर अधर्श(पुण्य व पाप) से कोई सम्पकश निीं। वि दुखु के भार से, जिसक र्ीपवत प्राणी अभभभूत रिते िैं, अछूता िै। वि सवज्ञश िै, प्राचीन ऋपर्षयों का भी, गुरु िै। पेरर ईश्वर को परर्श्रर् करती िुई आत्र्ाओं का ऊपर की तरफ र्ोक्ष तथा प्रकार् की ओर बढ़ने र्ें सिायता करनी िै, तो उसे ◌ेककसी-न-ककसी रूप र्ें अपनेको सांसाररक अनुभव के अधीन करना चाहिए। इसभलए पतंर्भल का झुकाव उसे ◌ेसत्य का उपदेष्टा, गुरु र्ानने की ओर िै। ईश्वर ने गुरु के रूप र्ें प्लेटो से लेकर प्रत्येक र्िान् ◌् पवचारक के हृदय र्ें प्रततध्वतन पाई िै। वि कालाबाधधत िै,[1332] पूण शकरुणार्य िै, और यद्यपप उसकी अपनी ऐसी कोई इच्छा निीं? जिसे ◌ेपूण शकरना िो, तो भी संसारी पुरुषों के भलए वि प्रत्येक संसार के युगारम्भ र्ें श्ुततयों का प्रततपादन करता िै। उसका तनदोर्ष कोहट का सत्त्वस्वभाव, र्ो रर्स् ◌्अथवा तर्स् ◌्र्ें िोनेवाली प्रत्येक त्रुहट सै सवथशा रहित िै, उसकी आत्र्-अभभव्यजक्त का साधन िै और वि पूणरूशप र्ें उसके वर् र्ें िै।[1333] ईश्वर सवदशा

1328 योगभाष्य, 1/24

1329 तत्र तनरततशयंसवज्ञश त्वबीर्् ◌्((1/25)और देणखए योगभाष्य, और इस पर योगवाततकश:।

1330 तत्त्ववैर्ारदी, 1/24

1331 1/24 ।

1332 1/25 -26 ।

1333 योगभाष्य, 1/25

 स्वतन्त्र िै, और इसभलए उसे ेरुक्त आत्र्ाओं ि साथ र्नीं ंभर्लाया र्ा सकता, र्ो ककसी सर्य बद्ध थीं, या र्ो

प्रकृतत र्ें लीन िैं और भपवष्य र्ें ककसी सर्य भी बन्धन प्राप्त कर सकती िैं। रुक्तात्र्ाओं के पवपरीत, र्जनका संसार से कोई और सम्बन्ध र्नीं रिता, ईश्वर तनत्य संसार के साथ सम्बन्ध रखता िै। यि र्ान भलया गया िै कक ईश्वर का प्रकृतत के पवरुद्धतर् पक्ष अथात्श ्सत्त्व के साथ तनत्य तथा अटूट सम्बन्ध िै, और इस प्रकार के ईश्वर के अन्दर सदा सवोपरर र्जक्तः ज्ञाम्र तथा श्रेष्ठता रिती िै। वि अपनी करुणा से सत्त्वगुण धारण करके पररवतनश के प्रदर्नश र्ें अन्तःप्रवेर् करता िै। क्योंकक वि संघर्ष शर्ें लगे ेपुरुषों के हित र्ें स्वेच्छा से ऐसा करता िै, इसभलए वि कर् शके पवधान र्ें र्नीं आता। र्ान् ्प्रलयकाल र्ें, र्बकक प्रकृतत अपनी अव्यक्ता अवस्था र्ें लौट र्ाती िै, तो वि स्वीकृत रूप त्याग हदया र्ाता िै, यद्यपप ककसी रात अगले ेहदन प्रातः एक तनजश्चत सर्य पर र्ाग उठने का संकल्प करता िै और उसी सर्य उठ भी र्ाता िै और यि उसके दृढ़ संकल्प द्वारा छोडेगए संस्कार के बल पर िोता िै, ठीक उसी प्रकार ईश्वर भी र्ब प्रकृतत कफर से पवकास प्रारम्भ करती िै तथा पुरुर्ष प्रकट िोते िैं, कफर से

र्ान् ्भर्क्षक का रूप धारण करने का संकल्प करता िै। रिस्यपूण शअक्षर 'ओर्'् ईश्वर का द्योतक िै और इस पर ध्यान लगाने से र्न ईश्वर की यथाथ शझांकी र्ें पवश्रार् करता िै।'[1334]

योगदर्नश का र्रीरधारी ईश्वर उक्त दर्नश के र्ेर्ष भाग के साथ बिुत भर्धथलतापूवकश सम्बद्ध िै। र्ानवीय र्ित्त्वाकांक्षा का लक्ष्य ईश्वर के साथ सजम्र्लन र्नीं, बजल्क पुरुर्ष का प्रकृतत से सवथशा पृथक्त्व िै। ईश्वरभजक्त परर् र्ोक्ष तक पिुंचने के अन्य अनेक उपायों र्ें से एक िै। ईश्वर केवल एक पवर्ेर्ष आत्र्ा (पुरुर्षपवर्ेर्ष) िै, पवश्व का स्रष्टा अथवा संरक्षक वि एक बार प्रकट िो गया तो उसके भलए कोई-न-कोई काय श तनकालना िी चाहिए। किा र्ाता िै कक यि अपनेभक्तों की उन्नतत र्ें र्ो बाधाएं ंआती िैं, उर्न्िें दूरू करने र्ें सिायता करता िै। प्रणणधान अथातश तनःस्वाथ शभजक्त सिेर् ईश्वर की दया के पात्र बनने के योग्य िो र्ाते िैं। ईश्वर र्ोक्षप्राजप्त र्ें सिूभलयत देता िै, ककन्तु सीधा र्ोक्ष का दाता बनने के योग्य इस प्रकार का ईश्वर-पवर्षयक पवचार असन्तोर्षर्नक िै,[1335] और िर् यि किे बबना की। तनःसन्दिे कक योगदर्नश ने ईश्वर के पवचार को लोकाचार के पवचार से और र्नसाधार र्नी रि सकते आकृष्ट करने के भलए िी अपनाया िै।[1336] उन व्यजक्तयों ने र्ो सांख्य की पवश्व-सम्बन्ध के र्न को वैधा योग की साधना-सम्बन्धी पवधधयों के प्रचार के भलए उत्सुक थे, सम्भवतः र्नुष्य की सिर् वाजस्तक वृपियों को सन्तुष्ट ककए बबना अपने पवचारों को फैलाने र्ें कहठनाई अनुभव की। परवती योग र्ें र्ानवीय हृदय की सावभशौर् आवश्यकताएं अधधक वलवान भसद्ध िोती िैं, और इंश्वर एक अधधक केन्द्रीय स्थान लेना प्रारम्भ करता िै। र्नुष्य के पपवत्र िुए र्ीवन र्ें ईश्वर की यथाथतशा देखी र्ाती िै। र्नुष्य का धाभर्कश अनुभव ईश्वर का साक्षी िैं। अध्यात्र् आत्या को सम्बोधन करता िै, और hat 4 र्ो सत्य का

1334 1 / 27 - 28।

1335 देणखए र्ांकरभाष्य, 2/2 38 और 41।

1336 तुलना कीजर्ए गावे: "र्रीरी ईश्वर का अन्तःप्रवेर्, र्ो बाद र्ें तनजश्चत रूप से योगदर्नश के स्वरूप का तनणायशक िुआ, पिलेबिुत भर्धथल रूप र्ें तथा केवल ऊपरी तौर पर ग्रिण ककया गया था, और उससे ेइस दर्नश के वस्तु-पवर्षय तथा प्रयोर्न पर कोई असर र्नींपडा, ऐसा पतंर्भल के योगदर्नश के आधार पर पररणार् तनकलता िै।िर् यिांतक कि सकते िैं कक योगसूत्र, 1: 23-27 : 2/1 ,45 , र्ो र्रीरी ईश्वर का प्रततपादन करते िैं ग्रन्थ अन्य भावों से सम्बद्ध र्नीिीं यिी र्नीं, बजल्क वे इस दर्नश के आधारभूत भसद्धान्तों का भी पवरोध करते िैं" (हद कफलासफी आफ हद एंक्षज्ञयण्ट इजण्डया, पृष्ठ 15)।

 अन्वेर्षण करते िैं, अपनेहृदयों र्ें उसका उिर पाते िैं। योग की कहठन साधना, जर्सके साथ कठोर र्ारीररक

यातनाएं ंतथा गम्भीर नैततक आर्ंकाएं ंर्ुडी िुई िैं, एक र्ागदर्शकश तथा सियक चािी िैं, र्ो अन्धकार और दुुःख से छुडाए और र्ो सत्य का भर्क्षक तथा र्जक्त का प्रेरेक िो। र्ीघ्र िी र्ानवीय प्रयास का लक्ष्य ईश्वर के साथ संयोग बन र्ाता िै। उदिारण के भलए, भगवद्गीता र्ें ईश्वरवादी भजक्त दैववादी योग का स्थान ग्रिण कर लेती िै। सर्ाधध के अन्दर आत्र्ा ईश्वर का साक्षात्कार करती िै। तथा उसे ंअपनेअन्दर धारण कर लेती िै। आत्र्ा को इजन्द्रय के प्रत्येक पवर्षय तथा पवचार ते पृथक् करके, सब प्रकार की इच्छा तथा वासना का दर्न करके तथा सब प्रकार के वैयजक्तकभाव दूरू करके िर् कफर से ईश्वर के साथ संयुक्त िो र्ाते िैं। ईश्वर के गम्भीर धचन्तन से लक्ष्य की प्राजप्त िो सकती िै। पवज्ञानभभक्षु का किना िै: "सब प्रकार के चैतैन्य पुक्त ध्यान र्ें परर्ेश्वर का ध्यान सबसे ऊंचा िै।"[1337]

18. उपसंिार

पूव शतथा पजश्चर् के आधुतुनक पवचारकों को योग की भसद्धध प्राप्त करने की पूरी योर्ना केवल आत्रसम्र्ोिन की एक सुपररष्कृत प्रकिया प्रतीत िोती िै। गम्भीरता के साथ एकान्त केवल आपत्स्यत िोना और उसके साथ र्ारीररक व्यायार् या आकारात के र्न को एक प्रकार के सांचें र्ें ढालने र्ें सियक िोते िैं। इस प्रकार के र्त को इस चौत्र सेकुछ सर्थनश भर्लता िै कक योगदर्नश के साथ ताजन्त्रक सम्प्रदाय की कुछ वीभत्स ककवा को भर्ला हदया र्ाता िै, तथा कुछ िठधर्ी भभक्षुओं ने पातंर्ल योग को ग्रिण कर भलया। ककसा यि तथ्य ध्यान र्ें रखना चाहिए कक पतंर्भल का योग अपने र्ूलरूप र्ें इस प्रकार के प्रर्ेर्ल से र्ुक्त था। पतंर्भल के योगदर्नश की धारणा िै कक िर् र्ीवन की सर्स्त तनधधयों से सम्पन्न िैं, जर्नसे ंबुित कुछ प्राप्त ककया र्ा सकता िै, और ये ऐसी तनधधयां िैं जर्नकी कल्पना पी निीं िै। यि दर्नश िर्ें अपनेगम्भीरतर् कियार्ील स्तरों तक पिुंचने की पवधधयांबताता िै। योगसाधन र्रीर, र्न और आत्र्ा के पपवत्रीकरण के अततररक्त और कुछ निीं, और इन्िें इस आनन्दर्य दर्नश के भलए तैयार करना िी इसका काय शिै।'[1338] क्योंकक र्नुष्य का र्ीवन धचन के स्वभाव पर तनभरश करता िै, इसभलए यि िर्ारे अपने वर् के अन्दर िै कक िर् धचि को तनयंबत्रत करके अपनेस्वभाव र्ें पररवतनश कर लें। पवश्वास और एकाग्रता से िर् अपनी बुराइयों से भी र्ुक्त िो सकते िैं।[1339] र्ानवीय दृजष्ट की साधारण सीर्ाएं ंपवश्व की सीर्ाएं ंनिीं िैं। िर्ारी इजन्द्रयांजर्स संसार को िर्ारे भलए प्रकार् र्ें लाती िैं उसके अततररक्त भी अन्य संसार िै। तनम्न श्रेणी के पर्ुओं की इजन्द्रयों के सर्ान र्ो इहद्रयां ंिर्ारे पास िैं उनके अततररक्त भी र्न्र इजन्द्रयां ंिैं। भौततक प्रकृतत की र्जक्तयों के अततररक्त भी अन्य र्जक्तयां ंिैं।

1337 योगसारसंग्रि, 1 ।

1338 र्ारकोस हद नौजस्टक (इरेतनयस, 1 13, 3)। किता िै "अपने को इस प्रकार तैयार करो र्ैसेकक एक वधू अपनेको बर का स्वागत करने ंके भलए करती िै।"

1339 र्ैसेकक 'सेल्फ-र्ास्री' पर अपनी लघु पुजस्तका र्ें एर्. कुई किते िैं "तनश्चय रखो कक तुर् र्ो कुछ चािते िो तुर्िें प्राप्त िो र्ाएगा, और तब तक प्राप्त िोता रिेगा र्ब तक यि तकशसम्र्त िै।" केवल उसी अवस्था र्ें र्बकक संर्य िै, कोई पररणार् न िोगा।

 यहद िर्ें आत्रा र्ें पवश्वास िै तो अततप्राकृततक भी प्राकृततक का िी एक भाग िै। िर्ें से

अधधकांर् व्यजक्त
अपनी आंखें आधी बन्द करके आलसी र्न तथा बोझ से दबे ्हृदय के साथ र्ीवन-यापन करतेिैं। और वे कततपय व्यजक्त भी जर्नके सम्र्ुख दर्नश तथा र्ागरण के वे दुलुभश क्षण आते िैं, तुरन्त िी कफर तनद्रालु अवस्था र्ें डूब र्ाते िैं। यि र्ानना िर्ारे भलए हितकर िै कक प्राचीन पवचारक िर्ें यि आदेर् करतेरिे िैं कक आत्रा की सम्भाव्य र्जक्तयों को पिचानने के भलए एकान्तसेवन तथा र्ौन अत्यावश्यक िै, जर्ससे कक चर्क के रूप र्ें आनेतथा पवलीन िो र्ानेवाले दर्नश के दुलुभश क्षणों को िर् स्थायी प्रकार् के रूप र्ें पररवततततश कर सकें, जर्ससे र्ेर्ष र्ीवन आलोककत रिे।

उद्धृत ग्रन्थों की सूची

- दासगुप्ता : योग एर् कफलासफी एण्ड ररभलर्न
- पतंर्लीर् : योगसूत्र पवद हद करें्टरी आफ व्यास एण्ड हद ग्लोस आफ वाचस्पतत (सैिड बुक्स आफ हद हिन्दूर्)
- रार्ेन्द्रलाल भर्त्र: योग एफोररज्म्स पवद हद करें्टरी आफ भोर् (ऐभर्याहटक सोसायटी आफ बंगाल)
- वुड्स : हद योग भसस्टर् आफ पतंर्भल (िावडश शओररयण्टल सीरीर्, 17)।

छठा अध्याय

पूवर्शीर्ांसा

प्रस्तावना-रचनाकाल और साहित्य-प्रर्ाणप्रत्यक्षज्ञानअनुर्ानवैहदक प्रार्ाण्य-उपर्ान प्रर्ाण-अथापशपि-
- - -
अनुपलजब्ध-प्रभाकर की ज्ञानपवर्षयक प्रकल्पना-कुर्ाररल की ज्ञानपवर्षयक प्रकल्पना-आत्र्ा-यथाथतशा का स्वरूप- नीततर्ास्त्र-अपूव-शर्ोक्ष - ईश्वर ।

1. प्रस्तावना

इस दर्नश का नार् पूवर्शीर्ांसा इसभलए ि ुआ क्योंकक यि उिरर्ीर्ांसा का अपेक्षाकृत पूववशती िै ऐतताभसक कालिर् की दृजष्ट सेउतना र्निंजर्तना कक ताककशक अथों र्ें। इसका र्ुख्य पवर्षय कर्कशाण्ड िै, रै्सेकक उिरर्ीर्ांसा का र्ुख्य पवर्षय वस्तुओं का सत्यज्ञान प्राप्त करना िै। उपतनर्षदों को छोडकर, र्ेर्ष सर्ग्र वेद hat Phi पवर्षय र्ें यि किा गया िै कक वि धर् शअथवा कतव्शय कर्ों का प्रततपादन करता िै, जनर्ें र्ुख्य िैं यज्ञ। पपवत्र कियाकलाप का अनुष्ठान ज्ञानोपार्नश की भूभर्का िै। र्ंकराचाय शभी, र्ो कर् शऔर ज्ञान के र्ौभलक पवरोध पर बल देते िैं, इस पवर्षय र्ें सिर्त िैं कक सुकर्,श चािे वि इस र्न्र् र्ें ककया ि ुआ िो अथवा पूवर्शन्र् र्ें, सत्यज्ञान की प्राजप्त के भलए इच्छा उत्पन्न करता िै।

र्ीर्ांसा का प्रारजम्भककाल स्वयं वेद तक पिुंच सकता िै, र्िां ंतक कक इसका प्रयोग, कर्कशाण्ड तथा भसद्धान्त-सम्बन्धी तनयर्ों के पवर्षय र्ें संर्य तथा वादपववाद प्रकट करने के भलए ककया गया िै। यज्ञों का उपयुक्त अनुष्ठान वैहदक र्न्त्रों की यथाथ शव्याख्या पर तनभरश करता था। सन्दिेास्पद पवर्षयों को लेकर तनयर्ों का अधधक पररष्कार ि ुआ, और उसते यज्ञ ककस पवधध से ककया र्ाना चाहिए इस पवर्षय र्ें सिायता भर्ली। व्याख्यापवर्षयक अनेक सर्स्याओं पर वादपववाद ि ुआ और ज्यों-ज्यों सर्स्याएं उठती रिीं, ं तनणयश िोते ेरि। उक्त तनणयश ब्राह्मणग्रन्थों र्ें र्िां–तिां ंबबखरे िुए िैं। ब्राह्र्णों र्ें हदए गए वृिान्त एक-दूसूरे से इतनेअधधक पृथृक् अस्पष्ट तथा अपूण शिैं कक उर्न्ें बबना अन्य सिायता के र्निंसर्झा र्ा सकता। इस प्रकार की सिायता उस काल र्ें र्ौणखक अनुश्रुतुत द्वारा प्राप्त िोती थी। धाभर्कश कतव्शय के अनुष्ठान के पवर्षय र्ें बिुत सर्य तक वैहैदक

 न्त्र तथा र्ौणखक अनुश्रुतत दोनों िी प्रर्ाण र्ाने र्ाते े रि। र्बकक नानापवध वैहदक र्ाखाएं(सम्प्रदाय) बनने
लगीं ंतो अक्षुण्ण परम्परा द्वारा प्राप्त पपवत्र पुस्तकों की प्रार्ाणणकता को बुित र्ित्त्व हदया गया। बौद्धर्त के उदय के पश्चात् ्वैहदक धर् शके अनुयातययों के भलए उस सर्स्त र्ान का र्ो उनके पास कथा, पुनतनरीक्षण तथा पुनतनर्शाणश आवश्यक िो गया अधधतन आवश्यक िो गया उनकी तनदोर्षता भसद्ध करना तथा उन्िें सूत्रों के रूप र्ें रखना। र्ैभर्तन अपनेग्रन्थ र्ें र्ीर्ांसा के तनयर्ों को व्यवजस्थत रूप देनेतथा उनकी यथाथतशा भसद्ध करने का प्रयत्न करते िैं।

पूवर्शीर्ांसा का स्वीकृत लक्ष्य धर् शके स्वरूप की परीक्षा करना िै। इसकी रुधच कल्पनापरक िोनेकी अपेक्षा कियात्र्क अधधक िै। इसके अन्दर र्ो दार्तशनक कल्पनाएं ंपाई र्ाती िैं वे कर्कशाण्ड-पवर्षयक प्रयोर्ना के आगे ेगौण िैं। धर् शके प्रतत सत्यतनष्ठा के पवचार से, इसेआत्र्ा की यथाथतशा को स्वीकार करना पडा और इसे एक र्रीरधारी जस्थर सिा र्ानना पडा, र्ो कर्ों के फलों का उपभोक्ता िै। वेद कतव्शय कर्ों का आदेर् देता िै, और साथ िी वि उन कर्ों के करने सेर्ो लाभदायक पररणार् प्राप्त िोते िैं उनका भी पवभर्ष्ट रूप र्ें प्रततपादन करता िै। इन कर्ों को धर् शका रूप देनेर्ें, तथा ये लाभदायक फल देनेकी योग्यता रखते िैं इस पवर्षय र्ें प्रर्ाण तनत्यवेद िै, जर्से ेअपनी जस्थतत के भलए अन्य ककसी आधार की आवश्यकता निीं।ं ककन्तु इस प्रकार की रूहढ़परक र्ान्यता उस सर्य पयाप्शत निींरिती र्बकक अन्य पवचारक वैहदक न्त्रों के र्ित्त्व को स्वीकार न करते िों और उनका कोई कियात्र्क र्ूल्य भी हदखाई न देता िो। इसभलए ईश्वरीय ज्ञान तथा दार्तशनक ज्ञान-पवर्षयक पववाद बुित पररष्कृत रूप र्ें उठतिैं। र्ीर्ांसा सब दार्तशनक पवचारों का तब तक स्वागत करती िै र्ब
श ्धर् शके अतीजन्द्रय र्ित्त्व को, जर्सेकर्कशाण्डपरक भाव हदया गया िै, िातन निींपिुंचाते। र्ीर्ांसा के दार्तशनक तक केके वेइसके र्ुख्य पवर्षय, अथात्
कलेवर र्ें इस प्रकार की भर्धथलता ने िी भभन्न-भभन्न पवचारकों को र्ीर्ांसा
के दार्तशनक पवचारों की भभल-भभन्न प्रकार से व्याख्या करनेका अवसर प्रदान ककया, यद्यपप वे सब धर् शके सवोपोरी र्ित्त्व के पवर्षय र्ें एकर्त िैं। वेद को प्रार्ाणणक स्वीकार ककया गया िै, और इसकी प्रार्ाणणकता को बौद्ध र्तानुयातययों के पवरुद्ध, र्ो इसका पवरोध करते िैं, तथा ऐसेजर्ज्ञासुओं के पवरुद्ध र्ो कर् शको ज्ञान के आगे ेगौण स्थान देते िैं, भसद्ध ककया गया िै। र्ीर्ांसा सष्ट रूप र्ें अनेकेश्वरवादी िै, यद्यपप उपलक्षण रूप र्ें यि तनरीश्वरवादी िै। बौद्धों के पवपरीत् ्यि र्गत् ्के सम्बन्ध र्ें एक यथाथवशादी दृजष्टकोण रखता िै।

हिन्दू ूधर् शके भलए इसका र्ित्त्व बुित अधधक िै। धर्शास्त्रों की, र्ो हिन्दुओं के दैतनक र्ीवन पर र्ासन रखते िैं, र्ीर्ांसा के तनयर्ों के अनुकूल व्याख्या करने की आवश्यकता िै। आधुतनक हिन्दू ूपवधान पर र्ीर्ांसा-पद्धतत का पयाप्शत प्रभाव िै।

2. रचनाकाल और साहित्य

र्ैभर्तन का र्ीर्ांसासूत्र वैहदक व्याख्या के एक सुदीघ शइततिास की पूवकशल्पना करता िै क्योंकक यि उन सार्ान्य तनयर्ों (न्यायों) का र्ो प्रचभलत थे, सारांर् देता िै। यि भभन्न-भभन्न यज्ञों तथा उनके अभभप्रायों का

 वणनश करता िै एवं अपूव शकी प्रकल्पना और कुछ दार्तशनक प्रस्थापनाओंका भी वणनश करता िै। इसर्ें बारि
अध्याय िैं। जनर्ें पिले ेअध्याय का दार्तशनक र्ित्त्व िै, क्योंकक यि ज्ञान के स्रोतों तथा वेदों की प्रार्ाणणकता का पववेचन करता िै। र्ैभर्तन वेदों के प्रत्येक भाग की न्याय्यता को भसद्ध करने का प्रयत्न करते िैं। उनका 'संकर्षणशकाण्ड', जर्सेदेवताकाण्ड भी किा र्ाता िै, पूव शर्ीर्ांसा से सम्बद्ध िै, क्योंकक इसका आधार उपासना िै, जर्सका भी पवधान वेदों र्ें िै।

चौथी र्ताब्दी ई. पू. सवाधशधक प्राचीन सर्य िै र्ो िर् र्ैभर्तन के ग्रन्थ के भलए जस्थर कर सकते िैं, क्योंकक यि न्याय तथा योगसूत्रों से अभभज्ञ िै।[1340] र्ैभर्तन के ग्रन्थ का प्रधान भाष्यकार बर िै। यि लगभग पिली र्ताब्दी ई.पू. र्ें िुआ था।[1341] यि प्रकट िै कक बर से पूव शभी र्ैभर्तन के ग्रन्थ के भाष्यकार िुए िैं, तथा भतृभशत्र'[1342], भवदास'[1343], िरर''[1344], और उपवर्ष,श[1345] परन्तु उनके ग्रन्थ उपलब्ध निीं िैं। र्ीर्ांसा-सम्बन्धी सर्स्त परवती लेखों का आधार बर का भाष्य िी िै।

कुर्ाररल'[1346] ने र्ो उस सनातन ब्राह्र्णधर् शका प्रवल व्याख्याकार िै र्ोकक वेदों की प्रार्ाणणकता तथा पुरोहित की सवशे्रेशष्ठता को र्ानता िै, 'सूत्र' और 'भाष्य' पर टीका की िै, और उसके ग्रन्थ के तीन भाग िैं। पिला

1340 यहद िर् कुर्ाररल के इस र्त को स्वीकार करें कक र्ीर्ांसा सूत्र र्ें अनेक बौद्ध पवचारों की आलोचना िै (देणखए श्लोक वाततकश 1:13,5 और 6) तो र्ीर्ांसासूत्र का काल बौद्धर्त के उदय के ठीक उपरान्त र्ाना र्ा सकता िै । र्िाभारत र्ें र्ैर्तन ग्रन्थ के उल्लेख का सवथशा अभाव िोनेसे कुछ भी तनजश्चतसार्ग्री उपलब्ध निींिोती । र्ैर्तन का ग्रन्थ, ज र्सने पांच स्थलों पर बादरायण के नार् का उल्लेख ककया िै (1:1,5,5:2,19:6:1,8,10:8,44,11:1,64) उसी काल र्ें बना जर्सर्ें ब्रह्र्सूत्र बना । ब्रह्र्सूत्र दस भभन्न-भभन्न सूत्रों र्ें र्ैर्तन का उल्लेख वेदान्त के अधधकारी पवद्वान् ्के रूप र्ें करता िै। (। 2/28; 1/2, 31; 1/3, 31 ;1:4,18:3:9:... : 4, 2, 3:4, 18; 3:4, 40, 4:3, 12:4:4, 5) क्योंकक उनर्ें से नौ र्ीर्ांसासूत्र र्ें निीं पाए र्ाते,े इसभलए कभी-कभी यि तकश हदया र्ाता िै कक ब्रह्र्सूत्र र्ें जर्स र्ैभर्तन का उल्लेख िै वि र्ीर्ांसासूत्र के रचतयता से भभन्न िै। औरों का र्त िै कक र्ैभर्तन के कुछ ग्रन्थ लुप्त िो गए। र्ैभर्तन कई स्थलों पर ब्रह्र्सूत्र के ज्ञान का संकेत करता िै। आत्र्ा के सम्बन्ध र्ें र्ो बादरायण का यि र्त िै कक वि अभीततक िै उसे ेवि र्ानता िै, यद्यपप इसकी प्रततरक्षा र्ें उसनेकोई िेतुनिींहदए। टीकाकारों का सुझाव िै कक यि बादरायण के िी िेतुओं को स्वीकार करता िै (11: 1, 64 और ब्रह्र्सूत्र, 3 3, 53, और देणखए र्ीर्ांससूत्र, 91 और ब्रह्र्सूत्र, 32, 40) और इसभलए उनकी पुनरावृपि निींकरता।

1341 झा: प्रभाकर स्कूल, पृष्ठ 6-7। बर द्वारा ककया गया पवज्ञानवाद तथा र्ून्यवाद प्रवाद का खण्डन िर्ें इससे अधधक परवती सर्य र्ानने की अनुर्तत निींदेता। र्ैकोबी का पवचार िै कक बर नेजर्स वृपि का उद्धरण हदया िै वि 200-500 ई. र्ें बनी और बर भी इस काल र्ें रिा िोगा। कीथ का र्त िै कक 400 ई. उसके भलए अधधक से अधधक पूव शका सर्य िै।

1342 न्यायरत्नाकर, 10। और देणखए काभशका, पृष्ठ 10।

1343 श्लोकवाततकश, 1: 63।

1344 र्ास्त्रदीपपका, 10: 2, 59-69।

1345 बर 1: 1, 5 पर अपनेभाष्य र्ें एक वृपि से एक लम्बा वाक्य उद्धृत करता िै (2 / (3) 16 और 311, 6 पर बर को देणखए)। कुर्ाररल रचतयता का उल्लेख वृपिकार के रूप र्ें करता िै। डॉ. झा उसे ेप्रवदास बतातेिैं। पाथसशारधथ इस सम्बन्ध र्ें उसके नार् का उल्लेख निीं करता। तो भी पृष्ठ 48 देणखए। वैकोची का पवचार िै कक बौद्धायन नेदोनों र्ीर्ांसाओं पर वृपियां भलखीं, जर्स प्रकार कक उसके पूववशती उपचर्ष शनेभलखी थीं (र्नलश आफ दी अर्ेररकन ओररयण्टल सोसायटी, 1911)।

1346 कुर्ाररल के भलए, र्ो हिन्दूधर्श का एक र्िान् ्पवर्ेता र्ाना र्ाता िै, किा र्ाता िै कक वि बबिार का रिनेवाला एक ब्राह्र्ण था र्ो बौद्धर्त से ेहिन्दूधर् शर्ें दीक्षक्षत िुआ था। देणखए इभलयट : हिन्दूइज़्र् एण्ड डडज़्र्, खण्ड 2, पृष्ठ 110, 207।

 'श्लोकवाततकश' पिले ेअध्याय के पिले ेभाग के पवर्षय र्ें ि ै, दूसूरा 'तन्त्रवाततकश' ि ेर्ें तीसरे अध्याय के अन्त तक

ले र्ाता ि ै, और 'दुपुटीका' र्ेर्ेष भाग को पूरा करता ि ै। कुर्ाररल र्ंकर का पूववशती ि ै, और उसे ि ेर् सातवीं ं र्ताब्दी ई. र्ें रख सकते िैं।'[1347] र्ंडनभर्श्र, र्ो पवधधपववेक तथा 'र्ीर्ांसानुिर्णी' का रचतयता ि ै. कुर्ाररल का अनुयायी था। यि वाचस्पतत (850 ई.) से पूव शुिआ, र्ो अपने 'न्यायकणणका' नार्क ग्रन्थ र्ें 'पवधधपववेकः ि ै पवचारों को पवस्तृत रूप र्ें प्रस्तुत करता ि ै। कुर्ाररल के ग्रन्य के कई टीकाकार िुए ि ैं, र्ैसे ेसुचररत भर्श्र, र्ो 'श्लोकवाततकश' पर की गई 'काभर्का' नार्क टीका का रचतयता ि ै, सोर्ेश्वर भट्ट, र्ो 'तन्त्रवाततकश' पर की गई टीका 'न्यायसुधा' का रचतयता ि ै , र्ो 'राणक' भी किलाती ि ै ; और पाथसशारधथ भर्श्र (1300 ई.), को 'श्लोकवाततकश'

पर की गई टीका 'न्यायरत्नाकर' तथा 'र्ास्त्रदीपपका' का रचधचता ि ै, र्ो र्ीर्ांसादर्नश का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ि ै और कुर्ाररल की पद्धतत पर तनखा गया ि ै, तथा 'तन्त्ररत्न' का भी रचतयता ि ै। वेंकटदीक्षक्षत कृत 'वाततकशाभरण' 'दुपुटीका पर एक टीका ि ै।[1348]

प्रभाकर[1349]' ने र्बर के भाष्य पर अपनी 'बृिती' नार्क टीका भलखी, जर्सका यि तनकट रूप से अनुसरण करती ि ै। कुर्ाररल कभी-कभी र्बर के पवचारों का प्रत्याख्यान करता ि ै। इस तथ्य के आधार पर कक प्रभाकर कुर्ाररल के पवचारों की ओर पवतऊत भी ध्यान निींदेता, र्बकक कुर्ाररल ऐसे पवचारों का उल्लेखे करता ैं जर्नके सर्ान पवचार 'बृिती' र्ें हदए गए िैं,'[1350] कभी-कभी अधधकारपूवकश यि किा र्ाता ि ै कक प्रभाकर कुर्ाररल से पिले िुआ। किा र्ाता ि ै कक 'बृिती' की र्ैली इसके पूवसशर्य का संकेत करती ि ै।'[1351]

तारानाथ उसे ेदक्षक्षण भारत का तनवासी बताते िैं। ककंवदन्ती के अनुसार, सुनाररत अपने को दो पापों के कारण अजग्न र्ें भस्र् कर देना चािते थे-एक अपनेबौद्ध गुरु का नार्: दूसूरे वेदों के तनत्यस्वरूप को भसद्ध करने तथा र्ोक्षप्राजप्त के भलए वैहदक कर्कशाण्ड की िी एकर्ात्र श्र्तार भसद्ध के तनत्यस्वरूप को करने ेतथा र्ोक्षप्राजप्तलात्र्क तनर्षेध । देणखए, र्ाधयकृत 'र्ंकरहदजग्वर्यः ।

[1347] श्रीयुत पजण्डत के अनुसार, कुर्ाररल भवभूतत (620-680 ई.) का गुरु था और इसभलए उसका सर्य 590-650 ई. रखा गया ि ै; यि काल इस स्वीकृत तथ्य के साथ र्ेल खाता ि ै कक कुर्ाररल की ख्यातत रार्ा िर्ष शके अजन्तर् सर्य र्ें भली प्रकार जस्थर िो चुकी थी।

[1348] रार्कृष्णभट्ट ('युजक्तस्निैप्रपूरणी' का रचतयता), सोर्नाथ ('र्यूखर्ाभलका' का रचतयता), भट्टर्ंकर, भट्टहदनकर और कर्लाकर इस र्ाखा के अनुयायी िैं।

[1349] ककंवदन्ती के अनुसार, प्रभाकर और र्ण्डन कुर्ाररल के भर्ष्य थे, जर्सनेप्रभाकर को उसकी उज्ज्वात योग्यताओंके आधार पर 'गुरु' की उपाधध दी थी।

[1350] 1/2, 31; 1/3, 2; 1/4 1।

[1351] झा 'प्रभाकर स्कूल' कीय 'कर्ीर्ांसा'। प्रोफेसर कुप्पू ूस्वार्ी र्ास्त्री परम्परागत र्त का सर्थनश करते िैं और झा तथा कीथ के र्त के पवरुद्ध पवस्तार से ेतकश उपजस्थत करते िैं। कलकिा की दूसूरी ओररएण्टत कांफ्रेंस र्ें पढ़े गए 'पूवर्ीर्ांसा की प्रभाकरर्ाखा' र्ीर्षकश तनबन्ध को देणखए। दक्षक्षण भारत की एक पुरानी ककंवदन्ती र्ें किा गया कक उवेक कुर्ाररल का भर्ष्य था।

उवेकः काररका वेपि, चम्पू वेपि प्रभाकरः।

र्ण्डनस्तूभ्यं वेपि, चम्पू वेपि, रेवणः॥

श्रीयुत पजण्डत 'गीडयिो' (बौम्ये संस्कृत ग्रन्थर्ाला) की अपनी प्रस्तावना र्ें उक्त श्लोक को 'चम्पू' और 'भण्डन' के स्थान नेतन्त्र' और 'वार्न र्ब्दों का व्यविार करते िुए उद्धृत करतिैं। और देणखए गुणरत्नकृत 'पड्दर्नशर्ुच्ययवृपि' (1409)।

ऱ्भलकनाथकृत 'ऋटुपवर्ला' 'बृिती' पर एक टीका िै। उसकी 'प्रकरणपधचका प्रभाकर-पद्धतत की एक प्रभसद्ध पुस्तक िै। उसका 'पररभष्ट' 'बर्र' के भाष्य पर एक संक्षक्षप्त हटप्पणी का िै। भवनाथकृत 'नयपववेक' ऱ्ें प्रभाकर के पवचारों का पवस्तार से प्रततपादन ककया गया िै। ऱ्भलकनाथ ने, ऱ्ो प्रभाकर का भष्र्य था, धर्कशीतत शका उल्लेख ककया िै।'[1352] वाचस्पतत ने अपनी 'न्यायकणणका' ऱ्ें प्रभाकर के अनुयातययों की दो ऱ्ाखाओं ऱ्ें भेद ककया िै।[1353] ऱ्ीऱ्ांसा की तीसरी ऱ्ाखा का, जर्सका सम्बन्ध ऱ्ुरारर'[1354] के नाऱ् के साथ िै, उल्लेख हिन्दू दार्तशनक साहित्य ऱ्ें भर्लता िै, यद्यपप इससे सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थ िऱ्ें उपलब्ध निीं िैं। ऱ्ाधवकृत 'ऱ्ैभर्नीय न्यायऱ्ालापवस्तार' ऱ्ीऱ्ांसादर्नश का पद्य ऱ्ें भाष्य िै, जर्सके साथ गद्य ऱ्ें टीका भी िै। अप्पय दीक्षक्षत (1552-1624) अपने'पवधध रसायन' ग्रंथ ऱ्ें कुऱ्ाररल पर आक्षेप करता िै। आपदेव (17वीं ऱ्तार्ब्दी) ने 'भीऱ्ांसान्यायप्रकाऱ्' नार्क एक प्राथभर्क पुस्तक भलखी िै, जर्सका नाऱ् 'आपदेवी' भी िै और यि एक बिुत प्रभसद्ध ग्रन्थ िै। लौगाक्षक्षभास्करकृत 'अथसंशग्रि' भी प्रभसद्ध ग्रन्थ िै ऱ्ो आपदेव की पुस्तक के आधार पर भलखा गया िै। खण्डदेव (17वीं ऱ्तार्ब्दी) ने 'भाट्टदीपपका' नार्क ग्रन्थ भलखा, ऱ्ो अपनेतकश के भलए प्रभसद्ध िै। उसका 'ऱ्ीऱ्ांताकौस्तुभ' सूत्र के पवर्षय ऱ्ें प्रततपादन करता िै।'[1355]

3. प्रऱ्ाण

ऱ्ैभर्तन प्रत्यक्ष, अनुऱ्ान तथा ऱ्ाब्द-इन तीनों प्रऱ्ाणों को स्वीकार करता िै। प्रभाकर उपऱ्ान और अथापशत्ति को स्वीकार करता िै। कुऱ्ाररल इनऱ्ें अनुपलजब्ध को ऱ्ोडता िै। ऐततह्य (ककंवदन्ती) को अस्वीकार ककया गया िै, क्योंकक यहद ककंवदन्ती के आहदऱ् उद्भव के सम्बन्ध ऱ्ें तनजश्चत सूचना का अभाव िै कक वि पवश्वस्त िै या निीं, तो उससे उत्पन्न िोनेवालेबोध की प्राऱ्ाणणकता के पवर्षय ऱ्ें कुछ तनश्चय निीं ि सकता। सूतृत को प्रऱ्ाणों के क्षेत्र ऱ्ें बाह्य ऱ्ाना गया िै, क्योंकक यि िऱ्ें केवल ऐसी िी वस्तुओं के पवर्षय ऱ्ें कुछ बताती िै ऱ्ो प्रत्यक्ष िो चुकी िैं।

> प्रभाकर वणनश करता िै कक ककस प्रकार िऱ् र्न तथा इजन्द्रयों के अजस्तत्व का अनुऱ्ान करते िैं। िऱ्ारे बोध स्वरूप के अल्पकाभलक िोते िैं और उनके कारण भौततक (सर्वायी कारण) तथा अभौततक (असर्वायी

उवेक और भवभूतत एक िी थे और वि कुऱ्ाररत के भष्यों ऱ्ें से एक था, ऐसा ऱ्ाना ऱ्ाता िै। और देणखए धचत्र्ुखकृत अद्वैतप्रदीपपका, पृष्ठ 265।

1352 देणखए प्रकरणपधचका, 1।

1353 र्त्याभाकराः तथा नव्यप्राभाकराः ।

1354 ऱ्ुरारेस्तृतीयः पन्थाः ।

1355 राघवानन्दकृत 'ऱ्ीऱ्ांसासूत्रदीधधतत', राऱ्ेश्वरकृत 'सुबोधधनी' ऱ्ो ऱ्ीऱ्ांसासूत्र पर टीका िैं, और पवश्वेश्वर (अच्दा गागाभट्ट) कृत 'भाइधचन्तार्णण' ये ग्रन्य कुछ ऱ्ित्त्व के िैं। वेदान्तदेभर्क के 'सेश्वरऱ्ीऱ्ांसा' नार्क इस ऱ्ें वेदान्त और ऱ्ीऱ्ांसा के पवचारों ऱ्ें सर्न्वय करने का प्रयत्न ककया गया िै। इसका रचतयता राऱ्ानुऱ् श्री. अनुयायी िै, जर्सका र्त िै कक दोनों ऱ्ीऱ्ांसाएं एक िी संपूण शइकाई के भाग िैं।

कारण) दोनों प्रकार के िोते िैं।[1356] बोधों का सर्वायी कारण आत्र्ा िै, और इसका असर्वायी कारण आत्र्ा के कारण र्ें निींरि सकता, क्योंकक आत्र्ा अर्न्र्ा िै, उसका कोई कारण निीं, इसभलए इसे ेस्वयं आत्र्ा िी र्ें िीना चाहिए। द्रव्य के अन्दर र्ो सर्वाय सम्बन्ध र्ें रिता िै वि गुण िै, और इस प्रकार बोधों का असर्वायी कारण एक गुण िै। यहद एक तनत्य द्रव्य र्ें अस्थायी गुण उदय िोते िैं, तो यि अवश्य अन्य द्रव्यों के साथ सम्पकश के कारण िी िो सकता िै क्योंकक इस पवर्षय र्ें कोई प्रर्ाण निीं किक अन्य द्रव्य भी और अन्य द्रव्यों के अन्दर रिते िैं, उर्न्िें तिनत्य र्ानना चाहिए। प्रत्यक्ष, र्ो एक तनजश्चत प्रकार का ज्ञान िै, आत्र्ा का एक पवभर्ष्ट गुण िै। इस प्रकार के गुण को तनत्यद्रव्यों के साथ सम्बद्ध िोने के भलए असर्वायी कारण को कततपय अन्य द्रव्यों के साथ संपकश के रूप र्ें िोना चाहिए। ऐसे द्रव्य या तो सवव्शयापक िैं, यथा देर् और काल, या आणपवक िैं। सवव्शयापक द्रव्यों के साथ सम्पकश िर्रे बोधों के नानापवध स्वरूप की व्याख्या निीं ंकर सकता। इसभलए बोध का असर्वायी कारण आणपवक द्रव्यों के साथ सम्पकश िै, र्ो स्वयं अणुओंकी अपनी गतत से सम्पन्न िोता िै। वि आणपवक द्रव्य र्ो प्रर्ाता आत्र्ा द्वारा वाभसत रीर के अन्दर रिता िै, र्न िै, और अन्य कोई भी बोध के असर्वायी कारण के अधधष्ठान को धारण निींकर सकता, जर्स बोध का सर्वायी कारण आत्र्ा िै। रीर के अंदर िोनेवाली आणपवक द्रव्य की किया, र्ो सम्पकश करानेर्ें सियक िोती िै, आत्र्ा के साथ उसके सम्पकश के कारण िै, र्ो प्रत्येक बोध के कर् शर्ें उसकी प्राजप्त के भलए अपना योगदान देता िै। ककन्तु रिं ंर्न सुख-दुःख रै्से ेकायों को उत्पन्न कर सकता िै, विंयि रंग, गन्ध आहद गुणों को उत्पन्न निींकर सकता। इसके ज्ञान के भलए इसे ेअन्य इजन्द्रयों की सियता की आवश्यकता िोती िै।'[1357] इजन्द्रयों के साथ बाह्य पदाधों के सम्पकश के द्वारा, जर्सर्ें र्न र्ाध्यर् का काय शकरता िै, आत्र्ा बाह्य र्गत् ्का ज्ञान प्राप्त करती िै। आत्र्ा तथा र्न का सम्बन्ध धर्ाधशर् शके द्वारा सम्पन्न िोता िै। ककन्तु र्न के प्रतत र्ो आत्र्ा की प्रवृपि िै, उसर्ें आत्र्ा को तनजष्यि निींर्ाना गया िै। र्न को इजन्द्रयों र्ें सजम्र्भलत ककया गया िै, क्योंकक यि र्ानभसक अवस्थाओं, यथा सुख, दुःख, इच्छा और द्वेर्ष, का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता िै।[1358] इस प्रकार का तकश उपजस्थत ककया र्ाता िै कक यहद िर् र्न तथा इजन्द्रयों पर तनभरश न करते ेतो िर्ें सब वस्तुओं का ज्ञान एकसाथ और तुरन्त िो र्ाता।

आत्र्ा र्ब र्न के सम्पकश र्ें आती िै तो बोधों को उत्पन्न करती िै। यि संपकश र्न की किया से िोता िै, जर्स किया का तनणयश या तो आत्र्ा के प्रयत्न द्वारा या आत्र्ा के पूवकशर् शद्वारा चाभलत अदृष्ट प्रारब्ध द्वारा िीता िै। आत्र्ा अनुभवकता शअथवा फलोपभोक्ता िै, रीर अनुभवों का स्थान िै, इजन्द्रयां ंअनुभव के साधन िैं। अनुभव के पदाथ शदो प्रकार के िैं: आभ्यन्तर, रै्से ेसुख और दुःख; और बाह्य, रै्से ेघडा आहद। प्रभाकर का किना िै किक िर्ारी संपवत्, ् अथातश चेतेनता, एक सर्य र्ें एक िी पदाथ शके साथ अपनेको संपृकृत करती िै, दो के साथ निीं।

[1356] तुलना कीजएं प्रकरणपधचका पदाथों का बोध क्षणणक िै। आत्र्ा सर्वायी कारण िै और आत्र्ा सायन के साथ सम्पकश सिकारी कारण िै" (पृषूठ 52 से ेआगे)।

[1357] र्ास्त्रदीपपका, पृषूठ 100।

[1358] विी, पृषूठ 98।

4. प्रत्यक्ष ज्ञान

प्रत्यक्ष ज्ञान साक्षात् ्प्रतीतत ि ै।' यि सीधा इजन्द्रय-सम्पकश से प्राप्त ि ोता ि ै। प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें पदाथ शतथा इजन्द्रय का, पदाथ शके पवभर्ष्ट गुणों तथा इजन्द्रय का, र्न और इजन्द्रय का, और आत्र्ा तथा र्न का सम्पकश ि ोता ै। कुर्ाररल की व्याख्या के अनुसार, पदाथ शका इजन्द्रय के साथ सम्पकश के काय शसनकलता अथवा पदाथ शको अभभव्ययया के अनुसार, पदाथ शका इजन्द्रय अनुर्ान ि र् इसके काय शसे करते ि ैं।'[1359] प्रत्यक्ष का सम्बन्ध ऐसी पदाथों से ि ै जर्नका अजस्तत्व ि ै अथात् श ्र्ो इजन्द्रयों से र्ाननेयोग्य ि ैं। यि इजन्द्रयातीत पदाथों का वोय गभलनका अजस्तत्व प्रभाकर के अनुसार, जर्न पदाथों का बोध ि ोता ि ै वे द्रव्य, वग शअथवा गुण ि ो सकते ि ैं।

र्ीर्ांसक[1360] सार्ान्यतः इजन्द्रयों के पवर्षय र्ें न्यायदर्नश की र्ो प्रकल्पना ि ै उसे ेस्वीकार करता ि ै, केवल श्रवणेजेन्द्रय के सम्बन्ध र्ें र्तभेद ि ै। देर्-सम्बन्धी सार्ीप्य तथा दूर्ी का साक्षात् ्प्रत्यक्ष ि ोता ि ै-केवल दर्नश तथा स्पर् शसे ि ी र्निीं बजल्क श्रवणेजन्द्रय द्वारा भी। देर् के दो भेद ि ैं, जस्थतत और हदर्ा, और इन दोनों का प्रत्यक्ष ब्दों के पवर्ेर्षणों के रूप र्ें ि ोता ि ै। श्रवणेजन्द्रय प्राप्यकारी ि ै, अथात्श ्प्रर्ेय ब्द के सम्पकश र्ें आती ि ै। श्रवणेजन्द्रय विार तनकलकर प्रर्ेय अथात् श ्दूर्स्थ ब्द तक र्निीं र्ाती ि ै, बजल्क ब्द कणपशटि तक वायु की लिरों द्वारा प्राप्त ि ोकर प्रसाररत ि ोता ि ै। यि पवचार इस तथ्य का कारण स्पष्ट कर देता ि ै कक क्यों सर्ीपस्थ र्नुष्यों को तो ब्द का बोध ि ो र्ाता ि ै ककन्तु दूर्स्थ पुरुर्षों को र्निींिोता। ब्दों की तीव्रता की श्र्ेणणयों र्ें र्ो भेद ि ै उसके कारण की भी व्याख्या इससे ि ो र्ाती ि ै।"[1361] यहद श्रवणेजेन्द्रय ब्दों के साक्षात् ्सम्पकश र्ें आये बबना भी ब्दों का बोध प्राप्त कर सकती, र्ैसे ेकक बौद्धर्त कल्पना करता ि ै, तो सभी ब्द-क्या दूर् के, क्या पास के-श्रवणेजेन्द्रय से एकसाथ प्रत्यक्ष रूप र्ें र्ानेर्ाते, ककन्तु अवस्था यि र्निीं। श्रवणेजन्द्रय के अन्दर वायु की एक परत ि ै जर्स पर वक्ता की वाणी से तनकलनेवाली वायु की लिर आकर टकराती ि ै, और ऐसी अवस्था उत्पन्न करती ि ै जर्ससे कक ब्द सुना र्ाता ि ै। श्रवणेजन्द्रय ब्द के स्थान के सम्पकश र्ें र्निींआती, बजल्क केवल ब्द के सम्पकश र्ें आती ि ै जर्सका स्थान कणपशटि र्ें ि ोता ि ै। ककन्तु ब्दों का बोध सदा इस रूप र्ें ि ोता ै कक लगता ि ै कक वे देर् के भभन्न-भभन्न बबन्दुओं र्ें जस्थत ि ैं, कणपशटि र्ें जस्थत र्निीं ि ैं। वे श्रवण-इजन्द्रय तक केवल ब्दरूप र्ें र्निींपिुंचते, बजल्क र्िां ्से वे उत्पन्न ि ोते ि ैं, उन हदर्ाओंका रंग भलए ि ुए पिुंचतेि ैं। इस प्रकार ब्दों तथा उनकी हदर्ाओं का भी सीधा प्रत्यक्ष ज्ञान ि ोता ि ै। यिांतक कक श्रवणेजन्द्रय द्वारा दूर्ी का भी प्रत्यक्ष ज्ञान ि ोता ि ै क्योंकक सर्ीप सेआते ि ुए ब्द अधधक तीव्र ि ोते ि ैं, अपेक्षा उनके कक र्ो दूर् से आते ि ैं। इस प्रकार ब्दों के र्न्द या तीव्र रूप के प्रत्यक्ष से ि र्ें यि भी ज्ञान ि ो र्ाता ि ै कक वे ककतने दूर्ी से आते ि ैं।

प्रभाकर और कुर्ाररल दोनों ि ी तनपवकशल्प तथा सपवकल्प प्रत्यक्ष के भेदे को र्ानते ि ै और उन्ि ें प्रार्ाणणक र्ानते ि ैं। कुर्ाररल के अनुसार, तनपवकशल्पन प्रत्यक्ष व्यजक्त का बोध कराता ि ै, र्ो सार्ान्य तथा

1359 लोकवातत्कश, प्रत्यक्षसूत्र, 42, 43।

1360 र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 400 से र्ागे, श्लोकवातत्कश्760 से ेआगे।

1361 तीव्रर्न्दाहदव्यवस्था ।

 पवभष्ट लक्षणों का अधधष्ठान ि◌ै, यद्यपप यि पदाथ शके सार्न्य तथा पवभर्ष्ट लक्षणों से युक्तरूप का प्रत्यक्ष

ज्ञान निीं ि◌ंै।'[1362] तनपवकशल्प प्रत्यक्ष स्वयं पदाथ शके कारण िी िोता किा गया ि◌ै।[1363] सपवकल्प प्रत्यक्ष र्ें सार्ान्य तथा पवभर्ष्ट गुण स्पष्ट रूप र्ें हदखाई पडतेि।ै'[1364] इस र्त के सर्थनश र्ें पाथसशारधथ, आगे ि◌ेऔर युजक्त देता ि◌ै। पदाथ शका इजन्द्रयों के साथ सम्पकश िोनेपर िर्ें सब प्रकार के सम्बन्धों से पवीन पदाथ शका बोध िोता ि◌ै। तब तक िर् गुणी तथा गुणों र्ें तथा सार्ान्य और पवभर्ष्ट लक्षणों र्ें भेदे निीं ि◌ंकरते। यहद तनपवकशल्प ज्ञान न िोता तो सपवकल्प प्रत्यक्ष भी न िोता,[1365] क्योंकक सपवकल्प प्रत्यक्ष गुणयुक्त पदाथ शतथा उसके गुणों के पारस्पररक सम्बन्ध का बोध ि◌ै। इस प्रकार के सम्बन्ध का बोध तनभरश करता ि◌ै सम्बन्ध के पक्षों के पूवबशोध पर। र्ब तक पक्ष तनपवकशल्प प्रत्यक्ष र्ें उपलक्षक्षत रूप र्ें न र्ाने र्ाएं,ि◌ तब तक ये सपवकल्प प्रत्यक्ष र्ें स्पष्ट रूप र्ें निींर्ानेर्ा सकते। पदाथ शके सपवकल्प प्रत्यक्ष र्ें िर् स्र्रण करते ि◌ैं उस वग शको, जर्ससेयि सम्बद्ध ि◌ै, और उस नार् को जर्सेयि धारण करता ि◌ै, और तब एवं प्रत्यक्ष र्ें र्ानेगए पदाथ शके साथ र्ोडते ि◌ैं। यहद वग शतथा नार् सवथशा अज्ञात िो र्ें वे स्र्रण निींककए र्ा सकते। इसभलए तनपवकशल्प प्रत्यक्ष के अजस्तत्व को जर्सर्ें र्ातत नार् तथा वैभैष्र्य बताने वाले गुणों का उपलक्षक्षत रूप र्ें बोध रिता ि◌ै, स्वीकार करना आवश्यक ि◌ै।

कुर्ाररल का र्त ि◌ै कक पदाथों का बोध र्ौणखक अभभव्यजक्तयों से स्वतन्त्र ि◌ै।[1366] गाय के वग शका बोध सदा 'गाय' र्ब्द के रूप र्ें निीं ि◌ंिोता, यद्यपप िर् ज्ञात पदाय शका वणनश करने के भलए उक्त र्ब्द का प्रयोग करते ि◌े ि◌ैं।[1367] कुर्ाररल का यि पवचार ि◌ै कक तनपवर्ंल्प प्रत्यक्ष अतनणीत प्रत्यक्ष ि◌ै, केवल देख लेना (आलोचन) र्ात्र ि◌ै, जर्सकी तुलना एक नवर्ात भर्ुके बोध के साथ की र्ा सकती ि◌ै, रर्ें ि◌ंकेवल व्यजक्त िी िर्ारे सम्र्ुख प्रस्तुत ककया र्ाता ि◌ै, उसके सार्ान्य (र्ाततगत) अथवा पवभर्ष्ट लक्षणों, दोनों का बोध कराता ि◌ै लेककन क्योंकक अन्य पदाथ शउस सर्य तब बोध के क्षेत्र के अन्दर प्रपवष्ट निींिोते,ि◌े इसभलए पदाथ शका बोध ककसी वगपशवर्ेर्ष से वस्तुतः सम्बद्ध के रूप र्ें निींिोता। कोई पदाथ,श अन्य पदाथों की तुलना र्ें िी, जर्नसेकक वि अलग लक्ष्य ककया गया ि◌ै, व्यजक्तरूप र्ें प्रत्यक्ष िोता ि◌ै। ककन्तु र्ब यि ककसी वगपशवर्ेर्ष के अन्य सदस्यों के सर्ान कुछ पवभर्ष्ट लक्षणों को भलए िुए देखा र्ाता ि◌ै, तो इसके पवर्षय र्ें यि ज्ञान िोता ि◌ै कक यि ककसी पवर्ेर्ष वग शका सदस्य ि◌ै। यद्यपप जर्सका बोध िुआ ि◌ै वि वस्तुतः ककसी वग शका एक व्यजक्त ि◌ै परन्तु इसके यथावं स्वरूप का ज्ञान तब तक निीं ि◌ंिो सकता र्ब तक कक इसकी तुलना उक्त वग शके अन्द सदस्यों के साथ निीं कर ली र्ाती।'[1368] र्बकक वगगशत लक्षण तथा पवभर्ष्ट लक्षण तनपवकशल्प प्रत्यक्ष र्ें पवद्यर्ान ि◌ैं, उनकी पिचान उक्त प्रत्यक्ष र्ें उस रूप र्ें निींिोती। सपवकल्प प्रत्यक्ष र्ें आत्र्ा उसी वग शके अन्य पदाथों का स्र्रण करती ि◌ै और उनकी सर्ानताओं तथा असर्ानताओं को लक्ष्य करती ि◌ै। प्रभाकर का र्त ि◌ै कक सपवकल्प प्रत्यक्ष का रूप भर्धश्रत ि◌ै, और उसके

1362 श्लोकवाततकश, प्रत्यक्षसूत्र, 5 113।

1363 र्ुद्धवस्तुर् अथवा भेदरहित पदाथ,श 112।

1364 श्लोकवाततकश, प्रत्यक्षसूत्र, 5: 120।

1365 र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 109-10। इस र्त की सर्ीक्षा के भलए देणखए र्न्तकृत न्यायर्ंर्री, पृष्ठ 98।

1366 श्लोकवाततकश, प्रत्यक्षसूत्र, 176।

1367 विी, पृष्ठ 180, 182।

1368 वस्त्वन्तरानुसन्धानर्ून्यतया सार्ान्यपवर्ेर्षरूपता न प्रतीयते। देणखए प्रकरणपजञ्चका, पृष्ठ 54-55

 अन्दर सूतृत का अंर् अन्ततनहशित िै क्योंकक उस वग शके अन्य सदस्य आत्रा के प्रतत अपनेको उस संस्कार के

कारण प्रस्तुत करते िैं रो इसने उनके सम्बन्ध र्ें प्राप्त ककया िुआ िै। ककन्तु सूतृत का अंर् उस पदाथ शसे सम्बन्ध निीं ंरखता जर्सका प्रत्यक्ष ज्ञान िुआ िै, बजल्क अन्य पदाथों से रखता िै जर्नके साथ इनकी तुलना की गई िै, और इसभलए पदाथ शके अपनेबोध की प्रार्ाणणकता को प्रभापवत निींकर सकता।

प्रभाकर और कुर्ाररल दोनों िी सार्ान्य की यथाथतशा को स्वीकार करते िैंऔर उन्िें प्रत्यक्ष के पवषय र्ानते िैं। इसके पवपरीत, बौद्धों का र्त िै कक पवभर्ष्ट व्यजक्तत्व िी केवल यथाथ शिै और सार्ान्यता कल्पना की उपर् िै।'[1369] कुर्ाररल और पाथसशारधथ ने बौद्ध र्त की सर्ीक्षा की िै। सार्ान्य प्रत्यक्ष का पवषय िै, क्योंकक र्ब भी िर् ककसी पदाथ शका प्रत्यक्षज्ञान प्राप्त करते िैं, िर् इसे ेवगपशवर्ेष से सम्बद्ध के रूप र्ें प्रत्यक्ष करते िैं। प्रत्यक्ष ज्ञान की किया के अंदर आत्रसात्करण तथा पवभेदीकरण दोनों रिते िैं। प्रत्यक्ष ज्ञान अनुवृि भी िै तथा व्यावृि भी िै। अनुवृपि सार्ान्य की यथाथतशा पर तनभरश करती िै। अनुर्ान की किया भी इसी पर आधाररत िै और न बौद्ध पवरोध र्ें ऐसा कि सकते िैं कक सार्ान्य यथाथ शनिींिै, क्योंकक इसका प्रत्यक्ष ज्ञान व्यजक्त से भभन्न रूप र्ें निींिोता। क्योंकक यि तकश कक रो िै वि या तो भभन्न िै या अभभन्न'[1370], सार्ान्य वस्तुत्व को र्ान लेता िै। और न ऐसा प्रश्न करना उपयुक्त िै कक सार्ान्यता प्रत्येक व्यजक्त के अन्दर अपनेपूणरूशप र्ें पवद्यर्ान िै या सबके अन्दर सर्जष्टभाव से पवद्यर्ान िै। इस प्रकार का भेदभाव व्यजक्तयों के भलए प्रासंधगक िैं, ककन्तु सार्ान्यता के भलए निीं, क्योंकक सार्ान्यता अखजण्डत िै। सार्ान्य के पवषय र्ें रो रैन र्त िै उसका भी प्रत्याख्यान ककया गया िै।[1371] यहद सार्ान्यता और सादृश्य एक िी र्ाने र्ाएं ंतो िर्ारे भलए यि कथन आवश्यक िोगा कक "यि एक गाय के सर्ान िै", यि निीं कक "यि एक गाय िै"। इसके अततररक्त, सार्ान्यता से अलग सादृश्य सम्भव निीं िै। वस्तुएं, यहद उनके अन्दर सार्ान्य गुण िैं तभी एक-दूसूरे के सदृर् िैं। कुर्ाररल के अनुसार, सार्ान्य व्यजक्त से भभन्न निींिै।'[1372] दोनों का परस्पर सम्बन्ध भभन्नता र्ें तादात्म्य का सम्वन्ध िै। िर् सार्ान्य का ज्ञान प्राप्त करते िैं अथवा व्यजक्त का, यि िर्ारी रुधच पर तनभरश िै। सार्ान्य से तात्पय,श जर्से े आकृतत (रूप) भी कि र्ाता िै, बाह्याकार से निींिै, बजल्क लक्षण के तादात्म्य से िै, क्योंकक आकृतत का सम्बन्ध आत्रा रैसे ेअभौततक पदाथों के साथ कि गया िै। पदाथों का बाह्याकार नार्वान िै, ककन्तु वगगशत स्वरूप नार्वान निींिै।[1373] वग शस्वयं आकृतत के नार् से पुकारा र्ाता िै। इससे स्पष्ट संकेत उसकी ओर िै रो व्यजक्त को लक्षक्षत करता िै। यि वि िै रो सब व्यजक्तरूप पदाथों र्ें सर्ान िै, और इस सर्जष्टरूप पवचार का

1369 पवकल्पाकारर्ात्रं सार्ान्यर् ्। र्ास्त्रदीपपका, पृषूठ 381।

1370 पद वस्तु तद्भभन्नर्भभन्नं वा भवतत, पृषूठ 382।

1371 न च सादृश्यर्ेव सार्ान्यर्,् पृषूठ 394।

1372 स्तोरवाततकश, प्रत्यक्षसूत्र, 141। इस पर टीका करते िुए 'न्यायरत्नाकर' किता िै : "वग शआहद व्यजक्त सेकण्या भभन्न निींिै। यि एक साधारण अनुभव का तथ्य िै कक व्यजक्तरूप गाय इस रूप र्ें केवल तभी पिचानी भभन्न िोता। व्यजक्त की वग शके साथ तादात्म्य की इस प्रकार की प्रत्यभभज्ञा िी वग शको र्ाननेका एकर्ात्र नाते िै रथ यि यि एक साध्र्ाण अनुभवक पाई र्ाती िै। यि निींि सकता था, यहद व्यजर्त कार् से िै। इसभलए व्यजक्त तया वग शर्ें अवश्य तादात्म्य िोना चाहिए।"

और देणखए आकृततवाद, 8, 10, 18, 25 ।

1373 तन्त्रवाततकश, 1: 3,30 ।

साधन िै कक इन पदाथों से एक पूण शइकाई का तनर्ाणश िोता िै।[1374] पाथसशारधथ का तकश िै कक सार्ान्य व्यजक्त से सवथशा भभन्न निीं ंिै। यहद ऐसा िोता तो िर् व्यजक्त र्ें सार्ान्य का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त न कर सकते। "यि एक गाय िै", इस प्रत्यक्ष ज्ञान र्ें िर्ें 'यि' का बोध (इयंबुद्धध:) तथा 'गाय' का बोध (गोबुद्धध:) भी िोता िै। पिले े बोध का पवर्षय व्यजक्त िै और दूसूरे बोध का पवर्षय सार्ान्य िै। 'यि' और 'गाय' के बोधों र्ें भेद िै, और तो भी वे एक िी पदाथ शके अन्तगतश ि।ै प्रत्यक्ष ज्ञान का यि दो प्रकार का स्वरूप पदाथ शके स्वरूप को सार्ान्य तथा पवभर्ष्ट, दोनों रूप र्ें तनदेर् करता िै। ये दोनों स्वभावतः परस्पर असंगत निीं, क्योंकक प्रत्यक्ष ज्ञान के एक िी कर् शर्ें तादात्म्य तथा भेद, दोनों प्रत्यक्ष िोते िैं। तादात्म्य तथा भेद एक-दूसूरे का पवरोध निींकरते,े रै्से ेकक 'यि चांदी िै' और 'यि चांदी निीं िै' ये बोध करते िैं। तादात्म्य तथा भेद का सम्बन्ध पदाथ शके भभन्न-भभन्न पिलुओं से िै।'[1375]

प्रभाकर के अनुयायी इस पवचार से सिर्त निीं िैं। बोधरूपी विी एक कर् शसार्ान्य तथा व्यजक्त र्ें तादात्म्य तथा भेदे का ज्ञान निींकरा सकता। र्ब िर्ें सार्ान्य और व्यजक्त र्ें भेद का प्रत्यक्ष िोता िै तो िर्ें उन दोनों का पृथृक् पृथृक् प्रत्यक्ष िोगा। और र्ब िर्ें उनके अन्दर तादात्म्य प्रत्यक्ष िोता िै तो िर्ें उनर्ें से एक िी का प्रत्यक्ष िोगा, अथात्् ्या तो सार्ान्य का या व्यजक्त का। इस अवस्था र्ें एक िी पदाथ शसे, अथात्श ्सार्ान्य या व्यजक्त से दो प्रकार का बोध िोगा, अथात्श ्सार्ान्य तथा व्यजक्त का और उनके तादात्म्य का। ककन्तु सार्ान्य के भलए यि सम्भव निीं कक वि व्यजक्त के साथ अपने तादात्म्य का बोध उत्पन्न करे, और न व्यजक्त के िी भलए यि सम्भव िै कक वि सार्ान्य के साथ अपनेतादात्म्य का बोध उत्पन्न करे। इसभलए यि निींकिा र्ा सकता कक भेदे तथा तादात्म्य दो का ज्ञान बोध के उसी एक कर् शसे िो सकता िै। पाथसशारधथ पवरोध र्ें किता िै कक यि तकश अप्रार्ाणणक िै। दो पदाथों के बोध र्ें आवश्यक निीं कक उनके भेदे का ज्ञान भी सजम्भलत रिे। र्ब पिले–पिल ककसी वग शके सदस्य एक व्यजक्त का प्रत्यक्ष ककया र्ाता िै तो सार्ान्य तथा व्यजक्त दोनों का िी प्रत्यक्ष ज्ञान िोता िै, ककन्तु दोनों की भभन्नता का प्रत्यक्ष निींिोता। र्ब उसी वग शके ककसी अन्य व्यजक्त को देखते िैं तो उसी वग शका िोनेके कारण प्रथर् व्यजक्त के साथ उसका आत्र्सात्करण िो र्ाता िै और भभन्न व्यजक्त िोनेसे प्रथर् व्यजक्त से उनका भेदे भी प्रत्यक्ष िो र्ाता िै। दो पदाथों के बोध र्ें इसभलए, उनके भेद का बोध अन्तगतश निींरिता। एक िी पदाथ शके बोध र्ें आवश्यक निींकक इसके तादात्म्य का बोध भी अन्तगतश िो, रै्सेकक र्ब कोई ककसी दूरूस्थ पदाथ शको देखता िै और सन्दिे अनुभव करता िै कक यि खंभा िै या र्नुष्य िै।'[1376]

प्रभाकर के अनुयातययों का तकश िै कक सार्ान्य तथा व्यजक्त र्ें एकात्र्ता निीं िो सकती, क्योंकक सार्ान्य तनत्य िै और अनेक व्यजक्तयों र्ें एकसर्ान िै, र्बकक व्यजक्त अतनत्य िै और पवभर्ष्ट िै। यहद इन

1374 र्ाततर्ेवाकृतत प्रिु: व्यजक्तराकियते यया।
सार्ान्यं तच्च पपण्डानार्ेकबुद्धधतनबन्धर्॥्

(श्लोकवाततकश, आकृततवाद, 5:3)

1375 र्ास्त्रदीपपका, पृषृ्ठ 284।

1376 न अल्लुदणप्रतीततरेवभेदप्रतीततः नाप्येकवस्तुप्रतीततरेवाभेदप्रतीततः (र्ास्त्रदीपपका, पृषृ्ठ 287)।

दोनों र्ें एकात्र्ता िोती, तो सार्ान्य अतनत्य िोता तथा भभन्न-भभन्न व्यजक्तयों र्ें भभन्न-भभन्न िोता और व्यजक्त तनत्य िोते ेतथा अनेक एकसर्ान िोते। इिर र्ें पाथसशारधथ युजक्त देता िै कक एक भर्धश्रत अथवा बिुरूप
पदाथ शकुछ बातों र्ें तनत्य तथा अन्य बातों र्ें अतनत्य िो सकता िै, कुछ लक्षणों र्ें औरों के साथ एकात्र्रूप और अन्य लक्षणों र्ें उनसे ेभन्न िो सकता िै।'[1377]

पूण शइकाई (अवयवी) तथा उसके भाग (अवयव) के प्रश्न के पवर्षय र्ें प्रभाकर का र्त िै कक अवयवी प्रत्यक्ष का पवर्षय िै। पूण शइकाई के रूप र्ें पदाथों का अजस्तत्व िै। यि आवश्यक निीं िै कक िर् पूण शइकाई का प्रत्यक्ष करने से पूव शउसके सभी हिस्सों का प्रत्यक्ष करें। यहद िर् ककसी भौततक पदाथ शको लें तो परर्ाणु ुइसके उपादान कारण िैं, और उनका संयोग अभौततक कारण िै र्ो पूण शइकाई को उसकी पवभर्ष्टता प्रदान करता िै। कुर्ाररल का र्त िै कक अवयवी तथा उसके अवयव एकात्र्रूप िैं, और यि िर्ारे दृजष्टकोण पर तनभरश करता िै कक िर् ककसी पदाथ शको पूण शइकाई सर्झते िैं या अनेक भाग।'[1378]

प्रत्यभभज्ञा को अनुभूततपरक ज्ञान र्ानने र्ें कुर्ाररल नैय्यातयक के साथ सिर्त िै, क्योंकक इसकी उपजस्थतत विींसम्भव िै र्िां इजन्द्रयों की कियार्ीलता िै, और र्िां ंवि निीं विांप्रत्यभभज्ञा का भी अभाव िै। केवल इसभलए कक प्रत्यभभज्ञा से पूव शस्र्तृत की किया आती िै, िर् इसे ेअप्रत्यक्षपरक निीं कि सकते। र्िां ंकिीं ं ज्ञानेजन्द्रय का सम्पकश ककसी उपजस्थत पदाथ शके साथ िै, िर् उसे ेप्रत्यक्ष ज्ञान की अवस्था र्ानेंगे।'[1379]

र्ीर्ांसक यौधगक अन्तदृजशष्ट की प्रकल्पना का सर्थनश निींकरते,े जर्सके द्वारा किा र्ाता िै कक योगी भूत, भपवष्यत्,् अदृश्य और दूरूस्थ पदाथों का ज्ञान प्राप्त कर लेतिैं। यि अन्तदृजशष्ट या तो इजन्द्रयर्तनत िै या अतनजन्द्रयर्तनत िै। यहद इजन्द्रयर्तनत िै तो क्योंकक इजन्द्रयां भूत, भपवष्यत् ्तथा दूरूस्थ पदाथों के सम्पकश र्ें निींआ सकतीं ंअतः उनका कुछ ज्ञान निीं ंिो सकता। यिां तक कक अन्तःकरणरूप इजन्द्रय, अथात्श ्र्न भी र्ेवत र्ानभसक अवस्थाओं, यथा सुख-दुःख आहद, का िी ज्ञान प्राप्त कर सकती िै। इस प्रकार का तकश उपजस्थत करना कोई अथ शनिींरखता कक इजन्द्रयांर्ब उच्च पवकास को प्राप्त िो र्ाती िैं तो पदाथों के सम्पकश र्ें आए बबना भी, उनका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकती िै, क्योंकक ककतना भी पवकास क्यों न िो, वि इजन्द्रयों की प्रकृतत र्ें पररवतनश निींर् सकता। यहद यौधगक अन्तदृजशष्ट भूतकाल र्ें प्रत्यक्ष की िुई वस्तुओं का बोध प्राप्त करती िै तो यि प्रत्यक्ष र्ानता िोकर स्र्तृत की अवस्था िै। यहद यि ऐसे ेपदाथों का बोध कराती िै जर्नका बोध पिले ेकभी निींिुआ तो इसकी प्रार्ाणणकता र्ें सन्दिे िै। भूतकाल के, दूरूजस्थत तथा भपवष्य के पदाथों का ज्ञान केवल वेदों द्वारा िी प्राप्त ककया र्ा सकता िै।'[1380]

[1377] र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 288।

[1378] श्लोकवाततकश, वनवाद ।

[1379] भलोकवाततकश, प्रत्यक्षसूत्र, 234-37 ।

[1380] र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 52। देणखए यार्ुनाचायकृशत, भसद्धधत्रय, पृष्ठ71।

र्ानभसक प्रत्यक्ष को, जर्सके द्वारा िर् सुख-दु:ख इत्याहद का ज्ञान प्राप्त करते िैं, र्ीर्ांसादर्नश ने स्वीकार ककया िै। तो भी बोध अन्तर्ुखशता का पवर्षय निीं िो सकता। र्ानधगक प्रत्यक्ष ऐसी कियाओंतक िी सीभर्त िै र्ो बोध-सम्बन्ध निीं। स्वप्नों र्ें भी बोध जर्नेज्ञानप्राजप्त के योग्य बनाता िै वि वाह्य र्गत् ्का िी कोई पदाथ शिोता िै।'[1381] यद्यपप स्वप्नकान र्ें पदाथ शवास्तव र्ें उपजस्थत निींिोता, तो भी वि ऐसी वस्तु िोता िै जर्सका पिले ्प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त ककया गया िै और र्ो अब सरकारों द्वारा पुनर्ीपवत िो गई िै। वि बौध र्ो र्ि स्वप्नों र्ें िोता िै, सूतृत के स्वरूप का िै और कुछ संस्कारों के पुनर्ागशररत िोने से िोता िै। स्वप्नों र्ें भूतकाल के अनुभव का केवल विी भाग पुनर्ीपवत िोता िै र्ो कता शके र्ुख अथवा दु:ख का कारण बन सके और जर्सके भलए वि उस क्षण र्ें पररपक्व िै। स्वप्न केवल ऐसी तनद्रा र्ें िी सम्भव िोते िैं जर्सर्ें आत्र्ा का सम्पकश र्न के साथ िोता िै, यद्यपप र्न इजन्द्रयों के साथ र्ें सम्पकश र्ें निींिोता। स्वप्न-पविीन प्रगाढ़ तनद्रा र्ें आत्र्ा का र्न के साथ सम्पकश टूट र्ाता िै। प्रभाकर का तो यिी पवचार िै, ककन्तु कुर्ाररल की सम्र्तत र्ें, प्रगाढ़ तनद्रा की अवस्था र्ें आत्र्ा अपने पवरुद्ध चैतन्यरूप र्ें लौट र्ाती िै, र्िांकक ककसी प्रकार के स्वप्नों की सम्भावना निीं।'[1382]

5. अनुर्ान

र्वर के अनुसार, र्ब दो वस्तुओं र्ें ककसी जस्थर-सम्बन्ध की पवद्यर्ानता र्ानी र्ुई िोती िै, जर्ससे े उनर्ें से ककसी एक के देखने पर दूसूरी का भी एक भाव आ र्ाता िै, तो यि दूसूरा बोध आनुर्ातनक किलाता िै।'[1383] र्वर अनुर्ान को दो भागों र्ें पवभक्त करता िै: प्रत्यक्षतोदृष्ट, र्िां ंअतनवाय शसम्बन्ध ऐसेपदाथों के र्ध्य िै र्ो दृजष्टगोचर िैं, र्ैसै ेधुआं और आग, और सार्ान्यतोदृष्ट र्िां ंसम्बन्ध इजन्द्रयों के द्वारा निींर्ाना र्ाता, बजल्क केवल अरूत शरूप र्ें िी र्ाना र्ाता िै, र्ैसेकेक सूय शकी गतत तथा आकार् र्ें उसकी पररवतततश िोती िुई जस्थतत की अवस्था र्ें िोता िै।'[1384] प्रभाकर के अनुसार, सम्बन्ध अवश्य अचूक, सत्य तथा स्थायी िोना चाहिए, र्ैसाकक कारण और उसके काय शके र्ध्य, अवयवी और अवयव के र्ध्य, द्रव और गुण के र्ध्य, वग शऔर सदस्यों के र्ध्य िोता िै। सार्ान्य भसद्धान्त का उद्भव प्रत्यक्ष ज्ञान से निीं ंिै, क्योंकक प्रत्यक्ष ज्ञान का कायक्षेशत्र केवल वे पदाथ शिैं र्ो वतर्शान काल र्ें पवद्यर्ान िैं तथा ज्ञानेजन्द्रयों के सम्पकश र्ें िैं। इसका उद्भव अनुर्ान अथवा अथापशपि सेभी निीं, क्योंकक ये दोनों इते ेर्ान लेतीं। सार्ान्य भसद्धान्त की भसद्धध अनुभव के आधार पर िोती िै। ऐसी अवस्थाएं ंिर्ारे देखने ेर्ें आती िैं र्िां ंधुआं और आग एक साथ उपजस्थत रिते िैं, और ऐसी अवस्थाएं ंश्री देखने र्ें आती िैंर्िां ंये एकसाथ इस प्रकार उपजस्थत निीं ंिैं, और तब िर् एक अवस्याय ें

1381 श्लोकवाततकश, तनरालम्बनवाद, 107-8; र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 162-63 और 165।

1382 झा: प्रभाकर स्कूल, 2।

1383 ज्ञातसम्बन्धस्यैकदेर्दर्नशादेकदेर्ान्तरेऽसन्नकृष्टेऽथे बुद्धधः। और देणखए प्रकरणपधचका, पृष्ठ 64 ।

1384 र्वर का सार्ान्यतोदृष्ट वात्स्यायन द्वारा की गई इसकी प्रथर् व्याख्या के सवथशा सर्ान िै, र्बकक वात्स्यायन के पूववशत् ्र्बर के प्रत्यक्षतोदृष्ट के अनुकूल िै।

 भसद्धान्त का अनुर्ान करते िैं र्ो सब अवस्थाओं पर लागू िोता िै। र्ब सि-अजस्तत्व, तादात्म्य अथवा

कायकशारणभाव का एक स्थायी सम्बन्ध र्न र्ें बैठ र्ाता िै, तो इसका एक पक्ष दूसूरे पक्ष का स्र्रण कराता िै।

प्रभाकर तथा कुर्ाररल के अनुसार, अनुर्ान-सम्बन्धी तकश के केवल तीन अवयव िैं: प्रततज्ञा अथवा प्रस्तुत पवषय के सम्बन्ध र्ें कथन, र्ुख्य पद र्ो सार्ान्य तनयर् को सर्थनश करनेवालेदृष्टान्त सर्ेत उपजस्थत करता िै, और गौण पद। इन तीन अवयवों को ककसी भी िर् र्ें रखा र्ा सकता िै। र्ीर्ांसक स्वाथानुशर्ान तथा पराथानुशर्ान के र्ध्य र्ो भेद िै उसेस्वीकार करतेिैं। आनुर्ातनक ज्ञान का दो प्रकार का लक्ष्य िोता िै : दृष्ट स्वलक्षण, अथात्श ्जर्सका अपना पवभर्ष्ट लक्षण प्रत्यक्ष िो चुका िै, र्ैसेकक धुएं से आग का अनुर्ान; और अदृष्ट स्वलक्षण, अथात्श ्जर्सका पवभर्ष्ट लक्षण प्रत्यक्ष का पवषय निीं िै, र्ैसेकक आग की र्ला देनेवाली क्षर्ता का अनुर्ान । प्रभाकर का र्त िै कक अनुर्ान र्ें सार्ान्य सम्बन्ध का पूवज्ञश ान सजन्नहित िै और इसका सम्बन्ध ऐसे पदाथों से िै र्ो पिले से ज्ञात िैं। कुर्ाररल पवलक्षणता को अनुर्ान का एक अतनवाय श लक्षण र्ानता िै। यद्यपप यि सत्य िै कक धुआं हदखाई हदया िै और धुएं का प्रत्यक्ष अपने साथ आग के सम्बन्ध र्ें एक सार्ान्य पवचार भलए िुए िै, र्ो बताता िै कक उसका धुएं से सम्बन्ध िै, तो भी आनुर्ातनक बोध का पवषय एक ऐसी चीर् िै र्ो पिलेसे ज्ञात निीं, अथात् श ्पवधेय से पवर्ेपर्षत उद्देश्य िै-प्रचभलत दृष्टान्त र्ें अजग्नयुक्त पिाड ।'[1385]

6. वैहदक प्रार्ाण्य

र्ीर्ांसा का लक्ष्य धर् शके स्वरूप का तनश्चय करना िै। धर् शका अजस्तत्व भौततक निीं और इसभलए इजन्द्रयों द्वारा इसका ज्ञान निीं िो सकता। अन्य प्रर्ाण ककसी प्रयोर्न के निीं िैं, क्योंकक वे सब प्रत्यक्ष ज्ञान की पूवकशल्पना करते िैं। प्रत्यक्ष, अनुर्ान और इसी प्रकार के ज्ञान के अन्य साधन इस पवषय र्ें कुछ भी निीं कर सकते कक अजग्नष्टोर् यज्ञ का करनेवाला स्वग शको र्ाएगा। इसका ज्ञान केवल वेदों से िी प्राप्त िोता िै। यद्यपप वेद का प्रर्ाण िर्ारे भलए धर्ज्ञश ान का एकर्ात्र स्रोत िै, तो भी अन्य साधनों पर पवचार ककया गया िै, क्योंकक यि प्रदभर्तश करना आवश्यक िै कक वे धर् शके सम्बन्ध र्ें ज्ञान निीं दे सकते। प्रांत पवचारों के उच्छेदन के भलए भी उन्िें उपयोगी पाया गया िै।

वेद का सारतत्त्व आदेर्ात्र्क रूप र्ें दी गई वे घोषणाएं िैं र्ो र्नुष्यों को कर्-शसम्बन्धी तनजश्चत पवधधयों की ओर प्रेररत करती िैं और यि बताती िैं कक इस प्रकार का कर् शउपकारी पररणार्ों को प्राप्त कराएगा। यि र्ानते िुए कक वेदों र्ें कर्कशाण्ड का कियाकलाप िी सब कुछ िै, र्ैभर्तन का यि र्त िै कक वे भाग र्ो

1385 लोकवाततकश, अनुर्ानपररच्छेद, 50। प्रभाकर चार िेत्वाभासों को स्वीकार करता िै, अथातश असाधारण, सांग, साधारण और अभसद्ध, र्बकक कुर्ाररल का पवश्लेषण, र्ो अनेकाजन्तक तथा अभसद्ध को स्वीकार करता * न्याय की योर्ना से यतनष्ठ सर्ानता रखता िै।

प्रकटरूप र्ें इससे असम्बद्ध िैं, तनरथकश िैं।[1386] और इस प्रकार उनकी व्याख्या कर्कशाण्ड-सम्बन्धी आदेर्ों के आधार पर िोनी चाहिए। अन्य भाग भी केवल उसी अवस्था र्ें प्रार्ाणणक िैं र्बकक वे व्यजक्त के भलए कर् शकरने र्ें सियक भसद्ध िोते िैं।'[1387] र्ीर्ांसक वि भसद्ध करनेका प्रयत्न करते िैं कक पपवत्र वाङ्र्य का प्रत्येक भाग कतव्शय कर्ों से िी सम्बन्ध रखता िै। वेद का र्ोटा पवभाग र्न्त्रों और ब्राह्र्णों र्ें िै। वेद के पवर्षयवस्तु का वगीकरण इस प्रकार भी ककया गया िै : (1) पवधध, (2) र्न्त्र, (3) नार्धेय, (4) तनर्षेध और (5) अथवशाद।[1388]

र्ाजब्दक ज्ञान की पररभार्षा करतेिुए किा गया िै कक यि ऐसी वस्तु का बोध िै र्ो इजन्द्रयों के सर्क्ष प्रस्तुत निीं, और र्बदों के ज्ञान से उत्पन्न िुआ िै। ये र्बद र्नुष्यों द्वाग उच्चररत िो सकते िैं या वेदों के िो सकते िैं।'[1389] प्रथर् प्रकार के र्बद प्रार्ाणणक उसी अवस्था र्ें िैं र्बकक उनके रचतयताओं के पवर्षय र्ें िर्ें तनश्चय िो कक वे अपवश्वसनीय निीं। वेदो के र्बद स्वतः प्रार्ाणणक िैं। वि ज्ञान जर्सका पवरोध आगे आनेवाले ज्ञान से िो र्ाए, अप्रार्ाणणक िै। ककन्तु वैहदक आदेर्ों द्वारा प्राप्त बोध ककसी भी काल र्ें, ककसी भी स्थान र्ें, अथवा ककसी भी अवस्था र्ें खजण्डत निीं िो सकते।[1390] ऐसा किना आत्र्-पवरोधी िोगा कक वेहदक आदेर् ककसी ऐसी वस्तु को व्यक्त करता िै र्ो सत्य निीं। वेद अपनी तनर्ी प्रार्ाणणकता को अभभव्यक्त करते िैं। िर्ारे द्वारा प्रयुक्त र्बद ऐसी चीर्ों को व्यक्त करते िैं जर्नका ज्ञान, ज्ञान के अन्य साधनों द्वारा प्राप्त ककया र्ा सकता िै; और यहद िर् उन्िें अन्य साधनों र्ें निीं र्ान सकें तो उनके उच्चारण करनेवाले ऐसेिीनेचाहिए जर्नकी प्रार्ाणणकता असजन्दग्ध िो। इस प्रकार अवैहैदक वाक्यों र्ें कोई अन्ततनहिशत प्रार्ाणणकता निीं रिती।[1391] प्रभाकर का र्त िै कक अवैहदक र्ाजब्दक बोध अनुर्ान-स्वरूप िै। केवल विी र्ाजब्दक ज्ञान र्ो वेदों से भर्लता िै, सिी अथों र्ें र्ाजब्दक िै।"[1392] ककन्तु इसकी संगतत अन्य प्रकल्पना के साद निीं, र्ो सब बोधों की स्वतः प्रार्ाणणकता को र्ानती िै। क्योंकक वेदन्त्रों का कोई रचतयता निीं, इसभलए त्रुहटयों की सम्भावना निीं ।

1386 यि पवचार वेद के घतनष्ठ सर्ानता राखता। कहठनता के साथ उधचत िो सकेगा र्ो पवश्वसम्वन्धी चरर् सर्स्याओं के पवर्षय र्ें प्रततपादन करते िैं।

1387 1: 2, 1। वेदान्त पवधधपरक र्न्त्रों के अततररक्त वैहदक र्न्त्रों की प्रार्ाणणकता को भी स्वीकार करता िै।

1388 पवधधपरक आदेर्, र्ो पुरुर्ष को पवर्ेर्ष फलों की आर्ा से कर् शकरने के भलए प्रेररत करते िैं, यया 'र्ो स्वग शका इच्छुक िै वि यज्ञ करे' (स्वगकशार्ो यर्ेत), सबसे अधधक र्ित्त्व के िैं। इनके सिकारी र्ादा भी िैं र्ो यज्ञ-सम्बन्धी ब्यौरों का वणनश करते िैं, और यि बताते िैं कक ककस िर् र्ें उनके अनेक भा को सम्पन्न करना िै, और कौन-कौन पुरुप उनको करने के अधधकारी िैं, आहद आहद। र्न्त्र यज्ञकताश के यज्ञ से सम्बजन्धत पवभभन्न पवर्षयों का स्र्रण कराने र्ें उपयोगी भसद्ध िोते िैं, र्ैसेकक वे देवता जर्न्िें ति करके अिुततयां देनी िैं। किा र्ाता िै कक कुछ र्न्त्रों र्ें रिस्यर्य अथवा अतीजन्द्रय काय-शर्जक्त िै औ सीधेअतीजन्द्रय पररणार् अथात्श अपूव शको उत्पन्न करते िैं। नार्धेय र्ें उन पररणार्ों का संकेत रिता िै यज्ञों के द्वारा प्राप्त ककए र्ाते िैं। तनर्षेध केवल प्रच्छन्न पवधधयाँिैं। अथवशाद वे वाक्य िैं र्ो आररष्ट बसुर् की प्रर्ंसा करते िैं या तनपर्षद्ध वस्तुओं की तनन्दा करते िैं, अथवा औरों के कर्ों का पववरण देते िैं, अपा पुराकल्प अथात्श इततिास के दृष्टान्त िैं (अथसंशग्रि)।

1389 अपौरुर्षेयंवाक्यं वेदः (अथसंशग्रि, पृषृठ 3)।

1390 1/1 2 पर र्बर।

1391 र्ास्त्रदीपपका, पृषृठ 53 ।

1392 प्रकरणधचका, पृषृठ 88 से आगे। तुलना कीजर्ए कुर्ुर्ांर्भल, 3/16 ।

 िै, और इस प्रकार वेदों की अप्रार्णणकता की कल्पना भी निींकी र्ा सकती।'[1393] जर्स प्रकार र्नुष्यों के ब्दं
भी, यहद उनके रचतयता पवश्वस्त व्यजक्त िैं तो प्रार्णणक िोते िैं, कुर्ाररल उन्िें भी ब्दंप्रर्ाण र्ानता िै।

वेद तनत्य िैं क्योंकक वे ब्दं जर्नसे वे बने िैं, तनत्य िैं। ब्दं और अथ शके ध्यं र्ो तम्बन्ध िै वि नैसधगकश िै, और परम्परा द्वारा तनभर्तश निीं ंिै। ब्दं और उसके अथ शके बीच इस प्रकार का सम्बन्ध िै, यि प्रत्यक्ष र्ाना र्ा सकता िै। यहद कोई इसे,े ब्कक यि पिली बार ब्दं को सुनता िै, निीं र्ान सकता, तो इसका तात्पय शकंवल यिी िै कक सियकों का अभाव िै ककन्तु इससे ेब्दाथ-शसम्बन्ध का अभाव निीिंि सकता। यहद आंख प्रकार् के अभाव र्ें निींदेख सकती तो इसका यि अथ शनिींिै कक आंख देखने ेके सवयशा अयोग्य िै। सियक यि ज्ञान िै कक इस-इस प्रकार का ब्दं इस-इस प्रकार के पदाथ श(पवर्षय) का द्योतक िै, और यि ज्ञान अनुभव से प्राप्त िोता िै। ब्दं के अन्दर अभभव्यजक्त का गुण उसके अपनेस्वभाव से तनहित िै। घडा इत्याहद साधारण संज्ञ्ाओं के पवर्षय र्ें यि सवधशा सत्य िै, र्ि्ंकक ब्दों का अपनेअथों के साथ सम्बन्ध ककसी परम्परा से सवथशा स्वतन्त्र िै।'[1394] ब्दं तथा उनसे ेतनहदशष्ट पदाथ शदोनों तनत्य िैं और अज्ञात काल से र्नुष्य उन्िींपदाथों के भलए उन्िींब्दों का प्रयोग करते ेआए िैं।

प्रभाकर के अनुसार, केवल ध्वतन अथवा अस्पष्ट ब्दं नार् की कोई वस्तु निीं िै। सर्स्त ब्दं ककसी-न-ककसी अक्षर के रूप र्ें सुने र्ाते िैं। ब्दं उन अक्षरों से भभन्न निीं ंिैं जर्नसेयि बना िै। अक्षरों का प्रत्यक्ष श्रवणेजन्द्रय द्वारा िोता िै, और वि िर् जर्सर्ें यि प्रत्यक्ष िोता िै यि तनणयश करता िै कक ककन ब्दों का बोध िुआ िै। एक ब्दं र्ें जर्तने अक्षर िैं उतनिी प्रत्यक्ष ज्ञान भी िोते िैं, और इन प्रत्यक्ष ज्ञानों की अत्यधधक सर्ीपता के कारण िर् कल्पना करते िैं कक ब्दं का प्रत्यक्ष ज्ञान एक िी िै। प्रत्येक अक्षर का प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट िोते िी पवलुप्त िो र्ाता िै और अपनेपीछे एक संस्ंकार छोड र्ाता िै। भभन्न-भभन्न अक्षरों द्वारा छोडे िुए संस्कार अंतंतर् अक्षर के संस्कार के साथ संयुक्त िोकर पूण शब्दं के पवचार को उत्पन्न करते िैं, जर्सके अन्दर अथ शको प्रकट करने की जक्त िोती िै।[1395] क्योंकक ब्दं की क्षर्ता अक्षरों की भभन्न-भभन्न क्षर्ताओंसे उत्पन्न िोती िै, इसभलए अक्षरों की क्षर्ताओं को र्ाजब्दक बोध का सीधा कारण बताया गया िै। ब्दाथ शका बोध इजन्द्रयप्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त निींिोता। इजन्द्रयां ंअक्षरों को प्रस्तुत करती िैं, जर्नर्ें अक्षरों से बने िुए ब्दं द्वारा प्रकट की गई वस्तु का बोध कराने की जक्त रिती िै। इस प्रकार प्रभाकर का र्त िै कक अक्षर र्ाजब्दक बोध के साधन िैं। ब्दों र्ें नैसधगकश रूप सेद्योतन की जक्त रिती िै, जर्सके द्वारा वे पदाथों को प्रकट करते िैं, भले िी िर् उनके अथों को सर्झ सकें या न सर्झ सकें।'[1396]

1393 श्लोकवाततकश, 2; और देणखए 2: 62 -69 1

1394 व्यजक्तवाचक संवादों के पवर्षय र्ें, र्िंवस्तुओं अथवा र्नुष्यों के नार् उनके उत्पन्न िोनेके पश्चात् ्एवं र्ाते िैं, प्रभाकर यि स्वीकार करता िै कक ब्दं और अथ शका सम्बन्ध परम्परा के कारण िोता िै।

1395 तुलना कीजर्ए, र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 266 से ेआगे।

1396 प्रभाकर के अनुसार, र्ो अजन्वताभभधानवाद की प्रकल्पना को स्वीकार करते िैं, ब्दों के अथ शकेवल उनी अपत्या र्ें र्ानेर्ा सकते िैं ब्कक वे ऐसे वाक्य र्ें आते िैं र्ो ककसी कतव्शय का आदेर् करता िो। नारस र्ानेर्ा सकते िैं ब्कक वे ऐसेवाक्य के अन्य अवयवों से ेसम्बद्ध रूप र्ें िी द्योततत करते ेवे एक आदयों को केवल इस प्रचारक केवल अथों का िी

प्रभाकर की भांतत कुर्ाररल भी तकश करता ि़ै कक साथकशता स्वयं अक्षरों के अपने अन्दर रिती ि़ै, न कक ककसी पवर्ेष स्फोट र्ें। इसभलए यि उस प्रकल्पना का प्रत्याख्यान करता ि़ै जर्सके अनुसार ब्दद का तनर्ाणश करनेवाले अक्षरों की क्षणणक ध्वतनयों के अततररक्त, एक पररपूण शब्दद कृतत क्षणणक ध्वतनयों से अभभव्यक्त िोती ि़ै, ककन्तु उत्पन्न निींिोती।

सार्ान्यतः ब्ददों और पवर्ेषतः वेदों के तनत्यस्वरूप के पवरुद्ध अनेकों आपपियों पर पवचार ककया गया ि़ै। (1) सवसशाधारण का यि अनुभव ि़ै कक सर्ग्र र्ौणखक ब्ददोच्चारण र्नुष्यों के प्रयत्न द्वारा िोता ि़ै और इसभलए इसका प्रारम्भ ि़ै। अतः इसे ितनत्य निींर्ाना र्ा सकता। र्ैभर्तन का उिर ि़ै कक उच्चारण पिले िसे पवद्यर्ान ब्दद को केवल प्रत्यक्ष ज्ञान के योग्य बनानेर्ें सिायक िोता ि़ै, ककन्तु यि इसे िपिली वार तनभर्तश निींकरता ि़ै। (2) यि किा र्ाता ि़ै कक ब्दद कुछ िी सर्य के भलए अपना अजस्तत्व रखता ि़ै, क्योंकक उच्चारण िोते िी यि नष्ट िो र्ाता ि़ै। र्ैभर्तन का किना ि़ै कक ब्दद नष्ट निींिोता, बजल्क केवल अपनी र्ूल अव्यक्त दर्ा र्ें लौट र्ाता ि़ै। इस र्गत् र्ें ऐसी अनेक वस्तुएं िैं र्ो प्रत्यक्ष का पवषय न िोती िुई भी अपना अजस्तत्व रखती िैं। र्ब लोग ब्ददों के 'तनर्ाणश' के पवषय र्ें किते िैं तो, र्ैभर्तन के अनुसार, तनर्ाणश से तात्पय शउन ध्वतनयों से िोता ि़ै र्ो ब्दद को अभभव्यक्त करती िैं। (3) एक िी ब्दद का उच्चारण एक िी सर्य र्ें भभन्न-भभन्न पुरुषों द्वारा भभन्न-भभन्न स्थानों र्ें ककया र्ाता ि़ै। यहद ब्दद एक तनत्य तथा सवव्शयापक सिा िोती, तो यि सम्भव न िो सकता। र्ैभर्तन का उिर ि़ै कक जर्स प्रकार अनेक पुरुष भभन्न-भभन्न स्थानों र्ें और एक िी सर्य र्ें एक िी सूय शका प्रत्यक्ष दर्नश करते िैंइसी प्रकार वे एक िी ब्दद का उच्चारण करते िैं। (4) ब्ददों र्ें पररवतनश िोते िैं, र्ो निींिोने चाहिए थे यहद वे तनत्य िोते। प्रत्युिर र्ें र्ैभर्तन का किना ि़ै कक ब्ददों र्ें पररवतनश निींिोता, ककन्तु अन्य ब्दद उनका स्थान लेते िैं। (5) ब्दद का पररर्ाण ब इसका उच्चारण एक अथवा अनेक र्नुष्य करते िैं तदनुसार घटिा तथा बढ़ता ि़ै। र्ो बढ़ता भी ि़ै वि तनत्य निीं ििो सकता। र्ैभर्तन बलपूवकश किते ि ैंकक ब्दद का पररर्ाण कभी बढ़ता या घटता निीं, यद्यपप र्नुष्यों से प्रकट िुई ध्वतन बढ़ती या घटती ि़ै।'[1397]

र्ैभर्तन अपनेर्त के सर्थनश र्ें तनश्चयात्र्क धारणाएं उपजस्थत करते िैं। ब्दद सवदशा पवद्यर्ान रिता ि़ै, क्योंकक इसका उच्चारण केवल इसे औरों के प्रतत व्यक्त करने के प्रयोर्न से िी िोता ि़ै। अपवद्यर्ान वस्तु के व्यक्त करनेके भलए कोई प्रयल निींिोता। कफर, र्ब 'गाय' ब्दद उच्चारण ककया र्ाता ि़ै तो सदा िी इसे पिचान भलया र्ाता ि़ै कक यि विी ब्दद ि़ै। लोग 'गाय' ब्दद को तीन या चार बार उच्चारण करने की बात किते ि ैं, वे ऐसेतीन या चार ब्ददों को उच्चारण करने की बात निींकिते। यि ब्दद एकत्व अथवा तनत्यस्वरूप का प्रततपादन करता ि़ै। अतनत्य वस्तुओं के नार् के कारण पाए र्ाते िैं, ककन्तु िर्ें ब्ददों के पवनार् के ऐसे कारण

स्र्रण कराते िैं, तो यि सूतृत का पवषय आटे से बनी ि़ै कक कोतययों द्वारा अभभर्त अभभहितान्ययवाद के अनुसार, अथशका ज्ञान ब्ददों के कारण िोता ि़ै। ककन्तु यि ज्ञान स्र्रण अथवा बोधग्रिण के कारण निीं, बजल्क योतन के कारण ि़ै। ब्दद अद्यथों को प्रकट करते िैं, र्ो संयुक्त िोनेपर एक वाक्य का ज्ञान देते िैं।

1397 1:1,6-17 ।

निींभर्लते। वायु से उत्पन्न ध्वतन उस ब्दं से भभन्न ि ै जर्से ेव्यक्त करने के भलए इसका उपयोग िोता ि ै। इसके अततररक्त, िर् ें अनेकों वैहदक न्त्र ऐसे भर्लते ि ैं र्ो ब्दं के तनत्यस्वरूप पर बल देते िैं।'[1398]

ब्दं वगों (र्ाततयों) को प्रकट करते िैं, पवभर्ष्ट व्यजक्तयों को निीं। ब र् ि र् किते िैं कक 'एक गाय लाओ तो ि र्ारा अभभप्राय ककसी पवभर्ष्ट गाय से निींिोता, बजल्क ऐसे ककसी भी परु से िोता ि ै जसर्ें गाय के सर्ान लक्षण पवद्यर्ान िों। ब्दं वग शअथवा रूप को प्रकट करता ि ै, क्योंकक इसका उद्देश्य किया ि ै।[1399] यहद ब्दों द्वारा व्यजक्त-पवर्ेषों का द्योतन िोता, तो 'गाय' के सर्ान एक र्ाततगत भाव असम्भव िो र्ाता। कफर, एक ब्दं सब व्यजक्तयों का द्योतन निींकर सकता, क्योंकक उस अवस्था र्ें इसर्ें इतनी िी क्षर्ताएं ं अन्ततनहशित रिनी चाहिए जर्तने कक व्यजक्त-पवर्ेष िैं। यि व्यजक्तयों के सर्िू का भी द्योतक निींिो सकता, क्योंकक उस अवस्था र्ें यि पररवतततश िोनेलगेगा, क्योंकक सर्िू र्ें से कुछ व्यजक्त नष्ट िो र्ाएंगे और कुछ उसर्ें नये आ र्ाएंगे। कफर, यहद ब्दं का तात्पय शएक व्यजक्त से िी िो तो ब्दं का अथ शके साथ तनत्य सम्बन्ध निींिो सकता और किया असम्भव िोगी, क्योंकक यि तनश्चय करना कहठन िोगा कक ककस व्यजक्त-पवर्ेष से तात्पय शि ै। यहद द्योततत पदाथ शव्यजक्त-पवर्ेष िों, तो क्योंकक वे सवत्रश उपजस्थत निीं ंिैं, इसभलए ब्दं और उसके अथ शर्ें कोई सम्बन्ध निीं िो सकता। आकृतत तनत्य ि ै और इसभलए यि तनत्य र्त् ्के साथ सम्बन्ध रखने े योग्य ि ै। ब्दं और उनके अथ शतो तनत्य िैं, ककन्तु इस बात की सम्भावना ि ै कक िर् ें उनके पवर्षय र्ें रांत धारणाएं ं िों, और र्ानवीय उच्चारण त्रुहटपूण शिो सकते िैं ककन्तु वैहैदक ब्दों के पवर्षय र्ें ऐसी सम्भावना निीं।

र्ीर्ांसक उस र्त का पवरोध करते िैंर्ो वेदों को ईश्वर की कृतत र्ानता ि ै। उनका र्त ि ै कक वेदों का स्वाधधकार से तनत्य अजस्तत्व ि ै। ईश्वर, र्ो अर्रीरी ि ै, वाग् ्इजन्द्रय के अभाव र्ें वेद के ब्दों का उच्चारण निीं ं कर सकता। यहद यि किा र्ाए कक वि हदव्य वाणी को प्रकट करने के भलए र्ानवीय रूप धारण कर लेता ि ै, तो वि भौततक र्ीवन के सब प्रततवन्धों के अधीन िो र्ाएगा और उसकी वाणी र्ें कोई प्रार्ाणणकता न रिेगी। इसके अततररक्त, दैवीय अथवा र्ानवीय रचतयता (वेदों के) िोने की कोई परम्परा भी निीं। यिांतक कक र्त् ्की सृजष्ट-सम्बन्धी प्रकल्पना के आधार पर भी वेदों को इन अथों र्ें तनत्य र्ाना र्ा सकता ि ै कक र्त् ्का स्रष्टा िर एक र्न्वन्तर के प्रारम्भ र्ें स्र्तृत सेपवगत सृजष्ट के वेदों को कफर से दोिराता ि ै, और उनकी भर्क्षा देता ि ै।'[1400]

1398 1:18-23 ।

1399 आकृततस्तु कियाथत्शवात् ्(1/3, 33) ।

1400 एवं ंखष्टुवेदपूवत्शवं साध्यतां न ककजञ्चदिुरं भवतत, तेन सत्यपप सगे, सुप्तप्रबुद्धन्यायेन अनाहदरव वेदव्यविार: (न्यावरलाकर) नेयातयक र्ीर्ांसा के र्त का पवरोध करते िैं। (1) वेदे का कोई र्रीरधारी रचतयता िोनेकी सत्यग र्ें सम्भव ि ैपवश्व के पपछलेप्रलयकाल र्ें व्याघात आ गया िो। (2) यि भसद्ध करना असम्भव िोगा कक ककसी को भी कभी भी ऐसे रचतयता का स्र्रण निींरिा। (3) वेदों के वाक्यों का रूप वैसा िी ि ै र्ैसाकक िुन्न वाक्यों का िोता ि ै। (4) गुरु से भर्ष्य को पिुंचने की वेद की र्ो वतर्शान पररपाटी ि ै उसके आधार पर ककया गया यि अनुर्ान कक यि पररपाटी अवश्य िी अनाहदकाल से चली आई ि ै, हटक निींसकता, क्योंकक यि चीृ इसी तरि अन्य ककसी पुस्तक के सम्बन्ध र्ें भी लागू िोू सकती ि ै। (5) वस्तुत: वेद एक र्ोध रचतयता का बना िुआ सर्झा र्ाता ि ै। (6) ब्दं तनत्य निीं, और ब र् ि र् अक्षरों को पिचानते ि ै ये बिी िैं र्ो पिलेसुने थे तो यि न तो तादात्म्य को और न तनत्यत्व को िी भसद्ध करता ि ै, बजल्क क यिांभसद्ध करता ि ै कक ये उसी वग शके िैं जर्स वग शके ब्दं िनेंपिलेसुने थे। देणखए सवसंशग्रि 12 ।

पवरोधरूप र्ें कभी-कभी ऐसा किा र्ाता िै कक वेदे र्नुष्यों के बनाए िुए िैं, क्योंकक उनके रचतयता ऋपर्षयों के नार् र्ंत्रों के प्रारंभ र्ें हदए गए िैं. इसके उिर र्ें किा र्ाता िै कक ऋपर्षयों ने र्न्त्रों का पवर्ेर्ेष अध्ययन ककया और औरों को उनकी भर्क्षा दी। वेदों की रचना निींिुई िै, इन अथों र्ें कक उन पर न तो ईश्वर का और न ऋपर्षयों का िी तनयन्त्रण िै। ऋपर्ष अधधक से अधधक सत्यों का बोध ग्रिण करते िैं तथा उनका प्रसारण करते िैं ।'[1401] वेदों की प्रार्ाणणकता की इस आधार पर आलोचना की र्ाती िै कक उनर्ें ऐततिाभसक नार्ों का उल्लेख भर्लता िै। उिर र्ें यि किा र्ाता िै कक ऋचाएंप्राकृततक तनत्य घटनाओं का प्रततपादन करती िैं। उनर्ें आए िुए नार् सावभशौभर्क उपयोग के भलए िैं और उनका कोई ऐततिाभसक सन्दभ शनिींिै। पवश्वाभर्त्र का अथ शिै पवश्वर्ात्र का भर्त्र, और इसका ककसी ऐततिाभसक पात्र से तात्पय शनिींिै।

7. उपर्ान प्रर्ाण

सादृश्य सम्बन्धी तनणयश उपर्ान प्रर्ाण के द्वारा िोते िैं। र्ब िर् ककसी पदाथ शको देखते िैं और उसे देखकर अन्य पदाथ शका स्र्रण करते िैं, तो इस देखे गए पदाथ शके साथ स्र्तृ पदाथ शके सादृश्य का र्ो ज्ञान िर्ें िोता िै वि उपर्ान प्रर्ाण के साधन से िुआ किलाता िै। वि गाय र्जसेर्ैंनेर्ें देखा था इस गाय के सर्ान िै र्जसेर्ें अब देखता िूँ।[1402] उपर्ान द्वारा प्राप्त ज्ञान उस ज्ञान से भभन्न िै र्ो प्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त िोता िै, क्योंकक िर् स्र्तृत द्वारा ककसी ऐसी वस्तु का बोध ग्रिण करते िैं र्ो इजन्द्रयों के सम्पकश र्ें निींिै, क्योंकक र्जस सर्य गवय हदखाई हदया उस सर्य गाय निीं देखी गई। यि अनुर्ान से भभन्न िै, क्योंकक अनुर्ान के भलए आवश्यक अवयवों र्ें से एक अवयव भी यिांउपजस्थत निीं िै।

8. अथापशपि

र्िां ककसी पदाथ शके प्रत्यक्ष की व्याख्या करने के भलए एक अन्य वस्तु की कल्पना आवश्यक िो तो यि 'अथापशपि' का पवर्षय िै। यि अनुभव से भभन्न िै, क्योंकक इस पवर्षय र्ें दृजष्टगत तथ्यों के अन्दर संर्ंय का एक अंर् प्रपवष्ट िोता िै, जर्सका तनराकरण अन्य वस्तु की कल्पना के बबना निींिो सकता। र्ब तक कल्पना निीं की र्ाती, देखे गए तथ्य असंगत अथवा संहदग्ध बने रिते िैं। अनुर्ान र्ें लेर्र्ात्र संर्य के भलए भी स्थान निीं िै। र्िां प्रभाकर का यि र्त िै, र्िांकुर्ाररल का किना िै कक र्ो दो तथ्य प्रकट रूप र्ें असंगत प्रतीत िोते िैं उनके सर्न्वय र्ें अथापशपि सेसिायता भर्लती िै। अनुर्ान र्ें, सुतनजश्चत तथ्यों के बीच इस प्रकार की कोई असंगतत निींिोती। कुर्ाररल का पवचार अधधक तनदोर्ष िै, क्योंकक देखे गए तथ्य के पवर्षय र्ें यहद कोई संर्य िै

[1401] देणखए, र्ीर्ांसासूत्र ,1/1 21-21 । वेदों के अपौरुर्षेयत्व के पवर्षय र्ें पूवशर्ीर्ांसा तथा वेदान्त के पवचार लगभग एक सर्ान िै । तुलना कीजए भार्तो : 'पुरुपास्वातन्यर्ात्रणपीरुपेयत्वंरपवयन्ते र्ैधनीचा तच्चास्र्ाकर्षप सर्ानर्.. (1/1, 3)

[1402] र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 208।

तो वि अथापशपिपरक तकश की प्रार्णणकता को संहंदग्ध बना देगा। र्ब तक िर्ें यि तनश्चय न िो कक अरु्क पुरुर्ष र्ीपवत िै और घर पर निीं िै, तब तक िर् यि कल्पना निीं कर सकते कक वि किीं ◌और िै।

9. अनुपलजब्ध

वृपिकार का अनुसरण करते िुए, कुर्ाररल अनुपलजब्ध को ज्ञान का एक स्वतन्त्र साधन स्वीकार करता िै।"[1403] सादृश्य का अभाव िी असादृश्य िै और अनुपलजब्ध का भसद्धान्त इसका सर्ाधान कर देता िै। िर् र्ब किते िैं, "इस स्थान पर घडा निीं िै", तो िर् घडे के अभाव का बोध ग्रिण करते िैं। अभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा निीं िो सकता, क्योंकक उसर्ें एक उपजस्थत पदाथ शके साथ इजन्द्रय-सम्पकश िोना आवश्यक िै, र्ो इस पवर्षय र्ें सम्भव निीं िै।[1404] अन्य प्रर्ाणों द्वारा भी अभाव का ज्ञान निीं िो सकता। अनुपलजब्ध ऐसेपदाथ शके सम्बन्ध र्ें जर्सका तनर्षेध बताया गया िै, ज्ञान का एक साधन (र्ानर्) ◌् िै। िर् खाली र्िं का प्रत्यक्ष करते िैं और घडे के अभाव के पवर्षय र्ें पवचार करते िैं। िर् कि सकते िैं कक घडे के अभाव का भी प्रत्यक्ष उसी प्रकार िुआ जर्स प्रकार

कक खाली र्िं का िुआ, तो भी, क्योंकक प्रत्यक्ष र्ें ककसी वास्तपवक पदाथ शका इजन्द्रयों के साथ सम्पकश तनहित िै, र् अनुपलजब्ध की किया को और प्रत्यक्ष ज्ञान को एक सर्ान निीं र्ान सकते। िर् खाली र्िं को प्रत्यक्ष देखते िैं, उस घडे का स्र्रण करते िैं र्ो अनुपजस्थत िै, और तब िर्ें घडे के अभाव का ज्ञान िोता िै जर्सका प्रत्यक्ष की किया से कोई सम्बन्ध निीं िै। अभाव का ज्ञान अनुपलजब्ध के द्वारा िोता िै।[1405] अभाव को ज्ञान का एक पवध्यात्र्क पवर्षय किा गया िै।[1406] जर्से िर् खालीपन किते िैं, वि ऐसा स्थान िै जर्से ◌ेककसी पदाथ शने घेर निीं रखा िै।[1407] प्रभाकर अनुपलजब्ध को ज्ञान का स्वतन्त्र साधन स्वीकार निीं करता। ककसी ऐसी वस्तु के अभाव का बोध र्ो यहद उपजस्थत िोती तो प्रत्यक्ष का पवर्षय िोती। उसके अप्रत्यक्ष से (न हदखाई देनेसे) अनुर्ान ककया र्ाता िै। र्ब िर् केवल र्िं को देखते िैं और विांपर घडे को निीं देखते, तो िर् किते िैं कक घडा निीं िै। अधधष्ठान का बोध अपने-आप र्ें (तन्र्ात्रधध) अनुपलजब्ध का सर्ाधान करता िै।"[1408] कुर्ाररल इस पवचार से असिर्त िै। िर् केवल ररक्त स्थान को िी निीं, बजल्क उस स्थान को पुस्तकों तथा काग़ से भरपूर भी देख सकते िैं, ओर वि भी िर्ें घडे के अभाव का ज्ञान देगा। यहद िर् किें कक िर् घटरूप उपाधध से रहित स्थान का ज्ञान प्राप्त करते िैं, तो िर् तनर्षेधात्र्क ज्ञान को स्वीकार कर लेतेिैं। केवल भूभर् के प्रत्यक्ष ज्ञान से घडे के अभाव का ज्ञान उत्पन्न निीं िो सकता, क्योंकक र्िां ◌घडां िै विांभी भूभर् का प्रत्यक्ष तो िोता िी िै। इसभलए भूभर्

1403 1: 1,5 पर र्बर को देणखए।

1404 श्लोकवाततकश, अभाव-पररच्छेद ।

1405 र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 234 से आगे।

1406 श्लोकवाततकश, तनरालम्बनवाद, 40।

1407 वस्त्वन्तरैकसंसृष्टः पदाथःश र्ून्यताधचयः (112)।

1408 प्रभाकर के इस र्त की आलोचना खण्डनखण्डखाद्य , 4/21 , र्ें की गई िै।

 का प्रत्यक्ष ज्ञान अवश्य िी तनर्षेधात्र्क उपाधध से युक्त िोना चाहिए, और इसका तात्पय शयि ौकिक िर्ारे सर्क्ष
पिले ोसे तनर्षेध का भाव उपजस्थत िै।

10. प्रभाकर की ज्ञान-पवर्षयक प्रकल्पना

प्रभाकर बत्रपुटीसंपवत् ्का पक्षपोर्षक िै, जर्नके अनुसार ज्ञान के प्रत्येक कर् शर्ें ज्ञाता, िोग तथा ज्ञान तीनों एक िी सर्य र्ें प्रस्तुत रिते िैं। ज्ञान अपनेको तथा ज्ञाता और बेप को भी प्रकट करता िै। 'र्ें इसे ोर्ानता िूँ' (अिर् ्इदं र्ानाभर्) इस चैतैन्य र्ें िर्ारे पास तीन प्रस्तुत पदाथ शिैं, 'र्'ैं अथवा पवर्षयी (अिपवपि), इसे ोअथवा पवर्षय (पवर्षयपवपि), और चेतन अभभज्ञता (स्वसंपवपि)।'[1409] सर्स्त चैतन्य एक िी सर्य र्ें आत्र्चैतन्य भी िै और पवर्षयचैतन्य भी।'[1410] सब बोधों र्ें, चािे वे आनुर्ातनक िों या र्ाजब्दक, आत्र्ा र्न के कतृचश तथा सम्पकश से साक्षात् ्र्ानी र्ाती िै। बोध-सम्बन्धी प्रत्येक किया र्ें आत्र्ा का तो सदा सीधा और तात्काभलक बोध िोता िै, ककन्तु अनात्र् अथात्श ्पवर्षय (पदाथ)श का सदा सीधा और तात्काभलक बोध निींिोता। स्र्ृत और अनुर्ान र्ें पवर्षय (पदाथ)श सीधा चैतन्य के सर्क्ष प्रस्तुत निींककया र्ाता, यद्यपप परोक्ष ज्ञान र्ें पदाथ शसीधा चैतन्य के सर्क्ष प्रस्तुत निींककया र्ाता, तो भी परोक्ष ज्ञान स्वयंसीधा चैतन्य के सर्क्ष प्रस्तुत ककया र्ाता िै।[1411] बोध भी सीधा ज्ञान के द्वारा आत्र्ज्ञात िै। बोध को र्ो प्रकार्-स्वरूप िै, अन्य ककसी वस्तु की आवश्यकता व्यक्त िोनेके भलए निींिोती। इसभलए बोध को स्वतोज्ञात किा र्ाता िै। बोध प्राप्त करने वाली आत्र्ा तथा ज्ञात पदाथ श प्रकार्स्वरूप निीं, और इसभलए उन्िें अपनी अभभव्यजक्त के भलए अपनेसे अततररक्त ककसी ऐसी वस्तु की आवश्यकता रिती िै र्ो प्रकार्स्वरूप िो। बोध स्वतः प्रकाभर्त िैं और उनका प्रत्यक्ष पदाथों की भांतत निीं िोता।[1412] उनका बोध अन्य बोधों से निींिोता। वे कभी भी पवर्षय (प्रर्ेय) निीं, और इसभलए सुख-दुःख की भांतत उनका बोध निीं िोता। उनका बोध बोधों के रूप र्ें िोता िै, पवर्षयों के रूप र्ें निीं।[1413] यहद बोधों का बोध प्रर्ेय पदाथों के रूप र्ें िो, तो किर एक बोध को अपने बोध के भलए अन्य बोध की आवश्यकता िोगी, और इस कुछ पाश्चात्य पवचारकों का सुझाव भी इसी र्त की ओर िै। िैभर्ल्टन के अनुसार, ज्ञान की किया को इस प्रकार के सूत्र

1409 र्ें अभभव्यक्त ककया र्ा सकता िै, "र्ैं र्ानता िूूँ।" चैतन्य की किया को इस प्रकार के सूत्र र्ें अभभव्यक्त ककया र्ा सकता िै, "र्ैं र्ानता िूूँ कक र्ें र्ानता िूूँ"। परन्तु जर्स प्रकार िर्ारे भलए र्ानना असम्भव िै पवना साथ-साथ यि र्ानेकक िर् र्ानते िैं, उसी प्रकार बबना िर्ारे वस्तुतः र्ानेिुए यि र्ानना भी असम्भव िै कक िर् र्ानते िैं। वैररस्को से ोभी तुलना कीजए "र्ें र्ान सकूं, इसके भलए यि आवश्यक िै कक र्ें अपनेचैतन्य से अभभज्ञ िोऊं, कक र्ें यि र्ान सकूं कक र्ें र्ानता िूूँ।" "पररणार् यि तनकलता िै कक चैतन्य की किया अपनी और पवचार करनेवाले पवपवी की यचाथतशा को भसद्ध करती िै" (नो दाईसैल्फ, पृष्ठ 5)

1410 क्योंकक प्रगाढ़ तनद्रा र्ें िर्ें पदाथों का कुछ ज्ञान निीं िोता, इसभलए िर्ें आत्र्ा का ज्ञान निीं िोता यद्यपप यि पवद्यर्ान रिती िै। यहद प्रगाढ़ तनद्रा र्ें आत्र्ा पवद्यर्ान न रिती, तो िर् तनद्रा से र्ागने ोपर अपने-आपको भी न पिचान सकते ो(प्रकरणपधचका, पृष्ठ 59)

1411 विी, पृष्ठ 56।

1412 तुलना कीजए इसके साथ एलेक्र्ेण्डर द्वारा ककए गए भोग तथा पवचार के भेद की (स्पेस टाइर् एण्ड डेवटी, खण्ड ।, पृष्ठ 12-13)।

1413 संपवियेव हि संधचत् ्संवेद्या न संवेद्यतया ।

भसलभसले ेका किीं ंअन्त न िोगा। प्रभाकर अनुभव करता िै कक उसकी प्रकल्पना प्रकटरूप र्ें बर्र के इस कथन से संगत निीं िै कक ज्ञान ग्रिण करने र्ें िर् पदाथों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते िैं, बोधों का निीं, और इसभलए वि तकश उपजस्थत करता िै कक यद्यपप बोध स्वतः प्रकाभर्त िैं, तो भी उनकी उपजस्थतत अनुर्ान से र्ानी र्ाती िैं। अनुर्ान इस तथ्य से कक िर्ें पदाथ शका बोध िुआ, िर्ें बतलाता िै कक बोध का अजस्तत्व िै। यि बोध एक श ्अपनी पूणतशा र्ें र्ाना गया पदाथ शनिीं िै।

प्रर्ेय िै अथाशा ्सत्यज्ञान का पवर्षय िै, ककन्तु यि संवेद्य अथात् प्रभाकर के अनुसार, संवेद्य की अवस्था िर्ारे सार्ने केवल तभी िोती िै र्बकक पदाथ शका रूप अभभव्यक्त िो, और यि इजन्द्रयों द्वारा प्रत्यक्ष र्ानेगए पदाथों के पवर्षय र्ें िी सम्भव िै। क्योंकक बोधों का कोई रूप निीं, इसभलए उनका प्रत्यक्ष निीं ंिो सकता। उनकी उपजस्थतत केवल अनुर्ान द्वारा र्ानी र्ाती िै। अनुर्ान पदाथ शके रूप र्ें अथवा वस्तुतत्त्व का ज्ञान निीं कराता, बजल्क केवल इसके अजस्तत्व का ज्ञान कराता िै।'[1414] प्रभाकर और कुर्ाररल, दोनों स्वीकार करते िैं कक बोध, र्ो आत्र्ा के पररणार् िैं, अनुर्ान के पवर्षय िैं।

ज्ञान की प्रार्ाणणकता का तनणयश ककसी बाह्य वस्तु द्वारा निीं िोता। बाह्य पदाथों की पुनरावृपि का प्रश्न निीं ंिै। बोध की प्रार्ाणणकता उस बल से लक्षक्षत िोती िै जर्ससे ेसर्स्त प्रत्यक्ष ज्ञान िर्ें बाह्य र्गत् ्र्ें किया करने की प्रेरणा करता िै। सर्स्त ज्ञान िर्ारे अन्दर इस पवभर्ष्ट प्रवृपि को उत्पन्न करता िै और ककसी परवती अनुभव की र्ध्यस्थता की प्रतीक्षा निीं करता। एक बोध र्ो एक पदाथ शका ज्ञान ग्रिण करता िै, अप्रार्ाणणक निीं िो सकता। यहद बोध अपने र्ें प्रार्ाणणक न िोते ेतो िर् अपने बोधों र्ें पवश्वास न कर सकते। प्रार्ाणणकता का भाव र्ौभलक िै और प्राप्त ककया िुआ निीं िै। र्बकक ज्ञान स्वतः प्रकाभर्त िै, यि प्रार्ाणणकता ज्ञान के साधनों से प्राप्त की िुई िै। ज्ञान की अवस्थाएंभी उसकी प्रार्ाणणकता-सम्बन्धी चेतना को उत्पन्न करती िैं।[1415]

प्रभाकर ज्ञान को प्रार्ाणणक तथा अप्रार्ाणणक रूप र्ें पवभक्त करता िै। अनुभूतत अथवा साक्षात् ्ज्ञान प्रार्ाणणक िै, और स्र्ृतत अप्रार्ाणणक िै। "प्रार्ाणणक बोध अथवा ज्ञान स्र्रण से भभन्न िै, क्योंकक स्र्रण को पूवज्ञशान की आवश्यकता िोती िै।"[1416] पूवज्ञशान पर तनभरशता िी स्र्ृतत की अप्रार्ाणणकता का कारण िै। ऐसे बोध र्ो पवर्षय से परोक्षरूप से सम्बन्ध रखते िैं, अप्रार्ाणणक िैं। प्रभाकर और कुर्ाररल, दोनों ने िी पवर्षय के पूवज्ञशान के अभाव को प्रार्ाणणक ज्ञान की कसौटी र्ाना िै, यद्यपप कुर्ाररल असंगतत्यों के अभाव पर भी बल देता िै। सर्स्त ज्ञान प्रार्ाणणक िै और िर्ें कर् शकरने की प्रेरणा करता िै।

जर्सेपवपययश किा र्ाता िै वि भर्थ्याज्ञान निीं िै। यहद सर्स्त बोध स्वप्रकार् िै और इसभलए यथाथ श िैं, तो 'यि चांदी िै' इस तनणयश र्ें र्ो चेतना अभभव्यक्त िोती िै वि भी रांत निीं िो सकती। र्ब िर् सीप को भूल

1414 नाप्यनुर्ाना रूपग्रिण सन्र्ात्रग्राह्यनुर्ानं भवतत ।

1415 गणेर् अपनेतत्त्वधचन्तार्णण नार्क ग्रन्थ र्ें इस र्त की आलोचना इस आधार पर करता िै कक यहद र्ान प्रार्ाणणक ज्ञान की सार्ान्य अवस्थाओं से उत्पन्न िोता, तो अप्रार्ाणणक ज्ञान र्ें भी प्रार्ाणणक ज्ञान र्त, स्पोंकक दोनों की विी अवस्थाएं िैं। कफर यहद ज्ञान स्वयंप्रकट िोता तो संहदग्ध बोध की व्याख्या करना कहठन िोता।

1416 प्रर्ाणर् ्अनुभूततः सा स्र्ृतेरन्या न प्रर्ाणं स्र्ृतः पूवप्रशततपपिव्यपेक्षणात् ्(प्रकरणपधचका, पृष्ठ 42; झा: चाकरीभांता, 2)।

 से चांदी सर्झ लेतिैं तो यि भूल उसके अन्तगतश दो भभन्न-भभन्न तत्त्वों र्ें अथात्श ्चांदी के पवचार और 'यि' के

संस्कार र्ें-भेद न करने के कारण िै। िर् प्रत्यक्ष देखे ेगए तथा स्र्रण ककए गए तत्त्वों को एक र्नोपवकृतत र्ें भर्धश्रत कर देते िैं। बोध का पवर्षय वि वस्तु िै र्ो चैतन्य के सर्क्ष प्रस्तुत की र्ाती िै। 'वि चांदी िै' इसर्ें चैतन्य को र्ो प्रस्तुत ककया गया िै, वि 'चांदी' िै, 'सीप' निीं। िर् सीप का बोध चांदी के रूप र्ें निीं ंकरते े क्योंकक सीप कभी भी चैतन्य के अन्दरा प्रपवष्ट निीं ंिुआ। जर्स पवचार का स्र्रण ककया र्ाता िै वि तथ्य के अनुकूल निींिोता क्योंकक 'यि चांदी िै' इस प्रकार के तनणयश का, र्ब ज्ञाता सीप के टुकडे को उठाता िै तो 'यि तो केवल एक सीप का टुकडा िै', इस तनणयश द्वारा तनराकरण िो र्ाता िै। यि भूल प्रस्तुत तथा स्र्तृ तत्त्व र्ें भेद न रख सकने, अथात्श ्अख्यातत, के कारण िै। प्रत्यर् देखा गया तत्त्व 'यि' और स्र्रण ककया गया तत्त्व 'चांदी' सत्य िैं, केवल दोनों र्ें र्ो पर िै उसकी 'अख्यातत' िै। यि अख्यातत ज्ञानेजन्द्रयों के कुछ दोर्षों के कारण िै और सीप तथा चांदी के सादृश्य के संकेंत के कारण िै, र्ो पूवज्ञशात चांदी के र्ानभसक संस्कार को र्गा देता िै। प्रस्तुत तथा स्र्तृ तत्त्वों के भेदे की यि अनभभज्ञता िर्ें किया के प्रतत अग्रसर करती िै। वास्तपवक अनुभव र्ें चांदी के प्रार्ाणणक तथा अप्रार्ाणणक बोध र्ें कोई भेद निीं, क्योंकक कता शर्ें दोनों िी उसी एक प्रकार की कायशीलता को र्न्र् देते िैं।'[1417]

अन्य सम्प्रदायों ने इस प्रकल्पना की आलोचना की िै। "प्रत्यक्षीकृत तथा स्र्तृ बोध दोनों चैतन्य र्ें प्रकट िोते िैंया निीं? यहद निींप्रकट िोते ेतो वे पवद्यर्ान निीं और यहद प्रकट िोते िैं तो दोनों के भेद का प्रत्यक्ष न िोना असम्भव िै।"[1418] यि प्रकल्पना इस तथ्य की व्याख्या करने र्ें असर्थ शिै कक र्ब तक भूल पवद्यर्ान रिती िै, तब तक चैतन्य के सर्क्ष वास्तपवक प्रस्तुतत िोती िै, केवल स्र्तृतरूप आकृतत निींिोती। स्र्तृतप्रर्ोर्ष का कारण बताना कहठन िै, र्ो साक्षात् ्प्रस्तुतत की रांतत को र्न्र् देता िै।'[1419] गंगेर् का तकश िै कक भेद की अचेतनता उस कियार्ीलता का कारण निींिो सकती जर्सकी ओर र्नुष्य प्रेररत िोता िै। प्रस्तुत तत्त्व, अथात्श ्सीप का ज्ञान, जर्सकी प्राजप्त के भलए र्नुष्य की इच्छा निीं, पवरुद्ध प्रततकिया की ओर ले र्ाएगा और स्र्तृ चांदी का ज्ञान कियार्ीलता की ओर ले र्ाएगा, तथा दोनों के र्ध्य भेदेपवर्षयक अचेतनता का पररणार् तनश्चेष्टता िोगा। यि सर्झना कहठन िै कक ककस प्रकार अचेतनता ककसी को कियार्ीलता के भलए प्रेररत कर सकती िै।[1420]

प्रभाकर का यि र्त कक प्रत्येक ज्ञान की किया र्ें पवर्षय, पवर्षयी और पवर्षय का ज्ञान व्यक्त िोते िैं, र्नोपवज्ञान के साक्ष्य के अनुकूल निीं। र्ब िर् ककसी पवर्षय (पदाथ)श को र्ानते िैं तो इसकी कोई आवश्यकता निीं किक साथ-साथ ज्ञान की पवर्षय-वस्तु र्ें र्ेरा भी उल्लेख रि। यहद व्यजक्त दूपूर्षत र्नोवृपि का निीं तो र्ब िर् तनणयश से किते िैं कक "सीप पीतवण शिै" तो इसर्ें स्र्तृत का कोई अंर् सर्ापवष्ट निीं। यहद िर् सीप के

1417
अन्दर पीलेपन को देखतिैं, भले िी यि आंख के दोर्ष से िी क्यों न िो, तो यि तनणयश प्रार्ाणणक िै, र्ब तक कक आगेके बोध से इसका प्रत्याख्यान निींिोता।

1418 देणखए पजण्डत-न्यायसूत्र, खण्ड 12, पृष्ठ 109।

1419 पववरणप्रर्ेयसंग्रि, 1/1

1420 तत्त्वधचन्तार्णण ।

सम्भावना यिी िै कक इसरें् अि का कोई उल्लेखे सजम्रभलत न िोगा। प्रभाकर भूल से परवती पवचार के साक्ष्य को िी प्रत्यक्ष का साक्ष्य र्ान लेता िै। र्ब कोई व्यजक्त अपनेपदाथपशवर्षयक ज्ञान के पवर्षय रें् पवचार करता िै तो उसके पवचार रें् पवर्षय और पवर्षयी दोनों उपजस्थत िैं। िर् ककसी वस्तु के पवर्षय रें् ज्ञान वस्तु के रूप रें् तब तक पवचार निींकर सकते र्ब तक कक उसके साथ न झाला का रिे। परन्तु कोई कारण निीं िै रें् उसके ज्ञात वस्तु के रूप रें् पवचार ककए बबना पवचारे कक क्यों कोई व्यजक्त वस्तु के पवर्षय रें् पदाथों के केवल तनरीक्षण से एक उच्चतर जस्थतत को प्रस्तुत करतीलन की किया र्ो पवचार के पवर्षय रें् बताती िै। प्रभाकर का पवश्वास िै कक िर् पवना करती िै, िरें् ज्ञान के उपलक्षणों र्ान सकते।'[1421] प्रतीत िोता िै कक वि "र् ैंर्ानता िंूू" और "र् ैंर्ानता िै कक र् ैं र्ानता िूँ" भेद िै उसे ेस्वीकार निींअभभव्यजक्तयों के रूप रें् प्रकट िोंगे,े यथाथ शपदाथों के रूप रें् निीं, और इस प्रकार िर् पवर्षयी पवज्ञानवाद रें् आ पडते िैं।[1422] पवर्षयीपवज्ञानवाद रें् बचने ेके भलए प्रभाकर यि का प्रर् पवर्षयी ैकिक स्वत::प्रकाभर्त बोध भी अनुर्ान सेर्ानेर्ाते िैं। र्वर के इस कार्त प्रकट करता का निींअपपतु पदाथों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त ककया र्ाता िै, हटप्पणी करते िुए यि किता िै कक इससे पररणार् यि तनकलता िै कक बोधों का ज्ञान केवल अनुर्ान सीैता िै।[1423] ककन्तुयि बोधों के स्वत:प्रकार्त्व का पवरोध करता िै। र्ाभलकनाथ का सुझाव िै कक अनुर्ान से र्ो बोध िोता िै वि र्न का आत्र्ा के साथ सम्पकश िै, र्ो चैतन्य को उत्पन्न करता िै।'[1424] यहद यिी सब कुछ िै, जर्सका अनुर्ान ककया र्ाता िै, तो यि किना अनुधचत िै कक बोधों का अनुर्ान ककया र्ाता िै। र्ब तक यि किा र्ाएगा कक बोध स्वतः प्रकाभर्त िैं, पवर्षयीपवज्ञानवाद का तब तक भय बना िी रिेगा। प्रभाकर िरें् यि निींबताता कक ज्ञान का स्वरूप क्या िै, केवल यिी किता िै कक स्वत:प्रकार् इसका लक्षण िै। वि ज्ञान की परर्सिा पर बल देता िै और आनुर्ंषंधगक रूप रें् यि प्रततपादन करता िै कक स्वयं ज्ञान के अन्दर पवर्षयी तथा पवर्षय का अथ शककस प्रकार आ र्ाता िै। यहद उसनेइस प्रकल्पना के उपलक्षणों का पररष्कार ककया िोता तो वि अपनी द्वैतपरक पूवकशल्पनाओंको त्याग देनेकी ओर बढ़ सकता था।

11. कुर्ाररल की ज्ञानपवर्षयक प्रकल्पना

ज्ञान एक गतत िै र्ो आत्र्ा की कियार्ीलता सेउत्पन्न िोती िै और र्ो वैर्षतयक वस्तुओं के चैतन्य की उत्पपि रें् पररणत िोती िै। ककसी पदाथ शका बोध आगे ेउक्त बोध के बोध रें् पररणत न िोकर पदाथ शकी प्रकटता रें् पररणत िोता िै।[1425] ककसी भी ज्ञान की किया रें् चार अवयव िोते िैं : (1) ज्ञाता; (2) ज्ञेय; (3) ज्ञान का साधन

[1421] इटली के पवचारक बोनाटेली की भी सम्रतत यि िै कक ककसी तथ्य के ज्ञान के अन्दर तथ्य का ज्ञान को ज्ञान का तथ्य एकसाथ रिते िैं।

[1422] लोकवाततकश, र्ून्यवाद, 233।

[1423] अतः भसद्धर्ानुर्ातनकत्वं बुद्धेः ।

[1424] प्रकरणपधचका, पृष्ठ 63।

[1425] लना कीजए इटाभलयन पवचारक रॉसभर्तन के साथ, र्ो किता िै कक यद्यपप बोध की प्रत्येक ककया िरें् पदाथ शका ज्ञान करतपवधान पवचारक रासस्का अन्त िो र्ाता िै, पर कोई भी किया िरें् अपना ज्ञान सीं ेकराती। देणखए कफलासोकफकल ररव्यू, र्ुलाई 1922, पृष्ठ 400।

 (ज्ञानकरण); और (4) ज्ञान का पररणार् (ज्ञातता)। कुर्ाररल के अनुसार, बोध का सीधा प्रत्यक्ष निीं

ीिता, बजल्क

वि बोध से उत्पन्न प्रकटता (ज्ञातता) से अनुर्ान ककया र्ाता िै।'[1426] बोध की प्रत्येक किया र्ें द्रष्टा तथा दृश्य वस्तु के र्ध्य एक सम्बन्ध िोर्ें कता शकी किया का अनुर्ान करने योग्य बनाता िै, र्ो ज्ञान के पवर्षय र्ें बोध िै। ज्ञाता तथा ज्ञेय के सम्बन्ध से बोच का अनुर्ान िोता िै, जर्सका ज्ञान र्ानस-प्रत्यक्ष से िोता िै। यहद यि दूसूरा अवयव, र्ो ज्ञाता और ज्ञेय की र्ध्यस्थता करता िै, न िोता तो पदाथ शके साथ आत्र्ा का सम्बन्ध न िो सकता। ज्ञान के अन्ततनहशित पवर्षयी तथा पवर्षय के पवभर्ष्ट सम्बन्ध से बोध के अजस्तत्व का अनुर्ान ककया र्ाता िै। चैतन्य को यिांएक प्रकार की तृतीय वस्तु र्ाना गया िै, र्ो आत्र्ा और अनात्र् का सम्बन्ध र्ोडती िै। जर्नके र्त र्ें सर्स्त बोध स्वप्रकार् िैं वे भी यि सिो करते िैं, कक ज्ञान के अन्तगतश र्ो आत्र्ा और अनात्र् का सम्बन्ध िै, वि र्ानस-प्रत्यक्ष का पवर्षय िै। "घडा र्ेरे द्वारा र्ाना गया", िर् ऐसा निीं कि सकते, र्ब तक कक िर् ज्ञान प्राप्त करनेवाले आत्र्ा तथा ज्ञान पदाथ शके सम्बन्ध को और बोध तथा बोध के पवर्षय के पारस्पररक सम्बन्ध को न र्ानें।'[1427] यहद बोध अथवा चैतन्य स्वतःप्रकार् िैं, और यहद पदाथ श(पवर्षय) चैतन्य से व्यक्त ीिता िै, तो चैतन्य और पदाथ श(पवर्षय) के र्ध्य र्ो सम्बन्ध िै वि ककसके द्वारा व्यक्त िोता िै? दोनों के बीच का सम्बन्ध उसी बोध द्वारा अभभव्यक्त निींिो सकता, क्योंकक यि बोध के उत्पन्न िोने के साथ–ी-साथ अजस्तत्व र्ें निींआया। र्ब बोध उत्पन्न िोता िै तो यि अपनेपदाथ श(पवर्षय) को अभभव्यक्त करता िै, और इसभलए दोनों का सम्बन्ध उस बोध का पवर्षय निींिो सकता। क्योंकक बोध क्षणणक िोता िै, इसभलए िर् निींकि सकते कक यि पिले ेपदाथ शको व्यक्त करता िै और तब पदाथ शके साथ अपने सम्बन्ध को। न यिी किा र्ा सकता िै कक बोध और पदाथ शका सम्बन्ध स्वतः प्रकार् िै क्योंकक इसका कोई प्रर्ाण निींिै। इस प्रकार कुर्ाररल के अनुयायी पवरोध र्ें किते िैं कक आत्र्ा और पदाथ शके बीच का सम्बन्ध आभ्यन्तर (र्ानभसक) प्रत्यक्ष का पवर्षय िै, र्ो बोध के अजस्तत्व को भसद्ध करता िै।[1428]

बोध का अजस्तत्व बोध के द्वारा अपनेपवर्षय के अन्दर उत्पन्न ककए गए 'अततर्य' द्वारा भसद्ध ककया र्ा सकता िै।'[1429] इस अततर्य को उन्िें भी स्वीकार करना िोता िै र्ो ऐसा र्त रखते िैं कक ज्ञाता पदाथ शऔर बोध इन तीनों की अभभव्यजक्त चैतन्य द्वारा िोती (बत्रतयप्रततभासवाहदभभः)। कुर्ाररल, इसभलए कक वि बाह्य पदाथों की स्वतन्त्र सिा की रक्षा कर सके, बोध की स्वतःप्रकार्ता का तनर्ेषेध करता िै। न्यायवैर्ेपर्षक के अनुयायी उस र्त का पवरोध करते िैंजर्सके अनुसार यि किा र्ाता िै कक िर् बोध के द्वारा अपनेपवर्षय के अन्दर उत्पन्न ककए गए अततर्य सेबोध का अनुर्ान करते िैं। बोध को ऐसा न र्ानना चाहिए कक वि जर्सका

1426 ज्ञाततानुर्ेयं ज्ञानर्। ् और देणखए, 1/1 , । पर र्बर।

1427 अन्यथा र्ातो र्या घट इतत ज्ञानज्ञयसम्बन्धो ज्ञातृलेयसम्बन्धो या न व्यवितु शक्यते े। र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 138

1428 र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 158, 59।

1429 अथगशतो वा ज्ञानर्न्योऽततर्यः काल्पयतत ज्ञानर् ्(र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 159)

वोध कराता िै उसे ेपररवतततश कर देता िै। ज्ञात िोना पदाथ शका कोई गुण निीं, बजल्क एक प्रकार का स्वरूप सम्बन्ध िै र्ो पवर्षय और बोध के र्ध्य रिता िै।[1430]

कुर्ाररल के अनुयायी तकश करतिैं कक यहद बोध को प्रत्यक्ष-योग्य र्ाना र्ाए तो इसे ेभी एक पवर्षय (पदाथ)श र्ानना िोगा, जर्से र्ाननेके भलए एक अन्य बोध की आवश्यकता िोगी, और इस प्रकार इस िर् का बोध का पवषय िोनेके लक्षण के अततररक्त ज्ञातता और कुछ निीं। पवययज्ञानवाद की परर करना कहठन िै। यहद

1430

इसका अथ शयि िै कक पवर्षय का बोध उत्पन्न िोता िै, तो ज्ञानेजन्द्रयों तथा अन्य अवस्था को भी, र्ो चोध की उत्पन्न करती िैं, पवर्षय गानना िोगा। कफर, यि सम्भव निीं किक ककसी पवर्ष उस सर्य कोई धर् श(गुण) उत्पन्न िो सके बकक पवर्षय पवद्यर्ान निींनिींकक एक धर्शी यद्यपप इसेभूत और भपवष्यत् ्के पवर्षयों र्ें उत्पन्न निींककया र्ा सकता, जर्नका कक बोध िोता िै। इस प्रकार का तकश कक पवर्षय ज्ञाततारूपी नये धर् शको बोध उत्पन्न िोनेके बाद ग्रिण कर लेता िै, र्ैसेकक पाककिया चावल के अन्दर पक्वता का गुण उत्पन्न कर देती िै, हटक निींसकता, क्योंकक िर् पक्वता को चावल के अन्दर, र्ो तण्डुल (कच्चेचावल) से ओदन (पके िुए चावल) के रूप र्ें पररवतततश िुआ िै, स्पष्ट देखतिैं, ककन्तु पवर्षय के अन्दर िर् ज्ञातताारूपी धर् शको प्रत्यक्ष निीं देखते। इसके अततररक्त बर् ककसी पवर्षय का बांध िोता िै तो कि र्ाता िै कक उसके अन्दर एक पवभर्ष्ट धर्,श जर्सेज्ञातता किते िैं, उत्पन्न िोता िै, और इस प्रकार बर् इस ज्ञातता का बोध िो गया तो उसके अन्दर एक और ज्ञातता उत्पन्न िोगी, और इस प्रकार इस िर् का किीं अन्त न िोगा। यहद अनन्त पश्चाद्गतत से बचने के भलए ज्ञातता की स्वतःप्रकार् र्ान लें, तो क्यों न िर् बाध िी को स्वतःप्रकार् र्ान लें। यि युजक्त दी र्ा सकती िै कक पवर्षय का अजस्तत्व भूत, वतर्शान और भपवष्यत् ्तक रिता िै ककन्तुइसके अजस्तत्व का वतर्शान से सम्बन्धरूप र्ें चोध िोता िै। ज्ञातता पवर्षय की यि अवस्था िै र्ो वतर्शान से ेतनणीत िोती िै, और इस धचि को धारण करने से िी िर् योध का अनुर्ान करते िैं। ककन्तु ऐसा निीं, क्योंकक वतर्शान से ेतनणीत िोने का सम्बन्ध पवर्षय से िै और वि बोध से उत्पन्न निींिुआ िै, बजल्क केवल र्ाना गया िै। यहद यि तकश हदया र्ाए कक बोध का अनुर्ान पवर्षयों के बोध से िोता िै (पवर्षयसंवदनानुर्ेय ज्ञानर्)्, तो िर् पूछ सकते िैं कक बोध सर्वाय-सम्बन्ध से ेआत्र्ा र्ें रिता िै अथवा पवर्षय र्ें पवर्षय र्ें यि निींरि सकता, क्योंकक वि अचेतन िै। यहद यि आत्र्ा र्ें िै तो वि कौन-सा बोध िै जर्सका अनुर्ान पवर्षयों के बोध से िोता िै? यहद यि कि र्ाए कक पवर्षयों के बोध से ेजर्सका अनुर्ान िोता िै यि ज्ञाता कक ककया (ज्ञातृवूयापार) के रूप र्ें इसका कारण िै, तो रर् पूछ सकते िैं कक यि कारण तनत्य िै अथवा अतनत्य ? यहद अतनत्य िै तो उसका कारण क्या िै? यहद यि र्न के आत्र्ा के साथ सम्पकश के कारण िै, र्ो ज्ञानेजन्द्रय के पवर्षय के साथ सम्पकश र्ें सियक िोता िै, तो क्यों न इन सबको बांध का कारण र्ान भलया र्ाए। आत्र्ा की कियार्ीलता के रूप र्ें एक र्ध्यस्थ कारण की कल्पना करनेकी कोई आवश्यकता निीं िै। यहद यि र्ाना र्ाए कक यि किया तनत्य िै, और बोधों का कभी-कभी प्रकट िोना सियक कारणों की वरि् से िै, तो क्योंकक ये बोध को उत्पन्न करनेके भलए पयाप्शत िैं इसभलए आत्र्ा की किया की कल्पना करना अनावश्यक िै (श्रीघर, न्यायकन्दली, पृष्ठ 96-98)। प्रभाचन्द्र पूछता िै कक ज्ञातता पदाथश का धर् शि अथवा ज्ञान (बोध) का धर् शि। यि पदाथधशर्श निींिी सकती, क्योंकक यि केवल बोध के सर्य को छोड अन्य ककसी सर्य र्ें पदाथ शके अन्दर निींराप्ती, और यि ज्ञाता आत्र्ा की तनर्ी तनधध के रूप र्ें प्रतीत भी िोती िै। यि बोधों से भी सम्बद्ध निींिी सकती, क्योंकक यि केवल बोध के सर्य को छोड अन्य ककसी सर्य र्ें पदाथ शके अन्दर निींरिती, और ज्ञाता आत्र्ा की तनर्ी तनधध के रूप र्ें प्रतीत भी िोती िै। यि बोधों से भी सम्बद्ध निीं िो सकती, क्योंकक वि बाघ जर्सका इसेधर् शर्ाना र्ाए, कुर्ाररल के र्त से, प्रत्यक्ष-योग्य निीं, और र्ो प्रत्यक्ष योग्य निीं वि बोधो का अधधष्ठान निीं िो सकता। दूसूरी ओर, यहद ज्ञातता, र्ो ज्ञान-स्वभाव की िै, प्रत्यक्ष योग्य िै तो बोध को भी प्रत्यक्ष योग्य र्ानना िोगा। यहद ज्ञातता अथस्शवभाव िै तो इसका का तात्पय शकेवल पदाथश की अभभव्यजक्त (अथप्रशाकट्य) िै। पदाथ शअभभव्यक्त निींिी सकता, तयद बोध जर्नसे पदाथ शव्यक्त िोता िै, अपनेआप र्ें अनभभव्यक्त िै (प्रर्ेयकर्नर्ातण्शड, पृष्ठ 31- 32)। कुर्ाररल के अनुसार, घडेका बोध घडेके अन्दर ज्ञातता के गुण को इस घडेका ज्ञान प्राप्त ककया िै।" इससे बोध का तथा उत्पन्न करती िै, और इसी प्रकार प्रत्यक्ष पवर्षय र्ें भी िोता िै, यि सवन। उसकी भार्सकता का भी अनुर्ान िोता िै कक ज्ञान-पवर्षयक चैतन्य (अनुव्यवसाय) तथा प्रार्ाणणकता का ज्ञान ये िर्: िोते िैं। ककन्तु कुर्ाररल के पवचार र्ें पपछले दोनों युगपत िोते िैं।

किीं ंअन्त न िोगा। इसभलए वे बोधों को प्रत्यक्ष के अयोग्य र्ानते िैं, यद्यपप वे बोध के पवर्षयों को व्यक्त करने र्ें सर्थ र्िैं।'[1431] बोध स्वयं अनुर्ान ककया र्ाता िै, र्बकक पवर्षय बोध के द्वारा र्ानेर्ाते िैं।

र्ीर्ांसक ज्ञान की आत्र्-प्रार्ाणणकता के र्त को स्वीकार करते िैं।'[1432] कुर्ाररल किता िै कक 'सत्यज्ञान के सर्स्त स्रोतों र्ें अन्ततनहशित प्रार्ाणणकता िै, क्योंकक एक ऐसी र्जक्त र्ो अपने-आप र्ें अपवद्यर्ान िै, दूसूरे के द्वारा उत्पन्न नि्ींकराई र्ा सकती।"[1433] ज्ञान र्ें इजन्द्रयां, आनुर्ातनक धचह्न और इसी प्रकार के अन्य ध्र्यस्थ िो सकते िैं, ककन्तु यि पवर्षयों को स्वयं प्रकट करता िै'[1434] और अपनी प्रार्ाणणकता के भाव को उत्पन्न करता िै। यहद िर्ें तब तक प्रतीक्षा करनी पडे र्ब तक कक िर् कारणों की पवरुुद्धता का तनश्चय न कर लें, तो िर्ें तब तक प्रतीक्षा करनी िोगी र्ब तक कक अन्य कारणों से एक और बोध
प्रभाचन्द्र अपनेप्रर्ेयकर्लर्ातण्शड ग्रन्थ (पृषठ 31) र्ें इस र्त की आलोचना करता िै । प्रर्ाता, बोय-पवर्षयक किया

1431 (प्रर्ाण) और पररणार्रूप बोध (प्रभर्तत), प्रर्ेय (पवर्षय) के सान िी प्रत्यक्ष के योग्य िै। िर् अपने अनुभव ज्ञान के भभन्न-भभन्न अंर्ों को स्पष्ट रूप र्ें प्रत्यक्ष करते िैं। न िी यि आवश्यक िै कक जर्सेप्रत्यक्ष ककया िै वि सवदशा प्रत्यक्ष के पवर्षय के रूप र्ें िी प्रत्यक्ष ककया र्ाए। आत्र्ा का प्रत्यक्ष ज्ञान बोधघ के रूप र्ें िोता िै, बोध के पवर्षय के रूप र्ें निीं। इसभलए बोध का प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष के साघन के रूप र्ें भी िो सकता िै। र्ब कुर्ाररल के अनुयायी आत्र्ा की प्रत्यक्षयोग्यता को र्ान लेते िैं, र्ो र्ात्र ज्ञान का कताश िै, तो बोच को प्रत्यक्षयोग्यता को भी स्वीकार कर सकते िैं, र्ो प्रर्ेय (पवर्षय) की अभभव्यजक्त का साधन िै। यहद आत्र्ा प्रत्यक्ष-योग्य िै तो यि बाह्य पदाथ शको, प्रत्यक्ष के अयोग्य बोधघ की सिायता के बबना भी, र्ान सकती िै। यहद यि किा र्ाए कक किां साधन के पवना कर् शनिींकर सकता, तो आभ्यन्तर और बाह्य इजन्द्रयां बोध के साधन बन सकती िैं। इसके अततररक्त, यहद साधन के बबना कोई किया सम्भव निीं, तो आत्र्ा के स्वत:बोध र्ें कौन-सा साधन िै? यहद आत्र्ा के बोध र्ें आत्र्ा साधन िै, तो यि पदाथों के बोध र्ें भी साधन का काय शकर सकती िै। यहद यि स्वीकार कर भलया गया कक आत्र्ा और पररणार्रूप बोध (फलज्ञान) का प्रत्यक्ष िोता िै, ययापश वे चैतन्य र्ें बोप के पवर्षय के रूप र्ें प्रकट निींिोते, े तो यि भी स्वीकार ककया र्ा सकता िै कक वोध के साधन का भी बोच के पवर्षय के रूप र्ें निींबजल्क साधन के रूप र्ें प्रत्यक्ष िोता िै। कफर साघनरूप बोध (करणज्ञान) कताश तथा पररणार्रूप ज्ञान (फलज्ञान) से सवथशा भभन्न निीं, और इसभलए यहद अन्य दो प्रत्यक्ष-योग्य िैं, तो यि प्रत्यक्ष के अयोग्य निींिो सकता। इसके अततररक्त, आत्र्ा और बोध, जर्सके द्वारा आत्र्ा पदाथ शको र्ानती िै, िर्ारे अनुभव र्ें साक्षात् ्प्रकट िोते िैं, और इसभलए वे चैतन्य के पवर्षय र्ानेर्ाने चाहिए। (प्रतीयर्ानत्वं हि ग्राह्यत्वं तदेव कर्त्शवर्)्। र्ो कुछ भी चैतन्य र्ें प्रकट िोता िै वि उसका पवर्षय िै। "र् ैंघडेको र्ानता िंू" इस बोध र्ें पवर्षयी अपनेपवर्षय र्ें अभभज्ञ िै कक वि घडेके बोध से युक्त िै। पवर्षयी का घट-सम्बन्धी बोध उतना िी प्रत्यक्ष का पवर्षय िै, र्र्तना कक आत्र्ा और घट। कफर, यहद ज्ञानोत्पादक किया प्रत्यक्ष के अयोग्य िै, तो यि ककसी प्रर्ाण द्वारा भी यथाथ शभसद्ध निींकी र्ा सकती।

1432 तत्र गुरूणां र्ते ेज्ञानस्य स्वप्रकार्रूपत्वात् ्तज्ज्ञानप्रार्ाण्यं तेनैव गृह्यते। भाट्टानां र्ते ेज्ञानर्तीजन्द्रयर् ् ज्ञानर्न्यज्ञातता प्रत्यक्षा, तया व ज्ञानर्नुर्ीयते। र्ुराररभर्श्राणांर्ते ेअनुव्यवसायेन ज्ञानं गृह्यते । सवेर्षार्पप र्ते े तज्ज्ञान्पवर्षयकज्ञानेन तज्ज्ञानप्रार्ाण्यं गृह्यते (भसद्धान्तर्ुक्तावभल, 135)।

1433 और देणखए न्यायरत्नाकर, 2: 47।

1434 "केवल अपनेउद्भ्व के भलए िी पवद्यात्र्क सिाओंको एक कारण की आवश्यकता िोती िै। र्ब वे एक बार उत्पन्न िो गई तो वे अपनेनानापवध कायों के भलए अपने-आप को कियार्ील िो र्ाती िै" (2 48)। घडे को अपनी उत्पपि के भलए भर्ट्टी आहद की आवश्यकता िो सकती िै, ककन्तु र्ल को धारण करने ेकी किया वि स्वयंकरता िै। वोध को अपनी उत्पपि के भलए एक कारण की आवश्यकता िो सकती िै, ककन्तु वस्तुओंके सत्यस्वरूप के तनश्चय रूपी काय शके भलए इसेकारणों की आवश्यकता निीं। इस प्रकार र्ीर्ांसक तकश करता िै कक स्वत:प्रार्ाण्य तथा इजन्द्रय-सम्पकश आहद कारणों पर तनभरशता के र्ध्य परस्पर कोई पवरोध निीं िै। साधारणतः ज्ञान के उदय िोने के बाद इजन्द्रय-सम्पकश आहद का अनुर्ान ककया र्ाता िै। केवल स्र्ृतत की अवस्था र्ें िी पूवानुशभव पर तनभरशता प्रकट िै।

की उत्पतत न ि◌ो, और इस प्रकार इस ि◌र् का किीं ◌ंअन्त निीीं।'[1435] स्वतः प्रार्ाण्य के भसद्धान्त का र्त ि◌ै कक बोध अपने-आप रे्ं प्रार्ाणणक ि◌ैं और उनकी प्रार्ाणणकता का पररिार केवल उनके पवर्षयों के पवरोधी स्वरूप से ि◌ो सकता ि◌ै, अथवा उनके कारणों की असंगतत का पता लग र्ाने से ि◌ो सकता ि◌ै।'[1436] र्ब ि◌र् भूलकर एक रस्सी को सांप सर्झ लेतेिैं और पीछे ऐसा वाते ि◌ैं कक यि रस्सी ि◌ै सांप निीीं, तो ि◌र्ारा पिला बोध अप्रार्ाणणक ि◌ोकर कट र्ाता ि◌ै। र्ब ि◌र् बोध के साधनों के दोर्षों को पिचान लेते ि◌ैं तो ि◌र् बोध की प्रार्ाणणकता के पवर्षय रे्ं सन्दिे करते ि◌ैं। पीभलया रोग से पीडडत व्यजक्त के पवचार रे्ं सीप पीले ◌ेरंग की ि◌ै। ककन्तु र्ब वि आंख के दोर्ष को पिचान लेता ि◌ै, तो वि पीलेपन को पीले ◌ेरं आप के कारण सर्झता ि◌ै और यि स्वीकार कर लेता ि◌ै कक सीप श्वेतवण शि◌ै। र्ब के एवं असंगततयों का ज्ञान न ि◌ो, तब तक ि◌र्ारे पास सन्दिे करने का कोई युजक्तयुक्त आचार विीं ◌ंि◌ै। बोध बाह्य रूप रे्ं या तो अन्य साधनों द्वारा पदाथ शके ययाथ शस्वासका आधार ि◌ो र्ानेसे, या बोध के साधनों के दोर्षों का पता लग र्ानेसेअम्रापण शस्वरूप का ज्ञान ि◌ैं। ज्ञान की र्ानी ि◌ुई अवस्थाओंके कारण प्राप्त कर बोध की प्रार्ाणणकताका ि◌राए र्ातेएब तक कक सन्दिे के भलए कोई पवर्ेर्ष कारण न ि◌ो। ककसी पवचार की उम्रनार् चाहिए, कभी भी अन्ततनहशित निीींतिी, वि सदा बाह्य साधनों से र्ानी र्ाती ि◌ै।'[1437] और सन्दि अवस्या रे्ं भी, रै्से ◌ेदूरूस्थ अथवा धुंधले प्रकार् रे्ं देखी गई वस्तु की सत्य-प्रकृतत के बोरे रे्ं, ि◌र् सन्दिे का तनवारण सुधरी अवस्थाओंरे्ं दूसूरा ज्ञान प्राप्त करके कर सकते ि◌ैं। यि ि◌ो सकता ि◌ै कक ककन्िीं अवस्थाओं रे्ं, दूसूरे ज्ञान को एक तीसरे ज्ञान से ठीक करना पडेऔर कभी-कभी तीसरे को भी चौथे ज्ञान से ठीक करना पडे। ककन्तु अधधकतर अवस्याओंरे्ं एक छोटी संख्या से दूरू र्ानेकी आवश्यकता निीीं।'[1438] कुर्ाररल के अनुसार, तीन या चार बार दुिराया ि◌ुआ ज्ञान सवथशा सत्य भसद्ध ि◌ोगा।'[1439]

कुर्ाररल का पवश्वास ि◌ै कक सीप को चांदी र्ाननेका बोध भी बोध के रूप रे्ं प्रार्ाणणक ि◌ै। ज्ञाता को उस सर्य बोध ि◌ुआ था, बाद के अनुभव सेउसका प्रत्याख्यान ि◌ो गया। वि दूसूरी बात ि◌ै कक यिांतक कक सीप को पीला सर्झनेके बोध रे्ं भी आंख के पपिदोर्ष तो सम्बजन्धत एक यथाथ शपीलेपन का प्रत्यक्ष ि◌ोता ि◌ै। संहदग्ध

1435 श्लोकवाततकश, 2:49-51 ।

1436 श्लोकवाततकश, 2: 53।

1437 श्लोकवाततकश, 2: 85 और 87। यत्र कारणदोर्षज्ञान वाधज्ञानं वा तन्त्र भर्थ्यात्वर् (र्ास्वदीपपका, पृष्ठ 10। ज्ञानस्य प्रार्ाण्यं स्वता अप्रार्ाण्यं परतः ।

1438 श्लोकवाततकश, 2:61 ।

1439 पाथसशारधथ का किना ि◌ै : बोध के भर्थ्या ि◌ोनेके सुपवज्ञात कारण ये ि◌ैं कुछ ऐसेदोर्ष जर्नका सन्चन्य स्थान, काल, पररजस्थतत, ज्ञानेजन्द्रयों, बोध के पवर्षय आहद से ि◌ौता ि◌ै। र्िां इस प्रकार के दोर्षों के अजस्तत्व को भर्टा हदया गया ि◌ो, रै्से, उदिारण के रूप रे्ं, र्ब एक र्नुष्य पूणरूशप से र्ागररत तथा अपनी ताओंको पूणरूशप से धारण ककए ि◌ुए, हदन के उज्ज्वल प्रकार् रे्ं अपनेसर्ीप रखे ि◌ुए घडे को देखता तवंरापों के सम्बन्ध रे्ं कोई सन्दिे निींउत्पन्न ि◌ो सकता ि◌ै, और इसभलए प्रत्यक्ष ज्ञान के अप्रार्ाणणक एने का भी कोई पवचार निीींि सकता। अन्य अवस्थाओंरे्ं दोर्ष की सम्भावना ि◌ो सकती ि◌ै, उदिारणरूप १. तय (पदाथ)श दूरू ि◌ो सकता ि◌ै और इसभलए प्रत्यक्ष की अप्रार्ाणणकता के पवर्षय रे्ं सन्दिे उठ सकतक हिन्यात ीि सकता ि◌ै और इसभलपदाथ शतक चलकर र्ानेसे, दो पवकल्पों रे्ं से- जर्न एक रे्ं से सन्दिे उसे न्यार ि◌ै-कोई एक सत्य के रूप रे्ं तनणीत ि◌ो सकता ि◌ै। अजस्तत्व हिपजस्थतत से सन्दिे उत्पन्न ि◌ुआ ि◌ै- कोई एक बरसता ि◌ै कक सजन्दग्ध दोर्ष का वास्तपवक अजस्ति न ि◌ल ि◌ो सकता ि◌ै। ज्यों ि◌ी यि पता चलता भय ि◌ो गया था, अपनेस्वतःप्रार्ाण्य को प्रकट कर सकता र्् भर्क्ियाततकश, 2 : 58 और 60-61 पर न्याय रत्नाकर)।

 बोध, रैसेकक दूरी पर जस्थत एक लम्बे ेपदाथ शके बारे रें िरारी अतनजश्चतता कक वि र्नुष्य ै या खंभा, भी

प्रार्ाणणक ि ै, क्योंकक िर् लंबेपन को प्रत्यक्ष देखते िैं और दो पदाथ शका स्र्रण करते िैं रो दोनों लंबिैं। रात ज्ञान या तो अपूण शज्ञान के कारण िोता िै या अज्ञान के कारण िोता िै । यि पवद्यात्र्क भर्थ्या ज्ञान के कारण निीं, बजल्क तनर्षेधात्र्क अज्ञान के कारण िोता िै।[1440] पाथसशारधथ प्रार्ाणणक बोध की पररभार्षा इस प्रकार करता िै कक यि वि ज्ञान िै रो असंगततयों से स्वतन्त्र िोते िुए पिले ेसे अज्ञात वस्तुओं का बोध कराता िै।[1441] ज्ञान का रो स्वत:प्रकार् लक्षण िै, इस र्त से उसका कोई पवरोध निीं ंिोता।'[1442] यि केवल बोध के स्वरूप का कफर से वणनश करता िै रो अपने स्वभाव से प्रार्ाणणक िै। प्रार्ाणणकता ज्ञान का धर् शिै, यद्यपप िर् अपनेज्ञान की सच्चाई की परीक्षा यि र्ानकर करते ेऔर कर सकतिैं कक यि अन्य ज्ञान के संगत िै या उसका पवरोधी िै। तो भी यि सब सत्य की बाह्य कसीटी िै, यि िर्ें इसके आन्तररक स्वभाव को प्रकट निीं करता।

यहद संगतत सत्य की प्रकृतत िै और केवल इसकी कसौटी निीं ंिै, तो सत्य को प्राप्त करना कहठन िोगा, क्योंकक िर् दुष्ुट चि से निीं बच सकते। कुर्ाररल और पाथसशारधथ िर्ें कि सकते िैं कक तीन या चार बोधों से दूर र्ानेकी आवश्यकता निीं िै। यहद िर् एक बार यि र्ान लें कक प्रार्ाणणकता ध्वर्स्थ िै, तो िर् ककसी भी बोध की तनतान्त प्रार्ाणणकता के पवर्षय र्ें तनजश्चत निीं िो सकते।'[1443]

र्ीर्ांसा की प्रकल्पना के आलोचक बलपूवकश किते िैं कक यहद उनके रूप निीं ं िैं, तो बोधों के अन्दर भेद करना सम्भव न िोगा। क्योंकक एकर्ात्र वस्तु रो एक बोध को दूसूरे बोध से भभन्न करती िै वि पवर्षय िै, इसभलए बोध के पवर्षय र्ें यि किा र्ाता िै कक वि पवर्षय का रूप धारण कर लेता िै। यि बलपूवकश किा गया िै कक बोध तथा ज्ञान वस्तु र्ें तादात्म्य िै। र्ीर्ांसक किता िै कक यहद ज्ञाता आत्र्ा और ज्ञात वस्तु र्ें तादात्म्य िोता, तो ज्ञात वस्तु आत्र्ा के द्वारा र्ानी गई िै, ऐसा न किा र्ाता। और न केवल रूप िी बोधों के अंदर भेदे करने का एकर्ात्र आधार िै। संवेदना, अथवा व्यजक्त पवर्शेर्ष का ज्ञान एक वस्तु िै, रो पवर्शेर्ष प्रकार के धर् शकी अभभव्यजक्त ै, रो उसके एक पवर्शेर्ष पदाथ शके प्रतत व्यापार से अनुकूलता रखती िै। वि पदाथ शजर्सके प्रतत यि ज्ञाता को

1440 बा ेधों की अप्रार्ाणणकता तीन प्रकार की िोती िै: भर्थ्याज्ञान, अज्ञान और सन्दिे। संहदग्ध और भर्थ्यािान पवध्यात्र्क सिाएं िैं और दोर्षपूण शकारणों से िैं, र्बकक अज्ञान र्ें कंवल कारणों का अभाव िै (श्लोकवाभलक 2:54-55) ।

1441 कारणदोर्षबाधकज्ञानरहितर्गृिीतग्राहिज्ञानं प्रर्ाणर् ्(र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 125)।

1442 ककन्तु देणखए, झा : प्रभाकरर्ीर्ांसा, 2: इस कहठनाई र्ें यि सुझाव हदया गया िै कक 'प्रार्ाणणकत' र्ब्द का प्रयोग दो अथों र्ें िोता िै। प्रत्यक्ष बोध, बोध के रूप र्ें प्रार्ाणणक िैं, और इस अथ शर्ें भूल, सूतृत आहद भी प्रार्ाणणक िैं। ककन्तु कियात्र्करूप र्ें प्रार्ाणणक बोधों र्ें, रो कर् शकी कसौटी पर ठीक उतरते िैं तथा अप्रार्ाणणक बांधों र्ें, रो ठीक निींउतरते, भेद ककया र्ाता िै। देणखए पी. र्ास्त्रीय, पूवर्शीर्ांसा, अध्याय 2 ।

1443 सम्र्वत: प्रोफेसर स्टाउट के र्न र्ें यिी िै र्ब वे ेकिते िैं "अन्त र्ें, सत्य केवल अन्य सत्य के साथ संगत िोनेसे िी निींपिचाना र्ा सकता। तात्काभलक ज्ञान के अभाव र्ें संगतत का भसद्धांत बबना टेक के लीवर के सर्ान िोगा.... यि किना कक सर्स्त बोध व्यवहित अथवा ध्वर्स्थ िै, इस अथ शर्ें अवश्य िी दुष्ुट चि की ओर ले र्ाता िै। यहद व्यवहित बोध र्ें केवल बोधों का िी व्यवधान िै रो अपने-आप र्ें केवल व्यवहित र्ी िैं, तो ज्ञान का संचालन कभी निीं िो सकता। यि ऐसा िी िै रैसेकक कोई कक दीवार के बनानेर्ें िर एक ईट की दूसूरी ईंट के ऊपर रखना चाहिए, और कोई भी इंट सीधी भूभर् पर न रखी र्ाए।" (र्ाइड, 1908, पृष्ठ 33)

कियार्ीलता से अनुकूलता रखती िै, र्ाना र्ाता िै। क्योंकक प्रत्येक बोध ककसी पवभर्ष्ट पदाथ शकी ओर कियात्र्क व्यापार को प्रवृि करता। िै, इसभलए विांभेदे का एक आधार िै।

नैय्यातयक ज्ञान की स्वतःप्रार्ाणणकता के भसद्धान्त को स्वीकार निींकरता। ज्ञान अपनी सचाई को प्रर्ाणणत निींकरता। िर्ारे बोध सवदशा यथाथ शके अनुकूल िी िोंगे ेइसका कुछ तनश्चय निीं। र्ब िर् अपने पवचारों पर कर् शकरते िैं तो िर् कभी सफल िोते िैं और कभी निींिोते। यहद सफल िोते िैं तो िर् प्रार्ाणणकता का अनुर्ान कर लेतेिैं और यहद सफल निींिोते ेतो अप्रार्ाणणकता का अनुर्ान िोता िै।'[1444]

र्ीर्ांसा की आत्रप्रार्ाणणकता की प्रकल्पना तनदेर् करती िै कक प्रार्ाणणकता सर्स्त ज्ञानात्र्क पवर्षय का गुण िै र्ो उससे पृथक् निींककया र्ा सकता। अनुकूलता और संगतत प्रार्ाणणकता की कसौटी िैं, ककन्तु उसे ेउत्पन्न निींकरतीं। वे िर्ारे भलए प्रार्ाणणक बोध के स्वभाव को स्पष्ट निींकरतीं। ज्ञान का काय श पदाथों का बोधात्र्क ज्ञान प्राप्त करना िै। र्न का यथाथतशा के साथ सम्बन्ध सदा िी इसर्ें अन्ततनहशित रिता िै। इसके अततररक्त, र्न पवचारधारा के पवधान के अनुकूल काय शकरता िै, र्ो एक अथ शर्ें अनुल्लंघनीय िै। र्ब िर् किते िैं कक यि एक रोटी िै', तो जर्सेिर् रोटी किते िैं वि वास्तव र्ें रोटी निींभी िो सकती, ककन्तु तनणयश करने के सर्य िर् इसे ेरोटी िी र्ानते िैंऔर उस पवचार की प्रबलता को रोक निीं ं सकते। कोई सन्दिे िर्ारे चैतन्य र्ें पवघ्न उपजस्थत निींकरता और इसभलए पवचार की पवर्षयवस्तु तनणयश के सर्य िर्ारे भलए बबलकुल सत्य िोती िै। र्ब तनणयशों र्ें, चािे वे सत्य िों या भर्थ्या, यि आवश्यकता का अंर् रिता िै। तो भी इसका अथ श यि निीं ंिै कक तनणयश पवचार का केवल खेल-र्ात्र िै। िर्ारे चैतन्य र्ें कुछ वस्तु ऐसी प्रस्तुत रिती िै जर्से अवश्य स्वीकार करना िोता िै। िर्ारी र्ानभसक प्रकिया पर यथाथतशा का एक तनयन्त्रण रिता िै। प्रत्येक तनणयश

र्ें इस प्रकार का एक कथन रिता िै कक आधारभूत सार्ग्री र्ें अपनेसे अधधक कुछ िै, कक ऐसी कुछ वस्तु िै र्ो अभी प्रस्तुत निीं, ककन्तुजर्सकी प्रततततनधध यि आधारभूत सार्ग्री िै। इसके अततररक्त, प्रत्येक तनणयश र्ें र्ानभसक किया का एक अंर् पवद्यर्ान रिता िै, र्ो आधारभूत सार्ग्री को बढ़ा देता िै। यि प्रस्तुत पवर्षय (सार्ग्री) की व्याख्या करता िै, इसे ेसाथकशता प्रदान करता िै, और दावा करता िै कक यि पूण शइकाई का एक भाग िै और अपने िी अन्दर पूण श निीं। यद्यपप, र्ीर्ांसक यथाथवशादी िैं, तो भी कुर्ाररल का यि कथन कक यहद तनणयश का सर्थनश अन्य तनणयशों द्वारा िो र्ाए तो उसकी प्रार्ाणणकता का तनश्चय िो र्ाता िै, अनुकूलता की अपेक्षा संगतत की प्रकल्पना का सुझाव देता िै। पवभभन्न तनणयशों को अवश्य संगत िोना

चाहिए ककन्तु यि आभ्यन्तर संगतत िी तब कुछ निीं। यि ठीक केवल इसभलए िै क्योंकक यथाथतशा, जर्सका अनुभव प्राप्त ककया र्ाता िै, स्वयं संगत िै।

र्न का उस यथाथतशा के साथ जर्सका यि अनुभव करता िै, क्या सम्बन्ध िै, एतद्पवर्षयक र्ो परर् सर्स्या िै उसे ेर्ीर्ांसा ने निींउठाया िै। यि इस सिर् वृद्धध के र्त को र्ान लेता िै कक यथाथतशा एक सिावान

[1444] न्याय र्ंर्री पृष्ठ 160 -173।

र्गत के रूप र्ें ि्रारे धचन्तन सेबाह्य िै। इस जस्थतत के पररणार् सत्य के अनुकूलतापरक भाव की कहठनाइयों से र्ीर्ांसा सब बोधों की स्वत:प्रार्ाणणकता की प्रकल्पना द्वारा बचकर तनकल र्ाती िै।

12. आत्र्ा

पवध्यात्रक वैहदक आदेर् दूसरे लोक र्ें पुरस्कारों के उपभोग का पवश्वास हदलाते िैं। यहद र्रीर के पवनार् के पश्चात् ्कोई यथाथ शआत्र्ा र्ीपवत न रिे तो वे सब तनरथकश िो र्ायगें ेयज्ञ का कता,श कि र्ाता िै कक स्वग शर्ाएगा, और र्ो स्वग शको र्ाता िै वि र्ांस और रक्त वाला र्रीर निीं, बजल्क अर्रीरी आत्र्ा िै।'[1445] र्ैभर्तन आत्र्ा की यथाथसशता का कोई ब्यौरेवार प्रर्ाण निीं ेदेता और इस प्रश्न पर र्ो युजक्तयां वेदान्त ने दी िैं उन्िीं को स्वीकार करता प्रतीत िोता िै।[1446] वि आत्र्ा (पुरुर्ष) को बुद्धध तथा इजन्द्रयों से भभन्न करता िै।[1447] र्बर एक स्थायी ज्ञाता की यथाथतशा को स्वीकार करता िै, र्ो "अपने-आप से ज्ञात िै और देखा या औरों द्वारा हदखाया निीं र्ा सकता।"[1448] र्बर का र्त उपलक्षक्षत करता िै कक आत्र्ा और चैतन्य एक िी िैं। पवज्ञानवाद का खण्डन करते िुए वि किता िै कक बोधों का एक प्रर्ाता (पवर्षयी) िै'[1449] और वि प्रर्ाता अपने-आप से र्ाना र्ाता िै।

र्ीर्ांसा के पवचारक आत्र्ा को र्रीर, इजन्द्रयों तथा बुद्धध से भभन्न र्ानते िैं। र्ब बुद्धध अनुपजस्थत रिती िै तब भी आत्र्ा उपजस्थत रिती िै, र्ैसे ेकक तनद्रा र्ें। यहद बुद्धध आत्र्ा की सिचाररणी िो, तो भी िर् यि निीं कि सकते कक वे एक-दूसरे के सर्ान िैं। आत्र्ा इजन्द्रय निीं, क्योंकक इजन्द्रयों के क्षत िो र्ानेअथवा नष्ट िो र्ानेपर भी आत्र्ा पवद्यर्ान रिती िै। एक सि ऐसी िै र्ो इजन्द्रयों से प्राप्त पवभभन्न सार्ग्री का संश्लेर्षण करती िै। र्रीर भौततक िै, और िर एक बोध र्ें िर्ें ज्ञाता की र्रीर से भभन्नता की अभभज्ञता रिती िै। र्रीर के अवयव बुद्धध-सम्पन्न निीं िैं और उनका संघात चैतन्य को उत्पन्न निींकर सकता। र्रीर अपनेसे परे एक लक्ष्य का एक साधन र्ात्र िै, और इसभलए इसे ेआत्र्ा के प्रयोर्न के भलए कि र्ाता िै र्ो इसका संचालन करती िै। स्र्ृतत के तथ्य आत्र्ा की यथाथतशा को भसद्ध करते िैं। यि स्वीकार ककया गया िै कक आत्र्ा पररवतनश की अनुर्तत देती िै, ककन्तु वि सब पररवतनशों र्ें जस्थर रिती िै बोध, र्ो एक किया िै, आत्र्ारूपी द्रव्य से सम्बन्ध

1445 1: 1,5 ।

1446 उपवर्ष,श र्ो दोनों र्ीर्ांसाओं का वृपिकार िै, किता िै (1/1, 5) कक आत्र्ा के प्रश्न पर उिरर्ीर्ांसा र्ें पवचार ककया र्ाएगा। र्बर भी इसी र्त का प्रतीत िोता िै, क्योंकक कुर्ाररल अपनेआत्र्वाद (श्लोकवाततकश:) अजन्तर् श्लोक र्ें किता िै:

इत्याि नाजस्तक्यतनराकररष्णुरात्र्ाजस्ततां भाष्यकृदत्र युक्त्या।
दृढत्वर्ेतद, पवर्षयश्च बोधः प्रयातत वेदान्ततनर्षेवणेन ॥

"इस प्रकार टीकाकार (र्बर) ने, तनरीश्वरवाद का खण्डन करनेके पवचार से, तकश द्वारा आत्र्ा के अजस्तत्व की भसद्धध की िै, और वेदान्त के अध्ययन से यि पवचार पुष्ट िो र्ाता िै।" देणखए र्ांकरभाष्य, 3/3, 53 ।

1447 1:1, 4 ।

1448 स्वसंवेद्यः स भवतत नासादन्येन र्क्यतेद्रष्टुं दर्तशयतुं वा।

1449 ज्ञानाततररक्तः स्थायी ज्ञाता वततेश े।

भारतीय दर्नश-2 364 रखता िै।"[1450] आत्रा के तनत्यस्वरूप के पवरुद्ध यि कोई युजक्त निीं कक वि पररवतनशों के अधीन रिती

िै।'[1451] और न यि कोई बडी भारी आपपि िै कक र्ब िर् फल भोगने िैं तो उन करों को भूल राते िैं जर्नके कारण वे फल भर्ले िैं। आत्रा के पवर्षय रें बौद्धों का पवचार िै कक यि पवचारों की एक रृंखंला िै जर्नरें से प्रत्येक पवचार अपनेपूववशततयशों सेअपनेभूतकाल के संस्कार संगृिीत करता िै, उसका खण्डन करते िुए कुरारल किता िै कक यहद कर्पशवधान का कुछ अथ शि तो एक सारान्य अधधष्ठान अवश्य िोना चाहिए। वौद्ध प्रततफल के पवधान अथवा पुनर्न्शर् की सम्भावना की व्याख्या करने रें असर्थ शिैं। सूक्ष्र रीर की कल्पना अधधक सिायक निीं िो सकती, क्योंकक पवचार का इसके साथ सम्बन्ध एक रिस्य िै। पवचारों की श्रृंखंला सम्बन्धी बौद्धर्त के आधार पर आत्रचैतन्य, इच्छा, स्रृतत तथा सुख-दुःख का प्रपंच बुद्धधगम्य निीं िो सकता। इसभलए एक ऐसी सिा का िोना आवश्यक िै रो पवचारों की सम्भाव्य क्षर्ता को धारण करती िो, तनत्य िो तथा पुनर्न्शर् के योग्य िो। आत्र् आणपवक निीं िो सकती, क्योंकक यि रीर के भभन्न-भभन्न भागों रें िोते िुए पररवतनशों का ज्ञान ग्रिण करती िै। इसे पवभु अथवा सवव्शयापक राना गया िै, और यि एक के बाद दूसरे रीर से सम्बन्ध करने योग्य भी िै। जर्स रीर के साथ इसका सम्बन्ध िै उसका यि, र्ब तक रोक्ष निीं िोता, संचालन करती िै। एक सवत्रश उपजस्थत आत्रा कर् शकर सकती िै, क्योंकक कर् शकेवल आणपवक गतत निीं िै। आत्रा की र्जक्त रीर की गतत का कारण िै।

रीरांसक आत्राओं के अनेकत्व की प्रकल्पना को रानते िैं,'[1452] इसभलए कक अनुभवों की पवपवधता की व्याख्या की रा सके। रीरों की कियाओंसेिर् आत्रा के अजस्तत्व का अनुरान करते िैं, क्योंकक बबना आत्रा की कल्पना के उनकी व्याख्या निीं िो सकती। जर्स प्रकार रेरी कियाएंरेरी आत्रा के कारण िैं, उसी प्रकार अन्य कियाएंअन्य आत्राओं के कारण िैं। धर् शऔर अधर् शके भेद रो आत्राओं के गुण िैं, भभन्न-भभन्न आत्राओं के अजस्तत्व के कारण िी िैं। यि दृष्टान्त कक जर्स प्रकार एक सूय शभभन्न-भभन्न द्रव्यों रें प्रततबबजम्बत िोकर पवपवध धरों वाला िो राता िै, उसी प्रकार एक िी आत्रा भभन्न-भभन्न रीरों रें प्रततपवजम्बत िोकर भभन्न-भभन्न गुण धारण कर लेती िै, हटकेगा निीं, क्योंकक गुण रो भभन्न-भभन्न प्रतीत िोते िैं, प्रततपवम्ब के राध्यर् से सम्बद्ध िैं, सूय शसे निीं। यहद उक्त दृष्टान्त को सत्य राना राए, तो आत्राओं के सम्बन्ध रें प्रकट िोते िुए नानापवध गुण रीरों से सम्बद्ध िोंगे, न कि आत्रा सेनिीं। ककन्तु सुख-दुःख आहद आत्रा के गुण िैं, रीर के निीं।[1453]

1450 श्लोकवाततकश, आत्रवाद, 100।

1451 श्लोकवाततकश, आत्रवाद, 22 और 23।

1452 बुद्धीजन्द्रयरीरेभ्यो भभन्नात्रा पवभुभुवशः ।
नानाभूतः प्रततक्षेत्रर्थज्ञश ानेर्षु भासते।
(सवभशसद्धान्तसारसंग्रि, 6:206) और देणखए श्लोकवाततकश,आत्रवाद : पृष्ठ 5-7।

1453 झा: प्रभाकररीरांसा।

प्रभाकर का आत्र्ा से तात्पय शएक ऐसी वस्तु सै र्ो बुद्धधपवीन ि और ज्ञान, कियार्ीलता, अनुभव अथवा सुखोपभोग तथा दुःख आहद र्ैसे ेगुणों का अधधष्ठान ि।'[1454] एक स्थायी अनन्य आत्र्ा का कोई सीधा ज्ञान निीं ंि। उसको भसद्धध परोक्षरूप र्ें पवचार के स्थायी पवर्षयों के प्रत्यभभज्ञारूपी तथ्य के द्वारा िोती ि।'[1455] प्रत्यभभज्ञा की घटना र्ें दो अवयव िोते िैं, एक सूतृत तथा दूसूरा पदाथ शका पूवानुशभव। इस तथ्य का कक िर् भूतकाल के बोध को स्र्रण कर सकते िैं, अथ शि कक एक स्थायी आत्र्ा का अजस्तत्व ि र्ो भूतकाल के प्रत्यक्ष ज्ञान तथा वतर्शानकाल के स्र्रण की आश्रय ि। इस प्रकार, प्रभाकर के अनुसार, स्थावी प्रत्यक्ष या तनर्ी व्यजक्तत्व प्रत्यभभज्ञा का पवर्षय निींबजल्क उसका आश्रय ि।'[1456] यि सवव्शयापक तथा अपररवतनशर्ील ि। यि स्वतः प्रकार् निीं. क्योंकक यहद ऐसा िोता तो िर्ें प्रगाढ़ तनय र्ें भी ज्ञान िोता। ककन्तु ऐसा िोता निीं, यद्यपप प्रगाढ़ तनद्रा र्ें आत्र्ा पवद्यर्ान रिती ि। स्वतःप्रकार् बोध, "र् ैंघडे को र्ानता िंूं", घडे को बोध के पवर्षय के रूप र्ें अभभव्यक्त करता ि और आत्र्ा को बोध के आश्रय के रूप र्ें। आत्र्ा बोध के आश्रयरूप र्ें तुरंत र्ानी र्ाती ि, र्ैसेककं घडा बोध के पवर्षयरूप र्ें र्ाना र्ाता ि। र्ो 'र्' इस रूप र्ें प्रतीत िोती ि वि आत्र्ा ि, और वि पवर्षय (प्रर्ेय) सम्बन्धी सब अवयवों से स्वतन्त्र ि। क्योंकक सब बोधों र्ें, यिां तक कक उन बोधों र्ें भी र्िां र्रीर का कोई बोध निीं ंि, आत्र्ा िर्ें अभभव्यक्त िोती ि, इसभलए आत्र्ा र्रीर से भभन्न र्ाना गया ि। आत्र्ा अपने-आप र्ें प्रत्यक्ष योग्य निीं, ककंतु उसे ेसवदशा बोध के कता शके रूप र्ें र्ाना र्ाता ि, कर् शके रूप र्ें निीं। बोध का कर् शआत्र्ा के अन्दर स्वफल को उत्पन्न निींकरता, इसभलए आत्र्ा बाह्य या आभ्यन्तर प्रत्यक्ष का पवर्षय निीं ंि। पवर्षय चैतन्य से अलग आत्र्चैतन्य नार् की कोई वस्तु निीं। आत्र्ा चैतन्य का पवर्षयी और पवर्षय दोनों निीं सकती।[1457] यि कता शि, सुखोपभोक्ता ि, और यद्यपप अचेतन ि तो भी सवत्र्श उपजस्थत ि। इस प्रकार यि र्रीर, इजन्द्रयों और बुद्धध से पूणरूशप र्ें भभन्न ि। इसकी सब बोधों र्ें अभभव्यजक्त िोती ि और यि तनत्य ि। प्रभाकर निीं र्ानता कक आत्र्ा अणु ुके आकार की ि या उस र्रीर के आकार की ि जर्सेयि सूचना देती ि। यद्यपप यि सवत्र्श उपजस्थत ि तो भी दूसूरे र्रीर र्ें र्ो कुछ िो रिा ि उसे अनुभव निींकर सकती, क्योंकक यि उसी का अनुभव कर सकती ि र्ो कुछ उस र्रीररूपी यन्त्र र्ें िो रिा ि, र्ो आत्र्ा को भूतकाल के कर् शसे प्राप्त िुआ ि। आत्र्ाएं अनेक िैं, प्रत्येक र्रीर र्ें एक आत्र्ा ि। अपनी र्ुक्तावस्था र्ें आत्र्ा केवल सद् रूप र्ें अवजस्थत रिती ि और एकसाथ सब वस्तुओं के सार्ूहिक बौध का आश्रय िोती ि, ककन्तु संवेदना का आश्रय निीं िोती, क्योंकक सुख और दुःख के धर् शअपनेको भसवाय र्रीर के अन्यत्र अभभव्यक्त निींकर सकते। यि अनश्वर ि, क्योंकक इसकी सिा ककसी कारण के द्वारा निींउत्पन्न िुई।'[1458]

1454 कताश भोक्ता र्ो पवभुररतत प्राभाकराः। र्धुसूदन सरस्वतीकृत 'भसद्धान्तबबन्दु' ु, 'न्यायरत्नावभल' र्ें र्ड की व्याख्या इस प्रकार की गई ि: स च ज्ञानस्वरूपभभन्नत्वाड्डः; र्ानार्ीतत ज्ञानाश्रयत्वेन स भातत न ज्ञानरूपत्वेन ।

1455 पववरणप्रर्ेयसंग्रि, धधबीत का आंग्लभार्षानुवाद, पृष्ठ 405 (इजण्डयन धोट, खण्ड 1)।

1456 अद्वैत इस र्त से ेअसिर्त ि। स्र्रण के कर् शर्ें वतर्शान आत्र्ा ि : भूतपूव शप्रत्यक्ष र्ें भूतकाल की कफल्र्ा थी, और दोनों के बीच की खाई भरी निीं र्ा सकती र्ब तक कक प्रत्यभभज्ञा का कर् शन िो, जर्से ेकफर अन्य की आवश्यकता िोगी, और इस प्रकार र्ा सकती र्ब तक कक प्रत्यभभज्ञा को र्ें यि निींकास िो सकता कक वतर्शान स्र्रण और भूतपूव शप्रत्यक्ष एकता का किींअन्न नाजस्तत्व का ज्ञान ग्रिण करते िैं, क्योंकक दोनों, एक भूत तथा दूसूरा वतर्शान, साथ-साथ निींरि सकते।

1457 र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 348-49।

1458 झा कृत प्रभाकरर्ीर्ांसा।

पाथसशारधथ तकश करता ि◌ै कक ऐसा र्ानने र्े कक आत्र्ा प्रत्यक्ष की पवर्षयी और पवर्षय दोनों ि◌ी ि◌ै, ककसी प्रकार का परस्पर-पवरोध निीं ि◌ै। र्ब प्रभाकर किता ि◌ै कक आत्र्ा बोधरूपी कर् शसे व्यक्त ि◌ोती ि◌ै, तो उसका तात्पय शयि ि◌ै कक आत्र्ा भी चैतन्य का पवर्षय ि◌ै। प्रत्यभभज्ञा तथा स्र्रण र्े चैतन्य र्े पवपय प्रकट ि◌ोता ि◌ै, पवर्षयी प्रकट निीं ि◌ोता। यि प्रत्यक्ष के पवर्षयरूप र्े र्ानी गई आत्र्ा ि◌ी ि◌ै जर्से ि◌ैचैतन्य र्े वतर्शान प्रत्यभभज्ञा तथा स्र्रण के पवर्षयरूप र्े प्रस्तुत ककया गया ि◌ै। यहद आत्र्ा की प्रत्यभभज्ञा र्े आत्र्ा पवर्षय निीं ि◌ोती, तो कर् श पवर्षयिीन ि◌ो र्ाएगा। ककन्तु बबना पवर्षय के कोई चैतन्य निीं ि◌ो सकता। इसभलए यात्र्ा को अवश्य आत्र्-चैतन्य का पवर्षय र्ानना चाहिए।'[1459] आत्र्ा का ज्ञान प्रार्ाणणक बोध की उसी प्रकिया से ि◌ोता ि◌ै जर्ससे ि◌ैकक स्वयं पवर्षयों को ि◌ोता ि◌ै, परन्तु तो भी आत्र्ा बोध का पवर्षयी ि◌ै, - पवर्षय निीं; र्ैसेकक एक व्यजक्त र्ो पैदैल चलता ि◌ै; यद्यपप चलने की किया उसकी अपनी ि◌ी ि◌ै, चलनेकी किया का कता शर्ाना र्ाता ि◌ै, पवर्षय निीं।

कुर्ाररल के अनुयातययों के अनुसार, प्रत्येक बोधात्र्क काय शर्े आत्र्ा अभभव्यक्त निीं ि◌ोती। पवर्षय-चैतन्य सवदशा आत्र्ा द्वारा आत्र्सात् ि◌्निीं ककया र्ाता। व्यजक्त कभी पवर्षय को र्ानता ि◌ै कक "यि घडा ि◌ै", ककन्तु वि यि निीं र्ानता कक वि घडे को र्ानता ि◌ै। आत्र्ा पवर्षय-चैतन्य (पवर्षयपवपि) के पवर्षयी या पवर्षय के रूप र्े अभभव्यक्त निीं ि◌ोती, ककन्तु कभी-कभी पवर्षयपवपि के साथ एक अन्य भभन्न चैतन्य ि◌ोता ि◌ै, अथात् श ि◌् आत्र्प्रत्यय जर्सका आत्र्ा पवर्षय ि◌ै। प्रभाकर का ऐसा र्ानना उधचत ि◌ै कक अनात्र् के चैतन्य र्े पवर्षयी सदा उपलक्षक्षत रिता ि◌ै, ककन्तु यि सदा स्पष्ट रूप र्े अभभव्यक्त निीं ि◌ोता। आत्र्ा की उपजस्थतत तथा उपजस्थतत की चेतना र्े भेद ि◌ै, ि◌र्ारे भलए यि आवश्यक निीं ि◌ै कक र्ब भी ि◌र् ककसी पवर्षय का ज्ञान प्राप्त करें तो आत्र्ा के पवर्षय र्े भी अभभज्ञ ि◌ों। आत्र्ा केवल आत्र्चैतन्य र्े ि◌ी अभभव्यक्त ि◌ोती ि◌ै, जर्से ि◌ेऔर पवर्षय-चैतन्य को एक निीं ि◌र्ाना र्ा सकता। आत्र्-चैतन्य केवल पवर्षय-चैतन्य से उच्चतर कोहट का चैतन्य ि◌ै।[1460] पवर्षय-बोध के साक्षात् ि◌्अथवा र्ुख्य अनुभव तथा धचन्तात्र्क एवं गौण अनुभव र्े, जर्सर्े र्न अपने ऊपर वापस लौट आता ि◌ै, भेद ि◌ै।

प्रभाकर यि स्वीकार निीं करता कक आत्र्ा और संपवत् ि◌्अथवा चैतन्य एक सर्ान ि◌ैं। और इसीभलए वि ऐसा किने के भलए बाध्य ि◌ै कक आत्र्ा स्वतःप्रकार् निीं ि◌ै। ककन्तु इस र्त का पक्षपोर्षण कहठन ि◌ै। आत्र्ा प्रर्ातृ ि◌ृअथात्श ि◌्र्ाननेवाली ि◌ै और प्रभाकर संपवत् ि◌्अथवा चैतैन्य का कभी ज्ञाता और कभी बोध रूप र्े वणनश करता ि◌ै।'[1461] कुर्ाररल की इस प्रकल्पना का कक आत्र्ा र्ानभसक प्रत्यक्ष का पवर्षय ि◌ै, खण्डन करते ि◌ुए, र्ाभलकनाथ स्वीकार करता ि◌ै कक आत्र्ा स्वतःप्रकार् और बाह्य पदाथों के बोध र्े भी संलग्न रिती ि◌ै,'[1462] इस प्रकार यि चैतन्य का अचेतन आश्रय निीं ि◌ै। संपवत् ि◌्स्वतःप्रकार् ि◌ै, यद्यपप इसका बोध चैतन्य के पवर्षय के रूप र्े निीं ि◌ं

[1459] पृष्ठ 344 से आगे।

[1460] र्ास्त्रदीपपका, पृष्ठ 344-52।

[1461] सपवतृ ि◌ृका प्रयोग चैतन्य के अथों र्े ककया गया ि◌ै। संपवत उत्पपिकारणर् ि◌्आत्र्नरसजन्नकर्षाख्यशयर् ि◌्प्रकरणपधचका, पृष्ठ 63)।

[1462] स्वयंप्रकार्त्वेन, पवर्षयप्रतीततगोचरत्वेन (प्रकरणपधचका, पृष्ठ 151)।

 िोता। कफर, बोधों को आत्रा के पररणार् (पररवतततश रूप) किा र्ाता िै, और इसभलए आत्रा

की प्रकृतत को

चैतन्यर्य िोना चाहिए, अन्यथा यि बोधों के रूप र्ें पररणत निीं िो सकती। आत्रा (अथवा चैतन्य) चैतन्य का

पवर्षय निीं ंिो सकती, ककन्तु इसका अथ शयि निीं ंिै कक यि चैतन्यरहित िै। यि सर्स्त ज्ञान का आधार िै।

स्वयं

ज्ञान के अन्दर िी यि पवर्षयी अथवा अिं के रूप र्ें प्रकट िोती िै। अिं आत्रा से न तो अधधक िै, न कर् िै, जर्से

र् तुरन्त अभभज्ञ िोकर बोध का पवर्षयी अथवा आश्रयरूप र्ानते िैं। आत्रा न तो द्रव्य िै, न गुण िै, न कर् शिी िै। यि केवल चैतन्य िै। र्ैसेकक अद्वैतवेदान्तवादी किंगे, र्ब यि र्ायावर् अिंकारत्य के इजन्द्रय-सम्पकश र्ें आती िै तो अिं बन र्ाती िै। प्रगाढ़ तनद्रा र्ें 'अिंरूप' अनुपजस्थत रिता िै, र्बकक आत्रा अिंकारत्व के सब प्रततबन्धों से रु्क्त रिती िै। पदाथों के बोध र्ें सवव्शयापी आत्रा अथवा चैतन्य पदाथ शके साथ अपनेसम्बन्ध से युक्त प्रकट िोती िै। प्रभाकर इस पवर्षय से अभभज्ञ प्रतीत िोता िै कक उसकी प्रकल्पना उसे ेअद्वैत वेदोन्त की जस्थतत की ओर लेर्ाती िै, परन्तु उसे ेधचन्ता िै कक इस पर बल निींदेना चाहिए, क्योंकक उसका रु्ख्य उद्देश्य र्नुष्यों तथा उनके उिरदातयत्व के भेदों पर बल देना िै। प्रभाकर किता िै : "यि कथन कक 'र्'ं ै और 'र्ेरा' ये उजक्तयां ंआत्रा के सम्बन्ध र्ें एक भर्थ्या पवचार की ओर संकेत करती िैं, उन व्यजक्तयों के प्रतत िोनी चाहिए जर्न्िोंनेसांसाररक पदाथों की ओर अपनी आसजक्त का दर्न कर भलया िै, उनके प्रतत निीं र्ो कर् शर्ें रु्टे िुए िैं।"[1463]

कुर्ाररल के अनुसार आत्रा र्रीर सेभभन्न िै, तनत्य िै और सवत्रश व्याप्त िै। आत्रा अपने र्ें चैतन्य िै, यद्यपप आत्राएंअनेक िैं।[1464] क्योंकक सब आत्राएंचैतन्य स्वभाव की िैं, इसभलए उपतनर्षदें उन्िें एक िी किती िैं।'[1465] आत्रा चैतन्य िै और बोध की, र्ो आत्रा से उत्पन्न िै, आश्रय भी िै।'[1466] 'अिं' भाव के द्वारा आत्रा के अजस्तत्व का अनुर्ान ककया र्ाता िै। आत्रा अपने-आप से अभभव्यक्त िोती िै, यद्यपप दूसूरे इसका प्रत्यक्ष निींकर सकते।[1467] आत्रा बोध का पवर्षय िै, क्योंकक इसका साक्षात् ् ज्ञान िोता िै, र्ैसे ेघडा िै। यि र्ानस-प्रत्यक्ष का पवर्षय िै। आत्रा ज्ञान का पवर्षय और पवर्षयी दोनों िी िैं।[1468] और यि परस्पर पवरोध निीं, क्योंकक र् आत्रा के अन्दर एक तो द्रव्यात्रक अंर् पाते िैं र्ो बोध का पवर्षय िै, और एक चैतन्य का अंर् पाते िैंर्ो वोध का पवर्षयी (प्रर्ाता) िै।'[1469] प्रभाकर के अनुयायी इस र्त पर आपपि करते िैं। यहद आत्रा का द्रव्यात्रक अंर् बुद्धधर्ून्य िै, तो यि सवथशा आत्रा िी निीं। र्ो कुछ रिता िै यि केवल चैतन्यांर् िी िै, और वि पवर्षयी

[1463] बृिती, पृषूठ 32; 'एभर्याहटक सोसायटी ऑफ बंगाल' र्ें र्ीर्ांसासूतूर।

[1464] श्लोकवाततकश, आत्रवाद, 74-75।

[1465] तन्त्रवाततकश, 2: 1, 5

[1466] रार्ानुर् र्ो इसी प्रकार के र्त को स्वीकार करते िैं, बोध को आत्रा का तनत्यगुण र्ानते िैं, र्ो पवस्तृत तथा संकुधचत िो सकता िै, र्बकक कुर्ाररल का पवचार िै कक बोध आत्रा का पवकास (पररणार्) िै और इसका उदय प्रर्ाणों द्वारा िोता िै।

[1467] श्लोकवाततकश, आत्रवाद, 142-143।

[1468] श्लोकवाततकश, आत्रवाद, 107।

[1469] तुलना कीजर्ए: न्यायरत्नावली। आत्नोऽजस्त अंर्द्वयं धचदंर्ोऽधचदंर्श्च धचदंर्ेन द्रष्टत्वर्धचदंर्ेन ज्ञानसुखाहदपररणाभर्त्वं ं'र्ार् ्अिं र्ानाभर्' इतत ज्ञयेत्वं च (पी. र्ास्त्री : पूवर्शीर्ांसा, पृषूठ 95)। और देणखए पववरणप्रर्ेयसंग्रि, धथबौत का इंजग्लर् रांसलेर्न, इजण्डयन थौट, खण्ड 1, पृषूठ 357।

 तथा पवर्षय दोनों रूप र्ें काय शर्नीकर सकता। इसके हिस्से ◌े र्नीीिं, और इसीभलए अपररवतनशीय ◌िै, जर्ससे ◌ेएक ◌िी
सर्य र्ें यि पवर्षय और पवर्षयी दोनों का रूप धारण र्निीं कर सकता। यहद द्रव्यत्व चैतन्य का पवर्षय ◌िै, तो आत्र्ा पवर्षयी अथवा ज्ञाता र्नीीिं सकती, क्योंकक यि घडे के सर्ान ◌िी द्रव्य ◌िै। यहद कुर्ाररल यि किता ◌िै कक चैतन्य का पवरुद्ध रूप पवर्षयी ◌िै और विी चैतन्य लौकककक दृजष्ट से पररवतततश ◌िोकर पवर्षयी ◌िो र्ाता ◌िै,'[1470] तो ऐसा प्रतीत ◌िोता ◌िै कक ◌िर्ारे पास तीन प्रकार ◌िैं, अथात्श ◌्रुद्ध पवर्षयग्रिण, रुद्ध ज्ञातृता, और घडे आहद पदाथ शसे पररवतततश पवर्षयी (घटावजच्छन्नज्ञातृता)। इसके अततररक्त, क्योंकक प्रत्येक पदाथ शके बोध र्ें आत्र्ा की ज्ञाता के रूप र्ें साक्षात् ◌्अभभव्यजक्त ◌िोती ◌िै, इसभलए र्ानस-प्रत्यक्ष के सर्ान एक अन्य बोध की, र्ो आत्र्ा की साक्षात् ◌् एक पवर्षय के रूप र्ें अभभव्यजक्त करता ◌िै, कल्पना करना आवश्यक ◌िै।

यहद ज्ञान का सम्बन्ध आत्र्ा सिै, तो आत्र्ा चैतन्यपविीन र्नीीिं सकती। यहद आत्र्ा चैतन्य ◌िै, तब यि स्वतःभसद्ध ◌िै, क्योंकक सर्स्त प्रर्ाण इसकी यथाथतशा की पूवकशल्पना कर लेता ◌िै।[1471] कुर्ाररल के र्त र्ें पवर्षय चैतन्य के साथ वृपृ द्वारा सम्बद्ध प्रतीत ◌िोते ◌िैं।' आत्र्ा का अधचदंर् (चैतन्यपविीन अंर्) सम्भवतः अन्तःकरण ◌िै, जर्सके द्वारा आत्र्ा पवपि भसके रूप र्ें पवकभसत ◌िुई ◌िै। केवल इसभलए कक आत्र्चैतन्य र्ें आत्र्ा पवर्षयी तथा पवर्षय दोनों ◌िै, यि पररणार् न तनकालना चाहिए कक इसर्ें चैतन्य तथा चैतन्यपविीनता दोनों के अंर् ◌िैं। वस्तुतः, ◌िर् देखते ◌िैं कक कुर्ाररल और प्रभाकर दोनों आत्र्ा के पवर्षय र्ें एक अधधक उपयुक्त पवचार को प्राप्त करने के भलए संघर्ष शतो करते ◌िैं, ककन्तु अपनी-अपनी कियात्र्क रुधचयों के कारण उसे ◌ेप्राप्त र्निीं कर सकते।

13. यथाथतशा का स्वरूप

र्ीर्ांसा की प्रत्यक्ष-पवर्षयक प्रकल्पना पदाथों की यथाथतशा को र्ान लेती ◌िै, क्योंकक यथाथ शपदाथों के साथ सम्पकश ◌िोनेपर ◌िी प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न ◌िोता ◌िै।'[1472] बर् ◌िर् प्रत्यक्ष ज्ञान् ◌्प्राप्त करते ◌िैं तो पदाथों को प्रत्यक्ष करते ◌िैं, अपनेबोधों को र्निीं।'[1473] बोध का ◌िर् अनुर्ान करते ◌िैं, प्रत्यक्ष र्निींकरते। ज्ञान की स्वतःप्रार्ाण्णकता का भसद्धान्त र्ाने गए पदाथों की यथाथतशा को उपलक्षक्षत करता ◌िै। कुर्ाररल उस प्रकल्पना (तनरालम्बनवाद) का प्रत्याख्यान करता ◌िै जर्सके अनुसार पवचारों का कोई आधार र्निीं ◌ंिै. और रू्न्यवाद की प्रकल्पना का भी खण्डन करता ◌िै जर्सके अनुसार पदाथों की बाह्य यथाथतशा केवल रू्न्यर्ात्र ◌िै। बाह्य र्गत् ◌्की यथाथतशा ◌िी केवल अनुभव और र्ीवन की आधारभपि ◌िै। यहद पवचारों के अततररक्त और कुछ न ◌िो, तो ◌िर्ारे सर्स्त तनष्कर्ष,श र्ो बाह्य यथाथतशा र्ें पवश्वास पर आधाररत ◌िैं, भर्थ्या ◌िी का ◌िो र्ाएंगे। बोधों का यथाथ शआश्रय बाह्य र्गत र्ें ◌िै, यि आगे ◌ेऔर ज्ञान से भी पवरोध र्निीं खाता। यहद यि किा र्ाए कक र्ागररतावस्था के बोधों

[1470] घटावजच्छन्ना हि ज्ञातृता ग्राह्या, रुद्धेव ज्ञातृता ग्राहिका (न्यायर्रंी , 430)।

[1471] देणखए सुरेश्वरकृत सम्बन्धवाततकश, 1066।

[1472] तत्सम्प्रयोग, र्ीर्ांसासूत्र, 1: 1, 4।

[1473] अथपशवर्षया प्रत्यक्षबुद्धधन शवुद्धधपवर्षया, 1/1 , 4 पर बर।

 की अयथाथतशा योधगयों की अन्तदृजशष्ट सेर्ालूर् िोती िै, तो कुर्ाररल इसका उिर देते िुए

योधगयों की अन्तदृजष्ट
की प्रार्ाणणकता का तनर्ेषेध करता िै, और अन्य यौधगक अन्तःप्रेरणाओं का उद्धरण देता िै रो् र्गत् ्की
यथाथतशा को पुष्ट करती िैं। र्ीर्ांसा के पवचारक र्गत् ्को प्रतीयर्ान प्रपंच बतानेवाली कल्पना का सर्थनश निीं ं
करते। "रो् ब्रह्र् को र्ानतें वे यहद इसी पररणार् पर पिुंचते िैं कक वि सब कुछ, रो् ज्ञात िै, भर्थ्या िै, और रो्
अज्ञात िै, वि सत्य िै, तो र् ैंझुककर उनसे ेपवदा लेता िंूं।"[1474] यि पवश्व यथाथ शि और र्न से, रो् इसका

प्रत्यक्ष
करता िै, स्वतन्त्र िै।

प्रभाकर द्रव्य, गुण, कर्,श सार्ान्य, परतन्त्रता, र्जक्त, सादृश्य और संख्या-इन आठ पदायों को स्वीकार
करता िै। द्रव्य, गुण और कर् शकी व्याख्या लगभग उसी प्रकार की िै रै्सी कक न्याय की प्रकल्पना र्ें िै। प्रभाकर
के अनुसार, सार्ान्य यथाथ शि। यि प्रत्येक व्यजक्त के पूणरूशप र्ें पवद्यर्ान रिता िै और इजन्द्रयप्रत्यक्ष का
पवषय िै। व्यजक्त से पृथक् इसका अजस्तत्व निींि। प्रभाकर उच्चतर् प्रर्ातत के अजस्तत्व को स्वीकार निीं ं
करता, इस आधार पर कक िर्ें उसकी अभभज्ञता निीं ंिै। िर् पदाथों को केवल पवद्यर्ान निींदेखते। र्ब िर्
ककसी व्यजक्तरूप पदाथ शको पवद्यर्ान (सत्)् किते िैं, तो िर्ारा तात्पय शयि िोता िै कक वि अपनी पवभर्ष्ट सिा
(स्वरूपसिा) रखता िै। िर् ककसी वस्तु को उसके गुणों से पृथक् निींदेखते। सार्ान्य और पवर्ेष सर्वाय-
सम्बन्ध से सम्बद्ध िैं। र्ब एक नया व्यजक्त उत्पन्न िोता िै, तो सर्वाय का नया सम्बन्ध उत्पन्न िोता िै,
जर्सके द्वारा वि व्यजक्त उस वगगशत लक्षण के सम्बन्ध र्ें आता िै रो् अन्य व्यजक्तयों के अन्दर पवद्यर्ान िै।
र्ब एक व्यजक्त का नार् िो र्ाता िै ती सार्ान्य और व्यजक्त के र्ध्य रो् सर्वाय सम्बन्ध िै उसका भी नार् िो
र्ाता िै। सर्वाय तनत्य निीं िै, क्योंकक वि पवनश्वर वस्तुओं र्ें भी पवद्यर्ान रिता िै। यि एक निींि, बजल्क
जर्तनी वस्तुएं िैं उतना िी िैं। यि दोनों प्रकार का िै-उत्पन्न भी िै, अनुत्पन्न भी िै; दृश्य भी िै, अदृश्य भी िै।
जर्न वस्तुओं र्ें यि रिता िै उनके स्वरूप के अनुसार िोता िै। र्जक्त उस क्षर्ता को हदया गया साधारण नार् िै
जर्सके द्वारा द्रव्य, गुण, कर् शऔर सार्ान्य वस्तुओं के कारण बनते िैं।[1475] क्षर्ता, जर्सका अनुर्ान कायों से
िोता िै, तनत्य वस्तुओं र्ें तनत्य िै और अन्यों र्ें अतनत्य िै। प्रभाकर के अनुसार सादृश्य को द्रव्य, गुण अथवा
कर् शके साथ न भर्ला देना चाहिए, क्योंकक यि गुणों र्ें आन्तररक सम्वन्ध से रिता िै। द्रव्य गुणों र्ें निींरि
सकता, और न िी एक गुण अथवा कर् शदूसूरे गुण अथवा कर् शर्ें रि सकता िै। सादृश्य और र्ाततगत सार्ान्य
रूप एकसर्ान निींि, क्योंकक सादृश्य अपनेसि-सम्बन्धी पर तनभरश करता िै। यि र्ातत से भी सम्बद्ध िै, रै्से े
रि् किते िैं कक गाय की र्ातत घोडेकी र्ातत के सर्ान िै। अभाव को और इसे ेएकसर्ान निींर्ाना र्ा सकता,
क्योंकक इसका बोध इसकी प्रततकूल सिा के द्वारा निीं र्ाना र्ाता। अनुर्ान, अथवा साक्ष्य और उपर्ान िर्ें
इसका ज्ञान कराते िैं।"[1476] र्जक्त, सादृश्य और संख्या, ये स्वतन्त्र पदाथ शर्ानेगए िैं, क्योंकक इर्न्िें इस द्वारा
अन्यों र्ें लाया निींर्ा सकता। नैय्यातयक द्वारा प्रततपाहदत पवर्ेष को निींर्ाना गया, क्योंकक यि एक पवभर्ष्ट

[1474] वृिती, पृषूठ 30। और देणखए र्ास्त्रदीपपका अद्वैतर्ततनरास ।

[1475] इस र्त की कक कारण के अन्दर एक अदृश्य र्जक्त रिती िै रो् काय शको उत्पन्न करती िै, आलोचना नेव्यातयक नेइस आधार पर की िै कक यि र्जक्त न तो हदखाई देती िै और न अनुर्ान की र्ा सकती िै। देणखए कुसुर्ांर्भल, ।।

[1476] प्रकरणपंधचका, पृषूठ 110 से आगे।

प्रकार के गुण का तनदेर् करता िै। अभाव देर् के अन्दर अपने उस आधार को छोडकर, जर्सरे् िि पवद्यर्ान र्ाना र्ाता िै, अन्य कोई वस्तु निीं िै।

कुर्ाररल सब पदाथों को भावात्र्क तथा अभावात्र्क रूप र्ें बांटता िै। अभावात्र्क पदाथश चार प्रकार के िैं: पूववशती, परवती, परर् और पारस्पररक। भावात्र्क पदाथश भी चार प्रकार के िैं: द्रव्य, गुण, कर्श और सार्ान्य। र्जक्त और सादृश्य को द्रव्य के अन्तगशत र्ाना गया िै। क्षर्ता पदाथों का ऐसा धर्श िै जर्सका अनुर्ान िोता िै, प्रत्यक्ष निीं।ं यि वस्तुओं के साथ िी उत्पन्न िोती िै। संख्या एक गुण िै। र्जक्त प्राकृततक (सिर्) या उत्पन्न (आधेय) िोती िै। सादृश्य केवल एक गुण िै, र्ो इस तथ्य र्ें पाया र्ाता िै कक एक से अधधक पदाथों र्ें एक सर्ान लक्षण िोते िैं। यि एक भभन्न पदाथश निीं िो सकता, क्योंकक िर् अपने साधारण अनुभव र्ें सादृश्य की भभन्न-भभन्न श्रेणणयों से अभभज्ञ रिते िैं, कुर्ाररल की दृजष्ट र्ें सर्ावय स्वयं उन वस्तुओं से, जर्नर्ें यि रिता िै, भभन्न निीं।'[1477] प्रभाकर के सर्ान, कुर्ाररल का र्त िै कक र्ाततगत सार्ान्यरूप प्रत्यक्ष का पवषय िै।[1478] र्ो वस्तुएं भभन्न िैं उनर्ें सम्बन्ध पवद्यर्ान रिता िै, ककन्तु सर्ावय इस प्रकार का सम्बन्ध किा र्ाता िै र्ो पृथक् न िो सकने योग्य वस्तुओं र्ें िी रिता िै, र्ैसेकक वगश तथा व्यजक्त र्ें, और इस प्रकार यि एक असम्भव पवचार िै।

द्रव्य वि िै जर्सके अन्दर गुण रिते िैं। द्रव्य संख्या र्ें नी िैं पृथ्वी, र्ल, वायु, अजग्न, आकार्, आत्र्ा, र्न, काल और देर्। कुर्ाररल इस सूची र्ें अन्धकार और र्ब्द को र्ोडता िै।'[1479] पृथ्वी, र्ल, वायु और अजग्न र्ें रूप तथा स्पृश्यता िै, और इसभलए र्ब वे अपनी आणपवक अवस्था र्ें निीं िोते, तो दृजष्ट तथा स्पर्श की इजन्द्रयों के पवषय िोते िैं। अन्य द्रव्य प्रत्यक्ष के पवषय निीं, उनका केवल अनुर्ान िोता िै। आकार् की प्रकट धवलता इसर्ें अजग्न के कणों के कारण िै। आकार् का र्ब्द के आश्रय रूप र्ें अनुर्ान िोता िै। वायु प्रभाकर के र्त र्ें न ठण्डी िै, न गरर्। उष्णता अथवा र्ीतता इसर्ें अजग्न अथवा र्ल के कणों के व्याप्त िोने के कारण िै। कुर्ाररल के अनुसार, वायु के स्पर्श द्वारा

प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त िोता िै। गुणों के कथन तथा उनका द्रव्यों के साथ सम्बन्ध बतलाने र्ें प्रभाकर और कुर्ाररल वैर्ेपषक के ऋणी िैं। कुर्ाररल, प्रर्स्तपाद का अनुसरण करते िुए चौबीस गुणों को धगनाता िै; केवल र्ब्द के स्थान पर ध्वतन और धर्श व अधर्श के स्थान पर अभभव्यजक्त तथा क्षर्ता को रखता 5/6 । र्िां प्रभाकर बलपूवकश यि किता िै कक व्यजक्तत्व केवल तनत्य वस्तुओं िी पर लागू िोता िै, विां कुर्ाररल का र्त िै कक यि उत्पन्न पदाथों तथा तनत्य वस्तुओं पर भी लागू िोता िै।

1477 श्लोकवाततकश, प्रत्यक्षसूत्र, पृष्ठ 146-50।

1478 इजन्द्रयगोचर, श्लोकवाततकश, वनवाद, 24।

1479 . प्रभाकर के अनुसार, अन्धकार केवल प्रकार् के अभाव का नार् िै। यहद यि द्रव्य अथवा गुण िोता तो इसका प्रत्यक्ष हदन र्ें भी िोना चाहिए था। कुर्ाररल का तकश िै कक अन्धकार एक द्रव्य िै क्योंकक इसर्ें नीलेपन का गुण िै और इसर्ें गतत िो सकती िै।

भारतीय दर्नश-2 371 कर् शको वैरे्पर्षक रे्ं पांच प्रकार का बताया गया िै। रिं्प्रभाकर का र्त िै कक यि केवल अनुर्ान का पवर्षय िै,

विांकुर्ाररल इसे ेप्रत्यक्ष का पवर्षय र्ानता िै। प्रभाकर के अनुसार, िर् र्ब देर् के पवन्दुओं से संयोग और पवयोग देखते िैं, तो िर् किर्तें कक िर् गतत देखते िैं। ये सम्पकश देर् के अन्दर िैं, र्बकक गतत पदाथ शरें िै। कुर्ाररल का र्त िै कक यहद गतत का अनुर्ान िोता िै, तो इसका अनुर्ान देर् hat phi बबन्दुओंसे ककसी पदाथ श के संयोग और पवयोग के अभौततक कारण के रूप रें िी िो सकता िै, और इससे यि उपलक्षक्षत िोगा कक यि पदाथ श

और देर् दोनों रें रिता िै, र्बकक यि केवल पदाथ शरें िी रिता िै। इसभलए यि तकश करता िै कक िर् गतत को देखते िैं, र्ो पदाथ शरें िै और र्ो देर् के अन्दर संयोग और पवयोग को उत्पन्न करती िै। र्बकक कुर्ाररल द्रव्य, गुण और कर् शकी सार्ान्यताओं को स्वीकार करता िै, प्रभाकर अजन्तर् दो को स्वीकार निीं ंकरता। पूवशीर्ांसादर्नश आहदर् सृजृष्ट और तनतान्त प्रलय के भसद्धान्त को स्वीकार निींकरता।'[1480]

14. नीतत र्ास्त्र

उधचत र्ीवन की योर्ना धर् शिै। रै्भर्तन धर् शकी पररभार्षा करते िुए किर्तें कक धर् शएक अध्यादेर् अथवा आदेर् िै।' [1481]'चोदना' अथात्श ्तनरे्षेधाज्ञा धर् शका लक्षण िै। यि पवधानकार द्वारा की गई पवधान की पररभार्षा िै। र्बर के अनुसार, चोदना ऐसेवचनों की द्योतक िै र्ो र्नुष्य को कर् शरें प्रवृ िोनेकी प्रेरणा करते े िैं।'[1482] 'चाहिए' का उद्भव बाह्य िै क्योंकक कतव्शय िर्ारे भलए एक र्जक्त द्वारा प्रकाभर्त ककए र्ाते िैं, िर् स्वयं उर्न्िें प्रकाभर्त निींकरते। 'चोदना' र्ब्द का एक और अथ शभी िै, अथात्श ्दैवीय प्रेरणा अथवा अन्दर से िोने वाली प्रेरणा। र्ो अन्तःस्थ हृदय को अच्छा लगता िै वि बिार की आज्ञा के अनुकूल िोता िै। एक व्यजक्त की इच्छा और र्ातत की दी गई व्यवस्था परस्पर सर्ान िोती िैं। टीकाकारों का किना िै कक जर्सका आदेर् हदया र्ाता िै उसके अन्दर दुःख की अपेक्षा सुख उत्पन्न करनेकी क्षर्ता अधधक रिती िै। इस प्रकार आचरण की पद्धततयांजर्नका पवधान ककया र्ाता िै, अभभलपर्षत उद्देश्यों की ओर िरें ले र्ाती िै।ं सुख िी लक्ष्य िै, र्ो र्ीर्ांसादर्नश को अभभर्त िै, यद्यपप इससे तात्पय शइस र्गत् ्के सुख से निीं। पारलौककक सुख के भलए िरें इस लोक रें आत्त्याग का अभ्यास करना चाहिए। जर्न कायों का पररणार् नुकसान अथवा दुःख (अनथ)श िो वे धर् शनिीं िैं। जर्से ेकरने के भलए आज्ञा दी गई िै वि धर् शिै, और वि िरें सुख की ओर ले र्ाता िै।'[1483] यहद िर् आज्ञाओंका पालन निींकरते ेतो केवल यिी निींकक िर् अपने सुख से वंधंचत िोते िैं, दुःख भोगते िैं।

[1480] श्लोकवाततकश, सम्बन्धाक्षेपररिार, 113।

[1481] चोदनालक्षणोऽथो। धर्ःश (1/1, 2) ।

[1482] चोदनेतत कियायाः प्रवतकंश वचनर्ािुः (1: 1, 2 के ऊपर र्बर)।

[1483] आदेर् पवधध के अनुकूल िै, कतव्शय धर् शके अनुकूल िै और अनुर्तत फल के अनुकूल िै।

पूवर्शीर्ांसा द्वारा प्रततपाहदत नीततर्ास्त्र ईश्वरीय ज्ञान पर आधाररत ि।[1484] वैहदक आज्ञाएं ंधर् शके ब्यौरों का प्रततपादन करती िैं। सत्कर्,श र्ीर्ांसक के अनुसार, वि ि र्ो वेद पवहित ि। कट्टरपंथी प्रकल्पना के अनुसार, सूतृत के वाक्यों के अनुरूप वैहदक वाक्य िैं, यद्यपप उनर्ें से कततपय लुप्त िो गए िों, यि सम्भव ि। यहद सूतृतयां श्रुतत की पवरोधी िैं तो उन सूतृतयों को अर्ान्य ठिराना िोगा।[1485] िर्ें यहद प्रतीत िो कक सूतृतयों का तनर्ाणश स्वाथ शकी प्रेरणा से िुआ ि, तो ऐसी सूतृतयों को अवश्य त्याग देना चाहिए।'[1486] सूतृतयों से उतरकर सज्जन पुरुषों का आचरण अथवा प्रथा िर्ारे र्ागदशर्कश िैं।[1487] ऐसेकतव्शय जर्नके भलए धर्शास्त्र र्ें अनुर्तत र्िींपाई र्ाती, उनकी व्याख्या उपयोधगता के भसद्धान्त पर की र्ाती ि। यहद िर् सिर् प्रेरणाओं के वर् िोकर कोई काय शकरते िैं तो िर् धर्ात्शर्ा र्िीं।'[1488] एक हिन्दू ूका र्ीवन वैहदक तनयर्ों से र्ाभसत ि, और इसभलए हिन्दू ूपवधान की व्याख्या के भलए र्ीर्ांसा के तनयर् बिुत र्ित्त्वपूण शिैं।

र्ोक्ष की प्राजप्त के भलए िर्ें सन्ध्या इत्याहद तनत्यकर्ों का पालन करना चाहिए और उधचत अवसर आनेपर नैभर्पिक कर्ों का पालन करना चाहिए। ये बबना ककसी प्रततबन्ध के कतव्शय कर् िैं। यहद इर्न्ें िर् पूण श र्िींकरते ेतो िर्ें पाप (प्रत्यवाय) लगता ि। पवर्ेर्ष उद्देश्यों की प्राजप्त के भलए िर् काम्य कर् शकरते िैं। यहद िर्ें उद्देश्यों की कार्ना न िो तो उर्न्ें करने की आवश्यकता र्िीं। तनपर्षद्ध आचरणों से बचकर िर् नरक से बचते े िैं, और यहद िर् काम्य कर्ों से दूर रिें तो िर् अपनेको स्वाथपशरक उद्देश्यों से स्वतन्त्र रख सकेंगे,े और यहद िर् प्रततबन्धरहित कतव्शय कर्ों का पालन करते ेरिें तो िर्ें र्ोक्षलाभ िोगा।

र्ैभर्तन के अनुसार, यज्ञों के करने का अधधकार केवल ऊपर के तीन वणों, अथात्श ्ब्राह्मण, क्षबत्रय और वैश्य को िी ि। उसे ेआत्रेय का सर्थनश प्राप्त िोता ि। परन्तुबादरी के सर्ान ऐसे पवचारक भी थे ेजर्नका र्त था कक यज्ञों का अधधकार सब वर्षों को एक सर्ान प्राप्त ि। र्ैभर्तन का आधार यि ि कक, क्योंकक र्ूद्र वेदों का अध्ययन र्िींकर तकते, इसभलए वे यज्ञों को करने के अधधकार से वंधचत िैं।[1489]

प्रभाकर के अनुयायी, संकल्पर्जक्त का पवस्तृत पवश्लेर्षण करते िैं। 'भसद्धान्त र्ुक्तावभल' र्ें ऐजच्छक कर् शका, प्रभाकर के र्त से, तनम्नभलणखत िर् हदखाया गया ि: कायतशाज्ञान, अथात्श ्कोई काय शकरना ि इसका अभभज्ञान, अथवा कतव्शय का भाव; धचकीर्षा,श अथात्श ्उसको करने की इच्छा जर्सर्ें यि ज्ञान उपलक्षक्षत ि कक यि काय शककया र्ा सकता ि, अथात्श ्कृततसाध्यताज्ञान; चेप्टा; और किया। प्रभाकर कल्याण की भावना की अपेक्षा

1484 तुलना कीजर्ए पाले द्वारा की गई धर् शकी पररभार्षा से: "ईश्वरेच्छा के अनुसार तथा स्थायी सुखकी कार्ना से ेर्नुष्य-र्ातत का कल्याण करना।"

1485 1/3, 3

1486 1/3, 4 ।

1487 1/3 ,8-9 ।

1488 4: 1,3 ।

1489 6:1, 25-38। र्ैभर्तन का पवरोध कुछ तत्त्वों से िोता ि, जर्नका सर्ाधान करने ेके भलए यि बिुत प्रयत्न करता ि। 6: 1, 44-50 र्ें रथकार के भलए, र्ो चारों वों के बािर ि, अग्न्याधान यज्ञ करने ेका अधधकार स्वीकार ककया गया ि। तनर्षाद रौद्रयज्ञ के अधधकारी िैं। (61, 51-52) 1

कतव्शय-भावना पर अधधक बल देता िै, परन्तु काम्य कर्ों र्ें कल्याण की भावना पवद्यर्ान रिती िै, वैहदक यज्ञों र्ें, आदेर् अपनी र्ाजब्दक र्जक्त द्वारा, कता शके अन्दर, उस उद्देश्य की प्राजप्त के भलए काय शकरने की प्रेरणा उत्पन्न करता िै जर्सका संकेंत आदेर् र्ें ककया गया िै। र्ीर्ांसा दर्नश र्ानवीय स्वतन्त्रता को र्ानता िै, अन्यथा र्नुष्य अपनेकर्ों के भलए उिरदायी निीं ठिराए र्ा सकते।

कर्-शपवधान का तात्पय शयहद ठीक-ठीक सर्झ भलया र्ाय तो र्ानवीय स्वतन्त्रता के साथ इसकी असंगतत निीं। िर् प्रथर् पग उठाने से बच संकते िैं, ककन्तुर्ब एक बार पग उठा भलया तो, स्वभाव के पवधान के अनुसार, दूसूरा पग सरलता सेउठ र्ाएगा।' [1490]

वेद र्नुष्य-र्ातत की पवज्ञता का प्रततततनधधत्व करते िैं, और यहद उनर्ें भर्क्षक्षत सर्ार् की सम्र्तत से पवरोध पाया र्ाता िै तो उनकी प्रार्ाणणकता के पवर्षय र्ें स्वभावतः सन्दिे उत्पन्न िोता िै। कुर्ाररल तकश करता िै कक वैहदक आदेर्ों र्ें अन्ततनहशित प्रार्ाणणकता िै, क्योंकक अधधकतर र्नसाधारण उन्िें र्ानते िैं। उसकी सम्र्तत र्ें सार्ाजर्क चैतन्य वैहदक तनयर्ों की प्रार्ाणणकता को पुष्ट करता िै। तो भी वि कतव्शय के पवर्षय र्ें िर्ें वेद की पथप्रदर्कशता को स्वीकार करने का आदेर् देता िै, और सर्ार्कल्याण अथवा दूसूरों का सुख सरीखे अतनजश्चत पथप्रदर्कशों पर पवश्वास न करने का आदेर् करता िै।'[1491] र्िान् ्पुरुर्षों का आचरण भी िर्ें धर् शके स्वरूप का संकेत करता िै। ककन्तु कुर्ाररल बौद्धर्त के भसद्धान्तों का सर्थनश करने र्ें संकोच अनुभव करता िै, क्योंकक बौद्ध वेदों की प्रार्ाणणकता का पवरोध करते िैं। वि नेकनीयती के साथ स्वीकार करता िै कक बौद्धों का आचार-पवधान, र्ो अहिंसा पर बल देता िै, श्रेष्ठ िै, यद्यपप वे र्ो वेदों का खण्डन करते िैं, वि तनन्दनीय िै। बौद्धर्त र्ें र्ो सत्य का अंर् िै वि उससेभर्धश्रत िै र्ो अधधकतर भर्थ्या िै, और इसभलए वि इसकी तुलना उस दूधू के साथ करता िै र्ो कुिे की खाल र्ें रखा िुआ िै।"[1492]

वेदान्त याजन्त्रक कियाकलाप (कर्कशाण्ड) का पवरोध उसी भावना को लेकर करता िै जर्स भावना से ईसार्सीि ने पारभसयों का पवरोध ककया और लूथर के कर्ों द्वारा औधचत्य-तनणयश के भसद्धान्त का पवरोध ककया। प्रत्येक काय शचािे वि ककतना िी पपवत्र क्यों न प्रतीत िो, पवना ककसी र्नोभावना के याजन्त्रक रूप र्ें ककया र्ा सकता िै, और इसीभलए अपने-आप र्ें र्ोक्ष के भलए अधधक उपयोगी निीं ंिो सकता। कर्कशाण्डवाद अधधकतर िातनकारक िै, क्योंकक उसर्ें भर्थ्यापवश्वास रिता िै। िर् चािे ककतने िी यज्ञ क्यों न करें, कफर भी िो सकता िै कक वे आन्तररक भावना र्ें कोई भी पररवतनश न ला सकें। यहद पुण्य अथवा धर् शसे तात्पय शनैततक सुधार अथवा हृदय पररवतनश से िै, तो कर्कशाण्ड-सम्बन्धी यज्ञ निीं ंबजल्क स्वाथत्शयाग आवश्यक िै। वेद श्रद्धा, भजक्त और तपस्या का पवधान करते िैं,'[1493] जर्नका यज्ञों के साथ बिुत दूरू का सम्बन्ध िै। ईश्वरवादी र्त, र्ो घोर्षणा डेररयस का भूत पभर्यशन अवनतत से ्रेयि नैततक भर्क्षा लेता िै: "र्ब िर् अपनी स्वतन्त्र इच्छा से पाप की ओर वेग से

1490
दौडतिें, तो स्वयंपरर्ात्र्ा िर्ारा सिायक िोता िै।"

1491 श्लोकवाततकश, 2: 242-47।

1492 श्वचर्तशनक्षक्षप्तक्षीरवत् ्(तन्त्रवाततकश, 1/3, पृष्ठ 127)।

1493 श्रद्धांदेवा यर्र्ाना... उपासते (ऋग्वेद, 10 151-54) और देणखए ऋग्वेद, 10: 167।

करते िैं कक सर्स्त काय शईश्वर को सर्पपतश करके करना चाहिए, वेदे की भावना के अनुकूल िैं। कुछ परवती ीर्ांसकों का यिी र्त िै। लौगाक्षक्ष भास्कर िर्ें बतलाता िै कक र्ब ईश्वरापणश के भाव से कतव्शय का पालन ककया र्ाता िै तो वि र्ोक्ष का कारण बन र्ाता िै।'[1494] इस लोक र्ें या परलोक र्ें पुरस्कार का भाव अनासजक्त तथा आत्र्त्याग की भावना को दबा देता िै। इसके अततररक्त, ीर्ांसक र्ुख्य करके यज्ञों के पवर्षय र्ें िी किते ि ैं,[1495] और इस प्रकार र्ानवीय र्ीवन के र्ुख्य भाग को अछूता छोड देते िैं।

15. अपूव श

कर्ो को करने का आदेर् उनके फलों को दृजष्ट र्ें रखकर ककया र्ाता िै। कर् शऔर उसके पररणार् र्ें एक प्रकार का सम्बन्ध रिना आवश्यक िै। कर्,श र्ो आर् ककया गया िै, ककसी भपवष्यकाल र्ें अपना पररणार् उत्पन्न निींकर सकता र्ब तक कक वि सर्ाप्त िोनेसे पूव शककसी अदृष्ट पररणार् को र्न्र् न दे दे। र्ैभर्तन इस प्रकार की एक अदृष्ट र्जक्त की कल्पना करते िैं और उसे े'अपूव'श की संज्ञा देते िैं।[1496] इसे ेया तो फल का पूववशती अदृष्ट र्ाना र्ा सकता िै या कर् शकी पश्चाद्वती अवस्था। क्योंकक यज्ञ इत्याहद की व्यवस्था ऐसे तनजश्चत फलों के भलए की गई र्ो दीघकशाल के बाद भर्लते िैं, इसभलए कालान्तर र्ें फल की प्राजप्त तब तक सम्भव निींिो सकती र्ब तक कक इसके भलए अपूव शको र्ाध्यर् न र्ाना र्ाए।'[1497] काय शतथा उसके पररणार् के बीच 'अपूव'श एक अततलौककक कडी िै।[1498] ीर्ांसक कर्ों के फलों को ईश्वर की इच्छा पर तनभरश र्ानने के इच्छुक निींिैं, क्योंकक नानापवध कायों का कारण कोई एक निींिो सकता।'[1499]

कुर्ाररल के अनुसार, अपूव शप्रधान कर् शर्ें अथवा कता शर्ें एक योग्यता िै, र्ो कर् शके करनेसे पूव शनिीं थी और र्जसका अजस्तत्व धर्श़ास्त्र के आधार पर भसद्ध िोता िै। कर् शके द्वारा उत्पन्न तनजश्चत र्जक्त, र्ो पररणार् तक पिुंचाती िै, अपूव शिै। अपूव शका अजस्तत्व अथापशपि से भसद्ध िोता िै। यहद िर् इसके अजस्तत्व को निींर्ानें तो ककतने िी वेदवाक्यों की व्याख्या न िो सकेगी। कता शद्वारा ककया गया यज्ञ कता शर्ें साक्षात् ्एक ऐसी र्जक्त उत्पन्न करता िै र्ो उसके अन्दर अन्यान्य र्जक्तयों की भांतत र्न्र्-भर पवद्यर्ान रिती िै और र्ीवन के अन्त र्ें उसके भलए प्रततज्ञात पुरस्कार प्राप्त कराती िै। प्रभाकर के अनुसार, अपूव शआत्र्ा के अन्दर निींिो सकता, क्योंकक अपनी सवत्रश व्यापकता िी के कारण आत्र्ा तनजष्िय िै। वि इस र्त को स्वीकार निींकरता कक कर्कशता शके अन्दर एक तनजश्चत क्षर्ता उत्पन्न करता िै, र्ो अजन्तर् पररणार् का तनकटतर् कारण िै। यज्ञ इस प्रकार की क्षर्ता उत्पन्न करता िै, यि न तो प्रत्यक्ष से, न अनुर्ान से और न धर्श़ास्त्र से िी भसद्ध िोता िै।

1494 ईश्वरापणशवुद्धया कियर्ाणस्तु तनःश्रेयसिेतुः (अथसंशग्रि)।

1495 यागाहदरेव धर्:श, तल्लक्षणं वेदप्रततपाद्यः प्रयोर्नवद् अथों धर्:श (अथसंशग्रि, पृष्ठ 1)

1496 कोई नई वस्तु, र्ो पिले निींर्ानी गई।

1497 पूवशीर्ांसासूत्र, 2: 1,5।

1498 तुलना कीजएं भीर्ाचाय शकी इस पररभार्षा से यागाहदर्न्यः स्वगाहशदर्नकः कश्चन गुणपवर्ेर्षः (न्यायकोर्)।

1499 र्ांकरभाष्य, 3 2,40 ।

कता शके प्रयत्न से कर् शउत्पन्न िोता ि और कारणरूप क्षर्ता इसी प्रयत्न र्ें रिनी चाहिए, इस प्रकार िर्ें क्षर्ता की कल्पना कर् शर्ें करनी चाहिए न कक कता शर्ें। इसके अततररक्त, 3/1, 3 र्ें यि भसद्ध ककया गया ि कक तनयोज्य पुरुर्ष द्वारा अभभलपर्षत पररणार् का साक्षात् कारण, काय शिै। यि काय शकर् शनिीं िो सकता, क्योंकक कर् श श प्रयत्न द्वारा िोती ि, जर्सका अजन्तर् पररणार् का साक्षात् कारण निीं। काय शकी उत्पपि किा शकी कृतत अथात् कारण तनयोग (प्रेरणा) ि।'[1500] प्रयत्नकता शके अन्दर एक पररणार् (काय)श उत्पन्न करता ि। प्रभाकर इसे भी तनयोग का नार् देता ि, क्योंकक यि कता शके भलए एक प्रेरक का काय शकरता ि, जर्सके कारण वि कर् शकरने का प्रयत्न करता ि, परन्तु यि तनयोग, र्ब तक भाग्य इसर्ें सिायक न िो, पररणार् को उत्पन्न निींकर सकता, र्ैसाकक र्ाभलकनाथ ने किा ि। प्रभाकर के र्त'[1501] को सर्झना आसान निीं और वि कुर्ाररल के र्त से कुछ उन्नत भी प्रतीत निींिोता।

उद्योतकर ने अपूव शके भसद्धान्त की आलोचना की ि।"[1502] यि तनत्य निींिो सकता, क्योंकक इसे तनत्य र्ानने से र्ृत्यु सम्भव न िो सकेगी, क्योंकक पुण्य व पाप भी तनत्य िो र्ाएंगे। यहद अपूव शएक ि तो सब र्नुष्यों के सुख और दुःख एकसर्ान िोंगे। िर् यि निींकि सकतेकक यद्यपप अपूव शएक ि, ककन्तु अभभव्यक्त करनेवाले साधन अनेक ि, क्योंकक िर् निींर्ानते कक अभभव्यक्त करनेवाला साधन क्या ि, अथात् श न्याय्य कर् शपररणार उत्पन्न करने की योग्यता ि, अथवा अपूव शसेसम्बद्ध एक धर् शिै। िर् निींकि सकते कक अपूव शऔर योग्यता एक िी ि या भभन्न ि। यहद िर् किें कक गुप्त अपूव शअभभव्यक्त ककया गया ि, तो िर्ारे भलए इसका सर्ाधान करना आवश्यक िोगा कक पिले यि गुप्त कैसे रिता ि। यहद तनत्य अपूव शभभन्न-भभन्न पुरुर्षों के भलए भभन्न-भभन्न भी िो, तो भी अभभव्यजक्त की कहठनाइयों से बच निीं सकते। र्ंकराचाय शअपूव शकी प्रकल्पना की आलोचना इस आधार पर करते ि कक यि अभौततक निीं और तब तक यि काय शनिींकर सकता र्ब तक कक इसे चाभलत करनेवाला कोई आध्याजत्र्क न िो। कर्ों के फलों की व्याख्या एकर्ात्र अपूव शके भसद्धान्त से निीं िो सकती। यहद किा र्ाए कक ईश्वर अपूव शके भसद्धान्त के अनुसार कर् शकरता ि, तो वेदान्त का ठीक यिी र्त ि कक ईश्वर कर्-शपवधान के अनुसार काय शकरता ि।'[1503]

16. र्ोक्ष

र्ैभर्तन और र्बर ने र्ोक्ष की सर्स्या का सार्ना निींककया। उन्िोंनेस्वग शके र्ीवन का तो र्ाग श तनहदशष्ट ककया, ककन्तु संसार सेर्ुजक्त का र्ाग-शतनदेर् निीं ककया। परन्तु परवती लेखक उक्त सर्स्या से बच निींसके, क्योंकक अन्य सम्प्रदायों के पवचारकों का ध्यान इधर आकृष्ट था। प्रभाकर के अनुसार, धर् शऔर अधर् श के सवथशा पवलोप िोनेका नार् िी र्ोक्ष ि, क्योंकक इनका व्यापार िी पुनर्नर्् का कारण ि। इसकी पररभार्षा इस

1500 3:1, 3 ।

1501 प्रकरणपधचका, पृष्ठ 185 से आगे।

1502 न्यायवातत कश, 1:1,7 ।

1503 कर्पक्षाद् अपूवपशपक्षाद् वा यथास्तु तथास्तु ईश्वरात् फलर् (र्ांकरभाष्य , 3: 2, 41)।

प्रकार की ि, "सर्स्त धर् शऔर अधर् शके पवलोप िो र्ाने के कारण र्ो र्ीर की सर्ाजप्त ि विी र्ोक्ष ि।"[1504] एक व्यजक्त यि पता लगाकर कक इस संसार र्ें सुख दुःख के साथ भर्धश्रत ि, र्ोक्ष की ओर अपने ध्यान को र्ोडता ि। वि तनपर्षद्ध कर्ों से बचने का प्रयत्न करता ि और पवहित कर्ों से भी बचता ि, र्ो इस लोक र्ें या परलोक र्ें सुख दे सकते िैं। वि पूव-शएकबत्रत कर् शको पूणतशया सर्ाप्त कर देनेके भलए र्ो आवश्यक परररुुद्धधयां ि, उनर्ें से गुर्ता ि, और नैं:-नैं: आत्र्ा के सत्यज्ञान से, जर्सर्ें सन्तोप तथा आत्र्तनयन्त्रण सियक िोते िैं, अपनेर्ारीररक र्ीवन से र्ुजक्त पा र्ाता ि।'[1505] केवल ज्ञान िर्ें बन्धन से र्ुजक्त निीं हदला सकता, जर्सकी प्राजप्त कर् शकी सवथशा सर्ाजप्त से िी िो सकती ि। ज्ञान आगेके भलए पुण्य व पाप के संचंय को रोकता ि।'[1506] यि प्रकट ि कक प्रभाकर के अनुयायी केवल कर् शको िी अपने-आप र्ें र्ोक्ष प्राजप्त के भलए पयाप्शत निींर्ानते। कर्,श

पुरस्कार की आर्ा र्ें, आगार्ी र्न्म की ओर ले र्ाता ि। िर्ारी रुधचयां ंतथा अरुधचयां ंिर्ारे भावी र्ीवनों की तनणायशक िैं। यहद िर् र्ोक्ष प्राप्त करना चािते िैं तो िर्ें इस चि को अवश्य तोडना िोगा। सुख और दुःख दोनों की सर्ाजप्त का नार् र्ोक्ष ि। यि परर् आनन्द की अवस्था निीं, क्योंकक गुणपवीन आत्र्ा आनन्द को भी प्राप्त निीं ंकर सकती। र्ोक्ष केवल आत्र्ा का प्राकृततक स्वरूप ि।'[1507]

कुर्ाररल के अनुसार, र्ोक्ष सर्स्त दुःख से रहित आत्र्ा की अपनेस्वरूप र्ें जस्थतत ि।[1508] कुछ पवचारक आत्र्ा के आनन्दानुभव को र्ोक्ष र्ानते िैं।'[1509] ककन्तु यि कुर्ाररल के र्त के पवरुद्ध ि, र्ो बलपूवकश किता ि कक र्ोक्ष तनत्य निीं ंिो सकता र्ब तक कक यि तनर्षेधात्रकस्वरूप न िो।'[1510] पाथसशारधथ का भी र्त ि कक र्ोक्ष की अवस्था दुःख सेर्ुजक्त ि, सुखोपभोग निीं ंि। आत्र्ा ज्ञान की र्जक्त ि। पदाथों (पवर्षयों) के बोध र्ानस तथा इजन्द्रयों की कियाओं के कारण ि। क्योंकक र्ोक्ष र्ें इनका कोई अजस्तत्व निीं रिता, इसभलए आत्र्ा सब प्रकार की अभभव्यजक्त से रहित, अपनेपवर्ुद्ध सारतत्त्व र्ें रिती ि। यि सुख, दुःख और वैसे िी अन्य पवभर्ष्ट गुणों सेरहित एक अवस्था ि। इसे ेचैतन्य की ऐसी अवस्था र्ाना र्ा सकता ि जर्सर्ें कोई पवर्षयपरक बोध अथवा ककसी भी प्रकार की संवेदना निीं ंिोती। ककन्तु कुर्ाररल र्ोक्ष को एक पवध्यात्र्क अवस्था- आत्र्ा का साक्षात्कार-र्ानता ि, और यि अद्वैत वेदान्त के पवल्कुल सर्ीप ि। उसके पवचार र्ें र्ोक्षप्राजप्त के भलए ज्ञान पयाप्शत निीं। उसका पवश्वास ि कक ज्ञानयुक्त कर् शसे र्ोक्ष की प्राजप्त िो सकती ि।

17. ईश्वर

1504 आत्यजन्तकस्तु दिोच्छेदो, तनःर्ेर्षधर्ापशररक्षयतनबन्धनो र्ोक्ष इतत भसद्धर्। धर्ाधशर्वशर्ीकृतो र्ीवस्तासु तासुयोतनर्षु ुसंसरतत (प्रकरणपधचका, तत्त्वलोक, पृष्ठ 156)।

1505 र्ेदर्ब्रह्चयाहशदकांगोपवृहितेनात्र्ज्ञानेन । पृष्ठ 157 ।

1506 एक भभन्न र्त के भलए देणखए भाइधचन्ताणण, बनारस एडीर्न, पृष्ठ 57।

1507 स्वात्र्स्फुरणरूपः (प्रकरणपधचका, पृष्ठ 157)।

1508 परर्ात्र्प्राप्त्यवस्थार्ात्र् ्।

1509 पविन स्वात्र्सौख्यानुभूततः ।

1510 श्लोकवाततकश, सम्बन्धाक्षेपपररिार, पृष्ठ 107।

पूवर्शीर्ांसा अनेकों देवताओंके अजस्तत्व को स्वीकार कर लेती ि◌ै, जर्सर्से ◌ेकक वेदपवहित अिुततयां उर्न्िें अपपतश की र्ा सकें। यि इन देवताओंके परे निीं र्ाती, क्योंकक वैहदक धर्् शके पालन र्ें ककसी सवोपरर र्जक्त की कल्पना की आवश्यकता निीं ि◌ै। रै्भर्तन ईश्वर का तनर्ेषेध उतना निींकरते ◌ेजर्तना कक उसकी ओर उपेक्षा का भाव रखते ि◌ैं। वैहदक धर्् शके ककसी भी ब्यौरे र्ें ईश्वर की सिायता आवश्यक निीं। धर्् शकी स्थापना एक तनत्य स्वयंभू: वेद के द्वारा ि◌ुई ि◌ै, और ि◌र्् पिले ि◌ी देख आए ि◌ैं कक ककस प्रकार वेद को ईश्वर की कृतत र्ानने के प्रयासों का प्रत्याख्यान ककया गया ि◌ै। यज्ञों के पुरस्कार ककसी परोपकारी ईश्वर के कारण निीं ि◌ैं। यिांतक कक र्िां ◌ं पररणार्् तुरन्त प्रकट निीं ि◌ोते,◌े विांअपूव शका अतीजन्द्रय भसद्धान्त उपजस्थत कर हदया र्ाता ि◌ै, और यि सर्य पर यज्ञ के कता शको उसके पुरस्कार के प्राजप्त र्ें सिायता देता ि◌ै। एक सवज्ञश सिा के अजस्तत्व का कोई पवश्वसनीय प्रर्ाण निींभर्लता। प्रत्यक्ष, अनुर्ान तथा र्ब्दप्रर्ाण सब अनुपयोगी ि◌ैं, श्रुतत के वे वाक्य र्ो घोर्षणा करते ि◌ैं'वि सब र्ानता ि◌ै', 'वि संसार को र्ानता ि◌ै', यज्ञकता शके पुण्यों की बढ़ा-चढ़ाकर स्तुतत करते ि◌ैं। कायों का भसलभसला और उससे तनकलनेवाले पररणार्, बीर्ांकुर की भांतत, अनाहदकाल से अनन्तकाल तक चलते ◌ेरिते ि◌ैं। र्ीर्ांसा उस भसद्धान्त को स्वीकार निींकरती जर्सके अनुसार सृजृष्ट और प्रलय बार-बार ि◌ोते ि◌ैं। पररणर्न तथा पवनार्् की प्रकिया तनरन्तर चलती ि◌ै। यि कल्पना करना व्यथ शि◌ै कक सवोपरर प्रभु ककसी एक सर्य र्ें सब आत्र्ाओं की र्जक्तयों को तनजष्िय बना देता ि◌ै और र्ब एक नई सृजृष्ट का संचालन ि◌ोता ि◌ै तो उर्न्िें किफर से र्ागररत करता ि◌ै। प्रभाकर यि तो स्वीकार करता ि◌ै कक पवश्व संघटक भाग ि◌ैं, जर्नका आहद भी ि◌ै और अन्त भी ि◌ै, ककन्तु वि यि र्ानता ि◌ै कक पूण शइकाई के रूप र्ें पवश्व का न आहद ि◌ै, न अन्त ि◌ै। र्नुष्यों तथा पर्ुओं के र्रीरों की उत्पपि र्ें ि◌र्् ककसी दैवीय सिा के ि◌स्तपेक्ष को निींदेखते, क्योंकक वे अपनेर्ाता-पपता से उत्पन्न ि◌ोते ि◌ैं। ि◌र्् निींकि सकते कक परर्ाणु ईश्वर की इच्छा के अनुकूल कर्् शकरते ि◌ैं, क्योंकक ि◌र्ारे अनुभव र्ें प्रत्येक आत्र्ा उस र्रीर पर काय शकरती ि◌ै र्ो इसे ◌ेभर्ला ि◌ुआ ि◌ै। ककन्तु परर्ाणु ◌ुईश्वर का र्रीर निीं। यहद िर्् ईश्वर का र्रीररूपी यन्त्र प्रदान करें भी, तो उस र्रीर र्ें किया ईश्वर के ि◌ी प्रयत्न के कारण ि◌ोगी। यहद वि प्रयत्न तनत्य ि◌ै तो परर्ाणु तनरन्तर कियार्ील रिेंगे। और न ि◌ी ि◌र्् यि कि सकते ि◌ैं कक धर्् शव अधर्् शका कोई दैवीय तनरीक्षक ि◌ै, क्योंकक वे बुद्धधसम्पन्न व्यजक्तयों सेसम्बद्ध ि◌ैं। एक सिा, चािे वि ककतनी ि◌ी र्िान् ◌्क्यों न ि◌ो, दूसूरे के धर्् शऔर अधर्् शको निींर्ान सकती। ईश्वर अपनी इजन्द्रयों अथवा र्न के द्वारा दूसूरों के धर्् शको, र्ो अदृश्य ि◌ै, प्रत्यक्ष निीं ◌ंकर सकता, क्योंकक वि उसके र्रीर के बाह्य ि◌ै। धर्् शऔर अधर्् शपर ईश्वर के तनयन्त्रण का क्या स्वरूप ि◌ै, इसे ◌ेसर्झना कहठन ि◌ै। यि तनयन्त्रण संयोग की अवस्था निीं, क्योंकक धर्् शऔर अधर्् शगुण ि◌ैं और संयोग द्रव्यों र्ें ि◌ी सम्भव ि◌ो सकता ि◌ै। यि सर्वाय की अवस्था भी निीं क्योंकक धर्् शऔर अधर्् शअन्य आत्र्ाओं र्ें सर्वाय-सम्बन्ध से रिते ि◌ैं, और ईश्वर र्ें निींरि सकते।'[1511]

कुर्ाररल न्याय के उस र्त की आलोचना करता ि◌ै र्ो तकश के द्वारा ईश्वर के अजस्तत्व को भसद्ध करता िै, और घोर्षणा करता ि◌ै कक वेदों का तनर्ाणश ईश्वर द्वारा ि◌ुआ ि◌ै। यहद वेद, जर्न्िें ईश्वर की कृतत सर्झा र्ाता ि◌ै,

---

[1511] झा: प्रभाकरर्ीर्ांसा, पृषृठ 80-8 7।

किते िैं कक ईश्वर गत् ्का स्रष्टा िै, तो इस प्रकार के कथन का कोई रूल्य निीं।[1512] यहद स्रष्टा ने गत् ्को बनाया िै तो इसे ेकौन प्रर्ाणणत करेगा? कफर, वि गत् ्का तनर्ाणश कैसे ेकरता िै? यहद उसका कोई भौततक रीर निीं ंिै, तो उसे ेसृजृष्टरचना की कोई इच्छा भी निींिो सकती। यहद उसका कोई भौततक रीर िै तो वि स्वयं उसके कारण निीं ंिो सकता, और इस प्रकार िर्ें उसके भलए एक अन्य स्रष्टा र्ानना िोगा। यहद उसका रीर तनत्य र्ाना र्ाए तो वि ककन घटकों से बना िै, क्योंकक पृथ्वी आहद तत्त्व तो तब तक उत्पन्न निींिुए थे?े यहद उसकी रचनात्रक किया से पूव शप्रकृतत का अजस्तत्व िै, तो अन्य पदाथों के अजस्तत्व का तनषेध करने का कोई कारण निीं। दुःखों से भरे इस संसार को उत्पन्न करनेर्ें ईश्वर का क्या प्रयोर्न िै? भूतकाल के कर् शकी व्याख्या लागू निींिोती, क्योंकक इससे पूव शसृजृष्ट न थी। दया के कारण वि सृजृष्ट की रचना निींकर सकता, क्योंकक एसे ेप्राणी निींथे ेजर्न पर दया हदखाई र्ा सके। इसके अततररक्त, इस र्त के अनुसार केवल सुखी प्राणणयों की िी रचना की र्ानी चाहिए थी। िर् यि निीं कि सकते कक ऐसी सृजृष्ट की रचना सम्भव निीं जसर्ें दुःख का अंर् पवद्यर्ान न िो, क्योंकक ईश्वर के भलए कुछ भी असम्भव निीं ंिै। ककन्तु यहद ककन्िीं कारणों से उस पर प्रततबन्ध लगा िुआ िै, तो वि सवर्शजक्तर्ान निीं। यहद सृजृष्ट की रचना ईश्वर के नोरंर्न के भलए िै, तो उस प्रकल्पना से पवरोध िोता िै र्ो किती िै कक ईश्वर सवथशा सुखी िै। इससे ईश्वर बिुत अधधक कष्टदायक पररश्रर् र्ें पड र्ाएगा, और न िी संसार के पवनार् की उसकी इच्छा सर्झ र्ें आएगी। िर् उसकी न भी ककया िो तो भी अपनी र्जक्त की रिर्ा

तामीचर क्यों पवश्वास करें ? क्योंकक यहद उसने गत् ्का तनर्ाणश[1513] र्ात्रा के कारण अन्यों से भभन्न िै, तो धर् शकेवल वेदों के द्वारा िी सम्भव िै, और इस प्रकार चेसृजृष्ट से पूववशती िै।[1514] यहद यि किा र्ाए कक परर्ाणु ुईश्वर की इच्छा के अनुसार काय शकरते िैं, तो ईश्वरेच्छा कैसे उदय िोती िै? यहद अदृष्ट सरीखे ककसी कारण से इसे ेप्रेरणा भर्लती िै, तो विी संसार का भी कारण िो सकता िै।[1515] यहद ईश्वर अन्य वस्तुओं पर तनभरश करता िै, तो उसकी स्वतन्त्रता र्ें अन्तर पडता िै। यहद िर् ईश्वर की इच्छा का आश्रय लेते िैं, तो संसार की व्याख्या के भलए वि पयाप्शत िै, और कर् शकी कोई आवश्यकता निींरि र्ाती।

देवताओंके दिेधारी स्वरूप के पवषय र्ें र्बर का पवचार िै कक वेद उक्त स्वरूप के पवषय र्ें केवल स्तुतत के पवचार से किते िैं। यि किनेका कक "िर्नेतुम्िारा िाथ पकड भलया िै" अथ शिोता िै कक िर् तुम्िारी र्रण र्ें आ गए िैं।'[1516] प्रभाकर और कुर्ाररल दोनों का र्त िै कक देवता दिेधारी निीं। िर् देवताओं की कृपा से अपने कर्ों का फल प्राप्त निींकरते,े और इसभलए उन्िेंककसी प्रकार के भौततक रूप की आवश्यकता निीं। यद्यपप र्ीर्ांसा के संस्थापकों ने देवताओंको ककसी प्रकार की यथाथतशा से सम्पन्न र्ाना, परन्तु परवती र्ीर्ांसक, र्न्त्रों के र्ित्त्व पर बल देने की उत्सुकता र्ें, तकश करते िुए किते िैं कक यज्ञकता शको देवताओंके व्यजक्तत्व से

1512 श्लोकवाततकश, सम्वन्धाक्षेपपररिार, 114; चोदनासूत्र , 142।

1513 असृषूटवापप िासी ब्रयादात्रेश्वयप्रशकार्नात् ्60

1514 श्लोकवाततकश, सम्बन्धाक्षेपपररिार , 44-72, 114-16।

1515 विी, 72-73

1516 10/1 9 पर र्बर को देणखए।

कोई सरोकार र्नीं िै, उसे ेर्न्त्रों तक िी अपने ध्यान को सीभर्त रखना चाहिए। उनका झुकाव देवताओंको काल्पतनक र्ानने की ओर िै और तो भी वे इस पर बल देते ेरिते िैं कक उर्न्ें आिुततयां देनेसे पुरस्कार-प्राजप्त तनजश्चत िै, चािे उर्न्ें उद्हदष्ट करके बने र्न्त्रों से अलग उनका अजस्तत्व िी न िो । '[1517]

पूवर्शीर्ांसा पर भलखे गए एक आधुतनक ग्रन्थ र्ें इस प्रश्न पर र्ीर्ांसा के र्त को वेदान्त के र्त के साथ सर्न्वय करने का सुकजल्पत प्रयत्न ककया गया िै।[1518] ऐसा तकश हदया गया िै कक यि ठीक िै कक र्ैभर्तन ईश्वर के पुरस्कारों का पवतरण करनेवाले रूप का खण्डन करते िैं, परन्तु वि ईश्वर के सृजृष्ट का खष्टा िोनेका तनर्षेध र्नीं ंकरते। र्िां ंअन्य दर्नश-पद्धततयों के र्त र्ें ईश्वर र्गत् ्का स्रष्टा भी िै व फलों का प्रदाता भी िै, विांर्ैभर्तन का पवरोध यिी िै कक ईश्वर फलों का प्रदाता र्नींिै। कोई भी पदाथ शर्ब र्नुष्य को सुख या दुुःख प्रदान करता िै तो 'फल' किलाता िै। र्ब तक इसका सम्बन्ध ककसी व्यजक्त के साथ सुख अथवा दुुःख के रूप र्ें र्नींिै तिब तक इसे े'फल' र्नीं ंर्ाना र्ा सकता।'[1519] र्ब कर्् शको 'फल' का कारण किा र्ाता िै तो इसका तात्पयश यि िोता िै कक यि पदाथ शके सुखोपभोग का कारण िै, केवल उसकी रचना से तात्पय शर्नींिोता। क्योंकक बादरायण अपनेग्रन्थ के तीसरे अध्याय र्ें र्ैभैर्तन के र्त पर पवचार करता िै, इसभलए वि र्ैभर्तन के इस र्त पर आक्षेप करता िै कक ईश्वर र्नींबजल्क अपूव शपुरस्कारों के पवतरण का कारण िै। यहद र्ैभर्तन ने ईश्वर को खष्टा र्ानने से तनर्षेध ककया िोता, तो बादरायण ने तनजश्चत रूप से इसका खण्डन दूसूरे अध्याय र्ें ककया िोता, र्ो प्रततपक्षक्षयों की आलोचना के भलए िी रखा गया था। र्ैभर्तन ने अनुभव ककया कक यहद संसार की असर्ानताओं का एकर्ात्र उिरदातयत्व अकेले ेईश्वर पर िोता, तो वि पक्षपात तथा िूरता के दोषों से र्ुक्त न िो सकता, और इस कारण र्नुष्यों के नानापवध भाग्यों का कारण उसनेउनके पूव शआचरण को िी ठिराया। यि सर्ाधान तनश्चय हदलानेवाला र्नींिै, क्योंकक इससे पूव शकक िर् वस्तुओं से सुख अथवा दुुःख की प्राजप्त कर सकें, उनका पिले ेअजस्तत्व आवश्यक िै। यहद अपूव शिर्ारे सुखों और दुुःखों का पवतरण करनेवाला िै, तो इसे ेर्गत् ्का स्रष्टा भी िोना चाहिए। यहद सृजृष्टरचना के भलए ईश्वर आवश्यक िै, तो अपूव शकेवल कर्् शका भसद्धान्त िोना चाहिए, जर्सका ध्यान ईश्वर ने सृजृष्ट-रचना र्ें रखा िै। साक्षात् ्अथवा परोक्ष रूप र्ें र्ैसे ेभी िो, ईश्वर र्गत् ्का स्रष्टा तथा फलों का प्रदाता भी बन र्ाता िै।

पूवर्शीर्ांसा के अन्दर का र्ून्य स्थान इतना सन्तोर्षर्नक था कक परवती लेखक गुप्त र्ाग शसे ईश्वर को ले आए। अपूव शका अचेतन तत्त्व उन सार्ंर्स्यपूण शपररणार्ों को र्ो इसके कारण उत्पन्न िुए कि र्ाते िैं, प्राप्त र्नींकर सकता, इस आलोचना र्ें र्ो बल था उसे ेअनुभव ककया गया।'[1520] र्नैः र्नैः दैवीय भसद्धान्त का प्रवेर् िुआ। ककन्तु इस सवोपरर प्रभु का कर्पशवधान के अधीन िोना आवश्यक र्नींिै, क्योंकक कोई भी अपर्नी स्वरूप के अधीन र्नींिोता। कर्पशवधान ईश्वर की तनरन्तरता को व्यक्त करता िै। र्ब कुर्ाररल यि स्वीकार कर लेता िै

1517 देणखए आपदेव: देवतास्यरूपपवचार।

1518 पी. र्ास्त्री : पूवर्शीर्ांसा, पृषूठ 3।

1519 र्ांकरभाष्य, 5/2

1520 भार्ती, 3/2 41!

कक कर् शऔर उपासना दोनों र्ोक्षप्राजप्त के भलए आवश्यक िैं, तो वि ईश्वर के अजस्तत्व को तनजश्चत रूप से र्ानता िै, यद्यपप तनःसन्देि यि तकश हदया र्ाता िै कक उपासना भी एक प्रकार का कर् शिै र्ो स्वयं अपनेउधचत फल को उत्पन्न करता िै। यि प्रकट िै कक बिुत पिले िी यि अनुभव कर भलया गया था कक र्ीर्ांसादर्नश यहद ईश्वरवाद से अपना सम्बन्ध निींर्ोडता तो पवचारवान पुरुषों को सन्तोष प्रदान न कर सकेगा। इसभलए आपदेव और लौगाक्षक्षभास्कर घोषणा करते िैं कक यहद यज्ञ का सम्पादन सवोपरर प्रभु के सम्र्ान र्ें ककया र्ाता िै तो यि उच्चतर् कल्याण को प्राप्त कराएगा। इस प्रवृपि को अपनी पूण शसीर्ा तक वेदोन्तदेभर्क के सेश्वर र्ीर्ांसा ग्रन्थ र्ें पिुंचाया गया िै।

पूवर्शीर्ांसा र्ें नैततक पक्ष पर बल हदया गया िै। कर् शके जस्थर भसद्धान्त को संसार की परर् यथाथतशा सर्झा गया िै। ईश्वर न्यायपरायणता अथवा धर् शिै। धर् शकी पवषयवस्तु वेदों र्ें रखी गई िै, और वेद, केवल ईश्वर के र्न को प्रकार् र्ें लाते िैं। कुर्ाररल किता िै: "यि र्ास्त्र जर्से ेवेद किा र्ाता िै, र्ो बदों के रूप र्ें ब्रह्र् िै, एक सवोपरर आत्र्ा का स्थापपत ककया िुआ िै।"[1521] कुर्ाररल अपनी पुस्तक का प्रारम्भ भर्व के प्रतत प्राथनशा से करता िै : "र्ैंउसे ेप्रणार् करता िूं जर्सका र्रीर पवर्ुद्ध ज्ञान से बना िै, तीनों वेद जर्सके हदव्य चक्षु ुिैं, र्ो परर्ानन्द की प्राजप्त का कारण िै, और र्ो अधचंशद्र को धारण करता िै।'[1522] वेद ईश्वर के र्न का हदव्य ज्ञान िै। यज्ञ-सम्बन्धी काय शआनन्द के पवर्ेष कारण िो सकते िैं, ककन्तु ईश्वर सार्ान्य कारण िै। यि र्त कुर्ाररल के इस घोपषत आर्य के साथ भी संगतत रखता िै कक र्ीर्ांसा के भसद्धान्त की इस प्रकार पुनव्याख्शया करनी चाहिए जर्सर्ें कक उसे उस काल की अप्रकृततवादी प्रवृपियों की अनुकूलता र्ें लाया र्ा सके।[1523]

र्ीर्ांसा को दार्तशनक रूप र्ें असन्तोषर्नक बतानेके भलए कुछ अधधक किना आवश्यक िै। पवश्व के सम्बन्ध र्ें र्ीर्ांसा का र्ो दार्तशनक र्त िै वि अपूण शिै, र्ो स्पष्ट प्रतीत िोता िै। परर् यथाथतशा की ओर आत्र्ाओं तथा प्राकृततक र्गत् ्के साथ उसके सम्बन्ध की सर्स्याओं से इसनेअपना कोई वास्ता निींरखा।

1521 बदब्रिोतत यच्चेदं र्ास्त्रं वेदाख्यर्ुच्यते ।
तदप्यधधजष्ठतं ंसवर्ेशकेन परर्ात्र्ना। (तन्त्रवाततकश, पृष्ठ 719)

1522 पवर्ुद्धज्ञानदेिाय बत्रवेहदहदव्यचक्षुषे ।
श्र्ेयः प्राजप्ततनभर्िाय नर्: सोर्ाधधशाररणे ॥ (श्लोकवाततकश 1/1)

पाथसशारधथ अपने'न्यायरत्नाकर' र्ें इस श्लोक की व्याख्या एक भभन्न अथ शर्ें करता िै, जर्ससे कक कुर्ाररल की जस्थतत ईश्वरवादी न सर्झ ली र्ाए। यि उक्त श्लोक को यज्ञ-सम्बन्धी संस्कार र्ें लगाता िै। पवर्ुद्ध र्ीर्ांसया संर्ोधधतं ज्ञानर् ्एव देिो यस्य (र्ीर्ांसा द्वारा पपवत्र िुआ ज्ञान िी जर्सका र्रीर िै), बत्रवेद्येव हदव्यंचक्षुः प्रकार्कं यस्य (र्ो तीनों वेदों र्ें व्यक्त िुआ िै); सोर्स्व अध शस्थानंग्रिचर्साहद तद्धधाशररणे (र्ो सार् के पात्र आहद से युक्त िै); इतत यज्ञपक्षेऽपप संगच्छते। ककन्तु वि यि भी र्ानता िै कक कुर्ाररल नेसर्रीरी ईश्वर 'भर्व' का उल्लेख ककया िै 'पवश्वेश्वरं र्िादेव स्तुततपूव शनगस्यतत'। सवभशसद्धान्तसारसंग्रि (8: 37) से िर्ें ज्ञात िोता िै कक कुर्ाररल के र्त र्ें आत्र्ा एक िै और अनेक भी िै-भभन्नाभभन्नात्र्कत्वात्। यि ग्रन्य, वेदान्त पर भलखेगए कततपय अन्य ग्रन्थों की भांतत, यि भसद्ध करनेका प्रयत्न करता िै कक कुर्ाररल वेदान्ती था।

1523 प्रायेणैव हि र्ीर्ांसा लोके लोकायतीकृता। तार्ाजस्तकपये कतुर्शयं कृतो यर्ा। (श्लोकवाततकश, 1/10) 1

इसका नीततर्ास्त्र सवथशा याजन्त्रक ै और इसका धर् शत्रुहुटपूण शरिा। यज्ञ करना ी सबसेआवश्यक र्ाना गया, और देवता यज्ञकताओंश की दृजष्ट से पवलुप्त ो गए। परवती र्ीर्ांसक ैर्ें स्पष्टरूप र्ें बताते ैं कक देवता वि ै जर्सके नार् के भलए संप्रदानकारक (चतुथी पवभजक्त) का प्रयोग ोता ै। 'इन्द्राय स्वाा' इस र्ंत्र र्ें इन्द्र देवता ैं। इस प्रकार के धर् शर्ें हृदय को स्पर् शकरनेवाली तथा उसेप्रकाभर्त करनेवाली साग्री कर् ै। इसभलए यहद एकेश्वरवाद, वैष्णव, र्ैव अथवा ताजन्त्रक र्तों के पक्ष र्ें प्रततकिया ुई तो कुछ आश्चय शर्नीं। इन र्तों ने र्नुष्य को एक सवोपरर ईश्वर प्रदान ककया, जर्स पर वि तनभरश कर सकता था, और र्ोक तथा दुुःख र्ें जर्सकी र्रण र्ें र्ा सकता था।

उद्धतृ ग्रन्थों की सूची

- गंगानाथ झा: श्लोकवाततकश,
- गंगानाथ झा: प्रभाकर स्कूल आफ पूवर्शीर्ांसा
- कीथ : कर्र्शीर्ांसा
- पी. र्ास्त्री : इण्रोडक्र्न टू पूवर्शीर्ांसा
- सरकार: हद र्ीर्ांसा रूल्र् ऑफ इण्टरपप्रटेर्न

2. सातवा ुँअध्याय

वेदान्तसूतूर

प्रस्तावना-सूत्रकार तथासूत्रकीरचनाकाकालअन्यसम्प्रदायों के साथ

-

सम्बन्ध-अध्यात्-पवद्या सम्बन्धी पवचार-उपसंिार।

1. प्रस्तावना

वेदान्तदर्नश पर पवर्ेर्ष ध्यान देना केवल इसभलए आवश्यक नििंकक इसका दार्तशनक रि्त्व िै अपपतु इसभलए भी आवश्यक िै क्योंकक भारत देर् के धर् शर्ें यि ओतप्रोत िै और इस देर् र्ें यि अन्य सभी पवचारपद्धततयों की अपेक्षा अधधक रीपवत रूप र्ें पवद्यर्ान िै। आधुतनक सर्य के हिन्दू ूपवचारकों का गत् ्के पवर्षय र्ें रो दृजष्टकोण िै उसका तनणयश करने र्ें वेदोन्त का िी ककसी-न-ककसी रूप र्ें प्रर्ुख भाग िै।

'वेदान्त' र्ब्द का यौधगक अथ शिै-वेद का अन्त, अथवा वे भसद्धान्त रो वेदों के अजन्तर् अध्यायों र्ें प्रततपाहदत ककए गए िैं, और ये िी उपतनर्षदें िैं। उपतनर्षदों के पवचार भी विी िैं रो वेद का अजन्तर् लक्ष्य अथवा वेदों का सार'[1524] िैं। वेदान्तसूत्र का दूसूरा नार् ब्रह्र्सूत्र भी िै, क्योंकक यि ब्रह्र्-सम्बन्धी भसद्धान्त की व्याख्या िै और र्ारीररकसूत्र[1525] भी इसी का अन्य नार् िै इसीभलए कक यि तनरुपाधधक आत्र्ा की अभभव्यजक्त के पवर्षय र्ें प्रततपादन करता िै। रिां ंएक ओर रै्भर्तन का कर्शर्ीर्ांसा ग्रन्थ वेदपवहित धर् शतथा उसके फलाफल का अनुसंधान करता िै विांबादरायण का उिरर्ीर्ांसादर्नश उपतनर्षदों के दार्तशनक व ईश्वरज्ञान-सम्बन्धी पवचारों का वणनश करता िै। दोनों एकत्र भर्लकर सम्पूण शवेदे के प्रततपाद्य पवर्षयों का िर्बद्ध अनुसंधान करते िैं।[1526] उपतनर्षदें केवल सत्य के प्रतत पवपवध दृजष्टकोणों से ककए गए दृजष्टपातों की एक श्रृंखला िैं, ककन्तु र्ित्वपूण शप्रश्नों पर अजन्तर् रूप से पवचार करने के प्रतत प्रयास नििं ंिै। तो भी ऐसेव्यजक्तयों के ऊपर रो उन्िें ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा प्राप्त सत्य करके र्ानते िैं, यि दर्ानेश का उिरदातयत्व िै कक उपतनर्षदों की भर्क्षाएं ंएक संगतरूप र्ें पररपूण शइकाई िैं और बादरायण का प्रयास इसी प्रकार के िर्बद्ध काय शकी हदर्ा र्ें िै। उसका ग्रन्थ िर्बद्ध दर्नश न िोकर ईश्वरज्ञान-पवर्षयक एक व्याख्या िै। "बादरायण के ग्रन्ध का उपतनर्षदों के साथ विी सम्बन्ध िै रै्सा कक किजश्चयन रूहढ़वाहदयों का 'न्यू टेस्टार्ेण्ट' के साथ िै, यि उपतनर्षदों की भर्क्षाओं

1524 "ततलेर्षु ुतैलयद वेदे वेदान्ताः सुप्रततजष्ठताः" (र्ुजक्तकोपतनर्षद्)। गीतर् नेउपतनर्षदों तथा वेदान्त (22 : 9) र्ें भेद ककया िै, ककन्तु परम्परा के अनुसार बराबर यिी र्ाना र्ाता रिा िै कक उपतनर्षदों के अनुयायी वेदान्त के अनुयायी िैं।

1525 र्ीर, दिे।

1526 तुलना कीजए, वेदान्तवाक्यकुसुर्ग्रथनाथत्शवात् ्सूत्राणार् ्(र्ांकरभाष्य, 1: 1, 1)

भारतीय दर्नश-2 383 का अनुसंधान करता ि, रो ईश्वर, र्गत् ्तथा आत्रा के संसारचि रें र्ण के पवर्षय रें तथा रोक्ष की अवस्थाओंके पवर्षय रें ि। यि प्रत्यक्ष रें हदखाई पडने वाली भसद्धान्त-सम्बन्धी असंगततयों का तनराकरण करता ि, उन्िें परस्पर ि्विर्द्ध रूप रें रोडता ि, और पवरेर्ष करके इसका उद्देश्य पवरोधधयों के आक्षेपों से बचाना ि।"[1527] पांच सौ पचपन सूत्रों के अन्दर, जनरें से प्रत्येक दो या तीन ब्दों से वने ि, सर्ग्र दर्नश का पररष्कार ककया गया ि। सूत्र अपने-आप रें पवर्द अथ शनिीं ्देते ्ककन्तु सब कुछ उनके भाष्यकार के ऊपर तनभरश

करता ि। उन्िें प्रौहटयस के सरान ककसी तनयभर्त रूप रें निींपकडा रा सकता। उनकी भर्क्षाओं की व्याख्या कभी तो साकार ईश्वरवाद के उज्ज्वल प्रकार की राती ि और कभी-कभी अस्पष्ट भाववाचक तनरपेक्षवाद के रूप रें की राती ि। आजस्तकवाद के पवभभन्न सम्प्रदायों रें वुित प्रारम्भ से िी भभन्न-भभन्न पवचार-परम्पराएं ् स्थापपत िो गई थीं,् जन्िें रंकर तथा रार्ानुर् प्रभृतृत पवचारकों ने लेखबद्ध ककया। टीकाकारों ने, जनरें प्रर्ुख िैं, रंकर, भास्कर, यादवप्रकार्, रार्ानुर्, केर्व, नीलकंठ, र्ध्व, बलदेव, वल्लभ तथा पवज्ञानभभक्षु,[1528] एक सरान पवचारधारा का पररष्कार निींककया और इसभलए इस पवर्षय का तनणयश करना कक इसरें से ककसी को सूत्र के ठीक-ठीक सर्झनेके भलए पथ-प्रदर्कश राना राए, सरल काय शनिीं, क्योंकक इनकी टीकाएंऐसेसर्य रें भलखी गई र्बकक ये भसद्धान्त अत्यन्त गम्भीर संर्य तथा वादपववाद के पवर्षय बन चुके थे। ये अपनी-अपनी व्याख्याओंका पवकास पूव-शतनधारशरत र्तों के आधार पर िी करते िैं, यिांतक कक कभी-कभी ब्दों के धात्वथ श तथा स्पष्ट अथों को भी दृजष्ट से ओझल कर देते िैं, जर्ससेकक वे सन्दभ शको खींच-खांचकर अपनेदार्तशनक भसद्धान्तों की सच्चाई को भसद्ध करने रें प्रयोग कर सकें। सूत्र ऐसेदुलुभश ग्रन्थों रें से एक ग्रन्थ ि जर्सरें से प्रत्येक व्यजक्त को अपना अभभलपर्षत भसद्धान्त अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार प्राप्त िो सकता ि।

बादरायण के ग्रन्थ रें वेदान्त के अन्य भर्क्षकों के उल्लेखों से यि स्पष्ट पवहदत ि कक उस सर्य उपतनर्षदों की ककतनी िी स्वतन्त्र व्याख्याएं,् रो बादरायण की व्याख्याओं से भभन्न थीं,् प्रचभलत थीं।'[1529] जर्स सर्य बादरायण ने अपने सूत्र का तनर्ाणश ककया उस सर्य भी परस्पर रें र्ुक्तात्रा'[1530] के लक्षण सम्बन्धी तथा रीवात्रा के ब्रह्र् के साथ सम्बन्धपरक र्ुख्य-र्ुख्य पवर्षयों रें भी परस्पर र्तभेद पवद्यर्ान थे।[1531] आश्र्रथ्य की सम्र्तत ि कक रीवात्रा का ब्रह्र् के साथ भेदोभेद-सम्बन्ध ि, अथात् श ्रीवात्रा ब्रह्र् से न तो तनतान्त भभन्न ि और न िी तनतान्त अभभन्न ि।'[1532] औडुलोभर् का र्त ि कक रोक्ष से पूव शरीवात्रा ब्रह्र् से सवथशा पृथक् तथा

1527 ड्यूसन, 5 पृष्ठ 21।

1528 भारतीय परम्परा के अनुसार, र्ुक को भी सवप्रशथर् टीकाकारों रें राना गया ि, र्बर ने अपनेपूवर्शीर्ांसाभाष्य रें वृपिकार उपवर्ष शका नार् भलया ि। रंकर का भी यि र्त ि (3/3, 53) रार्ानुर् और उसके अनुयायी उसे ्बौधायन किते िैं। वेदान्तदीपपका की घोर्षणा ि कक उस एक िी व्यजक्त को दोनों नार्ों से पुकारा गया ि। द्राभर्ड, टंक, भतृप्रशपंच, भारुधच, कापहदश ब्रह्र्ानन्द और गुिदेव की टीकाएं उपलब्ध निीं. ऐसा प्रतीत िोता ि। र्ांकरभाष्य, 1 1, 4, 12, 23; 1/3 19; 1:4, 12, 4:3, 14।

1529 बादरी (1/2, 30 ;3:1,11 i 4:\$,7 i 4:4,10) औडुलोभर् (1/4, 21; 3/4, 45; 4 : 4, 6) आश्र्रथ्य ([1/2 , 29;14, 20), कार्कृतत्स्न (1/4, 22) काण्णांजर्तन (3/1, 9) आत्रेय (3/4, 44) और रैभर्तन। र्िाभारत रें भी इनके र्तों का वणनश निीं।

1530 4:3, 7-14; 4:4,5-7।

1531 1:4, 20-22।

1532 1/4, 20।

 भभन्न रिता ि-र्ोक्ष अवस्था र्ें ब्रह्म के अन्दर सवथशा लीन िो र्ाता ि[1533] और कार्कृत्स्न का पवचार ि कक

र्ीवात्र्ा तथा ब्रह्म परस्पर सवथशा तादात्म्य-सम्बन्ध से िैं और ब्रह्म िी ककसी-न-ककसी रूप र्ें अपने को र्ीवात्र्ा के रूप र्ें प्रकट करता ि।[1534] परवती टीकाकार भी उक्त र्तों र्ें से िी एक र्त को स्वीकार करते िैं। यि प्रकट ि कक उपतनपदें स्वयं पयाप्शत पववाद का पवर्षय रिी िैं और बादरायण का वेदोन्तपवर्षयक पवचार एक प्रर्ुख पवचार-सम्प्रदाय का तनष्कर्ष थ्ी, यद्यपप अन्यान्य सम्प्रदाय भी, र्ो पयाप्शत र्ात्रा र्ें प्रभसद्ध थेपवद्यर्ान थे।

2. सूत्रकार तथा सूत्र की रचना का काल

र्ंकराचाय शसेआरम्भ करके बराबर परम्परा यिी रिी ि कक वेदान्तसूत्र के कता शबादरायण िैं। चूंकक बादरायण का नार् अनेक स्थलों पर अन्य पुरुर्ष'[1535] र्ें आया ि इसभलए स्वभावतः र्न र्ें यि र्ंका उत्पन्न िोती ै कक बादरायण इसका रचतयता निीं। ककन्तु प्राचीन भारत र्ें इस प्रकार अन्य पुरुर्ष के प्रयोग का कोई असाधारण ररवार् निींथा और इससे रचतयता कोई अन्य व्यजक्त ि इस प्रकार की अथापशपि न तनकाली र्ानी चाहिए। भारतीय परम्परा के अनुसार, वेदान्तसूत्र का रचतयता बादरायण तथा व्यास एक िी व्यजक्त िैं। र्ंकर के अनुयायी, गोपवन्दानन्द, वाचस्पतत और आनन्द धगरर व्यास तथा बादरायण को एक िी बताते िैं। रार्ानुर्, र्ध्व, वल्लभ और बलदेव वेदान्तसूत्र का रचतयता व्यास को बताते िैं। किीं–किीं ंइस र्त का खण्डन इस आधार पर ककया र्ाता ि कक र्ैभैर्तन, जर्सका उद्धरण बादरायण ने स्थान-स्थान पर हदया ि, व्यास का भर्ष्य था, यहद र्ि र्िाभारत, पवष्णुपुराण तथा भागवत पर भरोसा करें, और इस प्रकार र्ैभर्तन तथा बादरायण के ग्रन्थों र्ें पारस्पररक उल्लेखे गुरु व भर्ष्य के सम्वन्ध र्ें परस्पर संगत निींबैठते। र्बर, गोपवन्दानन्द तथा आनन्दधगरर का र्त ि कक इसर्ें असंगतत कुछ निीं ंि।[1536] ककन्तु स्वयं र्ंकराचाय शका इस पवर्षय र्ें क्या र्त था यि स्पष्ट निींज्ञात िोता ।'[1537] ब्रह्मसूत्र र्ें सांख्य, वैर्ेपेर्षक तथा र्ैन और बौद्ध सम्प्रदायों के र्तों की ओर भी परोक्ष

1533 1:4,22।

1534 1:3, 26, 1:3, 33, 3:2, 41; 3: 4, 1, 3:4, 19; 4:3, 15, 4: 4,7; 4:4, 12।

1535 उदािरण के भलए, इयूसन का तकश ि कक र्ैभर्तन और बादरायण के ग्रंथ, जर्नर्ें से ेप्रत्येक र्ें अपना तथा दूसरे का उद्धरण ि, ककसी परवती सम्पादक नेएक ग्रंथ र्ें संगृिीत कर हदए, जर्सके ऊपर उपवर्ष शनेटीका भलखी और अजन्तर् पूवर्शीर्ांसा के ऊपर र्बरभाष्य तथा ब्रह्मसूत्रों पर र्ांकरभाष्य का आधार िुआ ('इयूसन्स भसस्टर् आफ हद वेदान्त', पृष्ठ 24, पादहटप्पणी 17)।

1536 देखें, बेलवाल्कर: 'र्ल्टपल ऑथरभर्प आफ हद वेदान्त सूत्रार्' 'इजण्डयन कफलासकफकल ररव्यू', अक्तूबर 1918, र्ें और अभयकुर्ार गुिा कृत 'र्ीवात्र्ा इन ब्रह्मसूत्रार्', पृष्ठ 8।

1537 र्ंकर ब्रह्मसूत्र पर की गई अपनी टीका के एक वाक्य र्ें भलखता ि कक द्वापर से ेकभलयुग के प्रतत संर्धिकाल र्ें एक प्राचीन ऋपर्ष तथा वैहदक भर्क्षक अपान्तरतर्स् ्पवष्णु की प्रेरणा से ेकृष्णद्वैपायन नार् से उत्पन्न िुआ। चूंकक र्ंकर नेयि निींकिा कक यि कृष्णद्वैपायन ब्रह्मसूत्रों का रचतयता ि इसभलए पवंडंडकर्ैन और उसके पश्चात् ्तैलंग इस पररणार् पर पिुंचे कक र्ंकर की दृजष्ट र्ें दोनों व्यजक्त भर्न्न थे ('ए नोट ऑन बादरायण', 'र्नलश आफ एभर्याहटक सोसाइटी', बम्बई, खंड 16, 1883, पृष्ठ 190)। हिर भी र्ंकर नेव्यास का उद्धरण हदया ि, विांकिींभी ऐसा संकेत निींभर्लता कक व्यास ब्रह्मसूत्रों का रचतयता ि (2 1, 12; 2:3, 47)। भगवद्गीता तथा र्िाभारत के र्ाजन्तपव शके अनेकों उल्लेख ब्रह्मसूत्रों र्ें िैं,

संकेत पाया ग्ाता ि◌ै। ग्ंकर, राग्ानुग्, र्ध्व और बल्लभ 2/3 45 और 4/1 / 10 र्ें ि◌र्ः गीता के उल्लेखों (15/7 / 8; 24) और उक्त आचायों र्ें से प्रथर् तीन, अथात्श ◌्ग्ंकर, राग्ानुग् और र्ध्व, 41, 10 र्ें गीता (7/11) के उल्लेख के बारे र्ें एकर्त ि◌ैं। सूत्रों र्ें वणणतश अनेकों नार् श्रौत सूत्रों र्ें भी पाए ग्ातेिैं, यथा आश्वलायन र्ें आश्र्रथ्य, कात्यायन र्ें बादरर, काणाजशर्तन और कार्कृत्स्न, तैपिरीय प्राततसाख्यसूत्र र्ें आत्रेय। वौद्धायन के गृह्यसूत्र र्ें आत्रेय, कार्कृत्स्न तथा बादरी के नार्ों का उल्लेख ि◌ै, इसी प्रकार भारद्वाग् गृह्यसूत्र र्ें भी आत्रेय का उल्लेख ि◌ै। कार्कृत्स्न एक अत्यन्त प्राचीन टीकाकार ि◌ै। पाणणतन अष्टाध्यायी पर रधचत र्िाभाष्य र्ें औडुलोर्ि का उल्लेखे आया ि◌ै।'[1538] गरुडपुराण, पद्र्पुराण और र्नुस्र्ृतत र्ें वेदान्तसूत्र का उल्लेखे ि◌ै और रिरवंर् र्ें, जर्से ि◌ोपककंस ने 200 वर्ष शईसा के पश्चात् ◌्का बना ि◌ुआ र्ाना ि◌ै, इस पवर्षय के स्पष्ट उल्लेखे पाए ग्ाते ि◌ैं। कीथ का र्त ि◌ै कक बादरायण का सर्य 200 वर्ष श(ईसा के बाद) से आगे ◌ेका निीं ◌ंर्ाना ग्ा सकता।[1539] भारतीय पवद्वानों का र्त ि◌ै कक उक्त सूत्र का तनर्ाणश 500 से 200 वर्ष शईसापूव शके बीच के काल र्ें ि◌ुआ। फ्रे्रेर इसे ◌े400 वर्ष शईसापूव शका बताता ि◌ै।'[1540] र्ैक्सरू्लर का किना ि◌ै, "भगवद्गीता का ग्ो कोई भी काल ि◌ो (और यि र्िाभारत का एक भाग ि◌ै), वेदान्तसूत्र और बादरायण का काल अवश्य इससे पूव शिोना चाहिए।"[1541]

3. अन्य सम्प्रदायों के साथ सम्बन्ध

बादरायण के वेदान्त का र्ैभर्तन के र्ीर्ांसादर्नश के साथ ठीक-ठीक सम्बन्ध क्या ि◌ै इसे ◌ेभभन्न-भभन्न टीकाकारों ने भभन्न-भभन्न रूप र्ें बतलाया ि◌ै।[1542] राग्ानुग् वृपिकार से सिर्त ि◌ोकर र्ानता ि◌ै कक दोनों र्ीर्ांसादर्नश एक ि◌ी ग्रंथं से सम्बन्ध रखतेिैं, ककन्तुर्ंकर का र्त इससे भभन्न ि◌ै। यि सम्भव ि◌ै कक दोनों प्रारम्भ र्ें एक ि◌ी सार्ान्य ग्रंथ के दो भाग रि ि◌ों।'[1543] दोनों र्ीर्ांसादर्नश र्ुख्यतः वैहदक दर्नश ि◌ैं और प्रारम्भ र्ें तथा र्ुख्यरूप र्ें श्रुतत अथवा वेद अथात् श ◌्ईश्वरीय ज्ञान के भाष्यरूप र्ें थे। बादरायण ने न्याय का किीं ◌ंभी उल्लेख निींककया। योग को सांख्य के साथ ग्ोडा ग्ाता ि◌ै और सांख्य की ग्ो सर्ालोचनाएं ◌ंि◌ैं वे सब योग के ऊपर भी घटती किी ग्ाती ि◌ैं।[1544] सांख्य का खण्डन बिुत पवस्तार के साथ भर्लता ि◌ै।'[1545] और अनेक स्थलों पर

इसभलए यहद ि◌र् टीकाकारों की साक्षी को स्वीकार करें, अथात्श ◌्सूत्रों का रचपवता तथा र्िाभारत का लेखक एक ि◌ी ि◌ै, तो उक्त साक्षी का तात्पय शसरलता से ◌ेसझई र्ें निींआ सकता।

1538 4/1 14।

1539 कर्र्शीर्ांसा, पृष्ठ 5-6। ककंतु र्ैकोबी का पवश्वास ि◌ै कक सूत्र का तनर्ाणश 200 और 450 वर्ष शईसा के पश्चात् ◌्के बीच ि◌ुआ ('र्नलश आफ हद अर्ेररकन ओररयंटल सोसाइटी' 1911)।

1540 'भलटरेरी हिस्टरी आफ इजण्डया', पृष्ठ 196।

1541 'भसक्स भसस्टम्स आफ इजण्डयन कफलासफी', पृष्ठ 113। गिु, 'र्ीवात्र्न् ◌्इन हद ब्रह्र्सूत्र' ।

1542 बादरायण नेर्ैभर्तन का अनेक स्थलों पर उल्लेख ककया ि◌ै यथा, 12, 28; 12, 31; 1: 3, 31; 1:4, 18, 3:2, 40; 3:4, 2; 3/4 18; 3: 4, 40, 4:3, 12; 4:4, 5; 4: 1, 11।

1543 देखें, ब्रह्र्सूत्रों पर राग्ानुर्भाष्य, 11, 1। र्ैकोबी 'र्नलश आफ हद अर्ेररकन ओररयण्टल सोसाइटी', 1910। ड्यूसन ने पुराने 'टेस्टार्ेंट' के अनन्तर नये 'टेस्टार्ेंट' की रचना ि◌ोनेकी उपर्ा दी ि◌ै, ग्िांपवधान से ◌ेबद्ध र्ीवन आध्याजत्र्क र्ीवन र्ें बदल ग्ाता ि◌ै। ('ड्यूसन्स भसस्टर् आफ हद वेदान्त', पृष्ठ 20)।

1544 2/1 31

उसका उल्लेखे पाया ग्ाता ि।'[1546] यिी एक ऐसा दर्नश ि जर्सके प्रतत अत्यन्त आदरभाव हदखाया गया ि, कुछ तो इसभलए कक इसके प्रततपाहदत भसद्धान्त बादरायण को भी अभभर्त िैं और कुछ इसभलए भी कक इसका सर्थनश र्नु तथा व्यास सरीखे ऋपपयों ने ककया ि।[1547] वैरे्पर्षक के भसद्धान्तों की सर्ालोचना की गई ि[1548] और र्िं ज्ञात िोता ि कक बादरायण के सर्य र्ें वैरे्पर्षक दर्नश की ख्यातत अधधक निीं थी। बौद्धर्त के अनेक सर्ुदायों, लोकायत और भागवत के भसद्धान्तों पर भी पववाद भर्लता ि।'[1549] सूत्र के रचतयता के ऊपर भगवद्गीता तथा भागवतों के आजस्तकवाद का पयाप्शत र्ात्रा र्ें प्रभाव िुआ ि।

4. अध्यात्र्पवद्या-सम्बन्धी पवचार

वेदान्तसूत्र चार अध्यायों र्ें पवभक्त ि। प्रथर् अध्याय र्ें ब्रह्र् का आधारभूत यथाथतशा के रूप र्ें प्रततपादन ककया गया ि। उक्त पवर्षय के ऊपर र्ो भभन्न-भभन्न वैहदक र्त िैं उनका सर्न्वय करना इसका प्रयोर्न ि। धर्शके सम्बन्ध र्ें कोई भी व्याख्या िो तथा ईश्वर, आत्र्ा और र्गत् के सम्बन्ध र्ें कोई भी सर्ाधान िो, इन सबके भलए ऐसेव्यजक्तयों के धाभर्कश अनुभवों का पवचार करना आवश्यक िोता ि, र्ो घोर्षणापूवकश किते िैंकक उन्िोंनेतनत्यसिा के दर्नश ककए िैं, और प्रत्येक दार्तशनक भसद्धान्त को सन्तोर्षप्रद बनाने के भलए भूतकाल के ऋपर्षयों के लेखबद्ध अनुभवों के अन्दर सर्न्वय स्थापपत करना आवश्यक ि। पिले अध्याय र्ें िर्ें ब्रह्र् के स्वरूप एवं इस दृश्यर्ान र्गत् तथा र्ीवात्र्ा के साथ उसके सम्बन्ध का वणनश भर्लता ि। दूसूरा (अपवरोध) अध्याय र्ें उक्त पवचार के ऊपर र्ो आपपियांउठाई गई िैं उनका सर्ाधान ककया गया ि और पवरोधी भसद्धान्तों की सर्ालोचना की गई ि। इसके अन्दर ईश्वर के ऊपर र्गत् ककस रूप र्ें तनभरश ि इसका भी हदग्दर्नश कराया गया ि तथा उस ईश्वर के भीतर से िी र्गत् पवकास तथा उसी के अन्दर पुनपवलशय का भी वणनश हदया गया ि और अजन्तर् भाग र्ें'[1550] आत्र्ा के स्वरूप, उसके गुण, ईश्वर, र्रीर तथा अपने कर्ों के साथ सम्बन्ध के पवर्षय र्ें रोचक र्नोवैज्ञातनक पववेचन भी हदया गया ि। तीसरे अध्याय र्ें ब्रह्र्पवद्या की प्राजप्त के साधनों तथा उपायों पर पवचार ककया गया ि। इसर्ें िर्ें पुनर्नश्र् और साधारण र्नोवैज्ञातनक[1551] तथा ईश्वरज्ञान-सम्बन्धी'[1552] पवर्षयों पर भी पववेचन भर्लता ि जर्सके साथ श्रुततभाष्य-सम्बन्धी अनेक हटप्पणणयां भी िैं। चौथे अध्याय र्ें ब्रह्र्पवद्या के पुरस्कारों का प्रततपादन ि। इस अध्याय र्ें कुछ ब्यौरे के साथ र्ृत्यु के पश्चात् आत्र्ा का तनष्क्रर्ण तथा दोनों र्ागों, अथातश् देवयान तथा पपतृयान, द्वारा संचार तथा उस र्ुजक्त के

[1545] 1:1, 5-11; 14, 1-13; 2:1, 1-12; 22, 1-10 ।

[1546] 1/1 18; 1/2 19, 12, 2/1 / 3.3 / 1 / 3.11 : 1:4, 28; 2 / 1 29; 2/3, 51; 4/2 21।

[1547] देखें,ब्रह्र्सूत्र र्ांकरभाष्य , 1: 4, 28।

[1548] 2:2, 11 - 17।

[1549] देखें, 2 :2,1-45; 1/4, 28 ;8: s / s 53-54 ।

[1550] 23, 15 और आगे भी।

[1551] 3/2, 1, 10, ।

[1552] 3/2 ,11-41 ।

 स्वरूप का भी वणनश ि रिं ंसेलौटकर कफर संसारचि र् आगर्न निंीिता ि। प्रत्येक अध्याय र् चार हिस्से े

(पाद) िं और प्रत्येक हिस्सेर् रो सूत्र िं वे ककसी-न-ककसी वग शके अन्तगतश आ राते िं, जर्न्ि अधधकरण की संज्ञा दी गई ि। भभन्न-भभन्न टीकाकारों र् पाठभेद भी किं–किं ंपाया राता ि, ककन्तु ये सब भेद कुछ रित्त्व के निं ं ि।"[1553]

बादरायण वेदे को तनत्य रानता ि'[1554] और रास्त्रप्रराण िी उसकी दृजष्ट र् बिुत रित्त्वपूण शि।"[1555] वि स्पष्टरूप र् घोर्षणा करता ि कक तकश अथवा पवचार के द्वारा अध्यात्रज्ञान-सम्बन्धी सत्य की प्राजप्त सम्भूव निंी।'[1556] वि यि भी स्वीकार करता ि कक ज्ञान के दो िी स्रोत (साधन) िं, अथात्श ्श्रुतत और स्रतृत, और वि इर्न्ि प्रत्यक्ष, तथा अनुरान के[1557] नार् से पुकारता ि, सम्भवतः इसभलए कक स्रतृत, रैसाकक रंकर का सुझाव ि कक स्रतृत को ज्ञान के आधार (प्रारण्य) की आवश्यकता िोती ि बकक श्रुतत को निं, क्योंकक वि स्वतः प्रराण ि। ईश्वरीय ज्ञानरूप श्रुतत को, रो स्वतः प्रकाभर्त ि, प्रत्यक्ष राना गया ि।

श्रुतत से बादरायण का तात्पय शउपतनर्षदों से और स्रतृत से उसका तात्पय शभगवद्गीता, रिाभारत तथा र्नुस्रतृत से ि। जर्स प्रकार सांसाररक ज्ञान र् अनुरान का आधार प्रत्यक्षज्ञान ि, इसी प्रकार स्रतृत का आधार श्रुतत ि। बादरायण अन्य ककसी प्रराण को निं ंरानता। वि इस रीवन को दो भभन्न-भभन्न क्षेत्रों र् पवभक्त करता ि। एक, रो पवचार का पवर्षय ि और यि प्रकृतत का क्षेत्र ि जर्सके अवयव िं र्न, बुद्धध तथा अिंभाव, और दूसरा क्षेत्र ि अधचन्त्य और वि बडा ि। दूसरे क्षेत्र र् केवल रास्त्र िी िरारे पथप्रदर्शक िं।[1558] ऐसा एक भी तकश रो वेद के अनुकूल निंी, बादरायण की दृजष्ट र् तनरथकश ि। तकश का प्रारम्भ पवभर्ष्ट लक्षणों र् िोता ि ककन्तु ब्रह्र के पवर्षय र् िर् यि निंकि सकते कक यि अन्य गुणों से रून्य तथा अरुक-अरुक लक्षणों से युक्त ि। इसभलए तकश अन्तदृजशष्ट-सम्बन्धी ज्ञान के अधीन ि"[1559] और यि अन्तदृजशष्ट भजक्त तथा सराधध के द्वारा िी प्राप्त िो सकती ि।'[1560]

वेदान्तसूत्र के अनुसार, सांख्य र् वणणतश पुरुर्ष और प्रकृतत स्वतन्त्र पदाथ शनिं ंिं, ककन्तु एक िी यथाथसशिा के पररवततततश रूप ि।ं यथाथ शअनन्तों का अनेकत्व सम्भव िी निं। एकरात्र अनन्त सिा, अथात्श ्ब्रह्र को िी उपतनर्षदों र् वणणतश सवोच्च यथाथसशिा का रूप बताया गया ि। प्रथर् अध्याय र् उपतनर्षदों र् हदए गए ब्रह्र सम्बन्धी अनेक वणनशों के ऊपर िर् पवचार-पवर्र् शभर्लता ि।[1561] विी र्गत् ्का उद्भव स्थान, आधार

[1553] देखें,वेलवालकर हद र्ल्टपल आथरभर्प आफ हद वेदान्त सूत्रार्', पृषृठ 144-45, इजण्डयन कफलॉसाकफकल ररव्यू' ।

[1554] 1/3, 29।

[1555] 1/1,4 ।

[1556] 2/1.11।

[1557] 1/3, 28; 3/2,24;4/4,20 ।

[1558] 1/1, 3; 2/1,27 ।

[1559] 2/1.6 / 2 /1.11 ।

[1560] 3/2, 24।

[1561] 1/2 और 3।

तथा अन्त ि,'[1562] र्ो पवश्व का तनभरि् तथा उपादान भी ि। वि बबना साधनों के सृजृष्ट की रचना करता ि।'[1563] ब्रह्र् की यथाथतशा का एक र्नोवैज्ञातनक प्रर्ाण प्रगाढ़ तनद्रा (सुरुषुजप्त) की अवस्था की साक्षी र्ें भर्लता ि।[1564] ब्रह्र् को र्डरूप-प्रधान अथवा र्ीवात्र्ा के साथ न भर्ला देना चाहिए। उसके अन्दर सब धर् शओत-प्रोत िैं।"[1565] और विी आन्तररक पवधान तथा पथप्रदर्कश ि।'[1566] उसर्ें तनर्लशता, सत्याथ,श सवज्ञशता, सवर्शजक्तर्त्ता आहद गुण पवद्यर्ान िैं।[1567] उसके ब्रह्लाण्ड-सम्वन्धी रूपों का भी प्रततपादन ककया ि। वि पवश्वात्र्ा ज्योतत ि, सूय शर्ें र्ो स्वणर्शय पुरुर्ष ि वि विी ि, आकार् भी विी ि, तथा पवश्वात्र्ा वायु अथवा प्राण भी विी ि।"[1568] र्ीवात्र्ा र्ें प्रकार् (ज्योतत) भी विी ि।"[1569] र्नुष्य के हृदय र्ें उसका तनवास ि",[1570] इसी रूप र्ें उसका धचन्तन करना चाहिए, और िर्ें स्वतन्त्रता दी गई ि कक सवव्शयापक ईश्वर को एक पररभर्त देर् के अन्दर पवद्यर्ान भी र्ान ले सकते िैं। सर्स्त पदाथों का परर् अधधष्ठान एकर्ात्र सवोपरर आत्र्ा ि और विी प्रत्येक पदाथ शका स्रोत तथा एकर्ात्र यथाथ शपूर्ा और श्रद्धा के योग्य ि।[1571]

र्ड पदाथ शतथा चेतन र्ीवात्र्ाएंसवोपरर सिा के साथ ककस प्रकार सम्बद्ध िैं? क्या िर् इर्न्िें उसी प्रकार सर्झें र्ैसाकक गीता र्ें बतलाया गया ि, अथात्श एकर्ात्र यथाथसशिा के िी यि उच्चतर् तथा तनम्नतर् श्रेर्णी के अभभव्यक्त रूप िैं? सूत्र इस पवर्षय र्ें िर्ें कोई स्पष्ट र्ाग शर्निीहदखाता। उपतनर्षदों के सृजृष्ट-सम्बन्धी पवचार की अस्पष्टता इसर्ें भी पाई र्ाती ि। ब्रह्र् र्ो स्वयं अर्न्र्ा ि तथा तनत्य ि।"[1572] सम्पूण शपवश्व का कारण ि।"[1573] प्रत्येक भौततक तत्त्व ब्रह्र् के द्वारा रचा गया ि।[1574] यहद प्रारजम्भक तत्त्वों के अन्दर गतत िोनेसे र्गत् का पवकास िुआ तो भी वि र्जक्त जर्सके द्वारा उक्त पवकास सम्भव िुआ, ब्रह्र् के द्वारा िी दी गई। र्ैसेकक किा र्ाता ि ब्रह्र् तत्त्वों की रचना करके स्वयं उनके अन्दर प्रपवष्ट िो गया और उक्त तत्त्वों र्ें जस्थत यि ब्रह्र् िी ि-र्ो अन्यान्य पदाथों की सृजृष्ट को कायरूशप र्ें पररणत करता ि।'[1575]

यि पिले बतलाया र्ा चुका ि कक ब्रह्र् िी र्गत् का उपादान कारण और ब्रह्र् िी तनभर्ि् कारण ि।[1576] ब्रह्र् सब पदाथों का स्रष्टा ि और अपनेको सब पदाथों के रूप र्ें पररणत कर देता ि, र्ैसैकक भर्ट्टी अथवा सोना

[1562] 1/1, 2।
[1563] 2/1, 23-27।
[1564] 1/1, 9।
[1565] 2/1, 37
[1566] 1/1, 20 ।
[1567] 1/2, 1-2;2/1, 30
[1568] 1 । / 1,20-23।
[1569] 1/1 ,24 ।
[1570] 1/2 ,7 ।
[1571] 1/1 ,7 ।
[1572] 2/3, 9।
[1573] 1/1, 5; 1/2, 1; 2/1 , 22; 1/1 ,22 ।
[1574] 2/3.7।
[1575] 2/8, 13, ।
[1576] 1/4, 23-27

ी भिट्टी तथा सोनेके पदार्थों के रूप र्ें पररणत ोो र्ातेिैं। सूत्र र्ें'[1577] कारण तथा काय शके परस्पर सम्बन्ध के स्वरूप के पवर्षय र्ें अथात्श ्ब्रह्र् तथा र्गत् ्पर पवचार ककया गया िै। कारण और काय शके तादात्म्य-सम्बन्ध को दृष्टान्तों के द्वारा सर्झाया गया िै। ठीक र्जस प्रकार कपडेका एक थान र्ब भलपटा िुआ रिता िै तो अपने स्वरूप को ठीक-ठीक प्रकट निींकरता, ककन्तुर्ब उसे ेफैलाया र्ाता िै तभी अपनेस्वरूप को पूण शरूप से प्रगट करता िै, यद्यपप दोनों अवस्थाओं र्ें कपडा विी एकसर्ान िै। इसी प्रकार कारण और काय शएक िी िैं, भले िी उसके गुण परस्पर-भभन्न प्रतीत िोते िों।'[1578] कफर र्ैसे ेर्ब श्वास को रोक भलया र्ाता िै तो र्नुष्य कोई कर् श निींकर सकता, यद्यपप वि बराबर र्ीपवत रिता िै और र्ब वि श्वास को छोड देता िै तो वि अपनेअंगों को हिला सकता िै, यद्यपप इस सारी अवस्था र्ें श्वास एक िी िै, इसी प्रकार कारण और काय शभभन्न-भभन्न कर्ों को उत्पन्न करते िैं, यद्यपप वे िैं एक िी ।'[1579] ब्रह्र् और र्गत् ्परस्पर भभन्न निीं ंिैं[1580] वैसेिी र्ैसेकेक भट्टी का पात्र भट्टी से भभन्न निींिै।'[1581] यद्यपप टीकाकार इस पवर्षय र्ें सिर्त िैं कक कारण काय शसे भभन्न निींिै तो भी ब्रह्र् तथा र्गत् ्के तादात्म्य की उन्िोंनेभभन्न-भभन्न प्रकार से व्याख्या की िै। बादरायण की दृजष्ट र्ें अनन्य र्ब्द के प्रयोग से तात्पय शभभन्नता का अभाव अथवा पररवतनश निींिै। इस पररवतनश की व्याख्या करने के भलए िी र्ंकर ने अपवद्या की कल्पना की िै। र्गत् ्का अजस्तत्व ऐसेिी व्यजक्तयों के भलए िै र्ो अपवद्या के प्रभाव र्ें िैं, र्ैसे ेकक कल्पनात्र्क सांप ऐसेिी र्नुष्य के भलए िै जर्सेरस्सी के पवर्षय र्ें रर् िुआ िै। अन्य टीकाकारों ने 'पररणार्' अथात्श ्पररवतनश की कल्पना का आश्रय भलया िै। छान्दोग्य उपतनर्षद् र्ें कारण और काय श के दृष्टान्त के भलए भट्टी, सोना और लोिा तथा इनसे ेबने पदार्थों को चुना गया िै, रस्सी और सांप अथवा सीप और चांदी को निीं। सान्त पदार्थों की यथाथतशा ब्रह्र् के पररणार्स्वरूप िोनेिी से िै। "ब्रह्र् र्गत् ्का उपादान कारण िै" इस प्रकार के कथन से यिी ध्वतनत िोता िै कक यि र्गत् ्ब्रह्र् सारतत्त्व का िी पररणभर्त रूप िै।"[1582] र्गत् ्कोई राजन्त अथवा स्वप्न के सर्ान ढांचा निीं ंिै ककन्तुएक यथाथ शएवं पवध्यात्र्क ठोस पदाथ शिै, जर्सकी उत्पपि, जस्थतत तथा पवलय भी ब्रह्र् के अन्दर िोता िै।"[1583] बादरायण का र्त िै कक सृजष्ट-रचना की जक्त तनर्लश एवं तनदोर्ष ब्रह्र् की अपनी जक्त िै, जर्स प्रकार से कक ताप अजग्न की अन्ततनहशित जक्त िै।'[1584] ब्रह्र् अपनी लीला के भलए[1585] अपनेको र्गत् ्के रूप र्ें पवकभसत'[1586] करता िै ककन्तु इससे उसके अन्दर न तो

1577 2/1 ,14-20 ।

1578 2/1, 19 र्ांकरभाष्य ।

1579 2/1.2 र्ांकरभाष्य। रार्ानुर् के अनुसार, काय शकारण की िी पररवतततश अवस्था का नार् िै। र्ंकर भी स्वीकार करता िै कक यि र्गत् ्ब्रह्र् का अवस्थान्तर िी िै, र्ैसेकक कपडा धागों का।

1580 2 / 1, 14 ।

1581 1/1, 4; 1/4, 22 ।

1582 1/1.26 और भी देखें, 2/3, 71

1583 3/2, 3 ।

1584 1/3, 1 ।

1585 2/1 ,33 ।

1586 1/4, 26 ।

 ककंधचन्‍त्र पररवतनश िोता ि'[1587] और न उसका िास िी िोता ि। बादरायण को इस पवर्षय की धचन्ता निीं कक

वि यि सब कैसे ेसम्भव ि इसकी व्याख्या करे। रार्ानुर् तथा अन्यान्य आचायों की भांतत वि यि भी निींकिता कक ब्रह्र् की जक्त अद्भुत ि जर्सके द्वारा अधचन्त्य वस्तुकी भी प्राजप्त िो सकती ि। वि िर्ारा ध्यान श्रुतत के प्रत्यक्ष र्ें परस्पर पवरोधी वाक्यों की ओर आकृष्ट करते िुए िर्ें सावधान करता ि कक श्रुतत के प्रार्ाण्य के पवर्षय र्ें रंका करने का िर्ें कोई अधधकार निीं। दार्तशनक दृजष्ट से यि उिर असन्तोर्षर्नक ि। इस जस्थतत का सर्ाधान रंकर करता ि और परस्पर पवरोध की श्रुतत की अपेक्षा वैयजक्तक पवचारों के ऊपर डाल देता ि और तकश करता ि कक ब्रह्र् िी र्गत् ्के रूप र्ें पररणत निींिोता। िर्, जर्नके अन्दर राजन्तदोर्ष ि, यि सर्झते िैं कक एक दूसरे के रूप र्ें पररवततततश िो र्ाता ि। उसका र्त ि कक परर् यथाथसशिा ब्रह्र् ि, र्ो तनपवकशल्प आत्र्ा ि, और

उसका तकश ि कक ज्ञाता, ज्ञात तथा ज्ञान सब कुछ ककसी-न-ककसी प्रकार से ब्रह्र् िी के अन्दर तनहित ि। रार्ानुर् का र्त इससे भभन्न ि। वि र्ब एक तनर्लशश, अद्पवतीय ब्रह्र् के अततररक्त अनाहद र्गत्प्रवाि की सर्स्या र्ें आकर तघर र्ाता ि तो श्रुतत का आश्रय ढूंढ़ता ि। असम्भव भी ईश्वर के भलए सम्भव ि,'[1588] जर्सकी अद्भुत जक्तयाीं।''[1589]

बादरायण'[1590] किता ि कक आत्र्ा ज्ञाता ि जर्से रंकर ने बुद्धध का रूप हदया, ककन्तु रार्ानुर् इसे बुद्धधसम्पन्न ज्ञाता र्ानता ि। वल्लभ रंकर के साथ सिर्त ि ककन्तु केर्व के पवचार र्ें आत्र्ा ज्ञान तथा ज्ञाता दोनों िी ि। र्ीवात्र्ा कता शि।[1591] र्न्र् तथा र्ृत्यु का सम्बन्ध र्रीर से ि, आत्र्ा से निीं[1592] क्योंकक वि अनाहद ि। यि अनाहद तनत्य ि।[1593] र्ीवात्र्ा को सूक्ष्र् किा गया ि अथात्श ्अणु के आकार का। रार्ानुर्, र्ध्व, केर्व, तनम्बाकश, वल्लभ और श्रीकण्ठ इसी र्त को र्ानते ि।ैं रंकर का र्त ि कक आत्र्ा सवव्शयापक अथात्श ्पवभु ैं यद्यपप सांसाररक अवस्था र्ें इसे ेआणपवक सर्झा र्ाता ि।''[1594] बादरायण का र्त ि कक ब्रह्र् र्ीवात्र्ा के अन्दर ि, यद्यपप ब्रह्र् के स्वरूप पर आत्र्ा के स्वरूप का कोई असर निींिोता।[1595] चूंकक र्ीव और ब्रह्र् भभन्न-भभन्न िैं जर्स प्रकार सूय शका प्रकार् और सूय शभभन्न िैं और जर्स प्रकार प्रकार् को बादल ढक लेतेिैं ककन्तु

1587 2/1 ,27 ।

1588 देखें रार्ानुर्भाष्य, ब्रह्र्सूत्रों पर, 2/1, 27

1589 ब्रह्र्सूत्र के अनुसार (3 2, 3) यि र्गत् ्स्वप्नों की भांतत र्ाया निीं। 'र्ाया' र्ब्द र्ैसेकक अवाचशीन वेदान्त से स्पष्ट ै अत्यन्त र्ार्क ि। िर् इसका अथ शभास्कर से सिर्त िोकर अथप्रशत्ययर्ून्यत्व, अथवा रंकर से सिर्त िोकर, दृष्टनष्टस्वरूपत्व, अथवा रार्ानुर् के साथ भर्लकर आश्चयात्शर्कत्व, अथवा वल्लभ के अनुसार सवभशावनासार्थ्य शभीले सकते िैं।

1590 2/3 18।

1591 2/3, 33-39

1592 2/3, 16|

1593 2/3, 18

1594 देखें, 2:2, 19-28। ब्रह्र्सूत्र के अनुसार, र्ीव चार वगशके िैं र्रायुर्, अण्डर्, स्वेदर् तथा उद्भभर् । ये सब चेतनायुक्त र्ानेगए िैं, यद्यपप चेतनता की श्रेणणयां भभन्न-भभन्न िैं। वनस्पतत तथा पौधेअपनी चेतना को वाणी से प्रकट निींकर सकते,े क्योंकक उनर्ें तर्ोगुण की प्रधानता ि।

1595 1:2,8।

सूय शपर उसका असर निीं िोता, इसी प्रकार र्ब रीव दुुःख भोगता िै तो ब्रह्र् दुखु का भागी निींिोता।[1596] रीरधारी आत्रा कर् शकरती िै और सुख भोगती िै तथा पुण्य और पाप का संचंय करती िै और सुख व दुुःख र्ें भलप्त िोती िै, ककन्तु सवोपरर आत्रा का स्वभाव इसके पवपरीत िै और वि सब प्रकार की बुराई (पाप) से परे िै।'[1597] 'तत् त्वर्भस' और 'अयरात्रा ब्रह्र्' इत्याहद वाक्य यि दरानेश का प्रयत्न करते िैं कक दोनों अथात्श ब्रह्र् और आत्रा, ईश्वर और र्नुष्य यथाथ शर्ें एक िैं। यहद ब्रह्र् सबका कारण िै तो यि रीवात्रा का भी कारण िै। परर् दैवीय तत्त्व इसकी सभी अभभव्यजक्तयों र्ें पवद्यर्ान िै। प्रत्येक रीवात्रा ईश्वरीय आत्रा की भागीदार िै। श

बादरायण के कथन से यि स्पष्ट निींिोता कक ठीक ककस रूप र्ें रीवात्रा ब्रह्र् के साथ सम्बद्ध िैं अथात पवश्वात्रा के अंर् के रूप र्ें अथवा आभास (प्रततबबम्ब) के रूप र्ें।[1598] बादरायण तनदेर् करता िै कक आश्ररथ्य, औडुलोभर् और कार्कृत्स्न रीवात्रा के ब्रह्र् के साथ सम्बन्ध के पवर्षय र्ें भभन्न-भभन्न जस्थतत रखतेिैं। आश्ररथ्य का पवचार िै कक देर्-सम्बन्धी अथ शर्ें भी आत्रा ब्रह्र् का अंर् िै। औडुलोभर् का र्त िै कक प्रगाढ़ तनद्रा (सुरुषुजप्त) की अवस्था र्ें आत्रा का कुछ सर्य के भलए ब्रह्र् के साथ संयोग िो राता िै। कार्कृत्स्न, जर्सकी सम्र्तत का सर्थनश रं्कर भी करता िै, रानता िै कक ब्रह्र् पूण शतथा अपवभक्त रूप र्ें रीवात्रा के आकार र्ें पवद्यर्ान रिता िै और बादरायण केवल इन भभन्न-भभन्न र्तों का वणनश तो अवश्य करता िै ककन्तु इनर्ें से यि ककस र्त का सर्थनश िै, यि निींकिता।'[1599] रं्कर ने इस वाक्य का कक 'रीव सवोपरर यथाथसशिा का अंर् िै' अथ शयि लगाया िै कक 'रानो यि अंर् के सर्ान िै''[1600] (अंर् इव) चूंकक ब्रह्र् हिस्सों से भर्लकर निीं बना िै इसभलए यौधगक अथ शर्ें भी उसके हिस्से निींिो सकते। भास्कर तथा वल्लभ बलपूवकश किते िैं कक रीव प्रभु (ब्रह्र्) का एक अंर् िै क्योंकक उनर्ें परस्पर भेदे भी िै और तादात्म्य भी िै। रार्ानुर्, तनम्बाकश, बलदेव और श्रीकण्ठ का पवचार िै कक रीव ब्रह्र् का एक वास्तपवक अंर् िै इसी प्रकार र्ैसेकक ककसी प्रकार्र्य पुंर्, यथा अजग्न अथवा सूय शसे तनकलने वाला प्रकार् उक्त पुंर् का अंर् िोता िै। इस र्त का कक रीव सवोपरर ब्रह्र् से भभन्न भी िै और अभभन्न भी िै, र्ैसेकक एक सांप अपनी कुण्डभलयों से भभन्न िै भी और भभन्न निींभी िै,'[1601] खण्डन ककया गया िै। ककन्तु रार्ानुर् रानता िै कक सूत्र र्ें ब्रह्र् का प्रकृतत के साथ रो सम्बन्ध िै उसका प्रततपादन ककया गया िै और वि इस र्त का खण्डन करता िै कक प्रकृतत केवल ब्रह्र् की एक भभन्न र्ुद्रार्ात्र िै ककन्तु ब्रह्र् से भभन्न निीं िै, र्ैसेकक सांप की कुण्डभलयांकेवल भभन्न र्ुद्रा िी िैं ककन्तु सांप से भभन्न निींिै। रार्ानुर् का तकश िै कक रीव और प्रकृतत दोनों ब्रह्र् के अंर् िैं। केर्व का तकश िै कक प्रकृतत दोनों िै अथात्श ब्रह्र् से भभन्न भी िै और ब्रह्र् के साथ उसका तादात्म्यभाव भी िै, र्ैसेकक सांप और उसका फल भभन्न-भभन्न िै ककन्तु र्ब सांप को एक सम्पूण शइकाई के रूप र्ें भलया राता िै तो भभन्न निींभी िै। प्रकृतत ब्रह्र् के साथ एकरूप िै क्योंकक इसका अजस्तत्व िी ब्रह्र् के ऊपर तनभरश िै और यि ब्रह्र् से भभन्न भी िै और अभभन्न भी िै और यि भेद

1596 2:3, 16।इस पर केर्व की टीका भी देखें।

1597 1: 1, 17और भी देखें, 2: 1, 22।

1598 2: 2, 43 और 50।

1599 14, 19, 22।

1600 2:3, 43, रांकरभाष्य ।

1601 3: 2, 27।

 तनजश्चत रूप से यथाथ शि।'[1602] बादरायण ब्रह्म तथा र्ीवात्र्ा के भेद को यथाथ शर्ानता िै इस पवर्षय को प्रबल

सर्थनश प्राप्त िै और यि भेद आत्र्ा के र्ोक्ष प्राप्त कर लेने hat 4 पश्चात् ्भी पवद्यर्ान रिता िै। र्ीव आकार र्ें सूक्ष्र् िोने पर भी सर्स्त रीर र्ें व्याप्त रिता िै र्ैसेकक चन्दन का थोडा-सा लेप भी सारे रीर को र्ीतलता पिुंचा देता िै।"[1603]

यि र्गत् ्ईश्वर के संकल्प का पररणार् िै। यि उसी की लीला अथवा खेल िै। ककन्तु इसका अथ शयि निींकक उसनेपाप और दुुःख की सृजृष्ट भी अपनी प्रसन्नता के भलए की, र्ैसेकेक ककसी-ककसी धाभर्कश योर्नां र्ें भलखा भर्लता िै कक तनम्न श्रेणी के प्राणी रिं र्ो उसकी अनन्त र्ट्रिर्ा की प्रर्ंसा करेंगे ेतथा उसका यर् गाएंगे। एक ऐसा ईश्वर र्ो आनन्दर्य िै और र्ो प्राणणयों के दुुःख र्ें प्रसन्नतालाभ करता िो वि ईश्वर िी निीं। र्नुष्य र्ातत र्ें र्ो पवभभन्नता पाई र्ाती िै उसका तनणयश र्नुष्यों के अपनेकर् शके आधार पर िोता िै।[1604] ईश्वर की र्जक्त भी र्नुष्यों के पूवशर्न्र्ों के ऊपर पवचार करने के कारण से पररभर्त िो र्ाती िै। सुख का पवर्षय रूप र्ें पवभाग र्ो देखा र्ाता िै वि प्रकट करता िै कक इस र्गत् ्र्ें एक ऐसी नैततक व्यवस्था िै जर्सेईश्वरेच्छा किा र्ाता िै। इस प्रकार से ब्रह्म न तो पक्षपाती िी िै और न िी तनदशय िै और उसे ेस्वेच्छापूवकश इस प्रकार की स्वतन्त्रता अथवा उिरदातयत्विीनता भी प्राप्त निीं, जर्न दोर्षों का आरोप ककसी-ककसी ईश्वरज्ञानविो ने ईश्वर के नार् पर कर हदया िै। यहद ईश्वर की कठोर तनष्पक्षता के दोर्ष का इस भसद्धान्त से तनराकरण िो र्ाता 5/6 कक वि प्रत्येक र्नुष्य को उसके अपनेकर् शके अनुसार सुख अथवा दुुःख प्रदान करता िै तो इस दूसूरे र्त का कक ईश्वर स्वयं उधचत एवं अनुधचत आचरण'[1605] का कारणरूप कता शि, कोई सर्ाधान निीं िोता। यहद प्रत्येक प्रकार के कर् शका प्रेरक ईश्वर िी िै, तब तो विी कता शऔर दुुःख का भोक्ता दोनों िो र्ाता िै। ऐसा प्रतीत िोता िै कक वि अनन्त परम्परा र्ें इस प्रकार सेर्कडा िुआ िै कक वि स्वयंिी अपनेको अच्छाई और बुराई का फल देनेवाला भी िै। यिां ्पर कफर सूत्र श्रुतुत का िी आश्रय लेता िै, ककन्तु परस्पर पवरोध के तनराकरण का कोई प्रयत्न निींकरता।

सूत्र के तीसरे अध्याय र्ें इस पवर्षय का प्रततपादन ककया गया िै कक ककस प्रकार नैततक साधना के द्वारा एक र्नुष्य को ऐसा रीर प्राप्त िो सकता िै र्ो परब्रह्म के ज्ञान की प्राजप्त करा सके। उपतनर्षदों र्ें वणणतश र्ो साधारण तनयर् िर्ारे अपने साधनों की पपवत्रता के भलए हदए गए िैं उन्िें सूत्र र्ें स्वीकार ककया गया िै।'[1606] साधारणतया ब्राह्मण, क्षबत्रय, वैश्य-इन तीनों उच्चवणों को यज्ञ आहद करने का अधधकार हदया गया िै। इसके

[1602] 3/2 27-28 पर केर्व की टीका।

[1603] 2/3 21। सूत्र के अनुसार र्ीव का तनवास स्थान हृदय अथवा हृत्पद्र् िै र्ोकक स्नायुर्ाल के र्ेरुदण्ड का र्टल केन्द्र िै र्िांकक 101 भभन्न-भभन्न नाडडयां भर्लती िैं। उन सबर्ें से सुर्षुम्ना एक नाडी िै र्ो बराबर उनर्ें से गुर्रती िुई र्ीर्षस्शथान तक पिुंचती िै। र्ृत्युकाल सर्ीप आने पर ज्ञाता आत्र्ा प्रभुकी कृपा से ेहृदय की ग्रंधथ को तछन्न-भभन्न करके सुर्षुम्ना के र्ाग शर्ें प्रपवष्ट िो र्ाती िै और कपाल र्ें तछद्र करके रीर से तनकल र्ाती िै (4/2, 17) र्ब र्ीव रीर से बािर तनकलता िै तो यि सूक्ष्र् इजन्द्रयों से,े र्न तथा र्ुख्य प्राण से,े आवृत रिता िै (3/1, 1 - 7; 4/2, 3 - 21) । यि उन्िींके साथ कफर से ेर्न्र् लेता िै।

[1604] 2:1, 34 ।

[1605] कोर्षीतकक उपतनर्षद्, 3/81

[1606] 2/3,40 - 12।

अततररक्त रूद्र और जस्त्रयां भी प्रभु की कृपा से रुजक्त को प्राप्त कर सकते िैं।[1607] सूत्र के रचतयता का किना िै कक कियात्र्क सेवा के भाव तथा संसार के त्याग को भी धर्ग्रशन्थों का सर्थनश प्राप्त िै।'[1608] उक्त ग्रन्थकार का अपना झुकाव भी त्याग-भाव के साथ कर्वशीरता के र्ीवन'[1609] को परस्पर संयुक्त करने की ओर िै। अज्ञानता से ककया गया कर्,श ककन्तु सर्स्त कर् शर्नीं, आध्याजत्र्क ज्ञान की प्राजप्त र्ें बाधक िोता िै।[1610] र्ोक्षप्राजप्त के शश ्र्ीवन्रुक्त की अवस्था, उसर्ें भी कर् शकरने का

पश्चात ्रो भी स्वतन्त्रता इस लोक र्ें िर्ें प्राप्त िोती िै, अथात पवधान िै।[1611] उपतनर्षदों का अनुसरण करते िुए सूत्र भी देवताओंकी पूर्ा के पवधान की अनुर्तत देता िै र्ोकक अपनेउपासकों को वरदान देते िैं। यद्यपप ये भी सवोपरर ब्रह्र् से िी र्ाभसत िोते िैं।'[1612] यथाथतशा प्रतीकों अथवा भलंगों से परे िै और इनके अन्दर सजन्नपवष्ट र्नीिं ककन्तुतो भी र्नुष्य की दुबुलशता या पवचार करके उक्त श ्उसकी कोई अभभव्यजक्त र्नीिं,

प्रतीकों की उपासना की अनुर्लन दी गई िै।[1613] परब्रह्र् अव्यक्त िै, अथात यद्यपप संराधना र्ें[1614] र्् उसका साक्षात्कार िोता िै। ईश्वर का साक्षात्कार िी सवोच्च कोहट का धर् शिै। ऐसे व्यजक्त र्ो इस प्रकार की आध्याजत्र्क अन्तदृजशष्ट को पवकभसत र्नींकर सकते, र्ास्त्रों पर भरोसा रखते िैं। र्नुष्य का अजन्तर् लक्ष्य आत्र्ा को प्राप्त करना िै।"[1615] िर् यि र्नींकि सकते कक आत्र्ा के साथ इस प्रकार का भर्लन तादात्म्यस्वरूप का िै अथवा संयोग तथा सिचय शका िै। बादरायण र्ीवन्रुजक्त र्ें पवश्वास करता िै। ब्रह्र्ज्ञान िो र्ाने पर उन कर्ों का, जर्न्िोंने फल देना अभी प्रारम्भ र्नीं ंककया िै, पवनार् िो र्ाता िै"[1616] यद्यपप र्रीर तब तक पवद्यर्ान रिता िै र्ब तक कक, वि कर् शर्ो फल देना आरम्भ कर चुके िैं,[1617] पूणतशया र्ेर्ष र्नीं ंिो र्ाते।

चौथेअध्याय र्ें िर्ें वणनश भर्लता िै कक ककस प्रकार र्ीवात्र्ा देवयानर्ाग शसे ब्रह्र् को प्राप्त करती िै, र्िां ंसे कफर संसारचि र्ें लौटना र्नींिोता। चौथे ंअध्याय के 4, 5 - 7 सूत्र र्ें र्ुक्तात्र्ा के लक्षणों पर पवचार-पवर्् शककया गया िै। औडुलोभर् के अनुसार इसका र्ुख्य स्वरूप 'पवचार' िै। र्ैभर्तन का र्त िै कक र्ुक्तात्र्ा र्ें उच्चकोहट के अनेक गुण पवद्यर्ान िोते िैं और सूत्रकार अपना र्त प्रकट करते िुए भी किता िै कक उक्त दोनों िी पवचारों का सर्न्वय युहदतयुक्त िै। र्ोक्ष प्राप्त करनेपर र्ुक्तात्र्ा अनन्त र्जक्त तथा ज्ञान प्राप्त कर लेती िै। इसका वणनश करने के पश्चात् ्सूत्रकार यि भी स्पष्ट कर देता िै कक कोई भी र्ुक्तात्र्ा, सृजृष्टरचना, र्ासन तथा पवश्व के संिार की र्जक्त प्राप्त र्नींकरती'[1618] क्योंकक ये काय शकेवल एकर्ात्र ईश्वर के िी िैं। ध्वं और

1607 1 / 3, 34 - 38 ;3: , 38।

1608 3/4.9

1609 3/4, 32-35

1610 3/4, 26।

1611 3/4, 32 ।

1612 3/2 ,38-41 ।

1613 4/1 ,4 ।

1614 3/2, 23-24।

1615 1/1, 9 ।

1616 4/1 ,13-15|

1617 4/1 ,19 ।

1618 4/4, 17|

श ् रार्ानुर् उक्त वाक्य की व्याख्या सरलता के साथ कर लेर्तें, क्योंकक यि उनके अपने भसद्धान्त अथात् र्ीवात्र्ा तथा ईश्वर के र्ध्य स्थायी भेदे र्ानने के सवथशा अनुकूल पडता िै।[1619] ककन्तु बादरायण का र्त इस पवर्षय र्ें बबलकुल स्पष्ट निीं ं िै। रिां ंकुछेक वाक्य उक्त भेद को जस्थर[1620] बताते िैं, अन्य वाक्य र्ात्र उसका सर्ाधान कर देते िैं।'[1621]

5. उपसंिार

बादरायण संसार के अद्वैतवाद-पवर्षयक पवचार का सर्थनश करता िै। उसे े बिुदेवतावाद अथवा अनेक स्वतन्त्र और एकसर्ान परर् यथाथसशिाओं अथवा अर्न्र्ा र्ीवात्र्ाओं या ईश्वर तथा र्ैतान के र्ध्य

द्वैतभाव आहद से कोई सरोकार निीं। ब्रह्र् के पवर्षय र्ें र्ो दो र्त िैं अथात्श ्तनपवर्ेशर्ेष धचन्र्ात्रा का स्वरूप, र्ैसाकक बादरी, कार्कृत्स्न और औडुलोभर् र्ानते िैं, और सपवर्ेर्ष र्ीरधारी प्रभु, र्ैसाकक आश्ररथ्य तथा र्ैभर्तन र्ानते िैं, यिे दोनों र्त सूत्रकार को अभीष्ट िैं। सूत्र की पद्धतत से यि ठीक-ठीक तनणयश करना सम्भव

निीं िै कक ग्रन्थकार के र्न र्ें उक्त दोनों र्तों के सर्न्वय का क्या प्रकार रिा िोगा। उपतनर्षदों का र्त स्पष्ट िै

कक ब्रह्र् अपवकारी अथवा पररवतनशरहित तथा तनत्य िै। यि र्गत् ्पररवतनशर्ील तथा अस्थायी िै। इस प्रकार का काय शपवपरीत गुण रखनेवालेकारण से कैसे े प्रकट िो सकता िै? सूत्र श्रुतत के आधार पर केवल इतना िी किता

िै कक ब्रह्र् पवश्व के रूप र्ें पररष्कृत िो र्ाता िै और इजन्द्रयातीत रिता िै।'[1622] 'ब्रह्र्कारणता' की अत्यधधक यथाथ शपररभार्षा करने का प्रयत्न करने पर िर्ें भभन्न-भभन्न र्त भर्लेंगे। र्ंकर का तकश िै कक ब्रह्र् र्गत् ्की उत्पपि करता िै ककन्तु उससेब्रह्र् के अन्दर कोई भी पवभर्ष्ट पररवतनश निीं ं िोता, रार्ानुर् तथा वल्लभ का र्त िै कक यि र्गत् ्वस्तुतः ब्रह्र् के द्वारा बना िै, अथात् श ्ब्रह्र् वस्तुतः र्गत् ् के रूप र्ें पररणत िो गया िै। कफर, बादरायण का किना िै कक यद्यपप ब्रह्र् र्ीवात्र्ा के अन्दर िै तो भी र्ीव के दोर्षों के कारण ब्रह्र् के अन्दर कोई पवकार निीं िुआ, क्योंकक दोनों के स्वभाव र्ें परस्पर भेद र्ो िै।'[1623] वि ब्रह्र् और र्ीवात्र्ा के अन्दर दोनों भावों को अथात्श ्तादात्म्य तथा भेदभाव को र्ानता िै। उक्त जस्थतत के सम्बन्ध र्ें कोई तकशसम्र्त कथन उसनेनिींककया। र्ंकर को यि असम्भव र्ंचता िै कक ककस प्रकार सूत्रकार के ब्रह्र्-पवर्षयक पवचारों को उपतनर्षदों के अन्दर प्रततपाहदत तनगुणश तथा तनपवर्ेशर्ष ब्रह्र् के ऊपर लागू ककया र्ा सकता िै। ककन्तु अन्य भाष्यकार सूत्रकार की पररभार्षाओं को सवोपरर ब्रह्र् के सम्बन्ध र्ें सवथशा उपयुक्त र्ानने को उद्यत िैं। इन भाष्यकारों का तकश िै कक सूत्रकार दो प्रकार के ब्रह्र् की कल्पना से एवं र्गत् ्के भर्थ्यात्व से भी अनभभज्ञ िै। सूत्रकार सांख्य का खण्डन तथा सृजष्टरचना-सम्बन्धी कल्पनाओंपर इतनी

[1619] 1/1.17 ।

[1620] 4/4 17और 21।

[1621] 4/2 13 और 16।

[1622] 1/4 27।

[1623] 1:2,8।

गम्भीरता के साथ पववाद न करता यहद उसके र्त र्ें यि केवल आभासर्ात्र िोता, क्योंकक उस अवस्था र्ें इस र्गत् के स्रष्टा का कोई प्रश्न िी न उठता। यि भी िो सकता िै कक बादरायण दैवीय स्वभाव के वस्तुतः परर्वतनशील पक्ष र्ें पवश्वास करता िो, अथात् उसके स्वगत भेद र्ें, जर्सके कारण ब्रह्म र्ें पवपवध पदाथों के रूप र्ें तथा व्यजक्तगत र्नुष्य-र्ीवन र्ें भी अपनेको अभभव्यक्त करने की योग्यता िै। तो भी इस पवर्षय र्ें कोई स्पष्ट कथन निीं भर्लता िै।

र्ुक्तात्र्ा की दर्ा ब्रह्म सेअपवभाग की दर्ा िै। इस साधारण से अपवभागरूपी तनयर् की नानापवध व्याख्याएं िो सकती िैं, र्ोकक इसे परवती भाष्यकारों सेप्राप्त िोती िैं। र्ंकर इसका तात्पय शयि सर्झता िै कक पवश्वात्र्ा के साथ इसका सम्पूण शभाव सेतादात्म्य िै, ककन्तुरार्ानुर् के अनुसार ईश्वर के साथ आंभर्क ऐक्य िोता िै। र्ंकर की पवचार-पद्धतत र्ें दोनों के भलए गुंर्ाइर् िै। नीततर्ास्त्र के प्रश्न पर बादरायण ने, त्याग का कर्शके साथ क्या सम्बन्ध िै, इस पर सवथशा पवचार-पवर्शनिीं ककया िै और उद्देश्यप्राजप्त के भलए इनके अन्दर किां तक क्षर्ता िै, इस पवचार पर भी प्रकार् निीं डाला िै। धर्शके क्षेत्र र्ें वि ब्रह्म को अव्यक्त र्ानता िै, ककन्तु तो भी स्वीकार करता िै कक उसका आध्याजत्र्क रूप र्ें साक्षात्कार िो सकता िै। दोनों के सर्न्वय की आवश्यकता िै।

बादरायण के सूत्र र्ें भी उपतनर्षदों की पवर्ेर्षता के सर्ान अतनजश्चतता तथा संहदग्धता पाई र्ाती िै। सूत्र र्ें उपतनर्षदों की िी भर्क्षा का प्रततपादन करने का प्रयत्न ककया गया िै और इसीभलए इसके अन्दर अनेक प्रकार केसन्देि तथा वादपववाद के अंकुरों का सर्ावेर् िै। यहद सूत्र के अन्तगतश पवचारों की पवभर्ष्टता को और सूक्ष्र्ताके साथ सर्झने का कोई प्रयत्न ककया र्ाएगा तो अनेक पवरोधी चट्टानों तथा आध्याजत्र्क पवघ्नों का सार्नाकरने की सम्भावना िो सकती िै। अन्त र्ें िर्ें यि देखने का प्रयत्न करेंगे कक ककस प्रकार एक िी सर्ान सूत्रों र्ेंआध्याजत्र्क र्नोवृपत्तयों र्ें भभन्नता रिने के कारण नानापवध व्याख्याओंकी उत्पपत्त िोती िै।

आठवा ाँअध्याय

र्ंकर का अद्वैत वेदान्त

प्रस्तावना-र्ंकर का न्र्काल तथार्ीवनसाहित्य- गौडपादअनुभूतज्ञानका पवश्लेर्षण-सृजृष्टरचना-
नीततर्ास्त्र और धर्-शगौडपाद और बौद्धधर्-शभतृिशरर- भतृप्रशपंच-उपतनर्षदों तथा ब्रह्मसूत्र के साथ र्ंकर का
सम्बन्ध-र्ंकर तथा अन्य सम्प्रदाय आत्र्ा ज्ञान का तन्त्र या बना प्रत्यक्ष-अनुर्ान-र्ास्त्र- प्रर्ाण-
पवर्षतयपवज्ञानवाद का तनराकरण- सत्य की कसौटी ताककशक ज्ञान की अपूणतशा अनुभव, तकश तथा शुरुतत-परा तथा
अपरा पवद्या-र्ंकर के भसद्धान्त और कुछ पाश्चात्य पवचारों की तुलना-पवर्षयतनष्ठ र्ाग शदेर्, काल और कारण-
ब्रह्न-ईश्वर अथवा र्ीरधारी परर्ात्र्ा ईश्वर का र्ातयक रूप-र्गत् ्का भर्थ्यात्व-र्ायावाद अपवद्या-क्या
र्गत् ्एक रांतंत ि-र्ाया और अपवद्या- प्राकृततक र्गत्–र्ीवात्र्ा साक्षी और र्ीव आत्र्ा और र्ीव-ईश्वर और
र्ीव-एकर्ीववाद तथा अनेकर्ीववाद नीततर्ास्त्र र्ंकर के नीततर्ास्त्र पर ककए गए कुछ आरोपों पर पवचार-कर्-श
र्ोक्ष परलोक-धर्-शउपसंिार।

1. प्रस्तावना

र्ंकर का अद्वैतवाद, एक र्िान् ्कल्पनात्र्क सािस और ताककशक सूक्ष्र्ता का दर्नश िै। इसका उग्र बुद्धधवाद, इसका कठोर तकश र्ोकक र्नुष्य की आर्ाओं तथा पवश्वासों के प्रतत उपरार्ता का भाव भलए अपने र्ाग शपर आगे िी आगे ्चलता र्ाता िै, इसका धाभर्कश तत्त्व-सम्बन्धी उद्वेगों से अपेक्षाकृत स्वातन्त्र्, यि सब एकसाथ भर्लकर इसे ्पवर्ुद्ध दार्तशनक योर्ना के एक र्िान् ्उदािरण के रूप र्ें उपजस्थत करता िै। धथबौत, जर्स पर कोई र्ंकर के प्रतत पक्षपात रखने ्का लांछन निीं लगा सकता, र्ंकर के दर्नश के पवर्षय र्ें इस प्रकार भलखता िै: "र्ंकर द्वारा प्रततपाहदत भसद्धान्त र्ो पवर्ुद्ध दार्तशनक दृजष्टकोण से, सब प्रकार के धर्तशत्त्व-सम्बन्धी पवचारों के अततररक्त अत्यन्त र्ित्त्वपूण शतथा रोचक िै, भारत की भूभर् र्ें उपर्ा िै। वेदान्त के उन रूपों र्ें से र्ो र्ंकर के र्त सेभभन्न हदर्ा र्ें र्ाते िैं, अथवा वेदान्त-पवपरीत दर्नशों र्ें से कोई भी, र्िां ्तक सािस, गाम्भीय शतथा कल्पना की सूक्ष्र्ता का सम्बन्ध िै, र्ास्त्रीय वेदान्त की तुलना र्ें निींठिर सकते।"[1624] र्ंकर के ग्रन्थों को पढ़ते ्सर्य यि असम्भव िै कक पाठक के र्न र्ें इस प्रकार का भाव उत्पन्न न िो कक वि एक ऐसेर्जस्तष्क के सम्पकश र्ें आ गया िै र्ो अत्यन्त सूक्ष्र्ता के साथ गिराई र्ें र्ानेवाला तथा अगाध आध्याजत्र्क ज्ञान सेपररपूण शिै। अपरररे्य पवश्व के पवर्षय र्ें अपनी अत्यधधक उच्च भावना के कारण,

---

1624 'इण्रोडक्र्न टू ब्रह्मसूत्र', पृष्ठ 14। सर चाल्स शइभलयट के र्त र्ें र्ंकर का दर्नश संगतत, पूणतशा तथा गाम्भीय शर्ें भारतीय दर्नश र्ें सबसे प्रथर् स्थान रखता िै। ('हिन्दूइज़्र् एण्ड बुद्धधज़्र्', खण्ड 2, पृष्ठ 208)

आत्रसम्बन्धी गूढ़ तत्त्वों के स्फूततदशायक प्रेक्षण के कारण, जर्से ेभसद्ध ककया र्ा सके, उसके सम्बन्ध र्ें न अधधक और न कर् कथन करनेका अपवचल संकल्प रखनेका कारण, रं्कर र्ध्यकालीन भारत के धाभर्कश उपदेर्कों के नानापवध सर्स्र्ों के र्ध्य एक तेर्स्वी व्यजक्तत्व रखते िैं। उनका दर्नश स्वयं र्ें पररपूण शिै जर्सको न तो अपने आगे ेऔर न पीछे की ककसी अन्य सार्ग्री की आवश्यकता िै। यि एक ऐसी स्वतःभसद्ध पूण शइकाई िै र्ो कलापूण शग्रन्थों र्ें िी पाई र्ा सकती िै। यि अपनी पूवतशनधारशरत कल्पनाओंको पवस्तृत रूप र्ें प्रस्तुत करता िै, अपने िी लक्ष्य द्वारा र्ाभसत िोता िै, और अपने सब घटक अवयवों को एक स्थायी तथा युजक्तयुक्त साम्यावस्था र्ें धारण ककए िुए िै। दर्नशर्ास्त्र के ककसी पवद्याथी के अन्दर र्ो गुण िोने चाहिए ऐसेगुणों की र्ो सूची'[1625] रं्कर ने तनधारशरत की िै। उससेयि स्पष्ट िो र्ाता िै कक उसकी दृजष्ट र्ें दर्नश केवलर्ात्र बौद्धधक धंधा न िोकर सर्पपतश र्ीवन भी िै। सबसे प्रथर् गुण, 'तनत्य तथा अतनत्य वस्तुओं र्ें भेदे करने की क्षर्ता' की र्ांग िै कक दर्नशर्ास्त्र के पवद्याथी के अन्दर ऐसी पवचारर्जक्त िोनी चाहिए र्ो उसे ेअपररवतनशर्ील यथाथसशिा तथा पररवतनशर्ील संसार के अन्दर भेद करने र्ें सिायता प्रदान कर सके। ऐसेव्यजक्तयों के भलए जर्नके अन्दर यि र्जक्त िो, अध्यात्रपवद्या-सम्बन्धी सािभसक काय शसे दूरू रिना असम्भव िो र्ाता िै। दूसूरा आवश्यक गुण िै 'पुरस्कार के सुख की आकांक्षा का इस लोक तथा परलोक दोनों र्ें त्याग' । आनुभपवक र्त् ्र्ें तथा र्नुष्य के एिलौकिकक र्ीवन र्ें भी आत्रा की रित्त्वाकांक्षाओं को पूण शकर सकने योग्य सार्ग्री निीिं। दर्नशर्ास्त्र को उधचत अवसर तथा औधचत्य दोनों िी र्ीवन र्ें उपलब्ध राजन्त-तनवारण द्वारा प्राप्त िोतिे।ै

सत्य का अन्वेर्षण करनेवाले को चाहिए कक वि वस्तुओंके प्रतीयर्ान रूप के सर्क्ष अपनेको नीचे े धगरानेके स्थान पर अपने अन्दर एक कठोर अनासजक्त के भाव का पवकास करे, क्योंकक यिी सवशे्रेशष्ठ आत्रा की पवभर्षता िै। तीसरा गुण जर्सके ऊपर बल हदया गया िै, यि िै 'नैततक व्यवस्था[1626] और सबसे अन्त र्ें 'र्ुर्ुक्षुत्व की प्रबल अभभलार्षा' का स्थान िै। रै्साकक सन्त ल्यूक ने किा िै, िर्ारे र्न का झुकाव एक तनत्य र्ीवन की ओर िोना आवश्यक िै।'[1627] रं्कर िर्ारे सर्क्ष दर्नश का र्ो यथाथ शआदर् शप्रस्तुत करते िैं वि अधधकतर ज्ञानपरक न िोकर पववेकबुद्धधपरक एवं ताकककशक पवद्यापरक न िोकर आध्याजत्रक स्वातन्त्र्य् से युक्त िै। रं्कर की दृजष्ट र्ें संसार के कततपय अन्य र्िान् ्पवचारकों यथा प्लेटो, प्लाहटनस, जस्पनोर्ा और िीगिल के सर्ान िी दर्नशर्ास्त्र र्ाश्वत सत्य का गूढ़ तनरीक्षण िै र्ोकक र्नुष्य के तुच्छ र्ीवन की क्षुद्र धचन्ताओं से उन्रुक्त िोनेके कारण हदव्य िै। रं्कर की र्िाकाव्य ककन्तु सूक्ष्र् आन्वीक्षक्षका पवद्या के अन्दर से एक पवर्द तथा भावुक प्रवृपि की झलक भर्लती िै जर्सके बबना दर्नशर्ास्त्र का झुकाव र्ात्र तकशरूपी खेल की ओर िो र्ाना सम्भव िै। अत्यन्त कठोर तकश के ऊपर र्िां ंरं्कर को पूण शअधधकार प्राप्त िै, विांदूसूरी ओर उन्िें एक उत्कृष्ट तथा सर्ीव काव्य पर भी उतना िी अधधकार प्राप्त िै, यद्यपप यि दर्नश से भभन्न प्रकार का पवर्षय िै। उनकी प्रततभा की ककरणों ने पवचारधारा के अन्धकारर्य कोनों र्ें भी पिुंचकर उन्िें प्रकाभर्त ककया तथा अत्यन्त तनरार्हृदयों के दुःखों को भी दूरू कर उन्िें सान्त्वना प्रदान की। र्िां ंएक ओर रं्कर का दर्नशर्ास्त्र अनेकों को

[1625] र्ांकरभाष्य, प्रस्तावना ।

[1626] र्ांर्ांकरभाष्य, 2:1, 1।

[1627] 'ऐक्ट्स', 13: 48। देखें भारतीय दर्नश, प्रथर् खण्ड, पृष्ठ 37 और 38।

बल प्रदान करता ि‍ै तथा सान्त्वना देता ि‍ै, दूसूरी ओर तनःसन्दिे ऐसेभी व्यजक्त ि‍ै जर्न्िं र्ंकर पवरोध तथा अन्धकार की एक अथाि खाई प्रतीत िोते ि‍ैं। ककन्तु ि‍र् सिर्त िों यान िो, यि र्ानना िी पडेगा कक उनके र्जस्तष्क का प्रकार् िर्ें कभी भी र्िं ंका तिां ंिी नर्िंछोडा र्ाता ।

2. र्ंकर का र्न्र् काल तथा र्ीवन

तेलंग के अनुसार, र्ंकर, ईसा के पश्चात् ्छठी र्ताब्दी के र्ध्य अथवा अन्त र्ें िुए।[1628] सर आर. र्ी भण्डारकर का किना ि‍ै कक र्ंकर का र्न्र् सन् ्680 ईस्वी र्ें िुआ। वे इससे कुछ वर्ष शपूव शभी र्ानने को उद्यत थे।[1629] र्ैक्सरू्लर तया प्रोफेसर र्ैकडोनल का र्त ि‍ै कक र्ंकर का र्न्र् 788 ईस्वी का ि‍ै और 820 ईस्वी र्ें उनका दिेान्त िुआ। प्रोफेसर कीथ की सम्र्तत र्ें भी नवीं ंर्ताब्दी के प्रथर् चरण र्ें र्ंकर का िोना र्ाना गया ि‍ै।[1630]

िर् र्ंकर के रूप र्ें तनःसंग तपस्वी पवचारक की कल्पना कर सकते ि‍ैं, र्ो गम्भीर ध्यान र्ें र्ग्न िोने की क्षर्ता रखता था और साथ िी कियात्र्क र्ीवन र्ें भी गच्ची था। र्ंकर के कुछ भर्ष्यों ने उसके र्ीवन वृि-सम्बन्धी घटनाओंका संग्रि ककया ि‍ै. जर्नर्ें से र्ुख्य ि‍ैं: र्ाधवकृत 'र्ंकरहदजग्वर्य' तथा आनन्दधगरर कृत 'र्ंकरपवर्य'[1631] र्ंकर का र्न्र् र्ालाबार की सरल स्वभाव ककन्तु पवद्वान तथा पररश्रर्ी नम्बूद्री ब्राह्र्ण र्ातत र्ें िुआ और सार्ान्यतः यि अनुर्ान ककया र्ाता ि‍ै कक उनका र्न्र्स्थान प्रायद्वीप की पजश्चर्ी सर्ुद्रतट पर जस्थत कालदी था।[1632] यद्यपप परम्परा के अनुसार किा र्ाता ि‍ै कक उनके कुलदेवता भर्व थे, ककन्तु एक र्त यि भी ि‍ै कक वे र्न्र् सेर्ाक्त थे। अपनी युवावस्था के प्रारम्भ र्ें वे गौडपाद के भर्ष्य गोपवन्द द्वारा संचाभलत वैहदक पाठर्ाला र्ें प्रपवष्ट िुए। अपनेसब ग्रन्थों र्ें र्ंकर स्वयं को गोपवन्द के भर्ष्यरूप र्ें िी बताते ि‍ैं। इससेस्पष्ट ि‍ै कक गोपवन्द ने िी उन्िें वेदान्त के र्ुख्य र्ुख्य भसद्धान्तों की भर्क्षा दी। किा र्ाता ि‍ै कक अपनी बाल्यावस्था र्ें िी र्ब वे केवल आठ वर्ष शके थे, उन्िोंने उत्कट अभभलापा तथा प्रसन्नता के साथ सब वेदों को कण्ठस्थ कर भलया। वे प्रकटरूप र्ें वैहदक पवद्या तथा स्वतन्त्र प्रज्ञा से युक्त एक सार्ान्य प्रततभा के तेर्स्वी

1628 उनका तकश यि ि‍ै कक पूणवशर्नश, जर्सका उल्लेख ब्रह्र्सूत्र पर ककए गए र्ंकर के र्ाष्य र्ें आता ि‍ै, र्गध का एक बौद्ध धर्ावशलम्बी रार्ा था, र्ो उसी सर्य र्ें िुआ।

1629 देखें, ररपोटश ऑन हद सव शफॉर संस्कृत र्ैन्युजस्प्ट्स' 1882, पृषूठ 15।

1630 इजण्डयन लीजर्क एण्ड एटर्ीज्र्', पृषूठ 30। कृष्ण भर्श्र (लगभग ग्यारिवींर्ताब्दी ईसा के पश्चात्)् के प्रवाध चन्द्रोदय के नन्दीश्लोक र्ें र्ाया तथा र्ृगृतृजृष्णका एवं सप-शरज्र्ु के अत्यन्त प्रचभलत दृष्टान्त हदए गए ि‍ैं।

1631 धचद्पवलास तथा सदानन्द के कुछ वृिान्त हदए ि‍ैं। स्कन्दपुराण र्ें कुछ तथ्य हदए गए ि‍ैं (देखें, 9)। एक र्ध्य ग्रंथकार तारायणाचाय शनेअपने'र्ध्यपवर्य' और 'र्णर्ंर्री' र्ें कुछ पववरण दिोराए ि‍ैं ककन्तु इनर्ें हदए गए कई तथ्य ककंवदन्तीरूप ि‍ैं और उनके ऐततिाभसक िोनेर्ें सन्दिे ि‍ै। देखें, 'लाइफ एण्ड टाइम्स आफ र्ंकर, सी. एन. कृष्णस्वार्ी अय्यर, र्द्रास, द्वारा पवरधचत ।

1632 आनन्दधगरर का र्त ि‍ै कक र्ंकर का र्न्र् धचदम्बरर् ्र्ें 44 वर्ष शईसा से ेपूव शिुआ तथा 12 वर्ष शइंसा स पूव शउनका दिेान्त िुआ। ककन्तु उनके इस र्त को अधधक सर्थनश प्राप्त निीं ि‍ै।

 व्यजक्त थे। र्ीवन के गूढ़ रिस्य तथा रि्त्त्व ने उन्िें प्रभापवत ककया और उन्िोंने भगवान की झलक

अपने र्ीवन

के बिुत प्रारजम्भक काल र्ें िी प्राप्त कर ली। इसके पूव शिी कक वे संसार के व्यविार से अभभज्ञता प्राप्त करते, े उन्िोंने संसार का त्याग कर हदया और वे संन्यासी िो गए। ककन्तु वे एक वीतरागी पररव्रार्क निीं थे। सत्य की पवरुद्ध ज्याला उनके अन्तस्तल र्ें प्रज्वभलत िो रिी थी। एक आचाय शके रूप र्ें उन्िोंने स्थान-स्थान पर रर्ण ककया, और वे पवभभन्न र्तों के नेताओंके साथ संवाद और र्ास्त्राथ शर्ें प्रवृत्त िुए। परम्परागत वणनशों के अनुसार, वे इन अपनी पवर्ययात्राओं र्ें कुर्ाररल[1633] और र्ण्डनभर्श्र के सम्पकश र्ें आए, जर्नर्ें से आगे ेचलकर र्ण्डनभर्श्र उनका भर्ष्य बन गया और सुरेश्वराचाय[1]श[634] के नार् से प्रभसद्ध िुआ। अर्रुक के र्ृत र्रीर र्ें र्ंकर के प्रवेर् करने की किानी यि प्रकट करती िै कक र्ंकर योग-सम्बन्धी कियाओंर्ें तनपुण थे। उन्िोंने चार र्ठों की स्थापना की, जर्नर्ें र्ुख्य वि िै र्ो र्ैसूर प्रान्त र्ें श्रृंगेरी र्ें िै। अन्य तीन र्ठ िैं: पूव शर्ें पुरी र्ें, पजश्चर् र्ें द्वारका र्ें और हिर्ालय प्रदेर् र्ें बदरीनाथ र्ें िैं। एक करुणार्नक घटना, जर्सके पवर्षय र्ें परम्परा र्ें सब एकर्त िैं, यि दर्ातशी िै कक र्ंकर का हृदय ककस प्रकार र्ानवीय करुणा तथा र्ाता-पपता की भजक्त से भरा िुआ था। संन्यासाश्रर् की व्यवस्था के तनयर्ों का प्रकट रूप र्ें भंगं करके र्ंकर ने अपनी र्ाता की अन्त्येजष्टकिया र्ें पूण शभाग भलया और इस प्रकार अपनेसर्ुदाय के पवकट पवरोध का सार्ना ककया। परम्परा से पता लगता िै कक 32 वर्ष शकी अवस्था र्ें हिर्ालय के अचल र्ें केदारनाथ र्ें उनका देिान्त िुआ। िर् र्ैसे ेसाधारण र्नुष्यों को, जर्नका र्ीवन भावुकतार्य का िै. र्ंकर के र्ीवन र्ें एक प्रकार का सूनापन प्रतीत िोता िै र्ो प्रसन्नतादायक सिाचय शके रंगीलेसुख से वंधचत था और सार्ाजर्क र्नोरंर्न का भी जर्सर्ें अभाव था, ककन्तु सार्ान्यरूप र्ें यिी अवस्था उन सब र्िापुरुर्षों की िोती िै, र्ो उच्चतर कोहट के र्ीवन का अवलम्बन करतेिैं और यि अनुभव करते िैं कक उनकी पुकार ईश्वर की न्यायपरायणता का प्रचार करने तथा आत्र्ा के दावों को पूरा करने के भलए िुई ि। वेएक ऐसेदेवदूत की तरि थेर्ो र्नुष्य-सर्ार् को धर् शके र्ाग शका पथप्रदर्नश करने के भलए अवतररत िुआ था और भारत र्ें ऐसा कोई भी व्यजक्त इस काय शको निीं संभाल सकता जर्सके सन्देर् की पृष्ठभूभर् र्ें संसार की धचन्ताओंके प्रतत अनासजक्त न िो।

थोडे िी वर्षों र्ें र्ंकर ने र्ीवन-यात्रा र्ें नाना उपायों का अवलम्बन ककया जर्नर्ें से प्रत्येक एक साधारण पुरुर्ष के भलए सन्तोर्षप्रद िो सकता था। कल्पना के क्षेत्र र्ें उनकी सबसे र्िान् ्भसद्धध अद्वैतदर्नश िै, जर्सेउन्िोंनेप्राचीन सूत्रों के ऊपर भाष्यों के द्वारा पवकभसत ककया। उन्िोंनेइससे ेज्ञान के सर्कालीन र्ानदण्डों तथा पवश्वास का प्राचीन सूत्रों तथा परम्पराओं के साथ सर्न्वय करने का सबसे उिर् र्ाग शसझ्ाा। छठी तथा सातवीं र्ताजब्दयों ने प्रचभलत हिन्दूधर् शके उदय को देखा था। दक्षक्षण भारत र्ें बौद्धधर् शपतन के र्ाग शकी ओर र्ा रिा था'[1635] और र्ैनर्त अपने उच्च भर्खर पर आसीन था। वैहदक कियाकलाप अप्रततष्ठा को प्राप्त िोने

1633 दक्षक्षण भारत की एक परम्परा के अनुसार यि किा र्ाता िै कक र्ंकर कुर्ाररल के भर्ष्य थे।

1634 र्ैसूर के प्रोफलेर हिररयान्न नेसुरेश्वर तथा र्ण्डनभर्श्र के एवा िी िोनेथे पवरोध र्ें आग्रिपूवकश पवश्वस्त प्रभाण उपजस्थत ककए िैं। देखें, 'र्नलश ऑफ हद रॉयल एभर्याहटक सोसाइटी, अप्रैल, 1983, और परी 7924।

1635 र्िांफाहियान नेबौद्धधर् शको पांचवीं र्ताब्दी र्ें फलते-फूलते देखा, युआन च्वाग ने, र्ो उसके पीछे अथादश छठी और सातवीं र्ताब्दी र्ें आया, उसके पतन के धचिों को स्पष्ट रूप र्ें देखा। बाण का िर्षचशररत उक्त प्रभाव की पुजष्ट करता िै।

लगा था। रै्वर्तावलचालल भक्त (अहदयार) तथा वैष्णवर्तावलम्बी भक्त (आलवार) ईश्वर-भजक्त के र्ाग शका प्रचार कर रिे थे। र्जन्दरों र्ें पूर्ा तथा त्योिार, जर्नका सम्बन्ध पौराणणक हिन्दवर्ष शसे था, सवत्रश प्रसार पा रिे थे। दक्षक्षण भारत र्ें पल्लव साम्राज्य सवश्रेेशष्ठ था और रर्ा बावातन्य् तथा उस र्ाजन्त के सर्य र्ें, र्ो एक केन्द्रीय र्ासन के कारण प्राप्त कौर ब्राह्मणधर् शर्नै: र्नै: हिन्दूधर्् शर्ें पररणत िो रिा था। पल्लव रार्ाओंकी धाभर्कश प्रेरणाएं ंउस सर्य िो रिे पुनः संघटन को स्पष्ट संकेत करती िैं। रिं ंपल्लव वंर् के काल के र्ासन बौद्धर्तावलम्बी थेविां ंिर्ानुसार उनके पीछे आनेवाले वैष्ैणयर्तावलम्वी थेऔर सबसेअवाचशीन रै्वर्त को र्ाननेवाले थे। बौद्धधर् शकी त्यागपरक प्रवृपि की प्रततकियास्वरूप तथा ईश्वरवाद की भजक्तपरक प्रवृपि के पवरुद्ध र्ीर्ांसक लोग वैहदक कियाकलापों के र्ित्त्व को अत्यन्त बढ़ाकर र्नता के सर्क्ष प्रस्तुत कर रिे थे। कुर्ाररल तथा र्ण्डनभर्श्र ने ज्ञान और संन्यास के र्ित्त्व को दूपूर्षत ठिराया तथा कर् शके र्ित्त्व एवं गृिस्थाश्रर् की उपयोधगता पर बल हदया। र्ंकर एक साथ और एक िी सर्य र्ें कट्टर सनातनधर् शके उत्सािी रक्षक एवं धाभर्कश सुधारक के रूप र्ें भी प्रकट िुए। उन्िोंने पुराणों के उज्ज्वल पवलासर्य युग के स्थान र्ें उपतनर्षदों के रिस्यर्य सत्य के युग को कफर सेलौटा लानेका प्रयत्न ककया। आत्र्ा को उच्चतर र्ीवन की ओर र्ोड़ने की र्ो र्जक्त धर् शर्ें िै उसे ेउसके बल को परखने ेकी कसौटी र्ाना। उन्िोंनेअपनेयुग को धाभर्कश हदर्ा र्ें र्ोडनेके भलए प्रयत्न करने र्ें अपने को पववर् पाया और इसकी भसद्धध उन्िोंनेएक ऐसे दर्नश व धर् शकी व्यवस्था के द्वारा सम्पन्न की र्ो बौद्धधर्,श र्ीर्ांसा तथा भजक्तधर् शकी अपेक्ेषा र्नता की आवश्यकताओं को किीं ंअधधक सन्तोर्षप्रद भसद्ध िो सकती थी। आजस्तकवादी सत्य को भावावेर् के कुिरे से आवृि ककए िुए थे। रिस्यवादी अनुभव प्राप्त करनेवाली अपनी प्रततभा से सम्पन्न वे लोग र्ीवन की कियात्र्क सर्स्याओं के प्रतत उदासीन थे। र्ीर्ांसकों द्वारा कर् शके ऊपर हदए गए बल से एक आत्र्पविीन कियाकलाप का पवकास िुआ। धर् शर्ीवन के अन्धकारर्य संकटों का सार्ना करके केवल उसी अवस्था र्ें र्ीपवत रि सकता िै र्बकक यि पवचार का उर्् पररणार् िो। र्ंकर की सम्र्तत र्ें, अद्वैतदर्नश िी एकर्ात्र परस्परपवरोधी सम्प्रदायों के अन्दर तनहित सत्य िै तथा उसकी न्यायोधचतता का प्रततपादन कर सकता िै और इस प्रकार उन्िोंनेअपनेसब ग्रन्थों का तनर्ाणश एक श ्र्ीवात्र्ा को ब्रह्र् के साथ अपने एकत्व को पिचानने र्ें सिायक भसद्ध िोने

ी उद्देश्य को लेकर ककया, अथाशत् और र्ो संसार र्ें र्ोक्षप्राजप्त का उपाय िै।[1636] र्ालाबार जस्थत अपनेर्न्र्-स्थान से उिर हदर्ा र्ें जस्थत हिर्ालय तक की अपनी यात्राओंर्ें उन्िों पूर्ा के अनेक रूप देखने ेको भर्ले ेऔर उन्िोंने उन सबको स्वीकार ककया जर्नके अन्दर र्नुष्य को ऊंचा उठाकर र्ीवन को तनर्लश बना देनेकी र्जक्त थी। उन्िोंनेर्ुजक्त के र्ात्र एक िी उपाय का प्रचार र्निीं ककया अपपतु प्रचभलत हिन्दूधर् शके भभन्न-भभन्न देवताओं, यथा पवष्णु, भर्व, र्जक्त तथा सूय शआहद को लक्ष्य करके असंहदग्ध रूप से र्ित्त्वपूण शछन्दों की रचना की। यि सब उनकी सावर्शतनक सिानुभूततयों तथा प्राकृततक देन की सम्पपि का अद्भुत प्रर्ाण उपजस्थत करता िै। प्रचभलत धर् शर्ें कफर से र्ीवन डालनेके अततररक्त उन्िोंनेधर् शका सुधार भी ककया। उन्िोंनेदक्षक्षण भारत र्ें र्जक्तपूर्ा की रूतरूशप अभभव्यजक्त को िटा हदया और यि दुःख की बात िै कक उसका असर कलकिा के बडेकाली र्जन्दर र्ें देखनेको र्निींभर्लता। किा र्ाता िै कक दक्षक्षण भारत र्ें उन्िोंनेकुि के रूप र्ें प्रचभलत भर्व की रष्ट पूर्ा का दर्न ककया

1636 संसारिेतुतनवृपिसाधनब्रह्र्ात्र्ैकत्वपवद्याप्रततपिये । देखें, र्ांकरभाष्य ,1/1, 1 ।

रो ल्लारर के नार् सिैती थी, और कापाभलकों की घातक प्रकियाओं का दर्न ककया, जर्नका देवता भैरव नरबभल की अभभलार्षा रखता िै। उन्िोंनेर्रीर को पवपवध धचह्नों से दागने की प्रथा को दूपूर्षत ठिराया। उन्िोंने बौद्धसंघ से यि सीखा कक अनुर्ासन, भर्थ्ायापवश्वास से रुजक्त और धाभर्कश संगठन धाभर्कश पवश्वास को स्वच्छ तथा बलर्ाली बनाए रखने र्ें सिायता करते िैं, और उन्िोंनेस्वयं दस धाभर्कश संघों की स्थापना की, जर्नर्ें से चार ने आर् तक अपनी प्रततष्ठा को जस्थर बनाए रखा िै।

रं्कर के र्ीवन र्ें पवरोधी भावों का एकत्र संग्रि भर्लता िै। वे दार्तशनक भी िैं और कपव भी, ज्ञानी पंडडत भी िैं और सन्त भी, वैरागी भी िैं और धाभर्कश सुधारक भी। उनर्ें इतनेभभन्न-भभन्न प्रकार के हदव्य गुण तनहित थेकक यहद िर् उनके व्यजक्तत्व का स्रण करें तो भभन्न-भभन्न रूतरूशप िर्ारे सम्रुख उपजस्थत िो र्ाते िैं। युवावस्था र्ें वे बौद्धधक र्ित्त्वाकांक्षा के आवेर् से पूण,श एक अदम्य और तनभयश र्ास्त्राथ-शर्िारथी प्रतीत िोते िैं। कुछ व्यजक्त उन्िें तीक्ष्ण रार्नीततक प्रततभा से सम्पन्न र्ानते िैंजर्न्िोंने र्नता को एकता की भावना का र्ित्त्व सर्झाया। तीसरे वग शके वे लोग भी िैं जर्नकी दृजष्ट र्ें वे एक र्ान्त दार्तशनक िैं जर्नका एकर्ात्र प्रयत्न र्ीवन तथा पवचार के पवरोधों का अपनी असार्ान्य तीक्ष्ण बुद्धध के द्वारा भेद खोल देने के प्रतत था। और चौथे ि वग शके लोगों की दृजष्ट र्ें वे एक रिस्यवादी िैं र्ो घोर्षणापूवकश किते िैं कक िर् सब उससे किीं ंअधधक र्िान् ्िैं जर्तना कक िर् र्ानते िैं। उनके सर्ान सावर्शतनक र्ेधावी पुरुर्ष बिुत कर् देखने र्ें आतेिैं।

3. साहित्य

इस दार्तशनक र्त के रुख्य रुख्य ग्रन्थ िैं प्ररुख उपतनर्षदों[1637] पर तथा भगवद्गीता और वेदान्तसूत्र पर ककए गए र्ांकरभाष्य। उपदेर्सािस्री और पववेकचूडार्णण ग्रंथों से उनकी सार्ान्य जस्थतत िर्ारे सर्क्ष आ र्ाती िै। ईश्वर के भभन्न-भभन्न स्वरूपों को लक्ष्य करके तनर्ाणश ककए गए स्तोत्र, इस र्ीवन र्ें उनकी आस्था किां ंतक थी, इसे भलीभांतत प्रकट करते िैं। इन स्तोत्रों के नार् िैं दक्षक्षणारूततस्शतोत्र, िररर्ीडेस्तोत्र, आनन्दलिरी और सौन्दयलशिरी। र्ीवन के प्रतत उनकी आस्था थी उसका औधचत्य भी इन स्तोत्रों से प्रकट िोता िै। अन्य ग्रन्थ, र्ो रं्कर के रधचत बताए र्ाते िैं, ये िैं आप्तवर् सूची, आत्रबोध र्िरुद्गर, दश्लोकी और अपरोक्षानुभूतत तथा पवष्णुसिस्रनार् और सनत् ्सुर्ातीय के ऊपर भाष्य। ऐसेअनेक सूत्रों की अभभव्यजक्त उनके ग्रन्थों र्ें प्रकट िैं जर्न्िोंने उनके व्यजक्तत्व के र्हटल पवन्यास का तनर्ाणश ककया था। उनकी र्ैली के पवर्षय र्ें पवर्ेर्ष बात र्ो लक्ष्य करने की िै, वि यि िै कक ककस प्रकार से वि रं्कर के र्ानभसक गुणों को, अपनी र्जक्त को, अपनेतकश को, अपनेर्नोभावों तथा पवनोदपप्रयता के भाव को अपनेअन्दर प्रततबबजम्बत कर देती िै। रं्कर के द्वारा प्रततपाहदत दर्नशर्ास्त्र का इततिास बिुत लम्बा िै और आर् तक भी वि प्रगततर्ील िै। अन्य र्तावलम्बी सार्ान्यतः अपनी जस्थतत का सर्थनश रं्कर के पवचारों का खण्डन करके करते िैं। इसके कारण रं्कर की जस्थतत का

[1637] छान्दोग्य, बृिदारण्यक, तैपिरीय, ऐतरेय, श्वेताश्वतर, केन, कठ, ईर्, प्रश्न, रुण्डक और र्ाण्डूक्य। किा र्ाता िै कक उन्िोंने अथवभशर्खा, अथवभशर्रस और नृभसंितापनीय उपतनर्षदों के भी भाष्य ककए थे।

पक्षपोर्षण प्रत्येक काल र्ें आवश्यक िो गया िै ककन्तु िर्ारे भलए र्ंकर के दर्नश र्ें उनके अपने सर्य की सर्ुद्र्धध के अतततररक्त बाद र्ें िुई सर्ुद्र्धध का ठीक-ठीक पता लगाना सम्भव निीं।"[1638]

1638 सुरेश्वराचाय शके वाततकश और नैष्कम्य शभसद्धध, वाचस्पतत की भार्ती, पद्र्पाद की पंचपाहदका और आनन्दधगरर का न्याय-तनणयश, ये अद्वैत के प्रभसद्ध ग्रन्थ िैं जर्नकी रचना र्ंकर के सर्य के ठीक पश्चात् ्िुई। अर्लानन्द का कल्पतरु (तेरिवीं र्ताब्दी का र्ध्य भाग) भार्ती के ऊपर ककया गया एक भाष्य िै। अप्पय दीक्षक्षत (सोलिवीं र्ताब्दी) नेअपने कल्पतरुपररर्ल नार्क ग्रंथ का तनर्ाणश, र्ो एक र्िाकाय ग्रंथ िै, कल्पतरु के आधार पर ककया। उसका 'भसद्धांत लेर्' वेदान्त के भभन्न-भभन्न पवकभसत रूपों का एक र्ित्त्वपूण शसारसंग्रि िै। प्रकार्ात्र्ा ने(1200 ईस्वी) के अपने 'पंचपाहदकापववरण' र्ें पद्र्पाद की 'पंचपाहदका' के ऊपर टीका की िै, र्ो प्रथर् चार सूत्रों के ऊपर एक पररष्कृत वृपि िै। पवद्यारण्य ने, र्ो चौदिवीं र्ताब्दी र्ें िुआ और जर्सेसार्ान्यतः र्ाधव र्ाना र्ाता िै, अपने'पववरणप्रर्ेयसंग्रि' की रचना की, र्ो प्रकार्ात्र्ा के ग्रंथ का भाष्य िै। 'पंचदर्ी' र्िां अवाचशीन अद्वैत का एक र्ास्त्रीय ग्रंथ िै, विां उसका 'र्ीवन्र्ुजक्तपववेक' भी अत्यन्त र्ित्त्व का ग्रंथ िै। पंचदर्ी के रचतयता के सम्बन्ध र्ें परम्परागत र्तभेद िै। ऐसा किा र्ाता िै कक पिले छः अध्याय पवद्यारण्य के द्वारा रधचत िुए तथा अन्य नी अध्याय भारतीतीथ शनेरचे(देखें, पीताम्बरस्वार्ी का संस्करण, पृष्ठ 6)। तनश्चलदास नेअपने 'वृपिप्रभाकर' (पृष्ठ 424) र्ें प्रथर् दस अध्यायों का कताश

पवद्यारण्य को र्ाना िै तथा अन्य पांच का कताश भारतीतीथ शको र्ाना िै। सवज्ञश   ात्र्ुतन ने(900 ईस्वी) अपने 'संक्षेपर्ारीरक' र्ें र्ंकर की जस्थतत का सवेक्षण ककया िै और रार्तीथ शनेइसके ऊपर टीका भलखी िै। श्रीिर्ष शका खण्डनखण्डखाय (1190 ईस्वी) अद्वैत दर्नश का सबसे र्िान् ्ग्रन्थ िै। यि दर्नशर्ास्त्र की तन:सारता के ऊपर भलखा गया एक अत्यन्त पवस्तृत पवचार प्रबन्ध िै, र्ो र्ानवीय र्जस्तष्क की उन उच्च श्रेणी के पवर्षयों को र्ापनेकी अयोग्यता का प्रततपादन करता िै जर्न्िें यि अपनी कल्पनात्र् पवलक्षणता द्वारा खोर् लेनेयोग्य सर्झता िै। नागार्ुनश के िी प्रकभाव का अनुसरण करते िुए यि सार्ान्य वगीकरण का पवश्लेर्षण सूक्ष्ता तथा पररर्ुद्धता के साथ करता िुआ एक सुदीघ शतथा पररश्रर्साध्य प्रकिया द्वारा पाठक के सर्क्ष इस सरल सत्य को भसद्ध करता िै कक ककसी पवर्षय को भी अजन्तर् एवं तनजश्चत रूप र्ें सत्य अथवा असत्य निींकिा र्ा सकता। सावभशौर् चैतन्य क अतततररक्त अन्य सब वस्तुएं संहदग्ध िैं। तनरपेक्ष परर्ात्र्ा की यथाथतशा के अन्दर र्ो उसका पवश्वास िै वि उसे ेबोद्धधर् शके र्ून्यवाद (15) से पृथक् लक्षक्षत करता िै। अन्त र्ें र्ाकर वि न्याय के प्रर्ाणों तथा उसके कारणकायभशाव की प्रकल्पना के ऊपर वादपववाद उठाता िै तथा तकश करता िै कक न्याय केवल प्रतीयर्ान वस्तुओं तक िी सीभर्त िै, यथाथसशिा तक निींपिुंचाता। वस्तुओं के अन्दर की पवपवधता परर् यथाथ शनिीं, ककन्तु तनरपेक्ष ब्रह्र् परर् यथाथश िै (1:9), यद्यपप यि कभी र्ाना निींगया। धचत्सुख ने इसके ऊपर एक टीका भलखी तथा इसके अतततररक्त एक स्वतन्त्र ग्रंच 'तत्त्वदीपपका' नार्क भी उसी पद्धतत के ऊपर ततखा। 'न्यायर्ूतर्'् र्ें 'धचत्सुखीयर्'् की सर्ीक्षा की गई िै। र्धुसूदन सरस्वती ने(16 वींर्ताब्दी) अपने अद्वैतभसद्धध' नार्क ग्रन्य र्ें 'न्यायर्ूत' की सर्ीक्षा की। रार्ाचाय शनेअपनी 'तरंधगणी' र्ें 'अद्वैतभसद्धध सर्ीक्षा की। 'गीडब्रह्र्ानन्दीय' अथवा 'गुरुचहटका' ब्रह्र्ानन्दकृत एक ग्रंथ की सर्ीक्षा िै, र्ो 'तरंधगणी' के पवरुद्ध की गई सर्ीक्षा के पवरुद्ध 'अद्वैतभसद्धध' ग्रन्य के सर्थनश र्ें भलखा गया िै। र्ंकरभर्श्र तया रघुनाथ नेखण्डन के ऊपर स्वतन्त्र ग्रंथ भलखे। धर्रशार् का 'वेदान्त पररभार्षा' नार्क ग्रंथ (सोलिवीं र्ताब्दी) न्यायर्ास्त्र की अध्यात्र्पवद्या के पवर्षय र्ें एक अत्युिर् ग्रंथ िै। इसके ऊपर धर्रशार् के पुत्र रार्कृष्ण ने अपना 'भर्खार्णण' नार्क ग्रन्य भलखा। अर्रदासकृत 'र्णणप्रभा' इसके ऊपर एक उपयोगी टीका िै। पवज्ञानभभक्षु के 'पवज्ञानर्ृत' (सोलवीं र्ताब्दी) र्ें यि भसद्ध करने ेका प्रयास ककया गया िै कक सांख्यप्रततपाहदत द्वैत वेदान्त के अन्दर िै। अद्वैतानन्द का 'ब्रह्र्पवद्याभरण' (15वींर्ताब्दी), गोपवन्दानन्द की रत्नप्रभा, सदानन्द का 'वेदांतसार' (15वींर्ताब्दी) अपनी 'सुबोधधनी' तथा 'पवद्वन्र्नोरंर्नी, नार्क टीकाओं सर्ेत प्रकार्ानन्द का 'भसद्धांत र्ुक्तावली', सदानन्द का 'अद्वैतब्रह्र्भसद्धध', लक्ष्र्ीधर का 'अद्वैतर्करन्द' आहद कततपय अन्य ग्रंच भी बिुत र्ित्त्व के िैं। कई आधुतनक उपतनर्षदें, यथा र्ीपतनर्षद् तथा कई धाभर्कश ग्रंथ, यया योगवाभर्ष्ठ और अध्यात्र्रार्ायण अद्वैतवाद का सर्थनश करते िैं। योगवाभर्ष्ठ र्ें बौद्ध पवचारों का प्रततपवम्व पाया र्ाता िै। तुलना कीजर्ए- यहददं दृश्यते

ककधचत् ्तन्नाजस्त ककर्पप धु्रुवर् ्।
वथा गन्धवनशगरं यया वारर र्रुस्थले ॥ (2)

4. गौडपाद

अद्वैत वेदान्त पर िर्बद्ध भाष्य भलखनेवालों र्ें गौडपाद'[1639] सबसे प्रथर् ि ै। वि र्ंकर के गुरु, गोपवन्द के नार् से प्रभसद्ध ि ै और किा र्ाता ि ै कक या तो आठवीं ंर्ताब्दी के प्रारम्भ र्ें या सातवीं ंर्ताब्दी के अन्त के लगभग िुआ।[1640] यि भी किा र्ाता ि ै कक गौडपाद ने उिरगीता पर भी एक भाष्य भलखा था। काररका र्ें अद्वैतदर्नश के र्ुख्य-र्ुख्य भसद्धान्तों का प्रततपादन ककया गया ि ै, र्ैसेकक यथाथसशिा के अनुर्ेय, ब्रह्म और आत्र्ा का एकत्व, र्ाया, परर्तनरपेक्ष सिा पर कारण-कायभशाव का लागू न िोना, ज्ञान अथवा पवद्या का र्ोक्ष का प्रत्यक्ष साधन िोना, तथा तनरपेक्ष र्ून्य का अधचन्त्य िोना। यि ग्रन्थ चार अध्यायों र्ें पवभक्त ि ै। प्रथर् के अन्दर, जर्सेआगर् किा र्ाता ि ै, र्ाण्डूक्योपतनर्षद् के प्रततपाद्य पवर्षय की व्याख्या की गई ि ै। गौडपाद ने यि दर्ानेश ेका प्रयत्न ककया ि ै कक यथाथसशिा के पवर्षय र्ें र्ो उसका र्त ि ै उसे ेश्रुतत की र्ान्यता प्राप्त ि ै और तकश उसका सर्थनश करता ि ै।'[1641] दूसूरे अध्याय र्ें, जर्सका नार् वैतथ्य ि ै, युजक्तयों द्वारा संसार के प्रतीयर्ान स्वरूप की व्याख्या की गई ि ै, क्योंकक इसकी पवभर्ष्टता द्वैतैभाव और परस्पर पवरोध से लक्षक्षत िोती ि ै। तीसरे भाग र्ें अद्वैत भसद्धान्त को भसद्ध ककया गया ि ै। अजन्तर् भाग र्ें, जर्सका नार् अलातर्ाजन्त ि ै और जर्सका अथ शिोता ि ै ज्वाला को बुझाना, आत्र्ा के एकर्ात्र यथाथ शअजस्तत्व के तथा उससे सम्बद्ध िर्ारे साधारण अनुभव के स्वरूप के पवर्षय र्ें अद्वैत भसद्धान्त की र्ो जस्थतत ि ै उसका और अधधक पररष्कार ककया गया ि ै। जर्स प्रकार एक भसरे पर र्लती िुई लकडी र्ब चारों ओर घुर्ाई र्ाती ि ै तो बडी र्ीघ्रता से एक प्रकार का रर्

अद्वैतवेदांत के ऊपर अन्य ककतने िी ग्रन्थ भलखे गए िैं, ककन्तुवे सब र्ंकर के वचनों के गाम्भीय शतथा अगायता तक निीं

पिुंचते। सुरेश्वर, वाचत्पतत, पद्र्पाद, श्रीर्षे,श पवद्यारण्य, धचत्सुख, सवज्ञशात्र्ुतन, र्धुसूदन सरस्वती, अप्पयदीक्षक्षत ये सब ययापप शएक िी सर्ान पवचार-प्रणाली र्ें आते िैं तो भी नवीन पवर्षय का कुछ न कुछ प्रततपादन करते िैं, तया तनरपेक्ष आदर्वशाद की साथकशता के ककसी-न-ककसी पक्ष पर प्रकार् डालते िैं, जर्सके सर्ान प्रगाढ़ पवचार पिलेकभी सार्नेनिीं आए। ये सब यद्यपप एक िी सार्ान्य पवधध का प्रयोग करते िैं तथा एक िी सार्ान्य र्त की व्याख्या करते िैं और कफर भी अपनेपवर्ेर्ष व्यजक्तत्व को भी धारण ककए िुए िैं।

1639 सम्भवत: यि वि गौडपाद निीं र्ो सांख्यदर्नश के भाष्य का कताश ि ै।

1640 इसेबिुत अधधक प्राचीन िोना चाहिए क्योंकक वालसर का किना ि ै कक भवपववेककृत तकशज्वाला के ततब्बती भार्षा के रूपांतर र्ें काररका का उद्धरण आता ि ै। परवती ग्रंथकार अवश्य युआनचांग से पिलेिुआ और इसभलए गौडपाद का सर्य लगभ 550 ईस्वी, या ऐसा िी िोना चाहिए (देखें र्ैकोबी, 'र्नलश आफ हद अर्ेररकन औररएण्टल सोसाइटी', अप्रैल, 1913)। र्ैकोबी का र्त ि ै कक काररका ब्रह्मसूत्र से ेअवाचशीन ि ै। प्राचीन बौद्धग्रन्थों र्ें ब्रह्मसूत्र का कोई उल्लेख न रिने से इस र्त र्ें कोई अन्तर निींआता क्योंकक ब्रह्मसूत्र के रिस्यर्य स्वरूप' के कारण पवर्ातीयों के भलए वेदांत दर्नश के पववाद पवर्षयों के दृष्टांतस्वरूप र्ें इसका उद्धरण देना सम्भव िो र्ाता ि ै। "इसके अततररक्त बौद्ध लेखक बादरायण के पुरातन वेदान्त की उपेक्षा भी कर दे सकते ेथे जर्स प्रकार कक र्ैतनयों नेआगे चलकर नौवीं र्ताब्दी र्ें ककया। ककन्तु वे 'गौडपादी' की उपेक्षा निींकर सकते ेथे, क्योंकक उक्त ग्रंथ नेएक ऐसेदर्नश की भर्क्षा दी र्ोकक अनेक अंर्ों र्ें उनके अपनेसर्ान थी।" (र्नलश आफ हद अर्ेररकन ओररएण्टल सोसाइटी, अप्रैल, 1913)। अनेक भारतीय पवद्वानों का झुकाब र्ैकोबी की सम्र्तत की ओर िै, यद्यपप वे उसके तकश को वालसर के तकश से ेभभन्न निींर्ानते।

1641 3:23 ।

उत्पन्न करती ि कक यि अजग्नचि (अलातचि) ि, यिी िाल संसार के अनेकत्व का ि।[1642] यि योगाचार र्त का भी उल्लेखे करती ि और बुद्ध का नार् भी इसरें कर्-से-कर् आधी दर्नश बार आया ि।

गौडपाद ऐसे सर्य रें िुआ र्बकक बौद्धधर् शपवस्तृत रूप रें प्रचभलत था। स्वभावतः यि बौद्धधर् शके भसद्धान्तों से अभभज्ञ था और रिं ंपर वे उसके अपनेअद्वैतवाद के भसद्धान्तों के साथ पवरोध रें निींरते ेथे,े विांपर उर्न्ें गौडपाद ने स्वीकार भी ककया था। बौद्धधभर्यशों से उसने यि किा कक उसके र्त का आधार कोई धर्शास्त्रीय रूलग्रन्थ या दैवीय वाणी निींि सनातनी हिन्दू ूको उसनेयि किा कक इसको श्रुतत प्रर्ाण की भी रान्यता प्राप्त ि। अपने उदार पवचारों के कारण उसे ेबौद्ध धर् शसे सम्बद्ध भसद्धान्तों को स्वीकार करके उर्न्ें अद्वैत की रैली पर अपनेअनुकूल बना लेनेकी सुपवधा प्राप्त िो गई।

5. अनुभूत ज्ञान का पवश्लेर्षण

एक अन्य स्थान पर िर्नेचेतेना की श्रेणणयों तथा प्रकारों के पवर्षय रें रो भसद्धान्त ि, और जर्सका वणनश राण्डूक्योपतनर्षद् रें ककया गया ि, उसका उल्लेखे ककया ि।[1643] गौडपाद इसी पवश्लेर्षण को अपना आधार रानकर बलपूवकश किता ि कक स्वप्नावस्था के अनुभव तथा रागररत अवस्था के अनुभव एकसरान िैं। यहद स्वप्नावस्थाएंरिरे अन्य साथी र्नुष्यों के सारान्य अनुभवों तथा िरारे अपनेभी साधारण अनुभव की अवस्थाओं के अनुकूल निीं िैं'[1644] तो अवश्य यि सर्झना चाहिए कक इसका कारण यि निीं ंि कक वे तनरपेक्ष यथाथसशिा रें न्यून ि, अपपतु इसका कारण यि ि कक वे िरारे अपनेपरम्परागत रानदण्डों के अनुकूल निींि अनुभवों की उनकी अपनी एक पृथृक् िी श्रेणी ि और अपनेसंघ के अन्दर वे सजश्लष्ट िैं। स्वप्न रें का पानी स्वप्नगत प्यास को बुझा सकता ि और यि किना कक यि वास्तपवक प्यास को निींबुझाता ि, असंगत ि। ऐसा किने का तात्पय शिोगा कक िर् रान लेतेिं कक रागररत अवस्था का अनुभव अपने-आप रें यथाथ शि और विी एकरात्र यथाथ शि। रागररत तथा स्वप्न अवस्थाएं ंदोनों िी अपने-अपनेस्थानों पर यथाथ शि, अथवा तनरपेक्ष भाव से दोनों िी एक सरान अयथाथ शिं।'[1645] गौडपाद का र्त ि कक रागररतावस्था के अनुभूत यथाथ शिर् सबके भलए

[1642] रैत्रायणी उपतनर्षद् भी देखें, 6 24। इसी उपरा का प्रयोग बौद्ध ग्रंथों रें भी ककया गया ि। तनःसन्दि भार्षा तथा पवचार की दृजष्ट से गौडपाद की काररका तथा राध्यभर्क ग्रंथों रें अद्भुत सरानता पाई राती ि, और उनरें प्रयुक्त दृष्टान्त भी इसरें भर्लते िैं। पवर्रेष रूप रें तुलना कीजए, 2: 322459। देखें, 'र्नंत आफ हद रायल एभर्याहटक सोसाइटी', 1910, पृष्ठ 136 से आगे।

[1643] देखें खण्ड 1, पृष्ठ 32-33, 159 से आगे। तुलना कीजए, बैडले 'दूधू एण्ड ररयभलटी', पृ.ृ 462-64।

[1644] 2:203।

[1645] "र्ब रें इस पवर्षय पर ध्यान देकर पवचार करता िंूं तो रुझेएक भी ऐसा लक्षण निींभर्लता जर्सके द्वारा र् ैंतनजश्चत रूप से तनणयश कर सकूं कक क्या रें रागता िूँ या स्वप्न देख रिा िूँ। स्वप्नावस्या के अनुभव तया रागररता के अनुभव इतने अधधक सरान िैं कक र् ैंपूणरूशप से िैरान िो राता िंूं और वस्तुतः रें निींरानता कक र् ैंइस क्षण रें स्वप्न निींदेख रिा िंूं" 'डेस्काटश रेडडटेर्न्स', पृष्ठ। का पास्कल का कथन ठीक ि कक पहद िर रात एक िी स्वप्न हदखाई दे तो िर् उसरें भी ठीक

एकसऱ्ान िै र्बकक स्वप्नावस्था र्ें ऱ्ानेगए पदाथ शकेवल स्वप्नद्रष्टा की तनऱ्ी सम्पपि िैं।[1646] कफर भी उसका किना िै कक "क्या स्वप्न र्ें और क्या ऱ्ागररत अवस्था र्ें ऱ्ो भी पदाथ शज्ञान र्ें आतेिैं वे सब अयथाथ शिैं?"[1647] उसका तकश यि िै कक पदाथ शके रूप र्ें ऱ्ो कुछ भी प्रस्तुत िोता िै वि सब अयथाथ शिै। यि तकश कक सब पदाथ श

अबधाथ शिैं और ऱ्ात्र प्रऱ्ाता (ज्ञाता) ऱ्ो तनरन्तर साक्षीरूप आत्ऱ्ा के रूप र्ें िै विी यथाथ शिै. कुछ उपतनर्षदों र्ें उपजस्थत ककया गया िै और इसे ेबौद्ध पवचारधारा र्ें तनर्ेषेधात्र्क पररणार्ों के साथ पवकभसत ककया गया िै। इसी तकश का प्रयोग आगे ेचलकर गौडपाद ने यि भसद्ध करनेके भलए ककया िै कक यि ऱ्ीवन ऱ्ागररत अवस्था का स्वप्न िै।'[1648] िर् ऱ्ागररत अवस्था के संसार को बाह्य ऱ्ान लेतेिैं, इसभलए निीं कक िर्ें अन्य लोगों की ऱ्ानभसक अवस्थाओंका ज्ञान िोता िै, ककन्तु इसभलए कक िर् उनकी साक्षी को ऱ्ान लेतेिैं। देर्, काल और कारण के सम्बन्ध ऱ्ो ऱ्ागररत संसार के पदाथों का तनयर्न करते िैं, आवश्यक निीं ंकक ययाथ शिी ऱ्ान भलए ऱ्ाएं। गौडपाद के अनुसार, "एक वस्तु के स्वरूप से ऱ्ो कुछ सर्झा ऱ्ाता िै, वि िै ऱ्ोकक अपनेर्ें पूण शिोता िै, वि ऱ्ोकक इसकी वास्तपवक अवस्था िै, वि ऱ्ोकक अन्ततनहशित िै, वि ऱ्ोकक आकजस्र्क निींि अथवा वि ऱ्ो अपने-आप से नष्ट निींिि ऱ्ाता।"[1649] इस कसौटी को उपयोग र्ें लानेपर िर्ें प्रतीत िोता िै कक आत्ऱ्ाएंतथा संसार अपने-आप र्ें दोनों िी कुछ निींि, और केवल आत्ऱ्ा िी सत् ्िै।" [1650]

अनुभूत ज्ञान की वे घटनाएं िर्ारे र्जस्तष्क के अन्दर प्रपवष्ट िोती िैं, ककन्िीं तनजश्चत तनयर्ों का पालन करती िैंतथा ककन्िीं तनजश्चत सम्बन्धों से आबद्ध िैं, जनर्ें प्रधान सम्बन्ध िै कारण। वि कौन-सा िर् िै जिसके अनुसार कारण और काय शएक-दूसूरे के पीछे आतेिैं? यहद वे युगपत आते िैं. र्ैसेकक एक परु के दो सींग साथ-साथ आते िैं, तो वे कारण और काय शके रूप र्ें एक-दूसूरे से सर्बद्ध निींिि सकते। बीर् और वृक्ष का दृष्टान्त अधधक उपयुक्त निीं ंिो सकता। िर् ककसी भी वस्तु को काय शनिींकि सकतेयहद िर् उसके कारण को निींऱ्ानते।'[1651] बाह्य आवरण के स्वरूप र्ें कारण काय-शसम्बन्धी व्याख्या पूण शनिीं िो सकती। वस्तुओं की ककसी भी प्रस्तुत अवस्था को िर् सोपाधधक ऱ्ानते िैं और उनकी उपाधधयों का पता. लगातेिैं और र्ब उपाधधयों का पता लग ऱ्ाता िै तो िर्ें उसकी पृष्ठभूभर् र्े र्ें ऱ्ाना िोता िै। इस प्रकार की प्रकिया का कोई अन्त निीं िै।[1652] ककन्तु यहद को प्रष्टभूपर्ष करें कक ऐसे अनाहद तनत्य कारण भी वतशर्ान िैं ऱ्ो स्वयं र्ें कारणहित िैंऔर तो भी कायों को उत्पन्न करते िैं, तब कफर गौडपाद कैसे ेपूछ सकता िै कक क्या वि पदाथ शऱ्ो काय शको उत्पन्न करते े

इसी प्रकार भलप्त िो ऱ्ाएंगे र्ैसेकक उन वस्तुओं र्ें िो ऱ्ातेिैं जन्िें िर् प्रततहदन देखतेिैं। उसके र्ब्द िैं, "यहद कोई कारीगर तनजश्चत रूप से ेपूरे बारि घण्टे तक यि स्वप्न देखेकक यि रार्ा िै तो र्ेरा पवश्वास िै कक यि भी उसी रार्ा के सऱ्ान सुखी िोगा ऱ्ो िर रात र्ें बबराबर बारि घण्टे तक यि स्वप्न देखता िै कक यि कारीगर िै।"

1646 2:14।

1647 2:4 ।

1648 2 :31।

1649 .4:9।

1650 4:10, 28, 61।

1651 4/16 ,21 ।

1652 4/11 - 15, 21 ,23,25 ।

ैं, स्वयं अर् (अथात्श ्न उत्पन्न िोनेवाला) िो सकता िै? और एक पररवतनशर्ील पदाथ शकैसे तनत्य िो सकता िै? स्वयं अनुत्पन्न वस्तुओं को अन्य वस्तुओं को उत्पन्न करते िुए िर् किां ंपाएंगे? े कारण और काय,श स्पष्ट िै कक परस्पर सापेक्ष िैं, जर्नर्ें इले ेसेएक दूसूरे को सिारा देता िै और र्ो धगरते ेभी साथ-साथ िैं।'[1653] कारण-कायश-सम्बन्ध का स्वरूप यथाथसशिा के स्वरूप-सा निीं, ककन्तुकेवल ज्ञान की एक दर्ा िै। गौडपाद किता िै "न तो अयथाथ शका और न यथाथ शका िी कारण कभी अयथाथ शिो सकता िै और इं न िी यथाथ शका कारण यथाथ शिो सकता िै... और यथाथ शकैसे अयथाथ शकारण िो सकता िै?"[1654] कारणकायभशाव की सर्स्याओं के कारण गौडपाद यि किने के भलए पववर् िुआ कक "कोई भी वस्तु न तो अपने से और न अन्य के द्वारा उत्पन्न िो सकती िै। वस्तुतः कोई वस्तु उत्पन्न िोती िी निीं, चािे वि सत् ्िो या चािे असत् ्िो अथवा दोनों र्ें से एक िो ।'[1655] कारणकायभशाव असम्भव िै। िर् न तो यिी कि सकतिैं कक ईश्वर संसार का कारण िै अथवा और न यि कक र्ागररत अवस्था का अनुभूत ज्ञान स्वप्नावस्थाओंका कारण िै।"[1656] नानापवध पदाथ-शपवर्षयतनष्ठ और पदाथतशनष्ठ, र्ीवात्र्ा्रा्त्र तथा संसार-सभी अयथाथ शिैं।'[1657] वे तभी तक यथाथ शप्रतीत िोते िैं र्ब तक कक िर् श ्सापेक्ष सत्य) की र्क्त से कारणकाय शके भसद्धान्त को स्वीकार करते िैं।"[1658] "प्रत्येक पदाथ शसंवृपि (अथात उत्पन्न िोता िै और इसभलए कुछ भी तनत्य निीं; ककर प्रत्येक पदाथ शअउत्पपिरहित िोता िै क्योंकक वि सत् ्से पृथक् निीं ्िो सकता और इसभलए पवनार् नार् की कोई वस्तु निीं।"[1659] उत्पपि और पवनार् केवल प्रतीतत-र्ात्र िैं और यथाथ शर्ें न तो कुछ उत्पन्न िोता िै और न पवनष्ट िी िोता िै।'[1660] यथाथसशिा तक पिुंचनेके भलए िर्ें कारणकायभशाव तथा अन्य सम्बन्धों को अस्वीकार करना िोगा, क्योंकक यथाथसशिा प्रतीततरूप र्गत् ्से अतीजन्द्रय िै।"[1661]

यि ध्यान देनेयोग्य पवर्षय िै कक आत्र्तनष्ठ तथा पदाथतशनष्ठ का भेदे वेदान्त र्ें वैसा निीं र्ैसेकक साधारणतः िोता िै। र्ानभसक र्गत् ्वैसा िी पदाथतशनष्ठ अथवा अयथाथ शिै र्ैसेकक भौततक र्गत् ्िै, क्योंकक एकर्ात्र ज्ञाता अथवा यथाथसशिा केवल आत्र्ा िी िै। यद्यपप गौडपाद और र्ंकर दोनों िी इस पवचार के र्ाननेवाले िैं तो भी र्ंकर स्वप्नलोक तथा र्ागररत लोक र्ें परस्पर भेद करने का पवर्ेर्ष ध्यान रखतिैं। र्िां ं

1653 4 :14-15।

1654 4/40

1655 4:22 । र्ंकर इस पर इस प्रकार टीका करते िैं, "वस्तुतः ककसी भी वस्तु से र्त का उत्पन्न िोना ककसी प्रकार भी भसद्ध निींिो सकता। अपने-आप से, अथात्श ्अपनी तनर्ी आकृतत सेकुछ निींउत्पन्न िो सकता। कोई भी पदाथ शकफर से अपनेको उत्पन्न निींकर सकता र्ैसे घडे से कफर घडा निींउत्पन्न िो सकता, और न िी ककसी अत्त्व वस्तु से कोई वस्तु उत्पन्न िो सकती िै र्ैसेघडे से ेकपडा निीं उत्पन्न िो सकता, और पिले कपडेसे ेदूसूरा कपडा निींउत्पन्न िो सकता, और अपनेतथा अपनेसे ेअन्य दोनों से ेकुछ निीं उत्पन्न िो सकता; क्योंकक एक धडा और एक कपडा दोनों एक साथ भर्लकर ककसी एक को या दूसूरे को उत्पन्न निींकर सकते।"

1656 4/39

1657 4:51-52, 67।

1658 4/55 - 56; 4/42।

1659 4/57 ।

1660 2/32 ।

1661 प्रपंचसार्, ् 2/35 ।